

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
कफगुल्म में वस्ति के प्रयोग	७४६	अन्यभासव	७५६
कफगुल्म में चूर्णादिप्रयोग	७४६	प्रमेहपर अन्यचिकित्सा	"
पथ्यादि वर्णन	७४६	प्रमेह में निदान परिवर्जन	७५६
कफगुल्मपर अन्यउपचार	७४६	मधुप्रमेह का लक्षण	"
असाध्यगुल्मके लक्षण	७४९	प्रमेह को साध्यासाध्यत्व	"
रक्तगुल्म की चिकित्सा का क्रम	७४७	पिडकाभों की चिकित्सा	७५७
रक्तगुल्म के अन्यउपचार	७४७	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
अदृश्यमान रुधिर में वस्ति	७४७		
प्रवर्तमान रुधिर में उपचार	७४८	कुष्ठचिकित्सितं नामसप्तमोऽध्यायः	
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	७४८	कुष्ठोत्पत्ति काहेतु	"
प्रमेहाचिकित्सितं नामपष्ठोऽध्यायः		कुष्ठके पूर्वरूप	७५८
प्रमेह का निदान	७४९	कुष्ठों के नाम	"
कफादि प्रमेह की सम्प्राप्ति	७४९	कपाल कुष्ठ के लक्षण	"
प्रमेहों की संख्या	७४९	औदुम्बर कुष्ठ के लक्षण	७५९
दोषरूपों की संख्या	७५०	मंडलकुष्ठ के लक्षण	"
बीसप्रकार के प्रमेहों की पहचान	७५०	प्रप्यजिह्व कुष्ठके लक्षण	"
दोषानुसार प्रमेहके वर्णोदि	७५१	पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण	"
वातज प्रमेह को असाध्यत्व	७५१	सिध्म कुष्ठके लक्षण	"
प्रमेहके पूर्वरूप	७५१	काकणक कुष्ठके लक्षण	"
स्थूलकृश प्रमेह की चिकित्सा	७५१	एककुष्ठ और चर्मकुष्ठके लक्षण	"
प्रमेही के अन्यउपचार	७५१	किटिम कुष्ठके लक्षण	७६०
प्रमेही को पथ्य	७५१	वैपादिक कुष्ठके लक्षण	"
कफप्रमेह में अन्यत्रिधि	७५२	अलसक के लक्षण	"
प्रमेहों पर सामान्य प्रयोग	७५२	दद्रुमण्डल के लक्षण	"
कफ प्रमेह कर कपाय	७५३	चर्मदल के लक्षण	"
पित्तप्रमेह पर कपाय	७५३	पामा के लक्षण	"
कफपित्तप्रमेह पर प्रयोग	७५४	विस्फोटक के लक्षण	"
अन्यप्रयोग	७५४	शतारूके लक्षण	७६१
सब प्रकार के प्रमेहपर वनाथ	७५४	विचारिर्का के लक्षण	"
मध्यासव	७५४	कुष्ठोंकोदोषपरत्व	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
कुष्ठों में चिकित्साक्रम	७६१	अन्यतैल	७७०
कुष्ठकी पहचान	"	विषादिका की चिकित्सा	"
घातजादि कुष्ठों के लक्षण	"	मण्डल कुष्ठपरलेप	७७१
कुष्ठको असाध्यत्व	७६२	छःप्रकार के लेप	"
दोपानुसार चिकित्साक्रम	"	अन्यप्रयोग	"
कुष्ठनाशक प्रयोग	"	अभ्यङ्गप्रयोग	"
कुष्ठ में स्थापनप्रयोग	७६३	घृतप्रयोग	७७२
कुष्ठ में अनुवासनप्रयोग	"	अन्यप्रयोग	"
कुष्ठ में नस्य प्रयोग	"	पदपलघृत	७७३
अन्यक्रम	"	महातिक्तघृत	"
रक्तमोक्षण विधि	"	महाखदिर घृत	७७४
पित्तकुष्ठ की चिकित्सा	७६४	क्रिमिनाशकप्रयोग	"
कुष्ठनाशक प्रयोग	७६५	अन्यप्रयोग	"
कुष्ठनाशक दूसरा प्रयोग	"	शिवत्रकुष्ठपर प्रयोग	७७५
कुष्ठनाशक अन्यप्रयोग	"	कुष्ठपर अन्यलेप	"
सुप्त कुष्ठनाशक प्रयोग	"	शिवत्रकुष्ठ के भेद	७७६
मध्वासव का प्रयोग	"	शिवत्र को असाध्यत्व	"
फनकविन्दु अरिष्ट	७६६	शिवत्रकुष्ठकी उत्पत्ति का हेतु	"
शिवत्रकुष्ठनाशकप्रयोग	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
कुष्ठपरपध्यापध्व	७६७	राजयक्ष्माचिकित्सितं नाम अष्टमोऽध्यायः	
कुष्ठपरलेप	"	राजयक्ष्मा के विषयमें प्राचीनइतिहास	७७७
दूसरालेप	"	चन्द्रमाकी क्षमा प्रार्थना	"
कुष्ठपर अन्यलेप	"	यक्ष्मा के पर्थ्यायवाची शब्द	"
कुष्ठपर अन्यप्रयोग	७६८	यक्ष्माके मनुष्यलोकमें आनेका कारण	७७८
सातप्रकारके कपायादियोग	७६९	यक्ष्मा के चारहेतु	"
कुष्ठपर अन्यप्रयोग	"	अथवा आरम्भका लक्षण	"
"	"	वेगसंधारणजन्य यक्ष्मा	"
फनेरका तैल	"	क्षयजन्य यक्ष्माका हेतु	७७९
अन्यप्रयोग	"	विषमासनसे उत्पन्न यक्ष्मा	७७९
अन्यतैल	"	राजयक्ष्मा के पूर्वरूप	७८०
फनकक्षीर तैल	७७०	राजयक्ष्मा में पुरीपरक्षा	७८०
सिध्मलेप	"		

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
रुद्ध स्रोतों से राजयक्ष्मा की उत्पत्ति	७८१	अवगाहनविधि	७९३
उक्त ग्यारह वा छः व्याधियोंके नाम	"	उद्धर्त्तनविधि	"
यक्ष्माका साध्यासाध्य विचार	"	पथ्यतम भोजन	७९४
प्रतिश्रयाय के लक्षण	"	यक्ष्मामे अन्यपथ्य	"
राजयक्ष्मा के विशेष लक्षण	७८२	यक्ष्मा में अन्य उपचार	"
राजयक्ष्मा में स्वरभंग	"	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"
यक्ष्मा में अन्य उपद्रव	"	अर्शसां चिकित्सितं नामनवमोऽध्यायः	
अरुचि की परीक्षा	७८३	अर्शके भेद	७९५
प्रतिश्रयायादि छः रोगों की चिकित्सा	"	अर्शका स्थान	"
अन्यप्रयोग	७८४	सहजअर्श की आकृति	७९६
अन्य संशयमनक्रिया	"	सहजअर्शरोगी के लक्षण	"
दोषाधिक्य में संशोधन विधि	७८५	उक्तउपद्रवों का कारण	७९७
स्नेहवर्णन	७८६	उत्तरकालजअर्श के लक्षण	"
लेह के चारप्रयोग	"	दोषपरत्व से अर्शका आकार	७९८
अन्यप्रयोग	"	वातप्रबल अर्श के लक्षण	"
दुरालभाद्यघृत	७८७	पित्तज अर्श के लक्षण	७९९
जीवन्त्यादि घृत	"	कफजअर्श के लक्षण	८००
घलाय घृत	"	द्वन्द्वजादि अर्श के लक्षण	"
यक्ष्मा में अन्यप्रयोग	"	अर्श के पूर्वरूप	"
अन्यप्रयोग	७८८	अर्श के नाम विशेषका कारण	८०१
मन्दग्न में कर्तव्य	"	अर्शको कष्टसाध्यत्व	"
अतिसारनाशक योग	"	असाध्य अर्श के लक्षण	८०२
अन्यप्रयोग	७८९	साध्यके लक्षण	"
वैरस्यनाशक प्रयोग	"	साध्य अर्श में कर्तव्य कर्म	"
कफ मधावनपांचप्रयोग	"	कर्मभ्रंश के उपद्रव	"
यवानीपाडव	७९०	शुष्क अर्शकी चिकित्सा	"
ताडीसपत्रादित्रटिका	"	दर्श में अन्य प्रयोग	८०३
यक्ष्मारोग में मांसवस्था	७९१	अर्शपर लेप	"
दोषपरत्व से यक्ष्मा में मांसविधान	"	अर्श में पेय औषध	८०४
यक्ष्मा में मद्य के गुण	७९२	अन्य प्रयोग	८०५
अन्यप्रयोग	"	अन्य प्रयोग	"
	"	तक्रारिष्ट	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
अर्शमें तकप्रयोग	८०६	अवगाहन प्रयोग	८१८
तक्र सेवनका क्रम	"	अर्शपर घृत	८१९
अर्शपर पेयाविधि	८०७	पिच्छावस्ति, सिद्धावस्ति	"
अर्शपर यथागू	"	अनुवासनवास्तिप्रयोग	८२०
अर्शपर पथ्याविधि	"	होत्रादि घृत	८२०
अर्शपर घृत के प्रयोग	८०८	अत्राकंगुष्पादि घृत	"
चन्व्यादि घृत	८०८	सेव्यासेव्यका संक्षिप्त वर्णन	८२१
नागरादि घृत	८०९	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
पिप्पल्यादि घृत	"	अतीसार चिकित्सितं नाम दशमो	
हरातकी प्रयोग	"	अध्यायः	
अर्शपर पथ्य	८१०	अतीसार की प्रागुत्पत्ति	८२२
अर्शपर मथाविधि	"	वातातिसार के हेतु	८२३
अनुवासनके योग्य मनुष्य	"	पित्तातिसार के रूपादि	८२३
अनुवासानिक तैल	"	कफातिसार के हेतुरूपादि	८२४
निरूहण प्रयोग	८११	त्रिदोषज अतिसार के हेत्वादि	८२५
हरातकारिष्ट	"	कृच्छ्रसाध्य के लक्षण	"
दन्वारिष्ट	८१२	असाध्य के लक्षण	८२६
फलारिष्ट	"	साध्यातिसारका चिकित्साक्रम	"
दुरालभारिष्ट	"	आगन्तु अतिसारके लक्षण	८२७
कनकारिष्ट	८१३	आगन्तु आतिसारमें चिकित्साक्रम	"
रक्तार्श की चिकित्सा	८१४	प्रमथ्या के प्रयोग	"
घातकफानुबन्धी रक्तार्शके लक्षण	"	अतीसारमें अन्नपानादि प्रयोग	८२८
रक्तार्श में चिकित्साक्रम	"	प्रवाहिका की चिकित्सा	८२९
रक्तसंप्राही औषध	८१५	चांगेरी घृत	"
कुटजादि क्वाथ	"	चन्व्यादि घृत	८३०
अन्यप्रयोग	८१६	पित्तातिसार की चिकित्सा	"
अर्शपर घृत प्रयोग	"	पित्तातिसार पर उःप्रयोग	८३१
रक्तार्शपर पेया	८१७	पिच्छावस्तिविधान	८३२
अन्य प्रयोग	"	रक्तातिसार पर अन्यप्रयोग	"
परिपेकादि प्रयोग	८१८	रक्तातिसार का वर्णन	८३३
		अन्य प्रयोग	"
		मुदपाद की चिकित्सा	८३४
		रक्तामिश्रित मलमें चिकित्सा	८३५

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
मद के अन्य अवगुण	८५९	द्विव्रणीयचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽ-	
युक्तिर्वाजित मद्यपान के दोष	८६०	ध्यायः ।	
युक्तिपूर्वक मद्यकेगुण	"	निजागन्तु व्रणों के लक्षण	८७४
प्रथम मदके गुण	"	आगन्तु व्रण के हेतु	
मद्यपानमें कर्तव्य	८६१	निजव्रणों का कारण	८७५
राजसादि प्रकृतिमद्यकेवर्णन	"	वातजव्रण के लक्षण	"
मद्यकेयोग्य साथी	८६२	वातजव्रणका चिकित्साक्रम	"
घातप्राय मदात्ययकी उत्पत्तिकाकारण	८६३	पित्तजव्रणके लक्षण और चिकित्सा	"
घातिक मदात्यय के लक्षण	"	कफजव्रण के लक्षणादि	"
पित्तज मदात्ययका वर्णन	"	दोनों व्रणों के भिन्न २ भेद	"
कफप्राय मदात्ययका वर्णन	"	व्रणके बीस भेद	८७६
मदात्यय के रूप	८६४	तीनप्रकारकी परीक्षा	"
मदात्यय में चिकित्साक्रम	"	वारहप्रकार के दूषित व्रण	"
मद्य के चार अनुरस	८६५	व्रणके अठस्थान	"
घातशमन में मद्यका प्रयोग	८६६	व्रणकी आठगन्ध	८७७
वातोत्थण मदात्यय में चिकित्सा	"	चौदहप्रकार के स्वाव	"
पित्त मदात्ययमें चिकित्सा	८६७	व्रण के सोलह उपद्रव	"
कफपित्त मदात्यय में चिकित्सा	८६८	व्रणशान्त न होने के कारण	"
पित्त मदात्यय में सेवनीय कर्म	"	व्रणोंका साध्यासाध्यात्व	"
मदात्ययजन्यदाह में कर्तव्यकर्म	८६९	व्रण में प्रथम कर्तव्य	८७८
कफ मद्य की तृपा के उपाय	८७०	छत्तीस प्रकारकी चिकित्सा	"
कफ मदात्ययमें अन्वप्रयोग	८७१	व्रणके पूर्वरूप में कर्तव्य	"
अन्य प्रयोग	"	शोफनाशकलेप	"
अन्य प्रयोग	"	शोफपर पुलाटिस	८७९
अन्य उपचार	"	विदग्ध शोथके लक्षण	"
मदात्यय में दूधके प्रयोग	८७२	पकाशोथ के लक्षण	"
ध्वंसक के लक्षण	८७३	पत्र शोथ के भेदनकर्तव्य	"
विट्क्षर के लक्षण	"	उःमकारके शस्त्रकर्म	"
उक्त रोगों की चिकित्सा	"	पाटन के योग्य शोथ	"
सध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"	व्यथन योग्यव्रण	८८०

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांक
छेदनीयव्रण	८८०	सान्निपातिक उन्मादके हेत्वादि	"
लेखन के योग्यरोग	"	आगन्तुउन्माद के हेत्वादि	"
प्रच्छन्नकेयोग्य रोग	"	भूतोन्माद के लक्षण	"
सीधन के योग्यव्रण	"	देवादि के शरीरमें प्रविष्टहोनेमेंदृष्टान्त	"
पीडन के योग्यव्रण	"	देवोन्मत्त के लक्षण	८८९
पीडनद्रव्य	"	अभिचारोन्माद के लक्षण	"
अन्यप्रयोग	"	पितृगणकृतउन्माद	"
अस्थिभग्न में प्रयोग	८८१	गन्धर्वोन्माद के लक्षण	"
वातप्रधान व्रणों में कर्म	"	यक्षोन्मादके लक्षण	"
व्रणों पर प्रयोग	८८२	राक्षसोन्माद के लक्षण	"
एषणीय व्रण	"	ब्रह्मराक्षसोन्मत्त के लक्षण	८९०
एषणा के भेद	"	पिशाचोन्मत्त के लक्षण	"
शोधनीयव्रण	"	देवादिकृतउन्मादकी विधि	"
शोधनद्रव्य	"	असाध्यउन्मादके लक्षण	८९१
रोषणीय व्रणों की चिकित्सा	८८३	मंत्रादिद्वारा चिकित्स्यरोगी	"
व्रणपर पथ्यविधि	८८४	वातजउन्माद में चिकित्साक्रम	८९२
अग्निर्कर्म के योग्यव्रण	"	कफपित्तोन्माद में चिकित्साक्रम	"
अग्निर्कर्म के अयोग्य व्याक्ति	"	वमन.दि का फल	"
अन्यप्रयोग	८८५	आचारविभ्रम में उपाय	"
व्रणपर बालजमने की विधि	"	स्मृतिवर्द्धक उपाय	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	८८६	आगन्तुकउन्माद में उपाय	"
उन्मादचिकित्सितं नामचतुर्थोऽध्यायः	"	उन्मादनाशकप्रयोग	८९३
उन्मादके हेतु	"	कल्याणकघृत	"
उन्मादके सामान्यलक्षण	"	महाकल्याणकघृत	"
उन्माद के सामान्यभेद	८८७	महापैशाचिकघृत	"
वातजउन्माद का हेतु	"	उशुनायघृत	८९४
वातजउन्माद के लक्षण	"	अन्यउशुनादिघृत	"
पित्तजउन्माद के हेतु	"	अन्यघृत	८९५
पित्तजउन्माद के लक्षण	"	पुरानेघी के गुण	"
कफजउन्माद के हेतु	"	नस्याञ्जन प्रयोग	"
कफजउन्माद के लक्षण	८८८		"

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
अन्य प्रयोग	८९६	महागद में चिकित्सा क्रम	९०६
"	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	९०६
"	"	क्षतक्षीण चिकित्सितनाम पोढशो-	
"	"	ऽध्यायः	
"	८९७	क्षतरोगका हेतु	"
उन्माद में फस्त	"	क्षीणरोग का हेतु	"
अन्य प्रयोग	"	क्षतक्षीणके लक्षण	९०७
अन्य प्रयोग	"	साध्यासाध्य लक्षण	"
उन्मादेक अधोग्य व्यक्ति	८९९	क्षत में चिकित्सा	"
उन्माद मुक्तके लक्षण	"	एलादिवटिका	९०८
अध्यायका उपसंहार	"	अमृतप्राश घृत	९०९
अपस्मार चिकित्सितनाम पञ्चदशो-		स्वदंष्ट्रादि घृत	९१०
ऽध्यायः		धात्र्यादि घृत	९११
अपस्मार की निराक्ति	"	सर्पिर्गुड	"
अपस्मारके कारण	"	दूसरा सर्पिर्गुड	९१२
अपस्मारके वेगका रूप	"	तीसरा सर्पिर्गुड	"
अपस्मारके भेद	९००	चतुर्थ सर्पिर्गुड	"
घातज अपस्मार के लक्षण	"	वर्षाप्रसक्त की चिकित्सा	९१३
पैक्षिक अपस्मारके लक्षण	"	सैन्धवादि चूर्ण	९१४
श्लेष्मिक अपस्मारके लक्षण	"	पादव चूर्ण	"
साग्निपातिकअपस्मार के लक्षण	"	वर्द्धमान नागबलाका प्रयोग	"
शसाध्य अपस्मार	"	क्षतक्षीण में विशेषदृष्टव्य	९१५
अपस्मारके वेगोंका काळ	९०१	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"
अपस्मार के चिकित्सा क्रम	"	इष्यधुचिकित्सितनाम सप्तदशोऽध्यायः	
पंचगव्य घृत	"	निजशोधके कारण	९१६
महापंचगव्य घृत	"	आगन्तुक के लक्षण	"
अन्य प्रकारके घृत	९०२	शोफके भेद	"
अन्यप्रयोग	"	यातिक शोध का हेतु	"
अन्यप्रयोग	९०३	नामपरत्व से शोषों के भेद	"
महागद की उत्पत्ति	९०६	शोक के सामान्य लक्षण	९१७

विषय .	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
घाताधिक्यशोफ के लक्षण	११७	चिप्प शोफ के लक्षण	१२८
पित्ताधिक्य शोफके लक्षण	"	विदारिका के लक्षण	"
कफाधिक्य शोफ के लक्षण	"	विस्फोटक शोफ के लक्षण	"
असाध्य शोफके लक्षण	"	कक्षाके लक्षण	"
साध्यशोफ के लक्षण .	"	मसूरकादि के लक्षण	"
चिकित्साक्रम	११८	अंत्रशुद्धि आदि के लक्षण	१२९
सूजन में त्याग के योग्यपदार्थ	"	भगन्दर का वर्णन	"
कफजशोफपर प्रयोग	"	श्लीपद का वर्णन	"
वातजशोफ में प्रयोग	११९	जालगर्दभ शोधका वर्णन	"
कण्डारिचरिष्ट	१२०	भागन्तु शोफ का वर्णन	१३०
अष्टशत अरिष्ट	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
पुनर्नवाचरिष्ट	"	उदरचिकित्सितं नाम अष्टादशोऽध्यायः	
त्रिलफारिष्ट-	१२१	अग्निवेशका प्रण	"
पिप्पल्यादि चूर्ण	"	उदर विषयमें आत्रेयकावाक्य	१३१
क्षारादि वटिका	"	उदर रोग के हेतु	"
अन्य प्रयोग	१२२	उदर रोग के पूर्वरूप	"
हरितक्यादि प्रयोग	"	उदररोग की साधारण उत्पत्ति	१३२
पटोलादि घृत	१२३	उदररोग के साधारण लक्षण	"
चित्रकादि घृत	"	उदररोगों की संख्या	"
चित्रकोथित घृत	१२४	घातके कारण उदर रोग	"
शोधपर यवागू	"	वायुजन्य उदररोग के लक्षण	"
शैलेय तैल	१२५	पित्तोदर का कारण	१३३
पित्तज शोफ पर तैलादि	"	पित्तोदर के लक्षण	"
कफज शोफ पर तैलादि	"	कफोदर के हेतु	"
अन्य शोफों के नाम	१२६	कफोदर के लक्षण	१३४
गलगंड शोफ	"	साम्निपातिक उदररोग के हेतु	"
शोफों में चिकित्सा क्रम	१२७	साम्निपातिक उदर रोग के लक्षण	"
अन्य ग्रन्थियों का वर्णन	"	श्रीहोदर के कारण	"
वर्जनीय ग्रन्थि	"	श्रीहोदर कीशुद्धि	"
अलर्जी के लक्षण	१२८	श्रीहोदर के लक्षण	१३५

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
यक्ष्मादर के हेतु	९३५	उदरपरलेपनादि प्रयोग	९४३
यक्ष्मादर के लक्षण	"	पिप्पल्यादिघृत	"
छिद्रोदर के हेतु	९३६	नागरादिघृत	९४४
छिद्रोदर के लक्षण	"	चित्रकघृत	"
जलोदर के हेतु	"	यवादिघृत	"
जलोदर के लक्षण	"	पटोलादि चूर्ण	"
चिकित्सा के योग्य उदर रोग	९३६	गवाक्ष्यादिचूर्ण	९४५
जलोत्पत्तिक्रम	९३७	नाराच चूर्ण	"
जलोदरमें उपद्रव	"	ह्रुपादि चूर्ण	"
उदररोगों की कृच्छ्रता	"	नीलन्यादि चूर्ण	"
उदर रोगोंसे नष्ट होने का फाल	"	सेण्डु के दूध का घी	"
त्याग्यात्याग्य उदररोग	"	स्तुहीक्षीर का अनुपान	"
अजातोदक उदर के लक्षण	९३८	अन्यप्रयोग	९४७
वातोदर में चिकित्साक्रम	"	आजकरीप का प्रयोग	९४८
विरेचन के अयोग्य व्यक्ति	९३९	उदररोग में भोजन	"
पित्तोदर में चिकित्साक्रम	"	त्रिदोषज उदर में कर्त्तव्य	९४९
कफोदर में चिकित्साक्रम	९४०	उदररोग में सर्वाविप्रयोग	९५०
सन्निपातोदर में चिकित्साक्रम	"	उदररोग में शस्त्रकर्म	"
प्लीहोदर में चिकित्सा क्रम	"	जातोदकउदर में शस्त्रकर्म	९५१
उदररोग में कर्त्तव्यकर्म	"	अभ्यायका संक्षिप्तवर्णन	"
उदररोग में प्रयोग	"	ग्रहणीरोग चिकित्स्मितेनामएकौन	
रोहीतकघृत	९४१	विशोऽध्यायः	
अन्यप्रयोग	"	अग्नि को मूलत्व	९५२
यक्ष्मादर में चिकित्सा	"	अग्नि की प्रधानता का कारण	"
छिद्रोदर में कर्त्तव्य कर्म	"	अन्न से रसादि की विधि	"
जलोदर में चिकित्सा	९४२	भोजन से दोष की उत्पत्ति	९५३
उदररोगों में साधारण विधि	"	इष्ट अन्न के गुण	"
उदर में वार्जित कर्म	"	पंचभूतात्मक आहारके गुण	"
उदरमेंतक्रप्रयोग	"	रससे रक्तादि की उत्पात्ति	"
उदर में दुग्धप्रयोग	९४३	अग्निवेशका प्रदन	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
रससे रक्तवने का कारण	९५४	अन्यत्रयोग	९६२
मांस और भेद की रीति	"	मरिचादि चूर्ण	९६३
अस्थि की विधि	"	यवागू विधि	"
मज्जा की उत्पत्ति	"	भोजनादि विधि	"
शुक्रकी उत्पत्ति	९५५	तक्रके गुण	९६४
धीर्य के निकलने की रीति	"	तक्रारिष्ट	"
पृथक् २ मलोंका वर्णन	"	चन्दनादि घृत	"
जठराग्नि की उत्कृष्टता	९५६	नागराय चर्ण	९६५
ग्रहणी दोषों का कारण	"	भूनिम्बाद्य चूर्ण	"
अग्नि के दूषितहोने का कारण	"	यचाद्य चूर्ण	"
अजीर्ण धन्न के लक्षण	"	किण्ठतित्क्ताद्य चूर्ण	९६६
भिन्नदोषों से संसृष्ट विपन्न	"	अन्य चूर्ण	"
भिन्नजठराग्नि के कर्म	९५७	अनुपानादि वर्णन	"
ग्रहणी रोग के लक्षण	"	मध्वासव	"
ग्रहणी रोग के लक्षण	"	दूसरा मध्वासव	९६७
ग्रहणीरोग के पूर्वरूप	"	दुरालभासव	९६७
ग्रहणी का विशेषवर्णन	"	मूलासव	"
ग्रहणी रोग के भेद	९५८	पिण्डासव	९६८
वातिक ग्रहणी के हेतु	"	मध्वारिष्ट	"
वातिक ग्रहणी के लक्षण	"	पीपलामूलादि प्रयोग	९६९
पैत्तिक ग्रहणी का हेतु	"	क्षारघृत	"
पैत्तिकग्रहणी के लक्षण	९५९	पिप्पलीमूलादि क्षार	"
श्लेष्मिक ग्रहणी का हेतु	"	मल्लतकादि क्षार	"
श्लेष्मिक ग्रहणीरोग के लक्षण	"	दुरालभादि क्षार	९७०
ग्रहणी की चिकित्सा	"	भूनिम्बादि क्षार	"
द्विपंचमूल्यादिघृत	९६०	हरिद्रादि क्षार	"
त्र्यूपणादिघृत	९६१	क्षार वटिका	"
पंचमूलादि घृत और चूर्ण	"	वत्सकादि क्षार	"
मल परीक्षा	"	त्रिफलादि क्षार	९७१
चित्रकादि चूर्ण	९६२	ग्रहणी दोष में अन्य नियम	"

विषय	प्रष्ठांकः	विषय	पृष्ठाङ्कः
ग्रहणी दोष में आचरिथकी क्रिया	९७२	द्राक्षा घृत	९८२
अत्यग्निके उपद्रवादि	९७३	हरिद्रादि घृत	"
अत्यग्नि की शान्ति का उपाय	९७४	पाण्डुरोग में प्रयोग	"
अत्यग्नि में भोजनादि क्रम	"	कामला रोग में अन्यप्रयोग	९८३
समशन के लक्षण	९७५	"	"
विषम भोजन के लक्षण	"	"	"
अध्यशनके लक्षण	"	"	९८४
दिनके भोजन का वर्णन	"	नवायसचूर्ण	"
रात्रिके भोजन का वर्णन	९७६	मंझूर वटिका	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	ताप्यादि चूर्ण	९८५
पाण्डुरोगचिकित्सितं नामार्थिशोऽध्यायः		योगराज वटिका	"
पाण्डुरोग के भेद	९७७	शिलाजतुवटिका	"
पाण्डुरोग की उत्पत्ति	"	पुर्ननवादि प्रयोग	९८६
पाण्डुरोग के हेतु	"	अवलेह प्रयोग	"
पाण्डुरोग का पूर्वरूप	९७८	घात्र्याबलेह	९८७
पाण्डुरोग के साधारण लक्षण	"	मंझूर गुटिका	"
वातजपाण्डुरोग के लक्षण	"	गुडारिष्ट	"
पित्तज पाण्डुरोग के लक्षण	"	अन्य भरिष्ट	"
कफज पाण्डुरोग के लक्षण	९७९	घात्र्यारिष्ट	९८८
साग्निपातिक पाण्डुरोग के लक्षण	"	मृतिका भक्षणमें उपाय	"
मृदुलक्षणजन्य पाण्डुरोग	"	मृतिका दोषपरघृत	"
असाध्य पाण्डुरोग के लक्षण	९८०	अन्य उपाय	९८९
कामलारोग के लक्षण	"	शाखाश्रित कामलाके लक्षण	"
कुम्भशामला के लक्षण	"	पाण्डुरोग में अन्य उपचार	"
पाण्डुरोग में चिकित्सा विधान	९८१	हर्लीमक के लक्षण	९९०
स्नेहन घृत	"	हर्लीमक में चिकित्सा	"
दाडिमाघ घृत	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
कटुकाय घृत	"	द्विकोशवाचिकित्सितं नाम एक	
पप्या घृत	"	विशोऽध्यायः	
दन्त्याघ घृत	९८२	अग्निवेश का प्रश्न	९९१
		आत्रेय का उत्तर	९९१

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
हिक्काश्वास का स्थानादि विवर्ण	९९१	कफकी अधिकता में अन्यप्रयोग	१००२
हिक्काश्वासके भेद	"	तमकश्वास में अन्यप्रयोग	१००३
हिक्काश्वास की उत्पत्तिके साधारणहेतु	९९२	मुक्तादि चूर्ण	"
हिक्का के पूर्वरूप	"	अन्यप्रयोग	"
श्वास के पूर्वरूप	"	अन्यप्रयोग	१००४
महाहिक्का के लक्षण	९९३	उक्तरोगों में घृतविधान	"
गन्भीरा हिक्का के लक्षण	"	दशमूलादि घृत	"
व्यपेता हिक्का	"	तेजोवत्यादि घृत	"
क्षुद्रा हिक्का	९९४	अन्यप्रयोग	१००५
अन्नजा हिक्का का लक्षण	"	उक्तरोगों में संशमन द्रव्योंका विधान	"
हिक्का का साध्यासाध्य वर्णन	"	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"
श्वासकी उत्पत्ति	९९५	कासचिकित्सितं नामद्वाविंशोऽध्यायः	
महाश्वास का लक्षण	"	कास के भेद	१००६
उर्ध्वश्वास का लक्षण	"	खांसी के पूर्वरूप	"
छिन्नश्वास के लक्षण	"	कासका लक्षण	"
तमकश्वास के लक्षण	९९६	कास में विषमशब्द का हेतु	"
प्रसक्तश्वास के लक्षण	९९७	वातजकास निदान	"
सन्तमकश्वास के लक्षण	"	वातजखांसी के लक्षण	"
क्षुद्रश्वास के लक्षण	"	पित्तजकासका निदान	१००७
हिक्का और श्वास में चिकित्सा	९९८	पित्तजकासके लक्षण	"
स्वेदनोत्तर भोजनादिक्रम	"	कफजकासके हेतु	"
अन्यधूमपान	"	कफज कास के लक्षण	"
अस्त्रेय रोगी	९९९	क्षतजकासका हेतु	"
भिन्न २ अवस्थाओं में चिकित्सा	"	क्षतजकासके लक्षण	१००८
बमनका निषेध	१०००	क्षतजकासका हेतु	"
हिक्का और श्वास में यूप	"	क्षतजकासके लक्षण	"
उक्तरोगोंपर यवामू	१००१	कासका साध्यासाध्य वर्णन	"
उक्तरोगोंपर अन्यप्रयोग	"	वातजकास में चिकित्साक्रम	१००९
"	१००२	कंटकारी घृत	"
अन्यप्रयोग	"	पिप्पल्यादि घृत	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
त्र्यूपणाद्यघृत	१००२	क्षतजकासमें विरेचन	१०११
रास्नाद्यघृत	१०१०	दशमूलादि घृत	"
विडंगादि चूर्ण	"	गुडूच्यादि घृत	१०२२
क्षारादिचूर्ण	"	कासमर्दादि घृत	"
हृन्नालभादिप्रयोग	१०११	धान्रीफलादि घृत	"
चित्रकादि घृत	"	हरीतक्यावलेह	"
अमस्योक्तरसायन	"	अन्य अवलेह	१०२३
अन्यप्रयोग	१०१२	पद्मकाद्यलेह	"
धूमपान विधि	"	जीवन्त्याद्यलेह	"
धूमपान का प्रयोग और गुण	"	अन्य प्रयोग	१०२४
धूमपान के अन्य प्रयोग	१०१३	अन्य यूपादि प्रयोग	"
यूपादि प्रयोग	"	अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन	१०२५
पित्तजकासमें चिकित्साक्रम	१०१४	छर्दिचिकित्सतंनामत्रयोविंशोऽध्यायः	
पांचअवलेह	"	छर्दि के भेद	"
पित्तकास में अन्य प्रयोग	१०१५	वमन के पूर्वरूप	"
अन्य प्रयोग	"	वातजवमन का निदान	१०२६
अन्य यूपादि प्रयोग	"	वातजवमन के लक्षण	"
शिधरादि दूधवाघृत	१०१६	पित्तजवमनका निदान	"
कफजकास में चिकित्साक्रम	"	पित्तजवमन के लक्षण	"
कफजकास में पेयद्रव्य	१०१७	कफजवमनका निदान	"
अन्यप्रयोग	"	कफजवमन का लक्षण	"
कफजकासनाशक चारप्रयोग	"	सन्निपातजवमन का निदान	१०२७
दशमूलादि घृत	१०१८	सन्निपातजवमन का लक्षण	"
कण्टकारी घृत	"	प्राणनाशक वमन के लक्षण	"
कुल्ल्यादिघृत	"	द्विष्टार्थ संयोगज वमन के लक्षण	"
कफजकासमें अन्य विधि	१११९	असाध्यवमन के लक्षण	"
क्षतजकासमें चिकित्साक्रम	"	वमनचिकित्सा का क्रम	"
पिप्पल्यादि अवलेह	"	कफपित्तनाशक वमनविरेचन	१०२८
धूमपानके द्रव्य	१०२०	वातजवमन का चिकित्सा	"
क्षतजकास में चिकित्साक्रम	१०२१	पित्तजवमन में चिकित्सा	"
		कफकोवमन में चिकित्सा	१०२९
		सान्निपातिकवमन में चिकित्सा	१०३०

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
दृष्टसंयोगज यमन में उपाय	१०३०	विपकी त्रिदोषानुगामित्व	१०४२
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१०३१	विपसेमरनेके हेतु	"
तृष्णाचिकित्सितनाम चतुर्विंशोऽध्यायः		विपद्वारा मृत्यु लक्षण	"
तृषारोगका हेतु	१०३२	विपमें चिकित्साभेद	"
तृषाका प्राग्रूप	"	विपमन्वन्धनादिविधि	१०४३
तृषाके लक्षण	"	विपद्रूपित रक्तकापरिणाम	"
घातजतृषाका हेतु	१०३३	घर्षण प्रयोग	"
घातजतृषाका लक्षण	"	विपकेकैलनेमें रक्तकी प्रधानता	"
पित्तजतृषाका हेतु	"	विपवेग लक्षण	१०४४
पित्तजतृषाके लक्षण	"	प्रथमद्वितीय वेगोंमें चिकित्सा	"
फफजतृषा	"	तृतीयादि वेगोंमें चिकित्सा	"
अग्नि और पत्रनकी तृषाका कारणत्व	१०३४	मृतसंजीवनी घटिका	१०४५
तृषा के अन्य कारण	"	अगद गन्धहस्ती	१०४७
तृषारोग में चिकित्सा	"	महागन्ध हस्ती	"
शीतोष्णजलकी विधि	१०३८	विपरोगनाशक अन्यप्रयोग	१०४९
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१०३९	क्षारागद	१०५०
विपचिकित्सितनाम पंचविंशोऽध्यायः		विपदाता प्रेष्य की परीक्षा	१०५१
विपकी उत्पत्ति	"	अग्निद्वारा अन्नकी परीक्षा	"
विपकीयोन्म्यादि संख्या	"	पात्रस्थ भोजन की परीक्षा	"
जंगमविपकीयोनि	१०४०	विपयुक्त पेयकी परीक्षा	"
स्थावरविपका वर्णन	"	विपयुक्त अन्नपान सेवन का फल	"
गरविपका वर्णन	"	सर्पों के भेदादि वर्णन	१०५३
जंगमविपकाकार्य	"	सर्पों की परीक्षा	"
स्थावरविपके कर्म	"	उक्त सर्पों के विपके गुण	"
दोनोंत्रियों का परस्पर विरोध	"	दर्वाकर के दंशका लक्षण	"
सातों वेगोंके कर्म	"	मंडली के दंशका लक्षण	"
चौपापोंके वेगका वर्णन	१०४१	राजिमान के दंशका लक्षण	"
पक्षियोंके विपवेग	"	सर्पों के लिङ्ग भेद	"
विपके दशगुण	"	गर्भिन्यादि सर्पिणी के लक्षण	१०५४
ऊपरकहे द्रव्ये गुणोंके कर्म	"		

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
गोहृदयका लक्षण	१०५४	वातिक विष में चिकित्सा	१०५८
भयंकर दंशके लक्षण	"	पैतिक विष में चिकित्सा	"
अवस्थानुसार दंशके लक्षण	"	श्लैष्मिक विष में चिकित्सा	"
सर्पके दाँतों का वर्णन	१०५५	शीतक्रियोपयोगी विष	१०५९
दाँतों में विष का प्रमाण	"	बाँझूके विष में चिकित्सा	"
दंशका वर्णन	"	उच्चिर्दिग विष में चिकित्सा	"
कीटों का वर्णन	"	त्रिदोषज विषके लक्षण	"
दूयी विषके लक्षण	"	अन्य सर्पोंके लक्षण	"
प्राणहर दंष्ट्र के लक्षण	"	सविष शरीरके लक्षण	"
दूयीविषके दंशके लक्षण	"	विषरोग में चिकित्सा	"
मकड़ी के दंशलक्षण	"	सर्व शोधनाशक योग	१०६०
छतादष्ट मनुष्यके लक्षण	१०५६	अन्य प्रयोग	१०६१
चूहेके दंश और विषके लक्षण	"	छ्नात्रिष की चिकित्सा	"
किरकैटाके दंशके लक्षण	"	मकड़ी विष की अन्य चिकित्सा	१०६२
धींझूके दंशके लक्षण	"	किरकिट विषकी चिकित्सा	"
कणभके लक्षण	"	वृश्चिक विषकी चिकित्सा	"
उच्चिर्दिगके दंशके लक्षण	"	मंडूक विषकी चिकित्सा	"
मंडूकदंशके लक्षण	"	मत्स्य विषकी चिकित्सा	"
मन्थदंशके लक्षण	१०५७	जोक विष की चिकित्सा	१०६३
जोकदंशके लक्षण	"	विश्वम्भरादि विषकी चिकित्सा	"
गडगौडिकाके दंशके लक्षण	"	कांतर विषकी चिकित्सा	"
शतपदीके लक्षण	"	छपकली विषकी चिकित्सा	"
मशकदंशके लक्षण	"	दन्त और नख में चिकित्सा	"
मक्षिका दंशके लक्षण	"	शंकात्रिष में उपाय	१०५४
मन्दविष सर्पके लक्षण	"	विषरोग में पथ्यविधान	"
विषको सर्व देहाश्रितत्व	१०५८	विष में वर्जितकर्म	"
अन्यविषाक्त कीड़ों की प्रकृति	"	चतुष्पददष्ट के लक्षण	"
वातिक विषके लक्षण	"	चतुष्पददष्ट में उपाय	१०६५
पैतिक विषके लक्षण	"	गरविष के लक्षण	"
श्लैष्मिक विषके लक्षण	"	गरविषके अन्य लक्षण	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
गरविष में वैद्यका कर्त्तव्य	१०६५	पित्तजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा	१०७४
अन्यप्रयोग	१०६६	कफजमूत्रकृच्छ्र में ,,	१०७५
अमृतघृत	”	सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा.....”	”
अध्यायका उपसंहार	”	अश्मरी में चिकित्सा	”
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१०६७	अन्यप्रयोग	१०७६
त्रिमर्मीयचिकित्सितं नाम षड्विंशो- ऽध्यायः ।		रेतोधिघातकृच्छ्र में चिकित्सा	१०७७
मर्मसंख्या	”	रक्तोद्भवमूत्रकृच्छ्र में उपाय	”
कुपितवात के कर्म	”	मूत्रकृच्छ्र में वर्जित कर्म	१०७८
उदावर्त्तजन्यरोग	१०६८	हृद्दोग की उत्पत्तिका कारण	”
वातजरागों में चिकित्सा	”	हृद्दोग के उपद्रव	”
उदावर्त्त में वार्त्तविधि	”	वातजहृद्दोग के विशेष लक्षण	”
अन्यप्रयोग	१०६९	पित्तजहृद्दोग के लक्षण	”
निरूहणवर्त्त विधान	”	कफजहृद्दोग के लक्षण	”
अन्यकर्त्तव्य कर्म	”	सान्निपातिकहृद्दोग के लक्षण	”
अण्डी के तेलकी मात्राका प्रमाण १०७०	”	वातजहृद्दोग में चिकित्सा	”
विरचन के पश्चात्कर्म	”	त्र्यूपणादिवृत	१०७९
उदावर्त्त में चिकित्साकेप्रयोग	”	पित्तजहृद्दोग में चिकित्सा	१०८०
मूत्रकृच्छ्रका निदान	१०७१	कफजहृद्दोग की चिकित्सा	”
कृच्छ्रतासे प्रत्यावकाकारण....	”	सान्निपातिकहृद्दोग में चिकित्सा	१०८१
वातजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण	”	कृमिजन्यहृद्दोग ,,	”
पित्तजमूत्र कृच्छ्रकेलक्षण	१०७२	पीनसरोग का निदान	१०८२
कफजमूत्रकृच्छ्रकेलक्षण	”	वातजपीनस के लक्षण	”
सान्निपातजमूत्रकृच्छ्रकेलक्षण	”	पित्तजपीनस के लक्षण	”
अश्मरीनिदान	”	कफजपीनसके लक्षण	”
अश्मरी की आकृति	”	सान्निपातिकपीनस के लक्षण	”
अश्मरी के कर्म	”	प्रतिश्याय के दूषितहोनेकाकारण	”
शर्करालक्षण	”	दूषित प्रतिश्यायके लक्षण	”
अन्यअश्मरीकाकारण	१०७३	छींकका कारण	१०८३
वातजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा	”	शोष का कारण	”
		प्रतीनाहके लक्षण	”

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
स्त्रावका लक्षण	१०८३	पित्तजपीनस में चिकित्सा	१०८८
अपीनस का लक्षण	"	कफजपीनस में चिकित्सा	"
पूतिनासाके लक्षण	"	नस्यादिप्रयोग	"
घ्राणपाक के लक्षण	"	शिरोरोग में चिकित्सा	१०८९
नासाशोथ का हेतु	"	वातापित्तज शिरोरोग में उपाय	"
अर्बुदका कारण	"	मायूर घृत	१०९०
पूयरक्तका कारण	१०८४	महामायूर घृत	"
अरुः का कारण	"	पित्तजशिरोरोगमें चिकित्सा	१०९१
शिरोरोग का निदान	"	कफजशिरो रोग की चिकित्सा	"
वातजमुखरोग का लक्षण	"	उक्त रोगों की चिकित्सा	१०९१
पित्तजमुखरोग का लक्षण	"	मुखरोग चिकित्सा	१०९२
कफजमुखरोग का लक्षण	"	मुखरोग में कवलप्रह	"
साम्निपातिकमुखरोग के लक्षण	"	दन्तमंजन	"
मुखरोग के अन्य भेद	"	कण्ठरोगकी चिकित्सा	"
अरुचिके भेद	१०८५	पीतक चूर्ण	१०९३
घातप्रभरुचिके लक्षण	"	मृद्रीकादि चूर्ण	"
पित्तजअरुचिके लक्षण	"	खदिरादि बटिका	१०९४
कफजअरुचिके लक्षण	"	अरोचक चिकित्सा	"
शोकादिजन्यअरुचिके लक्षण	"	कवलप्रह के चार प्रयोग	१०९५
वातजकर्णरोग के लक्षण	"	वातजस्वर भेद की चिकित्सा	"
पित्तजकर्णरोग के लक्षण	"	पित्तजस्वरभेद की चिकित्सा	"
कफजकर्णरोग के लक्षण	"	कफजस्वर भेद की चिकित्सा	"
साम्निपातिक कर्णरोग के लक्षण	१०८६	रक्तजस्वरभेद की चिकित्सा	१०९६
वातजनेत्ररोग का लक्षण	"	साम्निपातजस्वरभेद की चिकित्सा	"
पित्तज नेत्ररोग का लक्षण	"	कर्णरोग में चिकित्सा विधि	"
कफजनेत्ररोग के लक्षण	"	कर्णपूरण प्रयोग	"
साम्निपातिक नेत्ररोगके लक्षण	"	झार तैल	"
खाडित्यनिदान	"	नेत्र रोग में चिकित्साक्रम	१०९७
वातजपीनस में चिकित्सा	"	दोपानुसार नेत्रचिकित्सा	"
तैलप्रयोग	१०८७	नेत्ररोग में वार्तिक्रिया	१०९८

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
सर्वदोषनाशिनी वर्ती	१०९८	समानवायु के स्थान और कर्म	१११०
दूसरा प्रयोग	"	व्यानवायु के स्थान और कर्म	"
अन्य प्रयोग	१०९९	अपानवायु के स्थान और कर्म	"
दृष्टिप्रदा वर्ती	११००	विमार्गस्थ पंच वायु के कर्म	"
अन्य अंजन	"	सर्वाङ्गादि व्याधियों का हेतु	११११
खालिस्य चिकित्सा	११०१	वायु के रूपादि	"
महामालाह्य घृत	"	न्यक्तवायु के लक्षण	"
अप्याय का उपसंहार	११०२	फोष्ठाश्रित वायु के कर्म	१११२
ऊरुस्तम्भचिकित्सतनामसप्तविंशोऽध्यायः ।		सर्वाङ्गगत वायु के कर्म	"
ऊरुस्तम्भ का हेतु	११०४	गुदस्थ वायु के कर्म	"
ऊरुस्तम्भ की उत्पत्ति	"	आमाशयस्थ वायु के कर्म	"
ऊरुस्तम्भके लक्षण	"	पक्वाशयस्थ वायु के कर्म	"
ऊरुस्तम्भ का पूर्वरूप	११०५	त्वक्स्थवायु के कर्म	"
साध्यासाध्यऊरुस्तम्भ का लक्षण	"	रक्तगत वायु के कर्म	"
ऊरुस्तम्भ में अकर्तव्य कर्म	"	मांसमेदोगत वायु के कर्म	"
अकर्तव्य कर्मोंका हेतु	"	गज्जास्थिगत वायु के कर्म	१११३
ऊरुस्तम्भ में चिकित्सा विधि	११०६	शुक्रस्थ वायु के कर्म	"
ऊरुस्तम्भ में अन्य औषध	"	स्नायुगत वायु के कर्म	"
ऊरुस्तम्भ में चिकित्सा	"	शिरागत वायु के कर्म	"
ऊरुस्तम्भ पर पांचप्रयोग	"	सन्धिगत वायु के कर्म	"
ऊरुस्तम्भके उपद्रवों की चिकित्सा	११०७	अर्द्धाङ्गगत वायु के कर्म	"
ऊरुस्तम्भपर लेप	११०८	मन्याश्रित वायु के लक्षण	१११४
अन्यलेप	"	अन्तरायाय के लक्षण	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	११०९	पृष्ठमन्याश्रित वायु के लक्षण	"
वातव्याधिचिकित्सतनामअष्टाविंशोऽध्यायः ।		वाहिरायाम के लक्षण	"
वायु की उत्कृष्टता	"	हनुग्रहके लक्षण	"
वायुके भेद	"	आक्षेपकके लक्षण	१११५
प्राणवायु के स्थान और कर्म	१११०	दंडापतानक के लक्षण	"
उदानवायु के स्थान और कर्म	"	अर्दितरोग के लक्षण	"

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
पक्षाघात के लक्षण	१११५	वृषमूलादि तैल	११२७
गृध्रसी के लक्षण	"	रास्ना तैल	"
खल्ली का लक्षण	"	तैलकी उत्कृष्टता	११२८
पित्तावृतवायुमार्ग के लक्षण	१११६	पित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा	"
कफावृतवायुमार्ग के लक्षण	"	कफावृत वायुमार्ग में चिकित्सा	११२९
रक्तावृतवायु के लक्षण	"	कफापित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा	"
मांसावृतवायुके लक्षण	"	शिरोगत वात में चिकित्सा	"
मेदसावृतवायु के लक्षण	"	उरःस्थवात में चिकित्सा	"
हृद्दी से आवृतवायु के लक्षण	१११७	रक्तावृतवात में चिकित्सा	"
मज्जावृत वायु के लक्षण	"	आल्यवात में चिकित्सा	"
शुक्रावृतवायु के लक्षण	"	मांसावृतवात में चिकित्सा	"
अनावृत वायु के लक्षण	"	अन्नावृतवात में चिकित्सा	११३०
मूत्रावृतवायु के लक्षण	"	मूत्रस्थवात में चिकित्सा	"
बर्चोवृतवायु के लक्षण	"	पुरीषस्थवात में चिकित्सा	"
साध्यासाध्य वातरोगों के नाम	"	स्वस्थानस्थदोष की चिकित्सा	"
वातरोग में चिकित्सा क्रम	१११८	पंचवायु का परस्पर आवरण	"
अर्दितरोग में चिकित्सा	११२०	प्राणावृत व्यानवायु के लक्षण	"
पक्षाघात में चिकित्सा	"	व्यानावृत प्राणवायुके लक्षण	"
प्रधूसी में चिकित्सा	"	प्राणावृत समानवायुके लक्षण	११३१
हनुरोग में चिकित्सा	"	समानावृत प्राणवायुके लक्षण	"
वातरोग में चिकित्सा	"	प्राणावृत उदानवायुके लक्षण	"
वातरोग में बृंहण द्रव्य	११२१	उदानावृत प्राणवायु के लक्षण	"
उपनाह प्रयोग	"	प्राणावृत अपानवायुके लक्षण	"
चित्रकादि घृत	११२२	अपानावृत प्राणवायु के लक्षण	"
निर्गुडीतैल	११२३	व्यानावृत अपानवायुके लक्षण	"
बला तैल	११२५	आपाना वृत व्यानके लक्षण	"
उक्त तैलके गुण	"	समानावृत व्यानवायुके लक्षण	११३२
अमृतादि तैल	११२६	उदानावृत व्यानवायुके लक्षण	"
रास्नातैल	"	उदानादिवायु में चिकित्सा क्रम	"
मूलादि तैल	"		

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
प्राणवायु में कर्तव्य	११३३	पित्ताधिक वातरक्तके लक्षण	११३९
पित्तावृत प्राणवायुके लक्षण	"	कफाधिक वातरक्तके लक्षण	"
कफावृत प्राणवायुके लक्षण	"	संसृष्टवातरक्तके लक्षण	"
पित्तावृत उदानके लक्षण	"	वातरक्तको साध्यामाध्यत्व	"
कफावृत उदानके लक्षण	"	सोपद्रव वातरक्तके लक्षण	"
पित्तावृत समानवायुके लक्षण	"	सुचिकित्तय वातरक्तके लक्षण	"
कफावृत समानवायुके लक्षण	"	वायुमकोपमें चिकित्साक्रम	११४०
पित्तावृत व्यानके लक्षण	"	वातरक्तमें चिकित्साक्रम	"
कफावृत व्यानके लक्षण	"	वाह्य वातरक्तमें कर्म	"
पित्तावृत अपानके लक्षण	११३४	गम्भीर वातरक्त में कर्त्तव्यकर्म	"
कफावृत अपानके लक्षण	"	घातोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा	११४१
कफापित्तावृत के लक्षण	"	कफोत्तरवातरक्तमें चिकित्सा	"
प्राणोदानवायु को गुरुता	"	कफवातोत्तर वातरक्तमें चिकित्सा	"
उपेक्षितवायुके उपद्रव	"	रक्तपित्तोत्तर वातरक्तमें चिकित्सा	"
वैद्योको उपदेश	"	वातरक्तमें वर्जितकर्म	"
आवृतवायु में चिकित्सा	११३५	वातरक्तमें सेवनीयद्रव्य	"
अपानावृत प्राणवायु में चिकित्सा	"	श्रावण्यादि घृत	११४२
पित्त और कफावृत वायु की चिकित्सा	"	बलादि घृत	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	तामलक्यादि घृत	"
वातशोणित चिकित्सितनाम एकोन- त्रिंशोऽध्यायः		पारूपक घृत	"
वातरक्तके हेतु	११३६	द्विपंचमूलादि घृत	"
वातरक्तके स्थान	११३७	द्राक्षादि घृत	११४३
वातरक्तके पूर्वरूप	"	गुड्यादि घृत	"
वातरक्तके भेद	"	जीर्वाकादि घृत	"
उत्तानवातरक्तके लक्षण	११३८	अन्यप्रयोग	११४४
गम्भीरवात रक्त के लक्षण	"	यण्ठ्यादि तैल	११४५
उभयाश्रितवात रक्त के लक्षण	"	सुकुमारक तैल	११४६
वाताधिक वातरक्त के लक्षण	"	अमृताह्वय तैल	"
रक्ताधिकवातरक्त के लक्षण	"	महापशतैल	११४७

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
खुड्काकपघ्नतैल	११४७	सूचीमुखीके लक्षण	११५६
वलादि तैल	११४८	शुष्कायोनि के लक्षण	"
सहस्रपाक तैल	"	यामिनी के लक्षण	"
भारनादि तैल	"	षण्डी के लक्षण	११५७
पिंडतैल	"	महायोनि के लक्षण	"
शतपाकमधुपर्णी तैल	"	योनिरोगों में दोषपरत्व	"
गुडूच्यादि तैल	"	वातजरोगोंमें चिकित्सा	"
कफप्रधानवातरक्तमें चिकित्सा	११५१	पित्तजरोगों में क्रिया	११५८
वातरक्तमें पथ्यविधि	"	कफजयोनिरोगों में क्रिया	"
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	११५२	सान्निपातिक योनिरोगों में चिकित्सा	"
योनिव्यापच्चिकित्सतंत्रनामत्रिशोऽ-		वायुजन्दयोनिरोग में चिकित्सा	"
ध्यायः		अन्य प्रयोग	"
योनिरोगों कीसंख्या	११५३	काश्मर्यादि घृत	११५९
वातलयोनिरोगोंके लक्षण	"	अन्य प्रयोग	"
वित्तलयोनिरोगोंके लक्षण	११५४	अन्य पित्तु	"
शैथिलिक योनिरोगोंके लक्षण	"	अन्य प्रयोग	११६०
सान्निपातिक योनिरोगोंके लक्षण	"	कफपित्तजरोगों में क्रिया	"
रक्तपित्तजन्मयोनिरोग	"	शतावरी घृत	"
अरजस्कायोनि लक्षण	"	अन्य उपाय	"
अचरणायोनिके लक्षण	११५५	कफजयोनिरोगों में चिकित्सा	"
अतिचरणायोनिके लक्षण	"	योनिशोधक तैल	११६१
प्राक्चरणायोनिके लक्षण	"	अन्य प्रयोग	"
अपप्लुतायोनिके लक्षण	"	धातक्यादि तैल	"
परिप्लुतायोनि के लक्षण	"	अन्य प्रयोग	११६२
उदावृतायोनिके लक्षण	"	योनिरोगोंमें अषलेह	"
उदावर्तिनीयोनिके लक्षण	११५६	योनिरोगमें वस्तिहर्म	"
कणिनीयोनिके लक्षण	"	रक्तप्रदरमें चिकित्सा	"
पुत्रनी के लक्षण	"	वातजरक्तप्रदरमें चिकित्सा	"
अन्तर्मुखीयोनिके लक्षण	"	पैक्षिकरक्तप्रदरमें चिकित्सा	११६३

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
पुष्यानुगीचूर्ण	११६३	क्षयजह्विता	११७२
प्रदर में अन्यचिकित्सा	११६३	असाध्य ह्रीवता	"
रक्तयोन्यादि की चिकित्सा	११६४	अन्य ह्रीवताओंको असाध्यत्व	"
घाभिनीऔर आप्युतायोनिमें चिकित्सा	"	कैव्यकी संक्षिप्त चिकित्सा	११७३
कार्गिनीयोनि में चिकित्सा	११६५	वीजोपघातकी चिकित्सा	"
उदावृतायोनि की चिकित्सा	"	ध्वजभंग की चिकित्सा	"
घहिर्निष्क्रान्त योनिकीचिकित्सा	"	जरासंभव कैव्यकी चिकित्सा	"
पांडुप्रदरमें चिकित्सा	"	प्रदर वर्णन	११७४
योनिस्त्राघमें चिकित्सा	११६६	प्रदर के भेद	"
विच्छिन्नयोनिकी चिकित्सा	"	वातप्रदर के हेतु	"
योनिमें अन्यदोषोंकी चिकित्सा	"	वातजप्रदर के लक्षण	"
योनिचिकित्साका उपसंहार	"	पित्तजप्रदर के हेतु	११७५
शुक्रदोषका प्रकर्ण	११६७	पित्तजप्रदर के लक्षण	"
बीजके विगडनेमें दृष्टान्त	"	कफजप्रदर के हेतु	"
धीर्य के दूषितहोनेका कारण	"	कफजप्रदर के लक्षण	"
दूषितशुक्रके भेद	११६८	सान्निपातिकप्रदर का हेतु	"
घातदूषितशुक्रके लक्षण	"	सान्निपातिकप्रदर के लक्षण	"
पित्तदूषित शुक्रके लक्षण	"	दुष्कित्स्वस्त्री	"
कफदूषित शुक्रके लक्षण	"	विशुद्ध ऋतु के लक्षण	११७६
अन्यहेतुओंसेदूषितशुक्रके लक्षण	"	विशुद्ध आर्तय के लक्षण	"
अवसादी शुक्रके लक्षण	"	स्तन्यदोष के लक्षण	११७७
शुद्धशुक्रके लक्षण	"	वातदूषित दुग्धके अवगुण	"
शुक्रदोष में साधारण प्रयोग	११६९	पित्तदूषित दूध के अवगुण	११७८
ह्रीवताके अन्यकारण	"	कफदूषित दुग्ध के अवगुण	"
ह्रीवताके साधारण लक्षण	"	स्तन्यशोधन में वमन	"
वीजोपघातक ह्रीवताके लक्षण	११७०	विरचन विधि	११७९
ध्वजभंग के हेतु	"	स्तन्यदोष में पथ्य	"
ध्वजभंग के लक्षण	"	स्तन्यशोधक प्रयोग	"
जरासंभवह्रीवता के लक्षण	११७१	स्तन्यदोष में चिकित्सा	११८०
		स्तन्यशोधक उपे	"

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
फेनिल स्तन्य का उपाय	११८०	जांगल देशके लक्षण	११९०
रूक्षतानाशक प्रयोग	"	आनुपदेश के लक्षण	११९१
विवर्णता नाशक प्रयोग	"	साधारण देशके लक्षण	"
दुर्गन्धि नाशक प्रयोग	११८१	उत्कृष्ट देशजात औषध	११९२
दूधकी सिग्धता का उपाय	"	औषध संग्रह विधि	"
दूधकी पिच्छिलता का उपाय	"	औषधियों की रक्षाविधि	"
दूधकी गुरुता का उपाय	"	दोषानुसार प्रयोग विधि	११९३
बालकों की मात्रा का विचार	११८२	मैनफलका वर्णन	"
शिशुपक्ष में गार्हित कर्म	"	वमन कराने की विधि	११९४
पथ्यापथ्य का लक्षण	११८३	वमन कराने के मंत्र	"
प्रलेपादि जन्यरोग	"	मैनफल का घृत	११९६
चिकित्सा विचार	"	फलाद्यल्लेह	"
दिन विचार	"	मैनफलके नामान्तर	११९७
रोगीविचार	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
औषधविचार	"	जीमूतकल्पनाम द्वितीयोऽध्यायः	
पंचत्रायु में औषधसेवन	"	जीमूतके पर्याय शब्द	११९८
व्याधिविचार	११८४	जीमूतके गुण	"
जीर्णलक्षण	"	जीमूतके प्रयोग	"
शतविचार	"	अन्य प्रयोग	"
काशविचार	११८५	अन्य प्रयोग	११९९
औषधकी मात्रा का प्रमाण	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
देशानुसार सात्त्वद्रव्य	"	इक्ष्वाकुकल्पनाम तृतीयोऽध्यायः	
शास्त्र विरुद्ध क्रियाका निर्देश	११८६	इक्ष्वाकुके पर्यायशब्द	१२००
निवृत्तरोग में औषध सेवन	११८७	इक्ष्वाकुके गुण	"
पथ्यन्तः विधि	"	इक्ष्वाकुके कल्प	"
अरुने में पथ्य विधि	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२०१
अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	"	धामार्गव कल्पनाम चतुर्थोऽध्यायः	
अध्याय का उपसंहार	११८८	धामार्गव के पर्यायशब्दों का शब्द	१२०२
इतिथिकारससं स्थानम्		धामार्गवके गुण	"
अथ कल्पस्थानम्		धामार्गवकी कल्पना	"
मदनकल्पनामप्रथमोऽध्यायः		अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२०३
मदनकी निरुक्ति	११८९	यससकल्पनाम पञ्चमोऽध्यायः	
देशानुसार	११९०	यससके गुण	१२०४

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
वत्सकके भेद	१२०४	लोधके कल्प	१२१६
वत्सक के गुण	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२१७
वत्सक के कल्प	"	महादृष्टकल्पनामदशमोऽध्यायः	
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१२०५	सैंहुडसाध्यरोम	१२१८
कृतवेधन कल्पनाम पष्ठोऽध्यायः		सैंहुड के भेद	"
कृतवेधन के पर्यायवाचीनाम	"	सैंहुड के नाम	"
कृतवेधन के गुण	"	सैंहुड के लाने की विधि	"
कृतवेधन के कल्प	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२२०
अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१२०६	सप्तलाशंखिनीकल्पनामएकादशोऽध्यायः	
श्यामात्रिवृतकल्पनाम सप्तमोऽध्याय		सप्तलाशंखिनी के नामान्तर	"
त्रिवृतके नाम	१२०७	उक्तरोगों में दोनों की कल्पना	"
निसोथ के गुण	"	अध्यायका संक्षिप्तवर्णन	१२२१
निसोथ के भेद	"	दन्तीद्रवन्तीकल्पनामद्वादशोऽध्यायः	
श्यामात्रिवृत के गुण	"	दन्तीद्रवन्ती के नामान्तर	१२२२
निसोथ की मात्रा	१२०८	उक्तद्रव्यों के कल्प	"
पैक्षिक प्रकृति वालोंका विरेचन	१२०९	वैरेचिनक चूर्ण	१२२४
कफप्रकृति के लिये विरेचन	"	दन्ती द्रवन्तीकल्पका संक्षिप्तवर्णन	१२२६
कफाधिक्यमें राजाओं के योग्यविरेचन	"	स्वरसमे भावितकरनेका कारण	१२२७
कल्याणक गुटिका	१२१०	तीक्ष्णविरेचन के लक्षण	"
व्योषादि विरेचन	१२११	औषधीकीतीक्ष्णताका कारण	"
दशमेादकों का प्रयोग	"	मध्यऔषधके लक्षण	"
भिन्न २ ऋतु के विरेचन	१२१२	हीनऔषधका लक्षण	१२२८
उपसंहार	१२१४	सुखासुखसाध्यरोगी	"
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"	मृदुऔषध का विधान	१२२९
चतुर्गुलकल्पनामअष्टमोऽध्यायः		वस्तिकर्म के योग्य रोगी	१२३०
चतुर्गुल के अन्यनाम	"	स्नेहन के योग्य रोगी	"
अमलतास के गुण	१२१५	उपसंहार	१२३१
अमलतास के रखने की विधि	"	मानपरिभाषा	"
अमलतास के कल्प	"	स्नेहपाक के भेद	१२३२
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२१६	स्नेहपाकों की प्रयोग विधि	१२३३
तिलवककल्पनामनवमोऽध्यायः		मान के भेद	"
लोध के नाम	"	फाल्गुमान	"
		कल्पस्थानका संक्षिप्त वर्णन	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
अयसिद्धिस्थानम्		शिरोविरेचनकी विधि	१२४२
कल्पनासिद्धिर्नामप्रथमोऽध्यायः		सम्यक् प्रयुक्त शिरोविरेचन के लक्षण	"
अग्निवेशका प्रश्न	१२३४	असम्यक् शिरोविरेचन के लक्षण	"
स्वेदनकाल का निर्णय	"	शिरोविरेचनका अतियोग	"
स्नेहनस्वेदन का फल	१२३५	वर्तित प्रयोगके अन्य नियम	"
पैयादिसे अन्तराग्निकी वृद्धिका दृष्टान्त	"	पंचकर्म के पीछे वर्जितकर्म	"
घमन विरेचनके देग	१२३६	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२४३
घमन विरेचनकी अवधि	"	पञ्चकर्मायसिद्धिर्नामद्वितीयोऽध्यायः	
घमन विरेचन में प्रथमवेगोंका निषेध	"	पंचकर्मके अयोग्यव्यक्ति	१२४४
सम्याव्रमित के लक्षण	"	घमनके अयोग्य व्यक्ति	"
असम्यग्घमनके लक्षण	"	उक्तरोगियोंके अवश्य होनेका कारण	"
अतिघमनके लक्षण	"	घमनका अप्रतिषेध	१२४६
सम्यग्विरिक्तके लक्षण	"	घमनीयव्यक्ति	"
असम्यग्विरिक्तके लक्षण	१२३७	अविरेच्यरोगी	"
अतिविरिक्त के लक्षण	"	उक्तव्यक्तियोंके अविरेच्य होनेका	१२४८
वस्तिकेगुण	१२३८	कारण	"
निरूहणवस्तिके गुण	"	विरेचनके योग्यव्यक्ति	"
अनुवासनके गुण	"	अनास्थाप्यरोग	"
घृहणवस्तिके अयोग्यव्यक्ति	१२३९	अनास्थापनका कारण	१२४९
संशोधनवस्तिकानिषेध	"	आस्थाप्यरोग	१२५०
बायुजन्यरोगों में वस्तिको प्रधानता	"	अनुवासनके अयोग्यरोगी	"
सम्यक् प्रयुक्तवस्तिके लक्षण	१२४०	उक्तरोगोंमें अनुवासनके न देने]	"
सम्यक् प्रयुक्त निरूहके लक्षण	"	का कारण]	"
असम्यक् निरूहित के लक्षण	"	अनुवासनके योग्यव्यक्ति	१२५१
अतिनिरूहितके लक्षण	"	शिरोविरेचन के अयोग्यरोगी	"
सम्यक् अनुवासितके लक्षण	"	शिरोविरेचन न देनेका कारण	१२५१
असम्यक् अनुवासितके लक्षण	१२४१	शिरोविरेचनके योग्यरोगी	१२५२
अत्यनुवासितके लक्षण	"	नस्यकर्मविधि	"
वस्तियों की संख्या	"		

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठांकः
अध्यायका उपसंहार	११५३	कफावृत वस्ति में उपाय	१२६७
वस्तिस्त्रीयसिद्धिर्नाम तृतीयोऽध्यायः		अतिभोजनावृत वस्तिके लक्षण	"
वस्तिका प्रमाण	११५४	उक्तरोग में उपाय	"
वस्तिकी परिधिका प्रमाण	११५५	पुरीपावृतवस्तिके लक्षणोपाय	"
भिन्न २ वस्तियोंके गुण भेद	११५६	ऊर्ध्वगति वस्ति के लक्षण	१२६८
वामपार्श्वसे वस्तिप्रणिधानका कारण	११५७	ऊर्ध्वगतवस्ति में उपाय	"
निरूहण द्रव्यका प्रमाण	११५८	उपेक्ष्यवस्ति	"
शयनका नियम	"	मुक्तस्नेह का पश्चात् कर्म	"
भोजनादि नियम	११५९	उष्णोदक के गुण	"
घातनाशक निरूहण प्रयोग	"	अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	१२७०
अरण्ड तैल की वस्तिकेगुण	"	नेत्रवस्ति व्यापादिका सिद्धिर्नाम पञ्च-	
पित्तरोगनाशक निरूहवस्ति	११६०	मोऽध्यायः	
पित्तरोगनाशक अन्य विधि	"	वर्जितवस्तिनल	"
कफनाशक वस्ति	११६१	ह्रस्वादि वस्ति नल के उपद्रव	"
वायुनाशक वस्ति	११६२	वर्जित वस्ति	१२७१
अध्याय का संक्षिप्त वर्णन	११६३	विषमादिवस्तियों के उपद्रव	"
स्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नाम चतुर्थोऽ-		प्रणता की अज्ञताके उपद्रव	"
ध्यायः		दृतादि प्रणीतवस्ति के कर्म	"
घातनाशक अनुवासन विधि	१२६४	तिर्यक् बन्धन के लक्षण	१२७२
वसाप्रयोग	"	पीटन के उपद्रव	"
अन्यतैल	"	कम्पनमें उपद्रव	"
अनुवासनीयवृत	"	अतिप्रणीत वस्ति के उपद्रव	"
स्नेहवस्तिके गुण	१२६६	मन्दप्रणीत वस्ति के लक्षण	"
स्नेहवस्ति में छः आपत्ति	"	अतिपीडित वस्ति के लक्षण	"
वस्ति में विभ्र के कारण	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
वातावृत स्नेहवस्तिके लक्षण	"	वमनचिरेचन व्यापत् सिद्धिर्नाम षष्ठो	
वातावृत स्नेहवस्ति में उपाय	१२६७	ऽध्यायः	
पित्तावृत वस्ति के लक्षण	"	संशोधन का समय	१२७३
कफावृत वस्ति के लक्षण	"	अविरेक्परोगी	"

विषय	पृष्ठांकः	विषय	पृष्ठाङ्कः
स्नेहस्वेदसे संशोधन का दृष्टान्त	१२१४	अतियोग व्यापच्चिकित्सा	१२८५
अजीर्ण भोजन में संशोधन निषेध	"	कलमव्यापल्लक्षण	"
मात्रावत् औषध के लक्षण	"	कलमव्यापचिकित्सा	१२८६
सम्पयोग करनेवाली औषध	"	आघ्मान व्यापल्लक्षण	"
घमन विरेचन का पूर्व कर्म	१२७६	आघ्मान व्यापच्चिकित्सा	१२८७
शुद्धि के लक्षण	"	हिक्काव्यापच्चिकित्सा	"
पेया के योग्यरोगी	"	हृदयचिकित्सा	"
तर्पणादिक्रम के योग्य रोगी	"	ऊर्ध्वव्यापच्चिकित्सा	"
जीर्ण औषध के लक्षण	१२७६	प्रवाहिका व्यापच्चिकित्सा	१२८८
जीर्णावशिष्ट औषध के लक्षण	"	शिरशूलके लक्षण	१२८९
असम्यक् औषध के दशउपद्रव	"	शिरशूल चिकित्सा	"
अजीर्ण में विरेचनपान के अवगुण	"	अंगशूल लक्षण	"
वमनकर्ता औषध से विरेचन	"	अंगशूल चिकित्सा	"
घमन विरेचन योग में उपाय	१२७८	परिकर्तिकाकी चिकित्सा	१२९०
अतियोगनाशक प्रयोग	"	पितरक्त में चिकित्सा	"
घमनातियोग प्रयोग	"	अध्यायका उपसंहार	१२९१
निःसृत जिह्वा में उपाय	"	प्रासूतयोगिकसिद्धिर्नाम अष्टमोऽध्यायः	
बाग्रह में चिकित्सा	"	वार्यवर्द्धन निरूह	१२९२
ऐंठा होने का कारण	१२८०	पंचतित्त निरूहवस्ति	"
ऐंठकी चिकित्सा	"	क्रामेनाशक वस्ति	"
पीत औषधोंके वमननिग्रहमें उपद्रव	१२८१	वृष्यवस्ति	"
शोणित की परीक्षा	१२८२	नौउपद्रव	१२९२
दूसरी परीक्षा	"	अध्यायका उपसंहार	१२९६
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	१२८४	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
वस्तिव्यापदिकासिद्धिर्नामसप्तमोऽध्यायः		त्रिमर्माय सिद्धिर्नाम नवमोऽध्यायः	
वस्ति के रोग	"	मर्मस्थानोंमें गुरुता	१२९७
अयोग व्यापल्लक्षण	"	हृदयाभिघातके उपद्रव	१२९८
अयोग व्यापच्चिकित्सा	१२८५	शिरमें चोट के उपद्रव	"
अतियोग व्यापल्लक्षण	"	वस्तिमें चोटके उपद्रव	"

विषय	पृष्ठाङ्कः	विषय	पृष्ठाङ्कः
वातोपसृष्ट हृच्चिकित्सा	१२९९	वक्त्रा का आकारादि वर्णन	१३०६
वातोपसृष्ट शिरकी चिकित्सा	"	उत्तर वस्ति में पथ्यादि वर्णन	"
वातोपसृष्टवस्तिमें चिकित्सा	१३००	स्त्री को उत्तर वस्ति	१३०७
मर्म प्रकर्षणका उपसंहार	"	स्त्रियों की वस्तिका प्रमाण	"
क्षपत्त्रकके लक्षण	"	शंखकके सहेतु लक्षण	"
क्षपतानकके लक्षण	१३०१	अर्द्धावभेदक के सहेतु लक्षण	१३०८
तन्द्रारोगका हेतु	"	अर्द्धावभेदक की चिकित्सा	"
तन्द्राके लक्षण	"	सूर्यावर्त में उपाय	१३०९
तन्द्रामें चिकित्सा क्रम	१३०२	सूर्यावर्त के सहेतु लक्षण	"
वस्तिरोगों के भेद	"	अनन्तथात के लक्षण	"
मूत्रैकसाद के लक्षण	"	शिरःकम्प के लक्षण	"
मूत्रजटरकी सहेतु चिकित्सा	"	शिरोरोग में नस्य को प्रधानता	"
मूत्रकृच्छ्र के लक्षण	१३०३	नस्यकर्म के भेद	"
मूत्रोसंगके लक्षण	"	नावनादि के लक्षण	"
मूत्रसंक्षयके लक्षण	"	नस्य के कर्म	१३१०
मूत्रातितके लक्षण	"	रेचन साध्यरोग	"
वाताग्नीलाके लक्षण	"	तर्पणसाध्यरोग	"
वातवस्तिके लक्षण	"	शमनसाध्यरोग	"
लघ्णवस्तिके लक्षण	"	विरेचनद्रव्य	"
वातकुंडलिका के लक्षण	१३०४	तर्पण द्रव्य	"
मूत्रमन्धिके लक्षण	"	तर्पण की रीति	"
विडविघातके लक्षण	"	आध्यापन की विधि	१३११
वस्तिकुंडल के लक्षण	"	शिरोविरेचन के परचात्कर्म	"
कुंडली भूतवस्तिके लक्षण	१३०५	नस्य कर्मके अनुचितकाल	१३१२
उत्तरवस्तिका वर्णन	"	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	"
उत्तरवस्तिकी मात्राका प्रमाण	"	वस्ति सिद्धिर्नाम दशमोऽध्यायः	"
उत्तरवस्तिके देनेकी रीति	"	आस्थापनयोग्यव्यक्ति	१३१३
वस्तिकी गतिका वर्णन	१३०६	वस्तियों के गुण	१३१४
प्रत्यागमनका उपाय	"	दृहण वस्ति के अयोग्यरोगी	"

विषय	प्रष्ठांकः	विषय	पृष्ठाङ्कः
संशोधन वास्तिके अयोग्य व्यक्ति	१३१४	भेद बकरी के लिये प्रयोग	१३२२
चातनाशक प्रयोग	१३१५	श्रोत्रियादि के रोगों रहनेका कारण	”
पित्तनाशक प्रयोग	”	अन्य सदारोगियोंका वर्णन	”
कफनाशक प्रयोग	”	निरुहण का पश्चात् कर्म	१३२३
पक्वाशय शोधन प्रयोग	१३१६	घालक और वृद्ध कोनिरुहण	”
शुक्रवर्द्धन प्रयोग	”	अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	”
स्राव्राहिके प्रयोग	”	उत्तरासिद्धिर्नामद्वादशोऽध्यायः	
परिस्त्राव में प्रयोग	”	संशोधन के पीछे पेयादि विधि	१३२४
दाहनाशक प्रयोग	”	अग्नि संदीपनक्रम	”
परिकर्तिका में वास्ति	१३१७	प्रकृतिगत के लक्षण	”
प्रवाहिका नाशक प्रयोग	”	अप्रकृतिगतको वर्जितकर्म	१३२५
अतिभोगनाशक प्रयोग	”	वर्जोपचार सेवन के अवगुण	”
जीवशौणित में वास्ति	”	उच्चभाषण के उपद्रव	”
रक्तापित्त में प्रयोग	१३१८	रथक्षोभ के उपद्रव	”
अध्यायका संक्षिप्त वर्णन	”	अतिचक्रमणके उपद्रव	१३२६
अध्यायका उपसंहार	”	अत्यासनके उपद्रव	”
फलमात्रासिद्धिर्नाम एकादशोऽध्यायः		अर्जाण भोजन के उपद्रव	”
फलविषय में भिन्न २ मत	१३१९	अहित भोजन के उपद्रव	”
विषय विशेषसे फलोंको उत्कृष्टत्व	”	दिवास्वप्न के उपद्रव	”
मदनफल की उत्कृष्टता	१३२०	मैथुन के उपद्रव	”
सुवस्ति का प्रमाण	१३२१	उच्चभाषणजन्यरोगोंमें उपाय	१३२७
सुवस्ति की मात्राका प्रमाण	”	रथक्षोभजन्यरोगोंमें उपाय	”
निरुहका साधारण प्रयोग	”	अजीणाध्यशनजरोगोंमें उपाय	”
हार्थिको निरुहण प्रयोग	”	विषमभो मनादिजन्यरोगोंमें उपाय	”
ऊंटको निरुहण प्रयोग	”	दिवास्वप्नजरोगोंमें उपाय	”
गौके लिये प्रयोग	”	मैथुनजन्यरोगोंमें उपाय	१३२८
घोड़े के लिये प्रयोग	”	यापनवास्तिकी विधि	”
खरोष्ट्र प्रयोग	”	दूसरीयापनवास्ति	१३२९

तीसरी विधि	१३२९	चौबीसवीं विधि	१३३३
चौथी विधि	"	पच्चीसवीं विधि	१३३४
पांचवीं विधि	१३३०	छत्तीसवीं विधि	"
छटी विधि	"	सत्ताईसवीं विधि	"
सातवीं विधि	"	अट्ठाईसवीं विधि	"
आठवीं विधि	"	स्नेह प्रकर्ण	"
नवीं विधि	१३३१	उक्तवास्ति की विधि	१३३५
दसमी विधि	"	उक्तवास्ति के गुण	"
ग्यारहवीं विधि	"	बलादिस्नेह	"
बारहवीं विधि	"	सहचरादि स्नेह	१३३६
तेरहवीं विधि	"	वास्तिसेयनमेंवर्जित कर्म	१३३७
चौदहवीं विधि	१३३२	वास्तियोंकी संख्या	१३३७
पन्द्रहवीं विधि	"	उक्तवास्ति में आस्थापन विधि	१३३८
सोलहवीं विधि	"	अतिसेवितयापनके उपद्रव	"
सत्रहवीं विधि	"	उक्तउपद्रवोंमें चिकित्सा	"
अठारहवीं विधि	"	अतिसेयनका निषेध	"
उन्नीसवीं विधि	१३३३	सिद्धिस्थानके लक्षण	"
बीसवीं विधि	"	इसग्रन्थका फल	"
इक्कीसवीं विधि	"	संश्रयुक्तियोंका वर्णन	१३३९
बाईसवीं विधि	"	ग्रन्थकोशस्त्रसेसमानता	१३४०
तेईसवीं विधि	"	ग्रन्थका गौरव	१३४०

इति अनुक्रमणिका समाप्ता

तिन्त्रअकवर ।

यद्यपि बहुत से छोटे २ यूनानी ग्रंथ अवगतक छप चुके हैं परन्तु ऐसा बड़ा और प्रतिष्ठित ग्रन्थ अब तक नहीं छपा था इस के लिये बहुत से सज्जन मनुष्यों की इच्छा थी ॥ इस में रोगों के निदान अत्यन्त अनोखे ढंग पर विस्तारपूर्वक दिये गये हैं और उसके पास ही उस रोग की चिकित्सा भी दी गई है हमारे आयुर्वेद में जैसे चरक; सुश्रुत, वाग्भटादि ग्रन्थ बहुमान्य और प्रतिष्ठित हैं उसी तरह यूनानी यह ग्रन्थ भी उच्चश्रेणी में विराजमान है—यह बात कितनी ही बार देखी गई है कि जब आयुर्वेदीय वैद्य और बड़े २ डाक्टर किसी रोगमें आशाहीन होजाते हैं तब यूनानी हकीमों के छोटे २ नुस्खे तीव्र से अधिक काम देजाते हैं । भारतवर्ष में सहस्रों मनुष्यों की प्रकृति ऐसी बदल गई है कि यूनानी इलाज ही उनकी प्रकृति के अनुकूल पडता है । इन सब बातों को विचारकर हमने सोचा कि हमारी हिन्दी ऐसे अनुपम ग्रन्थसे सुशोभित क्यों न हो और उर्दू फारसी न पढे हुए हमारे भाई इस से क्यों वाञ्छित रहें, और सब अमीर गरीब इस ग्रन्थ से समान भाग लाभ लें लें इमी हेतु से हमने इस ग्रन्थ का उर्दू से भाषानुवाद करके छपा है यह ग्रंथ मुम्बई के सुवाक्य अक्षरों में चिकने बढिया कागज से छपा है । आशा है कि सब हकीम वैद्य छोटे बड़े अमीर गरीब शौकीन लोग इसकी एक २ प्रति अपने पास र-

खेंगे और तन्दुरुस्ती रखने के लिये अमि-
ति लाभ लेंगे यह प्रायः १२५० पृष्ठ
में समाप्त हुआ है की० ७) रु० ढाक।।।)

बूटीप्रचार ।

यह वैद्यकका छोटासा ग्रन्थ अपने ढंगका एकही है इसको स्वर्गधासी महात्मा महंत मुखरामदासजी ने जीवनभर अपने अनुभव किये हुए चुटुकुलों से भराहै बड़े से बड़े और छोटे से छोटे रोगों के बहुत ही सुगम उपाय लिखे हैं यह पुस्तक प्रत्येक ग्रहस्ती को सदैव अपने अपने घर में रखना उचित है इसके पास होने से साधारण रोगों में वैद्य और हकीमों के पास दौड़ने की आवश्यकता नहीं रहैगी, इस पुस्तक को विदेशमें भी साथ रखने से मनुष्य अपना और अपने साथियों का रोग दूर कर सकता है इन सब बातों के सिवाय धातुओं के जारण मारण की विधि जंगल की जड़ी बूटी द्वारा बहुतही सहज लिखी है तथा औषधि प्रस्तुत करने की प्रणाली भी विधिपूर्वक लिखी है । जिन जिन जड़ी बूटियों का नाम इस पुस्तक में आया है उन सबके ऐसे सुन्दर चित्र दिये हैं मानों अक्सही खींच दिया है. ये चित्र प्रायः २०२ से अधिक हैं पुस्तक के अंतमें नागेश्वर यंत्र वालुका यंत्र मृगांगयंत्र आदिके कितने ही अद्भुत और उपयोगी चित्र दिये हैं । इस तरह सब मिटाकर यह पुस्तक प्रायः २०० पृष्ठ में सम्पूर्ण हुई है मूल्य विलायती कपडे की जिल्द का १) रु० ढाक म० =)

स्मरणशक्ति, मेधा, आधेयता, सन्ध्यावस्था, प्रभा, वर्णन, स्वरकी स्पष्टता, देह और इन्द्रिय गण में उत्तम बल, वाक्सिद्धि, प्रणति और कांति प्राप्त करता है ।

रसायन की निरुक्ति ।

लाभोपायोदिगस्तानारसादीनारसायनम्
अर्थ—रसादि उत्तम धातुओं के प्राप्त करने का यह एकमात्र उपाय है इससे इसे रसायन कहते हैं ।

वाजीकरणके लक्षण ।

अपत्यसन्तानकरंयत्सद्यःसंमहर्षणम् ।
वाजीवातिबलोयेनयात्यप्रतिहतःस्त्रियः
भयत्यतिमियःस्त्रीणांयेनयेनोपचीयते ।
जीर्यतेऽप्यस्यंशुक्रफलव्येनरहयते ॥
प्रभूतशालःशालीवयेनचत्योयथामहान् ।
भयत्यर्चोबहुमतःप्रजानांमुबहुमजः ॥
सन्तानमूलयेनेहमेत्यचानन्त्यमश्नुते ।
यदाश्रियंवलं पुष्टिवाजीकरणमेवतत् ॥

अर्थ—जिस के सेवन करने से बहुतसी सन्तान की उत्पत्ति होती है, जो तत्कालही आल्हाद उत्पन्न करती है, जिसके सेवन से अश्वके समान बल प्राप्त कर मनुष्य स्त्री सगम में कभी प्रतिहत नहीं होता है, जिस के सेवन से पुरुष स्त्रियों का अत्यन्त प्यार होजाता है और बहुत पुष्ट भी होता है । जिम के सेवन से वृद्धावस्था में भी वीर्य वक्ष्यहोकर फलवान् होता है । जैसे वृद्ध देह बहुतासी शाखा प्रशाखाओं से युक्त हो कर शोभित होता है उसी तरह मनुष्य भी बहुतासी सन्तानों से युक्त होकर शोभित

होजाता है । जो सन्तान की मूळ कारण है उसके सेवन करने से मनुष्य अनन्त यश, श्री, बल, पुष्टि प्राप्त करता है उगैही वाजीकरण कहते हैं ॥

स्वस्थस्योजस्करन्त्वेतरादिविधं मोक्तव्यं-
पथम् । यद्व्याधिनिर्पातकरंयत्स्यतेतच्छि-
कित्सिते ॥ चिकित्सितार्थेयतावान्वि
काराणांयदापथम् । रसायनविधिश्चाग्रे
वाजीकरणमेव च ॥

अर्थ—जो दो प्रकार की औषध कहा है एक स्वस्थके लिये ओजस्कर दूसरा रोगनाशक । जो रोगनाशक है ये इस चिकित्सा स्थान में कही जायगी, आगे रसायनविधि और वाजीकरण औषधकावर्णन किया जायगा ॥

अभेपज का लक्षण

अभेपजमितिज्ञेयंविपरीतं यदापथात् ।
तदसेव्यनिषेयन्तुमवक्ष्यामियदापथम् ॥

अर्थ—जो इन औषधों से विपरीतहोती है उसे अभेपज कहते हैं, यह असेव्य अर्थात् सेवन के योग्य नहीं होती, अथ इस जगह सेव्य औषधि का वर्णन किया जायगा ।

रसायन के भेद

रसायनानां द्विविधं मयोगमृपयोविदुः ।
कुटीमावेशिकं चैव वातातपिकमेव च ॥

अर्थ—ऋषियोंने रसायनके दो प्रकार के प्रयोग वर्णन किये हैं उन में से एक को कुटीमावेशिक और दूसरे को वातातपिक कहते हैं ॥

कुटीमावेशिक की विधि ॥
कुटीमावेशिकस्यादौ विधिः समुपदेक्ष्यते ॥

नृपवैद्यद्विजातीनांसाधूनांपुण्यकर्मणाम्
निवासोनिर्भयेशस्तेप्राप्योपकरणेपुरे ॥ द्वि
शिपूर्वोत्तरस्यान्तुसुभूमौकारयेत्कुटीम् ॥
विस्तारोत्सेधसम्पन्नांत्रिगर्भासूक्ष्मलोच
नाम् । घनभित्तिमृतसुखांसुस्पष्टामनसः
प्रियाम् ॥ शब्दादीनामशस्तानामगम्यां
स्त्रीविवर्जिताम् । इष्टोपकरणोपेतांसज्ज
वर्थापधद्विजाम् ॥

अर्थ—प्रथम कुटीप्रवेशिक की विधि
वर्णन की जाती है । साधु तथा पुण्यकर्मा
राजवैद्य और द्विजातियों के निवासस्थान
में जहां किसी प्रकार का भय न हो और
जो उत्तम भी हो और जहां सब प्रकार की
सामग्रियों भी उपस्थित हो सकती हों, एक
स्थान लें, इस स्थान के उत्तर वा पूर्वकी
ओर एक अच्छी सी भूमि में एक कुटी
बनवावे । कुटी खूब लम्बी चौड़ी और ऊं
ची होनी चाहिये, इस कुटी के बाहर तीन
परकोटा होने चाहिये और इन परकोटाओं
में बापुके आने जाने के लिये छोटे छोटे छि
द्र भी रखें । कुटी की भीत मोटी होवे और
इस में प्रत्येक ऋतुका सुख होवे अर्थात्
बह कुटी प्राग्मन्तु में शीतल और शीत
ऋतु में गरम रहे यह स्वच्छ मनोहर,
कुत्सित शब्दों से रहित, स्त्री वर्जित, अभीष्ट
सामग्रियों से युक्त हो और उस में वैद्य
औषध और द्विजों का सदा संग रहे ॥

अथोद्गयनेशुकैतिथिनसत्रपूजिते। सुहृत्
करणोपेतेप्रशस्तेकृतवापनः ॥ घृतिस्मृति
पलंकृत्वाश्रयानः समाहितः ॥ विधूय

मानसान्दोपानमैत्रीभूतेषुचिन्तयन् ॥ दे
वताः पूजयित्वाग्रेद्विजातींश्चप्रदक्षिणम् ।
देवगोब्राह्मणानकृत्वाततस्तांमविशेत्कु
टीम् ॥ तस्यांसंशोधनैः शुद्धः सुखीजात
बलःपुनः । रसायनप्रयुञ्जीततत्प्रवक्ष्या
मिशोधनम् ।

अर्थ—पूर्वोक्त विधि से स्थान तयार करा
के सूर्य के उत्तरायण काल में शुक्लपक्षके
शुभ तिथि, नक्षत्र मूहूर्त्त, करण में हजामत
बनवाकर, घृति, स्मृति और बल धारण
करके श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित्त होकर
मानसिक दोषों को दूर करे और सम्पूर्ण
प्राणियों में मैत्रीभाव स्थापनकरे, तदनन्तर
प्रथम देवताओं का पूजन और फिर गोद्वि
जादि का पूजन करके इनकी प्रदक्षिणा कर
के उस स्थान में प्रवेश करे । प्रवेश करने
के पीछे संशोधन योगों से देहको शुद्धकरे
फिर सुखीहोनेपर बललाभ करने के निमित्त
रसायन द्रव्यों का सेवन करे ।

अत्र प्रथम संशोधन विधिका वर्णन किया
जाता है ॥

संशोधन विधि

हरीतकीनांचूर्णानिसन्धचामलकेगुडम् ।
वचाविडंगरजनीपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥
पिवेदुष्णाभ्युन्नाजन्तुःस्नेहस्वेदोपपादितः
तेनशुद्धशरीरायकृतसंमार्जनायच ॥
त्रिरात्र्यावकंद्वयात्पश्चाहंवापिसपिपा ।
सप्ताहंवापुराणस्यावच्छुद्धेस्तुवर्चसः ॥

अर्थ—हरड, संधानमक, आंवला, गुड,
बच, बायविडंग, हलदी, पाण्ड, मोंठ, इन

सबका चूर्ण गरमजल के साथ फाँके परन्तु इससे प्रहिले स्नेहन और स्वेदन कर्म कर लेंगे । जब संशोधन से देह शुद्ध होजाय तब स्नानादि करके मलकी शुद्धि के लिये तीनरात्रि तक यवागू पान करें अथवा पाँच दिन तक घृतपान करें अथवा सात दिनतक पुराने चावलों का माढ़ लेंगे ॥

शुद्धकोष्ठान्तुतज्ञात्वारसायनमुपाचरेत् ।

घयम्भकृतिसात्स्यज्ञोयोगिकयस्ययद्भवेत्

अर्थ—जब कौठा शुद्ध जान पड़े तब रसायन का प्रयोग करे । रोगी को आयु, प्रकृति और सात्स्यका विचार करके जिसके लिये जैसी रसायन हितकारी हो उस को वैसीही देवे ।

हरीतकी वर्णन ।

हरीतकीपञ्चरसामुष्णामलवर्णाशिवाम्
दोषानुलोमिनीलध्वीविद्यादीपनपाचनीम्
आयुष्यापीष्टिकीधन्यावयसःस्थापनीप-
राम् । सर्वरोगप्रशमनीशुद्धीन्द्रियबलप्र-
दाम् ॥ कुष्ठगुल्ममुदावर्तशोषपाण्ड्वामयं
मदम् । अशीसिग्रहणीदोषपुराणविपम
प्वरम् ॥ हृद्रोगसिशिरोगमतीसारमरो-
चकम् । कासंप्रमेहमानाहंशीहानमुदर-
नयम् ॥ कफप्रसेकवैस्वर्यवैवर्ण्यकामलान्
कुमीन् । श्वस्युन्तमकंछदिल्लैज्यमगाव
सादनम् ॥ सोतोविबन्धानविविधानम-
लेपहृदयोरसोः । स्मृतिशुद्धिप्रमोहञ्जये
च्छीघ्रहरीतकी ॥

अर्थ—हरीतकी में लवणरस को छोड़कर पाँचारस है इस से इसे पंचरसामी कहते हैं

यह उष्ण लवणरस, रहित कल्याण करने वाली, दोषानुलोमिनी, हलकी और दीपन पाचनभा होती है । यह हरड़ आयु को हितकारी, पुष्टिकर्ता, धन्य, उत्तम, वयः स्थापन करने वाली, सर्व रोगनाशिनी, बुद्धि इन्द्रियगणऔर बलको बढ़ानेवाली होती है तथाकोड़, गुल्म, उदावर्त, शोष, पाण्डुरोग, मदरोग, अर्श, ग्रहणीदोष, पुरानाज्वर, विपमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतीसार अरुचि, खाँसी प्रमेह, आनाह, प्राँहा, नवीन उदररोग, कफप्रसेक, वैस्वर्य, विवर्णता, कामलारोग क्षामरोग, शोथ, तमकस्वास, वमन, ह्रीवता, अह्नोकी शिथिलता, अनेक प्रकारके स्रोताविवंध, हृदयप्रलेप, स्मरणशक्ति का नाश, बुद्धिभ्रम, इन सब को हरड़ शीघ्रही जीतलेती है ।

हरीतकी के अयोग्य व्यक्ति ।

अजीर्णिनोरुसभुजःस्त्रीमद्यविपकार्पिताः
सेवरन्नाभयामेतेक्षुत्तृष्णोष्णाद्विताक्षये ॥

अर्थ—अजीर्णरोगी, रुक्साभोजी, खाँसीवा, मद्य, विपमक्षी, क्षुधा, तृष्णा, और उष्णतासे पीडित मनुष्यों को हरड़का सेवन करना उचित नहीं है ॥

आंखले के गुण ।

तानुगुणास्तानिकर्माणिविद्यादामलकी-
प्वपि । यान्युक्तानिहरीतकयावीर्यस्यतु
विपर्ययः

अर्थ—जो जो गुण और कर्म हरड़ के वर्णन किये गये हैं वेही गुण और कर्म आंखले में भी होतेहैं केवल वीर्यमें अन्तर होता है अर्थात् हरड़का वीर्य उष्ण है और आंखले का शीतल ।

अतःशामृतकल्पानिविद्यात्कर्मभिरीदृशैः
हरीतकीनांशस्यानिभिपगामलकानिचा।
अर्थ—ऊपर फहेद्वये गुण और कर्मों के
कारण वैद्य हरड़ और आंवलेको अमृत कल्प
कहते हैं ।

औषधीनांपराभूमिर्हैमवान्शैलसत्तमः
तस्मात्फलानितज्जानिग्राहेयत्कालजानि
तु ॥ आपूर्णरसवीर्याणिकालेफालेयथा-
विधि । आदित्यपवनञ्जायासलिलभी-
णितानिच ॥ यान्यजग्धान्यपूतीनिनि-
व्रणान्यगदानितु । तेषाम्रयोगंवक्ष्यामि-
फलानांकर्मचोत्तमम् ॥

अर्थ—औषधियों के उत्पन्न होने का
सर्वोत्तम स्थान हिमालयपर्वत है, इसलिये
जिससमय जिस औषधके लानेकी इच्छा हो
उसे वही ले लावे । समय समय पर विधि
पूर्वक ऐसी औषधों को लावे जो रस और
वीर्य से परिपूर्ण हों, सूर्य की धूप वायु छाया
और जल के संसर्ग से अच्छी तरह फली
हों, जो अजग्ध हों अर्थात् जिनको कोई
पशु न चरगया हो (अजग्धकी जगह अदग्ध
शठ भी है = बिना जलीहुई), बिनागली
खोलकों तथा रोगों से रहित हों । अब हम
उन औषधों के उत्तम २ प्रयोग फल और
कर्नोक्ता वर्णन करेंगे ।

ब्राह्म रसायन ।

पञ्चानांपञ्चमूलानांभागान्दशपलोन्मि-
तान्।हरीतकीसहस्रञ्चत्रिगुणामलकंनवम्
विदारिगन्धांष्टहतींशुभ्रिपर्णीनिदिग्भिकाम्
विद्यादिदारिगन्धाद्यंश्वदंशुपञ्चमङ्गणम्।

विल्वाग्रिमन्थश्योनाककाश्र्मथमधपाट-
लाम् । पुनर्नवासूर्पपण्यौवलांमैरण्डमेवच
जीवर्कर्मभकौमेदांजीवन्तींसशतावरीम् ।
शरेशुदर्भकासानांशालीनांमूलमेवच ॥
इत्येषांपञ्चमूलानांपञ्चानामुपकल्पयेत् ।
भागान्यथोक्तास्तत्सर्वसाध्यंदशगुणेऽ-
म्भसि ॥ दशभागवशेषन्तुपूतन्तद्ग्राहये-
द्रसम् । हरीतकीश्चताःसर्वाःसर्वाण्याम-
लकानिचा। तानिसर्वाण्यनस्थीनिफला-
न्यापोध्यकूर्जनैः।विनीयतस्मिन्निर्घृहेचू-
र्णानीमानिदापयेत् ॥ मण्डूकपर्ण्याः। पि-
प्यल्याःशंखपुष्प्याःप्लवस्यच। मृस्तानां
सविडङ्गानांचन्दनामुरुणोस्तथा ॥ मधुक-
स्यहरिद्रायावचायाःकनकस्यच । भागां
श्रुत्पुपलान्कुत्वासूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा ।
सितोपलासहस्रन्तुचूर्णितन्तुलयाधिकम्
तैलस्यद्दद्यादकंतत्रदद्यात्रीणिचसर्पिषः ॥
साध्यमोदुम्बरेपात्रेतत्सर्वमृदुनाग्निना।
ज्ञात्वालेह्यमदग्धश्चशीतक्षौद्रेणसंसृजेत्
क्षौद्रप्रमाणेस्नेहार्द्धतत्सर्वधृतभाजने ॥
तिष्ठेतसंमूर्च्छितंतस्यमात्रांकालेप्रयोजयेत्
मानोपरुन्ध्याद्वाहारमेवंमात्राजरांमति ॥
पट्टिकःपयसाचात्रजीर्णेभोजनमिष्येत ।
वैखानसात्रालखिल्यास्तथाचान्येतपोध-
नाः ॥ रसायनमिदंश्राश्यवभूवुरमिता
युषः । मृत्त्वाजीर्णवयश्चाग्न्यमवापुस्त
रुणंवयः ॥ वीततन्द्रात्ममाश्वासानिरात-
काः समाहिताः । मेधास्मृतिपलोपेता
धिररात्रंतपोधनाः ॥ प्रातःतपोव्रतं चर्यं
चेरुश्चाल्यन्तनिश्चयाः । रसायनमिदंब्राह्म

रम्भःपरमायुरवाप्नुयादिति ॥

अर्थ—हरड़, आंवला, बहेड़ा, पांचोंपच मूलका काथ, पीपल, शहत, मुलहठी, काकोली, क्षीरकायोली केंच, जीवक, ऋषभक, और क्षीरविदारी इन सबका कल्क और दूध, दूध से आठगुना विदारी कंदका रस मिलाकर इन सबको सर्पिष्कुम्भ अर्थात् बत्तीस सेर घृत में पकावै। इस घृतकी मात्रा का प्रयोग अग्नि बलके समान करे। औषध के पचने पर दूध और घी के साथ साठी चावलों को खाय ऊपर से उष्णोदक पान करे। इस घृत के सेवन करने से बुढापा रोग, पाप, अभिचार और भय दूर होकर अतुल शारीरिक और इन्द्रिय बलकी प्राप्ति होगी सम्पूर्ण प्रकार के कामोंमें हतोत्साह न होगा और आयु भी दीर्घ होगी।

हरीतक्यादिरसायनका दूसराप्रयोग हरीतक्यामलकविभीतकहरिद्रास्थिरावचाविडङ्गामृतबलीविश्वभेषजमधुकपिप्पलीसोमबल्कसिद्धेनक्षीरसर्पिंपामधुशर्कराभ्यामपिचसन्नीयामलकस्वरसशतपल पीतमामलकचूर्णमयःचूर्णचतुर्भागसम्पयुक्तंपाणितलमात्रम्मातःमातःप्राश्ययथोक्तेनविधिनासायंयूपेणपयसावासासर्पिष्कं शालिपष्टिकमश्रीयात्। त्रिवर्षप्रयोगादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठतिश्रुतमवतिष्ठतेसर्धामयाःप्रशाम्यन्तिविषमविषंभवतिगात्रे गात्रमश्मयत्स्थिरंभवतिअदृश्योभूतानां भवतीति ॥

अर्थ—हरड़, आंवला, बहेड़ा, हल्दी,

शालपर्णी, वच, वायविडंग, गिलोय, सोढ, मुंलहठी, पीपल, सफेद खैर इनके साथ दूध और घीको सिद्ध करे। जब यह ठंडाहोनाय तब इसमें घी और खांड मिलादे। तदनन्तर इसमें स्वरसापीत (आंवलेके रसमें भावना दिये हुये) आंवले का सौपल चूर्ण पच्चीस पल लोहचूर्ण मिलावै। पूर्वोक्त विधिके अनुसार हथेली भर अर्थात् दो तोले प्रतिदिन प्रातः काल सेवन करे। सायंकालके समय मांस-यूप और दूध के साथ घृत मिलाहुआ साठे चावलों का भातखाय। इस रसायनका तीनवर्ष पर्यन्त सेवन करने से आयु सौ वर्षकी होजाती है और बुढापा पास नहीं आता है। सुनीहुवातमहुत दिवसतक विस्मृत नहीं होती है। सम्पूर्ण रोग शांत होजातेहैं विपनष्ट होजाताहै। देहमें पथरके समान दृढता होजातीहै, प्राणियोंमें अदृश्य हो जाताहै अर्थात् ऐसा दृष्ट-पुष्ट होजाता है कि आदमियों की उसपर निगाह नहीं टहरतीहै

प्रथम पाद का उपसंहार

यथामराणाममृतंयथाभोगवतांसुधा ।
तथाभवंमहर्षीणांरसायनविधिःपुरा ॥
नजरांनचदौर्बल्यन्नातुर्यान्निधनंनच ।
जम्बुवर्षसहस्राणिरसायनपराःपुरा ।
नकेवलंदीर्घमिहायुरइनते, रसायनंयोवि
धिवन्निपेवते । गतिंसदेयापिनिपेवितांशु
भांपपद्यतेशर्मतयोत्तिचाक्षयमिति ॥

अर्थ—जैसे देवताओं को अमृत, सपों को सुधा थे वैसेही प्राचीन समयमें ऋषियों

के लिये रसायन विधि थी । पूर्वकाल में रसायन सेवन करने वालों के पास सहस्र वर्ष पर्यन्त बुढ़ापा, दुर्बलता, रोग और मृत्यु नहीं आते थे ।

जो मनुष्य विधिपूर्वक रसायन सेवन करता है उसको केवल दीर्घायुही नहीं मिलती है, किन्तु उसे देव और ऋषि गण सेवित शुभगति और अक्षयकल्याण अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

अभयामलकीयेऽस्मिन्पड्योगाःपरिकीर्तिताः । रसायनानांसिद्धानामायुर्वैरजुर्धते ॥

अर्थ—अभयामलकीयाध्याय के इस प्रथम पाद में छः रसायन प्रयोगों का वर्णन किया गया है, इन सिद्ध रसायनों के सेवन से दीर्घायु मिलती है ।

चिकित्सितेऽभयामलकीयोरसायनपादः प्रथमः

द्वितीयः पादः ।

अथातःप्राणकामीयंरसायनपादं व्या

ख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानान्त्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम प्राणकामीयनामक रसायन पाद की व्याख्या करेंगे ।

रसायन की प्रशंसा ।

प्राणकामाःशुश्रूषध्वमिदमुच्यमानममृ-

तमिवापरमदितिमुताहितकरमचिन्त्या

स्तमभावमायुष्यमारोग्यकरं वयसःस्था-

पनंनिद्रातन्द्राश्रमशूलमालस्यदोर्वल्याप-

हमनिलेकफपित्तसाम्यकरं, स्थाय्यकरमव-

द्धमांसहरं, अन्तरधिसन्धुक्षणं, प्रभावर्णो-
चमस्वरोचमकरं, रसायनविधानमनेनच्य-
वनादयोमहर्षयः पुनर्युवत्वमापुः । नारीणां
चेष्टतमावभूतुः । स्थिरसमसुविभक्तमांसाः
सुसंहतस्थिरशरीराः सुप्रसन्नश्लवर्णेन्द्रि-
याः सर्वत्राप्रतिहतपराक्रमाः केशसहाश्वा ।

अर्थ—हे प्राणों को चाहनेवाले इस अ-
मृतरूप रसायन कथा का श्रवण करो ।

यह अदितिमुत देवताओं को भी हितकारी होती है, इसका प्रभाव अचिन्त्य और अ-
दम्युत है, यह आयुको बढ़ानेवाली, आरोग्यता करनेवाली, वयःस्थापनकर्ता, निद्रा, तन्द्रा, श्रम, क्रम, आलस्य और दुर्बलता को दूर करनेवाली होती है, वात पित्त कफ इन तीनों दोषों की समानता करती है, शरीर को दृढ़ करती है, मांस को ढीलापन को दूर करती है, जठराग्निको बढ़ाती है प्रभा, वर्ण और स्वरको उत्कृष्ट करता है, रसादि धातुओंकी उत्कर्षता करती है ।

इस रसायन के सेवन से ध्यवन से आदि लेकर बहुत से ऋषि बुद्धसे जवान होगये हैं । नारियों में अधिक हर्षयुक्त हुए हैं ।

उनके शरीर का मांस दृढ़, समान और सुडौल होगया है । उन के शरीर सुसंहत और दृढ़ होगये हैं, उन के बल, वर्ण और इन्द्रियगण प्रफुल्लित होगये हैं । किसीजगह उन के पराक्रम का परामव नहीं हुआ है और वे परिश्रम के कामों को सहनेवाले भी होगये हैं ।

मात्रांपौर्वाहिकःप्रयोगः । सात्त्विकपेक्षः
चाहारविधिनापराहिकस्तस्यप्रयोगाद्द-
र्षशतमजरंवर्यस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ॥

अर्थ—एक सहस्र आंवले और इतनीही
पीपल लेकर ढाक के क्षारजलमें ऐसे भिजो-
द्वै कि वे सब डूब जाय, जब वे खार के
सब जलको पीले तब उन्हें छाया में सुखा
छे, फिर गुठलियां निकालकर पीस ले, इस
चूर्ण में चौगुना घी और शहत मिलावे और
चौथाई खांड डालदे इन सब को सानकर
घी को चिकनी हांडी में भरकर छः महीने
तक पृथ्वी में गाडदेवै । तदुपरान्त इसे
निकालकर अम्रितल के अनुसार प्रतिदिन
प्रातःकाल इसका सेवन करे । अपरान्त
में सात्म्य भोजन करे । इस रसायन के
सेवन करने से वृद्धावस्था से रहित सौवर्ष
की आयु दृज्जाती है तथा इसके अन्यगुण
पूर्वोक्त घृत के समान हैं

आंवले का चूर्ण ।

आमलकचूर्णाढकमेकविंशतिरात्रमामल
कसहस्रस्वरसपरिपीतंमधुपृताढकाभ्यां
द्वाभ्यामिक्कीकृतमष्टभागपिप्पलीकंशर्करा
चूर्णचतुर्भागसम्भयुक्तंघृतभाजनस्थंम्राह-
पिमस्मराशांनिदध्यात्तद्दर्पान्तेसात्म्यापे
क्षिप्रयोजयेदस्यप्रयोगाद्दर्षशतमजरमायु
स्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ।

अर्थ—आंवले के एक आढक चूर्ण को
सहस्र आंवले के रस में इक्कीस दिन तक
भिजो रखे । फिर इस में एक २ आढक
शहत और घृत मिलाकर सानले फिर इस

में आठवां भाग पीपल और चौथाई खांड
डालकर सबको मिलाले और घी की हांडी
में भरकर वर्षाकृत में राख के ढेर में दाव
देवै वर्षा व्यतीत होने पर इसका मात्रा के
अनुसार सेवन करे, सात्म्य भोजन करे ।
इस चूर्ण के सेवन करने से वृद्धावस्था रहित
सौ वर्षकी आयु होजाती है, इस के गुण भी
पूर्वोक्त रसायन के समान होते हैं ।

विडङ्गावलेह ।

विडंगतण्डुलचूर्णानामाढकम्पिप्पलीत-
डुलानामध्यर्द्धाढकंसितोपलायाः सर्पि-
स्तलमध्वर्द्धाढकै पङ्क्तिभिरकीकृतघृतंभाज
नस्थंम्राह्यपिमस्मराशांविधितिसमानंपूर्वेण
यावदक्षीः ॥

अर्थ—वायाविडंग की मिगी का चूर्ण
एक आढक, पीपलकी मिगी का चूर्ण एक
आढक, भित्री आधाआढक, घृत आधा
आढक, तेल आधा आढक, और शहत
आधा आधाआढक, इन छःओंको मिलाकर
घी की हांडी में भरकर प्राहृद्घातु में राख
के ढेर में गाडदेवै । इसके गुण भी पूर्वोक्त
रसायन के समान हैं ।

आंवलोंका दूसरा अवलेह ।

यथोक्तगुणानामामलकानांसहस्रमाद्रपला
शद्रोण्यांसपिधानायांचापमनुद्मन्त्यामा-
रण्यगोमयाग्निभिरुपस्येदयेत् । तानिमु-
स्विन्नशीतानिउद्धृतकुलकान्यापोध्याद्
केनपिप्पलीचूर्णानामाढकेनचाविडंगतण्डु-
लचूर्णानामध्यर्धेनचाढकेनशर्कराचूर्णानि
द्वाभ्यांद्वाभ्यांआढकाभ्यांतलस्यमधुनःस

पिपथसंयोज्यशुचोद्वेष्टभाविनेकुम्भेस्था
पयेदेकविंशतिरात्रमतऊर्द्धप्रयोगः तस्यप्र
योगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीति समानं
पूर्वेण ॥

अर्थ—सुभूमिजातानामित्यादि पूर्वोक्तगुण-
सम्पन्न एक सहस्र आंवले लेकर पीले पलास
की द्रोणी (हांडी सदूक) में बन्द कर के
ऐसी तरह से ढकदेवै कि उस मेंसे भाफ न
निकल सके, फिर उस द्रोणी के चारोंओर
आरने ऊपलों की आग ऐसी रीति से
जलावे कि द्रोणी को भक्का तौ लगे पर
जलै नहीं । इस आगकी तेजी से आंवले
संज जायगे । उनको निकालकर ठंडा कर
के गुठली निकाल डाले और उन्हें पीस लेवै
फिर इस में एक आठक पीपलका चूर्ण, एक
आठक वापविडंग का चूर्ण, डेढ़ आठक
शर्करा, तथा दो दो आठक तेल, शहत और
धी इन सबको मिलाकर एक स्वच्छ दृढ वृत्त
की हांडी में भरकर इक्कीस दिन तक धरा
रहने दे फिर प्रयोग करे । इस औषध के
प्रयोग करने से सौ वर्ष की आयु होती है
शेष गुण पूर्वोक्त रसायन के समान हैं ।

नागवला रसायन ।

पंचनिकुशास्तीर्णेऽग्निग्धकृष्णमधुरमृत्ति-
फंसुवर्णवर्णमृत्तिकेवाव्यपगतविषन्वाप-
दपवनसलिलाग्निद्रोपेकर्पणवल्मीकश्मशा-
नचैत्योपररसवर्जितेद्रोशयर्तुमुखपवनस
लिलादित्यसंवितेजातामनिन्नेऽनुपहता
पन्ध्यारूढामवालामजीर्णा अधिगतवी-
रामजीर्णपुराणपर्णामराज्ञातान्यपर्णान्त

पासितपस्येवामासेशुचिःप्रयतःकृतदेवार्च-
नःस्वास्तिवाचयित्वादिजातान्सुमुहूर्तेना
गवलांमूलतउद्धरेत् । तेषामुप्रक्षालिताना
न्त्वक्पिण्डमाद्रमात्रंअक्षमात्रंवारदृष्ट्या-
पिष्टमालोड्यपयसामातः प्रयोजयेत्चूर्णा
कृतानिवापिवेत्पर्यसामधुसर्पिभ्यांवासं
योज्यमभयेत् । जीर्णेश्वीरसर्पिभ्यांशा-
लिपाष्टिकमश्रीयात् । संवत्सरप्रयोगाद-
स्यवर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वे
णेतानागवलारसायनम् ॥

अर्थ—माघ वा फाल्गुन के महीने में
स्नानादि से पवित्र होकर देवताओं का
पूजन करके ब्राह्मणों से स्वास्ति वाचन करा
के शुभ मुहूर्त्त में ऐसी नागवला को जड़से
उखाड लावे जो घन्वन देश के ऐसे स्थान
में उत्पन्न हुई हो जहां बहुतही दुशा उत्पन्न
हो, जहां की मिट्टी चिकनी काली, मधुर वा
पीली हो जहां सेह जानवर न रहता हो,
जहां विपदोप वातदोष जल दोष वा अग्निका
उपद्रव न हो जहां खेती, सांपकी बांधी,
श्मशान, चैत्य (वालिभूमि) और ऊपर भूमि
न हो, जहां प्रत्येक ऋतु में सुखदायक हवा
जल और धूप आती जातीहो जो निम्न स्था-
नमें उत्पन्न हुईहो जो अनुपहत हो अर्थात्
फिती कोंडे ने न खाई हो, जो अनप्यरूढाहो
अर्थात् जिस पर और कोई पौदा आदि न
उगा हो, जो न नवीन और न पुरानाहो
हो, जो पूर्णवर्ष हो जिसके पत्ते पुराने वा

गले हुए न हों, जिसमें अन्यपत्रे न आये हों इस नागबलाकी जड़को खूब धोकर पाँसडाले इसमें दो या चार तोड़े दूध मिलाकर प्रातःकाल पान कर अथवा फंकी लेकर ऊपरसे घी और शहत मिलाहुआ दूध पानकरे। इस औषधके पत्रने पर दूध और घी के साथ शालीचांबल या साठी चांबल का भातखाय एक बरसतक इसका सेवन करने से सौ वर्षकी आयु होजाती है, इसके शेषगुण पूर्वोक्त रसायन के सदृश हैं। यह नागबलारसायन है।

बलातिवलाचन्दनायुरुधयतिनिशखदिर
शिशुपासनस्वरसाःपुनर्नवान्ताश्चापधयो
दशयेवयःस्थापनव्याख्यातास्तेपांस्वर-
सानागबलायत्स्वरसानामलाभेत्वयंस्व-
रसविधिःचूर्णानामाढकमाढकमुदकस्या
होरावस्थितंमृदितपूर्तस्वरसवत्प्रयोज्यम्

अर्थ—बला अतिवला, चन्दन, अगर, घी, तीनिश, खदिर शांशम, असन, तथा पुनर्नवान्त ये दस औषधे वयः स्थापन गणमें वर्णन की गई हैं, इन सबका रस नागबलाके सदृश पान करनेसे नागबला के समान गुण कारक होताहै। जो स्वरस न निकलसके तो एक आढक चूर्णलेकर चतुर्गुण जलमें एक रात दिन भिजोदेवै पछे उन को हाथमे मलकर छान इनका स्वरस के सदृश प्रयोगकरे

भङ्गातकी क्षीररसायन

भङ्गातकान्यनुपहतान्यनामयान्यापूर्णर-
सप्रमाणवीर्याणिपक्वाम्बवप्रकाशानि
धुचांशुकेयामासेसंगृह्यवपत्वेमापपत्वे

वानिधापयत् । तानिचतुर्मासस्थितानि
सहसिसहस्येवामासेप्रयोक्तमारभेत ॥
शीतस्निग्धमधुरोपस्कृतशरीरःपूर्वन्दशभ
ङ्गातकान्यापोध्याष्टगुणेनाम्भसासाध-
येत् । तेषांरसमष्टभागावशिष्टपूतसपय-
स्कम्पिवेत्सर्पिपान्तर्मुखमभ्यज्यतान्ये
कैकभङ्गातकोत्कर्पापकर्पेणदशभङ्गा-
तकान्यात्रिंशतःप्रयोज्यानि ॥ नातः
परमुत्कर्पःप्रयोगविधाननसहस्रपरोभ-
ल्लातकप्रयोगः । जीर्णेचसर्पिपाप-
यसाशालिपट्टिकाशनमुपचारःप्रयोगान्ते
चद्विस्तावत्पयसैवोपचारःतत्प्रयोगाद्
र्षशतमजरंवयस्तिप्रतीतिसमानपूर्वेणोति
भङ्गातकीक्षीरम् ॥

अर्थ—अनुपहत, रोग रहित, पूर्णप्रमाण पूर्णवीर्य, पकीहुई जामनके सदृश कृष्णवर्ण भिलाये आपाढ मासके शुक्लपक्षमें ला कर जाँके ढेर वा उडद के ढेर में गाढदेवै और चार महाने पछे निकालकर अगहन वा पीप के महानेमें इनका प्रयोग करनाप्रारम्भ करे। भिलाये सेवन करनेसे पहिले शीतल, स्निग्ध और मधुर, द्रव्यों से शरीर का संशोधन करे। प्रथमही दस भिलायों को पीसकर अठगुने जल में भिद करे जब जल जलते २ आठवें भाग रह जाय तब उसे छानकर दूधके साथ पान करे। भिलायों के सेवन करने से पहिले मुख के भीतर घी चुपढ लेवै। इन दस भिलायों को एक २ के बढानेसे तीस तक सेवन करे। और

फिर एक २ घटाकर दसतक आजाय । यह एक सहस्र भिलायेका सर्वोत्कृष्ट प्रयोग इस तरह है कि प्रथम एक भिलायेसे एक २ को शब्दद्वारा दस पर्यन्त सेवन करे फिर एक एक घटाकर एक तक सेवन करे इस तरह सब मिलकर १०० भिलाये हुए, जब ये पच जाय और किसी प्रकारका उपद्रव न करे तब एकसे लेकर तीस तक बढ़ाता जाय, ये सब चारसौ पेंसठ हुए और फिर एक एक घटाने लगे अर्थात् २९ से लेकर एक तक ले आवै ये सब चार सौ पैंतीस हुए इस तरह ९९+४९+४६९×४३९ सब मिलकर पूरे एक सहस्र हुए । जब भिलाया पचजाया करे तब दूध और भातका सेवन करे, इसी तरह सहस्र भिलायेके प्रयोगके पीछे सायंकाल और प्रातःकाल दूध भातही का सेवन करता रहे । इस प्रयोगसे सौ वर्ष पर्यन्त बुढापा पास नहीं आता है, इस के दोष गुण पूर्वोक्त रसायनों के समान हैं, यह भल्लातकी धीर का प्रयोग है ।

भल्लातकमधु ।

भल्लातकानाञ्जर्जरकृतानापिष्टस्वेदनं
पूरयित्वाभूमावाकृष्णनिखातस्यस्नेहभा
वितस्यदृढस्योपरिकुम्भस्यारोप्योदुपेना
पिधायकृष्णमृत्तिकावलिंसंगोमयाग्निभि
रुपस्वेदयेत्तेपांयःस्वरसःकुम्भंप्रपद्येततम
ष्टभागमधुसम्प्रयुक्तं द्विगुणवृतमद्यात् । त
त्प्रयोगाद्दर्पशतमजरं वयस्तिष्ठतीति समा
नंपर्वेण ॥

अर्थ—भिलायोंको शुद्ध करकेकूट डाले

फिर एक चिकनी हांडीमें भरै जिसके तले मे तिन चार छोटे छोटे छिद्र हों और उस के ऊपर एक सरवा ढक देवै इस हांडी का मुख काली चिकनी मिट्टीसे बन्द कर दे, इस हांडी के नीचे एक और चिकनी हांडी लगाकर नीचेकी हांडीके मुख और ऊपरकी हांडी के पेंदे को भी चिकनी मिट्टीसे बन्द करदे इन हांडियों को कंठ पर्यन्त पृथ्वीमें गाढकर उपलों की आग चारों ओर लगा दे जब ऊपर की हांडीमेंसे रस टपक टपक कर नीचे की हांडीमें आजाय तब उसे निकाल-ले । इस रसका आठवां भाग शहत और दुगुना घृत डालकर सेवन करे । इस भल्लातकमधु के सेवन करनेसे पूर्ववत् सौ वर्ष पर्यन्त बुढापा पास नहीं आता है ॥

भल्लातक तैल ॥

भल्लातकतैलपात्रसपयस्कमधुकेनकल्के
नाक्षमात्रेणशतपाकं कुर्व्यात्समानपूर्वेण ॥

अर्थ—भिलाये का तेल एक आढक लेकर दूध और मुलहठी के साथ साँवार पाक करके अक्षमात्र प्रतिदिन सेवन करे तो पूर्वोक्त रसायनों के समान गुणप्रद होवे

भिलाये के अन्य प्रयोग ।

भल्लातकसीरं, भल्लातकसांद्रं, भल्लातकतैलमेवंगुडभल्लातकं, भल्लातकयूपोभ
ल्लातकसर्पिर्भल्लातकपल्लं, भल्लातकसक्तवोभल्लातकलवणं, भल्लातकनर्पण
मिति भल्लातकविधानमुक्तं भवतीति ॥

अर्थ—भल्लातकधीर, भल्लातकमधु, भल्लातकतैल और इसीतरह गुडभल्लातक, भल्लातकयूप, भल्लातकसर्पि, भल्लातकपल्ल, भल्लात-

तकसक्तु, भल्लातकलवण, और भल्लातक
तर्पण येदस प्रकार की रसायन होती हैं ॥

द्वितीय पादका उपसंहार ।

भवतिचात्र । भल्लातकानितीक्ष्णानि
पाकीन्यप्रिसमानिच । भवन्त्यमृतकल्पा
निप्रयुक्तानियथाविधि ॥ एतेदशविधा
स्त्वेषांप्रयोगाःपरिकीर्तिताः । रोगप्रकृति
सात्स्यज्ञस्तानप्रयोगानप्रयोजयेत् ॥ क-
फजोनसरागोऽस्तिनविवन्धोस्तिकश्चन।
यन्नभल्लातकंहन्यात्शीघ्रैमेषाश्रिवर्धनम्
प्राणकामाःपुरार्जाणाश्च्यवनान्यामहर्षयः
रसायनैः शिवरेतैर्वभूयुरमितायुषः ॥

ज्ञानन्तपोब्रह्मचर्यमध्यात्मं ध्यानमेवचादी-
र्घायुषोयथाकार्मसंभृत्यत्रिदिवंगताः। तस्मा
दायुःमकर्षार्थम्राणकार्मःसुखार्थिभिः। र-
सायनत्रिभिःसव्योषिभिवत्सुसमाहितैः॥

अर्थ—भिलाये अग्नि के समान तीक्ष्ण
और पाचक होते हैं यदि यथारीति से
इनका प्रयोग किया जाय तो ये अमृत के
समान गुणदायक हैं ॥ भिलाये के ये दस
प्रयोग वर्णन किये गये हैं । रोग प्रकृति
और सात्स्य के अनुसार इनका प्रयोग
करे । कोई ऐसा कफज और विवन्ध रोग
नहीं है जो भिलाये से दूर न होता हो,
प्राचीनकाल में जनि की इच्छा करने वाले
इन्द्र प्यवनादिक महापियों ने इन कल्याण-
कारक रसायनों का सेवन किया था और
दांवायु हीगये थे । इन महापियों ने आभित
ज्ञान, तप, ब्रह्मचर्य, अध्यात्मज्ञान, ध्यान और
दीर्घायु प्राप्त करके अन्तमें स्वर्गलाभ किया

था- अतएव जो कोई प्राणकामी और सुखायी
अपनी आयुको बढ़ाना चाहे उसे उचितहै कि
भ्यानपूर्वक विधिवत् रसायनों का सेवन करे ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन

रसायनानांसंयोगाःसिद्धाभूतहितपिणा
निर्दिष्टाः प्राणकामीयेसप्तदशमहर्षिणोति

अर्थ—प्राणियों में हित रखनेवाले भग-
वान् पुनर्वसु ने रसायनों के ये सत्रह प्रयोग
इस प्राणकामीयाध्याय में वर्णन किये हैं ।
प्राणकामीयोनाम द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

—=—)* X *(=—

तृतीयः पादः

अथातःकरप्रचित्तीयंरसायनपादंव्या-
ख्यास्यामइतिहरमाहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोलें
कि अब हम करप्रचितिय नामक तृतीय
पादकी व्याख्या करते हैं ॥

आमलकायसरसायन ॥

करप्रचितानांयथोक्तयुगानामामलकानां
मुदृतास्थनांशुष्कचूर्णितानांपुनःमाघेफा-
ल्युनेवामासोत्रिःसप्तकृत्वःस्वरसपरिपी-
तानांपुनःशुष्कचूर्णांकृतानामाढकमेकंप्रा-
श्येत् ॥ अथजीवनीथानांबृहणीयानांस्त
पजनानांशुष्कवर्दनानांवयःस्थापनानांप
इविरचनशताश्रितोयोक्तानामौषधानां
चन्दनाशुष्कधातिनिशखादिराशिशपासन
साराणाञ्जाशुशीश्चल्लन्तानांक्षिसानां
याविभोतकपिप्लीवचाचव्याचित्रकवि-

म्भसासाधयेत् । तस्मिन्नाढकावशेषेरसे
सुपूतेतान्यामलकचूर्णानिदत्वागोम्पयाग्नि
भिर्विशविदलशरतेजनाग्निभिर्वासाधयेत्
यावदुपनयाद्रसस्यतमनुपदग्धमुपहृत्याय
सीधुपात्रेष्व्वास्तीर्यशोषयेत् । सुशुष्कं
ष्णाजिनस्योपरिदृषदिश्लक्ष्णपिष्टमयः
स्थाल्यान्निधापयेत्सम्यक् । तच्चूर्णमयी
श्चूर्णाष्टभागसम्प्रयुक्तंमधुसर्पिर्भ्यामाग्नि-
यलमभिसमीक्ष्यप्रयोजयेदिति ॥

अर्थ—पूर्वोक्तगुण सम्पन्न आंवलों को
माघ या फागुनके महीने में हाथसे तोड़कर
छोटे और उनकी गुठली निकालकर छोटे २
टुकड़े करले फिर आंवलों के रस की इक्की-
स भावना देकर सुखाकर फिर चूर्ण करके
एक आढक तयार कर लेंवै । पीछेपद्वि-
रेचनशताश्रितीया अध्याय में कहे हुए
जीवनीय, वृंहणीय, स्तन्यजनन, शुक्रवर्द्धन
और वयःस्थापनगणोक्त औषधों को ले-
कर छोटे २ टुकड़े करके एक पात्रमें
रख ले और उसी में चन्दन, अगर, धौ,
सैर, शीशम और असन इनका सार लेंवै
तथा हरड़, बहेड़ा, पीपल, बच, चव्य, चीता
वायविडंग इन सब औषधियों को तोल में
एक आढक लेंवै और दसगुने जलमें चढा
कर सिद्ध करलेंवै जब एक आढक रस
शेष रहजाय तबउसे छानकर पूर्वोक्त आं-
वलेका चूर्ण डालकर ऊपले, बांसकी लकड़ी
या सरकंडे की आग से धीरे धीरे पकावै,
जब रस न रहै और जलने भी न पावै इसे
अग्नि पर से उतार कर एक लोह के पात्र में

पैलाकर सुखा लेंवै । फिर काले मृग के
चर्म पर एक शिला बिछाकर इसे चासीक
पीसकर एक लोहेके पात्रमें भरकर रख
देवै । इस चूर्णमें अष्टमांश लोह चूर्णमिला-
कर धौ और शहत के साथ अग्निबल
के अनुसार प्रतिदिन सेवन करै ।

अमलकायसरसायनकेगुण ।

एतद्रसायनंपूर्ववासिष्ठःकश्यपोऽङ्गिराः ।
जमदग्निर्भरद्वाजोभृशुरन्येचतद्विधाः॥प्रयु-
ज्यप्रयतामुक्ताःश्रमव्याधिजराप्रयाताया
वदिच्छन्तपस्तेषुःतत्प्रभावान्महाबलाः॥
तपसाब्रह्मचर्येणध्यानैर्नप्रशमेनच । रसा-
यनविधानेनकालयुक्तेनचायुषा ॥ स्थि-
तामहर्षयःपूर्वनहिकिञ्चिद्रसायनम्ग्राम्या
णामन्यकार्याणांसिद्धिश्चप्रयतात्मनाम्॥
इदंरसायनञ्चक्रेब्रह्मावार्पसहस्रिकम्॥
जराव्याधिप्रशमनंशुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ॥

अर्थ—बहुत पुराने समय में इसरसायन
को बशिष्ठ, कश्यप, अंगिरा, जमदग्नि,
भरद्वाज, भृशु तथा अन्यान्य वैसेही बहुत
से ऋषियों ने नियमित रीति से सेवन
किया था, इस के सेवन करने से वे, श्रम
व्याधि, जरा और अन्य रोगों से मुक्त
होकर महाबली होगये थे और इसके प्रभाव
से स्वेच्छापूर्वक तप करते रहे । तप, ब्रह्म-
चर्य, ध्यान, शान्ति और रसायन प्रयोगों के
द्वारा जो आयुकी वृद्धि होती है उसपर कुछ
प्रभुत्व नहीं होता है पहिले महर्षियों ने कोई
रसायन सेवन नहीं कीथी । ग्राम्य, धर्म,
अन्यकार्य तथा अत्रितेन्द्रियतामें भी अतुरन्त

होने से उनकी सिद्धि नहीं होसکتी है। यह सहस्रवार्षिकी रसायन ब्रह्माने बनाई है इस के सेवन करने से बुढ़ापा और रोग शान्त होजातेहैं तथा बुद्धिबल और इन्द्रियबल बढ़ताहै।
केवल आमलकरसायन ।

संवत्सरंपयोवृत्तिर्गवांमध्येवसेत्सदा । सा
वितीमनसाध्यायनृद्धं चारीजितेन्द्रियः ॥
संवत्सरान्तेर्पापीवापार्थीवाफाल्गुर्णितया
अहोपवासीशुद्धधर्मविश्यामलकीवनम् ॥
वृहत्फलाढ्यमारुह्यद्रुमंशाखागतंफलम् ॥
गृहीत्वापाणिनातिष्ठेज्जपनृद्धामृतंक्षणम् ॥
तदाह्यवश्यममृतं वसत्यामलकेक्षणम् ।
शर्करामधुकल्पानिस्नेहवन्तिमृदूनिच ॥
भवन्त्यमृतसंयोगात्तानियावन्तिभक्षयेत् ॥
जीवेद्दुर्षसहस्राणितावन्त्यागतयौवनः ॥
सौहित्यमेपांगत्वात्तुभवत्यमरसन्निभः ॥
स्वयंचास्योपतिष्ठन्ति श्रीर्विद्रावाक्यरूपिणी ॥

अर्थ—एक वर्ष पर्यन्त केवल दूध पीकर गौओंके बीच में रहै, मनमें सावित्रीका ध्यान करता हुआ ब्रह्मचर्य तथा जितेन्द्रिय व्रत धारण करे। जब इस तरह एक वर्ष व्यतीत होजाय तब एक दिन निराहार रहकर स्नानादि से पवित्र होकर पौष, माघ या फाल्गुनकी पूर्णमासी के दिन आंवले के वन में घुसजाय और एक बड़े आंवले के वृक्षपर जो फलों से लदा हो चढ़जाय और डालों से एक फल को हाथ से तोड़ कर ब्रह्मामृत मंत्र का जाप करे, इस जाप के करने से नाक्षण आंवले के फल में अमृत का संचार होगा और उस आंवले में शर्कराशुक्त मधुर

स्वाद होजायगा तथा वह सिग्ध और मृदु भी होगा, उसी समय आंवले को खाळे इस के सेवन करने से युवावस्थाही में सहस्रवर्ष पर्यन्त जीवैगा उस समय इन फलों को पेट भरकर खालेने से देवताओं के सदृश कांति होती है और लक्ष्मी तथा सरस्वती स्वयं उस के पास आकर वास करेंगी ।

लौह रसायन ।

त्रिफलायारसेमृत्तेगवांक्षोरचलावणे । क्र-
मेणचेषुदीक्षारोकिंशुकक्षारएवच ॥ ती-
क्ष्णायसस्यपत्राणिवन्दिहवर्णानिसाधयेत् ।
चतुरङ्गुलदीर्घाणिसमोत्सेधतनूनिच ॥
ज्ञात्वातान्यज्जनाभानिमूक्ष्मचूर्णानिकारये
त् । तानिचूर्णानिमधुनारसेनामलकस्यच ॥
युक्तानिलेहवत्कुम्भेस्थितानिघृतभाविते ।
संवत्सरंनिधेयानियवपल्लेतदेवच ॥
दद्यादालोडनंमासेसर्वत्रालोडयन्शुधः ॥
संवत्सरात्ययेतस्यप्रयोगोमधुसर्पिपा ॥
प्रातःप्रातर्वलापेक्षीसात्स्यज्जीर्णेचभोजन-
म् । एषएवचलोहानांप्रयोगःसम्भकीर्तितः
अनेनेवविधानेनहेम्नश्चरजतस्यच ॥
आयुःप्रकर्षकृत्सिद्धःप्रयोगःसर्वरोगनुत् ।
नाभिघातर्नचातर्केर्जरयानचमृत्पुना ॥
अधृष्यःस्याद्गजप्राणःसदाचातिवलेन्द्रियः
धीमान्यशस्वीचाविसद्भुतधारीमहाबलः
भवेत्सर्माप्रयुञ्जानोनरोलौहरसायनम् ।
अर्थ—कांतिसार लोहके चारअंगुल लम्बे चौड़े बहुत पतले पत्र धनवाकर अग्नि में सुरन्वासुरस्य गरमकर करके क्रम से त्रिफला के काथ, गोमूत्र, नमकक्षार, गोदीक्षार, पला-

शक्कर में भिजोवै, जब अंजनके समान रंग होजाय तब महीन पिसवा डाले । इस चूर्ण को शहत और आंवले के रस में सानकर लोहवत् करके घी के चिकने घडे में भरकर जोके ढेरमें बरस दिनतक दवा रखें, प्रति-मास इस घडे को निकाल कर कुम्भस्थ द्रव्यों को हिलाता रहै, बरस दिनके व्यतीत होने पर शहत और घी के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल बल के अनुसार इसकी मात्राका सेवन करे । औषधके पचने पर सात्व्य भोजनकरे ।

यह लौहरसायन का प्रयोग वर्णन किया गया है, इसीतरह सुवर्ण रसायन और रूप रसायन की भी विधि हैं । यह प्रयोग आयुवर्द्धक, सिद्ध और रोगनाशक है । इस प्रयोग के सेवन से चोट, रोग, बुढ़ापा और मृत्यु, कुछ असरनहीं करसक्ते हैं । उस के प्राण हाथीके समान दृढ हो जातेहैं । उस की इन्द्रियाँ अत्यन्त बलवान् होजाती हैं वह पुरुष धामान्, यशस्वी, वाक्सिद्ध, धृतधारी और महाबली होजाता है । इस लौहरसायन का प्रयोग एक वर्ष पर्यन्त करने से फलप्रद होता है ॥

ऐन्द्रिरसायन ।

ऐन्द्रिमत्स्याक्षिकोव्राह्मिवात्राहसुवर्चला
पिप्लयैलवर्णहेमशंखपुष्पीविषहृष्टतम् ।
एवान्निप्रवकान्भागान्हेमसर्पिर्विपैर्विना ॥
द्वौयवौतत्रेहन्नस्तुतिलन्द्याद्विपस्य च ।
सर्पिषधपलन्द्यात्तद्वैकध्वंमयोजयेत् ॥
घृतप्रभूतंसक्षौद्रज्जीर्णैश्चाभ्रंमशस्यते ॥
जराव्याधिमशमनंस्मृतिमेधाकरम्परम् ।

आयुष्यंपौष्टिकंवल्यंस्वरवर्णप्रसादनम् ॥
परमोजस्करंचैतत्तसिद्धमेततरसायनम् ।
नैनंप्रसहतेकृत्यानालक्ष्मीर्नविपन्नरुक् ॥
श्वित्रंसकुष्ठंजठराणितुल्माः घृहापुराणो
विपमज्वरश्च ॥ मेधास्मृतिज्ञानहराश्च
रोगाः शाम्यन्त्येननातिबलाश्चवाताः ॥

अर्थ... इन्द्रायणकीजड, मछैछी, ब्राह्मी, वच, ब्राह्मसांचोली, पापल, नमकये सब दोर जो भर लेवे, सुवर्ण दो जो, विष, तिलमर, घृत एक पल, इन सबको एकत्र करके सेवन करे ! इस औषध के पचने पर घृतप्लुत मधुमिश्रित भोजन करे ! यह रसायन जरा-नाशक, व्याधिशमनकर्ता, अत्यन्त स्मृतिवर्द्धक, मेधावर्द्धक, आयुवर्द्धक, पुष्टिकर्ता, बलकर, स्वरवर्द्धक, वर्णप्रसादक अत्यन्त ओजस्करहै इस सिद्ध रसायन को सेवन करनेवाले के पास न अलक्ष्मी, न विप और रोग जातेहैं । इस रसायन के सेवन से श्वित्रकुष्ठ, जठररोग तुल्मारोग, घृहा, विपमज्वर, पुरातनज्वर, मेधा-स्मृति-ज्ञाननाशकरोग, तथा बलवान् वातरोग नष्ट होजातेहैं ।

मेध्यरसायन ।

मण्डूकपर्ण्याःस्वरसःप्रयोज्यःक्षीरेणयष्टी
मधुकस्यचूर्णम् ॥ रसोगुहृच्यास्तुसमूल
पुष्प्याःकल्कःप्रयोज्यःखलुशंखपुष्प्याः ।
आयुः प्रदान्यामयनाशानानिबलाग्निव
र्णस्वरवर्द्धनानि ॥ मेध्यानिचैतानिरसा
यनानि मेध्याविशेषेणचशंखपुष्पी ।

अर्थ—दूधके साथ मण्डूकपर्णी का रस वा मुलहटीका चूर्ण, वा गिलोयका रसः

वा शलपुष्पी की जड़ और पुष्पका कल्क सेवन करने से आयु बढ़ती है, रोग नष्ट होजाते हैं, बल अग्नि, वर्ण और स्वर बढ़ते हैं । ये चारों रसायन मेधावर्द्धक हैं । इनमें से शंखपुष्पी अधिक मेधावर्द्धक है ।

पीपलरसायन ।

पञ्चपदसप्तदश वापिप्पलीर्षधुसार्पिणा ॥
रसायनगुणान्वेषीसामेकांभ्रयोजयेत् ।
तिस्रस्तिस्त्रस्तुपूर्वाङ्गेषुक्त्वाग्नेभोजनस्यच
पिप्पल्याःकिंशुकक्षारभावितामृतभर्जिताः।
प्रयोज्यामधुसार्पिभ्यांरसायनगुणैपिणा
जेतुद्भासंक्षयंशोपंश्वासंहिकाङ्गलामयान् ।
अर्शासिप्रहणीदोपंपांडुतांविषमज्वरम् ।
विस्वर्यपीनसंशोफंगुल्मवातवलासकम् ॥

अर्थ—जो रसायन के सदृश गुण चाहते हैं उन्हें उचित है कि प्रतिदिन पांच, छः सात, वा दश पीपल घृत और शहतके साथ एक वर्ष पर्यन्त सेवन करें । अथवा पीपलोंको ढाकके खारकी भावना देकर घृत में भूनलें और भोजन करने से पहिले प्रतिदिन दुपहरसे पूर्व शहत में मिलाकर तीन पीपल खाय तो खांसी, क्षय, शोष, श्वास, हिचकी, गलेकेरोग, अर्श, प्रहणारोग, पाण्डुरोग, विषमज्वर, विस्वरता, पनिस, शोक, गुल्म, वातरोग, कफरोग येसब नष्ट होजातेहैं वर्द्धमान्पीपल ।

कमवृद्ध्यादशाहानिदशपिप्पलिकंदिनम्
वर्द्धयत्पयसासार्द्धतथाचापनयेत्पुनः।जी
रोजोर्णचभुञ्जीतपष्टिकंक्षीरसर्पिणा ॥ पि-
प्पलीनांसहस्रस्यभयोगोऽथरसायनम् ।

पिष्टास्तावलिभिःसेव्याःशृतामध्यवलेनैः।
शीतीकृताहस्ववलयोज्यादोषामयान्प्रति
दशपिप्पलिकःश्रेष्ठोमध्यमःपद्मकीर्त्तताः।
वृंहणंस्वर्यमायुष्यप्लीहोदरविनाशनम् ॥
प्रयोगोयद्विपर्यन्तःसकनीयान्सचावलेः।
वयसःस्थापनंमध्यंपिप्पलीनारसायनम्॥

अर्थ—प्रतिदिन दश दश पीपल बढाता हुआ दुग्धके साथ सेवन करे । इसी तरह फिर घटाता हुआ लेजाय यह दश दिनका प्रयोग है औषध के पचनेपर दूध भात का भोजन करे । यह सहस्र पीपलों का प्रयोग रसायन है । बलवान् पुरुष इन सब को पीसकर सेवन करे, मध्यबलवाला पीपलों का काथ पान करे, ह्रस्वबलवाला पीपलों का शीत कपाय सेवन करे, इस तरह दोष और रोग के अनुसार इसका सेवन करे, यह छः की मध्यम और तीनकी निष्ठुर है यह दुर्बल पुरुषोंके लिये अच्छी है । वर्द्धमान् पीपल का सेवन वृंहणकर्षी स्वरवर्द्धक, शीहानाशक, उदररोगनाशक वयःस्थापनकर्ता और मेघ्य है ।

त्रिफला रसायन

जरणान्तेऽभयामेकांभ्राम्भुक्तेद्विभीतके
भुक्त्वातुमधुसार्पिभ्यांश्चत्वार्यामलकानि-
चाभ्रयोजयेत्सगामेकांभिफलायारसायनम्
जीवेद्दर्पशतंपूर्णमजरोन्व्याधिरेवच ॥

अर्थ—प्रथम दिनका आहार पचने पर ही प्रातः काल एक हरड खाडे, तदुपरान्त भोजन करने से पहले दो बहेडे खाडे,

भोजन करनेके पश्चात् शहत और घीके साथ चार आंवले खाले, इसतरह एकवर्ष पर्यन्त इस त्रिफला रसायनका सेवन करतारहै तौ अजर और व्याधिरहित होकर सौवर्षपर्यन्त जीता रहै ।

दूसरी त्रिफला रसायन ।

त्रैफलेनायसीपशीकल्केनालेपयेन्नवाम् ॥
तमहोरात्रिकंलेपंपिवेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम्
प्रभूतस्नेहमशनंजीर्णतत्रप्रशस्यते ॥ अज
रौऽहकसमाभ्यासाज्जीवेत्तस्यसमाश्रतम् ।

अर्थ—त्रिफला को घोटकर लुगदी बनाकर एक नवीन लोहेके पात्रपर छेप कर दिया करै और एकरातादिनतक उसी पर रहने दे दूसरे दिन उतारकर शहत और जडके साथ सेवन करै । औषधके पचने पर घृतप्लुत आहार करै इसतरह हरसदिन तक इस रसायन के सेवन करनेसे सौ वर्ष पर्यन्त अजर और अरोग रहकर जीतारहैगा ।

तीसरी त्रिफला रसायन ।

मधुकेनतुगाक्षीर्यापिप्यल्यात्तौद्रसर्पिषा ॥
त्रिफलासितयाचापियुक्तासिद्धंरसायनम् ।

अर्थ—मुलहठी वा बंशलोचन वा पीपलवा शहत और घृतके साथ भी त्रिफलाका सेवन करना रसायन है अथवा मिश्री के साथ त्रिफला की फकी लैवै ॥

चौथी त्रिफला रसायन

सर्वलोहे सुवर्णेनवचयामधुसर्पिषा ॥ वि
द्वक्षिप्यलीभ्यांचत्रिफलालवणेनच ।
संबत्सरप्रयोगेणमेधास्मृतिवल्प्रदा ॥ भ-
वत्याप्युवदाधन्याजरारोगानेवर्हेणौ ।

अर्थ—सब प्रकारके लोहोंके साथ बच के साथ, शहत घीके साथ, वायविडग पीपल के साथ अथवा लवण के साथ एक वर्ष तक त्रिफला का सेवन करना मेधावर्द्धक, स्मृति-कारक, बलप्रद, आयुवर्द्धक धन्य और जरा-रोगनाशक होता है ।

शिलाजतु प्रयोग ।

अनम्लश्चकपायश्चकटुपाकः शिलाजतु ।
नात्युष्णशीतंघातुभ्यः चतुर्भ्यस्तस्यसम्भ-
वः । हेमनश्चरजतात्तान्नाद्द्वरकृष्णायासाद-
पिः ॥ रसायनं तद्विधिभिस्तद्वृष्यन्तश्चरो
गनुत् । वातपित्तकफघ्नश्चनिर्युद्हेस्तत्सुभा-
वितम् ॥ वीर्योत्कर्षपरं च्यातिसंवेरैककशो-
ऽपिवा । मक्षिणोद्धृतमप्येनं पुनस्तत्प्रक्षि-
पेद्रसे ॥ कौष्णेसप्ताहमेतेनविधिनातस्य
भावना ॥ पूर्वोक्तेनविधानेनलोहैश्चूर्णी-
कृतैःसह ॥ तत्पीतंपयसादद्यादीर्घमायुः
सुखान्वितम् । जराव्याधिप्रशमनं देहदा-
र्ढ्यकरं परम् ॥ मेधास्मृतिकरं वल्यक्षीरं
शीतप्रयोजयेत् । प्रयोगः सप्तसप्ताहास्त्र-
यश्चैकथसप्तकः ॥

अर्थ—शिलाजीत अनम्ल, कपाय, कटुपाकी और शीतलतारहित होताहै ॥ यह सौचा रूपा, तांबा और लोहा इन चार धातुओं से उत्पन्न होताहै। इसमें से लोहज शिलाजतु उत्तम होताहै: इसका विधिपूर्वक सेवन करनेसे यह रसायन, वृष्य और रोगनाशकहै। वात पित्तकफनाशक द्रव्यों की इसे भावना देनेसे यह उत्तम वीर्यत्पादक होजाता है । इन तीनों प्रकार के क्षायोंको मिलकरा वा

अलग अलग कुल २ उष्णकाथकी शिला-
जीतको सात दिवस तक भावना देवै। यह
इसको भावना देनेकी विधि है। फिर इसको
पीसकर सब प्रकारके छेह चूर्णोंके साथ मि-
लाकर दूधके साथ पान करे तो दीर्घायु और
सुख मिले। यह शिलाजीत जराब्याधिनाशक
देहको अत्यन्त दृढकारक मेधावर्द्धक स्मृति-
कारक और धन्य है। इस पर दूधका अनु-
पान करे। इसके प्रयोगकी अत्राधि सात सप्ताह
तीन सप्ताह, और एक सप्ताह भी है।

शिलाजतुकी मात्रा ।

निर्दिष्टसिद्धिविधस्तस्यपरोमध्योवरस्तथा ।

प्लमर्द्धपलकपर्पोमात्रातस्यत्रिधामता ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम और निरुद्ध ये तीन
प्रकार की मात्रा शिलाजीत की हैं यथा एक
पलकी उत्तम आधेपलकी मध्यम और एक
कर्पकी निरुद्ध ।

शिलाजतुके जातिभेद ।

जातेर्विशेषसन्निधितस्यवक्ष्याम्यतः परम्
हेमाद्याः सूर्यसन्तताः स्रवन्तिगिरिधातवः ।

जत्वार्भमृदुमृत्स्नाभयन्मलतच्छिलाजतु

अर्थ—अब हम शिलाजतुकी भिन्न २ जा-
तियों का विधिपूर्वक वर्णन करते हैं। सूर्य
के तीव्रतासे सुवर्णादिक धातु जो पहाड़ों
से चुचा निकलती हैं उनमें लाखके सदृश
घोमल मृत्तिकाकी आभा के समान जो मैल
होताहै उसे शिलाजतु कहते हैं।

सुवर्णजशिलाजतुके लक्षण ।

मधुरश्चसत्तित्तश्चजपापुष्पानिभश्चयः ।

विपाकेकटुशीतश्चसुवर्णस्यानिस्रवः ॥

अर्थ—स्वादमें मधुर कुल तीखापन लिये
जपापुष्पके समान कान्तियुक्त, कटुपाकी और
शीत लक्षणोंसे युक्त सुवर्णजन्यशिलाजतुहोताहै।

रूप्यजशिलाजतु के लक्षण ।

रूप्यस्यकटुःश्वेतः शीतःस्वादुविपच्यते ।

अर्थ—कटु, श्वेतवर्ण, शीतल और पाक
में मधुर शिलाजतु रूप्यज होता है।

ताम्रजशिलाजतु के लक्षण ।

ताम्रस्यर्वाहकण्ठाभस्तिक्तोष्णःकटुपच्यते

अर्थ—मयूरके फंठके समान, तिक्त, उष्ण
और कटुपाकी शिलाजतु ताम्रज होताहै।

लौहज शिलाजतुके गुण ।

यस्तुगुलुकाभासत्तित्तकोलवणान्वितः ।

कटुर्विपाकेशीतश्चसर्वश्रेष्ठःसचायसः ॥

गोमूत्रगन्धयःसर्वसर्वकर्मसुयौगिकाः ।

रसायनप्रयोगेषुपश्चिमस्तुयिश्चिप्यते ॥

अर्थ—गुग्गुलुके समान कान्तिवाला, तिक्त
लवणरसयुक्त, कटुपाकी शीतल और गोमूत्र
की सी गन्धवाला शिलाजतु लौहज होताहै
यह सर्वमें अच्छा होता है। सब प्रकार के
शिलाजीत सब कामोंमें प्रयोग किये जाते हैं
परन्तु रसायन प्रयोगमें लौहज सर्वोत्कृष्टहोताहै।

शिलाजीत का गुण ।

यथाक्रमंवातापित्तश्लेष्मपित्तकफेन्निषु ।

विशेषतःभ्रशस्यन्तेमलाहेमादिधातुजाः ।

अर्थ—सुवर्णज शिलाजीत धातुपित्त को दूर
करता है, इसी तरह रूप्यजकफपित्तको ताम्र
ज कुष्ठको और लौहज सन्निपात को दूर करताहै।

शिलाजीत पर पथ्यापथ्य ।

शिलाजतुभयोगेषुविदाहीनिगुणैश्च

धर्जयत्सर्वकालन्कुलं तथान्परिवर्जयेत् ॥

तेहृत्यः तविरुद्धत्वादधमनोभेदनाः परम् ।

लोकेदृष्टास्ततस्तथाप्रयोगं प्रनिधिष्यते ॥

पयांसिशुक्तानिरसाः स्यूपाः तोयंसमूत्रम्

विचिधाः कथायाः आलोडनार्थं द्विरिजस्य

शस्तास्तेतेप्रयोज्याः प्रसमीक्ष्यकार्यम् ॥

नसोऽस्तिरोगोऽशुविसाध्यरूपः शिलाह-

र्ययन्नजयेत्प्रसह्य ॥ तत्कालयोगैर्विधिभिः

प्रयुक्तं स्वस्थस्यचोर्जाविपुलांददाति ॥

अर्थ—शिलाजीत सेवन करने बाला विदाही

और गुरु पदार्थोंको त्याग कर देवे कुलथी

का सर्वथा त्याग कर देवे ये शिलाजीत के

अत्यन्त विरुद्ध हैं और विशेष करके पत्थरका

भेदन करनेवाली है यह बात लौकिक प्रसिद्ध

है इसलिये कुलथी का प्रयोग निषेध किया

है । दूध शुक्त, मांसरस, मांसयूप, जल, गोमूत्र

तथा अन्यकषायोंमेंसे किसी के साथ रोगके

अनुसार शिलाजीत का प्रयोग किया जाता

है । पृथ्वीमें कोई ऐसा साम्य रोग नहीं है जो

शिलाजीतसे अच्छा न हो सक्ताहो । काला-

नुसार विधिवत् प्रयोग किये जाने से स्वस्थ

पुरुष को भी अत्यन्त बलकारक है ।

तृतीयपादका संनिप्तवर्णन

करप्रचितिकेपादेदशषट्चमहर्षिणा ।

रसायनानांसिद्धानांसंयोगाः समुदाहृताः

अर्थ—इस करप्रचितिक नाम पाद में

महर्षि पुनर्वसुने सिद्ध रसायनोंके सोलह प्रयो-

ग वर्णन किये हैं ।

इति करप्रचितिकोनामरसायनपादस्तृतीयः

चतुर्थः पादः ।

अथात आशुर्वेदसमुत्थानोपरसायनपाद-

व्याख्यास्योपइतिहंस्मोहभंगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर मर्गवान् आत्रेय बोले

कि अब हम आशुर्वेदीय समुत्थानक नाम च-

तुर्थ पादकी व्याख्या करते हैं ।

प्राचीन इतिहास ।

ऋषयः खलुकदाचिच्छालीनायाथावरा

श्रग्राम्योपध्याहारः सन्तः साम्पत्निका

मन्दचेष्टाश्रनातिकल्याणाश्च प्रायेणबभूवुः

तेसर्वासामितिकर्तव्यता नामसमर्थाः सन्तो

ग्राम्ययासकृतमात्मदोषं दत्त्वापूर्वनिवास-

मपगतग्राम्यदोषं मत्वाशिवंपुण्यमुदारं मेध्य

मगम्यमसुकृतिभिर्गङ्गाप्रभवममरगन्धर्वय-

ज्ञकिन्नरानुचरितमनेकरत्ननिचयमचि-

न्त्याहुतप्रभावं ब्रह्मर्षिसिद्धचारणानुचरि

तां दिव्यतीर्थोपधिप्रभावमतिशरण्याहिमव

न्तममराधिपतिगुप्तजग्मुः भृग्वह्नोरोऽत्रि-

वशिशुकदयपागस्त्वपुलस्त्यवामदेवासित

गौतमप्रभृतयो महर्षयः । तानिन्द्रः सहस्र

ह्रगमरगुरुवरोऽब्रवीत् । स्वागतं ब्रह्मविदां

ज्ञानतपोधनानां ब्रह्मर्षीणामस्ति । ननु

वोग्लानिरप्रभावत्वं वैश्वर्यं वैवर्ण्यञ्च ग्राम्य

यासकृतमसुखमसुखानुबन्धञ्च ग्राम्योहि

वासोमूलमज्ञानान्तकृतं पुण्यकृद्भिर-

नुग्रहः प्रजानां स्वशरीरमरक्षिभिः कालश्चा

यमाशुर्वेदोपदेशस्य ब्रह्मर्षीणामात्मनः प्रजा

नाञ्चानुग्रहार्थमाशुर्वेदमश्विनोमहं

प्रयच्छतां ॥

अर्थ—किसी समय ऐसा हुआ कि विनीत

स्वभाव और यज्ञशील ऋषिगण ग्राम्य और

पथ और आहारके सेवन से प्रायः मन्दचेष्टि-

त और उपापवहित होगये तथा अपने क-

स्वैव कामोक्ते करनेमें भी असमर्थ होगये । तब वे विचार करने लगे कि यह हमारे गाँवोंमें बसने के दोषका कारण है और यह निश्चय कर लिया कि पूर्व निवासही प्राप्य दोषोंसे रहित है इस हेतु से वे कल्याणमय पुण्य, उदार, पवित्र, पापियों से अगम्य, गंगाका उत्पत्तिस्थान देवता, गन्धर्व, यक्ष और किन्नरों से सेवित, नानाप्रकारके रत्नों से युक्त, अचिन्त्य अद्भुत प्रभावशाली, ब्रह्मर्षि सिद्ध चारणोंसे सेवित, दिव्यतार्थ्य और औपशोका प्रभवस्थान, अतिशरण्य (शरण लैने के योग्य) और इन्द्रसे रक्षित हिमालयपर गये । इन ऋषियोंमें भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, और असित गीतम आदि बहुतसे ऋषिये । सहस्राक्ष अमरेश्वर उन ऋषियों से कहने लगे कि हे ब्रह्मवित् ! हे ज्ञानधन ! हे तपो धन ! हे ब्रह्मर्षियो ! आपका आगमनशुभहै हे ऋषियों ! गाँवके रहनेसे आपलोगों के मुखपर ग्लानि, प्रभावहीनता, मन्दभाम्यता, विवर्णता, सुखहीनता तथा दुःखजनित चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं । प्राप्य वासही सब दुर्जों का मूलहै । आपलोगों ने अपने पुण्य स्वभावसे प्रजाके हितके लिये अपने शरीर का कुछ विचार न करके ग्रामोंमें बसना स्वीकार किया । यही आयुर्वेदके उपदेशका समय है, इस आयुर्वेदको ऋषिगण और अपनी प्रजाके अनुग्रहके लिये अश्विर्नाकुमारोंने मुझे सिलायाथा ।

आयुर्वेदोत्पात्तिक्रम ।

प्रजापतिरश्विभ्यां, प्रजापतयेब्रह्मा, प्रजा-

नामल्पमायुर्जराव्याधिवहुलमसुखमसुखानुबन्धं, अल्पत्वादल्पतपोदमनियमदानाध्ययनसञ्चयंमत्वापुण्यतममायुःप्रकर्षकरंजराव्याधिप्रशमनमूर्जस्करममृतंशिवंशरण्यमुदात्तंभवन्तोभक्तःश्रोतुमहत्सुपथारयितुं प्रकाशयितुञ्च प्रजानुग्रहार्थं भार्षद्ब्रह्मचमैत्रीङ्कारुण्यमात्मनश्चानुत्तमं पुण्यमुदारं ज्ञाह्यमक्षयं कर्मेति । तच्छ्रुत्वा विबुधपाति वचनमृपयः सर्वेष्वामरवरमृग्भिस्तुष्टुवुः महृष्टास्तद्ब्रह्मचनमभिननन्दुश्चेति । अथेन्द्रः तदायुर्वेदामृतमृषिभ्यः संक्रम्योवाच तत्सर्वमनुप्रेयमयञ्च शिवकालोरसायनानां दिव्याशौपधयो हि भवत प्रभवाः प्रासवीर्याः ॥

अर्थ—इसी आयुर्वेदका उपदेश प्रजापतिने अश्विर्नाकुमारोंको किया था । इसी आयुर्वेदका उपदेश ब्राह्मणे प्रजाओंको जराव्याधिप्रस्त, अल्पायु, असुख, अमुखानुबन्धी, अशुभकर्मकर्त्ता देखकर तथा अल्पायु होनेसे अल्पतप, इन्द्रियदमन, नियम, दान, अध्ययनकी ओर निरुत्साहित देखकर प्रजापति दक्षको उपदेश दियाथा कि जिससे ये उपाधियां शान्त होवें । यह आयुर्वेद पुण्यतम, आयुर्वर्द्धक जराव्याधिनाशक, बलकारक, अमृतोपम, कल्याणकारक, शरण्य और उदात्त है । इस आयुर्वेदको मुझे सुनिये धारण कीजिये और प्रजा के अनुग्रहके लिये इसका प्रकाश कीजिये क्योंकि ब्रह्माही ऋषियोंका आश्रितस्थान है, वही मैत्रीहै, मैत्रीही कारण्य है । आत्मा का कारण्यही उत्कृष्ट और उदार पुण्यहै वही पुण्य ब्राह्मणों और अक्षय कर्म है इन्द्रके

वचनको मुनकर सम्पूर्ण ऋषि ऋग्वेदोक्त मंत्रोत्त इन्द्रकी प्रदासाकरने लगे और प्रसन्न होकर उसकी बातको सराहने लगे । तदनन्तर इन्द्रने आयुर्वेदाष्टककी व्याख्या ऋषियोंसे की और कहा कि ये सब कर्म अनुष्ठानके योग्य हैं, रसायन बनानेका यही उत्तम काल है क्योंकि हिमालय पर उत्पन्न होनेवाली दिव्य औषधियां भी मौजूद हैं जो इस समय पूर्णवीर्य हैं ।

इन्द्रोक्त रसायन

तद्यथाएन्द्रीब्राह्मीपयस्याक्षीरपुष्पीश्रावणीमहाश्रावणीशतावरीविदारीजीवन्तीपुनर्नवानागबलास्थिरावचाच्छत्रातिच्छत्रामेदामहामेद्राजीवनीयाश्चान्याःपयसामयुक्ताः । पन्मासात्परमायुर्वयश्चतरुणमनामयत्वंस्वरवर्णसम्पदमुपचर्यमेधां स्मृतिमुत्तमबलमिष्टाश्वापरान्भावानावहन्तिसिद्धाः । इन्द्रोक्तरसायनम् ॥

अर्थ—इन्द्रायण, ब्राह्मी, काकोली, दुही श्रावणी, महाश्रावणी, सितावर, विदाकरीन्द, जीवन्ती, सांठ, नागबला, शालिपर्णी, वच, छत्रा, अतिछत्रा, मेदा, महामेदा, तथा अन्यान्य जीवनीय औषधोंको छः महीने तक दुग्धके साथ सेवन करें तो दीर्घायु, तरुणावस्था, निरोगता, स्वर और वर्णकी स्वच्छता पुर्या, मेधा, स्मृति, उत्तमबल, तथा और और भी इच्छित फलोंकी प्राप्ति होती है । यह इन्द्रोक्त रसायन है ॥

ब्रह्मसुवर्चलादि औषधियोंके लक्षण
ब्रह्मसुवर्चलानामौषधिर्यो हिरण्यक्षीरापुष्क

रसदृशपत्रा आदित्यपर्णीनामौषधिर्यासूर्यकान्तेतिविशायतेसुवर्णक्षीरासूर्यमण्डलाकारपुष्पीच । नारीनामौषधिरश्ववेलेतिविशायतेयापुनरजसदृशपत्रा । काष्ठगोधानामौषधिर्गोधाकारासर्पानामौषधिः सर्पाकारा । सोमनामौषधिराजपञ्चदशपर्णससोमइवहीयतेवर्धतेच । पद्मानामौषधिपद्माकारजरापद्मरक्तापद्मगन्धा । अजानामौषधिश्शुद्धीतिविशायते नीलानामौषधिमृत्नीलनीरानीलपुष्पालताप्रतानबहुला ।

अर्थ—एक ब्रह्मसुवर्चला औषध होती है जिसे हिन्दी में ब्रह्मसाचौली कहते हैं, इसका दूसरा नाम हिरण्यक्षीरा है, इसके पत्ते कमलके सदृश होते हैं । एक आदित्यपर्णी होती है उसे सूर्यकान्ता कहते हैं । इसका दृष्ट सुवर्णके समान पीला और फूल सूर्यमण्डलके आकार के सदृश होता है । एक नारी नामकी औषध होती है इसको अश्वबला कहते हैं, इसके पत्ते बकरे के समान होते हैं । एक काष्ठगोधा औषध होती है इसका आकार गोधाके सदृश होता है, सर्पा नामकी औषधी होती है इसका आकार सर्पका सा होता है । एक सोम औषध होती है इसे सोमलता भी कहते हैं यह औषधियोंकी राजा है, इसमें पन्द्रह पत्ते होते हैं, यह चन्द्रमाकी तरह घटती बढ़ती है अर्थात् शुक्लपक्ष में चन्द्रमाकी कलाके साथ एक एक पत्ता बढ़ता जाता है और कृष्णपक्ष में चन्द्रमाके घटने के साथही एक एक पत्ता घटता चला जाता है (इसका विशेष वर्णन सुश्रुत में भी होता

में लिखा है, एक पत्र नाम की औषधि है इसका आकार पत्र के समान होता है यह पत्र के सदृश लाल तथा पत्र के समान ही गंधयुक्त होती है । एक अजा नामकी औषधी होती है इसे अजसृंगी कहते हैं । एक नीला औषधी होती है इसका दूध और फूल नीले होते हैं इसमें छताप्रदान बहुत होते हैं ।

पूर्वोक्त औषधियोंकी सेवनविधि ।

इत्यासामग्रानामौषधीनां यांयामेषोषधिषु भेदतस्यास्तस्याः स्वरसस्यसौहित्यत्वात् स्नेहभावितायामार्द्रपलाशद्रोण्यांसाधिधानायादिग्वासाः शयीतातत्रमलीयतेपम्मासेनपुनःपुनःसम्भवतितस्याजम्पयःप्रत्यवस्थापनं पण्मासेन देवतानुकारी भवति । वयोवर्णस्वराकृतिष्वलप्रभाभिः । स्वयंचास्यसर्ववाचोगतानि प्रादुर्भवन्ति । दिव्यं चास्यचक्षुः श्रोत्रं भवति । गतिर्योजनसहस्रं दशवर्षसहस्राण्यायुरनुपद्रवंचेति ॥

अर्थ—इन आठ औषधियोंमें से जो मिलसके उसका पेट भरकर पान करले और तेल से पुपडांइई टकनेवाले एक ढाकको ट्रोणों में नम्रहोकर सौ जाय इसतरह छःमास में उसका पुनर्जन्महोजाता है । इसको बकरी के दूधका अनुपान करावे । छः महीनेमें वह मनुज्य वय वर्ण, स्वर आकृति, बल और प्रभा इन कर के देवताओं के सदृश होजाता है । भूत बातोंके विषय में स्फूर्ति होता है, इसके आंख और कान दिव्य होजाते हैं इसको सहस्र योजनकी गति और उपद्रवरहित दस सहस्र वर्षकी आयु होजाता है ।

भवतिचात्र ।

दिव्यानामौषधीनांयःप्रभावःसभवद्विधैः शक्यःसोढुमशक्यरतुनसोढुमकृतात्मभिः । औषधीनांमभावेणतिष्ठतांस्वेचवर्त्मनि । भवतान्निखिलंश्रेयःसर्वमवोपपत्स्यते ॥ वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्चप्रयतैर्नियतात्मभिः । शक्याऔषधयोद्येताःसेवितुंविषयाभिजाः तास्तुक्षेत्रगुणैस्तेषाम्मध्यमेनचकर्मणा । मृदुवीर्यतरास्तासांवीधिर्शेयःसएवतु ॥ पर्येष्टुन्ता प्रयोक्तुंवायेऽसमर्थाःसुरार्थिनः रसायनविधिस्तेषामयमःयःप्रशस्यते ॥

अर्थ—इन दिव्य औषधियोंका जो प्रभाव है उसको आपसरीकेही सहसक्त हैं और कोई आजितेन्द्रिय उनको नहीं सहसक्त है इन औषधियोंके प्रभावसे अपने अपने मार्गोंमें स्थित होकर आप सम्पूर्ण कल्याणोंको प्राप्त करसकेंगे । प्रयत्नवान् और जितेन्द्रिय वानप्रस्थाश्रमी और गृहस्थी इन रसायन औषधोंको सहन करसकेंगे यदि वे उनके देशकी उत्पन्न होंगी क्योंकि ये सब औषधियां क्षेत्रगुण से मृदुवीर्य होती हैं, इनकी क्रिया मध्यम होती है, परन्तु सेवनकी विधि एकही है ।

जो सुखामिलायी इन औषधोंके सेवन करने वा द्रुढनेमें असमर्थ हैं वे नीचे लिखी हुई विधि से सेवन करें ।

इन्द्रोक्तब्राह्मरसायन ।

वल्यानाञ्जीवनोयानां वृंहणीयाश्चयादश वयसःस्थापनानाञ्चखदरस्यासनस्यचाः खजूराणांमधूकानांमुस्तानामुत्पलस्यच । मृद्रीकानांविडङ्गानांविचायाःचित्रकस्यच ॥

शतावरीःपयस्यायाःपिप्पल्याजोद्वकस्य-
च । ऋद्धधानागवलापाश्चहरिद्रापापव
स्पच । त्रिफलाकण्टकायोश्चविदायाश्च
न्दनस्यतु । इक्षुणांशरमूलानांश्रीपर्ण्या
स्तिनिशस्यच ॥ रसाःशृषःकृष्यकृग्राहाः
पलाशक्षारएवच । एषांपलोन्वितान्भागान्
न्पयोगव्यचर्तुगुणम् ॥ द्वेषान्नेतिलतैलस्यद्वे
चगव्यस्यसर्पिपः । तत्साध्यंसर्वमेकत्रसु
सिद्धंसेनेहमुद्धरेत् ॥ तत्रामलकचूर्णाना
माढकंशतभावितम् । स्वरसेनैवदातव्यं
क्षौद्रस्पाभिन्नवस्यच । शर्कराचूर्णपात्र
श्चमस्यमेकंमदापयेत् । तुगासीर्याःसापि
प्ल्याःस्थाप्यंसमूर्ध्निछतंचतत् । शुचीक्षे
मार्तिकेकुम्भेप्रासार्यंयुतभावितो मात्राम-
ग्निसमांतस्यततऊर्ध्वम्प्रयोजयेत् ॥ हेम
ताम्रमवालानामयसःस्फटिकस्यच । सु-
क्तावैदूर्यशंखानांचूर्णानारजतस्यच ॥ प्र-
क्षिप्यपोडशीमात्राविहायायासमैथुनम्
जीर्णेजीर्णचमुद्धीतपट्टिकक्षीरसर्पिपा ॥
सर्वरोगप्रशमनंघृष्यमायुष्यमुत्तमम् । स-
त्वस्मृतिशरीराग्निबुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ।
परमर्जस्करंचैववर्णस्वरकरंतया । विपा
लक्ष्मीप्रशमनंसर्ववाचेगतप्रदम् ॥ सिद्धार्थ
ताञ्चाभिन्नवंवयश्चमजात्रियत्वश्चयश्च
लोके ॥ प्रयोज्यमिच्छद्भिरिदंयथावद्र
सायनंब्राह्ममुदारवीर्यम् ॥

अर्थ—वल्गु, जीवनीध, वृंहणीध, वयः-
स्थापन, इन गणोंकी दश दश औषधें त-
था खैर, असन, खजूर, महुआ, मोया, उ-
पल, दाल, वायावेडंग, वच, चीता, सिता-

वर, काकोली, पीपल, जौगक, ऋद्धि, ना-
गवला, हलदी, धौ, त्रिफला, कटेरी, विदा-
रीकंद, चन्दन, इक्षुरस, शरमूलरस, श्रीपर्णी-
रस, तिनिश और पलाशक्षीर ये सब एक
एक पल लेवे इन सब औषधियों से चौगुना
गौका दूध दोपात्र (आठक) तिलका तैल,
दोपात्र गौका धी इन सबको मिलाकर पका-
ये जब अच्छी तरह सिद्ध होजाय तब चि-
कनाई के भागको अलग निकाल लेवे, इस
में आंवलेके रससे सौ बार भावना दियाहुआ
आंवलेका चूर्ण एक आढक डाल देवे, न-
याशहत एक आढक, शर्करा एक आढक,
वंशलोचन और पीपल एक प्रस्थ डालकर
सबको मिलावेवे, फिर पन्द्रह दिनतक इसे
एक चिकनी घी की हांडीमें भरकर धरेदे
तदुपरान्त अग्निबलके अनुसार इसकी मात्रा
का प्रयोग करे । औषधकी मात्रासे सौलहवां
हिस्सा सुवर्ण, तांबा, मृगा, लोहा, स्फटिक
मोती, वैदूर्य, शंख और रूपे का चूर्ण मि-
लावे । औषधके सेनवकालमें परिश्रम और
मैथुनका परित्याग करदेवे । औषधके पचने
पर दूध घी मिलाकर चावलों का भात
खाय । यह रसायन सम्पूर्ण रोगोंकी नाश
करनेवाली, शृष्य और उत्तम आयुवर्द्धक है
सत्व स्मृति, शरीर, अग्नि, बुद्धि, और इन्द्रि-
यों में बलवर्द्धक है, यह अत्यन्त ऊर्जाकर,
वर्णप्रसादक, स्वरवर्द्धक, विष अलक्ष्मीनाशक
तथा वचन को सिद्ध करने वाला है इसरसा-
यनके सेवन करनेसे मनोवाञ्छित कार्योंकी
सिद्धि, नवीन वय, संततिप्रियत्व और लोक

में यश होता है । जो इन सब बातोंकी इच्छा करनेवाला है उसे उचित है कि वह इस उदात्तवीर्य ब्राह्मणसायन को सेवन करे ॥

समर्थानामरोगाणान्धीमतान्निर्नयतात्मनां
कुटीप्रवेशःक्षमिणांपरिच्छद्वयतांहितः।अ-
तोऽन्यथातुयेतेपांसौर्यमारुतकोविधिः ॥

ताभ्यांश्रेष्ठतरःपूर्वोविधिःसतुसुदुष्करः ।
रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन्व्याधयोयादि
यथास्वमौपधन्तेपांकार्यमुक्त्वारसायनम्

अर्थ—सामर्थ्यवान्, निरोगी, बुद्धिमान्
जितेन्द्रिय, क्षमावान् और परिच्छदवान्
(जिन के पास ओढ़ने पहरनेका सामान है)
पुरुषोंके लिये कुटीप्रावेशिक रसायन बहुत
अच्छी होती है । और जो ऊपरकहे हुये ल-
क्षणोंसे विपरीत लक्षणवाले हैं उनको सौर्य-
मारुतिक विधि अच्छी है, परन्तु इनमें पहिली
उत्तम और साध्य है । रसायन विधि में गढ-
बड होजानेसे यदि रोग उत्पन्न होजाय तो
रसायन सेवनको बन्दकरके प्रथम उनरोगों
की विधिपूर्वक चिकित्सा करे ।

विनारसायनरसायनवत्फल ॥

सत्यवादिनमक्रोधनिवृत्तमथमैशुनात् ॥

अहिंसकमनायासम्प्रशान्तांप्रियवादिनम्

याज्यशौचपरंधीरंदानानित्यंतपस्विनम् ।

देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धानेतरतम् ।

आनृशंस्यपरन्निर्त्यन्तित्यंकरुणवेदिनम् ॥

समजागरणंस्वप्नित्यंक्षीरघृताशिनम् ॥

देशकालप्रमाणज्ञयुक्तिशमनहृत्कृतम् ॥ श-

स्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ।

उपासितारं वृद्धानामास्तिकानांजितात्म

नांधर्मशास्त्रपरंविद्यान्तरंनित्यरसायनम् ॥

अर्थ—सत्यवादी, अक्रोधी, मद्य और मैथुनका
सेवन न करनेवाला, अहिंसक, अपरिश्रमी,
शान्त, प्रियवादी, यजनकर्ता, पवित्रतापरायण,

धीर, दानकर्ता, तपस्वी, गां, देवता, ब्राह्मण,
आचार्य, गुरु, वृद्ध, इनकी सेवामें परायण,

निश्चुरतारहित, दयापरायण, उचित कालमें
जगने और सोनेवाला, नित्यप्रति दूध, घी, खाने

वाला, देश और कालके प्रमाणका जानने-
वाला युक्तिज्ञ, अनहंकारी, सदाचार परायण, एक

धर्मबलम्भी, अच्छात्म ज्ञानवेत्ता, वृद्धोंका सेवक,
आस्तिक, और जितेन्द्रियों का उपासक, धर्म

शास्त्रपरायण पुरुष यद्यपि रसायन सेवन न करे
नौभी नित्यरसायन सेवन का फल प्राप्त करता है

गुणैरतैःसमुद्दिदैःप्रयुक्तेयोरसायनम् ।

रसायनगुणान्सर्वान्यथोक्तान्ससमश्नुते

अर्थ—जो पूर्वोक्त सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न
रसायनका सेवन करता है, वह यथोक्त रसा-
यन गुणों को प्राप्त करता है ।

रसायन के योग्यायोग्य पुरुष ।

यथास्थूलमनिर्वाहदोषानशरीरमानसा

रसायनगुणैर्जन्तुर्युज्यतेनफदाचन ॥ यं

गाहायुःप्रकर्षार्थंजरारोगनिवर्हणाः।मन

शरीरशुद्धानांसिध्यन्तिप्रयतात्मनाम् ।

तदेतन्न भवेद्वाच्यंसर्धमेवहतात्मसु । अर

जेभ्योद्दिजातेभ्यःशुभ्रूपायेपुनास्तिच

अर्थ—शारीर और मानसिक दोषों

विना दूरकिये जो पुरुष रसायन सेवन क-

हे उसको रसायनका कुछ फल नहीं मिल

है । आयुवर्द्धक और जरा व्याधिनाशक

योग वर्णन किये गये हैं वे मानसिक,

पूर्वक अश्विनीकुमारोंका पूजन करतेहैं ।

तो क्यामृत्यु, व्याधि और जराप्रस्त तथा सदाही दुखी मनुष्योंको अपने सुखके लिये वैद्योंका पूजन अनुचितहै? ॥

वैद्यका गुरुवत् पूजन ।

शीलवान्मतिमान्युक्तोद्विजातिःशास्त्रपारगः ॥ प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्य प्राणाचार्य्यः साहिसृत्ः ।

अर्थ—मनुष्यों को शीलवान्, मतिमान् द्विजाति, शास्त्रपारग और प्राणाचार्य वैद्यकी गुरुवत्, पूजा करनी चाहिये ।

विद्यासमाप्तौभियजस्वृतीयाजातिरुच्यते अश्रुतेवैद्यशब्दादिनवैद्यःपूर्वजन्मना ।

विद्यासमाप्तौब्राह्मन्वासन्वमार्षमथापिवां ॥

ध्रुवमावशतिज्ञानात्तस्माद्देवोत्रिजःसृत्ः ॥ नाभिध्यायेन्नचाक्रोशंदहितैर्नसमाचरेत् ॥

प्राणाचार्य्यबुधःकश्चिदिच्छन्नायुरनित्त्वरम् ॥

अर्थ—भियज् द्विजाति होताहै परन्तु वैद्यक विद्याको समाप्तकर लेनेपर त्रिजाति होजाता है, तबही यह वैद्य कहलाताहै । पूर्वजन्म द्वारा यह वैद्य नहीं कहलाताहै मनुष्य विद्या की समाप्तमें ब्राह्म वा आर्षसत्यमें निश्चय प्रवेश करताहै और फिर वैद्यका ज्ञान प्राप्त करने पर त्रिजकहलाताहै ।

जो मनुष्य दीर्घजीवनकी इच्छा करता है उसे उचितहै कि वैद्यको न गाली देनकोसे न उसके साथ कोई अहित कार्य्य करे ।

रोगी और वैद्यका धर्म

चिकित्सितस्तुसंश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमानवः नोपाकरोतिवैद्यायनास्तितस्येहानिष्कृतिः

भियगप्यातुरान्स्वस्वतानिवयन्वान्

आवाधेभ्योद्विसरसेदिच्छन्धम्ममनुत्तमम् ॥

अर्थ—यह प्रतिज्ञा करने पर कि मैं असुक्त उपकार करूंगा और आराम होने पर वैद्यके लिये यदि वह उपकार न किया जाय तो उसका कल्याण नहींहै और वैद्यकोभी उचित है कि सम्पूर्ण रोगियोंको अपने पुत्रके समान देने और उत्तमोत्तम धर्मप्राप्तिको इच्छा करता हुआ रोगों से उसकी रक्षा करे ।

धर्मार्थार्थकामार्थमायुर्वेदोमहर्षिभिः ॥ ॥

प्रकाशितोधर्मपरैरिच्छद्भिःस्थानमक्षरम्

नार्यार्थनापिकामार्थमथभूतदयां प्रति ॥

वर्ततेयःचिकित्सायांससर्वमतिवर्तते ।

अर्थ—महर्षियोंने धर्म अर्थ और कामकी प्राप्तिके लिये आयुर्वेदका प्रकाश किया क्योंकि वे धर्मपरायणथे और उनकी इच्छा मोक्ष धाम प्राप्त करनेकी थी । जो पिना अपनी किसी अर्थकामकी स्वार्थ सिद्धिके केवल प्राणियों पर दयाकर के चिकित्सा में प्रवृत्त होते हैं वे सर्वोच्छेद्य होते हैं ।

जीविकार्थ चिकित्सा निषेध ।

कुर्वतेयेतुष्ट्यर्थंचिकित्सापण्याविक्रयम् ॥

तेहित्वाकाश्चनराशिपांसुराशिमुपासते ।

अर्थ—जो जीविकार्थके लिये चिकित्सा को धेचते है वे सुवर्णके ढेरको छोडकर धूलके ढेरको समेटते हैं ।

वैद्यको यज्ञमाप्तिका उपाय ।

दारुणैः कृत्वा तां गदवैद्यैः

चित्तेनैवस्वतान्प्राणाजं

धर्मार्थसदृशस्तस्यदातानेहोपलभ्यते ॥

नहिजीवितदानादिदानमन्यद्विशिष्यते।
परोभूतदयार्थमइतिमत्वाचिकित्सया ॥

वर्ततेयःससिद्धार्थःसुखमत्यन्तमश्नुते ।

अर्थ—मनुष्य दारुण रोगोंसे पीडित हो-
कर यमालयकी ओर आकर्षित होतेहैं । जो
यमपाशोंका छेदन करके जीवदान देताहै उ-
सके समान धर्मार्थपरायण और दाता इस
संसारमें दूसरा नहींहै । जीवदानके अतिरिक्त
और कोई विशेष दान नहींहै । प्राणियोंमें
दया करनेसे अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं
है इस बात को जानकर जो चिकित्सामें
प्रवृत्त होतेहैं उन्हींका मनोरथ सिद्ध होताहै
और वेही सुख भोगते हैं ।

इस पादका संक्षिप्त वर्णन ।

आयुर्वेदसमुत्थानदिव्यौषधिविधिःशुभः।

अमृताल्पान्तरगुणंसिद्धंरत्नरसायनम् ॥

सिद्धेभ्योब्रह्मचारिभ्योयदुवाचामरेश्वरः

आयुर्वेदसमुत्थानेतत्सर्वसम्पकाशितम् ।

अर्थ—इस आयुर्वेदकी उत्पत्ति, दिव्य
रसायनोंके प्रयोग तथा जो कुछ इन्द्रने ऋ-
षि महारभओंसे कहाहै वह सब इस पाद में
वर्णन किया गया है ।

आयुर्वेदसमुत्थानयोरसायनपादःचतुर्थः।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशाविरचिता
यां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सि-
तस्थाने रसायने विकल्पनो नाम प्रथमोऽध्यायः १

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथातःसंयोगशरमूलीयंवाजीकरणपादं
व्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले

रमूलीय वाजीकरणपादकी व्याख्याकरेंगे ।

वाजीकरणके गुण ।

वाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषो नित्यमाःमवा-
न् । तदायत्तौहिधर्मार्थीमीतिश्चयज्ञपवच

पुत्रस्यायतनंक्षेतद्गुणाश्चैतमुताश्रयाः ।

वाजीकरणमग्न्यूश्चक्षेत्रस्त्रीयामहर्षिणी ॥

अर्थ—जितेन्द्रिय पुरुषको नित्यही वाजी-
करण करना चाहिये, क्योंकि धर्म, अर्थ,
प्रीति और यशसे वाजीकरणकेही आश्रित
हैं । पुत्र भी वाजीकरण केही आश्रित है
और पूर्वोक्त धर्मार्थदि चारों गुण पुत्रके आ-
श्रितहैं और रोम रोममें हर्ष उत्पन्न करनेया-
ली स्त्री वाजीकरणका सर्वोत्तम क्षेत्र है अ-
र्थात् वाजीकरण सेवनका फल स्त्रीमें प्रकट होताहै

इष्टाद्येकेकशोऽप्यर्थाःपरंमीतिकराःस्मृताः

किंपुनःस्त्रीशरीरेयेसंघातेनव्यवस्थिताः ।

संघातोहीन्द्रियार्थानांस्त्रीपुनान्यत्राविद्यते ।

स्याश्रयोहीन्द्रियार्थेयःसप्रीतिजननोऽ

धिकः ॥ स्त्रीपुप्रीतिविशेषणस्त्रीपवपत्यंम

तिष्ठितम् । धर्मार्थोस्त्रीपुलक्ष्मीश्चस्त्रीपु

लोकाःप्रातीष्ठिताः ॥

अर्थ—रूपरसादि इन्द्रियोंके पांचों विषय
अत्यन्त प्रीतिकारक वर्णन कियेगयेहैं, और
जब ये पांचों विषय एक स्त्रीमें एकट्टे हैं तो
स्त्री अत्यन्तप्रीतिकी खानहीस्त्रियोंके अतिरिक्त
ये विषय और किसीजगह एकत्रित नहींहै।
जो इन्द्रियार्थ स्त्रीमें आश्रितहै वह अत्यन्त प्रांनि-
वर्द्धकहै । विशेषकरके स्त्रियों मेंही प्रीति प्राति-
ष्ठित और स्त्रियोंमेंही सन्तान प्रातिष्ठितहै, धर्म
और अर्थ स्त्रियोंमेंही प्रातिष्ठितहै, इसी तरह लक्ष्मी

प्रयोजयेत् ॥ एषदृष्यः परोयोगो वृहणो व-
लवर्द्धनः ॥ अनेनाश्वइवोदीर्णो लिङ्गम-
र्षयते स्त्रियाम् ॥

अर्थ—शरमूल, इक्षुमूल, काण्डेक्षु, इक्षु-
बालिका, सितावर, क्षीरफाकोली, विदारी-
गंध, कटेरी, जीवन्ती, जीवक, मेदा, घीर
(बाराहीकन्द) ऋषभक, खरैटी, ऋद्धि,
गोखरू, रास्ना, केंच, सांठ, इन सवको
तीन तीन पल लेवै । एक आढक मापकलाय
इन सबको मिलाकर एक द्रोण जलमें चढा-
दे और चौथाई शेष रहने पर उतार लेवै
फिर इसमें मुलहटी, दाख, अंजीर, पीपल,
केंच, महुआ, खिजूर, सितावर ये सब पीस
कर मिलादेवै । फिर विदारीकंदका रस, आंघ-
लेका रस, ईखका रस और घी ये चारों
एक २ आढक और एक द्रोण दूध चढा
कर पकावै पकते पकते जब घी वचरहै त-
ब उसे छानले फिर उसमें शर्करा और व-
शलोचन एक एक प्रस्थ, पीपल चारपल,
फाली मिरच एक पल, दालचीनी आधे
पल, इलायची आधेपल, केसर आधेपल
और शहत दो कुडब डालकर सबको मिला
लेवै । इसमें से एक एक पलकी गोली
बनाकर-अग्निबलके अनुसार प्रयोग करै ।
यह योग अत्यन्त वृष्य, वृहणकर्ता और
बलवर्द्धक होताहै । इस प्रयोगके सेवन क-
रनेसे अश्वत् खीगमन में प्रवृत्त होवै ।

वाजीकारण घृत ।

मापाणामात्मगुप्तायाबीजानामाढकंनवम्
जीवकर्षभकौवीरामेदामृद्धिशतावरीम् ।
गंधुकंचाश्वगन्धाश्चसापयेत्कुडबोन्मि-

ताम् ॥ रसेतस्मिन्घृतप्रस्थंगव्यंदशगुण-
पयः । विदारीणारसप्रस्थंप्रस्थमिधुरस-
स्यच । दत्वामृद्भिनासाध्यंसिद्धंसर्पि-
निधापयेत् । शर्करायास्तुगाक्षीर्याः क्षौद्र-
स्यचपृथक्पृथक् ॥ भागांश्चतुष्पलांस्तत्र
पिप्पल्याश्चावपेत्पलम् ।
पलपूर्वमतोलीद्वाततोन्नमुप योजयेत् ॥

यद्दृच्छेदक्षयंशुक्रंशंफसथोत्तमवलम् ॥

अर्थ—नये उरद एक आढक, नये केंच
के बीज एक आढक, जीवक, ऋषभक, बारा-
हीकंद, मेदा, सितावर, मुलहटी और असगंध
इनसबको एक एक कुडब लेवै चौगुने जल
में चढाकर चौथाई शेष रहने पर उतारकर
छानले फिर उस में एक प्रस्थ गौका घी,
दसगुना दूध, विदारीकन्दका रस एकप्रस्थ,
ईखका रस एक प्रस्थ इन सवको मिलाकर
मन्दी मन्दी आग पर पकावै, जब घृत शेष
रहजाय तब उसे निकालकर शर्करा, वशलो-
चन, शहत प्रत्येक चार चार पल, पीपल
एक पल लेकर ऊपर कहेहुए गुटकाकी तरह
एक २ पलका सेवन करै, औषध सेवन के
पश्चात् भोजन करै । इसके सेवन करनेसे
शुक्र अक्षय और पुंजननेन्द्रिय अत्यन्त बलिष्ठ
होजाती है ॥

वाजीकारण पिण्डरस ।

शर्करामापविदलास्तुगाक्षीरीपयोघृतम्
गोधूमचूर्णपशानिसर्पिष्युत्कारिकांपचेत्
तानातिपकामृदितांकौवकुटेमधुरेरेसे ॥
सुगन्धेप्रक्षिपेदुष्णैयथासान्द्रोभवेद्रसः ।
एषापिण्डरसोदृष्यः पौष्टिकोवलवर्द्धनः
अनेनाश्वइवोदीर्णोवलीलिङ्गसमर्षयेत्

शिखितिचिरिहंसानामेवंपिण्डरसोमतः॥

अर्थ—शर्करा, उरदकी दाळ का चून, वंशलोचन, दूध, घी, और गेहूँका चून इन सबको मिलाकर लपसी बनावे । पकाते समय जब कुछ पकजाय तबही इसमें कुनकुटमांसरस डालदेवै और गरममें ही सुगंधित द्रव्य इलायची आदि डालकर धीरेधीरे चलाता रहै यहाँतक कि वह गाढापडजाय । यह पिण्डरस अत्यन्त वृष्य पुष्टिकर्ता और बलवर्द्धक होता है, इसके सेवन से घोडेके समान रति करने में इच्छा होती है । मोर, तीतर और हंसों का पिण्डरस भी इसीतरह बनता है ।

बलकारकरस ।

घृतमापान्सवस्ताण्डानसाधयेन्माहिपेरसे । भर्जयेत्तरसंपूर्तफलाम्लंनवसर्पिपि ॥
ईपत्सलवणंयुक्तंधान्यजीरकनागरैः ।

एषवृष्यश्वदल्यश्वदृहणश्वरसोत्तमः॥

अर्थ—घी, उरद, बकरेके अंडकोप इनको भेंसके मांसरसमें पकाकर रसको निकाल लेवै इन रसमें ताजी घी, फलोंकी खटाई, थोडा सा नमक धनियां, जीरा, सोंठ मिलाकर सेवन करै । यह रस वृष्य, बलकर्ता, वृहणकर्ता और बहुत उत्तम होता है ।

दूसरा वृष्यरस ।

चटकस्तिचारिरसेतिचिरीनकौक्कुटेरसेकुक्कुटान्वाहिरणरसेहासेवाहिरणमेवचानवसर्पिपिसन्तप्तान्फलाम्लान्कारयेद्रसान् । मधुरान्वायथासात्सर्गन्धाह्वान्बलवर्द्धनान् ॥

अर्थ—चटकमांसको तीतरके मांसरस में, तीतरके मांसको मुर्गेके मांसरसमें, मुर्गमांसको मोरके मांसरसमें, मोरमांस को हंसके मांसरस

में सिद्ध करके गरम गरम को ताजी घी में छोंककर अनारदाने की खटाई और इलायची आदि मसाले डालकर मिश्रीसे मीठा कर के सेवन करै तो बलकी वृद्धि होय ।

वृष्यमांस ।

हृषिश्वटककर्मासांनांगत्वायोऽनुपिवेत्यप्यः नतस्यवलशैथिल्यंस्यान्नशुक्रक्षयोनिशी ।

अर्थ—जोपेट भरकर श्वटककर्मांस खाकर ऊपरसे दूधपीले रात्रि में उसका घल तथा शुक्र कभी क्षीण न होगा ।

वृष्य प्रयोग ।

मापयूपेणयोश्चुक्वाघृताढ्यंपाष्टिकौदनम् । पयःपिवतिरात्रिसकृत्स्नांजागर्त्सिवेगवान् ननास्वपितिरात्रीपुनिस्तब्धेनचशेफशा ॥
तप्तःकुक्कुटमांसानांभृष्टानांनक्ररेतसिनिःस्त्रान्पमत्स्पाण्डरसंभृष्टसर्पिपिभक्षयेत् ॥
हंसवाहिरणदक्षणांमेवमण्डानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—मांयूप के साथ घृतप्लुत भात खाकर उपरसे दूध पीवे वह ऐसा वेगवान् होजाय कि रात्रिभर न सोवै । अथवा मगर के वीर्यमें मुर्गेके मांसको भूनकर तृप्ति पर्यन्त सेवन करै तो शेफकी निस्तब्धतासे रात्रिमें नींद न आवे । अथवा मछली के अंडोंके रसको निकालकर घृतमें भूनकर खाय अथवा हंस, मोर या मुर्गेके अंडोंके रसको इसी तरह सेवन करै तो वाजीकरण होता है ।

वाजीकरण सेवनीविधि ।

स्रोतःमुशुद्धेज्यमलेशरीरेवृष्यंयदाद्यं हितमत्तिकालेवृष्यायतेतेनपरमनुष्यः । तद्बृहणञ्चैवलमदञ्च । तस्मात्पुराशोधनमेवंकार्यंवलानुरूपंनदिवृष्ययोगाः ।

सिध्यन्ति देहे मलिने प्रयुक्ताः स्त्रियेषु यावाः सिरागयोगाः ॥

सिरागयोगाः ॥

अर्थ—शरीरके शुद्ध होनेपर तथा स्रोतः-

समूह के शुद्ध होनेपर यदि वृष्यपदार्थोंका

सेवन कियाजाय तो उसके सेवन से मनुष्य

बैलके समान वृष्य होजाताह और उसही समय

वह वृष्य पदार्थ वृंहणकर्ता औरबलवर्द्ध होता

है। इसलिये पदार्थोंके सेवनसे पहिले वमन विरे

चनादिसे शरीरको शुद्धकर लेना चाहिये बिना

देह की शुद्धिके वृष्य योग निष्फल होतेहैं जैसे

मैले वस्त्रको रंगनेसे उसपर रंग नहीं चढताहै

। प्रथम पादका संक्षिप्त वर्णन ।

वाजीकरणसामर्थ्यक्षेत्रस्त्रीयस्य चैव यः ॥

येदोषानिरपत्यानां गुणाः पुत्रवताश्च ये ।

उक्तास्ते शरमूलीये पादे पुष्टिवलपदाः ॥

शुभश्च च संयोगावीर्य्यापत्याविवर्द्धनाः ॥

अर्थ—इस शरमूलीय नामक प्रथम पाद में

वाजीकरणके योग्य स्त्रीको क्षेत्रत्व, जिसको

जो स्त्री वाजीकरण योग्य, निःसन्तानपुरुष

के दोष, सन्तानवाले पुरुषके गुण तथा पुष्टि

और बल बढ़ाने वाले, वीर्योत्पादक तथा सन्तानोत्पादक ६ पन्द्रह प्रयोगोंका वर्णन किया गयाहै

चिकित्सेतेशरमूलीयो वाजीकरण पादः प्रथमः ॥

द्वितीयपादः ।

अथात आसिक्तशरीर्या वाजीकरणपादे

व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः-

अर्थ—तदनन्तर भगवान् अत्रेय बोले

कि-अब हम आसिक्तशरीर्या नाम द्वितीय

पादकी व्याख्या करेंगे ।

सन्तानोत्पादक गुटिका ।

आसिक्तशरीरमापूर्णमधुष्कं शुद्धपष्टिकम् ।

अथ...

शुष्णां विमर्दिते शरीरे पीडयेत् सुसमाहितः ।

गृहीत्वा तं रसं पूतंगव्येन पयसा सह ।

वीजा नामात्मगुप्ताया धान्यमापरसेन च ॥

बला याः सूर्पपर्ण्योश्च जीवन्त्या जीवकस्य च ।

ऋद्धर्षभककाकोलीश्वदंष्ट्रामधुकस्य च ॥

शता वर्त्याविदार्याश्च द्राक्षाखजूरयोरपि ।

संयुक्तं मात्रया वैद्यः साधयेत्तत्र चावपेत् ॥

तुगोक्षीर्या समापाणां शालीनां पष्टिकस्य च ।

गोधूमानाञ्च चूर्णानियैः ससान्द्रीभवेद्रसः

सान्द्रीभूतञ्च तं कुर्यात् मभूतमधुशर्करम् ।

शुटिकावदरैस्तुल्यास्ताश्च सर्पिपिसाधयेत् ॥

तायथग्निमुज्जानः क्षीरमांसरसाशनः ।

पश्यत्यपत्यं विपुलं वृद्धोऽप्यात्मजमक्षयम् ॥

अर्थ—पूर्णरस, हरे और शुद्ध साठी

चांत्रलोंको दूधमें भिजोवै जब बहुत भी-

जजाय तब उन्हें खरल करले और दूधमें

घोलकर बस्त्र में छानलेवै । इस रस में

गोका दूध मिलावै । फिर इसमें केंचके

बीज, धनिया, मापरस, खरैटी, मुद्गपर्णी

मापपर्णी, जीवन्ती, जीवक, आदि, ऋषभक

काकोली, गोक्षर, मुलहठी, सितार, विदार

रीकन्द, दाख, खिजूर, इन सबका काथ उ-

समें मिलाकर पकालेवै जब ये पकने पर

आजाय तब बंशलोचन, उरदका चून,

शाठी चांवलका चून, पष्टिक चून, गेहूँका

चून इन को घी में भूनकर उसमें डालदे

और कलछीसे चलाता रहै जबतक वह गा-

ढा होजाय, गाढा होनेपर दाहत और सकेद

बुरा बहुतसा डालदे, फिर इसकी बेरकी

बराबर गोली बनाकर घी में तल लेवै ।

अपनी अग्निके बलके अनुसार इमका से-

वनकर और ऊपर खूब दूध पीवे, खूबमांसरस पीवे । इस बाजीकरणके सेवन करने से बुढापमे भी दार्ढ्यजात्री सन्तान होती है ।

द्वितीय प्रयोग ।

चटकानांसहसा नादक्षाणांशिखिनांतथा

शिशुमारस्यनकस्याभिपक्वशुक्राणिसंहेरत्

गव्यंसार्पिर्वराहस्यकुलिङ्गस्यवसामपि ।

पष्टिकानाञ्चचूर्णानिचूर्णगोधूममेवच ॥

एभिःपूपलिकाःकाय्याःशक्नुल्योवर्तिका

स्तथा ॥ पूपाधानाश्चविधाभक्ष्याश्च ।

न्येवृथग्विधाः । एषांप्रयोगाद्भक्ष्याणां

स्तब्धेनापूर्णे रसा ॥ शेषसावाजिवद्या

तियावदिच्छंस्त्रियोनरः ।

अर्थ—चटक, हंस, मुर्गी, मोर, शिशुमार

और मगरका बौर्य लवे तथा गौका घी

शुकरकी चर्बी, चटककी चर्बी तथा चानलों

का चून और गेहूँका चून इनसबको मिला-

कर पूरी. शक्नुली बावाटी अथवा और तरह

तरहके भक्ष्य पदार्थ बनालेवै । इनका सेवन

करनेसे शैफेन्द्रिय स्तब्ध और शुक्रसे भरी

हुई रहती है अथच पुरुष इच्छानुसार स्त्री

गमन करसकता है ।

तीसरा प्रयोग ।

आत्मगुप्ताफलमापःखर्जूरानिशतावरीम्

शृङ्गाटकानिमृद्धीकांसाधयेत्प्रसृतोन्मितां

क्षीरप्रस्थंजलप्रस्थंपतत्प्रस्थावशेषतम् ।

शुद्धेनवाससापृतंयोजयेत्प्रसृतैस्त्रिभिः ।

शंकरायास्तुगादीर्याःसर्पिषोऽभिनवस्य

च ॥ तत्पाययेतसञ्चैद्रपष्टिकान्नश्चभोजये

त् । जरापरीतोऽप्यबलोयोगेनानेनविन्द

ति ॥ नरोऽपत्यंमुविपुलंयुंवेवचसहृष्याति

अर्थ—केंचकेबीज, उरद, खिजूर, सितावर-

सिघाडे और दाख इनसबको एक एक प्र-

सृत (८ तोले) लेवे इनमें एक प्रस्थ दूध

और एक प्रस्थ [६४ तोले] जल डालकर

सिद्ध करै । एक प्रस्थ जल शेष रहने पर

उत्तारकर छान डाले और इस रसमें शर्करा,

वंशलोचन और तार्जा घी प्रत्येक तान तीन

प्रसृत मिलादेवै इस आपैध को शहतमें मिलाकर

सेवनकरे चांवलका भात खाय, जराप्रस्त आ-

र निर्बल मनुष्य भी इसके सेवनसे युवाकी तर-

ह आल्हादित होकर बहुत सन्तान प्राप्तकरेगा

चौथा प्रयोग

खर्जूरिमस्तकंमापान्पर्यासांशतावरीम्

खर्जूराणिमधूकानिमृद्धीकामजडाफलम्

पलोन्मितानिमतिमान्साधयेत्सलिलाढ

के । तेनपादावशेषेणक्षीरप्रस्थंत्रिपाचयेत् ।

क्षीरशेषेणतेनाद्यात्तृताढ्यंपष्टिकांदिनम् ॥

सशर्करेणसंयोगेपवृष्यःपरस्मृतः ।

अर्थ—खिजूर, उरद, क्षीरकाकोली, सिता-

वर, खिजूर, महुआ, दाख, केंचके बीज

इन सबको एक एक पल लेकर एक आढक

जलमें चढ़ादेवै जब चौथाई रहजाय तब

छानकर इस रसमें एक प्रस्थ दूध पकावै

जब जल जलजाय और दूध शेष रहजाय

तब उसका सेवनकरै । ऊपरसे घृतप्लुत

भातका भोजनकरे भातमें सफेद दूरागी मि-

लालेवै । यह अत्यन्त वृष्य योग है ।

पाँचवां प्रयोग ।

जीवकर्षभकौभेदांजीवन्तींश्रावणीद्वयम् ॥

खर्जूरंमधुकंद्राक्षांपिप्पलीविश्वभेषजम् ।

शृङ्गाटकींविदारञ्चिनवसार्पःपयोजलम्

शहत और खांड मिलाकर पानकरै तौ नि-
श्चय सन्तान होय ।

अन्यप्रयोग ॥

त्रिंशत्सुपिष्टाःपिप्पल्यःप्रकुञ्चेतैलसार्पिपोः
भृष्टाःसशर्कराक्षौद्राःक्षीरधारावदोहिताः।
पीत्वाययावलञ्चोद्धपष्टिकंक्षीरसार्पिपा।
धृक्त्वानरात्रिमस्तब्धंलिङ्गंपश्यतिनाशरत्

अर्थ—तीस पीपलों को पीसकर चार तो-
ले घी तेल में भून लेवै, फिर इसमें खांड
और घी मिलाकर एक पात्रमें धरले और
उसी पात्रमें गौ का दूध दोहकर बलके
अनुमार पान करै और ऊपर से दूध, घी
और भातका भोजन करै तो रात्रिभर शोफेन्द्रिय
शिथिल न होगी और स्तम्भता भी होगी ॥

अन्यप्रयोग ॥

श्वदंष्ट्रायाविदाय्याश्चरसेक्षीरचतुर्गुणे ।
घृताढ्यःसाधितोवृष्यामापपाष्टिकपायसः॥

अर्थ—गोखरुकारस, विदारीकन्दकारस इ-
न दोनोसँ चैगुना दूध लेकर उरद और
सठौचांवल्की खीर बनाकर घी डालकर
भोजनकरै तो यह भी वृष्य है ॥

अन्यप्रयोग ॥

फलानांजीवनीयानांस्निग्धानांरुचिका-
रिणाम् । कुडवश्चूर्णितानांस्यात्स्वयंगुप्ता
फलस्यच ॥ कुडवश्चैवमापाणांद्वाद्वाच
तिलमुद्गयोः। गोधूमशालिचूर्णानांकुडव कु
डवोभवेत् ॥ सर्पिपःकुडवश्चकस्तत्सर्वे
क्षीरसंयुतम् । पक्त्वापूपालिकाःखादेद्द
द्यःस्युर्यादियांपितः ॥

अर्थ—स्निग्ध और रुचिकारक जीवनीय
गणोक्त द्रव्योंके फलोंका एक कुडवचूर्ण, के

चके वीजोंका चूर्ण एक कुडव, उरद का
चूर्ण दोकुडव, तिलकाचून दोकुडव, मूंगका
चून दोकुडव, गेहूँकाचून एककुडव, शाली-
चांवलों का चून एक कुडव घी, दो कुडव
इन सबको दूधमें मांडकर घीमें उतार लेवै।
परन्तु जिसके बहुत छियां हो वही इसका
प्रयोग करै ॥

अन्यप्रयोग ॥

घृतंशतावरीगर्भक्षीरेदशगुणेपचेत् । शर्क-
रापिप्पलीक्षौद्रयुक्तंत्ववृष्यमुत्तमम् ॥

अर्थ—घी और सितावरकी गुली को दस
गुने दूध में पकावे फिर इस में खांड, पी-
पल और शहत मिलाकर भोजन करै तौ
वह उत्तम वृष्य प्रयोग होवै ॥

अन्यप्रयोग ॥

कर्पमधूकचूर्णस्यघृतक्षौद्रैसमांशिकम् ।
प्रयुक्तैःपयश्चानुनित्यवेगःसनाभवेत् ॥

अर्थ—मुलहटाका चूर्ण एककर्प और इसमें
बराबरका घी शहत मिलाकर चाटले ऊपर
से दूध पीले तौ अत्यन्त वेगकी प्राप्तिहोवै ॥

अन्यप्रयोग ॥

घृतक्षीराशनोनिर्भांनिर्व्याधिर्नित्यगोषुवा
सङ्कल्पप्रवणो नित्यंनरःस्त्रीषुट्रपायते ॥

अर्थ—यदि दूध और घीका सेवन ऐसा
पुरुष करै जो निर्भय, व्याधिरहित आन्हिक
कर्मका करनेवाला और संकल्प करनेवालाहो
तौ विजारकी तरह छियांसे रमण करै ।

अन्यप्रयोग ॥

कृतैककृत्याःसिद्धार्थैचान्वोऽन्यानुवर्ति-
नः। कलासुवाहायेतुल्याःसत्त्वेनवयसाच
ये ॥ कुलमाहात्म्यदाक्षिण्यशालिशौचस-

मन्विताः । येकामनित्यायेहृष्टायेविशोका
गतव्यथाः ॥ येतुल्यशीलायेमक्तायोपि-
यायेभियम्बदाः।तैर्नरः सहविस्रब्धःसुवय
स्यैर्हृषायते ।

अर्थ—एकहो कर्मके करनेवाले, सिद्ध संकल्प,
अन्योन्यानुवर्ती, बाह्यफला तथा सत्व और
वयमें परस्पर तुल्य, सत्कुलोद्भव, प्रशंसनीय,
चतुर, शील सम्पन्न, पवित्रता परायण भोगि-
या, हृष्ट, शौकरहित, गतव्यथ, समान शीलस-
म्पन्न, अन्योन्य प्रेमी, प्रियवक्ता ऐसे समान वय
वाले पुरुषोंके साथ रहनेसेभी मनुष्य वृष्य होताहै।
अन्यप्रयोग ।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानगन्धमाल्याविभूषणैः
गृहशय्यासनसुखैर्वासोभिरहतैःप्रियैः ।
विहङ्गानांरुतैरिष्टैःस्त्रीणाञ्चाभरणस्वर्नैः।
संवाहनैर्वस्त्रीणामिष्टानाञ्चबृषायते ॥

अर्थ—तैलमर्दन, उबटना, स्नान, अतर-
लगाना, फूलमाला धारणकरना, आभूषण
पहरना, सुखदायक घर, सेज, आसनोंपर
सौना बैठना, सुन्दर साव्रत हलके मनोनु
कूल वस्त्र धारणकरना, चित्तार्कषक पक्षियों
के फलरव श्रवणकरना, स्त्रियोंके भूषणोंकी
छनाछन श्रवणकरना, सुन्दर मनोनुकूल
स्त्रियोंसे पगचप्पी करना इन कार्यों से भी
मनुष्य वृष्य होताहै ॥

अन्यप्रयोग ।

मत्तद्विरेफाचरिताःसपत्न्याःसलिलाशयाः।
जास्युत्पलमुगन्धीनिशीतगर्भगृहाणिच॥
नद्यःफेनोत्तरीयाश्वगिरयोनीलसानवः ।
उन्नतिर्नीलमेघानारम्यचन्द्रोदयानिशाः।
चायवःसुखसंस्पर्शाःकुमुदाकारगन्धिनः।

रतिभोगक्षमाराग्यःसङ्कोचागुरुबलभाः ॥
सुखाःसहायाःपरशुष्टयुष्टाः फुल्लवनान्ता
विशदान्नपानाः।गान्धर्वशब्दश्चसुगन्धमा
ल्याःसत्त्वविशालंनिरुपद्रवञ्च । सिद्धा
र्थताचाभिनवश्चकामःस्त्रीचायुधंसर्वमि-
हात्मजस्या वयोनवंजातमदश्चकालो ह-
र्षस्ययोनिःपरमानराणाम् ॥

अर्थ—ऐसे जलाशयोंपर विहारकरना
जहां खिलेहुए कमलोंपर मृतवाले भौरे गुं-
जार कर रहेहों, जहां चमेली और कमलकी
सुगन्ध की महक भाररही हो, शीतल घरहों,
जहां श्लागदार नदियां बहरहीहों, ऐसे पर्वतों
पर विहारकरना जिनके निलवर्ण के शिखर
अत्यन्त शोभायुक्तहों, काली २ घटा सिरके
ऊपर धिर आईहो, रात्रिमें जब चन्द्रमाकी
शीतलचांदनी छिटक रहीहो, जहां कुमोदनियें
के गन्धसे सुगन्धित पवन शरीरको स्पर्श
करताहो, रमणके योग्य जाडेकी रात्रियों में,
जहां बडे बूढोका सकोचन हों, जहां सुखो
त्पादक सम्पूर्ण सामान उपस्थित हो, खिलेहुए
उपबनों में जहां कोकिला कुहुक माररहीहो,
विशद अन्नपान का सेवन हो, गाने बजाने
की मन्द २ तान कान में प्रवेश कर रहीहो
सुगन्धित फूलमाला धारण कर रखे हों,
विशाल और उपद्रव रहित सत्व सेवन, सिद्ध
संकल्पता, नित्य नई अभिलाषाका पूर्ण होना
कामदेवकी शस्त्र रूप स्त्रियोंकी उपस्थिति, नवी
नवय, बसन्तऋतुये-सबवतें मनुष्योंको हार्पित
करने वाली हैं ॥

तृतीयपादका संक्षिप्त वर्णन

प्रहर्षयोनयोयोगान्याख्यातादशपञ्च च ।

लीचांबलकाचून, साठीचांबलकाचून, इनमें खांड विदारीकन्द और तालमखाना डालकर दूधमें मांड कर घीमें टिकडी उतार लेवै, इनको खाकर ऊपरसे दुग्ध पानकरै तौ बद्धत ही शीघ्र अत्यन्त वृषताकी प्राप्तिहोती है ॥

अन्य प्रयोग

शंकरायास्तुलैकास्यादेकागव्यस्यसर्पिषः।
प्रस्थोविदार्य्याः चूर्णस्यपिप्पल्याः प्रस्यएव
च । अर्द्धाढकन्तुगाक्षीर्याः क्षौद्रस्याभि-
नवस्यच ॥ तत्सर्वमूर्च्छितंतिष्ठेन्मासिके
घृतभाजने । मात्रामभिसमांतस्यप्रातःप्रातः
प्रयोजयेत् ॥ एषबृष्यः परंयोगः वल्योऽंबृह
णएवच ।

अर्थ—खांड एकतुला, गौकाधी एक तुला, विदारीकन्द एकप्रस्थ, पीपल एक प्रस्थ, वंशलोचन आधा आढक, नयामधु आधा आढक, इन सबको मिलाकर घी की चिकनी हांडीमें भरदे, अग्निघल के अनु-सार प्रतिदिन प्रातः काल इसकी मात्रा सेवन करै । यह योग अत्यन्त वृषताकारक, बलकारक और धृहणकर्ता है ॥

अन्य प्रयोग ।

शतावर्ध्याविदार्याश्चतथामापातमगुप्तयोः
श्वदंष्ट्रायाश्चनिष्कथानज्जलेपुपृथक्पृथक्
साधयित्वाघृतप्रस्थंपयस्यष्टगुणेषुनः ॥
शंकरामधुसंयुक्तमपत्यार्थीप्रयोजयत् ।

अर्थ—सितावर, विदारीकन्द, उरद, केंचके धीज, गोखरू इन सबका पृथक् २ एक २ अंजलिक्वाथ लेवै इनमें एक प्रस्थ घी और आठगुना जल डालकर पकावै, फिर खांड और शहत मिलाकर वह मनुष्य इस

को सेवन करै जिस सन्तान की इच्छा हो।
अन्यप्रयोग ।

घृतपात्रंशतगुणेविदार्यास्वरसेपचेत् ॥ सि-
द्धं पुनः शतगुणेगव्येपयसिसाधयेत् ॥ शं-
करायास्तुगाक्षीर्याः क्षौद्रस्येक्षुरसस्यच ॥ पि-
प्पल्याः सजडायाश्चभागैः पादांशिकैर्युत-
म् ॥ गुड़िकाः कारयेद्द्वयोयथास्थूलमुदुम्ब-
रम् ॥ तासांप्रयोगात्पुरुषः कुलिङ्गइव
हृष्यति ।

अर्थ—एकपात्र घीको सौगुने विदारीकन्द के रसमें पकावै, फिर घृतके शेष रहने पर उसे सौगुने गांके दूधमें पकावै, फिर जब घी शेषरहजाय तब उसकी चौथाई खांड, वंश-लोचन, शहत, तालमखाने पीपल और केंचके धीज डालकर गूलर के बराबर गोली बनालेवै । इनके सेवन करनेसे मनुष्य चिरंटेकी तरह वृष्य हो जाता है ।

अन्य प्रयोग ।

सितोपलापलशततददंनवसर्पिषः क्षौद्रपा-
देनसंयुक्तंसाधेयज्जलपादिकम् ॥ सान्द्र-
क्षौध्रमचूर्णानांपादंस्तीर्णेशिलातले । शु-
चौश्चक्षुण्णसमुत्कीर्यमदर्ननोपपादयेत् ॥ शु-
द्धाउत्कारिकाः कार्याश्चन्द्रमण्डलसन्निभ
तासांप्रयोगाद्भवन्नारीः सन्तर्पयेः नरः ।

अर्थ—खांड सौपल, ताजीधी पचासपल शहत पच्चासपल, और जल पच्चासपल इनको अग्निपर चढाकर चलातारहै जब गाढापडनेलगे तब २५ पल गेंहूका, चूनमि-छाकर धीरे २ पकाकर उतारले, फिर एक स्वच्छ सिलपर डालकर सबको माद डाले, यह चन्द्रमण्डल के समान उत्कारिका त-

नतीहै इसके सेवनसे मनुष्य हाथी की तरह
स्त्रीको प्रसन्न करनेमें समर्थ होता है ।

अन्यप्रयोग ॥

यत्किञ्चिन्मधुरस्निग्धजीवनं वृंहणं गुरुहर्षणं
मनसश्चैव सर्वन्तद्रूप्यमुच्यते ॥ द्रव्यैरेवं वि-
धैस्तस्माद्भावितः प्रमदां व्रजेत् । आत्मवे-
गेन चोदीर्णः श्रीगुणैश्च प्रहर्षितः ॥ गत्वा
स्नात्वापयःपीत्वारसंचानुशयीतना । त-
थासाप्यायते भूयः शुक्रञ्च वलेमवच ॥

अर्थ—जो २ पदार्थ मीठे, स्निग्ध, जी-
वनकर्ता, वृंहण, भारी, और मनको हर्ष उ-
त्पन्न करनेवाले हैं वे सब द्रव्य होते हैं इस
लिये मधुर द्रव्योंका सेवन करके स्त्री गमन
में प्रवृत्त होवै । आत्मवेगसे उदीर्ण होकर वा
स्त्रीके गुणोंसे प्रहर्षित होकर स्नान करके दुग्ध
वा मांसरस पान करके शयन करे तो पूर्व-
वत् बल वीर्यकी वृद्धि होय ॥

शुक्रोपलब्धिकासमय ॥

यथा मुकुलपुष्पस्य सुगन्धो नोपलभ्यते ।
लभ्यते तद्विकाशसुतथा शुक्रं हि देहिनाम् ॥
अर्थ—जैसे फूलकी कली में यद्यपि सुगन्ध
होती है परवहमात्रमनहीं होती वह सुगन्धि फूल
के खिलनेपरही मिलती है इसी तरह वीर्य यद्यपि
बालकपन में भी होता है परन्तु बिना युवा-
वस्थाके प्राप्त हुए उसकी उपलब्धि नहीं
होसकती है ॥

सम्भोगकाल ।

नत्तैवोड्पाद्भर्तात्सप्तत्याः परतो न च ।
आयुष्कामो नर स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥
अतिबालो ह्यसम्पूर्णसर्वधातुः स्त्रियां व्रजन्
उपतप्येत सद्दसातडागमिव काजलम् ॥

शुक्रं रूक्षं यथा काष्ठं जन्तुजग्धं विजर्जरम् ।
स्पष्टमाशु विशीर्येत तथा वृद्धः स्त्रियो व्रजन् ॥

अर्थ—जो मनुष्य दीर्घजीवी होना चाहता
है उसे उचित है कि सोलह वर्षकी अवस्था
से पहिले और सत्तर वर्षकी अवस्थासे पीछे
स्त्री सहवासमें प्रवृत्त न हो । बालकपनमें
सम्पूर्ण धातु अपूर्ण होती है इससे उस अव-
स्थामें स्त्रीसहवास करनेसे उसका वीर्य ऐसे
शुष्क होजाता है जैसे गरमीके कारण थोड़े
जलका सरोवर सूखजाता है ॥ जैसे सूखा रूखा
कीड़ों से खाया हुआ और जर्जरीभूतकाष्ठ
हाथ लगते ही टूट जाता है इसी तरह वृद्ध
पुरुषभी स्त्रीसहवास करनेसे विशीर्ण होजाता है ॥

शुक्रक्षीण के कारण ।

जरया चिन्तया शुक्रं व्याधिभिः कर्मकर्मणात्
क्षयं गच्छत्यनशनात् स्त्रीणाञ्चातिनिषेवणात्
अर्थ—बुढ़ापेसे, चिन्ताप्रसूत हानिसे रोगोंसे
परिश्रमजनक कार्योंके करने से, भोजन न
करनेसे वा स्त्रियोंके अत्यन्त सेवनसे शुक्रक्षी-
ण होजाता है ॥

क्षयाद्भयादविश्रम्भाज्जोक्तास्त्रीदोषदर्श-
नात् नारीणाभरसङ्गत्वादाभिचारादसेवना-
त् ॥ वृत्तस्यापि स्त्रियोगं तु न शक्तिरुपजायते
देहसत्त्वबलापेक्षी हर्षः शक्तिश्च हर्षजा ॥

अर्थ—क्षय, भय, अविश्वास, शोक, स्त्री-
दोषदर्शन, स्त्रियोंकी अरसङ्गता, अभिचार-
असेवन इन कर्मोंसे तथा जिसका मन स्त्री
संग से नृत्त होगयाहो उसको स्त्रीगमन की
शक्ति उत्पन्न नहीं होती है । क्योंकि हर्ष तो
देह बल और सत्त्वबलके आधार है और श-
क्ति हर्ष से उत्पन्न होती है ॥

शुक्र का स्थान ।

रसइक्षौयथादधिसर्पितैलन्तिलेयथा ।

सर्वत्रानुगतदेहेभुक्रंसंस्पर्शनेतथा ॥ तत्

स्त्रीपुरुषसंयोगचेष्टासंकल्पपीडनात् ।

शुक्रमच्यवतेस्थानाज्जलमाद्रात्पटादिवा ॥

अर्थ—जैसे ईश्वरमें रस, दही में घी और

तिलों में तेल सर्वत्र रहताहै उसीतरह वीर्यभी

सर्व देहमें तथा त्वचामें रहताहै । वह वी-

र्य स्त्री पुरुषके संयोग, चेष्टा, संकल्प, पी-

डनादिसे ऐसे बाहिर निकल आता है जैसे

गोले बल्लसे जल टपकताहै ।

मय वीर्य निकलने के हेतु ।

पातर्पात्सरत्वाच्चपैच्छिल्याद्द्वोरवादिपि

अनुपुवत्वात्सौक्ष्म्याच्चद्रुतत्वान्मारुतस्य

च ॥ अप्राभ्यएभ्यहेतुभ्यःशुक्रं देहात्मसि

च्यते । चरतोविश्वरूपस्यरूपद्रव्यंयदुच्यते ॥

अर्थ—हर्ष, अभिलाषा, सरलता, पिच्छि

लता, गुरुता, द्रवता सूक्ष्मता और वायुके वेग

इन आठ कारणोंसे शुक्र देहसे बाहर निक-

लता है । यह शुक्र विश्वरूपमें चरणशी-

ल द्रव्यों की मूर्ति है ॥

फलोपयोगीशुक्र ॥

बहुलंमधुरंस्निग्धंअविलंशुक्रपीच्छलम् ।

शुक्रं बहुचयच्छुक्रंफलवत्तदसंशयम्

अर्थ—जो वीर्य गाढा, मधुर, स्निग्ध,

दुर्गन्धरहित, पिच्छिल, गुरु, शुद्धवर्ण और

बहुत होताहै वह निश्चयफलवान् होताहै ।

बाजीकरण की निरुक्ति ॥

येननारीपुंसामर्ष्यंबाजीवल्लभतेनरः ।

मजेच्चाभ्यधिकयेनबाजीकरणमेवतत् ।

अर्थ—जिससे मनुष्य को स्त्रियों केसाथ

सम्भोग करनेकी घोड़े की तरह शक्ति होजा-
तीहै और सम्भोग करनेमें अधिकर प्रवृत्ति
होतीहै उसहीको बाजीकरण कहते हैं ।

चतुर्थपादकीमूची ।

हेतुर्योगोपदेशस्ययोगाद्वादशचोत्तमाःयत्

पूर्वमेथुनात्सेव्यसेव्यंतन्मैथुनादनु ॥ यद्वा

नसेव्याःप्रमदा-कृत्स्नः शुक्रविधिश्चयः ।

निरुक्तञ्चेहनिर्दिष्टपुमान्जातवलादिकम् ॥

अर्थ—दूसरे अध्यायके इस पुमान् जात

बलादि नामक चतुर्थपाद में बाजीकरणोप-

योगी प्रयोगों के हेतु, बाजीकरणके उत्तम २

बारह प्रयोग, जो यस्तु मैथुनसे पहिले तथा

पीछे सेवन करने कीहैं । स्त्री से सम्भोग न

करनेका काल, सम्पूर्ण शुक्रविधि और वा-

जीकरण शब्द की निरुक्तिवर्णन को गईहै ॥

जातवलादिको नाम चतुर्थपादः

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशधिर

चितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांचिकित्सि-

तस्थाने बाजीकरणप्रयोगकथनं

नामद्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

—=○)।+।(○=—

अथतृतीयोऽध्यायः

अथातोऽज्वराचिकित्सितं व्याख्यास्याम

इतिहस्माहभगवान्आत्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोलें

कि 'अब हम ज्वर चिकित्सित नाम अध्याय

की व्याख्या करेंगे ॥

विज्वरंज्वरसन्देहपर्यृच्छत्पुनर्वसुम् ।

द्विविक्तेशान्तमासीनमशिवेश कृताञ्जालः

देहेन्द्रियमनस्तापीसर्वरोगाग्रजोबली ॥

ज्वरःप्रधानरोगाणामुक्तोभगवतापुरा ॥
 तस्यप्राणिसपत्नस्यध्रुवस्यमलयोदये ।
 प्रकृतिश्चप्रवृत्तिश्चप्रभावंकारणानिच ॥
 पूर्वरूपमधिष्ठानंबलकालात्मलक्षणम् ।
 व्यासतोविधिभेदश्चपृथग्भिन्नस्यचाकृ-
 त्तिम् ॥ लिङ्गनामस्यजीर्णस्यसनिपेधंक्रि-
 याक्रमम् । विमुञ्चतःप्रशान्तस्यचिन्हं
 यच्चपृथक्पृथक् ॥ ज्वरावशिष्टोरस्यश्च
 यावत्कालंपतोपतः । प्रशान्तःकारणैर्वै-
 श्वपुनरावर्ततेज्वरः॥याद्यापिपुनरावृत्तिं
 क्रियाःप्रशमयन्ति तम् । जगद्धितार्थतस्त-
 र्चभगवन् । वक्तुमर्हसि ॥ तदश्वेशस्य
 षचोनिशम्यगुरुरव्रवीत् । ज्वराधिकारे
 यथाऽप्यन्ततसौम्य । निखिलंगृणु ॥
 अर्थ—अग्निवेशने हाथ जोडकर ए-
 कान्तमें शान्तभावसे बैठे हुए निरोग पुन-
 र्बसुसे ज्वरके विषयमें यह प्रदनकिया कि हे
 भगवन् ! आपने पहिले यह कहाथाकिः“ज्वर
 रोगोंमें प्रधानहै यह देह इंद्रिय और मनको
 सन्तप्त करनेवाला और बलीहै यह सम्पूर्ण
 रोगोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ है” इसलिये इस
 प्राणोंके नाश करने वाले और जन्म समय और
 मरण समयमें अवश्य होनेवाले ज्वरकी प्रकृति
 प्रवृत्ति, प्रभाव, कारण, पूर्वरूप, अधिष्ठान, बल,
 काल, लक्षण, विस्तारपूर्वक विधिभेद, जुदे २ ज्व-
 रकी जुदी २ आकृति, आम और जीर्णज्वर
 के लक्षण और चिकित्सा का क्रम, ज्वरके
 छोटानेके तथा शान्त होनेके पृथक् २ लक्षण
 ज्वरलक्त पुरुष की जितने दिन और जिस
 कारण से रक्षा करनी चाहिये, शान्त हुआ
 ज्वरमी जिनकारणोंसे फिर उत्पन्न होजाता

है, जिस चिकित्सा से फिर उत्पन्न हुआ
 ज्वर शांत होजाताहै, हे भगवन् ! ये सब
 आप जगतके हितके लिये मुझसे कहिये ।
 अग्निवेशके इस वचनको सुनकर
 पुनर्बसु बोलेकि हे सौम्य ! ज्वराधिकार में
 जो कुछ वर्णनेके योग्य विषयहै उसे सुन ॥
 ज्वरके पर्यायवाचीनाम ॥
 ज्वरोविकारोरोगश्चव्याधिरातङ्कएवच ।
 एकार्थनामपर्यायैर्वैविधरभिधीयते ॥
 अर्थ—ज्वर, विकार, रोग, व्याधि और
 आंतक ये सब एकार्थवाची शब्द ज्वरके पर्यायहै
 ज्वरकाकारण ॥
 तस्यप्रकृतिरुद्दिष्टादोषा शारीरमानसाः।
 देहिनेनहिनिर्दोषज्वरःसमुपसंवते ॥ क्ष-
 यस्तमोज्वरःपाप्मासृत्युश्चोक्तोऽयमात्मजः
 पञ्चत्वप्रत्ययान्त्रुणांचिदानांस्वेनकर्मणा॥
 इत्यस्यप्रकृतिःप्रोक्ताप्रवृत्तिस्तुपरिग्रहः ।
 निदानपूर्वमुद्दिष्टारुद्रकोपाच्चदारुणात् ॥
 अर्थ—शारीरिक और मानसिकदोष ज्व-
 रकी उत्पातिके कारण है दोषरहित प्राणी
 को ज्वर कभी नहीं सताताहै । अपने २
 कर्मोंसे बद्ध मनुष्योंके मर जानेके निश्चय
 से यह आत्मजज्वर क्षय तम, पाप्मा और
 मृत्यु कहलाताहै । यह ज्वरकी प्रकृति वर्णन
 की गईहै, प्रवृत्ति कोहो उत्पत्ति कहतेहै ।
 यह प्रवृत्ति रुद्र के दारुण कोपसे हुईहै यह
 बात निदानस्थानमें वर्णन करचुके हैं ॥
 ज्वरोत्पत्तिमें विशेषवर्णन ।
 द्वितीयेहियुगेसर्वमक्रोधत्रतमास्थितम् ।
 दिव्यंसहस्रंवर्याणामसुराअभिदुदुवुः ॥
 तपोविघ्नंशमीकर्तुन्तपीविघ्नंमहात्मनाम् ।

पश्यन्स मर्षश्चोपेक्षाश्चक्रैरुद्रः प्रजापतिः ॥
 पुनर्माहेश्वरं भागंध्रुवदक्षः प्रजापतिः । यज्ञे
 नकल्पयामासमोच्यमानः सुरैरपि । ऋ
 चः पशुपतेर्याश्रयैव्य आहुतयश्चयाः ॥ यज्ञ
 सिद्धिप्रदास्ताभिर्हर्निर्ध्वंसइष्टवान् । अ
 धोर्चीर्घ्नतोदेवो बुद्ध्वा दक्षव्यतिक्रमम् ॥
 रुद्रो रौद्रं पुरस्कृत्य भावमात्मविदात्मनः ।
 सृष्ट्वाललाटे चक्षुर्वंदग्ध्वा तानसुरान्प्रभुः
 बाणं क्रोधाग्नि सन्तप्तमसृजच्छत्रुनाशनम् ।
 ततो यज्ञः सविध्वस्तो व्यथिताश्च दिवोकसः
 दाहव्यथापरीताश्च भ्रान्ता भूतगणादिशः
 अथेश्वरं देवगणः सहस्रार्पिभिर्विशुम् ॥ त
 मृग्भिरस्तु वन्यायच्छिवे भावो शिवः स्थितः
 शिवं शिवाय भूतानां स्थितं ज्ञात्वा कृताञ्ज-
 लिः ॥ क्रोधाग्निरुक्तवान् देवमहं किङ्करवा-
 णिते । तमुवाचेश्वरः क्रोधं ज्वरो लोके भावि-
 प्यसि ॥ जन्मादौ निधने च त्वामपि चा
 वन्तरपुच ।

अर्थ—सुनेते चले आते हैं कि त्रेतायुग
 में महादेवने दिव्य सहस्रवर्षका अक्रोध व्रत
 अवलम्बन किया था, इस बीचमें असुरोंने
 बड़ा उपद्रव मचाया और महात्माओंके तप
 में बड़ा विघ्न हुआ, अपने अक्रोधव्रत में
 विघ्न पडनेके कारण समर्थ होकर भी महा-
 देवने उनके विघ्नोंको दूर करनेकी उपेक्षाकी।
 इसीसमयमें दक्षप्रजापतिने यज्ञ किया था और
 यद्यपि देवताओंने उसको सचेतभी किया
 तथापि यज्ञमें महादेवका भाग न निकाला
 और यज्ञको सिद्ध करनेवाली जो पशुपति
 संबंधी ऋचा और शैव्य आहुति हैं उनके
 विनाही यज्ञ किया । जब महादेवका अक्रो-

ध्वं व्रत समाप्त होगया तब आक्रुधित रुद्रने
 दक्षके व्यतिक्रमको जान कर अपना रौद्र
 भाव प्रकट करके अपने ललाटेस्थ तृतीय
 नेत्रको खोलकर प्रथम उन असुरोंको जला-
 दिया और तदनन्तर शत्रुनाशकर्ता क्रोधा-
 णिसे संतप्तवाण छोडे उनसे यज्ञ विध्वंस
 होगया सम्पूर्ण देवगण व्यथित हांगये । औ-
 र भूत गण दाह और व्यथासे पीडित होकर
 दिशा विदिशाओंमें भागने लगे । इस दशा
 को देखकर सप्तर्षि समेत सम्पूर्ण देवगण
 विभुरूप महादेवकी ऋग्वाक्योंसे उससमय
 तक स्तुति करते रहे जबतक शिव शान्तभा-
 वमें स्थित न हुए । प्राणियों के कल्याणके
 निमित्त शिवको शान्तभावमें स्थित देखकर
 क्रोधाग्निने हाथ जोडकर महादेवसे कहा कि
 हे देव ! अब मैं क्याकरूं ! यह सुनकर
 महादेवने क्रोधसे कहा कि तू ज्वररूप होकर
 संसार में विचर जन्मकालमें मरणसमय
 में और बीचमें भी तू उत्पन्न होता रहेंगा ॥

ज्वरके प्रभाव ॥

सन्तापः सारुचिस्तृष्णा चाङ्गमर्दो हृदिव्यथा
 ज्वरप्रभावो जन्मादौ निधने च महत्तमः ॥

अर्थ—सन्ताप, अरुचि, तृष्णा, अंगमर्द हृदयमें
 वेदना, ये ज्वरके प्रभाव हैं, तथा जन्म और मरण
 के समयमें अत्यन्त तीव्ररूप से होते हैं ॥

प्रकृतिश्च प्रवृत्तिश्च प्रभावश्च मदर्शितः ॥ नि-
 दाने कारणान्यष्टौ पूर्वोक्तानि विभागशः ।

अर्थ—ज्वरकी प्रकृति प्रवृत्ति और प्रभाव
 इसतरह वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ के
 निदानस्थानमें ज्वरके आठ कारण भी पृथ-
 क् २ कर दिये गये हैं ॥

ज्वरके पूर्वरूप ।

आलस्यंनयनेसास्त्रेजृम्भणं गौरवक्लमः ॥
ज्वलनात्पवाय्वम्बुभक्तिद्वेषावनिश्चितौ ॥
अविपाकास्यवैरस्यंहानिश्चबलवर्णयोः ॥
शीलवैकृतमल्पञ्चज्वरलक्षणमग्रजम् ।

अर्थ—आलस्य, नेत्रोंमें आंसू भर आना, जम्हाई, भारापन, क्लान्ति, कभी अग्नि, घूप वायु और जलका अच्छा लगना और कभी बुरा लगाना, अविपाक, मुखमें विरसता, बल और वर्णकी हानि तथा स्वभावका कुछ विकृत होजाना ये सब ज्वरके पूर्वरूप हैं ॥

ज्वरका अधिष्ठान ।

केवलंसमनस्कश्चज्वराधिष्ठानमुच्यते ॥
शरीरम्बलकालस्तुनिदाने सम्प्रदर्शितः ।

अर्थ—ज्वर का अधिष्ठान मन और शरीर दोनों है । ज्वरप्रस्त होने पर शरीरकी दशा तथा ज्वर के बल और काल ये सब निदानस्थान में दिखाये गये हैं ।

ज्वर के लक्षण ।

ज्वरमत्यात्मिकलिङ्गसन्तापो देहमानसः ॥
ज्वरेणाविशताभूतं न हि किञ्चिन्नतप्यते ।

अर्थ—शारीरिक और मानासिक सन्ताप ज्वरका साधारण लक्षण है । कोई ऐसा देहधारी नहीं है जिसका देह ज्वरप्रस्त होने पर न तपता हो ॥

ज्वर के भेद ।

द्विविधो विधिभेदेन ज्वरः शारीरमानसः ॥
पुनश्चद्विविधोऽष्टः सौम्यथाग्नेय एव च ।
अन्तर्वेगो वाह्ये वेगो द्विविधः पुनरुच्यते ॥
प्राकृतो वैकृतश्चैव साध्यश्चासाध्य एव च ॥
पुनः पञ्चविधोऽष्टो दोषकालबलावलात् ॥

सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ।
पुनराश्रयभेदेन धातूनां सप्तधामतः । भि

न्नः कारणभेदेन पुनरष्टविधो ज्वरः ॥

अर्थ—विधि भेदसे ज्वर दो प्रकारका होता है शारीरिक और मानसिक । पुनः इसके दो भेद हैं यथा सौम्य और आग्नेय ज्वरके दो वेग हैं, एक अन्तर्वेग दूसरा वाह्यवेग । इसी तरह प्राकृत, वैकृत, साध्य असाध्य, फिर दोष और कालके बलावलेसे ज्वर पांच प्रकारका देखने में आता है यथाः सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक, इसी तरह सात धातुओंके आश्रय भेदसे सात प्रकारका, और घात कफादि कारण भेदसे आठ प्रकारका होता है । शारीर और मानस ज्वरोंके उत्पात्तिस्थान शारीरजायते पूर्वन्देहमनासिमानसः ।

अर्थ—शारीरिक ज्वर प्रथम देह में उत्पन्न होता है और मानसिक ज्वर प्रथम मन में उत्पन्न होता है ॥

मानसिक सन्ताप के लक्षण ॥

वैचित्यमरतिग्लानिर्नर्मनसस्तापलक्षणम् ॥

अर्थ—मनमें चंचलता, अरति और ग्लानि मानसिकताप के लक्षण हैं ॥

शारीरकतापलक्षण ॥

इन्द्रियाणाञ्च वैकृत्यं देहसन्तापलक्षणम् ॥

अर्थ—इन्द्रियों की विकृतता शारीरिक सन्तापके लक्षण है ॥

वातापित्तात्मकः शीतमुष्णवातकफात्मकः

इच्छत्युभयमेतत्तु ज्वरोऽन्यामिश्रलक्षणः ।

अर्थ—घात पित्तात्मक ज्वरमें शीतल वस्तुकी इच्छा होती है, वातकफात्मकमें उष्ण, पदार्थकी और व्यामिश्रलक्षण अर्थात् कफपित्ता-

तत्र ज्वरं उष्ण शीत दोषोकी इच्छा होती है
वायुको योगवाहिनं ॥
योगवाहः परं वायुः संपेगादुभयार्थकृत ।
दाहकृत्तेजसायुक्तः शीतकृतसोमसंश्रयात् ॥
अर्थ—वायु अत्यन्त योगवाही है अर्थात् जि-
सके साथमें मिलती है उसके गुणोंको उत्कर्ष
करती है । जत्र तेजसे मिलती है तब दाह करती है ।
और सोमसे मिलती है तब शीत करती है ॥

अन्तर्वेगज्वर के लक्षण ।

अन्तर्दाहोऽधिकतृष्णाप्रलापः श्वसनम्भ्रमः
सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदोदोषोवर्चोविनिग्रहः
अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि ज्वरस्यैतानि लक्षणेयत् ॥

अर्थ—अन्तर्दाहकी अधिकता, प्यास, वक-
वाद, श्वास, चक्कर, सन्धिशूल, अस्थिशूल,
आवेद (परीनों का रुकना), दोष विनि-
ग्रह, ये अन्तर्वेगज्वर के लक्षण हैं ।

षड्वेगज्वरके लक्षण ॥

सन्तापोभ्यधिको वाहस्तृष्णादीनाञ्च
मार्दवंम् ॥ षड्वेगस्य लिङ्गानि मुखसा
ध्यत्वमेव च ॥

अर्थ—वाहसन्तापका अधिक होना, तृष्णा
आदिका फम होना और मुख साध्यता ये
षड्वेग के लक्षण हैं ।

प्राकृतादि ज्वरों के लक्षण ।

प्राकृतः मुखसाध्यस्तु वसन्तशरदुद्भवः ॥
कालप्रकृतिमुदिश्य प्रोच्यते प्राकृतोज्वरः ॥

अर्थ—वसन्त और शरद ऋतुओंमें उत्पन्न
हुआ ज्वर प्राकृत और मुखसाध्य होता है ।
कालकी प्रकृति के अनुसार जो ज्वर होता
है उसे ही प्राकृत कहते हैं । भार्गवाचार्य लि-
खते हैं कि " वर्षा शरद वसन्तेषु वाताधैः

प्राकृतः क्रमात् । वैकृतोऽन्यः सुदुःसाध्यः
प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ अर्थात् वर्षा में
वातज्वर, शरद में पित्तज्वर, और वसन्तमें
कफज्वर प्राकृत होते हैं क्योंकि इन भिन्न
भिन्न ऋतुओं में पृथक् २ दोषोंकी प्रबलता
होती है । इससे भिन्न होने पर वैकृतज्वर
होता है यह ज्वर दुःसाध्य होता है और वात
से उत्पन्न हुआ प्राकृत ज्वर भी दुःसाध्य होता है
दोषों के प्रकृति होने का समय ।

उष्णामुष्णेन संवृद्धं पित्तं शरदि कुप्यति । चि-
तः शीते फलश्चैव वसन्ते समुदीर्यते ॥

अर्थ—उष्ण प्रकृति वाला पित्त उष्ण द्रव्यों
के संयोगसे दृष्टिपाकर शरद ऋतुमें कुपित
होता है । और शीतकाल में संचित हुआ
कफ वसन्त ऋतु में कुपित होता है ।

कालकृतज्वरोत्पत्तिक्रमः ॥

वर्षास्वम्लविपाकाभिरौषधीभिः सवारिभिः
सञ्चितं पित्तगुत्क्रिष्टं शरदादित्यतेजसा ॥
ज्वरं सञ्जनयत्याभृतस्य चानुबलः कफः ।
प्रकृत्यैव विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् ।

अङ्गिरोषधिभिश्चैव मधुराभिश्चितः कफः ॥
हेमन्ते सूर्यसन्तप्तः सच वसन्ते प्रकुप्यति ॥
वसन्ते श्लेष्मणा तस्माज्ज्वरः समुपजायते ।

आदानमभ्येतस्यापि वातापित्तमभवेदनु ॥
आदावन्ते च मध्ये च ज्ञात्वा दोषवलावलम् ॥
शरद्वसन्तयोर्वेदान् ज्वरस्य मतिकारयेत् ॥

अर्थ—वर्षाऋतुमें अम्लविपाकशाली औषधी
और जलोंके कारण संचित हुआ पित्त शर-
दऋतु में सूर्यकी तेजीसे उदीर्ण होजाता है
और शीतऋतु ज्वरको उत्पन्न करता है और

कफ उसका अनुबन्धी रहताहै । उस ज्वरमें कफ पित्तके स्वभावकरके और विसर्गकालके कारण लघन करनेमें कुछ भय नहीं होता है क्योंकि शरदऋतु विसर्गकालके अन्तर्गत है । इसीतरह हेमन्तऋतुमें जल और औष, धियां मधुरपाकी होतीहै उस ऋतुमें संचित हुआ कफ सूर्यकी तेजीसे संतप्त होकर वसन्तऋतुमें प्रक्षुपित होजाताहै । इसहेतुसे वसन्तकालमें ज्वर कफसे उत्पन्न होता है । आदानकालमें होने पर भी वात और पित्त इस ज्वरके अनुबन्धी रहतेहैं अर्थात् कफ से उत्पन्न होताहै और वात पित्त साथमें रहते हैं तो यह त्रिदोषजन्य होजाताहै । इन हेतुओंसे विद्वान् चिकित्सक को उचितहै कि शरद और वसन्तऋतुके आदि मध्य और अन्तमें दोषोंके बलावलका विचारकरके ज्वरकी चिकित्साकरें ॥

ज्वरोंकासाध्यासाध्यत्व ॥

कालप्रकृतिमुद्दिश्यनिर्दिष्टः प्राकृतोज्वरः ।
मायेणानिलजोदुःखः कालेष्वन्येषु वैकृतः ॥
हेतवो विविधास्तस्य निदानेन सम्प्रदर्शिताः ।
बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुप्रद्ववः ।
हेतुभिर्वहुर्भिर्जातो बलिभिर्वहुलक्षणः ॥
ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः

अर्थ—काल और प्रकृतिका लक्षणकरके प्राकृत ज्वरका वर्णन किया गयाहै । वात जन्यज्वर तथा अन्यकालमें उत्पन्न हुआ वैकृतज्वर दुःखसाध्य होता है ॥

ज्वरके भिन्न २ हेतु निदानस्थानमें दिखाये गयेहै । बलवान् पुरुषका अल्पदोषों से युक्त ज्वर जो उपद्रव रहित होता है वह

सुखसाध्य होताहै । जो ज्वर बहुत बलवान् हेतुओंसे उत्पन्न होकर बहुत से लक्षणों से युक्त होताहै वह ज्वर प्राणोंका नाशकरने वालाहै और उसज्वरसे इन्द्रियज्ञान भी शीघ्र ही नष्ट होजाता है ॥

असाध्यज्वर के अन्य लक्षण ॥

सप्ताहाद्वादशाहाद्वादशाहात्तथैव च ।
संभ्रलापभ्रमश्वासः तीक्ष्णो हन्याज्ज्वरो न-
रम् ॥ ज्वरः क्षीणस्थश्चूनस्य गम्भीरो दैर्घ्य-
रात्रिकः । असाध्यो बलवान् यश्चकेश-
सीमन्तकृज्ज्वरः ।

अर्थ—वह तीक्ष्णज्वर जिसमें प्रलाप, भ्रम और श्वास होताहै वह सात, दस वा धारह दिनमें मनुष्यको मार डालताहै । जो मनुष्य क्षीण होगया है, जिसकी देह पर सूजन आगई है, जिसका ज्वर गंभीर है और जो चढफर कई दिवसतक रहता है, जो बलवान् है और जिसमें मनुष्यके शिरपर बालोंकी गुलझट पडजातीहै ऐसे ज्वर असाध्य होते हैं ॥

सन्ततज्वरकी उत्पत्तिका कारण ॥

स्रोतो भिर्विमृतादोषा गुरयोरसवाहिभिः ।
सर्वगात्रानुगाः स्तब्धा ज्वरं कुर्वन्ति सन्ततम् ॥
अर्थ—रसवाही स्रोतोंके द्वारा सम्पूर्ण गुरु दोष फैलकर सम्पूर्ण देहमें व्याप्त होकर स्तब्ध होजातेहैं तब सन्ततज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥

सन्ततज्वरका मोक्षकाल ॥

द्वादशाहं दशाहं वा सप्ताहं वा षट्सहः । स
शीघ्रं शीघ्रकारित्वात्प्रभ्रमं याति हन्ति वा ॥

अर्थ—सन्ततज्वर बारह, दस वा सात

दिनतक अनवच्छिन्न रहताहै, यह बड़ा दुःसह होताहै और शीघ्रकारी होनेसे या तौ शीघ्रही शान्त होजाता है वा शीघ्रही देहको नाश करदेताहै । दस वारह और सात दिनकी अपेक्षे दोषोंके अनुसार दीर्घ है तथा वातिक सप्तरात्रेणदशरात्रेणौषिचकः । श्लेष्मिकोद्गादशाहेनज्वरःपाकांनि नियच्छति अर्थात् वातज्वर सात दिनमें, पित्तज दस दिनमें, और कफज वारहदिनमें पाकको प्राप्त होताहै । इससमय में या तौ रोगी जरनिर्मुक्त होजाताहै वा मरजाताहै ।

सन्ततज्वरको असाध्यत्व ॥

फाल्दूप्यप्रकृतिभिर्दोषास्तुल्योहिसन्ततमूनिप्यत्पनीकं कुर्वतेस्मात्तद्गोयःसुदु सहः
अर्थ—फाल्दोष और प्रकृतिके तुल्य होनेसे दोष दुश्चिकित्स्य सन्तत ज्वरको उत्पन्न करते है अतएव यह जर दु साध्य होता है ॥

सन्ततज्वरके अनुबन्धीपदार्थ ।

यथाधातुंतथामूत्रंपुरीषश्चानिलादयः ।

अनुबन्धन्तियुगपदवश्यंमन्ततेज्वरे ॥

अर्थ—सन्तत जर में सातों धातु, मूत्र मल और तीनों दोष अवश्य साथ रहतेहै ।

अनुबन्धीपदार्थोंका फल ॥

सशुद्धधावाप्यशुद्ध्यावारसादीनामशेषतः।

सप्ताहादिपुफालेषुप्रशंभयातिहन्तिवा ॥

अर्थ—यह जर सम्पूर्ण रसादि धातु और दोषोंकी शुद्धि होनेपर पूर्वोक्त सप्ताहादि का छेमे शान्त होजाताहै और शुद्धि न होने पर मनुष्यको मारडालताहै ॥

सन्तत ज्वरकां रसादि का आश्रयत्व ॥
यदातुनातिशुध्यन्तिनवानुध्यन्तिसर्वशः
द्वादशतेसमुद्दिष्टा सन्ततस्याश्रयास्तदा ॥

अर्थ—सातों धातु, मल, मूत्र और तीनों दोष जबये वारहों पदार्थ सम्यक् शुद्ध नहीं होतेहैं तब सन्ततजर इनके आश्रय रहताहै ।

अन्यप्रकार संतत ज्वर ।

विसर्गद्वादशेशुकृत्वादिवसेऽप्यक्तलक्षण ॥

दुर्लभोपशम कालं दीर्घमप्यनुवर्तते ॥

अर्थ—कोई कोई सन्ततज्वर वारहवें दिन छोडकर बहुत दिन तक ऐसे रहता है कि उसका कोई चिन्ह प्रकट नहीं होता है, यह कठिन साध्य होताहै ।

वैद्यको कर्त्तव्य कर्म ।

इतिषुद्ध्याज्वरं वैद्य उपक्रामेचुसन्ततम् ।

त्रियाक्रमविधौ युक्तः प्रायः प्रागपतर्पणे ॥

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए लक्षणों को निश्चारकर वैद्यको संततजर की चिकित्सा करना उचितहै, इस जरमें प्रायः लघन द्वारा चिकित्सा करना अभीष्टहै ।

सतत ज्वर के लक्षणादि ।

रक्तधात्वाश्रयः प्रायादोषः सततकज्वरम् ।

सप्रत्यनीकं कुर्वते कालवृद्धिक्षयात्मकः ॥

अहोरात्रे सततकोद्गौ कालावर्तते । फाल

प्रकृतिदूष्याणां प्राप्यैवान्यतमाह्वलम् ॥

अर्थ—प्रायः दोष रक्त धातुका आश्रय लेकर सततक ज्वर उत्पन्न करते हैं । इस ज्वरकी चिकित्सा होमकर्तीहै यह काल में घटताभीहै और घटताभीहै । यह सततक ज्वर काल, प्रकृति और दूष्यमें से किसीका बल प्राप्त करके दिनरात में-दोवार आताहै ।

अन्येद्युष्कञ्चर के लक्षणादि ।
दोषोमेदावहारदुध्वानाडीरन्येद्युष्कञ्चरम्
सम्प्रत्यनीकः कुरुते एककालमहर्निशम् ॥

अर्थ—मेदोवहा नाडियोंको रोककर दोष
अन्येद्युष्कञ्चरको उत्पन्न करतेहैं यह भी
सुचिकित्स्यहैं और दिनरात में एकबारआताहै
तृतीयक चातुर्थिक ज्वर का लक्षणदि ।
दोषोऽस्थिमज्जाः कुर्यात्तृतीयकचतुर्थकौ
गतिर्द्वयफान्तरान्येद्युदोषस्योक्तान्यथापरैः
..अर्थ—जब दोष हड्डियोंमें पड़चतेहैं तब
तृतीयक ज्वर होताहै और जब दोष मज्जा
में पड़चतेहैं तब चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न हो
ताहै । अन्येद्युष्क ज्वरका वेग प्रतिदिन
होताहै तृतीयकका एक दिन बीचमें देकर
और चातुर्थिकका दोदिन बीचमें देकर वेगहोताहै

अन्येद्युष्कादि ज्वर का कारण ।
रक्तमेवाभिसंसृज्यकुर्यादन्येद्युष्कञ्चरम् ।
मांसस्रोतांस्यनुसृतोजनयेत्तृतीयकम् ।
ज्वरंदोषः संसृतो हि मेदोमार्गश्चतुर्थकम् ।
अर्थ—दोष जब रक्तसे मिलजातेहैं तब
अन्येद्युष्कज्वर उत्पन्न होताहै । जब मांस
स्रोतोंसे मिलतेहैं तब तृतीयक ज्वर होताहै
और जब मेदाके मार्गमेंसंसृत होतेहैं तब
चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न होता है ॥

अन्येद्युष्कादि ज्वरों का समय ।
अन्येद्युष्कः प्रतिदिनंदिनं क्षिप्त्वा तृतीयकः
दिनद्वयं यो विश्राम्यप्रत्येतिसचतुर्थकः ॥
अर्थ—जो ज्वर नित्यप्रति आताहै
उसे अन्येद्युष्क कहते हैं, जो एक दिन
वाच में देकर आता है उसे तृतीयक कह-

ते हैं, लोकमें इसीको तिजारी एकांतरा भी
कहते हैं ॥ जो दोदिन बीचमें देकर आता
है उसे चातुर्थिक वा चौथैया कहते हैं ॥

कालान्तर में दोषों के कुपित होने
का दृष्टान्त

अधिशेतेयथाभूमिवाजङ्गालेचरोहति ॥

अधिशतेतथाधातुंदोषकालेचकुप्यति ॥

अर्थ—पृथ्वीमें घोषाहुआ बीज जैसे फा-
लान्तरमें अंकुरित होताहै इसी तरह धातुओं
से मिला दोष कालान्तरमें कुपित होता है ।

ज्वरों में विश्राम का कारण ।

तेष्टद्विम्बलकालञ्चप्राप्यदोषास्तृतीयकं
चतुर्थकञ्चकुर्वतिप्रत्यनीकवलक्षयात् ।

कृत्वावेगगतबलाः स्वस्वस्थानेव्यवस्थिताः
पुनर्विष्टद्धास्वेकालेज्वरयन्तिनरंभलाः ।

अर्थ—वेही दोष वृद्धि और बलकालको
प्राप्त करके तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरोंको
उत्पन्न करते हैं और बलकेक्षण होने
पर सुचिकित्स्य होजाते हैं । वेगके पश्चात्
जब उनका बल घटजाताहै तब अपनेरस्थान
पर स्थित होजातेहैं और अपने कालमें फि-
र बढ़कर वेही दोष ज्वरोंको उत्पन्न करतेहैं

तृतीयक ज्वर के अन्यलक्षण । :

कफपित्तात्रिकग्राहीपृष्ठाद्वातकफात्मकः ॥

वातपित्ताच्छिरोग्राहीत्रिविधः स्यात्तृतीयकः

अर्थ—कफ पित्तसे उत्पन्नहुआ तृतीयक ज्वर
त्रिकस्थान (तीन हड्डियों का समागम एक
ती कंधों और प्रांवा का जोड दूसरा कमर
और जांघ की हड्डियोंका जोड) में वेदना
करताहै । वात और कफ से उत्पन्न हुआ

पीठ में, इसीतरह वातापित्तसे उत्पन्न हुआ. मस्तकमें पीडा करताहै इसतरह तृतीयक ज्वर तीनप्रकार का होताहै ।

चातुर्थिक ज्वर के प्रकार ।

चतुर्थकोदर्शयतिप्रभावंद्विविधंज्वरः ॥

जंघाभ्यांश्लष्मिकःपूर्वेशिरस्तोऽनिल-
सम्भवः ।

अर्थ—चातुर्थिक ज्वर दो प्रकार का प्रभाव दिखाता है यथा जब यह कफ से उत्पन्न होता है तब प्रथमही जंघागोमें वेदना करता है फिर आप उत्पन्न होताहै और जब यातसे उत्पन्न होताहै तब सिरमें वेदना करता है ।

विषम ज्वर का लक्षण ।

विषमज्वरएवान्यथतुर्थकविपर्ययः ॥

त्रिविधोधातुरैकैकोद्विधातुस्थःकरोत्ययम् ।

अर्थ—चातुर्थिकज्वरका उलटा एक और ज्वर होता है उसे विषमज्वर कहतेहैं । माध्य निदानमें लिखाहै कि „समध्ये ज्वर यत्यन्ही आद्यन्तेच विभुचति । „ विषमज्वर उसे कहते हैं जो बीचके दो दिन आताहै और आदि अन्त के दो दिन नहीं आता । इससे जाना जाता है कि तिजारी और चौथैयाके संयोगका नाम विषम है कि इससे यह ज्वर वातज, पित्तज और कफज होता है तथा अस्थि और मज्जा दो धातुओं में आश्रित होता है क्योंकि पहिले कहचुके हैं कि अस्थिज्वर तृतीयक और मज्जागत चातुर्थिक होता है ।

भायशःसन्निपातेनदृष्टःपञ्चविधोज्वरः॥

सन्निपातेतुयाभूयोऽसदोपःपरिकीर्तितः॥

अर्थ—प्रायः सन्निपात से पांच प्रकार

का ज्वर देखा गयाहै, यथा संतत, सतत, अन्यंशुष्क, तृतीयक और चतुर्थक ! इन में जो दोष अधिक होता है उसके नाम से वह ज्वर बोला जाताहै ।

भिन्न २ ज्वरोत्पत्तिका कारण ॥

ऋत्वहोरात्रदोषाणांमनसश्चबलाबलात्
कालमर्थवशाच्चैवज्वरस्तन्तंपपद्यते ।

अर्थ—ऋतु, दिन, रात, दोष और मनका बलाबल, कालवश और अर्थवशासे भिन्न २ मनुष्यों को भिन्न २ प्रकार का ज्वर आता है ॥

रसस्थज्वर के लक्षण ॥

गुरुत्वंदैन्यमुद्वेगःसदनंछर्द्यरोचकौ ॥

रसस्थितेवाहिस्ताप साङ्गमर्दोविजृम्भणम् ।

अर्थ—रसधातु में ज्वर के स्थित होनेपर भारापन, दानता, उद्वेग, अंगग्लानि वमन, अरुचि, बाह्यताप, अंगमर्द और जंभाई ये उपद्रव होते हैं ॥

रक्तस्थज्वरके लक्षण ॥

रक्तोत्थाःपिडकास्तृष्णासरक्तंष्ठीवनंमुहुः

दाहरागभ्रमपदमलापारक्तसंस्थिते ॥

अर्थ....रक्तस्थज्वरमें देहपर लालरंगपरी गरम फुत्सियां होजातीहैं, कफके साथ धार २ रुधिर आता है, तथा दाह, राग, भ्रम, सद और प्रलाप ये भी होते हैं ॥

मांसस्थज्वर के लक्षण ॥

अन्तर्दाहःसतृष्णाह ग्लानिःसंस्पृष्टवि-

द्वक्ता ॥ दौर्गन्ध्यंगात्रविशेषोज्वरेमांस

स्थितेभवेत् ।

अर्थ—मांसस्थज्वरमें अन्तर्दाह, तृष्णा मोह, ग्लानि, पुरीषविबन्ध दुर्गन्धि और गाः

त्रिविक्षेप (हाथ पांशोंका पटकना] होताहै।
 मेदस्थज्वर के लक्षण ॥
 स्वेदस्तीत्रापिपासाचप्रलापारत्यभीक्षण-
 शः । स्वगन्धस्यासहृत्त्वञ्चपेदस्येग्लान्य-
 रोचकौ ॥

अर्थ—मेदस्थज्वरमें पसाना, तेज
 प्यास, प्रलाप, निरन्तर अस्थिरता, अपनी
 गंध अपनेको घुरीलगाना, ग्लानि और अरु-
 चि ये लक्षण होतेहैं ॥

आस्थिगतज्वर के लक्षण ॥
 विरेकवमनचोभेसास्थिभेदप्रकूजनम् ॥
 विक्षेपणश्चात्राणांश्वासश्चास्थिगेज्वरो
 अर्थ—अस्थिगतज्वरमें वमन और वि-
 रेचन दोनों होतेहैं । हडफूटन, अत्रकूजन
 गात्रविक्षेप और श्वास ये लक्षण होतेहैं ।

मज्जागतज्वर के लक्षण ॥
 हिकाश्वासःतथाकासःतपसश्चातिदर्शने ।
 मर्मच्छेदोवाहिःशैत्यंदाहोऽन्तश्चैवमज्जो
 अर्थ—मज्जागतज्वरमें हिककी, श्वास,
 खांसी,अधिक अन्धकारदीखना, मर्मच्छेद,वा-
 हरठंड और भीतर दाह ये लक्षण होतेहैं ।

शुक्रगतज्वर के लक्षण ॥
 शुक्रस्थानगतेशुक्रमोक्षं कृत्वाविनाशय-
 चा ॥ प्राणवाप्यग्निशोर्भ्रशसार्धगच्छत्य
 सौविभुः ॥

अर्थ—ज्वरके शुक्रमेंपहुंचने पर वीर्य
 अत्यन्त निकलताहै और आत्मा देह को
 नष्ट करके प्राण, वात, पित्त और कफ को
 साथ लेजाती है, अन्यग्रन्थोंमें लिखा है,
 कि पुरुषेन्द्रिय जकड़जातीहै और वीर्य के
 साथ रक्तभी आता है ॥

घात्वाश्रितज्वरको साध्यासाध्यत्व ।
 रसरक्ताश्रितःसाध्योभेदोमांसगतश्चयः ॥
 अस्थिमज्जगतः कृच्छ्रः शुक्रस्थोनैवसि-
 द्ध्याति ॥

अर्थ—रसाश्रित और रक्ताश्रित ज्वर
 साध्य होता है । भेदोगत, मांसगत, अस्थि-
 गत और मज्जागत कृच्छ्रसाध्य होता है औ-
 र शुक्रस्थज्वर कभी अच्छा नहीं होता है ॥
 हेतुभिरलक्षणैःसिद्धःपूर्वमष्टविधोज्वरः ॥
 समासेनोपदिष्टस्यव्यासतः मृणुलक्षणम्

अर्थ—हेतु और लक्षणोंद्वारा हम प्रथम
 ज्वरके आठ भेदोंका संक्षेप से वर्णन कर
 चुकेंहै अब हम विस्तारपूर्वक वर्णन करते
 हैं उसे सुनौ ॥

वातपित्तज्वर के लक्षण ॥
 शिरोरुक्पर्षणांभेदोदाहोरोम्णांप्रहर्षणम्
 कण्ठास्यशोषोवमथुस्तृष्णामूर्च्छाभ्रमोऽ
 रुचिः । स्वप्ननाशोऽतिवाग्जृम्भायातपित्त
 ज्वराकृतिः ॥

अर्थ—माथेमें दर्द, हाथपांवके जोड़ों में
 दर्द, दाह, रोमाञ्च खडे होना, कण्ठ
 शोष, मुखशोष, वमन, तृष्णा, मूर्च्छा,
 अरुचि, स्वप्ननाश, वकवाद, जम्हाई ये सब
 वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥

वातकफज्वर के लक्षण ॥
 शीतकोगौरवंतन्द्रास्तमित्यंपर्वणाञ्चरु
 शिरोग्रहःप्रतिश्यायकासःस्वेदाप्रवर्तनम्
 सन्तापोमध्यवेगश्चवातदलेप्यज्वरा-
 कृतिः ॥

अर्थ—शीत, भारापन, तन्द्रा, स्तिमिता,
 हडफूटन, माथेका दर्द, प्रतिश्याय, खांसी,

पसीनोंका आना, सन्ताप और ज्वरका मध्यम
वेग ये सब वातश्लेष्मिकज्वर के लक्षण हैं ॥

श्लेष्मपित्तज्वरकेलक्षण ॥

मुहुर्दाहोमुहुः शीतंस्वेदस्तम्भौमुहुर्मुहुः ।
मोहःकासोरुचिस्तृष्णाश्लेष्मपित्तमवर्त्तनं
लिप्तित्कास्यतातन्द्राश्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ।

अर्थ—बार बार दाहहोना, बार बार शी-
तलगना, बार बार पसीने आना, बार बार
पसीनोंका रुकना, मोह, खांसी, अरुचि, तृ-
ष्णा, कफ और पित्तका निकलना, मुख में
कफकी लहिसावट मुखमें कडवापन और त-
न्द्रा ये कफपित्तज्वरकी आकृति हैं ॥

सन्निपातज्वरकावर्णन ॥

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वत्रयोदशविधस्यहि ॥
भावसूत्रितस्यवक्ष्यामिलक्षणवैपृथक्पृथक्

अर्थ—सन्निपातज्वरके जो तेरह भेद
प्रथम संक्षिप्त रीति से वर्णन किये गये हैं
अब उन्हें विस्तारपूर्वक पृथक् २ कहते हैं ।

वातपित्तोल्बणज्वर के लक्षण ॥

भ्रमःपिपासादाहश्चर्गांरवांशिरसोऽतिरुक् ॥

वातपित्तोल्बणोविद्याल्लिङ्गमन्दकफज्वरे ।

अर्थ—भ्रम, तृषा, दाह, भारापन और
सिरमें अत्यन्त वेदना ये वातपित्तोल्बण
और मन्कफज्वर में होते हैं ॥

वातश्लेष्मोल्बणहीनकफज्वर ॥

शैत्यंकासोरुचिस्तन्द्रापिपासादाहरुग्ग्य-
या ॥ वातश्लेष्मोल्बणोविद्याल्लिङ्गपित्त

वरोविदुः ।

अर्थ—शीत, खांसी अरुचि, तन्द्रा, तृषा
दाह, वेदना, व्यथा, ये वातश्लेष्मोल्बणमन्द
पित्त ज्वर में होते हैं ॥

पित्तकफोल्बणहीनवायु के लक्षण ॥

छर्दिःशैत्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोऽस्थिवेदना

मन्दवातेव्यवस्यन्तेलिङ्गपित्तकफोल्बणे ।

अर्थ—वमन, शीत, वारम्बारदाह, तृष्णा,
मोह, अस्थिवेदना, ये पित्तकफोल्बण और
मन्द वात के लक्षण हैं ॥

वातोल्बणसन्निपातके लक्षण ॥

सन्ध्यस्थिशिरसःशूलमलापोगौरवंभ्रमः ॥

वातोल्बणेस्याद्भुगेतृष्णाकण्ठास्यशोषता

अर्थ—हाथ पांव के जोड़, हड्डी और सिरमें
वेदना, प्रलाप, भारापन, भ्रम, तृषा, कण्ठशोष
और मुख शोष ये सब वातोल्बण और हीन
कफपित्त के लक्षण हैं ॥

पित्तोल्बणसन्निपात के लक्षण ॥

रक्तविण्मूत्रतादाहःस्वेदस्तृड्वलसंक्षयः

मूर्च्छाचातित्रिदोपेस्याल्लिङ्गपित्तैगरीयसि

अर्थ—विद्या और मूत्रका लालहोजाना
दाह, पसीना, तृषा, और बलकी क्षीणता
तथा मूर्च्छा ये पित्तोल्बण और वात कफ
सन्निपात के लक्षण हैं ।

कफोल्बणसन्निपातके लक्षण ॥

आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरातिभ्रमैः ॥

कफोल्बणंसन्निपाततन्द्राकासेनचादिशेत्

अर्थ—आलस्य, अरुचि, हृल्लास, दाह,
वमन, अरति, भ्रम, तन्द्रा और खांसी ये
कफोल्बण हीन वात पित्त के लक्षण हैं ।

हीनवाते पित्तमध्य के लक्षण ॥

प्रतिश्याच्छर्दिरालस्यंतन्द्रारुच्यग्निमार्दवम् ॥

हीनवातेपित्तमध्येचिन्हंश्लेष्माधिकमेतम् ॥

अर्थ—नाक बहना, वमन, आलस्य, तन्द्रा

अरुचि, अग्निमांश, ये हीनवात पित्तमध्यऔर श्लेष्माधिकके लक्षण हैं ।

हीनवातमध्यकफकेलक्षण ।

हारिद्रमूत्रनेत्रवंदाहस्तृष्णाभ्रमोऽरुचिः ॥

हीनवातेमध्यकफोलिङ्गपित्ताधिकेमतम् ।

अर्थ—हृदी के रंग के मूत्र और आंख होजाना, दाह, तृष्णा, भ्रम और अरुचि ये हीनवात मध्य कफ और पित्ताधिकके लक्षण हैं ।

हीनपित्तमध्यकफकेलक्षण ।

शिरोरुक्वेपथुःश्वासःप्रलापोऽर्धरोचकाः

हीनपित्तेमध्यकफोलिङ्गवाताधिकेमतम् ।

अर्थ—शिर में वेदना, कम्पन, श्वास, प्रलाप, वमन, अरुचि ये हीनपित्त मध्यकफ और वाताधिक के लक्षण हैं ।

हीनपित्तमध्यवातकेलक्षण ।

शीतकगौरवंतन्द्रामलापोऽस्थिशिरोऽति

रुक ॥ हीनपित्तेवातमध्येलिङ्गश्लेष्माधि-

केविदुः ।

अर्थ—शीत, भारापन, तन्द्रा, प्रलाप हृष्टी और सिरमें अत्यन्त वेदना ये हीन पित्त मध्यवात और श्लेष्माधिक के लक्षण हैं ।

कफहीनपित्तमध्यकेलक्षण ।

श्वासकासप्रतिश्यायामुखशोपोऽतिपार्श्व

रुक ॥ कफहीनेपित्तमध्येलिङ्गवाताधिके

मतम् ।

अर्थ—धास, खांसी, प्रातिश्याय, मुख शोष पसलियोंमें अत्यन्त वेदना ये हीन कफ, मध्य पित्त और वाताधिक के लक्षण हैं ।

हीनकफवातमध्यकेलक्षण ।

पर्वभेदोऽग्निदौर्वल्यंतृष्णादाहोऽरुचिभ्रमः

कफहीनेवातमध्येलिङ्गपित्ताधिकेविदुः ।

अर्थ—हृदगूटन अग्निमान्द्य, तृष्णा, दाह, अरुचि और भ्रम ये कफहीन, वातमध्य और पित्ताधिक के लक्षण हैं ॥

तेरहवैसन्निपातकेलक्षण ।

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वमतोवक्ष्यामिलक्षणम्

क्षणेदाहःक्षणेशीतमस्थिसन्धिशिरोरुजः

सास्त्रावेकलुपेरक्तेनिष्ठुग्नेचापिदर्शने। स-

स्वनौसरुजौकर्णौकण्ठःशूकैरिवावृतः ॥

तन्द्रामोहःप्रलापश्चकासःश्वासोऽरुचिर्भ्रमः

परिदग्धाखरस्पर्शाजिह्वासस्ताज्जतापरम् ॥

घृविनंरक्तपित्तस्यकफेनोन्मिश्रितस्यच ।

शिरसोलोठनंतृष्णानिद्रानाशोहादिव्यथा ॥

स्वेदमूत्रपुरीषाणांचिरादर्शनमल्पशः

कृशत्वंनातिगात्राणांप्रततंकण्ठकूजनम् ॥

कोठानांश्यावरक्तानामण्डलानांचदर्शनम्

मूकत्वंस्रोतसांपाकोयुक्त्वमुदरस्यच ॥

चिरात्पाकश्चदोषाणांसन्निपातज्वराकृतिः।

अर्थ—अब हम सन्निपातिक ज्वरके लक्षण

कहते हैं, यथा क्षणभरमें दाह होना, क्षण

भर में शीत लगना, अस्थिशूल, सन्धिशूल,

शिरःशूल, आंखोंमें आंसू भरकर नेत्रों का

छाल तथा काला होजाना और फटे से हो-

जाना, कानोंमें शब्द और वेदना होना, कण्ठ

में कांटे पडजाना, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, खांसी

श्वास, अरुचि, भ्रम, जिह्वा का काला और

खरदरा होजाना, अंगका अत्यन्त शिथिल प-

डजाना, कफमिलेहुए रक्तपित्तका धूकके साथ

निकलना, सिरका इधर उधर पटकना तृष्णा,

निद्रानाश, हृदयमें वेदना, पसीना, मूत्र

और मलका बहुत देरमें थोडासा होना, देह

से मिलजाने पर व्यामिश्र लक्षण पाये जाते हैं अर्थात् पूर्वोक्त लक्षण और वातादि दोषजनित लक्षण दोनों मिले हुए होते हैं । आगन्तुक ज्वर हेतु और औषधोंके गुणविशिष्ट भी होते हैं ॥

कामादि से मन के आक्रान्त होने पर प्रथमही ज्वर बल प्राप्त नहीं करता है परन्तु जब कामादि से मन दूषित होजाता है तब ज्वर बलवान् होता है ॥

ज्वर का उत्पत्ति क्रम ।

संसृष्टाः सन्निपतिताः पृथक्वाकुपितामलाः
रसालंबधातुमन्वेत्यपत्तिस्थानान्भिरस्यच
स्वेनतेनोष्मणाचैवकृत्वादेहोष्मणोबलम् ।
स्रोतांसिरुद्ध्वासम्प्राप्ताः केवलदेहमुल्वणाः
सन्तापमधिकंदेहेजनयन्तिनरास्तदा । भ-
वत्युष्णसर्वाङ्गोज्वरितस्तेनचोच्यते ।

अर्थ—दो दो दोष अथवा पृथक् पृथक् दोष कुपित होकर रसनामक धातुका अनुसरण करके जठराग्निको स्थानभ्रष्ट करदेते हैं । उस जठराग्निकी गर्मीसे शरीर की गर्मीका बल बढ़जाता है और वह गर्मी स्रोतोंको रोककर केवल देहपर अत्यन्त अधिकार जमाती है तब देहमें अत्यन्त सन्ताप उत्पन्न होता है । तब सम्पूर्ण देह गरम होजाती है और उस मनुष्य को ज्वरग्रस्त कहते हैं ।

पसीने न निकलने का कारण ।

स्रोतसांसंनिरुद्धत्वात्स्वेदनानाधिगच्छति ॥ स्वस्थानात्प्रच्युते चाग्नौ प्रायशस्त-
रुणेज्वरे ॥

अर्थ—तरुणज्वर में ही प्रायः जठराग्नि अपने स्थानसे चालित होजाती है और इस हेतुसे स्रोतोंके रुकजाने के कारण पसीने नहीं निकलने पाते हैं ।

आमज्वर के लक्षण ।

अरुचिश्चाविपाकश्चगुरुत्वमुदरस्यच ।
हृदयस्याविशुद्धिश्चतन्द्राचालस्यमेवच ॥
ज्वरोऽविसर्गावलवान्दोषाणामप्रवर्त्तनम्
लालामसेकोहृल्लासोक्षुभाशोऽविशदंमु-
खम् ॥ स्तब्धमुसगुरुत्वञ्चगात्राणांबहु-
मूत्रता । नविहजीर्णानचग्लानिज्वरस्या-
मस्यलक्षणम् ।

अर्थ—अरुचि, अविपाक, पेटका भारापन हृदयकी अविशुद्धि [भारी डकार आना] तन्द्रा, आलस्य, अविसर्गी ज्वर [जो बीच में कम न हो] बलवान् ज्वर, दोषोंकी रुकावट, लालाप्रसेक [लारगिरना] हृल्लास, क्षुधानाश, मुखमें गिलगिलापन, अंगावयवों का स्तब्ध, सुप्त और भारी होजाना, पेशाब बहुतआना, मलका कच्चापन और अग्लानि ये सब आमज्वरके लक्षण हैं ।

निरामज्वरलक्षण ॥

क्षुत्क्षामतालधुत्वञ्चगात्राणांज्वरमार्दवम्
दोषप्रवृत्तिरप्याहो निरामज्वरलक्षणम् ।

अर्थ—भूखसे दुर्बलता [भूख लगना और देहका कृश होजाना] शरीरका हलकापन, ज्वरका कमहोना, दोषोंकी प्रवृत्ति आठ दिन व्यतीत होना अर्थात् आठ दिन में ज्वरका पचजाना ये लक्षण निरामज्वरके हैं ॥ 'दोषप्रवृत्तिरष्टाहो, की जगह' दोषप्रवृत्तिरुत्साहो, ऐसा पाठभी है ।

नवज्वरमें व्रजितकर्म ॥

नवज्वरोदिवास्वप्नस्नान्नाभ्यङ्गाद्यभैथुनम् ।
क्रोधप्रवातव्यायामकपायांश्चविवर्जयेत् ॥

अर्थ—नवीनज्वरमें दिनका सोना, स्नान करना, तैलमर्दन, भोजन करना, भैथुनकरना, क्रोधकरना, हवाखाना, काथपान करना ये सब व्रजितहैं ॥

ज्वरमें लंघन विधान ॥

ज्वरेलंघनमेवादावुपादिष्टमृतज्वरात् ॥
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥

अर्थ—ज्वरकी आदिमें लंघन करना उचित है परंतु जो ज्वर क्षय, वात, क्रोध, काम, शोक और श्रम से उत्पन्न हुआहै उस में लंघन न करै ॥

लंघनकागुण ॥

लंघनेनभयनीतेदोषेसन्धुक्षितेऽनले ।
विज्वरत्वंलघुत्वंचक्षुचैवास्योपजायते ॥
प्राणाविरोधिनाचैनंलंघनेनोपपादयेत् ।
बलाधिष्ठानमारोग्ययदर्थोऽयंक्रियाक्रमः ॥

अर्थ—लंघनसे दोष क्षीण होजाते और जठराग्नि बढजाती है इस से ज्वर का नाश होता है, देह हलकी पढजाती है और क्षुधा चतन्य होजातीहै । ऐसा लंघन देना चाहिये जिससे प्राणोंको बाधा न पहुँचे । बल आरोग्यताके आश्रितहै और आरोग्यता चिकित्सा के आश्रित होतीहै ॥

अविपक्वदोषों के पाचकद्रव्य ॥

लंघनंस्वेदनं कालोपवाग्बस्तिक्तकारसः ।
पाचनान्यविपक्वानांदोषाणांतरुणेज्वरे ॥

अर्थ—तरुण ज्वर में अविपक्व दोषों के

पचाने वाले ये हैं यथा—लंघन, स्वेदन, काल, यवागू और तिक्तरस ॥

उष्णशीतल जलका विधान ।

तृप्यतेसालिलञ्चोष्णंदद्याद्वातकफज्वरे ।
मद्योत्थेपैत्तिकेवायशीतलंतिक्तकैःशृतम् ॥
दीपनंपाचनञ्चैवज्वरप्रमुभयंहितत् ।
स्रोतसांशोधनंवल्यंरुचिस्वेदकरंशिवम् ॥

अर्थ—त्रातकफ ज्वरमें जो तृपा की प्रवृत्ता होती रोगीको उष्ण जल पीनेको देवे मद्यसे उत्पन्न और पित्तज्वर में तिक्त औषधियों को डालकर औटाया हुआ जलठंडा करके देवे । ये दोनों प्रकारके जल दीपन, पाचन, ज्वरनाशक, स्रोत, समूहके शोधनकर्ता, वलकारक, रुचिवर्द्धक, स्वेदोत्पादक और कल्याणकारक होते हैं ॥

पिपासानाशकजल ॥

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।
शृतशीतंजलंदद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥

अर्थ—यदि उक्त ज्वरों में तृपा की अधिकता हो तौ मोथा, पित्तपापडा, उशीर, चन्दन, नेत्रकाल और सोंठ डालकर जल औटावे और ठंडा करके पान करावे तौ ज्वर और तृपा दोनों शान्तहों ।

दोषोंमें वमन का विधि निषेध ।
कफप्रधानानुत्क्रिष्टान्दोषानामाशयस्थितान् ।
बुद्ध्वाज्वरकरान्कालेवम्यानां वमनैरेत् ॥
अनुपस्थितदोषाणां वमनंतरुणेज्वरे ॥
हृद्रोगभासमानाहंमोहश्चजनः ।

येऽशुशम् ।

अर्थ—यदि आमाशयस्थज्वरकी उत्पन्न करने वाले दोष कफप्रधान और रोगी

वमन कराने के योग्य होती उचितकालमें वमन कराके दोषों को निकाल परन्तु यदि दोष उपस्थितहों तौ तरुणज्वर में वमन कराने से हृद्रोग, श्वास, आनाह और मोह की अत्यन्त उत्पत्ति होती है ।

आमदोष में संशोधन निषेध ।

सर्वदेहानुगासामाधातुःधातुःखनिर्हराः ।

दोषाःफलेभ्यआमेभ्यस्वरसाइवसात्ययाः

अर्थ—सम्पूर्ण देह में व्याप्त धातुओं में स्थित आमदोषोंका निकालना ऐसा कष्ट साध्य है जैसे कच्चे फल से रसका निका लना फलका नाश करनेवाला होता है ।

वमनलंघन का पश्चात् कर्म

वमितलंघितकालेयवागूभिरुपाचरेत् ॥

यथास्त्रौपधासिद्धाभिमण्डपूर्वाभिरादितः

यायत्ज्वरमृदूभावात्पद्दह्याविचक्षणः ॥

तस्याग्निदीप्यतेताभिःसमिद्धिरिवपायकः

अर्थ—वमन और लंघन कराने के पश्चात् क्षुधा लगाने पर यवागू पान करावै यवागू तीन प्रकार की होती है इनमें से दोपानुसार औषधों से सिद्धकी हुई मण्ड प्रथमपान करावै, जब तक ज्वर मृदु न हो अथवा छ. दिवस पर्यन्त यवागू पान करता रहै । इस यवागू के पान करनेसे रोगी की जठराग्नि ऐसे बढ़ती चली जायगी जैसे ईंधन डालने से अग्नि बढ़ती है ।

यवागू के गुण ।

ताश्रभेपजसंयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनाः

धातमूत्रपुरीषाणांद्रोषाणाञ्चानुलोमनाः

स्वेदनायद्रवौष्णत्वाद्द्रवत्वाच्चूदप्रशान्तये

आहारभावात्प्रमाणायसरत्वाल्लाघवायच

ज्वरघ्न्योज्वरसात्म्यत्वात्तस्मात्पेयाभिरादितः । ज्वरानुपाचरेद्दीमानृतेमद्यसमु

त्थितान् ॥

अर्थ—औषधियोंके संयोग और लघुता के कारण यवागू अग्निवर्द्धक होती है, अधोवायु, मूत्र, पुरीष और दोषोंको अनुलोमन करनेवाली है । पेया द्रव है और उष्ण होनेसे स्वेदनकर्ता है, द्रव होने से तृषानाशक है, आहार गुणविशिष्ट होनेसे प्राणधारक है, सर होने से शरीर को हल करती है ज्वर के सात्म्य होने से ज्वर को नाश करनेवाली है, अतएव बुद्धिमान् वैद्य को उचितहै कि प्रथमही पेयासे ज्वरों का उपचार करे परन्तु मद्यज्वरों में पेया का पान करना उचित नहीं है ॥

यवागू वर्जित ज्वर ॥

मदात्ययेमद्यनित्येग्रीष्मेपित्तकफाधिके ।

ऊर्ध्वगेरक्तपित्तेचयवागूरहिताज्वरे ॥

अर्थ ... मदात्ययजन्य ज्वर, नित्यमद्य सेवाका ज्वर, ग्रीष्मऋतुका ज्वर, पित्तकफजन्य ज्वर और ऊर्ध्वगेरक्त पित्त ज्वर में यवागू पान न करावै ।

तर्पण विधि ।

तत्रतर्पणमेवाग्नेयमयोज्यंलाजशक्तुभिः ॥

ज्वरापहैःफलरसैर्युक्तैसमधुशर्करम् ॥ द्रा

क्षादादिभस्वर्जूरपियालैःसपरूषकैः । तर्प

णार्हेषुकर्त्तव्यंतर्पणंज्वरशान्तये ॥ ततः

सात्म्यवलापेक्षी भोजयेज्जीर्णतर्पणम् ॥

तनुनामुद्गयूपेणजाङ्गलानारसेनवा ॥

अन्नकालेषुचाप्यस्मैविधेयंदन्तधावनम् ।

योऽस्यवन्नतरसस्तस्माद्विपरीतमित्यश्चयत्

तदस्यमुखवैशद्यं प्रकांक्षाचान्नपानयोः ।
 पत्तोरसविशेषाणामभिज्ञत्वं करोति यत् ॥
 विशोधयद्गुणशरत्त्रैरास्यं प्रक्षाल्य चास
 कृत् । मास्त्वहुरसमद्यार्थे यथाहारमवा
 पुन्यात् ॥

अर्थ—प्रथमही ज्वर नाशक फलों का रस तथा शहत और खांड मिलाकर ठाज (खांड) के सत्तूका तर्पण देवे । दाख अनार, खिजूर, पियाल, फालसा इनका रस मिलाकर तर्पण के योग्य पुरुषों के लिये ज्वर को दान्त कराने के निमित्त तर्पण दिया जाता है । जब तर्पण पचजाय तब साम्य और बलकी अपेक्षा करके मूंगका पतलायूप और जांगल पशुओंका मांसरस भोजनके समय देवे । भोजन करनेसे पहिले दन्तधावन ऐसे द्रव्यों से करे जो मुखके रसके विपरीत हों और जिन का ज्ञापका भी खराब न हो । इस प्रकार दन्तधावन करने से रोगी के मुख में विशदता (सफाई) होनी है और उसकी धरु पान में रुचिवदती है सब रसोंका स्वाद भोजन लगता है और उनका ज्ञान होजाता है वृक्षकी शाखाके अप्रभाग से मुखको शुद्ध करके और अच्छी तरह धोकर मस्तु, इक्षुरस, और मद्यादिका रोग के अनुसार पान करावे ॥

ज्वर में पाचन द्रव्योंका समय
 पाचनीयं शमनीयं कपायं पाययेत्तत् ॥
 ज्वरितं पट्टहेऽतीते लघ्वन्नेन प्रतिभोजितम् ॥
 स्तभ्यन्तेन विपच्यन्ते कुर्वन्ति विपमज्वरम्
 दोषावद्धाः कपायेण स्तम्भित्वा चरुणैः ज्वरे

अर्थ—छः दिन व्यतीत होने पर ज्वर रोगी को पाचन कर्त्ता और शमनकर्त्ता औषधों का काय पान करावे और लघुअन्नका भोजन करावे । तरुणज्वरमें क्वाथका सेवन करानेसे दोषवद्ध और स्तम्भित होजाते हैं और पचनेमें नहीं आते हैं तब वे विपम ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥

नतु कल्पनमुद्दिश्य कपायः प्रतिपिध्यते ।
 कपायः कपायः स्यात्सर्वार्थस्तरुणज्वरे ॥

अर्थ—ऊपर जो तरुण ज्वरमें कपाय का निषेध किया गया है वह कपायमात्र का नहीं है परन्तु जो कपाय रसवाला है उसका निषेध है ॥

दसदिन पर्वन्त पथ्यविधि ॥

यूपैरम्लैरनम्लैर्वाजाङ्गलैर्वारसैर्हितैः ॥
 दशाहंतावदश्रीयालध्वनंज्वरशान्तये ॥

अर्थ—ज्वरकी शांति के लिये दस दिन तक अम्ल वा अनम्लयूप और हितकारी जांगल पशुओं के मांसरस के साथ लघु अन्न का पथ्य करे ॥

दसदिन पीछे कर्म ॥

अतर्ज्ज्वरं कफे मन्दे यातापित्तोत्तरे ज्वरे ।
 परिपके पुदोपे पुसपिप्पानं यथा मृतम् । नि-
 र्दशाहमपि ज्ञात्वा फोत्तरमलं घितम् ।
 न सर्पिः पाययेत् वैद्यः कपायं स्तमुपाचरेत् ॥
 यावलघुत्वाद्दशनं दधान्मांसरसेन च ।
 परं हलं दोषहरं परन्तच्च बलमदम् ॥ दाह
 तृष्णापरीतस्य वा तापित्तोत्तरे ज्वरम् ।
 वद्धमस्युतदोषं वानिरामं पयसा जपेत् ॥
 क्रियाभिराभिः प्रशमनं प्रयातियदा ज्वरः ।
 अक्षीणबलमांसस्य शमयेत्तत्तं विरेचनैः ॥

ज्वरक्षीणस्यनाहितं वमनन विरेचनम् । का
मन्तुपयसातस्यनिरूहैर्वाहरेन्मलान् ॥

अर्थ—दस दिन पीछे यदि कफ मन्द
पडजाय और घात पित्त प्रबल रहै और दोष
सब परिपक्व होजाय तब घृतका पान कराना
अमृत के समान गुणकारकहै ।

दस दिन पीछे भी यदि कफ बलवान्
रहै तो उसको लघन ठाँक नहुए ऐसे समय
में घृतपान न करावै किन्तु कपायों द्वाराही
चिकित्सा करै ॥

जबतक देह हल्की न हो तत्रतक मास
रस खाने को दे क्योंकि मासरस अत्यन्त
दोषनाशक, परमोत्तम और बलप्रद है ।

ऐसा ज्वर जिसमें घात पित्तकी अधि
कताहो और तृषा बलवान् हों और उस में
दोष बढ़ हो या प्रच्युत हों ऐसे निरामज्वर
में दुग्धका सेवन करै ॥

यदि ऊपर कही हुई क्रियाओं से ज्वर
शान्त न हो और रोगी का बल और मांस
क्षीण न हुआहो तो विरेचन द्वारा ज्वर की
शांति करै और जो रोगी उरसे क्षीण हो
गयाहो तो उसको वमन विरेचन बुठन देवै
किन्तु तृप्ति पर्यन्त दुग्ध पान कराके अथवा
निरूहण वस्ति द्वारा दोषों को निकाल देवै ।

ज्वर में निरूहणवस्ति ॥

निरूहोवलमग्निश्चविज्वरत्वंमुदंरुचिम् ।
परिपेक्षुदोषेषुप्रयुक्तंशीघ्रमावहेत् ॥

अर्थ—परिपक्व दोषोंमें निरूहण वस्ति-
का प्रयोग करनेसे बल, अग्नि, उर रहित-
ता, प्रसन्नता और अन्न में राचि शीघ्रही
उत्पन्न होती है ॥

ज्वर में निरूहणवस्ति ॥

पित्तवाकफपित्तवापित्ताशयगतहरेत्सं-

सनं ग्रीन्मलान् वस्तिहरेत्पकाशयस्थितान्

अर्थ— वस्ति पित्ताशयगत पित्तको नि-
काल देती है. ससनकर्ता है और पकाशयस्थ
तीनोंमलों को निकाल देती है ॥

अनुवामनवस्तिविधान ॥

ज्वरेपुराणेषंक्षीणेकफपित्तदृढाप्रये ।

रूपवद्धपुरीषाणांप्रदद्यादनुवासनम् ।-

अर्थ—ज्वर पुराना पडगया हो, कफ पित्त
क्षीण होगये हों, अग्नि मन्दहो, और पुरीषरुक्ष
वा बद्धहोगयाहो तब अनुवासन वस्ति देवै ।

शिरोविरेचन

गौरवेशिरसःशूलेष्विवद्धेष्वान्द्रियेषु च ॥-

जीर्णज्वरेरुचिंरुद्धकुर्यान्मूर्ध्वविरेचनम्

अर्थ—देहमें भारापन, शिरोत्रेदना, इन्द्रिय
त्रिबन्ध इन लक्षणों से युक्त जीर्णज्वर में
विरेचन देवै इसके देने से राचि बढतीहै ॥

जीर्णज्वरके अन्य उपचार ॥

अभ्यङ्गाधामदेहांशसस्त्रेहान्सावगाहनान्

विभज्यशीतोष्णतयाकुर्याज्जीर्णज्वरेभिप-

क्षुः । तराशुहिंशामयातिवहिर्मागीगतोज्वर-

लभन्तेमुखगंगानिवलवर्णश्चवर्धते ।

अर्थ—भिपक्षुको उचितहै कि जीर्ण ज्वर
में विरेचना करके शीतोष्ण अभ्यग स्निग्ध
प्रदेह और अग्गाहन द्वारा चिकित्साकरै ।
इन उपचारोंके करने से वहिर्मागी गामी
ज्वर शांत होजाताहै, अग के अन्वय
मुखी होजाते हैं तथा बल और वर्णकी
वृद्धि होती है ॥

घूपनाञ्जनयोगै धयान्तिजीर्णज्वराःशमम्
त्वङ्मात्रशेषायेपाञ्चभवन्यागन्तुरन्वयः
इतिक्रियाक्रमःसिद्धोज्वरघ्नःसम्प्रकाशितः

येपान्त्वपक्रमस्तानिद्रव्याण्यूर्ध्वमतःशृणु
अर्थ—ऐसे जीर्णज्वर जिनमें त्वचामात्र

शेष रह गई हो और आगन्तुकज्वर घूपन और
अञ्जनके योग से शमन होते हैं यह ज्वर-
नाशक चिकित्साका क्रम वर्णन किया गया
है, अब हम उन द्रव्योंका वर्णन करते हैं जो
इस चिकित्सा क्रम में उपयोगी होते हैं ॥

ज्वरनाशकप्रयोग ।

रक्तशाल्यादयःशस्ताःपुराणाःषष्टिकैःसह

यवाग्वोदनलाजार्थज्वरितानांज्वरापहाः

अम्लाभिलापीतामेयदाडिनाम्लासनाग

राम् ॥ सृष्टिविद्वेषैत्तिकोवायशीतामधुयु

तापिवेत् । लाजपेयांसुखजरापिप्पली

नागरैःशृताम् ॥ पिवेज्वरीज्वरहरांसु-

हानल्पामिरादितः । पेयांत्रारक्तशाली-

नांपार्श्ववास्ताशिरोरुजः ॥ श्वद्वृक्कण्ट

कारिभ्यांसिद्धाज्वरहरापिवेत् । ज्वराति

सारीपेयांवापिवेत्साम्लांशृतांनरः ॥ पृश्नि

पर्णाधलायित्वनागरोत्पलधान्यकैः ।

अर्थ—ज्वर ग्रस्त रोगीके ज्वर को शान्त

करने के निमित्त रक्तशाली चांबलकी यवागू

भात और खील बनवाकर देवै ।

जो रोगी को खटाई पर इच्छा हो तो उस

यवागू में अनाकी खटाई और सोंठ डालकर

पान करावै । जो विषा और पित्त निकलगये

होती उसको ठंडी करके शहत डालकर

पान करावै ॥

मन्दाग्निवाला पुरुष क्षुधालगने पर पीपल
और सोंठ डालकर लजपेया का पान करे।
यह सुख पूर्वकपचजाती है और ज्वरको भी
दूर करदेती है ।

खल शाली चांबलों की पेया गोखरू और
फटेरी डालकर सिद्ध करे और इसको पान
करे तो पार्श्व वेदना, वस्तिवेदना, शिरोरोग
और ज्वर ये सब नष्ट होजाते हैं ।

ज्वरातिसार रोगवाला पृदिनपर्णी, खरैटी, वै-
लगिरी, सोंठ, निलोफर और धनियां डालकर
सिद्धकी हुई पेयामें खटाई डालकर पान करे ॥

ज्वरनाशक अन्यप्रयोग ॥

शृतांविदारीगन्धाढ्यैर्दीपनीस्येदनीनरः॥

कासीश्वासीचहिक्कीचयवागूज्वरितःपिवे

त् । विषद्ववर्चाःसयवाःपिप्पल्यामलकैः-

कृताम् ॥ सार्पिष्मतीम्पिवेत्पेयांज्वरीदो-

पानुलोमनीम् । कोष्ठेविषद्वेसरुजिपिवेत्

पेयांशृतांज्वरी ॥ मृद्वीकापिप्पलीमूलच

व्यामलकनागरैः । पिवेत्सवित्वापेयां

वाज्वरेसपरिकर्तिके ॥ बलावृक्षाम्लफो

लाम्लकलशधावनीशृताम् । अस्वेदनि-

द्रस्तृष्णार्तःपिवेत्पेयांसर्कराम् ॥ नाग

रामलकैःसिद्धाद्घृतभृष्टांज्वरापहम् ।

अर्थ—विदारीगंधडालकर सिद्धकी हुई

यवागूखांसी, श्वास, हिचकी और ज्वररोगोंमें

देवै, यह यवागूदीपनीय और स्वेदनकर्ताहै ॥

जो विषाकमया हो तो ज्वर रोगी

पीपल और आंवला डालकर सिद्ध की हुई

जौकी पेयामें घृत डालकर पानकरे, यह

पेया दोषोंको अनुलोमन करनेवाली है ॥

कोष्ठवद्ध और शूलहोनेपर ज्वररोगी को किसामिस, पीपलामूल, चव्य, आंबला और सोंठ डालकर सिद्धकी हुई पेया पान करावे

परिकर्तिका (पेट में मरोडा) रोग में ज्वररोगी बेलगिरी, खैरटी, वृक्षाम्ल, कोलाम्ल, कलशी (पृष्णपर्णी), और धावनी (शालपर्णी) डालकर सिद्धकी हुई पेया पान करावे

जिसको पसीने और नींद नआती हो और तृषा अधिक लगतीहो वह सोंठ और आंबला डालकर सिद्धकी हुई और घृत में मुनीहुई पेयोंमें चीनी डालकर पानकरे । इससे ज्वर भी जाता रहता है ।

ज्वरपरयूप ॥

मुद्गान्मसूरांश्रणफान्कुलत्थान्समकुष्ठकान् यूपार्थेयूपसात्म्यानांज्वरितानाम्प्रकल्पयेत्

अर्थ—ज्वररोगी जिनको यूप साम्य है वे मूंग, मसूर, चना, कुलथी और मोठका यूप पीवे

ज्वरपरशाक ॥

पटोलपत्रंसफलकुलकंपापचेलिकाम् ॥
ककौटर्ककेठिल्लश्चधिघातुशाकंज्वरेहितम् ॥

अर्थ—ज्वरमें परखलके पत्ते, फल और डंठलकासाग, पाठ, ककौटक और करेले का साग हित है ॥

ज्वरपरमांस ॥

लावान्कापिञ्जलानेणांश्रकोरानुपचक्र कान् ॥ कुरङ्गान्कालपुच्छांश्रहरिणान्पृषतान् शशान् । प्रदद्यान्मांससात्म्यायज्वरिता यज्वरापहान् ॥

अर्थ—लवा, तांतर, हरिण, चक्रोग, चक्रवा, कुराग, कालपुच्छ, पृषत और खगोश

इनकामांस मांससात्म्य रोगियों को देवे, ये ज्वरनाशक होते हैं ॥

ज्वरमेंमांसरसकावर्णन ॥

ईपदम्लाननम्लान्वारसान्कालेविचक्षणः कुक्कुटांश्चमयूरांश्चतिशिरिक्राञ्चवर्तकान् । गुरुष्णत्वान्नशंसन्तिज्वरेकेचिच्चिकित्सकाः । लंघनेनानिलवलज्वरेयद्यधिकंभवेत् ॥ भिपह्मात्राविकल्पज्ञोदद्यात्तानपिकालावेत् ॥

अर्थ—बुद्धिमान् वैद्यको उचितहै कि यो-डीसी खटाई डालकर या बिना खटाई के मांसरस उचितकालमें ज्वररोगीको देवे । मुर्गा, मोर, तीतर, दुग्ज और बतककामांसरस हित होताहै । कोई २ वैद्य यह कहतेहैं कि मांसरस भारी और उष्ण होताहै इसलिये ज्वर में देना ठीक नहीं है ॥

यदि ज्वरमें लंघन करानेसे बात का बल अधिक होजाय तो वैद्यको उचित है कि मात्रा, विकल्प और कालके अनुसार मांसरसोंका सेवन करावे ॥

ज्वरपर मद्यादि विधि ॥

यर्माभ्युचानुपानार्थतृपितायप्रदापयेत् ॥
मथंवामथसात्म्याययथादोषंयथावलम् गुरुष्णास्निग्धमधुरकपायांश्चनज्वरे ॥
आहारान्दोषपवत्यर्थमायशःपरिर्वर्जयेत् अनुपानक्रमःमिष्टोज्वरघ्नःसम्प्रकाशितः ॥ अतऊर्ध्वप्रवक्ष्यन्तेकपायाज्वरनाशनाः

अर्थ—भोजनके पश्चात् तृषा लगनेपर ज्वररोगीको उष्णजलका पान करावे । जिसको मय अनुकूलहै उसे यथादोष और यथावल

मद्यका अनुपान करावै । नवीन ज्वरमें दो पोंके पचानेके लिये गुरु, उष्ण, मधुर, स्निग्ध और कपायरस वाले आहारोंका सेवन न करावै । यह अनुभूत ज्वरनाशक अनुपानकर्म वर्णन किया गया है ॥

अब हम ज्वरनाशक काथोंका वर्णन करतेहैं
ज्वरनाशककाथ ॥

पाकयंशीतकपायंवायुस्तर्पटकंपिबेत् ॥
सनागरंपर्पटकंपिबेद्वासदुरालभम् ॥ कि
राततिक्तकंमुस्तंगुडूर्चीविश्वभेषजम् ॥
पाठामुशीरंसोदीच्यंपिबेद्वाज्वरशान्तये ।
ज्वरघ्रादीपनाश्चैतेकपायादोपपाचनाः ॥
तृष्णारुचिप्रशमनामुखवैरस्यनाशनः ।

अर्थ—ज्वरके दूर करने के लिये नांचे लिखीहुई औषधियोंके प्रयोगोंका कपाय वा शीतकपाय बनाकर देवै यथा मोथा और पित्तपापडा इनका शीतकपाय वा कपाय पानकरै । अथवा सोंठ, पित्तपापडा, और जवासा इनका काथ पीवै । अथवा चिरायता, नागरमोथा, गिलोय सोंठ, पाठा, खस, और नेत्रवाला इनका कपाय ज्वरकी शांति के लिये पानकरै । ये तीनों कपाय जो ऊपर कहेगये हैं ज्वरशान्तकर्त्ता, दीपन दोपपाचन, तृपानाशक, अरुचिनाशक और मुखको विरसता को नाश करनेवाले हैं ॥

ज्वरनाशकअन्यकाथ ।

कलिङ्गकाःपटोलस्यपत्रंकडुकरोहिणी ॥
पटोलःशारिवायुस्तंपाठाकडुकरोहिणी ।
निम्बःपटोलस्त्रिफलामृद्रीकामुस्तवत्सकाः
किरातातिक्तमृताचन्दनविश्वभेषजम् ।

गुडूच्यामलकंमुस्तमर्दश्लोकसमापनाः ॥
कपायाःशमयन्त्याशुपञ्चपञ्चविधंज्वरम् ॥
सन्ततसततान्येद्युरतृतीयकचतुर्थकम् ॥
अर्थ— (१) इन्द्रजौ, परवलके पत्ते, कुटकी । २-परवल, शारिवा, मोथा, पाठा, कुटकी । ३-नीम, परवल, त्रिफला, किसमिस, मोथा, इन्द्रजौ । ४-चिरायता, गिलोय रक्तचन्दन और सोंठ । ५-गिलोय आंबला और मोथा । ये आधे २ श्लोक में कहेहुए पांच प्रकार के काथ क्रमसे सन्तत, सतत, अन्येद्युक्क, तृतीयक और चतुर्थक इन पांचो प्रकारके ज्वरको नाश करते हैं ॥

ज्वरनाशक अन्यवकाथ ॥

वत्सकारग्वधपाठांपद्ग्रन्थांकडुरोहिणीम्
मूर्वासातिविपांनिम्बंपटोलधन्वयासकम्
वचायुस्तमुशीराणिमधुकनिफलांबलाम् ॥
पाकयंशीतकपायंवापिबेद्वाज्वरहरंनरः ।
अर्थ—इन्द्रजौ, अमलतास, पाठा, वच, कुटकी, मूर्वा, अतीस, नीम, परवल, जवासा वच, मोथा, खस, मुलहटी, त्रिफला, खरैटो इन सबके काथ वा शीतकपायका पान करै यह ज्वरनाशक काथ है ।

अन्यप्रयोग ।

मधुकमुस्तमृद्रीकाकाशमर्यागिपरुपकम् ॥
त्रायमाणमुशीराणित्रिफलांकडुरोहिणीम्
पीत्वानिशिस्थितजंतुज्वरच्छीघ्रांविमुच्यते
अर्थ—मुलहटी, मोथा, किसमिस, खंभारी फालसा, त्रायमाणा, खस, त्रिफला और कुटकी इनके शीतकपायका पान करनेसे ज्वर शांघ्रही नष्ट होजाताहै ॥

अन्यप्रयोग ।

वृहत्सौवत्सकमुस्तं देवदारुमहौषधम् । को
लवलीचयोगोऽयं सन्निपातञ्ज्वरापहम् ॥

अर्थ—देनों कटेरी, इन्द्रजौ, मोथा, देव
दारु, सोंठ, और गजपपिल इनका काथ
सन्निपात ज्वरका नाश करने वाला है ।

विबन्धदोषयुक्त ज्वर परक्वाथ ।

जात्यामलकमुस्तानितद्वद्धन्वयचासकम् ।

विबद्धदोषोज्वरितः कपायंसगुहंपिबेत् ॥

अर्थ—जायफल, आंबला मोथा, जवासा
और गुड़ इनका कपायकरके पीनेसे विबद्ध-
दोष युक्त ज्वर नष्ट होजाता है ।

तिफलांश्रयमाणान्श्वमृद्वीकांकडुरोहिणीम्
पित्तश्लेष्महरस्त्वेषकपायोद्यानुलोमिकः ॥

तृष्टताशर्करायुक्तः पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ—त्रिफला, श्रायमाण, किसमिस
कुटकी और इनका काथं कफापित्तजन्य ज्वर
को नाश करने वाला और अनुलोमन कर्ता
है । शर्करा मिश्रित निशोथ काय पान करने
से भी ऊपर कहाहुआ गुण होता है ।

सन्निपात पर प्रयोग ॥

शटीपुष्करमूलञ्चव्याघ्रीशृङ्गीदुरालभा ॥

शुद्धचीनागरंपाठाकिरांतंकडुरोहिणी ॥

एषशठ्यादिकोवर्गः सन्निपातज्वरापहः ।

कासहृद्ग्रहपाश्वार्तिश्वासतन्द्रासुशस्यते ॥

अर्थ—शटी, पुहकरमूल, कटेरी, फाकडा
साँगी, जवासा, गिलोय, सोंठ पाठा; चिरा
यता, कुटकी, यह शठ्यादिकवर्ग ज्वर नाश
क हे तथा खाँसी, हृद्ग्रह, दर्दपसली, श्वास
और तन्द्रा इन सबमें बहुत गुण दायक होता है ।

अन्यप्रयोग ।

वृहत्सौपुष्करभार्गीशटीशृङ्गीदुरालभा ।

वत्सकस्यचवीजानिपटोलंकडुरोहिणी ॥

वृहत्यादिर्गणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः ।

कासादिपुचसर्वेषु दद्यात्सोपद्रवेपुच ॥

अर्थ—देनों कटेरी, पीहकरमूल, भार्गी
शटी, काकडासाँगी, इन्द्रजौ, परवल, कुटकी
यह वृहत्यादिगण सन्निपात ज्वर नाशक है;
यह कास, हृद्ग्रह आदि सम्पूर्ण उपद्रवों में
विशेष गुणदायक है ।

कपायाश्वयवाग्वध्रपिपासाज्वरनाशनाः ॥

निर्दिष्टाभेजाध्यायेभिपकृतानपियोजयेत्

अर्थ—तृपा और ज्वरनाशक कपाय
यवागू जो सूत्रस्थान के भेजजाध्याय में
वर्णनाकिये गये हैं उनका प्रयोग भी
करना चाहिये ॥

ज्वरमें घृतविधि ।

ज्वराः कपायैर्वमनैः लघनैर्लघुभोजनैः । रूक्ष

स्ययेन शाम्यन्ति सपिप्तेषां भिपग्जितमूर्खः

क्षंतजोज्वरकरंतेजसारुक्षितस्य च ॥ यः स्या

दनुबलोधातुः स्नेहसाध्यः सचानलः । क

पायाः सर्वेष्वेते सपिपासहयोजिताः ॥ प्र-

योग्याज्वरशान्त्यर्थमग्निसन्धुचणाः शिवाः

अर्थ—रूक्ष मनुष्यका ज्वर कपाय, व-

मन, लघन और लघुभोजनसे शान्त न हो

तो घृत देना श्रेष्ठ है ॥ रूक्ष व्यक्तिका ज्वर

तेजोमय होनेसे रूक्ष है और वायु उसका

अनुबल है अतएव वायु स्नेहसाध्य है ।

नीचे लिखे हुए कपायोंमें घृत डालकर

मिद्ध करना चाहिये । ये कपायज्वर शान्त-
कर्ता, अग्निवर्द्धक और कल्याणकारक हैं ॥

घृत सिद्ध करने का कपाय ।

पिप्पल्यः चन्दनं मुस्तमुशीरं कदुरोहिणी ॥
कलिद्रुकस्तामलकीशारिचाति विपास्थि
रा । द्राक्षामलकविल्वानित्रायमाणानि
दिग्धिका ॥ सिद्धमेतैर्घृतं सत्र्योजीर्णज्वर
मपोहति । क्षयंकासशिरःशूलं पार्श्वशूलं
हलीमकम् ॥ अंसाभितापमग्निञ्च विप
मंसनियच्छति ।

अर्थ—पीपल, चन्दन, मोथा, उसीर
कुटकी, इन्द्रजी, भू आंवला, सारिया, अतीस
शालिपर्णी, दाख, आंवला, बेलगिरी, त्राय-
माण, फटेरी इनके काथमें सिद्ध किया हुआ
घृत जीर्ण ज्वरको शीघ्र नष्ट करदेता है ।
क्षयी, खासी, शिरो वेदना, पार्श्वशूल हली-
मक, अंसाभिताप और विपमग्नि ये भी
दूर होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग ।

वासांगुडूचीत्रिफलात्रायमाणां वासकम्
पक्त्वा तं न कपायेण पयसा द्विगुणेन च ।

पिप्पलीमुस्तमृद्धीकाचन्दनोत्पलनागरैः ॥

कल्कीकृतैश्च विपचेत् घृतं जीर्णज्वरापहम्

अर्थ—अहूसा, गिलोय, त्रिफला, त्राय

माण, जवासा, इनके काथमें घृत और

घृत सेदना दूध, तथापीपल, मोथा, किस-

मिस चन्दन, नीलोकर, सोंठ, ये सब डा-

लकर घृत पकावै यह घृत जीर्णज्वरना

शक होता है ॥

अन्य प्रयोग ।

बलांश्वद्रंष्ट्राहतीकलसीं धावनीं स्थिराम् ॥

निम्बं पर्पटकं गुस्तं त्रायमाणां दुरालभाम् ।

कृत्वा कपायं पेयार्थं दद्यात्तामलकीशटीम् ॥

द्राक्षां पुष्करमूलञ्च मेदामामलकानि च ।

घृतं पयश्च तत्सिद्धं सर्वापज्वरहरं परम् ॥ क्ष
यकासाशिरःशूलपार्श्वशूलं सतापनुत् ।

अर्थ—खैरटी, गोखरू, फटेरी, प्रसनपर्णी
छोटी कटेरी, शालपर्णी, नांम, पित्तपापडा,
मोथा, त्रायमाण, जवासा, इनका काथ कर ।
तथा भूआंवला, शटी, दाख, पौहकरमूल, मेदा
और आंवला इनको पीस कर लुगदी बनावे
और इनमें घृत और दूध डालकर सिद्ध करें
तौ यह घृत उत्तम ज्वर नाशक होता है ।
क्षयी, खासी, शिरोवेदना, पार्श्वशूल और
अंस तापको दूर करता है

ज्वर में शोधन विधि ।

ज्वरिभ्यां वहदोषेभ्य ऊर्द्धं श्वाधश्च बुद्धिमा-
न ॥ दद्यात्संशोधने काले कल्पेयदुपदेक्ष्यतां ॥

अर्थ—ऐसे ज्वर रोगीको जो बहुत दोषों
से युक्त हो उसे बुद्धिमान् वैद्य कल्पस्थान में
कहे हुए वमन विरेचन उचित काल में देवै ।

ज्वर में वमन के प्रयोग ।

मर्दनं पिप्पलीभिर्वा कलिर्हैर्मधुकेन वा ॥

युक्तमुष्णाम्बुनापेयं वमनं ज्वरशान्तये ।

सांद्राम्बुनारसेनेक्षोरथावालवणाम्बुना ॥

ज्वरे प्रच्छर्दनं शस्तं मथैर्वा तर्पणेन वा । मृद्धी

कामलकानां वा रसं मर्च्छर्दनं पित्त् ॥ रस

मामलकानां वा घृतं मृष्टं ज्वरापहम् ।

अर्थ—पीपल, अथवा इन्द्रजी अथवा मु-

लहटी के साथ मैनफल का चूर्ण मिला कर

गरम जलके साथ पान करनेसे वमन होती

है, यह वमन ज्वरनाशक है शहत और जल

अथवा ईखका रस नमकका जल अथवा म-

अन्य स्नेहनप्रयोग ।

पटोलपिचुमर्दाभ्यांगुहृच्यामधुकेनच ।
मदनैश्वभृतःस्नेहोज्वरघ्नमनुवासनम् ॥
चन्दनागुरुकाश्मर्यपटोलमधुकोत्पलैः ।
सिद्धःस्नेहोज्वरहरःस्नेहवस्तिःप्रयुज्यते ॥
यदुक्तंभेषजाध्यायेविमानेरोगभेषजे ।
शिरोविरेचनं कुर्याद्युक्तिस्तज्ज्वरापहम् ।
यच्चनावनिकर्तलंयाश्चमाग्धूमवर्तयः ।
मात्राशित्तियेनिर्दिष्टाः प्रयोज्यास्ताज्वरे-
ष्वपि ॥ अभ्यङ्गाश्चप्रदेहांधपरिपेकांश्चका-
रयेत् । यथाभिलापंशीतोष्णंत्रिभज्यद्वि-
विधंज्वरम् ॥ सहस्रधौतंसर्पिर्वातलंवाच-
न्दनादिकम् । दाहज्वरमशमनदधाद्
भ्यङ्गनभिपक् ॥

अर्थ—परवल, नीमकीछाल, गिलोय, मु-
लहठी, मैनफल इनके साथ घृतको सिद्ध
करके ज्वरनाशक अनुवासनवस्ति देवै । अ-
थवा चन्दन, अगर, खंभारी, परवल, मुल-
हठी, नीलोफर इनमें सिद्ध कियेहुए घृतकी
स्नेहनवस्ति ज्वरनाशक होती है ।

जो सूत्रस्थानमें और विमानस्थानमें शिरो-
विरेचन फोड़े गयेहैं वेभी युक्तिपूर्वक देने चा-
हिये । उनके प्रयोगसे भी ज्वरनाश होताहै।
सूत्रस्थानके मात्राशित्तिये अभ्यायमें जो
नस्य तैल, घूमवार्ति आदि प्रयोग वर्णन
कियेगये हैं वेभी ज्वरमें करने चाहिये ॥
शीत और उष्ण दोनों प्रकारके ज्वरों की
विवेचना करके ठंडा और गरम अभ्यंग,
प्रदेह और परिपेक करै ॥ हजारवार धोया
हुआ घी, वा चन्दनादि तैलका अभ्यंग क-
रनेसे दाहज्वर नष्ट होजाताहै ॥

चन्दनाद्य तैल ।

अथ चन्दनाद्यतैलमुपदेक्ष्यामः ।

चन्दनशैलेयभद्रश्रियकालानुसार्यकाली
यकपत्रापन्नकोशीरशारिवामधुकप्रपौण्ड-
रीकनागपुष्पोदी च्यचच्यपत्रोत्पलनलि
नकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रविसग्
णालशालकशैवालकशेरुकानन्ताकुशका
शेक्षुदर्भशरनलशालिमूलजम्बुवेत्रवेतस
धानीरगुन्द्राककुभाशनाश्चकर्णस्यन्दन-
वातपोथसालतालधवतिनिशखदिरकद
रकदम्बकाश्मर्यफलसर्जप्लक्षवटकपीत
नोदुम्बराश्वत्थन्यग्रांधलोधधातकीदूर्वा
त्कण्टकशृङ्गाटकपञ्जिष्टाग्योतिष्मतीपुष्क
रवीजक्रीञ्चादनवदरीको विदारकदली-
संवर्तकारिष्टशतपर्वाशितकुम्भिकाशताव-
रीश्रीपर्णीश्रावणीमहाश्रावणी रोहिणी
शीतपाकयोदनपाकीकालावलापयस्या-
विदारी जीवकपर्पभकमेदामहामेदामधुर-
ऋष्यमोक्तातृणशून्यमोचरसाटरूपकबकु-
लकुटजपटोलनिम्बशालमलीनालिकेरख-
र्जूसृदीका पियालमियेगुधन्वनात्मगुप्ता
मधुकानामन्येपाञ्चशीतशीर्याणांयथाला
भमौपधानांकपायंकारयेत् । तेनकपायण
द्विगुणितपयसारेतेपामेवचकल्केनकपाया
र्धमात्रंमृद्भिनासाधयेत्तैलमृत्तैलंमभ्य-
ङ्गादेवसद्योनाहंज्वरमपनयत्येतैरेवचौषधैः
सुशुष्णपिष्टैःसुश्रीतैःप्रदेहङ्कारयेदेतैरेवच
शृतशीतंसलिलमवगाहपरिपेकार्थंप्रयुञ्जी
तइतिचन्दनाद्यतैलं ।

अर्थ—रक्तचन्दन, शिलापुष्प, सफेद च-

न्दन, कालानुसार्य [शैलेय] पीतचन्दन, पद्मा, पद्माख, उसीर, शारिवा, मुलहटी पुण्डरीक, नागकेसर, नेत्रवाला, चव्य, पय, नीलकमल, नलिन, फगोदनी, सीगन्धिक, पुण्डरीक, शतपत्र, विस (कमलनाल), मृणाल, शास्त्रक, शैवाल, कोसरू अनन्तमूल कुशा, कांस, ईख, दाभ, सरकंडे की जड़, नरसलकी जड़, शालिमूल, जामन, वेत, वेतस, चाणूरि, गुन्द्रा, अर्जुन, असन, साल स्यन्दन (तिनिशवृक्ष), घातपोथ (पलास) साल, ताल, धौ, तिनिश, खैर, दुर्गन्धखैर, कदम्ब, खंभारीफल, सर्ज, पाकड, बट कपीतन, गूलर, पीपल, बड, छोध, धाय, दूध, उत्कण्ठक, सिंघांडा, मजीठ, मालकांगनी, पुष्करधीज, क्रौञ्चादन, बेर, लालकनेर कैला, मोथा, नम, शतपर्वा (एक प्रकार की दूब) शीतकुम्भिका, सितावर, खंभारी श्रावणी, महाश्रावणी, कुटकी, शीतपाकी [खैरीटी] ओदनपाकी, काला (नीलिनी) खैरीटी, क्षीरकाकोली, बिदारीकन्द, जीवक, कपभक, मेदा, महोमिदा, मूर्वा, अतिवला, मालिका, मोचंरस, अडूसा, वकुल, कुडा, की छाल, परवळ, नमि, सेमर, नारियल, खिजूर, किसमिस, पियाळ, चिरोजी, धन्वन केच, महुआ, । इन सब औषधियोंको तथा अन्य शीतवीर्यवाली औषधोंको जो जो मिल सकें इकट्ठी करके क्वाथ करें फिर इस क्वाथका आधा तेल और दूना दूध तथा इन्हीं औषधोंका कल्क करके मन्दी मन्दी आग पर पकावें ॥ यह तैल दाहज्वर को

शीघ्रही दूर करदेताहै । इन्हीं औषधियोंको महीन पीसकर ठंडी ठंडीका लेप करें और इन्हीं औषधोंको डालकर जल औटावें और ठंडा करके स्नान और परिषेक में दें ॥ यह चन्दनाद्य तैल है ।

अन्यप्रयोग ॥

मध्वारनालक्षीरदधिघृतसालिलसेकावगा हांश्चसद्योदाहज्वरमपनयन्तिशीतस्पर्शात्वादिति ॥

अर्थ—शहत, कांजी, दूध, दही, घी और जल इनका स्पर्श शीतल है इनका परिषेक और अवगाह में प्रयोग करने से तत्काल दाह दूर हो जाता है ।

दाहज्वर में अन्य उपचार ।

पौष्करपुसुशीतेसुपत्रोत्पलदलेपुच । कल्लाराणाश्चपत्रेपुक्षौमेपुविमलेपुच । चन्दनोदकशीतेपुसुप्याद्वाहादिनःसुखम् ॥ हिमाम्बुसिक्तेसदनेशीतेधारागृहेऽपिवा । हेमशंखप्रवालानामणीनामौक्तिकस्यच ॥ चन्दनोदकशीतानांसंस्पर्शानुरसानस्पृशेत्सग्भिर्नौलोत्पलैःपद्मैर्व्यजनैर्विधैरापि ॥ शीतवातावहैर्व्यज्येच्चन्दनोदकवर्षिभिः । नद्यस्तडागाःपश्चिन्योहदाश्चिमिलोदकाः अवगाहेहितादाहतृष्णाग्लानिज्वरापहाः । प्रियाःप्रदक्षिणाचाराःप्रमदाश्चन्दनोक्षिताः सान्त्वयेयुःपरैःकर्मणिमाक्तिकभूषणाः । शीतानिचान्नपानानिशीतान्युपयनानिच वायवःचन्द्रपादाश्चशीतदाहज्वरापहाः ॥

अर्थ—दाहज्वरसे पीडित मनुष्यको उचितहै कि ऐसे ठंडे घरमें जहाँ शीतल जलों

का छिडकावहोरहाहो अथवा जहां फव्वारे चलरहेहों शीतलकमल के पत्तों पर अथवा रक्तकमलमें नीलकमल वा कल्हारेकेपत्रोंपर वा नरमनरम रेशमीवस्त्रोंपर शयन करै जिनपर शीतल चन्दनोदकभी छिडकरहाहो । सुवर्ण, शंख, मूंगा, मणि, मोती और शीतलचन्दनोदक को अपने देह पर लगाता रहै । नीलकमल और लाल कमल का माला धारणकरै । ऐसे पंखों से हवा करावै जिनपर चन्दनका जल छिडक रहाहो और जिनसे ठंडी २ वायु आतीहो । निर्मलजल के नदी तालाव वा हृद्में जिनमें कमल खिल रहे हैं स्नान करनेसे दाह तृष्णा, ग्लानि और ज्वर शीघ्र शान्त होते हैं । अयन्त प्यारी, चतुर, चन्दन लगी हुई, मणिभूषणादि अलंकारों को धारण करने वाली, नवीन स्त्रियोंसे आलिंगन करने से भी दाह ज्वर शान्त होजाताहै । शीतल अन्नपान, शीतलउपवन, शीतलवायु, शीतल चन्द्रमाकी किरण इनका सेवन करने से भी दाहज्वर शांत होता है । अधोष्णाभिप्रायिणां ज्वरितानां अभ्यङ्गादीनुपक्रमानुपदेश्यामः ।

अर्थ—अब हम उन अभ्यङ्गादि का वर्णन करते हैं जो ऐसे शीतज्वर रोगियों को हितकारी हैं जिनको उष्ण पदार्थ के सेवन की आवश्यकता है ।

अगुचर्यादि तेल ॥

अगुरुकृत्तगरपत्रनलदशैलेयकध्यामकहरेणुकास्थौण्यकक्षेमिकैलावरावराङ्गदलपुरतमालपत्रभूर्ताकरोहिपसरलसल्ल

कीदेवदार्वशिमन्थविल्वस्योनाककाश्मर्यपाटलापुर्ननवानृश्रीरकण्टकारिकावृहतीशालिपर्णीपृश्निपर्णीमापपर्णमुद्गपर्णीगोक्षुरकरैण्डशोभाञ्जनकचरुणार्काचिरिविल्वतिल्वकशटीपुष्करमूलभाण्डारोरुबूकपचुराक्षीवाश्यान्तकशिथुमातुल्लङ्गमूलकमूलपर्णीपीलुपर्णीतिलपर्णीमेपशृङ्गाहिसादन्तशठैरावतकभङ्गातकास्फातिकण्डीरात्मजकैपीकाकरञ्जधान्यकाजमोदपृथ्वीकामुसुखसुरसकुठेरकफण्डारकालमालकपर्णासत्तवकफाणिञ्जकभूस्तृणशृङ्गवेरपिप्पलीसर्पपाश्वगन्धारारुहाराहाराहावचावलातिवलागुडूचीशतपुष्पाशीतवल्लीनाकुलीगन्धनाकुलीश्वेताज्योतिष्मतीचित्रकाध्यण्डाम्लचाङ्गेरीवदरकुलत्थामापानामेवविधानामन्येषांचोष्णवीर्याणायथालाभमौषधानांकपायङ्कारयेत्तेनकपायेणतेपामेवचकल्केनसुरासौवीरकतुपोदकमेरेयमेदकदीधिमण्डारनालकद्वरप्रतिविनीतेनतैलपात्रविपाचयेत् ॥ तेनसुखोष्णेनतैलेनोष्णाभिप्रायेणज्वरितमभ्यञ्जयात् । तथाशीतज्वरःप्रशाम्यतितैरेवचौषधैश्श्लक्ष्णपिष्टैःसुखोष्णैःप्रदेहंकारयेत् ॥ एतेपामेवचसुखोष्णकाथमत्रगाहनपरिपेकार्थमयुञ्जीतज्वग्रशमार्थमिति ॥ इति शीतज्वरेअगुर्वादितैलम् ॥

अर्थ—अगर, कूठ, तगर, तेजपात, खस, शैलेय, ध्यामकतृण, हरेणु, थूनेर, हलदी, इलायची, त्रिफला, प्रियंगुक पत्ते, पुर (घूपागर) तमालपत्र, अजवायन,

रोहिण्यतृण, सरलकाष्ठ, शलुकी, देवदारु, अरुनी, बेलगिरीकीछाल, श्यौनाक, खम्भारी, पाटला, पुनर्नवा, बृश्चौर, (लालसांठ) छोटीकटेरी, बडीकटेरी, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, मायपर्णी, मुद्गपर्णी, गोखरू, अरुण्ड, सहजना, बरना, आक, चिरविल्व [एक प्रकारका कजा,] लोध, कचूर, पाहकर मूल, भाण्डीर, अरुण्ड, पतूर, सहजना, अश्मंतक शिपु, विजौरा, मूलक, मूलपर्णी पीलुपर्णी, तिलपर्णी, मेंढासिंगी, हिल्ला, दन्तशठा, ऐरावत, भिलाया, आस्फोतक, कण्डीर, आत्मजक, इपीका, कंजा, धनियां, अजमोद, कालाजीरा, सुमुख, सुरस, कुटेरक, कण्डीर, कालमाल, पर्णास, क्षवक, फणिज्जक [ये औंठों प्रकारकी तुलसी होती हैं], भूस्तृण, सौंठ, पीपल, सरसों, असगन्ध, रास्ना, दूबकीजड, वच, बला, अतिबला, गिलोय, सौंफ, शांतवल्ली, नाकुली, गन्धनाकुली, श्वेत अपराजिता, मालकांगनी, केंच, अम्लचांगरी, बैर कुलधी, उरद । इन सबको तथा और भी ऐसेही उष्णवीर्य द्रव्योंको जो मिलसकें इकट्ठे करके इनका काथ करै ॥ यह कषाय और इन्हींका कल्क तथा मुरा, सौवीरक, तुपोदक, मेरेय, मेदक, दधिमण्ड, कजा, और कद्वर, इन सबको इकट्ठे करे, और एकपात्र अर्थात् सोलह सेर तेल इकट्ठा करके सबको पकावै-। इम सुहते २ गरम तेल से शीतज्वर वाले रोगी का अम्यञ्जन करै ॥ इन्हीं औषधोंको महीन पासिकर गरमर का लेप करनेसे शीतज्वर शान्त

होजाताहै । इन्हींका काथ करके परिवेक वा अवगाहन करने से ज्वर शान्त होजाता है । यह शीत ज्वरमें अगुर्वादि तेल है ॥

शीतज्वर में अन्य उपचार ।

भवन्तिचात्र ।

त्रयोदशविधःस्वेदःस्वेदाऽध्यायेनिदर्शितः
मात्राकलाविदायुक्तःसचशीतज्वरापहः॥
साकुटीतच्चशयनंतच्चावच्छादनंज्वरम्
शीतंप्रशमयन्त्याशुधूपधागुरुजाघनाः ।
पवित्रचारुगात्राश्चतरुण्योयौवनोष्मणा ।
आश्लेषाच्छमयन्त्याशुप्रमदाःशिशिरज्वरम् ॥
स्वेदानान्यन्नपानानिघातश्लेष्महराणिच ।
शीतज्वरंजयन्त्याशुसंसर्गवल
योजनात् ॥

अर्थ—स्वेदाध्यायमें जो तेरह प्रकार के स्वेदन वर्णन किये गयेहैं उनका मात्रा और कालका विचार करके प्रयोग करने से शीत ज्वर नष्ट होजाताहै । कुटीप्रावेशिक विधि, शयन तथा आच्छादन भी जो वर्णन किये है तथा अगर और कपूर की धूपका प्रयोग करनेसे शीत ज्वर शान्त होजाता है ॥ सुन्दर मनोहर गात्रवाली तरुणाई में भरपूर प्रमदाओं के गाढ़ आलिंगनकरने पर उनके यौवन की गरमई से शीतज्वर शान्त होजाता है ॥ वातकफनाशक स्वेदन अन्नपान के संसर्गवल के साथ [एकसाथ] प्रयोग करने पर शीतज्वर शान्त होजाता है ॥ वातजेश्रमजेश्चैवपुरापेक्षतज्वरे । लघु ननहितंविद्याच्छमनैस्तानुपाचरेत् ॥
अर्थ—वातज, श्रमज, जर्ण और क्षतज

ज्वरों में लंघन हितकारी नहीं होता है, इन की चिकित्सा संशमन औषधियों द्वाराकरे । विक्षिप्यामाशयोष्माण्यस्मद्भवत्वारसंनृणाम् । ज्वरं कुर्वन्ति दोषास्तु हीयतेऽग्निबलंततः ॥ यथा प्रज्वलितो बन्दिः स्यात्प्यामिन्धनवानापि । न पचत्योदनं सम्यगग्निं लभेरितो वह्निः ॥ पक्तिस्थानाच्च दादोषैरूप्मांक्षिप्तो बहिर्वृणाम् । न पचत्यभ्यवहृतं कृच्छात्पचति बालघु । अतोऽग्निबलरक्षार्थं लंघनादिक्रमो हितः । सप्ताहेन हि पच्यन्ते सर्वधातुगतामलाः ॥ निरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ।

अर्थ—जिस कारणसे दोष रसको प्राप्त होकर आमाशयस्थ उष्मा को स्थानसे हटा कर ज्वरको उत्पन्न करते हैं इसी हेतुसे अग्निबल क्षीण होजाता है । जैसे जलती हुई ई धनयुक्त अग्नि हवाके झोकेसे बाहर निकलकर हांडीके भातको नहीं पका सकती है । तैसेही दोषों से प्रेरित होकर आमाशय से निकली हुई ऊष्मा भोजन को नहीं पचा सकती है अथवा लघु अन्नकोभी काठिनतासे पचाती है । इसलिये आग्निके बलकी रक्षा के निमित्त लंघन करना हित है । सातदिवस तक लंघन करनेसे सर्वधातुगत दोष पच जाते हैं । आठवें दिन ज्वर प्रायः निरामय होजाता है ।

घातज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

चर्दीर्णदोषस्त्वल्पाग्निरश्नगुरुविशेषतः ॥ मुच्यते सहसामाणैश्चिरं हिद्यति वा नरः । एतस्मात्कारणाद्दिद्वान्वातिकेऽप्यादितो ज्वरे ॥ नातिगुर्यति वा भिग्वं भोजयेत् स

हसानरम् ॥ ज्वरे मास्तजेत्वादावनपेक्ष्यापि हि क्रमम् ॥ कुर्यान्निरनुबन्धानामभ्यङ्गादीनुपक्रमान् । पाययित्वा कपायञ्च भोजयेद्रसभोजनम् ॥ जीर्णज्वरहरं कुर्यात् सर्वशश्चाप्युपक्रमम् ।

अर्थ—उदीर्ण दोष और अल्पाग्निवाला पुरुष यदि विशेष करके भारी भोजन करे तो शीघ्रही मर जाता है या बहुत दिन तक भ्रेश पाता है । इसकारण से विद्वान् वैद्यको उचित है कि वातिक ज्वर में भी प्रथमही अत्यन्त भारी वा स्निग्ध भोजन न करावे ।

घातज ज्वर में जो कफ पित्तादि दोषोंका अनुबन्ध न हो तो प्रथमही लंघनादि क्रमकी उपेक्षा करके अभ्यंगादि द्वारा चिकित्साकरै । काय का पान कराके मांसरस का भोजन करावे । और जो जीर्ण ज्वरके नाश करने वाली रीति कही गई है वह सब घातज ज्वरमेंकरै ।

कफज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

श्लेष्मलानामवातानां ज्वरोऽनुष्णैकफाधिकः ॥ परिपाकं न सप्ताहेनापियाति मृदुष्मणाम् । तं क्रमेण यथोक्तेन लंघनाल्पाशनादिना ॥ आदशाहमुपक्रम्य कपायाद्यैरुपाचरेत् ।

अर्थ—कफ प्रकृति और हीन वात वाले पुरुषों का शरीर ठंढा रहता है और उसको कफाधिक ज्वर होता है उसकी जठराग्निमन्द होती है इससे ज्वर सात दिन में नहीं पचता है ; इस ज्वर में पूर्वोक्त क्रम से दस दिन तक लंघन या अल्प भोजन द्वारा चिकित्सा करके कायादि से चिकित्सा करे !

अन्य ज्वरोंमें चिकित्साक्रम ।

सामायेयेचकफजाःकफपित्तज्वराश्चये ।
लघनलघनीयोक्ततेपुकार्यप्रतिप्रति॥ वम
नैश्विरेकैश्वस्तिभिश्चयथाक्रमम् ॥ ज्व-
रानुपचरेद्धीमान्कफपित्तानिलोद्भवान् ।
संसृष्टान्सन्निपातितान्बुद्धवातरतमैःसमैः
ज्वरान्दोषक्रमापेक्षीयथोक्तैरोपधैर्जयेत् ।

अर्थ—आमज्वर, कफज्वर तथा कफ
पित्त ज्वरोंमें सम्पूर्ण लघनीयोक्त लघनोंका
दोषके अनुसार प्रयोग करना उचित है ।
बुद्धिमान् वैद्यको उचितहै कि कफज्वरकी
वमनसे पित्तजकी विरेचन से और वातज
की वस्ति प्रयोगसे चिकित्सा करे । द्वन्द्वज
और सन्निपातजज्वर में दोषोंकी न्यूनता,
अधिकता और समानता का विचार करके
यथोक्त औषधियोंद्वारा चिकित्सा करे ।

सन्निपातज ज्वरमें चिकित्साक्रम ।

वर्द्धनैकदोषस्यक्षणेनोच्छ्रितस्यवा ॥
कफस्थाननुपूर्व्यायासन्निपातज्वरंजयेत्

अर्थ—सन्निपातज ज्वरमें हीन दोष को
बढाने से और वृद्धदोषको क्षाण करने
से चिकित्सा करे, जब दोष समान होजाय
तब प्रथम कफकी फिर पित्तकी और फिर
वातकी चिकित्सा करे ।

कर्णमूलकाचिकित्साक्रम ॥

सन्निपातज्वरस्यान्तेकर्णमूलेमुदारुणः॥
शोथःसञ्जायतेतेनकश्चिदेवममुच्यते । र-
त्तावसेचनैःशीघ्रं सार्पिण्यानथतज्येत् ॥
प्रदेहैःकफपित्तघ्नैर्नानैःकवलग्रहैः ॥

अर्थ—सन्निपातको अन्तमें कर्णमूल ना-

मक एक दारुण शोथ उत्पन्न होताहै इससे
कोई २ ही बचताहै, इस शोथको फस्त
खोलकर, घृतपान कराके, कफ पित्तनाशक
प्रदेह, नस्य वा कवलग्रह द्वारा शीघ्रही दूर
करने का उपाय करे ॥

शीतोष्णस्निग्धरूपाद्यैर्ज्वरोयस्यनशाम्य
ति ॥ शाखानुसारिरक्तस्यसोऽवसेकात्
प्रशाम्यति । विसर्पेणाभिघातेनयथावि-
स्फोटकैर्ज्वरः ॥ तत्रादौसर्पिःपानं कफ-
पित्तोत्तरोनचेत् ।

अर्थ—शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रू-
क्षादि उपचारों द्वारा जिसका ज्वर शांत
नहो तो यह ज्वर शाखानुसारी होताहै यह
रक्त मोक्षण से शान्त होताहै । जो ज्वर
विसर्प, अभिघात, और विस्फोटक द्वारा उ-
त्पन्न होताहै उसमें प्रथम घृतपान करवै
परन्तु इन ज्वरोंमें कफ पित्त की अधिकता
न हो तो ऐसाकरे ।

जीर्णज्वरमें चिकित्साक्रम ।

दौर्बल्यादेहधातूनांज्वरोजीर्णोऽनुवर्त्तते ।
बल्यैःसर्वहर्षस्तस्मादाहारैस्तमुपाचरेत् ॥

अर्थ—देहकी सम्पूर्ण धातुओं की दुर्ब-
लता से जीर्णज्वर उत्पन्न होताहै, अतएव
बलकारक और वृहणकर्ता आहारों के द्वारा
इसकी चिकित्सा करे ॥

विषमज्वरमें चिकित्साक्रम ।

कर्मसाधारणं कृष्यानुत्तीयकचतुर्थके ॥
आगन्तुःसुवन्वीहिप्रायशोऽपिषमज्वरे ।

अर्थ—तित्रार्य और चौथेया ज्वरमें सा-
धारण विधि करे, क्योंकि विषमज्वरमें प्रायः
आगन्तु का अनुबन्ध होता है ॥

वातप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।
वातप्रधानंसर्पिर्भिर्वस्तिभिःसानुवासनैः
स्निग्धोष्णैरनुपानैश्चशमयेद्विषमज्वरम् ।
अर्थ—वात प्रधान विषमज्वरको घृत
तथा अनुवासनादि वस्तिकर्म द्वारा शमन
करै और भोजनं करके स्निग्ध और उष्ण
अनुपानका सेवन करै ॥

पित्तप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।
विरेचनेनपयसासर्पिपासंस्कृतेनच ॥ वि
षमन्तिक्तशीतैश्चज्वरंपित्तोत्तरंजयेत् ।
अर्थ—पित्तप्रधान विषमज्वरकी चिकित्सा
विरेचन और दूधसे संस्कार कियेहुए घृत
और तिक्त शीतकषायों द्वारा करै ॥

कफप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ॥
वमनंपाचनंरूक्षमनुपानं विलंघनम् ॥
कषायोष्णञ्चविषमज्वरेशस्तंफफोत्तरे ।

अर्थ—कफ प्रधान विषमज्वर में वमन
पाचन, रूक्ष अनुपान, लंघन, काथ और
उष्णक्रिया द्वारा चिकित्सा करै ॥

विषमज्वरनाशक अन्ययोग ॥

योगाःपराःप्रवक्ष्यन्तेविषमज्वरनाशनाः॥
प्रयोक्तव्यामतिमतादोपादीनंप्राविभ्यये
सुरासमण्डपानार्थेभक्ष्यार्थेचरणायुधाः
तिचिरिश्रमपूरश्चप्रयोज्योविषमज्वरे ।
पिवेद्वापद्रूपलसर्पिर्भयांवाप्रयोजयेत् ।
त्रिफलायाःकषायंवाशुङ्गच्यारसमेववा ।
नीलिनीमजगन्धाञ्चत्रिहृतांकटुरोहिणीम्॥
पिवेज्ज्वरागमेयुक्त्यास्त्रेह्रस्वेदोपपादितः।
सर्पिपोमहतीमात्रांपीत्वावाल्हर्दयेत्पुनः॥
उपयुज्यान्नपानंवाप्राभूतंपुनरुद्धिस्वेत् ।

मात्रंमद्यंभूतंवापीत्वास्वप्याज्ज्वरागमेः॥
आस्थापनंयापनंवाकारयेद्विषमज्वरे ।
पयसावृषदंशस्यशकृद्वातदहःपिवेत् ॥
वृषस्यदधिमण्डेनसुरयावाससैन्यवम्॥पि-
प्पल्याःत्रिफलायाश्चदध्नस्तक्रस्यसर्पिषः
पञ्चगव्यस्यपयसःप्रयोगोविषमज्वरे ।

अर्थ—अब हम विषमज्वरनाशक कुल
उत्कृष्ट प्रयोगों का वर्णन करते हैं, बुद्धिमान्
को उचित है कि इन योगोंका प्रयोग दोषों
की विवेचना करके करै ॥

विषमज्वर में पाने के लिये सुरा और
सुरामण्ड, खाने के लिये मुर्गा, तीतर और
मोरका मांस देवे । अथवा पद्रूपल घृत, हरड
त्रिफलाका काथ और गिलोयका रस देवे ।
अथवा रोगीका स्नेहन और स्वेदनकर्म कर-
के ज्वरके आगममें नीलिनी, अजगन्धा, नि-
सोथ और कुटकी इनका पान करावे । अ-
थवा घी की बड़ी मात्रा को पिलाकर वमन
करादे । अथवा बहुतसा अन्नपान कराके
वमन करादे । अथवा ज्वरके आगममें अन्न
और बहुतसा मद्यपान कराके शयन करादे-
वै और जो नींद न आवै तो आस्थापनादि
वस्तिका प्रयोग करै अथवा जिस दिन ज्वर
आवै उस दिन दूध के साथ विह्लीका विष्टा
पान करावे ।

अथवा मैलका गोबर सेंधेनमक में मिलाकर
दधिमण्ड वा मद्य के साथ पान करै ।
अथवा पांवल, त्रिफला दही, मठा, घी
पंचगव्य और दूधका प्रयोग करना चाहिये।

विषमज्वर में अन्य प्रयोग ।

लथुनस्पसतलस्यप्राग्भक्तमुपसेवनम् ॥

मेऽन्यानामुष्णवीर्याणामभिषाणाञ्च भ-
क्षणम् । हिंशुतुल्यानुवैयाघ्रीवसानस्येससै-
न्धवाः ॥ पुराणसर्पिःसिंहस्यवसातद्द्वससै-
न्धवाः ॥ सन्धवापिप्पलीनाश्चतण्डुलाः समनः
शिला निवाञ्जनतैलपिष्टशस्यतेविषमज्वरे
पलंकानिम्बपल्लवचाकुण्डहरीतकी । सर्प
पाःसयवाःसर्पिर्धूपनञ्ज्वरनाशनम् ॥ ये
धूमाधूपनयचचनावनञ्जाञ्जनश्चयत्प्रमनो
विकारेव्याख्यातंकार्यतद्विषमज्वरे ॥

अर्थ—विषमज्वर में भोजन करने से
पाहिले लहसनका रस और तेल पीवे पीछे
मेथ्य और उष्णवीर्य मांसका भक्षण करें ।
अथवा हींग और व्याघ्रवसा इनको समान
भागलेकर थोडासा सेंधानमक मिलाकर
नस्य लेंवे । अथवा पुराना घ्रां, सिंह की
चर्बी और सेंधानमक इनकी नस्य लेंवे ।
अथवा सेंधानमक, पीपलके बीज, मनसि-
ल इनको तेल में पीसकर अंजन लगावे
तो विषम ज्वर जाता रहताहै । अथवा
गूगल, नीमके पत्ते, घच, कूठ, हड, सरसों,
जौ आंर धी इनकी धूप देनेसे ज्वर नष्ट
हो जाताहै । मनोविकार अर्थात् उन्माद रोग
में जो जो धूम, धूर, नस्य और अञ्जन
वर्णन कियेहैवे भी सब विषमज्वरमें करने चाहिये

विषमज्वर में देवव्यपाश्रय प्रयोग ।
मणीनामौपथिनाञ्चमङ्गल्यानांविषस्यच
धारणादग्दानाश्चसेवनान्नभवेन्ज्वरः ।
सोमंसानुचरंदेवंसमातृगणमीश्वरम् ।
पूजयन्मपतःशीघ्रमुच्यतेविषमज्वरात् ॥
विष्णुसहस्रमूर्दानंचराचरपतिविभुम् ॥

स्तुवन्नामसहस्रेणज्वरान्सर्वानिपोहति ॥
ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रहुतभक्षहिमाचलम् ।
गङ्गामरुद्रणाश्रेष्ठापूजयन्जयतिज्वरान्
भक्त्यामातापितृणाश्चगुरुणांपूजनेनच
ब्रह्मचर्येणतपसासत्येननियमेनच ॥
जपहोमप्रदानेनवेदानांश्रवणेनच ॥
ज्वराद्विमुच्यतेशीघ्रंसाधूनांदर्शनेनच ॥

अर्थ—माणि, औपथ, मंगलद्रव्य, विष
और अगदके धारण करनेसे ज्वर नहीं
आताहै । शान्तभावमें स्थित अनुचर और
मातृगणोंसे युक्त शिवका पूजन करनेसे वि-
षमज्वर शीघ्र दूर होजाताहै । सहस्र मूर्त्तियों,
चराचरके स्वामी, सर्वव्यापक विष्णुके सह-
स्रनामका पाठ करनेसे मन्वप्रकार के ज्वर
दूर होजाते हैं । ब्रह्मा, आश्विनीकुमार,
इन्द्र, अग्नि, हिमाचल, गंगा, भद्रगण
तथा अन्य इष्ट देवताओंका पूजन कर
नेसे सब प्रकार के ज्वर दूर होजाते हैं ॥
माता पितामें भाक्ति करने से, गुरुजनोंका
पूजन करनेसे, ब्रह्मचर्यव्रत धारणसे, तपस्या
से, सत्यसे, नियमसे, जप होम दानसे, वेदों
के श्रवणसे और साधु महात्माओं के दर्शनों
से ज्वर शीघ्रही जाता रहता है ।

भिन्न रघातुस्थज्वरोंकीचिकित्सा ।
ज्वरेरसस्थेवमनंउपवासञ्चकारयेत् ॥
सेकप्रदेहोरक्तस्थेतथासंशमनानिच ॥
चिरेचनंशोषवासंमांसपेदःस्थितेदितम् ।
आस्थिमज्जगतेदेयानिरुद्धाःसानुवासनाः ॥
अर्थ—जो ज्वर रस में स्थित हो तो
वमन और उपवास करावे । रक्तस्थ हो तो

परिवेक, प्रदेह और संशमन चिकित्सा करे, ज्वर के मांस और भेदा में स्थित होने पर विरेचन और उपवास हित है । ज्वर के अस्थि और मज्जा में स्थित होने पर निरूहण और अनुवासन वास्ति देवे ।

अभिचारादिजन्यज्वरमें चिकित्सा ।

शापाभिचाराद्भूतानामभिषद्वाच्योज्वरः ॥ दैवव्यपाश्रयंतत्रसर्वमौषधमिष्यते ॥ अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिणः ।

रक्तावसेकैर्मद्यैश्चात्म्यैर्मांसरसोदनैः ॥
सानाहोमद्यसात्म्यानां मदिरारसभोजनैः
क्षतानां व्रणितानाञ्च क्षतव्रणाचिकित्सया ॥

अर्थ—शाप, अभिचार और भूताभिपंग से जो ज्वर उत्पन्न होता है वह दैवयुक्त व्यपाश्रय औषधियोंसे दूर होजाता है । अभिघातज्वर घृतपान और घृताभ्यंग, रक्तावसेक [फस्त,] मद्य और सात्म्य मांसरस और चायलफा भोजन इनसे शान्त होता है मद्यसात्म्य वालोंका आनाहयुक्त ज्वर मद्यपान और मांसरस के भोजनसे दूर होता है ॥ क्षतरोगी और व्रणरोगियोंका ज्वर उन औषधोंसे शान्त होता है जो क्षत और व्रणकी चिकित्सा में वर्णन की गई है ।

कामादि ज्वर चिकित्सा ।

आश्रयासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च ॥
हर्षणैश्च शर्मयान्ति कामशोकभयज्वराः ॥

अर्थ—कामज, शोकज और भयज्वर आश्रय (संतोषदायक वचन), इष्टलाभ, वायुशमन और हर्षोत्पादक कर्मोंसे दूर होजाते हैं ।

क्रोधजज्वरकी चिकित्सा ॥

काम्थैर्यैर्भनोक्षैश्चापित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः ।
सद्वाचयैः शाम्यति ह्यशुज्वरः क्रोधसमुत्थितः

अर्थ—क्रोधजन्यज्वर काम्य और मनो-
ज्ञ विषयों तथा पित्तघ्न चिकित्सा और सद्वा-
क्यों से शान्त होता है ॥

क्रोधादि ज्वरमें अन्योन्यग्राम ॥

कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः
यातिताभ्यामुभाभ्याञ्च भयशोकसमुत्थितः

अर्थ—कामसे क्रोधज्वर और क्रोध से कामज्वर दूर होजाता है, एवं काम और क्रोध दोनों की उत्पात्तिसे भय और शोकसे उत्पन्न हुआ ज्वर जाता रहता है ।

स्मृतिज्वरकी चिकित्सा ॥

ज्वरकालञ्च वेगञ्च चिन्तयन् ज्वर्यते तु यः
तस्येष्टेस्तु विचित्रैश्च विषयैर्नाशयेत्स्मृतिम्

अर्थ—जिसको ज्वरके आनेके समय ज्वर के वेगका ध्यान बंधा रहता है उसको ज्वर आजाता है उसका उपाय यही है कि अनेक प्रकारके अद्भुत २ विषयोंमें उसका चित्त खींचकर ज्वरकी ओरसे हटादेवे ॥

कुसमयज्वरमुक्ति के लक्षण ।

ज्वरप्रमोक्षे पुरुषः क्रूजन्वमतिचेष्टे । भ्रसः
त्रविचर्णः स्विच्चाक्षौधेपतेलीयते मुहुः ॥ प्र-
लप-युष्णसर्वाङ्गः शीतगदचभक्त्यपि वि-
संज्ञो ज्वरवेगार्चः सक्रोधश्चर्वाक्षयते ॥ स-
दोपशब्दश्च शकृद्द्रवसंघतिवेगवत् । लिङ्गा-
न्येतानि जानीयाज्ज्वरमोक्षे विचक्षणः ॥

अर्थ—ज्वरके दूर होनेके समय पुरुषके कण्ठमें गूजने कासां शब्द होता है वमनली

होती है तथा हाथ पांव चलने लगेते हैं ।
श्वास वेगसे आताहै, देहकारंग धदलजाता
है, पसीने आते हैं, देहमें कम्पन तथा मुस्ती
होतीहै, एक २ करने लगताहै, सम्पूर्ण देह
गरम रहताहै कभी कभी ठंडाभी होजाताहै,
बेचेत रहताहै, ज्वरके वेगसे क्रोधी की तरह
देखने लगता है । कभी अत्यन्त वेगसे दौप
और शब्दसे युक्त पतला दस्त निकलजाता
है, ये सब लक्षण ज्वरके हटनेके समय होतेहै

बहुदोषस्य बलवान्भायेणाभिनवोज्वरः ।
सक्रियादोषपक्त्वाचेद्दिमुञ्चतिमुदारुण
म् ॥ कृत्वादोषवशाद्देगं क्रमाद्युपरमान्तये
तेषामदारुणोमोक्षोज्वरिणांचिरकारिणाम् ॥

अर्थ—बहुत दोषयुक्त मनुष्यका प्रायः
बलवान और नवीन ज्वर शीघ्रकारी चिकित्सा
से कुसमय दोषोंके पचने के कारण से ऊपर
कहेहुए दारुण लक्षणोंके साथ हटता है ।
दोषों के कारण वेग को प्राप्त होकर भी जो
ज्वर धीरेधीरे हटते हैं उन चिरकारी ज्वरों
के हटनेके समय ऐसे दारुण लक्षण नहींहोते हैं

ज्वरमुक्तव्यक्ति के लक्षण
विगतकृमसन्तापमव्यथंविमलेन्द्रियम् ।
युक्तप्रकृतिसत्त्वेनविघ्नात्पुरुषमज्वरम् ॥

अर्थ—जिसका ज्वर शान्त होजाता है
उसकी छान्ति, सन्ताप और व्यथा सब दूर
होजाती हैं इन्द्रियां निर्मल होजाती हैं और
उसका सत्वभी पूर्ववत् होजाता है ।

ज्वर में अकर्तव्यकर्म ॥
सज्वरोज्वरमुक्तश्चविदाहीनिगुरुणिच ।
असात्मधान्यन्नपानानिविरुद्धानिविवर्ज

येत् ॥ व्यवयमतिचेष्टाश्चस्थानशय्यास-
नानिच । तथाज्वरःशर्मयातिप्रशान्तो-
जायतेनच ॥

अर्थ—चाहे ज्वर चलागया हो चाहे न
गयाहो मनुष्य को उचितहै कि विदाही भारी
असात्म्य और विरुद्ध अनुपानका, सेधन त्याग
देवै, मैथुन, अत्यन्त डोलना फिरना, अत्यन्त
बैठे रहना, खड़े रहना इत्यादि को भी त्याग
दे । ऐसा करने से ज्वर शान्त होजाता है
और शान्त होने पर फिर उत्पन्न नहीं होताहै.

ज्वर के हटने पर अकर्तव्यकर्म ॥
व्यायामञ्चव्यवायञ्चस्नानंचक्रमणानिचा
ज्वरमुक्तो नसेवेतयावन्नबलवान्भवेत् ॥
असञ्जातबलोयस्तुज्वरमुक्तो निपेयते ।
वर्ज्यमेतन्नवस्तस्यपुनरावर्त्ततेज्वरः ॥
दुर्हतेषुचदोषेषुयस्यवाविनिवर्त्तते ।
स्वल्पेनाप्यपचारेणतस्यव्यावर्त्ततेपुनः ॥

अर्थ—ज्वरके दूर होजाने पर जबतक
देह में बल न आवै जबतक व्यायाम, व्यवा-
य स्नान चक्रमण न करे ! ज्वरमुक्त पुरुष
विना बल उत्पन्न हुए जो इन वर्जितकर्मों
को करताहै, उसको ज्वर फिर आजाताहै !
जो ज्वर दोषों के सुरी रीतिसे निकाले जाने
पर शान्त होजाताहै वह थोड़े से व्यातिक्रम
सेही फिर आजाता है ।

पुनरागनज्वर के कर्म ॥
चिरकालपरिक्रिष्टुर्बलदीनचेतसम् ।
अचिरेणैवकालेनसहन्तिपुनरागतः ॥
अयवापिपरीपाकंधातुष्वेवक्रमान्मलाः ।
यान्तिज्वरमकुर्वन्तःतेतथाप्यपकुर्वते ॥

अर्थ—गाढा, कुष्ठ २ पाण्डुता लिये चिकना और गिलगिलाकफ मिश्रित रक्त पित्त होता है ।

वातिक रक्त पित्तके लक्षण ।

श्यावारुणसफेनञ्चतनुरूपञ्चवातिकम् ।

अर्थ—कुष्ठकाला, कुष्ठलाळ, झागदार, पतला और रूखा वातमिश्रित रक्तपित्तहोताहै

पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण ।

रक्तपित्तकपायाभंकृष्णगोमूत्रसन्निभम् ।

मेचकागारधूमाभमञ्जनाभञ्चपैत्तिकम् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त काथके रंगके सदृश कृष्ण वर्ण, और गौके मूत्रके समान होता है अथवा मोरकी चन्द्रिका के समान नीळ वर्ण, घरके धूपके से रंगका अथवा सुरमे के सदृश है उसे पैत्तिक रक्तपित्त समझो

संस्फुरक्त पित्तके लक्षण ।

संस्फुलिङ्गसंसर्गात्रिलिङ्गसादिपातिकम् ॥

अर्थ—दो दो दोषों से युक्त रक्तपित्त में दो दो दोषोंके मिश्रित लक्षण होतेहैं और जिसमें तीनों दोषोंके चिन्ह पाये जाते हैं उसे सान्निपातिक कहते हैं ।

दोषभेद से साध्यासाध्यलक्षण ॥

एकदोषानुगंसाध्यंद्विदोषंयाप्यमुच्यते ॥

त्रिदोषजमसाध्यतन्मन्दाग्रेरतिवेगवत् ।

व्याधिभिः क्षीणदेहस्यवृद्धस्यानश्नतश्च यत् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त एक दोषसे उत्पन्न होताहै वह साध्यहै, दो दोषसे होनेवाला साध्यहै, जो तीनों दोषसे उत्पन्न होता है

वह असाध्यहै । इसी तरह जिनकी अग्नि अत्यन्त मन्दी पडगई हो जिनकी देह रोगों से क्षीण होगईहो, जो बुढ़ाहो और जिसका आहार थकगयाहो ऐसे मनुष्योंका रक्त पित्त भी असाध्य होता है ॥

ऊर्ध्वाधःमार्गद्वारा साध्यासाध्य विचार ॥

गतिरूर्ध्वमधश्चैवरक्तपित्तस्यदर्शिता ॥

ऊर्ध्वाःसप्तविधाद्वाराद्विद्वारात्वधरागतिः ॥

सप्तच्छिद्राणिशिरसिद्वेषाधःसाध्यमूर्ध्वं गम् । याप्यन्त्वधोगममार्गद्वारासाध्यमप्यते ॥

अर्थ—रक्त पित्तकी ऊर्ध्व और अधोगति ये दो पहिले वर्णन करचुकेहैं ॥ रक्त पित्त के सातद्वारहैं, यथा दो आंख, दो नाक, दो कान और एक मुख । नाँचे के दो द्वार है । मलद्वार और मूत्रद्वार । ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त साध्यहै, अधोगामी साध्यहै और उभयमार्गगामी असाध्य होताहै ।

यदातुसर्वेच्छिद्रेभ्योरोमकूपेभ्यएषच ।

वर्ततेतामसंख्येयांगतितास्याहुरान्तिकीम् ॥

अर्थ—जब रक्त सम्पूर्णच्छिद्रों और रोम कूपों द्वारा निकलताहै तब रक्त पित्तकी असंख्येयागति को अन्तिकी कहते हैं ॥

असाध्य रक्तपित्तके लक्षण ।

यच्चोभयाभ्यांमार्गाभ्यामतिमात्रमवर्तते

तुल्यंकुणपगन्धेनरक्तकृष्णमतीवच ॥संस्पृष्टकफवाताभ्यांकण्ठेसज्जातिचापियत् ।

यच्चाप्युपद्रवैःसर्वैर्योक्तैःसमभिद्युतम् ॥

क्षीणस्यकासमानस्ययच्चयच्चनसिध्यति

अर्थ—जो रक्त ऊर्ध्व और अधः दोनों मार्गोंसे आतिशय करके निकलता है, जिसमें सडी हुई गन्ध आतीहो, अत्यन्त काला रुधिर निकलताहो, जो कफ वाग दोनों दो षोसे युक्तहो, और जो कण्ठमें अत्यन्त रुकताहो, जो सम्पूर्ण ऊपर कहेहुए उपद्रवों से युक्तहो, जो हृदयके सदृश पीला, नीला, हरित और ताम्रवर्ण से उपद्रुत हो यह असाध्य होताहै । कासयुक्त क्षीणरोगीका रक्त पित्तभी असाध्य होता है ॥

याप्परक्तपित्तकेलक्षण ।

यद्द्विदोषानुगम्यद्वाशान्तंशान्तंभ्रुकुप्याति ॥

मार्गमार्गचरेद्यद्वायाप्यं पित्तं असृक्चतत् ।

अर्थ—जो द्विदोषाश्रित रक्तपित्त रुकरुक फर कुपित होता है अथवा एक मार्गको छोड़कर दूसरे मार्गसे निकलने लगता है उसे याप्य कहते हैं ।

साध्य होनेके कारण ।

एकमार्गवलगतानातिवेगनवोत्थितम् ।

रक्तपित्तं मुखकालेसाध्यं स्यान्निरूपद्रवम् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त बलवान् पुरुष के एक मार्गगामी होताहै, जो अत्यन्त वेगवान् नहीं होताहै और जो हालमें ही उत्पन्न हुआहै और जो हेमन्तादि मुखदायक समयमें उत्पन्न हुआहै वह साध्य होताहै ।

रक्तपित्त के कारण ॥

स्निग्धोष्णगुणरूक्षश्चरक्तपित्तस्यकारणम् । अधोगम्योत्तरप्रायः पूर्वस्पाद्ध्वगस्य तु ॥ ऊर्ध्वगंरुफसंसृष्टमधोगं गारुतानुगम् । डिमार्गंरुफयाताभ्यां उवाभ्यामनुवध्यते ॥

अर्थ—स्निग्धोष्ण और उष्णरूक्ष ये रक्त पित्तके कारण हैं, प्रायः अधोगामी रक्त पित्तका का कारण उष्णरूक्ष है और ऊर्ध्वगामीका स्निग्धोष्ण है ॥ ऊर्ध्वगरक्त पित्त कफ संसृष्ट होताहै, अधोगामी वायुसंसृष्ट और उभयमार्गगामी कफबाट संसृष्ट होताहै । यहाँ यह बात जाननी चाहिये कि जब ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त कफ संसृष्ट होता है तब पित्त उष्ण है कफ स्निग्ध है अतएव ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त कफबाट कारक अर्थात् स्निग्ध और उष्ण द्रव्यों के सेवन से अत्यन्त बढ़ता है इसीतरह वायुरूक्ष होताहै और पित्त उष्ण होताहै इसलिये अधोगामी रक्त पित्त बातापित्त गुणाविशिष्ट रूक्षोष्ण द्रव्यों के सेवन से कुपित होताहै ।

स्तम्भन के अयोग्यरक्तपित्त ॥

अक्षीणबलमांसस्यरक्तपित्तं यदश्नतः ।

तदोपद्रुद्युत्क्रिष्टं नादौ स्तम्भनमर्हति ॥

अर्थ—जिस पुरुषका बल और मांस क्षीण न हुआहो और आहार भी न थकाहो उसको दोष से दूषित और उदीर्ण रक्त पित्तको प्रथमही रोकना उचित नहींहै ॥

रक्त पित्तको स्तम्भितकरनेके

उपद्रव ॥

गलग्रहंपूतिनस्यं मूर्च्छार्थमरुचिं ग्वरम् ।

शुलभं प्लीहानमानाहं किन्नासंकुच्छ्रमृत्रतां ॥

कुष्ठान्यर्थासिर्वीसर्पवर्णनाशं भगन्दरम् ।

सुदीन्द्रियोपरोयश्च कुर्यात्स्नम्भितभा-

दितः ॥

अर्थ—रक्त पित्त को यदि प्रथमही से

रोंका जायगा तो इतने उपद्रव उत्पन्न होंगे, यथा— गलप्रहः पूनितस्य, मूर्च्छा, अरुचि, ज्वर, गुल्म, प्लीहा, आनाह, किलास, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, अर्श, विसर्प, वर्णनाश भगन्दर, बुद्धिनाश और इन्द्रियोपरोध ॥

तस्पादुपेक्ष्यंचलिनंबलदोषविचारिणा ।

रक्तपित्तप्रथमतःप्रवृद्धंसिद्धिमिच्छता ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए हेतुओं से उस बुद्धिमान् वैद्य को उचित है जोकि रक्तपित्त को अच्छा किया चाहता है कि बल और दोष का विचार करके बलवान् मनुष्य के बड़े हुए रक्तपित्तकी भी प्रथम उपेक्षा करे ॥

रक्तपित्त मे प्रथम कर्त्तव्य कर्म ॥

प्रायेणहिसमुत्कृष्टमामदोपाच्छरीरिणाम् ।
वृद्धिमयातिपित्तासृक्तस्माल्लंघनमादितः ॥
मार्गदोषानुबद्धश्चनिदानं प्रसमीक्ष्यंच ।
लंघनंरक्तपित्तादौतर्पणं

वामयोजयेत् ॥

अर्थ—प्रायः मनुष्यों को शरीर रक्तपित्त आम दोष से बढ़ता है अतएव प्रथम लंघन कराना आवश्यक है । रक्तपित्तका मार्ग, दोषानुबन्ध (कौनसा दोष उसके साथ है) और निदान को देखकर रक्तपित्त में प्रथम लंघन वा तर्पण देवै ॥

रक्तपित्त में तृपानाशक औषध ॥

दीवेरंचन्दनोशीरमुस्तपर्पटकैः शृतम् ।
केवलंशृतशीतंवाद्यात्तोषोपिपासवे ॥

अर्थ—रक्तपित्त में जो तृपाकी आधिक्यताहो तो नेत्रवाला, चन्दन, मूस, मोथा,

पित्तपापडा, इनको डालकर जल आंटा ले और फिर ठण्डा करके थोडा २ रोगी को पान कराता रहै ।

तर्पण और पेया की विधि

ऊर्ध्वगतर्पणपूर्वपेयापूर्वमधोगतम् ।
कालसात्म्यानुबन्धज्ञादद्यात्प्रकृतिकल्पवित् ॥

अर्थ—काल, सात्म्य, अनुबन्ध, प्रकृति और कल्पना का जाननेवाला वैद्य ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें प्रथम तर्पण देवै और अधोगामी रक्तपित्तमें प्रथम पेया पान करावै ।

तर्पण प्रयोग

जलंखर्जूरमृद्धीकामधुकैः सपरूपकैः ।

शृतशीतंप्रयोक्तव्यंतर्पणार्थंसशर्करम् ॥

तर्पणंसघृतसोद्वंलाजाचूर्णैः प्रयोजयेत् ।

अर्थ....खिजूर, दानव महुआ और फालसे इनको जलके साथ आंटाकर छानले और ठण्डा होनेपर मिश्री डालकर पान करावै । अथवा घी और शहत मिलाकर खीलों के चूर्ण का तर्पण देवै ।

उक्ततर्पणोंकेगुण ।

ऊर्ध्वगंरक्तपित्तंतत्शीतंकालेव्यपोहति ॥

मन्दाग्ने रम्लसात्म्यायत्साम्लमपिकल्पयेत् ॥

दाडिभानलकैर्विद्यादम्लाश्चा

नुदापयेत् ॥

अर्थ....ऊपर कहे हुए दोनों प्रयोग उचितकालमें पान करानेसे ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त को दूर कर देतेहैं मन्दाग्निवाले तथा जिसको खटाई की मारुक्तहै उसे नीचे लिखी हुई खटाई मिलाकर देवै । अनारको खटाई वा आमलेकी खटाई इसमें हितकारी होतीहै

अन्यप्रयोग ॥

शालिपट्टिकनीवारकोरदूपप्रशांतिकाः ॥
श्यामाफश्चप्रियंगुश्चभोजनरक्तपित्त-
नाम् ॥

अर्थ—शालीचांबल, माठीचांबल, नीवार
कोदों, प्रशांतिका, सामखिया, और प्रियंगु
इन सबका भात रक्तपित्त रोगियों को
हितकारक है ॥

रक्तपित्त रोगियों को अन्यद्रव्य ॥

मूद्रामनूराश्चणकाः समकुष्ठाढकीफलाः ॥
प्रशस्ताःसूपयूपार्थैकल्पितारक्तपित्तनाम्
पटोलनिम्बवेत्राग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः ॥

किराततिक्तकंशाकेगण्डीरःसकठिल्लकः
कोविदारस्यपुष्पाणिकाश्मर्यस्याथशाल्म
लेः ॥ अन्नपानविधौशाकमच्चान्यद्रवत
पित्तनुत् । शाकार्थशाकसात्म्यानांतच्छ
स्तरक्तपित्तनाम् ॥ स्वन्नंवासर्पिपाथु
ष्टंपुपवद्वाविपाचितम् ।

अर्थ—मूग, मसूर, चना, मीठ और
अडहर इनकी दाळ और यूप रक्तपित्त
बालों के लिये अच्छे हैं । परवल, नीम
के पत्ते, वेतकी कोंपल, पाकड, वेतके पत्ते
चिरायता, गण्डीर और करेला इनका
साग तथा कचनारके फूल, खंभारीके फूल
सेमर के फूल, तथा अन्यशाक जो अन्न
पान विधि में रक्तपित्त के नाश करनेवाले
वर्णन किये गये हैं । ये सब शाक सिजा
कर घृत में भून ले अथवा यूप क्री तरह
मिद्ध कर ऐसे रक्तपित्तवाले रोगी को देवें
जिसको शाक अनुकूल हों ।

(९१)

रक्तपित्तपरं मांसरस ॥
पारावतान्कपोतांश्चलावान्काक्षवर्त
कान् ॥ शशान्कपिञ्जलान्णान्हरि-
णान्कालपुच्छकान् । रक्तपित्तेहितान्
विद्याद्रसांस्तेपांप्रयोजयेत् ॥ ईपदम्ला-
ननम्लान्वाघृतभृथानसशर्करान् ॥

अर्थ—पारावत, कपोत, लवा, चकोर
बटेर, शसा, तीतर, एण, हरिण, कालपुच्छ इन
का मांसरस रक्तपित्त रोगमें हितहै । इसमें
धोडीसी खटाई डालकर वा बिना डालेंही घी
में भूनकर और चीनी मिलाकर सेवन करें ।
अन्यदोषाश्रितरक्तपित्तमेंचिकित्सा ।
कफानुगेयूपशाकंद्वाद्यातानुगेरसम् ॥
रक्तपित्तेयवागूनामतःकल्पःप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—कफयुक्त रक्तपित्तमें यूप और शाक
तथा वातयुक्त रक्तपित्त में रक्तपित्तनाशक
मांसरस का प्रयोग करना चाहिये । अब
यहांसे उन यवागुओंका वर्णन करते हैं जो
रक्तपित्त में हितकारी हैं ॥

रक्तपित्तनाशक यवागू ।

पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कःपृश्निपर्णीभियंगु
काः ॥ जलेसाध्यंरसेतस्मिन्पेयास्याद्र
क्तपित्तनाम् । चन्दनोशीररोध्राणांरसे
तद्दत्सनागरे ॥ किराततिक्तकोशीरमु
स्तानांतद्देवच । धातकीधन्वयासाम्यु
विल्वानांवारसेशृताः ॥ मसूरपृश्निपर्ण्यो
र्वास्थिरामुद्गरसेनवा । रसेद्देणुकानांवा
सघृतेसवलारसे । सिद्धाःपारावतादीनां
रसेवास्युःपृथक्पृथक् । इत्युक्तारक्तपित्त
घ्न्यःशीताःसमधुशर्कराः ॥ यवाग्वःकल्प
नाचैपांकार्यामांसरसेष्वपि ॥

अर्थ—लाल कमलकी केसर, नीलकमल की केसर प्रणिपणी, प्रियंगु इनको डाल कर जलको औटाले और उस जलमें पेया तयार करके रक्तपित्त वाले रोगी को देवे । अथवा चन्दन, उत्सीर, छोध और सॉठ के रसमें पूर्ववत् पेया सिद्ध करे । अथवा चिरायता, उत्सीर, मोथा इनके रसमें पूर्ववत् पेया सिद्ध करे । अथवा धायके फूल जबासा, नेत्रवाला और बेलगिराके रसमें पेया सिद्ध करे । अथवा मसूर और पृष्णिपणी के रस में, अथवा शालिपणी और मूंग के रस अथवा हरेणुका के जल में अथवा घृतयुक्त खरैटीके रसमें पेया सिद्ध करे । अथवा पूर्वोक्त पाराश्रतादिक के मांस रसमें पृथक् पृथक् पेया सिद्ध करे । सम्पूर्ण प्रकार की पेया शीतल होती है इससे इनमें शहत और शर्करा मिलाकर सेवन करे ॥ मांसरस वाली पेयामें भी शहत और शर्करा मिलावे ॥ इस तरह इन सब रक्तपित्तनाशिनी पेयाओंका वर्णन किया गयाहै ॥

सोपद्रव रक्तपित्तमें चिकित्सा ।

शशःसयास्तुकःशस्तोविवन्धोरक्तपित्तिनाम् ॥ घातोल्बणेतिचिरःस्यादुदुम्बररसेशृतः । मयूरःप्लक्ष्मिर्निर्युहेन्यग्रोधस्यचक्षुक्कुटः ॥ रसेविल्वोत्पलादीनांचतर्ककरोहितौ ।

अर्थ—विवन्धुयुक्त रक्तपित्तमें सस्तेके मांसरसमें सिद्ध किया हुआ बथुणका शाग हितकरहै घातोल्बणरक्तपित्तमें गूलरके रसमें सिद्ध कियाहुआ तीतरका मांस, पाकडके

रसमें सिद्ध किया हुआ मोरका मांस, बड़के रसमें सिद्ध किया हुआ मुर्गेका मांस, विल्वके रसमें बटेर और टत्पलके रसमें क्रक रका मांस हितकारी होता है ।

तृपायुक्तरक्तपित्तकी चिकित्सा ।
तृप्यतेतिक्तकैःसिद्धंतृणाग्रंवाफलोदकम् ॥ सिद्धंविदारिगन्धाद्यैरथवाशृतशीतलम् । ज्ञात्वदोषावनुबलौवलमाहारमेवच । जलंपिपासवेदद्याद्विसर्गादल्पशोऽपिवा ।

अर्थ—तृपायुक्त रक्तपित्त में तिक्त औषधियों से सिद्ध कियाहुआ जल अथवा तृपानाशक अनार आदि फल डालकर सिद्ध किया हुआ जल अथवा विदारी गंधादि डालकर सिद्ध किया हुआ जल ठंडा करके पान करावे । तृपायुक्त रक्तपित्त रोगीके दोषोंका अनुबल और आहारका बलदेखकर थोडा या अधिक जल देवे ।

रक्तपित्त में वर्जित द्रव्य ।

निदानंरक्तपित्तस्यथत्किञ्चित्संमकाशितम् जीवितारोग्यकामैस्तन्नसेव्यंरक्तपित्तिभिः

अर्थ ... जो जीने का और आरोग्य लाभ करने की इच्छा हो तो निदान स्थानमें रक्तपित्त के उत्पन्न होने के जो २ कारण कहे गयेहैं उनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये इत्यन्नपाननिर्दिष्टंक्रमशोरक्तपित्तिषु

वक्ष्यतेबहुदोषाणांकार्यबलवताञ्चयत् ।

अर्थ—इस तरह क्रम से रक्तपित्त में उपयोगी अन्नपानका वर्णन किया गया है । अब बहुत दोषों से युक्त और बलवान् रक्त

पित्त रोगियोंके कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन कि-
याजाता है ॥

अक्षीणबलमांसस्ययस्यसन्तर्पणोत्थितम्

बहुदोषम्वलवतोरक्तपित्तशरीरिणः ।

कालसंशोधनद्विस्यतद्वरंन्निरूपद्रवम् ॥

विरेचनेनोर्ध्वभागमधोगं वमनेन च ॥

अर्थ—जिस रक्तपित्त रोगीका बल और

मांस-क्षीण नहीं हुआ है, जिसके रक्तपित्त

सन्तर्पण से उत्पन्न हुआ है । और जिस

मनुष्य का शरीर बलवान् है अथवा वह सं-

शोधन के योग्य है ऐसे मनुष्य के बहुत

दोषयुक्त-निरूपद्रव पित्त को संशोधन के

द्वारा संशामन करें । ऊर्ध्व भागगामी रक्त

पित्त में विरेचन देवें और अधोभाग गामी

रक्तपित्त में वमन देवें ॥

रक्तपित्त में विरेचनिकप्रयोग ॥

तिष्ठतामभ्यां प्राज्ञः फलान्यारग्वधस्यवा ।

लायमाणगवाक्ष्योर्वा मूलमामलकानिवा

विरेचनप्रयुञ्जीतमभूतमधुशर्करम् ॥

रसः प्रशस्यते तेषां रक्तपित्तविशेषतः ।

अर्थ....निसोप और हरडकाक्वाथ, अ-

थवा अमलतासका मूदा, अथवा त्रायमाण

और इन्द्रायणकी जड़ अथवा आंवलेका काथ

इन प्रयोगों में बहुत सा शहत और शर्करा

छालकर विरेचन देवें । इनका रस रक्तपित्त

में विशेष उपयोगी है ।

रक्तपित्त में वामनिक प्रयोग ॥

पमनं मदनांमिश्रोमन्धः ससौद्रशर्करः ॥

सशर्करं वासलिलमिश्रुणां रस एव वा । व-

त्सकस्य फलमुस्तं मदनमधुकं मधु ॥ अथो

चहे रक्तपित्तवमनपरमुच्यते ॥

अर्थ—शहत, शर्करा और मेनफल मि-

लाहुआ मन्ध, अथवा मेनफल, शर्करा और

जल अथवा मेनफल और ईशका रस अथवा

इन्द्रजौ, मोथा मेनफल मुलहटी और शहत

ये सब प्रयोग अधोगामी रक्तपित्तमें वमन

करानेके लिये अत्यन्त उत्तम है ॥

ऊर्ध्वगोशुद्धकोष्ठस्य तर्पणादिः क्रमोहितः ॥

अधोवद्वेह्यवाग्वादिर्नचेत्स्यान्मारुतोवली

अर्थ—ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें यदि रोगी

का कोष्ठ शुद्ध होगया हो तो तर्पणादि

क्रियाका अवलम्बन करें ॥ इसीतरह अधो-

गामी रक्तपित्तमें यवागू देवें ॥ ऐसा न करने

से वायु कुपित होजाती है ।

संशमनीयरक्तापिचलक्षण ॥

बलमांसपरिक्षीणशोकभाराध्वकार्पितम् ॥

ज्वलनादित्यसन्तप्तमन्यैर्वाक्षीणमामयैः ॥

गर्भिणीस्थविरेवालंरूक्षाल्पप्रमिताशनम् ॥

अवम्यमविरेच्यं वायंपश्येद्रक्तापिचिनाम् ॥

शोषणसानुबन्धवायस्य संशमनीक्रिया ॥

शस्यते रक्तपित्तस्य पुरोयातुप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—जिसका बल और मांस क्षीण हो

गयाहै, जो शोक, भारबहन और मार्ग चल

ने से कृश होगयाहै, जो अग्नि वा सूर्यसे

सन्तप्त होगयाहै, जो अन्य रोगों से

क्षीण होगयाहै, गर्भिणीस्त्री, वृद्ध,

बालक, रूक्षभोजी, अल्पभोजी, मि-

त भोजीहै, जो वमन विरेचनके योग्य नहीं

है, अथवा वह रोगी जिमको शोष का अ-

नुबन्ध है । इन लक्षणोंसे युक्त रक्तपित्त

रोगियों की संशमन क्रिया करें । अब उस

क्रियाका वर्णन करते हैं ॥

रक्तपित्तं मे संशमनीयक्रिया ।

आटरूपकमृद्धीकापथ्याकायःसर्शकरः ।

मधुमिश्रःश्वासकासरवतपित्तनिर्वहणः ॥

अथ—अइसा, किसमिस, हरड, इनका का-
थ करके शहत और शर्करा मिलाकर पान
करै तो श्वास और खांसीसे युक्त ऊर्ध्व-
गामी रक्तपित्त शान्त होजाता है ॥

रक्तपित्तं मे अन्यप्रयोग ॥

आटरूपकानियूहेप्रियंगुमुक्तिकाञ्जने ॥

विनीयलोध्रंसौद्रञ्चरक्तपित्तनुदं पिवेत् ।

अर्थ—अइसाका काथ, प्रियंगु, गेरू,
अंजन, लोध और शहत मिलाकर पान क-
रनेसे रक्तपित्त शांत होजाता है ॥

अन्यप्रयोग ।

पद्मकंपद्मकिंजल्कदूर्वाघास्तुकमेव च ।

नागपुष्पञ्चलोध्रश्चतनवविधिनापिवेत् ॥

अर्थ—पद्मास, लालफमल की केशर,
दूब, बथुआ, नागकेशर, लोध इन सबको
शहतमें मिलाकर सेवन करै तो रक्तपित्त
शान्त होवे ॥

अन्यप्रयोग ॥

प्रपुण्डरीकमधुकंमधुचाश्वशकृद्रसे ॥ यवा-

सभृङ्गरजसोर्मूलवागोशकृद्रसे ॥ विनीय

रक्तपित्तघ्नंपयस्यात्तण्डुलाम्बुना ॥ यु-

क्तवामधुसर्पिर्भ्योल्लिहाद्वागोऽश्वशकृद्रस-

म् ॥ खादिरस्यप्रियंगूनांकोविदारस्यशा-

ल्मलेः ॥ पुष्पचूर्णानिमधुनालिषान्नार-

वतपित्तिकः । शृङ्गाटकानांलाजानांमुस्त-

सर्ज्ज्योरपि ॥ लिहाच्चूर्णानिमधुनापद्मा-

नांकिशरस्य च । धन्वजानाममृगिलह्वान्म-

धुनामृगंपक्षिणाम् ॥ सक्षौद्रग्रथितेरवते

लिहात्पारावतंशकृत् ॥

अर्थ—पुण्डरीक, मुलहठी, शहत इनको

घोडे की लीद के रसमें अथवा जवासा

भांगरेकी जड, इनको गाँके गोवरके रसमें

मिलाकर चावल के साथ पान करै अथ-

वा घी और शहत मिलाकर गाँ और घो-

डेकी लीदका रस पान करै । अथवा

खैर, प्रियंगु, कचनार और सेमर के फू-

लोंका चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटे । अ-

थवा सिंघाडे, खील, मोथा खिजूर और क-

मलकेशर इनके चूर्णको शहतके संग चा-

टे । अथवा धन्वज पशुपक्षियोंका रुधिर

शहत मिलाकर पान करै । अथवा जो र-

क्तमें गाँठ पडगईहो तो कबूतर की घीट

को शहतमें मिलाकर चाटे ॥

दाहादियुक्तरक्तपित्तपर प्रयोग ॥

उशीरकालीयकलोध्रपद्मकप्रियंगुकाक-

दफलशंखगोरिकाः । पृथक्पृथक्चन्दन-

तुल्यभागिकांः सशर्करास्तण्डुलघाव-

नाप्लुताः । रक्तसपित्तन्तमर्कपिपासां

दाहश्चपीताःशमयन्तिसद्यः ।

अर्थ—खस, कालायक [पीतचन्दन]

लोच, पद्मास, प्रियंगु, कायफल, शंख इन

सबमें पृथक् २ समान भाग रक्त चन्दन

मिलावे और इसको फाँककर शर्करायुक्त

तण्डुल जलका पान करै तो रक्तपित्त,

तमकशाम पिपासा, दाह ये तत्काल शा-

न्त होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग ॥

किराततिकंक्रमुकंसमुस्तं प्रपुण्डरीकं

कमलोत्पले च ॥ ह्रीवेरमूलानिपटोलपत्र
न्दुरालभापपट्टकामृणालम् । धनञ्जयो
दुम्बरवेतसत्वम् न्यग्रोधजम्बूहयमारक
त्वम् ॥ तुगालतावेतसतण्डुलीयं स-
शारिवम्पोचरसःसमङ्गा । पृथक्पृथक्
चन्दनयोजितानितैनेवकल्पेनहितानितत्रा

अर्थ—चिरायता, सुपारी, मोथा, पुण्ड-
रिपा, कमल, उत्पल, नेत्रवाला, पाँचों पं-
चमूल, परबलके पत्ते, जवासा, पितपापडा
कमलनाल, अर्जुन, गूलर, वेत, घड, जा-
मन, कनेर, [इन छःओं की छाल], बं-
शलोचन, लतावेत [कोई २ लता से शा-
रिया और वेतस से वेतका ग्रहण करते हैं]
चौलाई, शारिया, मोचरस, मर्जाठ, इनसब
में पृथक् २ समानभाग चन्दन मिलाकर
शकरा और तण्डुल जलके साथ लेवे ॥

उक्तप्रयोगोंकी विधि ॥

निशिस्थितावासरसीकृतावा कल्की
कृतावामृदिताशृतावा । एतेसमस्ताग्रण-
शःपृथग्वा रक्तसपित्तंशमयन्तियोगाः ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए दोनों गणोंमें जो
द्रव्य वर्णन कियेगयेहैं इन सबको वा पृ-
थक् २ लेकर रात्रिमें भिगोदेवे, वा इन
का रस निकालले, वा पसिकर लुगदी बना
लेवे, वा मीडकररस निकाल लेवे वा काथ
कर लेवे । ये सत्र योग रक्तपित्त को शमन
करते हैं ।

रक्तपित्त पर अन्य प्रयोग ॥

मुद्गाःसलाजाःसपवाःसकृष्णाःसोशीरमु-
स्ताःसहचन्दनेन । बन्धनलेपर्युपितः

कपायो रक्तसपित्तंशमयन्त्युदीर्णम् ॥

अर्थ—मूंग, खीर, जौ, पीपल, खस,
मोथा, रक्तचन्दन इनकी खरौटके काथ में
रात्रिमें भिगोदेवे और दूसरेदिन प्रातःकाल
इसका पान करे तो बढाहुआ रक्तपित्त शां-
त होजाता है ।

अन्यप्रयोग ॥

वैदूर्यमुक्तामणिगैरिकाणां मृच्छंत्वहे
मामलकोदकानाम् । मधूदकस्येधुरस
स्यचैव पानाच्छमच्छतिरक्तापित्तम् ॥

अर्थ—वैदूर्य (एकप्रकार की मणि),
मोती, मणि, गेरू, शंख, सुवर्ण इनको आं-
बलके काथके साथ वा मधुमिश्रितजल वा
ईखके साथ पानकरे तो रक्तपित्त शान्त होवे

अन्यप्रयोग ॥

उशीरपद्मोपलचन्दनानांपकस्यलोध्रस्य
चयःप्रसादः।सशर्करःशौद्रयुतःसुशीतोर्
त्तातियोगंशमयदेयः ॥

अर्थ—खस, पद्म, उत्पल, रक्तचन्दन,
और पक लोध्र इनके ठंडे काथको छान
कर शहत और मिश्री मिलाकर पान करे
तो रक्तपित्तपोगी पित्त शान्त होजाय ।

अन्यप्रयोग ॥

मिथंगुकाचन्दनलोध्रशारिवामधूकमुस्ता
भयधातकीजलम् । समुत्तमसादसहपट्टि
काम्बुनासशर्करंरक्तानिवहणंपरम् ॥

अर्थ—मिथंगु, रक्तचन्दन, लोध्र, शारिया
मुलहठी, मोथा, खस और धाय इनके
काथको मिश्रीके ऊपर का पानी और सांठी
चावल के जलके साथ मिश्रीडाळकर पान
करे तो रक्त रोग जाता रहता है ।

वाय्वनुबन्धारकपित्तकोचिकित्सा ॥
 कपाययोगीविधिर्षथोक्तैर्दीप्तेऽनलेऽश्लेष्य
 णिनिजितेच । यद्रक्तपित्तप्रशमनयाति
 तत्रानिलः स्यादनुतत्रकार्यम् । छागम्प-
 यः स्यात्प्रथमप्रयोगेगन्धमृतपञ्चगुणेज-
 लेवा । सशकरमासिकमम्पयुक्तंविदारि
 गन्धादिगणेःशृतंवा ॥ द्राक्षाशृतनागरकै
 शृतंवावलाशृतंगोक्षुरकै शृतंवा । सजी
 रकंसर्पपकससपिं पयःप्रयोऽयंसितयाशृ-
 तंवा ॥ शतावरीगोक्षुरकैःशृतंवा शृतम्प
 योवाप्यथपणिनीभिः । रवतंहिनस्त्याशु
 विशेषतस्तुयन्मूत्रमार्गात्सरुजम्पयाति

अर्थ—पूर्वोक्त विविध प्रकार के कपाय
 योगों से अग्नि प्रदीप्त होजाय और कफ
 दूर होजाय और तब भी रक्तपित्त शांत
 न हो तो वहां वायुका अनुबन्ध होता है,
 उसमें निम्न लिखित चिकित्सा करनी चाहि-
 ये यथा प्रथमही यकरी वा गी के दूध
 को पचगुने जल में औटाकर मिश्री और
 शहत मिलाकर पान करावै । अथवा विदा
 रीगन्धादिगणोक्त द्रव्य डालकर औटायाहुआ
 अथवा दाख वा सोंठ, वा खरौटी, वा गो-
 खरू डालकर अथवा जीरा, ऋषभक, घी
 और मिश्री डालकर औटायाहुआ दूध देवै ।
 अथवा सितावर और गोखरू डालकर औ-
 टाहुआ दूध वा चासों प्रकारकी पर्णी, (मुद्र-
 पर्णी मापपर्णी, पृष्टपर्णी, शाटपर्णी) डालकर
 औटायाहुआ दूध देवै । इसरौति से सिद्ध
 कियाहुआ दूध रक्त को नष्ट करता है और
 विशेष करके उस रक्त पित्त के लिये हितहै
 जो मूत्रमार्गमें होकर वेदनायुक्त निकलताहै

रक्तपित्तपर अन्ययोग ॥

विशेषतोविट्प्रथमंप्रष्टत्तेपयोमतम्मोचर-
 सेनासिद्धम् । वटावरोहैर्वटशुद्धकैर्वाहीवेर
 नीलोत्पलनागरैर्वा ॥ कपाययोगात्प-
 यसापुरावा पीत्वानुदघात्पयसानुशा-
 लीन् । कपाययोगैरथवाविपक्वमेतैःपि-
 वेत्सार्पिरतिस्रवेच्च ॥

अर्थ—रक्तके मलमार्गमें होकर बाहर नि-
 कलने पर दूधके साथ मोचरस औटाकर पा-
 न करावै । अथवा बडकी डाढी, वा बडकी
 कौपल, अथवा नेत्रबाला, नीलोफर और सोंठ
 डालकर दूध को औटाकर पान करावै ।
 अथवा उक्त कपायोंके साथ पान कराने से
 पहिले जलके साथ औटाकर पान करावै
 और क्षुधा लगने पर शाळीचांबलोंका भात
 खाने को देवै । और जो रक्त अत्यन्त खव-
 ताहो तो उक्त कपायों के साथ घृत सिद्ध
 करके पान करावै ॥

अन्यप्रयोग ॥

वासांसशाखांसपलाशमूर्लांकृत्वाकपायं
 कुमुमानिचास्य । प्रदायकल्कंविपचेद्घृ-
 तंतत्ससौद्रमाश्वेनिहन्तिरक्तम् ।

अर्थ—अडूसा को शाखा, पत्ते, जड़ और
 फूल सबको एकत्र करके फायमें उक्त द्रव्यों
 का कल्क और घृत डालकर सिद्ध करे फिर
 शहत के साथ चादे तो रक्त बहुत शीघ्र
 वन्द होजाता है ॥

अन्यप्रयोगाणि ॥

पलाशवृन्तस्यरसेनासिद्धतस्यैवकल्केनम
 धुद्रेवण । लिङ्गाद्दृन्तसकफल्कसिद्धन्त

द्वत्समङ्गोत्पलरोधसिद्धम् । स्यात्त्राय
 माणाविधिरेषएवसोदुम्बरेचैवपटोलपत्रे
 अर्थ—ढाक के डंठलों का रस निकालें
 और फिर उन्हीं का कल्क करके उसमें घृत
 पकावे, इस घृत को शहत मिलाकर चाँटे
 तो रक्तपित्त नष्ट होय । इसी तरह इन्द्रजौ
 का प्रयोग भी होताहै । इसी तरह लज्जालू,
 नीलकर और लोध से सिद्ध किया हुआ
 घृत रक्तपित्त पर देवे । त्रायमाण अथवा गू-
 छर और परबल के पत्तों को घृत के साथ
 सिद्ध करके पूर्वोक्त विधि से सेवन करें ॥

अन्यप्रयोग ।

सर्पिंपित्तज्वरनाशनानिसर्वाणिशस्ता
 निचरक्तपित्ते ॥ अभ्यङ्गयोगाःपरिपेच
 नानिसकावगाहाःशयनानिवेश्म । शी
 तोयिधिर्धन्निविधानमध्यपित्तज्वरेयत्
 प्रशमायदृष्टम् ॥ तद्रक्तपित्तेनिखिलेनका
 र्यकालश्चमात्राञ्चपुरासमीक्ष्य ॥

अर्थ—पित्तज्वरके नाश करने वाले जो
 जो घृत वर्णन किये गयेहैं वे सब रक्तपित्त
 में हितकर हैं । तथा पित्तज्वरमें जो जो
 अभ्यंग, परिपेचन प्रसेक, अवगाहन शयन,
 धर, शीतविधि तथा वस्तिविधान वर्णन
 किये गयेहैं उन सबका काल और मात्राका
 विचार कर रक्तपित्त में प्रयोग करें ॥

अन्यप्रयोग ।

सर्पिर्गुण्डोयेचहिताःक्षतभ्यः तैरक्तपित्त
 क्षमयन्तिमद्यः ॥

अर्थ—घृत और गुड जो जो क्षतरोग
 में हितहैं वे सब रक्तपित्त को भी तत्काल
 नष्ट कर देते हैं ॥

कफानुबन्धीरक्तपित्तकीचिकित्सा ।
 कफानुबन्धेरुधिरसपित्तकण्ठागमेस्याद्ग्र
 यितेप्रयोगः । युक्तस्ययुक्त्यामधुसर्पिपो
 श्क्षारस्यचैवोत्पलनालजस्य ॥ मृणाल
 पत्रोत्पलकेशराणां तथापलाशस्यतथाभि
 यज्ञोः । तथामधूकस्यतथासनस्यक्षाराः
 प्रयोज्याविधिनैवतेन ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त कफानुबन्धी होता
 है वह कण्ठमें आकर गांठदार होजाता
 है । इसमें शहत और घृत मिलाकर चाँटे
 अथवा नीलकमलकी डंडीका खार शहत
 घृतके साथ चाँटे । अथवा कमलनाल, पद्म-
 केशर, उत्पल, केसरकी भस्म अथवा ढाक
 का क्षार, अथवा प्रियुगका क्षार अथवा महु
 आ का क्षार अथवा असनका क्षार पूर्वोक्त
 विधि से शहत और घृत के साथ चाँटे ।

शतावरीदि घृत ॥

शतावरीदाडिमतिन्तिडीकंकाकोलिमे-
 दोमधुकविदारीम् । पट्टवाचमूलम्फल
 पूरकस्य घृतपचेत्क्षारचतुर्गुणेन ॥
 कासज्वरानाहविबन्धशूलःतद्रक्तपित्त-
 श्घृतभिह्न्यात् । यत्पञ्चमूलरथपञ्च
 भिर्वा सिद्धंघृतंतच्चतदर्थकारि ॥

अर्थ—सितावर, अनार, इमली, काकोली,
 मेदा, मुलहठी, विदारीकन्द और विजोरे की-
 जड इन को पीसकर इनके साथ घृत पकावे
 उसी में घृत से चौमुना दूध डाले । इसके
 सेवन करने से खांसी, ज्वर, आनाह, विबन्ध,
 शूल और रक्तपित्त शान्त होजातेहैं ॥

पाँचों पंचमूल से सिद्ध कियाहुआ घृत-
 मी ऊपर कहेहुए रोगों में हितकारी होताहै ।

नकसीर की चिकित्सा ॥

कपाययोगाश्चइहोपादिष्टास्तेचावपीडेभिप-
जाप्रयोज्याः । घ्राणात्प्रवृत्तंरुधिरंसपि-
त्तं । यदाभवेन्निःसृतदुष्टदोषम् ॥

अर्थ—रक्तपित्त के नाश करनेवाले जो
जो कपाय इस जगह वर्णन कियेगये हैं उ-
नका रस निकालकर सूंघनेसे वह रक्तपित्त
बन्द होजाताहै जो नासिकाके द्वारा निकलताहै।

दुष्टरक्तके बन्द होनेके उपद्रव ।

रक्तेमदुष्टेक्षवपीड्वन्धे दुष्टप्रतिश्यायाशि-
रोविकाराः । रक्तसंपूर्यंकुणपश्चगन्धः

स्याद्घ्राणनाशःकुमयश्चदुष्टाः ॥

अर्थ—जो दूषित रक्तबन्द करदिया
जायग तो दुष्ट प्रतिश्याय, शिरोविकार,
पीवदार सड़ाहुआ रक्तस्राव प्राणशक्ति
का नाश ये उपद्रव होंगे तथा नासिकामें
दुष्ट क्रिमिरोग उत्पन्न होजायगा ।

रक्तपित्त मेंअन्यनस्य ॥

नीलोत्पलंगैरिकशंखयुक्तं । सचन्दनं
स्यात्तुसिताजलेन ॥ नस्यन्तथाम्ना-
स्थिररसः समझासधातक्रीमोचरसःस-
लौघः ॥ द्राक्षारसस्येक्षुरसस्यनस्यं ।
क्षीरस्यदूर्वास्वरसस्यचैव ॥ यवासमूला
निपलाण्डुमूलं नस्यंतथादाडिमपुष्पतोयम्

अर्थ—नीलकमल, गेरू, शंख, रक्तच-
न्दन और मिश्री इनको भिजोकर रसनिका-
लकर सूंघनेसे रुधिरबन्द होजायगा । अथ-
वा आमकी गुठलीका रस अथवा लज्जा-
दू, धायके फूल, मोचरस, लोध इनका र-
स निकाल कर सूंघनेसे भी नकसीर बन्द

होजातीहै। अथवा दाखका रस, वा दूध, दूध
का रस, वा जवासे की जडका रस, वा,
प्याजकी जडका रस, वा अनारके फूलका
रस सूंघनेसे भी नकसीर बन्द होजातीहै ।

नस्यपर अन्य प्रयोग ।

पियालतैलंमधुकम्पयश्चसिद्धंघृतमाहि-
यमाजकवां ॥आम्नास्थिपूर्वःपयसाचन-
स्यं । सशारिर्वःस्यात्कमलोत्पलंश्च ॥

अर्थ—पियाल का तेल, मुलहठी और
दूध इन सबको पकाकर सूंघे, अथवा भैंस
या बकरी का घी, [आम्नास्थिपूर्व अ-
र्थात् पहिले श्लोकों में कहीहुई] लज्जादू
धाय के फूल, मोचरस, लोध, शारिवा,
कमल और नीलोफर इनको सिद्ध करके
नस्य लेवे तो रुधिर बन्द होय ।

रक्तपित्तपर परिपेकादिं प्रयोग ॥

भद्रश्रियंलोहितचन्दनश्चमपुण्डरीकंकमलो-
त्पलश्च । उशीरवानीरजलंमृणालं ।
सहस्रवीर्यंवृणशूल्यमृद्धिः ॥ मूलानिपु-
ष्पाणिचवारिजानांप्रलेपनंपुष्कारिणामृ-
दश्च । उदुम्बराश्वत्थमधूकरोधाकपाय
वृक्षाःशिशिराश्चसर्वेमेदहकल्केपरिपेचने-
चतथावगाहेघृततैलसिद्धौ । रक्तस्यापित्त
स्यचशान्तिमिच्छन् । भद्रश्रियादीनि
भिपक्षमयुञ्ज्यात् ॥

अर्थ—सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, पुण्ड-
रीक, लालकमल, नीलकमल, उशीर, वानी-
र, नेत्रवाला, मृणाल, सहस्रवीर्य [दूध]
मल्लिका रुद्धि, कमलकी जड़ और फूल
तलावकी मिश्री, गूलर, पीपल, महुआ,

छोध तथा अन्य कषाय वृक्ष जो शीतवीथे हैं इन सबको लेप, परिपेचन तथा अक्वा-हनेमें प्रयुक्त करें ॥ और सफेद चन्दनसे आदि लेकर द्रव्यों में घृत वा तेलको सिद्ध करके रक्तपित्तकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करें रक्तपित्तपर अन्यावीथि ॥

धारागृहेभूमिगृहश्चशीतंवनञ्चरम्यञ्जल वातशीतम् । वैदूर्यमुक्तामणिभाजनानां स्पर्शाश्वदाहेशिशिराम्बुशीताः ॥ पत्रा णिशीतानिचवारिजानां । सौमञ्चशी तंकदलीदलाश्च । मच्छादनार्थेशयना-सनानां । पद्मोत्पलानाञ्चदलाःप्रश-स्ताःप्रियंगुकाचन्दनरूपितानांस्पर्शाभि-याणाञ्चवराङ्गनानाम् ॥ दाहप्रशस्ताः सजलाःसुशीताः । पद्मोत्पलानाञ्चक लापवाताःमरिद्धदानांहिमवेदरीणा ञ्चन्द्रोदयानांकमलाकराणाम् । मनोऽ-जुकूलाःशिशिराश्चसर्वाःकथाःसरक्तंशम यन्तिपित्तम् ॥

अर्थ—जलेके किनारेके या फव्वारेदार तथा ठंडे तलघरे, रमणीकवन, ठंडे हवा और जल, तथा वैदूर्य और मुक्तामणियों के पात्रों का देहसे लगाना रक्तपित्त के दाहमें हितकर है । शीतल जल, शीतल क-मलके पत्ते, शीतल रेदामी वृक्ष शीतल-कोलेके पत्ते भी हितकर हैं तथा पलंग वा आसन पर विठाने के लिये लाल कमल और नीलकण्ठ के पत्ते हितकारी होते हैं । प्रियन्तु तथा चन्दन लितांगी प्रियतमावगं-नोभाका स्पर्श, जटाई शीतल कमलों और

मोरछल की हवा, नदी सरोवर, हिमालयकी कन्दरा, चन्द्रमाकी चांदनी, कमलों का शृङ्ग तथा मनोनुकूल संतोष दाथिनी बातोंका श्रवण रक्तपित्त को शमन करता है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुंबुद्धिसंख्यांस्थानंलिङ्गपृथक्प्रदुष्टस्य।
मार्गौसाध्यमसाध्यंयाप्यंकार्यक्रमञ्चैव॥
पानान्नपानमेवचत्रज्यंसंशोधनञ्चशमन
ञ्च । गुरुरक्तवान्यथावत्चिकित्सिते
रक्तपित्तस्य ॥

अर्थ—भगवान् पुनर्वसुने इस अध्याय में रक्तपित्त के हेतु, बुद्धि, संख्या, समुत्थान लक्षण तथा दूषित रक्तपित्त के मार्ग, रक्त-पित्त के साध्य असाध्य और याप्यके लक्षण चिकित्साक्रम, पप्य, अनुपान, वर्जित अन्न संशोधन तथा संशमन ये सब धातें यथा-वत् वर्णन कीं हैं ।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचि-
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां साहितायां चिकि-
त्सितस्थाने रक्तपित्तचिकित्सितं नाम
चतुर्थोऽध्यायः । ४ ॥

पंचमोऽध्यायः

अथातोऽगुल्मचिकित्सितंन्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम गुल्मचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

सर्वप्रजानांपितृवच्छरण्यःपुनर्व्यमृधृतभ-
विष्यदीशः । चिकित्सितंगुल्मानिवर्धणा-
र्थं प्रोवाचसिद्धंवदतांवरिष्ठः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रजा को पिता की समान शरण देनेवाले, भूत-भविष्यत्के जानने वाले वक्ताओंमें श्रेष्ठ पुनर्वसुजी गुल्मरोग के निवारणार्थ सिद्ध चिकित्साका वर्णन करने लगे ॥

गुल्मोत्पत्ति का हेतु ।

विद्व्लेष्मपित्तादिपरिक्त्वाद्वा तैरेववृद्धेः
परिपीडितोवा ॥ वेगैरुदीर्णैर्विहितैरथोवा
वाह्याभिघातैरतिपूरणैर्वा । रूक्षान्नपानै-
रतिसेवनैर्वाशोकेनामिध्यामातिकर्मणावा
विचेष्टितैर्वाविषमातिमात्रैः । कोष्ठेभकोपं
समुपैतिवायुः । कफःपित्तञ्चसदूपयित्वा।
प्रोक्ष्यमाणान्निविन्विषयताभ्याम् । ह-
ल्लीहपाश्वौंदरवस्तिशूलं करोत्यधोया-
तिनबद्धमार्गः ॥ पकाशयेपित्तकफाशयेवा।
स्थितःस्वतन्त्रःपरसंश्रयोवा। स्पर्शोपल-
भ्यःपरिपिण्डितत्वात् गुल्मोयथादो-
पमुपैतिनाम ॥

अर्थ—विष्ट, कफ और पित्तादि की अ-
त्यन्त क्षीणता या इनही की वृद्धि से वायुकी
अत्यन्त पीडा से, उपाश्रित अश्वेवर्गों के
रोकनेसे, घात अभिघात से, अत्यन्त सन्त-
र्पण से, रुद्ध अन्नपान के अत्यन्त सेवन से,
शोक से, या चिकित्सा के मिथ्यायोग, अयो-
ग या अतियोगसे, शरीर की विषम या अ-
तिमात्र वेष्टाओंसे वायु कोष्ठ में अत्यन्त
कुपित होजाती है और फिर कफ और
पित्तको दूषित करके उनसे मार्गोंको रुक-
वालेतीहै और तब उचैजित होकर हृदय,
व्हीहा, पार्श्व, उदर और वस्तिमें शूल

उत्पन्न करती है और मार्गके बन्द होजाने
के कारण नीचे होकर भी नहीं निकलने
पाती है । तब वह पकाशय वा पित्तकफाशय
में अकेली वा कफपित्त के संसर्ग में स्थित
होजाती है और उस स्थान में हाय लगाने
से गोलासा दिखाई देने लगता है तब यथा-
दोष इस का नाम गुल्म होजाता है, यथा
वातिक पौत्तिक, और शैथिक । इस कहने
से यह न समझ लेना चाहिये कि केवल पै-
तिक वा शैथिक होता है । इसमें वायु तो
प्रधान होती है इसी से वायुगोला कहते हैं ।

गुल्मके स्थानभेद ।

वस्तोहिनाभ्यांहृदिपार्श्वयोर्वा । स्थाना
निगुल्मस्यभवन्तिपञ्च । पञ्चात्मकस्य
प्रभवन्तुतस्य । वक्ष्यामिलिङ्गानिचिकि-
त्सितञ्च ॥

अर्थ—वस्ति, नाभि, हृदय, और दोनों
पार्श्वभाग ये गुल्म के पांच स्थान हैं । इस
की उत्पत्तिभी पांचही प्रकारसे हैं, अब हम
इसकी चिकित्सा और लक्षणों का वर्णन
करते हैं ।

वातिक गुल्मका हेतु ।

रूक्षान्नपानैर्विषमातिमात्रं । विचेष्टितंवे-
गविनिग्रहश्च । शोकोऽभिघातोऽतिबल-
क्षयश्च निरञ्जताचानिलगुल्महेतुः ॥

अर्थ—रूक्ष अन्नपानके सेवन, शरीर की
विषम और अतिमात्र वेष्टा, मलमूत्रादि वेगों
का अवरोध, शोक, अभिघात, बलकी अत्य-
न्त क्षीणता, भोजन न करना ये सब वाति-
क गुल्मकी उत्पत्ति के हेतु हैं ।

वातिक गुल्म के लक्षण ।

यःस्थानसंस्थानरुजां विकल्पं । विह्वात
सङ्गलवचत्वशोषम् । श्यावारुणत्वंशि-
शिरज्वरश्च । हृत्कुक्षिपार्श्वसशिरोरुजञ्च
करोतिर्जीर्णैऽभ्यधिकंमकोपं । भुक्तेमृदु
त्वंसमुपैतियश्च । वातात्सगुल्मोचतत्र-
रुक्षःकपायतिक्तंकडुचोपशोते ॥

अर्थ—जिस गुल्म के स्थान, स्वरूप और
वेदनामें थोड़ी थोड़ी देरमें अन्तर पड़जाय,
जिस में मलत्याग और अधोवायु का अव-
रोध हो, जिस के होने से गले और मुख
में खुशकी हो, जिसका रंग कुछ काला
कुछ लालहो जिसमें शतिज्वर का वेग
हो, जिसके होनेसे हृदय, कुक्षि, पार्श्व और
सिरमें वेदनाहो, अन्नके पचनेपर जो अत्यन्त
कुपित हो, जो भोजन करने पर नरम प-
चजाय उसे वातजगुल्म कहतेहैं इसमें रू-
क्ष, कटु, तिक्त और कपाय द्रव्योंके सेवन
का निषेध है ।

पैत्तिक गुल्मका हेतु ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरुक्षक्रोधातिम
थार्कहुताशसेवा ॥ आमामिधातोरुधिर
ऽचदुष्टपैतस्यगुल्मस्यनिमित्तमुक्तम् ॥

अर्थ—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदा
ही और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे, क्रोध, अति,
मय, धूप और अग्निमें तापनेसे, अविदग्ध
अन्नसे और रुधिरके दूषित होनेसे पैत्तिक
गुल्म उत्पन्न होता है ।

पैत्तिक गुल्मके लक्षण ।

ज्वरःपिपासावेदनाङ्गरागःशूलंमूहञ्जीर्ण-

तिभोजनेच । स्वेदोविदाहोत्रणवच्चगुल्म
स्पर्शासहःपैत्तिकगुल्मरूपम् ॥

अर्थ—ज्वर, तृषा, मुख तथा देहमें ल-
लाई, अन्नके पचने के समय अत्यन्त शूल
का होना, पसिना, विदाह, तथा घाव की
तरह गुल्ममें हाथका लगाना बुरा मादम
होना, ये सब पैत्तिकगुल्म के लक्षण हैं ।

श्लैष्मिकगुल्म के हेतु ।

शीतंगुरुस्निग्धमचेष्टनञ्चसम्पूरणमस्यप-
नंदिवाच । गुल्मस्यहेतुःकफसम्भवस्य ।
सर्वस्तुष्टोनिचयात्मकस्य ।

अर्थ—शीतल, भारी और स्निग्ध पदा-
र्थों के सेवनसे किसी प्रकार की चेष्टा कर
नेसे, संतर्पणसे, दिनमें नींद लेनेसे कफज
गुल्म होताहै; तथा सान्निपातिक गुल्ममें ती-
नों दोषोंके मिलेहुए कारण होते हैं ॥

श्लैष्मिक गुल्मके लक्षण ।

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसाद् हृष्टासका-
सारुचिगौरवाणि । शैत्यंरगल्पाकठिनो
न्नतत्त्वं गुल्मस्यरूपाणिकफात्मकस्य ॥

अर्थ—स्तिमिता, शीतज्वर, अंगगलानि,
हृष्टास, खांसी, अरुचि, भारापन, शैत्य,
वेदनाकी सूक्ष्मता, कडापन, ऊँचापन, ये
सब कफजगुल्म के रूप हैं ॥

द्रव्जगुल्म के लक्षण ॥

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्यगुल्मे द्विदोषजेदो
श्वलावलञ्च । न्यामिश्रदोषानपरांस्तु
गुल्मांस्त्रीनादिशेदौपधकल्पनार्थम् ॥

अर्थ—उत्पत्तिक हेतु, लक्षण, दोषोंका
बलाबल, तथा दोर दोषोंके मिले हुए लक्ष

पोंसे तीन प्रकारके द्विदोषजगुल्म भी होते हैं ॥ औषधों के प्रयोग के निमित्त इनके तीन भेद दिखाये गये हैं ।

त्रिदोषजगुल्म के लक्षण ॥

महारुजंदाहपरीतमश्मवद् घनोन्नत्तंशीघ्र
विदाह्विदारुणम् । मनःशरीराग्निबलाप
हारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥
अर्थ—त्रिदोषजगुल्ममें अत्यन्त घोर वेदना,
दाह, पथरके समान कडापन और ऊँचाई
होताहै यह शीघ्रही दाह उत्पन्न करनेवाला
भयंकर रोग होताहै। यह मन शरीर और
अग्निके बलको दूर कर देताहै यह गुल्म
असाध्य होता है ॥

रक्तगुल्मका कारण

ऋतावनाहारतयाभयेन विरुद्धाणैर्वैगवि-
निग्रहैश्च ॥ संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषै
गुल्मःस्त्रियंरक्तभवोऽभ्युपैति ॥ यःस्पन्द-
तेपिण्डितएवनाङ्गैः चिरात्सशूलःसमग
र्भलिङ्गैः । सरौधिरेःस्त्रीभवएवगुल्मो
मासेवपतीतेदशमेचिकित्सेयः

अर्थ ...ऋतुधर्म होनेमें सर्वथा भोजन न
करना, भय, रूक्ष पदार्थोंका सेवन, वा-
तादिरोगत्रिनिग्रह, स्तम्भनक्रिया, वमन
और योनिदोषसे स्त्रियोंके रक्तगुल्म होता-
है। जब रक्तगुल्म पेटमें उछलता है तब
इसमें अत्यन्त वेदना होती है और लक्षण
इसमें गर्भ के समान होते हैं इसकी उत्प-
त्ति रक्तसे है और यह केवल स्त्रियोंहीके हो
ताहै। दस महीने व्यतीत होनेपर इसकी
चिकित्सा करना उचितहै ।

क्रियाक्रममतःसिन्धुगुल्मिनांगुल्मनाशनम्
प्रवक्ष्याम्यतऊर्ध्वञ्चयोगानंगुल्मनिवर्ह-
णान् ॥

अर्थ—अब हम यहांसे गुल्मरोगियोंके
गुल्मको दूर करने के लिये चिकित्साक्रम
और अनुभूत प्रयोगोंका वर्णन करते हैं ॥
वातजगुल्ममें चिकित्साक्रम ॥

रुद्धव्यायामजंगुल्मंवातिकंतीव्रवेदनम् ।
वद्विद्विद्विदारुतस्नेहैरादितःसमुपाचरेत् ॥
भोजनाभ्यञ्जनैःपानैर्निरूहैः सानुवासनैः
स्निग्धस्यभिषजास्वेदकर्त्तव्योगुल्मशान्त
ये ॥ स्रोतसामार्दवंकृत्वाजित्यामारुतमु-
ल्वणम् । भित्त्वाविबन्धंस्निग्धस्यस्वेदोगु-
ल्ममपोहति ॥ स्नेहपानमतंगुल्मेविशेषे
णोर्ध्वनाभिजे । पक्काशयगतेवस्तिरुभयं
जठराश्रये ॥

अर्थ—जो वातिकगुल्म रुद्ध भोजन तथा
परिश्रमसे उत्पन्न हुआहै, जिसमें तीव्र वेद-
ना होतीहै और जिसमें अधोवायु और विष्टा
रुकगयाहो उसमें प्रथम स्नेहन क्रिया करें ॥
भोजन अभ्यञ्जन, पान, निरूहण और अ-
नुवासन वस्ति द्वारा रोगीको स्निग्ध करके
स्वेदनकर्म करें तौ गुल्मरोग की शान्ति होतीहै

रोगीको स्निग्ध करने के पश्चात् स्वेदन
से शरीरके स्रोत मृदु होजातेहैं, वायु की
प्रबलता घटजातीहै, विबन्धता दूर होजाती
है और तब गुल्म भी शान्त होजाता है ।
विशेष करके नाभिसे ऊपर हेनिथोल गुल्ममें
स्नेहपान श्रेष्ठ है ॥ पक्काशयगत गुल्ममें व-
स्तिकर्म तथा जठराश्रय गुल्ममें स्नेहपान
और वस्तिकर्म दोनों हित हैं ॥

अन्यविधि ॥

दीप्ताग्नौवातिकेगुल्मेविवन्धेऽनिलवर्च
सां॥ बृंहणान्यन्नपानानिस्निग्धोष्णानि
प्रयोजयेत् ॥ पुनःपुनःस्नेहपानंनिरूहाः
सानुवासनाः । प्रयोज्यावातगुल्मेपुकफ
पित्तानुरक्षिणा ॥ कफेवातेजितमार्येपि
चंशोपिणतमेववा । यदिकुप्यातिवातस्य
क्रियमाणेश्चिकित्सितैः ॥ यथोल्बणस्य
दोषस्यतत्रकार्यंभिपग्जितम् । आदाव
न्तेचमध्येचमारुतपरिरक्षता ॥ वातगुल्मे
कफोद्दोहत्वाग्निमरुचिंयदि । हल्ला
संगौरवंतन्द्राजनयेदुल्लिखेत्तुतम् ॥

अर्थ—यदि वातिक गुल्ममें अग्नि तीव्र
हो, तथा अथवायु और विष्टाका विवन्ध
हो तो बृंहणकर्ता, स्निग्ध और उष्ण अन्न
पानका प्रयोग करे । तथा कफपित्तानुबन्धी
वातजगुल्मरोगमें बारबार स्नेहपान तथा
निरूहण, अनुवासनवस्ति देवे । कफ और
वातके प्रायः दूर होने के समय अथवा
वातगुल्मकी चिकित्सा करने के समय यदि
पित्त और रक्त क्षुपित्त होजाय तब उस
समय जिस दोषकी अधिकताहो उसी की
चिकित्साका उपाय करे । परन्तु चिकित्सा
के आदि मध्य वा अन्तसानमें वायुकी रक्षा
करता रहे । वात गुल्ममें यदि कफ उत्ते-
जित होकर जठराग्नि को मन्द करके अ-
रुचि, हृद्भ्रस, गौरव तन्द्रा उत्पन्न करे तब
उस रोगी को वमन करावे ॥

अन्यविधि ॥

शूलानाहविवन्धेपुगुल्मेवातकफोल्बणे ।
वतयोगुलिकाःचूर्णकफवातहरम्मतम् ॥

पित्तवायदिसंहृद्धं सन्तापवातगुल्मिनः ।
कुर्याद्विरेच्यःसभवेत्स्नेहनेरानुलोमिकैः ।
गुल्मयद्यनिलादीनांकृतेसम्यग्भिपग्जिते
नप्रशाम्यतिरक्तेनसलुतेनोपशाम्यति ॥

अर्थ—वातकफाधिक्य गुल्ममें यदि शूल
आनाह और विवन्ध हो तो कफवातनाशक
वर्तिका, गोली, चूर्णका प्रयोग करे । वात
गुल्मरोगीके यदि पित्त बढ़कर सन्ताप
उत्पन्न करे तो वायुके अनुलोमन करने
वाले स्नेहनद्रव्यों से विरेचन देवे । यदि
वातादिक को शमन करनेवाली औषधोंके
प्रयोग से जो गुल्म शांत नहीं वे फस्त खो-
लने से शान्त होजाते हैं ।

पैत्तिकगुल्ममें चिकित्साक्रम ॥

स्निग्धोष्णेनोदितेगुल्मेपैत्तिकेसंनंमतम्
रूक्षोष्णेनतुसम्भूतेसर्पिःप्रशमनंपरम् ॥
पित्तवापित्तगुल्मंवाज्ञात्वापकाशयस्थित
म् ॥ कालावन्निर्हरेत्सद्यःसतिकैक्षीरव
स्तिभिः॥ पयसावासुखोष्णेनसतिकेन
विरेचयेत् । भिपग्गिण्वलोपक्षीसर्पिपा
तैलकेनवा ॥

अर्थ—जो पैत्तिकगुल्म स्निग्ध और उष्ण
पदार्थों के सेवन से उत्पन्न हुआ है उस-
में दस्तावर औषध हितहै । और जो रूक्षो-
ष्णपदार्थों के सेवनसे हुआहै उसमें घृतपान
बहुत उत्तमहै । पित्त वा पित्तज गुल्म जो
पकाशयमें स्थितहो उसे उचितकाल में
तित्त औषधियों से संस्कार की हुई क्षीर-
वास्तिद्वारा तत्काल निकाल देवे, अथवा
तित्त औषधियोंसे संस्कार कियेहुए सुखोष्ण
दुग्धको पान कराके विरेचन देवे अथवा

रोगीके अग्निबल का विचार करके तेल मिला हुआ घी देकर विरेचन देवे ॥

गुल्ममें रक्तमोक्षणविधि ॥

तृष्णाज्वरपरीदाहशूलस्वेदाग्निमार्दवे ।
गुल्मिनामरुचौचापिरक्तमेवावसेचयेत् ॥

छिन्न मूलाविद्वहन्तेनगुल्मायान्तेचसयम्
रक्तीहव्यम्लतांपातितघनास्तिनचास्ति
रूक् । हृतदोषम्परिस्नानंजाङ्गलैस्तापि-
तंरसैः ॥ समाश्वस्तंचशेषातिसपिंपापुन-
राचरेत् । रक्तपित्तातिवृद्धत्वात्क्रियाम-
नुपलभ्यथा ॥ यदिगुल्मोविद्वहेतशस्त्र-
प्रभियग्जितम् ।

अर्थ—यदि पित्तज्वरमें तृष्णा, ज्वरदाह शूल, पसीना, मदाग्नि और अरुचि हो तो फस्त खुलवाये । इसतरह गुल्मकी जड़ काट देनेसे वे पकने नहीं पातेहैं किन्तु नष्ट हो जातेहैं, रक्तकी अम्लता जाती रहती है और रक्तके न रहने से वेदनाभी नहीं रहती

फस्त खोलनेसे दोषों के दूर होजाने पर रोगी अत्यन्त थकित होजाताहै तब उसे जांगल पशुओंके मांसरस से तर्पित करे जब यह साधधान होजाय तब बचे हुए रोगको घृतपान कराके दूर करे ।

रक्तपित्तके अत्यन्त बढ़जाने से वा चिकित्साकी सम्पक् अनुपलब्धि से जो गुल्म पकजाय तो उसमें शूल द्वारा रक्त मोक्षणाही चिकित्सा है ॥

अपक्व गुल्म के लक्षण ।

गुरुःकटिनसंस्थानोगूढमांसोचराश्रयः ॥

अविवर्णःस्थिरश्चैवक्षपकीगुल्मरुच्यते ।

अर्थ—भारी, कठोराकृति, घने मांस में स्थित, जिसका रंग न बिगडा हो जो अचल हो वह गुल्मअपक्व होताहै ॥

विद्वहमानगुल्म के लक्षण ॥

दाहशूलाग्निसंक्षोभस्वप्ननाशारतिज्वरैः
विद्वहमानजानीयाद्गुल्मंतमुपनाहयेत् ।

अर्थ—जिस गुल्ममें दाह, शूल, अग्नि-संक्षोभ, निद्रानाश, प्रलाप और ज्वर हो उस गुल्मको विद्वहमान अर्थात् पकनेवाला कहतेहैं । इसपर उपकरण चाहिये ॥

संपक्व गुल्मके लक्षण ।

विदाहलक्षणाल्पत्वैवाहिस्तुक्नेसमुभते ॥
श्यावसरक्तपर्यन्तेसंपर्शेषस्तिस्त्रिभे ॥

निपीडितोभतेस्तन्व्यसुप्ततत्पार्श्वपीडनात्
तत्रैवपिण्डितेशूलेसंपर्कगुल्ममादिशेत् । त-
त्रधान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रियाविधौ
वेद्यानांकृतयोग्यानाव्यधशोधनरोपणेः ।
अन्तर्भागस्यचाप्येतत्पच्यमानस्यलक्ष-
णम् ॥

अर्थ—विदाह लक्षणोंके अल्प होनेपर जब गुल्म बाहरकी ओर अत्यन्त तुंग और ऊंचा होताहै, रंग फाला पड़जाता है और इसके चारों ओरके किनारे कुछ कुछ लाल होजाते हैं, छूने में परवालसा माद्ममहो हाथ से दवाने पर फिर ऊंचा होजाय, ओरपास से दावनेपर स्तब्ध और मुस्त माद्ममहो, एकही स्थानपर गोलासा रहा आवे और वेदना होती हो तब इसे संपक्व समझना चाहिये ॥

ऐसे गुल्म रोग की व्यधन, शोधन, और

रोपण द्वारा चिकित्सा करनेका अधिकार सम्पूर्ण अन्न श्रोत्रोत्तं सम्पन्न धान्वन्तरीय चिकित्सकों की है अर्थात् उनको है जिन्होंने धन्वन्तरिके मतके अनुसार मूत्रों का चीरना फाड़ना आदि सीखा है ।

भीतर की ओरको पकनेवाले गुल्म के भी यही लक्षण होतेहैं ॥ यह अन्तर्विद्रधि के समानहोई क्योंकि अन्तर्विद्रधि पकती है और गुल्म नहीं पकताहै ॥

इत्क्रोडशूनतान्तःस्थेवहिःस्थेपार्श्वनिर्गतिः पक्वःस्रोतांसिसंक्लिद्यन्नजस्यूर्ध्वमथोऽपिचा स्वयंप्रवृत्तन्तदोपमुपेक्षेताहिताशनेः । दशा हृद्वादशाह्वारक्षन्भिपगुपद्रवान् ॥ अत ऊर्ध्वभतपानंसर्पिपःसविशोधनम् । शृद्धं सतिक्तसक्षौद्रंपयोगेसर्पिरिप्यते ॥

अर्थ—अन्तःस्थगुल्म अर्थात् अन्तर्विद्रधिमें हृदय और क्रोडमें सूजन होती है और वहिस्थगुल्ममें अर्थात् बाह्यविद्रधि में पसवाडोंसे निर्गमन होतीहै । गुल्म पक्व होकर स्रोतोंको गिलां करके ऊपर की ओर या नाँचकी ओर जातहै । जो दोष अपने आप निकलने लगे तो हितकारी पथ्य बताकर वैद्य को उचित है कि उपद्रवों की रक्षाकरता हुआ इसकी दस बारह दिवस तक उपेक्षा करे ॥ तदुपरान्त संशोधनघृत का व्यवहार करे।इसतरह जब रोगी शुद्ध हो जाय तब तित्त औषधियोंके साथ संस्कार किया हुआ घृत शहत मिलाकर देवे ।

कफजगुल्मका चिकित्सादि वर्णन । शीतलैगुहाभेःसिन्धुर्गुल्मेजातेकफात्मके॥

अवम्यस्याल्पकायाग्नेःकुर्याल्लघनमादितः अर्थ—शीतल, भारी और सिन्धु पदार्थों के अत्यन्त सेवन से जो कफात्मक गुल्म उत्पन्न होता है उस में रोगी वमन के अयोग्य और मन्दाग्नीयुक्त होजाता है इसलिये इस में प्रथम लघन कराना उचित है ।

वमनोपगरीगी ।

मन्दोऽग्निर्वेदनामन्दोगुरुस्तिमितकोष्ठता सोत्केशाश्चारुचिर्यस्यसगुल्मीवमनोपगः ॥

अर्थ—जिस गुल्मरोगी की अग्नि मन्दहो वेदना भी मन्द हो जिसके कोष्ठमें भारापन और गीलापन होवे, जिसको उत्केश और अरुचि होवे वह रोगी वमन के योग्यहोताहै उष्णरेवोपचार्यस्यकृतेवमनलंघने । यो ज्याचाहारससर्गोभेपजैः कटुतिक्तकैः ॥ सानाहसविवन्धंचगुल्मकठिनमुन्नतम् । दृष्ट्वादींस्वेदयद्युक्त्यास्विन्नञ्चयिनयेद्विपक्व ॥ लंघनोल्लेखनेस्वेदेकृतेऽग्नौसंप्रधुक्षिते । कफगुल्मोपिवेत्कालेसक्षारकटुकं घृतम् ॥ स्थानादपसृतंज्ञात्वाकफगुल्मं विरेचनेः । सस्नेहैर्वस्तिभिर्वाधशोधये

इशमूलकैः ॥

अर्थ—वमन और लघन करानेके पश्चात् उष्ण, कटु और तिक्त औषधियों को आहारमें मिलकर देवे ॥ आनाह और विवन्ध युक्त गुल्म जो कठोर और उंचाहो उसमें युक्तिपूर्वक स्वेदनदेवे, स्वेदन कर्मकेपीछे यह नीचा होजाताहै । लंघन, वमन और स्वेदनके पश्चात् जब अग्नि प्रदीप्त होजाय तब कफजगुल्म में क्षार और कटु

द्रव्यों से संस्कार किया हुआ घृतपान करावे ऊपर कहे हुए लघनादि उपचारों से जो कफ गुल्म अपने स्थान से चालित होजाय तो दशमूल के काथ में सिद्ध किया स्निग्ध विरेचन अथवा स्नहनवस्ति देकर उसका संशोधन करे कफजगुल्म में अन्यप्रयोग ॥

मन्दाग्रावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम्
शुलिकाः चूर्णनिर्घृहाः प्रयोज्याः कफगुल्मि
नाम् ॥ कृतमूलमहावास्तुकठिनं स्तिमितं
गुरुम् । जयेत्कफकृतं गुल्मं क्षाररिष्टाग्नि
कर्मभिः ॥

अर्थ.... कफ गुल्मरोगी की जो अग्नि मन्द पड़ गई हो, अधोवायु रुक गई हो और आमाशय स्निग्ध हो तो उसे गोली, चूर्ण और काथादिक देवे ॥ ऐसा कफगुल्म जो बहुत घीचम फैल गया हो, फडा हो, गंला हो, भारा हो उसको क्षार, अरिष्ट और अग्नि कर्म द्वारा शान्त करे ।

गुल्म में क्षारविधि ॥

दोषप्रकृतिगुल्मन्तु योगं युध्वा कफोल्बणे ।
बलदोषप्रमाणज्ञः क्षारं गुल्मे प्रयोजयेत् ॥
एकान्तरं द्वयन्तरं वा त्र्यहं विश्रम्य वा पुनः ।
शरीरबलदोषाणां राद्धेक्षणकोविदः ॥
श्लेष्माणं धुरां स्निग्धं तां सचीरघृताशिनः
भित्वा भित्वा शयानुक्षारः क्षरन्वात्क्षारय
त्यघः ॥

अर्थ.... कफाधिक्य गुल्म में दोष, प्रकृति, गुल्म और योग को देखकर क्षार का प्रयोग करे फिर एकदिन दोदिन अथवा तीनदिन ठहरकर देखे कि शरीर के

बल और दोषों में क्या अन्तर हुआ तब उसी के अनुसार फिर प्रयोग करे । क्षार अपनी क्षरणशक्ति से मांस, दूध, और घी खाने वाले मनुष्यके आशय को भेदकर मधुर स्निग्ध कफको अधोमार्ग द्वारा निकाल देता है ।

गुल्म में अरिष्ट ॥

मन्दाग्रावरुची सात्सम्ये मद्ये सस्नेहमदनता
म् । प्रयोज्या मार्गं शुद्धयर्थं मरिष्टाः कफगु-
ल्मिनाम् ॥

अर्थ—स्निग्ध भोजन करनेवाले कफ गुल्मरोगीकी यदि आंनिमन्द पड़ गई हो अरुचि हो वा मदिरापान सात्सम्य हो तो मार्गकी शुद्धिके निमित्त अरिष्टका प्रयोग करे । लङ्घनोच्छेदनः स्वैदेः सर्पिष्पानैर्विरेचनैः ॥ वस्तिभिर्गुलिकाचूर्णक्षाररिष्टमणैरपि ॥ श्लैष्मिकः कृतमूलत्वाच्चस्य गुल्मो न शाम्यति ॥ तस्य दाहो हृते रक्तेशरलोहादिभिर्भृतः । औष्ण्यात्क्षण्याच्च शमयेदपि गुल्मे कफानिलौतयोः शमाच्च संघातो गुल्मस्य विनिवर्तते ॥

अर्थ—लघन, वमन, स्वेदन, घृतपान, विरेचन, वस्ति कर्म, गोली, चूर्ण, क्षार और अरिष्ट इनमें किसीका प्रयोग करने से भी वह श्लैष्मिक गुल्म शान्त न हो जो जड़ पकड़ गया है तो प्रथम फस्त खोलकर फिर शर वा लोह से दग्ध करना उचित है । अग्नि अपनी उष्णता और तीक्ष्णता से गुल्मरोग में कफ और वादी को शान्त करदेती है और इन दोनों के शमन होने से गुल्म का गोल नष्ट होजाता है ।

दाहधन्वन्तरीयाणामत्रापिभिपजांवल
म् । क्षारप्रयोगेभिपजांक्षारतन्त्रविदां
वलम् ॥ व्याभिध्रदोपैवर्गामिश्रण्यएवक्रि-
याक्रमः । सिद्धान्तःप्रवक्ष्यामियोगान्
गुल्मानिवर्णान् ॥

अर्थ—धन्वन्तरि के मत के अनुसार जो
अग्नि कर्मादि जानते हैं, वेही दाह कर सकते
हैं और क्षारकर्मको जाननेवाले क्षारका
प्रयोग कर सकतेहै । जो गुल्म दो दो दोषों
से उत्पन्न हैं उनमें मिलाईई क्रिया कर-
ना चाहिये ।

अब हम गुल्मनाशक अनुभूत प्रयोगों का
वर्णन करते हैं ।

त्र्युपणादि घृत ।

त्र्युपर्णात्रिफलाधान्यंविद्वद्वाचव्यचित्रकैः
कल्कीकृतैःघृतंसिद्धंसक्षीरंवातगुल्मनुत् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, धनियां, वाय-
विडंग, चव्य, चीता इन सब को पीसकर
छगदी घनावै उसको दूध में मिलाकर घृत
ढालकर पकावै यह घृत वातगुल्म को दूर
करता है ।

त्र्युपणादि घृत की अन्याविधि ।

एतएवचकल्काःस्युःकषायःपञ्चमूलिकः।
द्विपञ्चमूलिकोवायतद्घृतंगुल्मनुत्परम् ॥

अर्थ—ऊपर कही औषधियोंका कल्क
और पंचमूल वा दशमूलके काथमें घृत
को सिद्ध करके देवै यह घृत भी गुल्म-
नाशक है ।

अन्यप्रयोग ॥

पट्टलंवापितत्सार्पिर्दुर्कराजयक्ष्माणि ।

प्रसन्नयावाक्षीरार्थःसुरयादाडिमेनवा ।
दध्नःश्रेणवाकार्यैघृतंमारुतगुल्मिनाम् ॥

अर्थ—राजयक्ष्ममें जो पट्टल घृत कहा
है उसे दूध के बदले में प्रसन्ना, सुरा, दा-
डिमरस वा दही की मलाई के साथ देवै तो
वातगुल्म शान्त होता है ॥

हिंवादि घृत ।

हिंसुसौवर्चलाजाजीविद्वदाडिमदीप्यकौ।
पुष्करव्योपधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः
शठीवचाजगन्धैलासुरसैश्चाविपाचितम् ।
शूलानाहहरंसापिदध्नाचानिलगुल्मिनाम्

अर्थ—हींग, सहचलनमक, जीरा, विडल-
वण, अनार, अजवायन, कूठ, त्रिकुटा, ध-
नियां, अमलवेत, जवाखार, चीता, कचूर, व-
च, अजगन्ध, इलायची, सुरसातुलसी इन
को पीसकर घी ढालकर दहीके साथ पकावै
यह घृत वातरोगियों के शूल और आनाह
को दूर करता है ॥

ह्युपादि घृत ।

ह्युपाव्योपपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः।
साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद्घृत-
म् ॥ पातुल्लदधिर्क्षीरकोलमूलकदाडिमैः
रसैस्तद्वातगुल्मघ्नंशूलानाहविमोक्षणम् ॥
योन्यशोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिञ्चरा
न् । वातहृत्पार्श्वशूलञ्चघृतमेतद्व्यपोहति ।

अर्थ—हाऊवेर, त्रिकुटा, छोटा जीरा, च-
व्य, चीता, सेंधानमक, कालाजीरा, पीपला-
मूल, अजवायन इन सब को पीस लेवै और
विजौरे का रस, दही, दूध, वेरकारस, मूली
का रस, अनारका रस इन सब को मिलाकर

घृत पकावे यह घृत यातगुल्म, शूल, आनाह, धोन्मर्श, ग्रहणी दौष, श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर, वातरोग और पार्श्वशूल सबको नष्ट कर देता है ।

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पल्याःपिचुरध्यधोदादिमाद्विपलंप-
लम् । धोन्वात्पञ्चघृताच्छुण्ड्याकर्पञ्जी-
रंचतुर्गुणम् ॥ सिद्धमेतैर्वृतंसद्योवातगु-
ल्मंचिकित्तिस्ति ॥ योनिशूलंशिरःशूलम-
र्शासिविषमज्वरम् ॥

अर्थ—पीपल तीन तोला, अनार आठ तोला, धनियां चार तोला, घृत बीस तोला सौंठ दो तोला और दूध अस्ती तोला इन सब को सिद्ध करने से जो घृत तयार होता है यह वातगुल्म को तत्काल नष्ट कर देता है । इसी घृत के सेवनसे योनिशूल, शिरः-शूल, अर्श, विषमज्वर दूर होजाते हैं ।

घृतानामौषधगुणायएतेपरिकीर्तिताः ।
तेचूर्णयोगावर्त्यस्ताःकृपायास्तेचगुल्मि-
नाम् ॥

अर्थ—घृत सिद्ध करने के निमित्त जो औषधों के गुण ऊपर वर्णन किये गये हैं, ये ही औषधें चूर्ण, वार्ति और काथ द्वारा गुल्म रोगियों को दीजाती हैं ।

वर्तिप्रयोग ।

कोलदादिमधर्माभ्युसुरामण्डाम्लकाञ्जि-
कैःशूलानाहनुदःपेयावीजपूरसेनवा ॥
चूर्णानिपातुलंगस्यभावितस्यरसेनवा ।
कुर्याद्वर्तिःसगुडिकागुल्मानाहार्तिशान्तये ॥

अर्थ—धेरका रस, अनारका रस, इन

को गरमजल, सुरामण्ड, अम्लकाञ्जी वा वि-
जौरके रसके साथ पान करने से आनाह दूर होता है । अथवा विजौरके चूर्ण में वि-
जौर के रसकी भावना देकर वर्ती या गोली बनाकर सेवन करे तो गुल्म, आनाह और अर्श ये रोग शान्त होजातेहैं ॥

हिङ्गुवादि चूर्ण विधि ।

हिङ्गुत्रिकटुकांपाठांहयुपामंभयांशटीम् ।
अजमोदाजगन्धेचतिन्तिदीकाम्लवेतसौ
दादिमंपुष्करंधान्यमजार्जाचित्तकंबचाम्
द्वीक्षारोलवणेद्वेचचव्यंचकत्रयोजयेत् ॥
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेप्यनल्ययम् ।
मागभक्तमथवापेयंमधेनोष्णोदकेनवा ॥
पार्श्वहृद्वास्तिशूलेपुगुल्मेवातकफात्मके ॥
आनाहेमूत्रकृच्छ्रेयाशूलेचगुदयोनिजे ॥
ग्रहण्यशोविकारेपुष्टीन्हिपाण्ड्वामयेऽरु-
चौ । उरोविबन्धेकासेचाहिकाश्वासेगल-
ग्रहे ॥ भावितंमातुलुङ्गस्यचूर्णमेतद्रसेनवा ।
बहुशोगुलिकाःकार्याःकार्षुकाःस्युस्ततोऽ-
धिकम् ॥

अर्थ—हींग, त्रिकुटा, पाठा, हाज्वेर, हरड, शटी, अजमोद, अजगन्ध, इमली, अमलवेत, अनार, कूठ, धनिया, कालाजीरा चीता, वच, दोनों क्षार, दोनों नमक, और चव्य इन सबका चूर्ण कूट लेवे । इस चूर्ण को अनुपानके साथ सेवन करे अथवा भोजन करनेसे पहिले मद्य वा उष्णजलके साथ लेवे इस चूर्णके सेवन करनेसे पार्श्वशूल, हृत्शूल, धरितशूल, वातकफात्मक गुल्म, आनाह, मूत्रकृच्छ्र गुदशूल, योनिशूल, ग्रह-

णी विकार, अर्शविकार, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि उरोविवन्ध, खांसी, हिचकी, श्वास, गलग्रह दूर होजातेहैं । इसी चूर्णको विजैरे के रसमें घोटकर गोलियां बनालेवै ये गोलियां चूर्णकी अपेक्षा भी अधिक गुणकारीहैं।

वातगुल्म में अन्य प्रयोग ।

मातुलङ्गरसोहिगुदादिमंविडसैन्धवे ।

सुरामण्डेनपातव्यंवातगुल्मरुजापहम् ॥

अर्थ—विजैरेका रस, हींग, अनार, विडनमक, सेंधानमक इनको सुरामण्डके साथ पान करनेसे वातगुल्म नष्ट होजाताहै ॥

शक्यादिचूर्ण ॥

शटीपुष्करहिंम्वलवेतसक्षारचित्रकान् ॥

धान्यकञ्चयमानाञ्चविडङ्गसैन्धववंचाम् ॥

सचव्यपिप्लीमूलमजगन्धःसदाडिमम् ॥

अजाजीचाजमोदाञ्चचूर्णकृत्वाभयोजयेत् ॥

रसेनमातुलङ्गस्यमधुयुक्तेनवापुनः ॥

भातितं गुडिकाकृत्वासुपिष्टां कालसम्भिताम् ॥

गुल्मप्लीहानमा नाहंश्वासकासमरोचकम् ॥

हिकाहृद्रोग मर्शासिबिबिधान्शिरसोरुजान् ॥

पांइ धामयकफोत्क्लेशसर्वजाश्चप्रवाहिकाम्

पार्श्वहृद्रोस्तशूलश्चगुडिकेपाव्यपोहति ॥

अर्थ—शटी, पुष्कर, हींग, अमलवेत

जवाखार, चीता, धनियां, अजवायन, वाय-

विडग, सेंधानमक, वच, चव्य, पीपलामूल,

अजगंध, अनार, कालाजीरा अजमोद,

इनका चूर्ण बनाकर सेवनकरै । अथवा

विजैरे के रसकी भावना देकर शहत मि-

लावै और छोटे बेर की बराबर गोली बनावै

यह गोली गुल्म, प्लीहा, आनाह, श्वास,

खांसी, अरुचि, हिचकी, हृद्रोग, अर्शरोग, शिरोवेदना, पाण्डुरोग, कफोत्क्लेश, सब प्रकार के प्रवाहिका, पार्श्वशूल, हृदशूल, वस्तिशूल रोगों को दूर करती है ।

अन्यप्रयोग ।

नागरार्द्धपलंपिष्टोद्वेपलेच्छित्तस्यच ।

तिलस्यैकंगुडपलंक्षीरेणोष्णेनवापिबेत् ॥

वातगुल्ममुदावर्तयोनिशूलञ्चनाशयेत् ॥

अर्थ—सोठ दो तोले, बिना छिलके के

तिल आठतोले, गुड चार तोले इनको गरम

दूधके साथ पानकरै तो वातगुल्म, उदावर्त्त

और योनिशूल दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

पिबेदरण्डकंतेलंवारुणीमण्डामिश्रितम् ॥

तदेवतेलंपयसावातगुल्मी पिबेकरः ।

श्लेष्मण्यनुवलेपूर्वमतंपित्तानुगोपरम् ॥

अर्थ—श्लेष्मानुबंधी वातगुल्म में वारुणी

मण्डमिश्रित अरंडका तेल पान करै और

जो पित्तानुबन्ध होवै तो दूधके साथ एरंड

का तेल पान करै ।

रहसनका दूध ।

साधयेत्सिद्धशुष्कस्यलथुनस्यचतुष्पलम्

क्षीरेजलाष्टगुणितेक्षीरशेषञ्चनापिबेत् ॥

वातगुल्ममुदावर्तयद्दध्रुसंविपमञ्चरम् ।

हृद्रोगांविद्वर्धांशोपंसाधयत्याशुतत्पयः ॥

अर्थ—सिद्ध करके सुखाये हुए रहसन

चार पललेकर दूध और उससे अठगुनाजल

मिलाकर पकावै जब पानी जलजाय और

दूध शेष रहजाय तब इसको छानकर पीवै

तो वातगुल्म, उदावर्त्त, गृध्रसी, विषम

ज्वर, हृद्रोग, विद्वधी, शोष, ये सब रोग दूर होजाते हैं ।

तैलंप्रसन्नागोमूत्रमारनालयवाग्रजः ।
गुल्मजठरमानाहपीतमेकत्रसाधयेत् ॥

अर्थ—तेल, वारुणीमण्ड, गोमूत्र, कांजी जवाखार इनको सिद्ध करके पीवे तो गुल्म रोग, जठररोग और आनाह दूर होजाते हैं,

शिलाजीन का प्रयोग ॥

पञ्चमूलकपायेणसक्षीरेणशिलाजतु ।
पिवेत्तस्यप्रयोगेणवातगुल्मात्प्रमुच्यते ॥

अर्थ—पञ्चमूल के काथ और दूध के साथ शिलाजीन का सेवन करे तो इस प्रयोग से वातगुल्म नष्ट होजाते हैं ।

अन्यप्रयोग

वाद्य्यूपेणपिप्पल्यामूलकानारसेनवा ।
शुक्त्यास्त्रिगंधमुदावर्ताद्वातगुल्मादिमुच्यते

अर्थ—पीपल के काथ वा मूली के रसके साथ खैरटी का सेवन करे तो उदावर्त और वात गुल्मादि रोग दूर होजाते हैं ॥

गुल्ममें वस्तिविधान ॥

शूलानाहविचन्धार्तस्येदयेद्वातगुल्मिनम् ॥
स्वेदैःस्वेदविधावुक्तैर्नाडीमस्तरशङ्करैः ॥

वस्तिकर्मपरंविधातुगुल्मघ्नतद्विभारुतम् ।
स्वेस्थानेप्रथमद्वित्वासत्रोगुल्ममपोहाति ।
तस्मादभीक्ष्णशोगुल्मानिरूहैःसानुवास-
नैः । प्रयुज्यमानैःशाम्यन्तिवातापित्तक-
फात्मकाः ॥ गुल्मघ्नविधिषाष्टाःसिद्धाः

सिद्धिपुवस्तयः ॥

अर्थ—वातगुल्मरोगी यदि शूल, आनाह और विचन्ध से पीडित होतो उस स्वेदा-

ध्याय में कहीहुई नाडी, प्रस्तर और शंकर, स्वेद द्वारा स्वेदन करे । वस्तिकर्म इस वातजगुल्म में बहुत श्रेष्ठ है, यह वायु को उसके निजस्थानमें जीतकर गुल्म को दूर कर देताहै । इसलिये बारबार निरूहण और अनुवासन वस्तिर्षोका प्रयोग करने से वातज, पित्तज और कफजगुल्म शान्त होजातेहैं सिद्धिस्थानमें अनेक प्रकार की गुल्मनाशक अनुभूत वस्तिर्षो वर्णनकी गईहैं
गुल्मपर तैलाधिधान ॥

गुल्मघ्नानिचतैलानिबक्ष्यन्तेवातरोगिके ॥
तानिमारुतगुल्मेपुपानाम्यज्ञानुवासनैः ।

प्रयुक्तान्याशुसिद्धितैलैर्बनिलजित्स्व-
रम् ॥

अर्थ—वातरोगाण्णाय में सब प्रकार के गुल्मनाशकतैल वर्णन किये गये हैं । वात-गुल्म में पान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा इन तैलों का प्रयोग करने में वात-गुल्म बहुत शीघ्र नष्ट होजाता है । ये तैल विशेष करके वातनाशक होते हैं ॥

गुल्मपर घृताधिधान ॥

नीलिनीचूर्णसंयुक्तपूर्वोक्तघृतमेववा ।
समलायप्रदेयस्याच्छोधिंनवातगुल्मिने
नीलिनीत्रिहृतादन्तीपथ्याफाम्पिल्यकैः
सहाशोधनार्थंघृतंदेयंसविडभारनागरम्

अर्थ....उस वातगुल्मरोगी को जो मल-युक्त होताहै नीलिनीका चूर्ण मिलाहुआ घृत अथवा पूर्वोक्तघृत शोधन के निमित्त देना चाहिये ॥

नीलिनी, निसोप, दन्ती, हरद, कर्वाला,

बिडनमक, जवाहार और सोंठ इनकेसाथ सिद्ध कियाहुआ घृत संशोधनके निमित्तदेवै॥

नीलिन्यादि घृत ॥

नीलिनीत्रिवृतांरास्नांवालाकटुकरोहिणी मू पचेद्विद्विज्याग्रीञ्चपलिकानिजला-टके ॥ तेनपादावशेषेणघृतप्रस्थंविपाचयेत् । दध्नःप्रस्थेनसंयोज्यसुधाक्षीरपलेन च ॥ ततोघृतपलंदद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम् । जीपंसम्यग्विरिक्तञ्चभोजयेद्रसभोजनम् ॥ गुल्मकुष्ठोदरव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयञ्चरान् । श्वित्रंश्लीहानमुन्मादं घृतमेतद्रथपोहति ॥

अर्थ—नीलिनी, निसोध, रास्ना, खरैटी, कटकी, वायाविडंग, कटेरी, इन सबको एकएक पल्लेवै और एक आठक जल में इन्हे पकावै जब चौथाई जल रहजाय तब इसमें एकप्रस्थ दही और चार तोले सेडुंड का दूध मिलाकर एकप्रस्थ घी पकावै ॥ इस घृतमें से एकपल घृत यवागूमण्डमें मिलाकर रोगीको देवै । जब औषध पचजाय और रोगीको अच्छीतरह विरेचन होजाय तब मांसरसका भोजन करावै । यह घृत गुल्म, कोढ़, उदररोग, व्यंग, शोफ, पाण्डुरोग, ज्वर, श्वित्रकुष्ठ, प्लीहा, और उन्माद रोगोंको शान्त करता है ।

वातगुल्ममें पथ्यादि विधि ॥
कुक्रुदाथमयूराश्चत्तिरिक्कौञ्चवर्त्तकाः ।
शालयोमदिरासर्पिर्वातगुल्मभिपग्नितम्
हितमुष्णद्रवस्निग्धभोजनंवातगुल्मनाम् ॥
समण्डवारुणीपानंपर्कवाधान्यर्कैजलम् ॥

मन्देऽनौवर्द्धतेगुल्मोदक्षिचाग्नौप्रशाम्य-
ति । तस्मादन्नातिसैहिल्यं कुर्यान्नातिवि-
लंघितम् ॥ सर्वत्रगुल्मेप्रथमेस्त्रहस्वेदोप-
पादिते । याक्रियाक्रियतेसिद्धिसंसायाति
नविरुत्ते ॥

अर्थ—मुर्गा, मोर, तीतर, कौंच, बटेर, शालीचांबल, शराव, और घृत ये सब वात-गुल्ममें हितहै । इसरोगमें उष्ण, पतल और स्निग्ध भोजन हितहै । मण्डयुक्त मं-दिरा वा धनियां डालकर औटाया हुआ जलभी हितहै । अग्निके मन्द होनेपर गुल्म बढ़ताहै और प्रदीप्त होनेपर शान्त होताहै, इसलिये न पेटभरकर खानाही चाहिये न लंघनही करना चाहिये । गुल्मरोगोंमें प्रथम ही स्नेहन-स्वेदन कर्म करके जो क्रियाकी जाती है उससे रोग जाताहै और जो क्रिया रूक्ष व्यक्तिकी कीजाताहै वह निष्फलहोती है

पित्तगुल्मकी चिकित्सा ॥

भिपगात्ययिकम्बुध्वापित्तगुल्ममुपाचरे
त् । विरेचनिकसिद्धेनपयसासर्पिपापिवा

अर्थ—पित्त गुल्मको आययिक समझकर चिकित्सा करना चाहिये इस रोगमें विरेचन-कर्ता द्रव्यों के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत वा दूध बहुत हितकारी है ॥

रोहिण्यादि घृत ।

रोहिणीकटुकानिम्बंमधुर्कात्रिफल्यात्वचः ।
कार्पिकात्रायमाणाचपट्टालात्रित्तापले ॥
द्विपलञ्चमसूराणांसाध्यमष्टगुणंमसि
घृताच्छेषघृतसमंसर्पिपथचतुष्पलम् ॥
पिवेत्संमूर्च्छितंतनगुल्मःशाम्यतिपैतिक
ज्वरस्तृष्णाचशूलं चभ्रममूर्च्छाश्चिन्त्या

अर्थ—कुटकी, नीमकी छाल, महुआ, त्रिफलाका छिलका, और त्रायमाणा ये सब एक एक पललेवै, परवल और निशोध दो दो पल ले दो पल मसूर इन सबको अठगुने जल में औटावै, जब घृत के समान शेष रहजाय तब छानकर इसमें चारपल घृतको पकावै इस घृतको सेवन करने से पित्तिक गुल्म, ज्वर तृष्णा, शूल, भ्रम, मूर्च्छा और अरुचि ये सब शान्त होजाते हैं ।

त्रायमाणाद्यघृत ।

जलेदशगुणेसाध्यन्त्रायामाशाचतुप्पलम् । पञ्चभागस्थितंपूतकल्कं संयोज्य कार्पिकैः ॥ रोहिणीकडुकामुस्तेत्रायमाणादुरालभा । कल्कैस्तामलकीविराजी वन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ रसस्यायलकानाञ्चक्षीरस्यचघृतस्यच । पलानिपृथगष्टाष्टादश्वामस्यग्विपाचयेत् ॥ पित्तरक्तभङ्गुल्मवीसर्पपित्तिकज्वरम् । हृद्रोगं कालाङ्गुष्ठहृन्त्यादेतद्घृतोत्तमम् ॥

अर्थ—चारपल त्रायमाणको दसगुने जलमें औटावै, जब पांचवांभाग जलका रहजाय तब उसे उतारकर छानले फिर इसमें कुटकी, मोथा, त्रायमाणा, जवासा, भूय-आंवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन, उत्पल, इनको पसिकर उसमें डालदे और आंवले का रस आठ पल, मिलाकर अच्छी तरहसे पकावै । इस घृतके सेवन करने से पित्तिक गुल्म, रक्तजगुल्म विसर्प, पित्तिक ज्वर हृद्दोग कामला, फोड ये सब रोग दूर होजाते हैं ।

आंवलकादि घृत ।

रसेनामलकेभूषांघृतपादंविपाचयेत् । पथ्यापादम्पिवेत्सर्पिस्तत्सिद्धांपित्तगुल्मनुत् ॥

अर्थ—ईख और आंवलेके रससे चौथाई घी और घी से चौथाई हरडका चूरण इनको मिलाकर औटावै । इस घृतका सेवन करनेसे पित्तिकगुल्म जाता रहता है ।

द्राक्षादि घृत

द्राक्षांमधुकंखर्जूरावेदारीसशतावरीम् । परूपकाणित्रिफलांसाधयेत्पलसंमिताम् ॥ जलाढकेपादशेषरसमामलकस्यच । घृतमिधुरसंक्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ साधयेत्घृतसिद्धंशफेरासोद्रपादिकम् ॥ प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥

अर्थ—दाख, महुआ, खिजूर, विदारीकन्द, सितावर, फालसे और त्रिफला ये सब एक एक पल लेवै और एक आठक जलमें भरकर अग्निपर रखदे जब चौथाई शेष रह जाय तब उतार कर छानले । फिर इसमें आंवले का रस, घी, ईखकारस, दूध और घृत से चौथाई हरडका कल्क डालकर सबका पाक करले । जब घी तयार होजाय तब उसमें चौथाई चीनी और शहत डालकर सेवन करै तौ पित्तगुल्म तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण विकार नष्ट होजाते हैं ।

वासाघृत ।

वृषंसमूलमापोध्यपचेदष्टगुणेजले । शेषेऽष्टभागतस्यैवपुष्पकल्कप्रदापयेत् ॥ तेन सिद्धंघृतंशतिसर्पौद्रपित्तगुल्मनुत् । रक्तपित्तज्वरश्वासकासहृद्दोगनाशनम् ॥

अर्थ—अइसाको जड समेत कूटकर अ-
टगुने जलमें काथ करै जब आठवां भाग जल
का रहजाय तब उसमें उसीके फूलों का कल्क
डाँढ और इसमें घी डालकर पकावै । फिर
ठंडा होने पर शहत मिलाकर इसका सेवन
करै तो पित्तगुल्म, रक्तपित्त, अजर, श्वास,
खांसी और हृदयरोग सब शान्त होजातेहैं ।

दूसरा त्रायमाण घृत ।

द्विपलन्त्रायमाणायाजलद्विप्रस्थसाधितम्
अष्टभागस्थितंपूतकोष्णक्षीरसमांपिवेत् ॥
पिबेदुपरितस्योष्णक्षीरमेवयथाचलम् ।
तेननिर्हृतदोपस्यगुल्मःशाम्यतिपैत्तिकः ॥

अर्थ—दो पल त्रायमाण को दो प्रस्थ
जलमें औटावै, जब अष्टमभाग शेष रह
जाय तब छानकर बराबरका दूध मिला
कर कुछ गरम गरम का पान करै । फिर
यथाशाक्त ऊपरसे गरम दूध पीवै, ऐसा
करने से दोष दूर होकर पित्तज गुल्म शा-
न्त होजाता है ।

पैत्तिक गुल्ममें अन्य उपचार ।

द्राक्षाभयारसंगुल्मेपैत्तिकंसुडंपिवेत् । लि
क्षात्कम्पिल्यकंवापिविरेकार्थमधुद्रवम् ॥ शू
लप्रशमनोऽभ्यङ्गःसर्पिपापित्तगुल्मिनाम् ।
चन्दनाद्येनतैलेनतैलेनमधुकस्यवा । ये
चपित्तज्वरार्तानांसत्तिकाःक्षीरवस्तयः
हितास्तेपित्तगुल्मिभ्योवक्ष्यन्तेयेचसि-
द्धिषु ॥ शालयोजाङ्गलंमांसद्रवार्जापय
सीघृतम् । खर्जूरामलकंद्राक्षादादिर्मम
परुषकम् ॥ आहारार्थम्याक्तन्व्यंशाना
र्थेसलिलंभृतम् ॥ बलाविदारिगन्धार्थः

पित्तगुल्मचिकित्सितम् ॥ आमाम्बये
पित्तगुल्मेसामेवाकफत्रातिके । यवा-
ग्नाभिःखडैर्यूपैःसन्धुक्ष्योऽग्निविलङ्घिते ।
शममकोपौदौपाणांसर्वेषामग्निसांश्रितौ ।
तस्मादाग्निसदारक्ष्येन्निदानानिचवर्जयेत् ॥

अर्थ—पैत्तिकगुल्ममें विरेचनके लिये

किसमिस, हरड और गुडका काथ पीवै,
अथवा कर्वालमें शहत डालकर चाटे । पि-
त्तगुल्म रोगियोंके शूलनाश करनेको घृतका
अभ्यंग, तथा चन्दनाद्य तैल वा सु-
लहटीके तैलका अभ्यंग करै । पित्तज्वरार्थ
रोगियोंके लिये जो तिक्त द्रव्योंकी क्षीर
वस्ति, तथा वे वस्तिपांजो सिद्धस्थान में
वर्णन की जायगी ये सब पित्तगुल्ममें हित-
कारी होती हैं । शालीचावल, जांगल पशु-
ओंका मांस, गोंवकरी का दूध, घी, गिन्नू,
आंवला, दाख, अनार, फालसा, इनका
पष्य देवै और पीनेके लिये औटायादृशा
जलदेवै । खरैटी और विदारिगन्धादि ग-
णोक्त औषधियों द्वारा पित्त गुल्मकी वि-
किरसा काजानी है । आमाम्बिन पित्तगुल्म
में और आमाम्बिन कककल गुल्ममें दहन
कारके यवाग् और गड्युओं का मदन पत्र
के अक्षिद्रो प्रदाय करै । सम्पूर्ण दौषों का
द्वन्द्व वा प्रकोप अग्नि के आश्रितहैं इम-
लिये अग्निर्वा ममानकारके लिये सदा प्रयत्न
काम्य आरिष्ये और त्रिन कारणों से रोग
दग्गन दृष्टात् उनका मदा त्यागदेना आदिष्ये
कृत्तगुल्मका निविरसाक्रम ॥
वपनाशायवमनमंदाधानकपयुग्मिनांरिनः

अथस्विन्नशरीरायगुल्मेशैथिल्यमागतो प-
रिचेष्ट्यप्रदीप्तास्तुबल्वजानथवाकुशान्।
मिपयकुम्भेसभावाप्यगुल्मंघटमुखांक्षिपेत् ॥
सङ्गृहीतांतयदागुल्मस्तदाघटमथोद्धरेत् ।
वह्नान्तरंततःकृत्वाभिन्द्याद्गुल्मप्रमाण
वित् ॥ विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभमपी
दयेत् । मृद्रीयाद्गुल्ममेवैकंनत्वन्नहृदयं
स्पृशेत् ॥

अर्थ—वमनोपयोगी कफगुल्मरोगी को
वमन देवें ॥ स्नेहन और स्वेदन देने से
जब गुल्म शिथिल पडजाय तब गुल्म स्था-
नपर यत्र लपेट देवै, फिर एक घडे में य-
ल्वजतृण वा कुशाकी आग जलाकर गुल्म
स्थान में उस घडेका मुख लगादेवै, जब
गुल्म इकट्ठा होजाय तब घडे को उठाले
और बल को हटाकर गुल्मका फैलाव वा
विस्तार देखकर उसका भेदन करे, तथा
विमार्ग, अजपद और आदर्श इनमें से कि-
सी एक शस्त्र से केवल गुल्मही का प्रपीडन
करे, परन्तु आँतों वा हृदय पर किसी प्र-
कार का आघात न होने पावे ।

कफगुल्म में स्वेदन विधि ।

तिलैरण्डातसीवीजसर्षपैःपरिलिप्यच ।
श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैःसुखोष्णैःस्वेदयेद्भि-
पक् ॥

अर्थ—तिल, अरण्ड, अलसी और सरसों
का लेप करके ऊपर से सुहाताहुआ गरम
लाँहे का पात्र फेर कर स्वेदन करे ॥

दशमूली घृत ।

सन्धोषक्षारलवणंदशमूलीभृतंघृतम् ।

कफगुल्मञ्जयत्याशुसर्हिगुविटदाडिमम् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, जवाखार, सेंधानमक, औ-
र दशमूल इनके काथमें घृतको पकावै इस
घृतको हींग, विडनमक और अनारके रस
के साथ सेवन करे तो कफगुल्म शांघ्ही
जाता रहताहै ।

भल्लातकादि घृत ।

भञ्जातकानां द्विपलंपञ्चमूलंपलोन्मितम् ।
साध्यविदारीगन्धाद्यमापोध्यसलिलाड
कैः ॥ पादशेपेरसेतस्मिन्पिप्पलीनागरं
वचाम् । विडङ्गसन्धवांहिंगुयावशुकांविडं
शटीम् ॥ चित्रकमधुकरास्नाम्पिप्टाकर्प
समीभपक् । प्रस्थञ्चपयसःकृत्वाघृतप्र
स्थविपाचयेत् ॥ एतत्भल्लातकघृतंकफ
गुल्महरंपरम् । ग्रीहपाण्ड्वामयश्वासग्रह
णीरोगकासनुत् ॥

अर्थ—शुद्ध कियेहुए भिलाये दो पल,
पञ्चमूलका प्रत्येक द्रव्य एक एक पल,
और विदारीगन्धादिद्रव्य इनको कूटकर
एक आठक जलमें ओटावै, जब चौथाई
शेपरहजाय तब उसमें पीपल, सोंठ, वच,
वायविडंग, सेंधानमक, हींग, जवाखार,
विडनमक, शटी, चीता, मुलहठी, रास्ना,
प्रत्येक एक एक कर्प, एक प्रस्थ दूध, एक
प्रस्थ घी इन सबको मिलाकर पकावै ।
यह भञ्जातकघृत कफगुल्मके दूर करने में
अत्यन्त उत्तमहै तथा प्लीहा, पाण्डु रोग
श्वास और ग्रहणी रोगोंको भी दूर करताहै
पञ्चकोल घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचन्यचित्रकनागरैः ।

पालिकैःसयत्रक्षारैःघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥
क्षीरप्रस्थञ्चतत्सर्पिर्हन्तिगुल्मंफात्मकम् ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंघ्नीहकासज्वरापहम् ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार एक एक पल लेवै और इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, यह घृत कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, घ्नीहा, खांसी और ज्वर इनको दूर करता है ।

मिश्रकस्नेह ।

त्रिवृतांत्रिफलादन्तीदशमूलंपलोन्मितम्
जलेचतुर्गुणेष्वत्वाचतुर्भागस्थितंरसम् ॥
सर्पिरेरण्डजंतैलंक्षीरञ्चैकत्रसाधयेत् ।
ससिद्धोमिश्रकस्नेहःसक्षौद्रःकफगुल्मनुत्
कफवातविबन्धेषुकुष्ठघ्नीहोदरेपुच । प्रयो
ज्योमिश्रकःस्नेहोयोनिशूलेपुचाधिकम् ॥

अर्थ—निसोप, त्रिफला, दन्ती और दशमूल इनको एक एक पल लेकर चौगुने जलमें पकावै जब चौथाई रहजाय तब इसको छानकर इसमें घी, अंडीका तेल और दूध मिलाकर पकावै । इस तरह यह मिश्रक स्नेह तयार हांताहै, इसको शहत मिलाकर सेवन करनेसे कफगुल्म, कफ, वात, विबन्ध, कुष्ठ, प्लीहा और उदररोग जाते रहते हैं ॥

कफगुल्ममें वैरेचनिक औषध ।

यदुक्तंवातगुल्मघ्नंस्ननीलिनीघृतम् ।
द्विगुणंतद्विरेकार्यंमयोज्यंफगुल्मिनाम्
सुधाक्षीरद्रवेचूर्णत्रिवृतायाःसुभाषितम् ॥
फार्पिकंमधुसर्पिर्भ्यालीद्वासाधुविरि-
च्यते ॥

अर्थ—घातगुल्ममें जो वैरेचनिक नीलिनी घृत वर्णन किया गयाहै उसकी दूनीमात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवै । अथवा त्रिवृताके चूर्णमें सेण्डुडके दूधकी भावना दे कर घी और शहत मिलाकर एक कर्ष चा-
टे सौ उससे अच्छीतरह विरेचन होजाताहै ॥

हरीतक्यादि प्रयोग ।

जलद्रोणोविपक्तव्याविंशतिःपञ्चचाभयाः
दन्त्याःपलानितावन्तिचित्रकस्यतथैवच ॥
अष्टभागस्थितंश्चरसंपूतमधिकिपेत् ॥
दन्तीसमंगुडंपूतंक्षिपेत्त्रयाभयाश्चताः ॥
तैलार्धकुडवञ्चैवत्रिवृतायाश्चतुष्पलम् ।
चूर्णितंपलमेकञ्चापिप्लीविश्वभेषजम् ।
तत्साध्यंलेहवच्छीतेतस्मिंस्तैलसमंमधु ।
क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकन्त्वगोलापत्रकेशरान् ॥
ततोलेहपलंलीद्वाजग्ध्वाचैकांहरतीकी-
म् । सुखंविरिच्यतोस्निग्धोदोषप्रस्थ
मनामयःगुल्मंश्वयथुमशीसिपाण्डुरोगम-
रोचकम् ॥ हृद्रोगंग्रहणीदोषंफोमलांवि
पमज्वरम् । कुष्ठंप्लीहानमानाहमेतान्घ्न-
न्त्युपसेवितः । निरत्ययः क्रमश्चास्याद्र-
बोमांसरसोदनः ॥

अर्थ...पच्चीसहरड, दन्ती पच्चीसपल, चीता पचांस पल इनको एक द्रोण जलमें पकावै, आठवां भागशेष रहनेपर उसे छान लेवै, तदनन्तर गुड पच्चीसपल और बेसव हरड कूटकर उसमें डालदे और आधा कुडव तेल उसमें गेर देवै तथा निसोप चार पल, पीपल और सोंठ एक एक पल डालकर धीरे धीरे पकावै जब पककर ल्हेईसी

ग्धस्विन्नशरीरायगुल्मेशैथिल्यमागतो प-
रिवेष्ट्यप्रदीप्तास्तुवल्बजानथवाकुशान्।
मिषक्कुम्भेसभावाप्यगुल्मघटयुखेक्षिपेत् ॥
सदृग्हीतायदागुल्मस्तदाघटयथोद्धरेत्।
बह्वान्तरंततःकृत्वाभिन्धाद्गुल्मप्रमाण
चित् ॥ विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभंप्री
हयेत्। मृद्रीयाद्गुल्मपेवैकंनत्वंन्नहृदयं
स्पृशेत् ॥

स्पृशेत् ॥

अर्थ—वमनोपयोगी कफगुल्मरोगी को
वमन दें ॥ स्नेहन और स्येदन देने से
जब गुल्म शिथिल पड़जाय तब गुल्म स्था-
नपर बल्ल लपेट दें, फिर एक घडे में व-
ल्वजतृण वा कुशाकी आग जलाकर गुल्म
स्थान में उस घडेका मुख लगादेवै, जब
गुल्म इकट्ठा होजाय तब घडे को उठाले
और बल्ल को हटाकर गुल्मका फैलाव वा
विस्तार देखकर उसका भेदन करें, तथा
विमार्ग, अजपद और आदर्श इनमें से कि-
सी एक शस्त्र से केवल गुल्महीका प्रपीडन
करें, परन्तु आंतों वा हृदय पर किसी प्र-
कार का आघात न होने पावै।

कफगुल्म में स्वेदन विधि।

तिलैरण्डातसीवीजसर्पपैःपरिलिप्यच ।
श्रेष्मगुल्ममयःपात्रैःसुखोष्णैःस्वेदयेद्भि-
पक् ॥

अर्थ—तिल, अरण्ड, अलसी और सरसों
का लेप करके ऊपर से सुहाताहुआ गरम
लेंहे का पात्र फेर कर स्वेदन करें ॥

दशमूली घृत।

सन्धोपत्तारलवणंदशमूलीशृतघृतम् ।

कफगुल्मञ्जयत्याशुसर्हिगुविट्टदाडिमम् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, जवाखार, सेंधानमक, औ-
र दशमूल इनके काथमें घृतको पकावै इस
घृतको हींग, विटनमक और अनारके रस
के साथ सेवन करें तौ कफगुल्म शीघ्रही
जाता रहताहै।

भल्लातकादि घृत।

भञ्जातकानां द्विपलंपञ्चमूलंपलोन्मितम् ।
साध्यंविदारीगन्धाद्यमापोध्यसलिलाढ
कैः ॥ पादशेभेरसेतस्मिन्पिप्पलीनागरं
वचाम् । विडङ्गसन्धवंर्हिगुयावशुकांविडं
शटीम् ॥ चित्रकंमधुकंरास्नाम्पिष्ट्वाकर्प
समंभिषक् । प्रस्थञ्चपयसःकृत्वाघृतम
स्थंविपाचयेत् ॥ एतत्भल्लातकघृतंकफ
गुल्महरंपरम् । ग्रीहृषाण्ण्वामयश्वासग्रह
णीरोगकासनुत् ॥

अर्थ—शुद्ध कियेहुए भिलाये दो पल,
पञ्चमूलका प्रत्येक द्रव्य एक एक पल,
और विदारीगन्धादिद्रव्य इनको कूटकर
एक आढक जलमें ओटावै, जब चौथाई
शेपरहजाय तब उसमें पीपल, सोंठ, वच,
यायविडंग, सेंधानमक, हींग, जवाखार,
बिडनमक, शटी, चीता, मुलहटी, रास्ना,
प्रत्येक एक एक कर्प, एक प्रस्थ दूध, एक
प्रस्थ घी इन सबको मिलाकर पकावै।
यह भल्लातकघृत कफगुल्मके दूर करने में
अत्यन्त उत्तमहै तथा प्लीहा, पाण्डु रोग
श्वास और ग्रहणी रोगोंको भी दूर करताहै
पञ्चकोल घृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचन्याचित्रकनागरैः।

पालकैःसयवहारैःघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥
क्षीरप्रस्थञ्चतत्सर्पिर्हन्तिगुल्मकफात्मकम् ॥
प्रदणीपाण्डुरोगघ्नंघृहीकासज्वरापहम् ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाहार एक एक पल लेवै और इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, यह घृत कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, घ्राहा, खांसी और ज्वर इनको दूर करता है ।

मिश्रकस्नेह ।

त्रिवृतात्रिफलादन्तीदशमूलंपलोन्मितम्
जलेचतुर्गुणेषक्त्याचतुर्भागस्थितंरसम् ॥
सर्पिरेरेण्डजंतैलंक्षीरञ्चैकत्रसाधयेत् ।
ससिद्धोमिश्रकस्नेहःसक्षौद्रःकफगुल्मजुत्
कफवातविवन्धेषुकुष्ठघ्राहादरेपुच । प्रयो
ज्योमिश्रकःस्नेहोयोनिशूलेपुचाधिकम् ॥

अर्थ—निसोय, त्रिफला, दन्ती और दशमूल इनको एक एक पल लेकर चीगुने जलमें पकावै जब चौथाई रहजाय तब इसको छानकर इसमें घी, अंडीका तेल और दूध मिलाकर पकावै । इस तरह यह मिश्रक स्नेह तयार हांताहै, इसको शहत मिखाकर सेवन करनेसे कफगुल्म, कफ, वात, विबन्ध, कुष्ठ, प्लीहा और उदररोग जाते रहते हैं ॥

कफगुल्ममें वैरेचनिक औषध ।

पटुक्तवातगुल्मघ्नंघ्रांसंननीलिनीघृतम् ।
द्विगुणंतद्विरेकार्यम्प्रयोज्यंकफगुल्मिनाम्
घृधाक्षीरद्रवैचूर्णत्रिवृतायाःसुभाचितम् ॥
कार्पिकंमधुसर्पिर्भ्यालीद्वासाधुविरि-
च्यते ॥

अर्थ—यातगुल्ममें जो रेचनिक नीलिनी घृत वर्णन किया गयाहै उसकी दूनीमात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवै । अथवा त्रिवृताके चूर्णमें सेण्डुडके दूधकी भावना दे कर घी और शहत मिलाकर एक कर्प चाटे सौ उससे अच्छीतरह विरेचन होजाताहै ॥

हरीतक्यादि प्रयोग ।

जलद्रोणेविपक्तव्याविंशतिपञ्चचाभयाः
दन्त्याःपलानितायान्तिचित्रकस्यतथैवच ॥
अष्टभागस्थितंतञ्चरसंपूतमधिकिपेत् ॥
दन्तीसमंगुडंपूतंभिपेत्त्राभयाश्चताः ॥
तैलार्थकुडवञ्चैवत्रिवृतायाश्चतुष्पलम् ।
चूर्णितंपलमेकञ्चापिप्लीविश्वभेषजम् ।
तत्साध्यंलेहवच्छीतेतस्मिंस्तैलसमंमधु ।
क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकन्त्वगेलापत्रकेशरान् ॥
ततोलेहपलंलीद्वाजग्ध्वाचैकांहरितकी-
म् । सुखंविरिच्यतोस्निग्धोदोपप्रस्थ
मनामयःगुल्मंश्वयधुमशीसिपाण्डुरोगम-
रोचकम् ॥ हृद्रोगंग्रहणीदोषंफोमलांवि
पमज्वरम् । कुष्ठंप्लीहानमानाहमेतान्घ्न-
न्त्युपसेवितः । निरत्ययःक्रमश्चास्याद्र-
चोमांसरसोदनः ॥

अर्थ....पच्चीसहरड, दन्ती पच्चीसपल, चीता पच्चीस पल इनको एक द्रोण जलमें पकावै, आठवां भागशेष रहनेपर उसे छान लेवै, तदनन्तर गुड पच्चीसपल और बेसब हरड कूटकर उसमें डालदे और आधा कुडव तेल उसमें गेर देवै तथा निसोय चार पल, पीपल और सोंठ एक एक पल डालकर धीरे धीरे पकावै जब पकाकर ल्हईसी

होजाय तव टंडी होनेपर आधाकुडब शहत,
दालचीनी एक पल, इलायची एक पल,
तेजपात एक पल और केसर एक पल इनको
मिला देवै ॥ प्रतिदिन एक पल इस चटनी
को चाटकर ऊपरसे एक हरद खाले
तौ मुखपूर्वक एक ग्रस्थ मल निकल जावे-
गा तथा गुल्म, शोष, अर्श, पाण्डुरोग, अरुचि,
हृदय, ग्रहणी दोष, कामला, विषम ज्वर, कुष्ठ
प्लीहा, आनाह ये सब रोग इसके सेवन से
दूर होजातेहैं । इसके सेवनमें मांसरस आरं
भातका भोजन करे ।

कफगुल्म में वस्तिप्रयोग ।

सिद्धाःसिद्धिपुवक्ष्यन्तेनिरुहाकफगुल्मि-
नाम् ।

अर्थ—कफगुल्म रोगियोंके लिये सिद्ध
स्थानमें अनुभव की हुई निरुहण वस्तियां
लिखी गईहैं ।

कफगुल्ममें चूर्णादि प्रयोग ।

अरिष्टयोमाःसिद्धाश्चग्रहण्यर्शचिकित्सि
ते।पञ्चूर्णगुटिकायाश्चविहितावातगुल्मि-
नाम् । द्विगुणक्षारहिन्मल्लवेतसास्ताः
कफेभताः॥ यएवग्रहणीदोषेक्षारास्तेकफ
गुल्मिनाम् । सिद्धानिरत्ययाःशस्वादाह
स्त्वन्तेप्रशस्यते ॥

अर्थ—ग्रहणी चिकित्सित अध्यायमें जो
अनुभव कियेहुए अरिष्ट तथा वात गुल्मना-
शक जो चूर्ण और गोल्यां वर्णनकी गई
हैं वे सब कफगुल्ममें हितहैं परन्तु उन चू-
र्णादिमें जितना क्षार, हींग और अमलवेत
डाला जाताहै उससे दूनाकफगुल्ममें डालना

उचितहै । जो क्षार ग्रहणी दोषमें वर्णन कि-
ये गये हैं वे कफगुल्ममें भी हितहैं । अन्तमें
कफगुल्म को दंग्व करना भी हितहै ।

पथ्यादि वर्णन ।

प्रपुराणानिधान्यानिजाङ्गलामृगपक्षिणः
कौलत्योमुद्गयूपश्चापपल्यानागरस्यच॥
शुष्कमूलकयूपश्चविल्वस्यत्ररुणस्यच ।
चिरिविल्वाङ्कुराणाञ्चयवान्याः चित्रक-
स्यच ॥ वीजपूरकहिम्बम्लवेतसक्षार-
दादिपैः । तत्रेणतैलसर्पिर्भ्याव्यञ्जना
न्युपकल्पयेत् ॥

अर्थ—बहुत पुराना धान्य, जांगल पशु-
पक्षियों का मांस, कुलधाका यूप, मृगका
यूप, पीपल, सोंठ और सूखीमूलीका यूप, बेल,
शरना, कंजा, अजयायन, चीता, इनको
ढाल कर तयार किया हुआ यूप, अथवा
त्रिजैरा, हींग, अमलवेत, जवाखार, अनार
मठा, तेल, घी इनके साथ अनेक प्रकार
के पदार्थ बना कर सेवन करे ॥

कफगुल्मपर अन्य उपचार ।

पञ्चमूलीश्रितंतोयपुराणवारुणीरंसम् ।
कफगुल्मीपिबेत्कालेजीर्णमाध्वीकमेववा
यवानीचूर्णितन्तक्रोवेडेनलवणीकृतम् ।
पिबेत्सन्दीपनंवातकफमूत्रानुलोमनम् ॥

अर्थ—पञ्चमूलका काथ, पुराना धारुणी
मद वा माध्वीकमदका कफगुल्ममें पान करना
चाहिये । अजवायन और नमकको पीस कर
मठमें मिलाकर पीनेसे अग्निसन्दीपन होतीहै,
यात, कफ और मूत्रका अनुलोमन होताहै ॥

असाध्य गुल्मके लक्षण ।

सञ्चितःक्रमशोगुल्मोमहावास्तुपरिग्रहः॥

कृतनूलःशिरानद्ध्योदाकूर्मइवोन्नतः ।
 दौर्वल्यारुचिहृष्टासकासवम्परतिज्वरैः ।
 तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यतेनससिद्धयति
 गृहीत्वासज्वरश्वासंघम्यतीसारपीडितम् ॥
 हृन्नाभिद्वस्तपादेपुशोकःकर्पातिगुल्मिनम् ॥

अर्थ—जो गुल्म धीरे धीरे बढ़कर बहुत
 धीचमें फैल जाताहै जो जब पकडकर नसों
 में स्थित होकर कछुएकी पीठ की तरह
 ऊंचा होजाताहै तथा जिसमें दुर्बलता,
 अरुचि, हृष्टास, खांती, उबकाई अरति,
 ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा और प्रतिश्याय ये साथ
 होतेहैं यह अच्छा नहीं होताहै ॥

जिस गुल्म रोगमें ज्वर, श्वास, वमन और
 क्षतीसारके होनेसे हृदय, नाभि, हाथ और
 पांभमें शोक होताहै वह रोगी मरजाताहै ।

रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम ।
 रौधिरस्यतुगुल्मस्यगर्भकालव्यतिक्रम ।
 स्निग्धस्विन्नशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्
 पलाशक्षारपात्रेद्वेपात्रेतैलसर्पिपो । गुल्म
 शैथिल्यजननीपक्त्वामात्रांप्रयोजयेत् ।
 प्रभिद्येतनयधेवंदद्याद्योनिविरेचनम् ॥
 क्षारैणयुक्तंपललंसुधाक्षीरेणवापुनः । ता-
 भ्यांवाभावितान्दद्याद्यौनाकटुकमत्स्य-
 कान् । वराहमत्स्यपित्ताभ्यांनक्रकान्वा
 सुभावितान् ॥ अघोहरैश्वोर्ध्वहरैर्भावि-
 तान्वासमाप्तिकान् । किण्वंवासगुडक्षारं
 दद्याद्योनिविशोधनम् ॥

अर्थ—रक्तगुल्ममें जब गर्भका समय
 अर्थात् दसवां महीना व्यतीत होजाय तब
 स्नेहन स्वेदनकर्म करने के पश्चात् स्नेह
 विरेचन देवै ।

ढाकके खारके दोपात्र, और एक एक
 पात्र घी और तेल इन सबको मिलाकर
 पाककरे फिर ऐसी मात्रा रोगीको देवै कि
 जिससे गुल्म शिथिलपडजाय । यदि
 ऐसा करनेपरभी गुल्म भेदको प्राप्त न हो
 तो योनिविरेचनकर्त्ता द्रव्य योनिके मार्गसे
 देवै । क्षार और तिलकल्क, अथवा
 सेडुडके दूधकी भावना दियाहुआ तिलक-
 ल्क, योनिके मार्गमें रखवै । अथवा क्षार
 और सेडुडके दूधकी भावना दीहुई कटुरस-
 युक्त मछली योनिमें प्रवेश करे अथवा
 सूअरके और मछली के पित्तकी भावना
 नक्रमांसको देकर अथवा विरेचनकारक औ-
 र वमनकारक द्रव्योंकी भावना दियाहुआ
 नक्रमांस शहत मिलाकर अथवा किण्व, गुड
 और क्षार मिलाकर योनिके भीतर रखवै,
 इन के रखनेसे स्राव होता है ॥

रक्तगुल्मके अन्यउपचार ॥

रक्तापित्तहरंक्षारंलेहयेन्मधुसर्पिपा । लशु-
 नंमदिरांतीक्ष्णंमत्स्यांश्चास्यैमदापयेत् ॥

अर्थ—रक्तपित्त के नाश करने वाले
 क्षारको शहत और धीके साथ चांटे । अ-
 थवा लहसन, तीक्ष्णमदिरा और मछली खा-
 ने को देवै ॥

अदृश्यमान रुधिरमें वस्ति ॥

वस्तिंसक्षारगोमूत्रंसक्षारन्दाशमूलिकम् ॥
 अदृश्यमानेरुधिरदद्याद्गुल्मभेदनम् ॥

अर्थ—जो रुधिर न निकलता होतो
 उसके भेदनके लिये क्षार और गोमूत्र की
 अथवा क्षार और दशमूलके ववाधकी वरित देवै ।

प्रवर्त्तमान रुधिरं उपचार ।
 प्रवर्त्तमानेरुधिरं दद्यान्मांसं सरसोदनम् ।
 घृततैलेन चाम्यङ्गुपांनार्थं तरुणीं सुराम् ॥
 रुधिरं ऽतिप्रवृत्ते तुरक्तपित्तहराः क्रियाः ।
 कार्या वातरुगात्तयाः सर्वा वातहराः पुनः ।
 घृततैलावसेकांश्च तित्तिरश्च रणाशुधान् ।
 सुरासमण्डापूर्वञ्च पानमम्लस्य सर्पिषः ॥
 प्रयोजयेदुत्तरं वा जीवनीये स सर्पिषा ।

अर्थ—जो रुधिर ज्वारी होता मांसरस और भात खानेको देवे, घी तेलकी मालिश करावे और नवान मद्यपानेको देवे । रक्तके क्षयन्त प्रवृत्त होनेपर रक्तपित्तनाशक चिकित्साकरै और जो वातिक वेदना उत्पन्न हो तो वायुनाशिनी क्रिया करै । इन रोगों में घृत, तैल, रक्तावसेचन, तीतर और सुरोंकामांस, मण्डयुक्तसुरा, अम्लयुक्त घृतपान हितकारी होतेहैं । इसमें जीवनीय गणोक्त द्रव्योंके साथ सिद्धकियेहुये घृत की उत्तर वस्ति भी दीजाती है ।

स्नेहः स्वेदः सर्पिर्वस्तिश्चूर्णानि वृंहणं
 गुडिकाः । वमनविरेचकौमोक्षः कफजस्य-
 चवातगुल्मवताम् ॥

अर्थ—कफज और वातज गुल्म रोगोंमें स्नेहन, स्वेदन, घृत, वस्ति, चूर्ण, वृंहण, गोली, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण आदि प्रयोग करै ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

भवन्तिचात्र ॥

सर्पिःसरिक्तसिद्धं हीरं प्रसंसनत्रिरुहंश्च
 रक्तस्य चावसेचनमाश्वासनसंशमनयोगाः

उपनाहनं सशस्त्रं पक्वस्याभ्यन्तरप्रभिन्नस्य
 संशोधनसंशमनेपित्तप्रभवस्य गुल्मस्य ।
 स्नेहः स्वेदोभेदो लंघनमुल्लेखनविरेकाश्च
 सर्पिर्वस्तिगुडिकाः चूर्णमरिष्टाश्च सप्ताराः
 गुल्मस्यान्तेदाहः कफजस्याग्रेपनीतरक्त-
 स्य ॥ गुल्मस्परैरुधिरस्य क्रियाक्रमः स्त्री
 भवस्योक्तः । पथ्यान्नपानसेवाहेतुर्नाव-
 र्जनयथास्वञ्च ॥ नित्यश्चाद्रिसमाधिः
 स्निग्धस्य च सर्वकर्माणि । हेतुलिङ्गसिद्धिः
 क्रियाक्रमः साध्यतानुयोगाश्च ॥ गुल्म-
 चिकित्सितसंग्रहपृतावानग्निवेशस्य ॥

अर्थ—अग्निवेशके संग्रहात् इस गुल्मचिकित्साताम्यायमें गुल्मनाशकघृत, तिक्त औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए दूध, विरेचन, निरूहण रक्तावसेचन, आश्वासन, संशमनयोग, तथा पित्तगुल्मके उपनाहन, पक्वगुल्मका शस्त्रसे भेदन, अन्तःभिन्न की चिकित्सा संशोधन और संशमन कफगुल्मके स्नेहन, स्वेदन, लंघन, वमन, विरेचन, घृत, वस्ति, गोली चूर्ण, अरिष्ट, चार तथा रक्त निकालकर दाह ये वर्णन किये गयेहैं । तदनन्तर लियोंके होनेवाले रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम, पथ्य, अन्नपानविधि, निदानवर्जन (जिनकारणोंसे रोग होताहै उनका त्याग) जठराग्निकी रक्षा, स्नेहनकर्म, सब प्रकारकी चिकित्सा, हेतु, लक्षण, सिद्धि, चिकित्सा, क्रम साध्यता और अनुयोग ये सब बातें भी वर्णन की गई हैं ॥

इति श्री. भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-

त्सितस्थाने गुल्मचिकित्सितनाम

पञ्चमोऽध्यायः ॥

—०(०)०—

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवानात्रेय बोले कि अब हम प्रमेहरोगकी चिकित्साका वर्णन करेंगे ॥

निर्मोहमानानुशयोनिराशः पुनर्वसुर्ज्ञानतपोविशालः । कालेऽग्निवेशाय सहेतुलिङ्गासुवाच प्रमेहानुशमनञ्चतेपाप्म ॥

अर्थ—मोह, मान, रागद्वेष और आशा से रहित, ज्ञाननिष्ठ और महातपस्वी पुनर्वसुने उचितकालमें प्रमेहका निदान, लक्षण और उसकी शान्तिके उपाय अग्निवेशसे कहे ॥

प्रमेहका निदान ॥

आस्यासुखं स्वप्नसुखन्दधीनिग्राम्योदका नूपरसाः पर्यासि । नवान्नपानं गुडवैकृतञ्च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥

अर्थ.... आस्यासुख (जो बहुत बैठा रहता है), स्वप्नसुख (जिसको बहुत सोनेमें सुख होताहै), जो दही, तथा ग्राम्य, आनूप और औदक पशुपक्षियोंका मांस बहुत खाताहै, जो दूध बहुत पीता है जो नये अन्न पानका सेवन करताहै, जो गुडके वनेहुए पदार्थोंको खाताहै तथा जो और सब प्रकार के कफकारी पदार्थोंको सेवन करता रहताहै उसके प्रमेहरोग होताहै ।

कफादिप्रमेहकी सम्प्राप्ति ॥

मेदश्च मांसञ्च शरीरजञ्च क्लेदं कफो वस्तिगतं प्रदप्याकरोति मेहमसमुदीर्णमुष्णं स्तान्येव पित्तं परिदप्यभूयः ॥ क्षीणे पुदोपे च वक्रप्यवस्तां धातुं प्रमेहाननिलः करोति ॥ दोषो हि वस्तौ स मुपेत्य मूर्धं सन्दप्यमेहान् जनयेद्यथास्वम् ॥

अर्थ—वस्ति अर्थात् मूत्रस्थानमें प्राप्त हुए मेद, मांस और शरीरके क्लेदको कफ दूषित करके प्रमेहको उत्पन्न करताहै । तात्पर्य यहहै कि जब कफ उक्त तीनोंको दूषित करताहुआ वस्तिस्थानमें पहुंचताहै तब कफज प्रमेह होतेहैं, इसी तरह उष्णपदार्थोंके सेवनसे कुपित हुआ पित्त मेद मांसादि को दूषित करके जब वस्ति स्थानमें ले जाताहै तब पित्तज प्रमेह होतेहैं । और लघनादि द्वारा कफ पित्त मलमूत्रादि दोषोंके क्षीण होनेपर वायु प्रकुपित होकर धातुओंको वस्ति स्थानमें खींच लेजातीहै इससे वातज प्रमेह उत्पन्न होतेहैं ॥ दोषही वस्तिमें पहुंचकर मूत्रको दूषित करके प्रमेहको उत्पन्न करताहै । प्रमेहोंकी संख्या ।

साध्याः कफोत्थादशपित्तजाः षडयाप्या नसाध्याः पवनाश्चतुष्काः । समक्रियत्वा द्विपमक्रियत्वान्महात्ययत्वाद्ययथाक्रमन्ते ।

अर्थ—समक्रियत्व होनेसे दसप्रकार के कफज प्रमेह साध्य होते हैं द्विपम क्रियत्व होने से छः प्रकार के पित्तज प्रमेह साध्य हैं इन्हीं-तरह महात्ययत्व होने से

चार प्रकारके चातज प्रमेह असाध्य होते हैं । समक्रियत्वका यह प्रयोजन है कि कफ दोष और मेदा प्रभृति दूष्य ये समान हैं इस लिये कफनाशक औषधोंको सेवन करने हीसे प्रमेह शान्त होजाते हैं । विपमक्रियत्वमें यह बात है कि पित्तदोष मेददूष्य ये विपम हैं क्योंकि पित्तनाशक मधुर शीतादि द्रव्य मेदवर्द्धक हैं और मेदाके नाशक करने वाले उष्णकटुकादि द्रव्य पित्तवर्द्धक हैं तौ यहां क्रियाकी विपमता है इससे पित्तज प्रमेह याप्य है । चातज प्रमेह इसलिये असाध्य है कि यह सम्पूर्ण धातुओंको दूषित करके खींच लेता है और विपम क्रियावाला भी है ।

दोषदूष्यों की संख्या ।

कफ सपित्तः पवनश्च दोषामेदोऽस्रशुक्रा
म्युवसालसीकाः । मज्जारसोऽजःपित्ति-
तञ्च दूष्यप्रमेहिणां विंशतिरेवमेवशाः ॥

अर्थ—कफ पित्त वात ये तीन दोष हैं, तथा मेदा, रुधिर, शुक्र, जल, चर्मी, लसीका, मज्जा रस ओज और मांस ये दूष्य हैं, इन सब के संयोग से बीसप्रकार के प्रमेह उत्पन्न होते हैं ।

बीस प्रकारके प्रमेहकी पहिचान ।

जलोपमं वैश्वरसोपमं वाघनं घनं चोपरिव्रम
सन्नम् । शुक्रं सशुक्रं शिशिरं शनैर्वा लाले
पत्रावालुकया युतं वा ॥ विद्यात्प्रमेहान् कफ-
षान्दशैतान् चारोपमं ह्यलमया विनीलम् ।
हाग्द्रमाञ्जिष्ठमयापिरक्तमेतान् प्रमेहान् प-
दुपन्तिापितात् ॥ मज्जारसवाचसयान्वि-
तैवालसीकया वासततं विषद्गु । चतुर्वि-

धं मूत्रयतीव वाताच्छेपेपुधातुष्वपकर्णितेषु ॥

अर्थ—कफज प्रमेह दस प्रकारका होता है यथा-जलके समान वर्णवाला उदक-
मेह है । ईखरे रसके समान वर्णवाला इक्षुम-
मेह है, गाढे मूत्रको सान्द्रमेह कहते हैं । जो नाँचे गाढा और ऊपर मद्यके समान हो उसे सुरामेह कहते हैं । जो मूत्रवीर्य मिला होता है उसे शुक्रमेह कहते हैं । जिसमें मूत्रके किट्टु धीरे धीरे टपकते हैं उसे शनैःमेह कहते हैं । जिसमें मुखको चारके समान तार निकलता है उसे लालामेह कहते हैं ॥ जिसमें बालके कणसे झोते हैं वह सिकतामेह है, जिसमें सफेदरंग होता है वह शुक्लमेह है । जिसमें ठंडा मूत्र बहुत उतरता है वह शीतमेह है इस तरह कफसे हानेवाले ये दस प्रकार के प्रमेह हैं ।

पित्तज प्रमेह छः प्रकारके हैं । यथा-क्षार के समान को क्षारमेह, फाले रंगके मूत्र को फालमेह, नीले रंगके मूत्रको नीलमेह हलदीके समान रंगवालेको हारिद्रमेह, मज्जीठके समान वर्ण और दुर्गन्धवाले को माञ्जिष्ठमेह और रुधिरके समान लाल वर्ण वाले को रक्तमेह कहते हैं ॥ ये छः पित्तप्रमेह हैं ॥

चातज प्रमेह चार प्रकार के हैं, यथा-मज्जा के समान वर्ण वाला मज्जामेह, बसा के से समान रंग वाला मूत्र यसामेह, ओज-मिश्रित मूत्र को ओज प्रमेह और लसीका युक्त को लसीकामेह कहते हैं । यह रूपा भी रहता है । जघ और सय धातु-

क्षीण होजाती है तब वात दोष के कारण
इन चार प्रकार का मूत्र निकलताहै ।

दोषानुसार प्रमेह के वर्णादि ।
वर्ण (संस्पर्शमथापिगन्धंपथास्त्रदोषम्भ
जतप्रमेहः ।

अर्थ—प्रमेह का वर्ण, रस स्पर्श और
गंध उसी दोष के अनुसार होजाता है जिस
से वह उत्पन्न होता है

घातज प्रमेह को असाध्यत्व
श्यात्रारुणोपातकृतः सशूलोमज्जादिपा-
दगुण्यमुपेत्यसाध्यः ॥

अर्थ—घातज असाध्य प्रमेह का वर्ण
कुछ फाळा और छाछ होता है इसमेंवेदना
होती है तथा इसमें छःओं घातुओं के गुण
होजाते हैं ॥

प्रमेह के पूर्ण रूप
स्वेदोऽह्नगन्धः शिथिलाह्नताचशय्यासन
स्वमसुरेतरतिश्च । हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणो
पदेहो घनाह्नताकेशनखातिवृद्धिः ॥ शी
तमित्यत्वह्नलतालुशोषो माधुर्यमास्येकर
पाददाहः भविष्यतोमेहगदस्वरूपं मूत्रेऽ
भिधावन्तिपिपीलिकाश्च ॥

अर्थ—पसीनों का आना, देहमें से दुर्ग-
न्ध निकलना, देहका शिथल पड़जाना,
पलंग पर पड़े रहने, आसन पर बैठे रहने
वा निद्रा लेने में इच्छा बनी रहनी, हृदयने-
त्र, जिह्वा और कर्ण मलकी ल्हिसावट, दे-
ह का कडा होना, केश और नखों का अ-
त्यन्त बढ़ना, ठंडीवस्तु का प्रिय लगना,
और मूत्रपर चींटियों का आना ये प्रमेह के
पूर्वरूप हैं ।

स्थूल कृशप्रमेही की चिकित्सा ॥

स्थूलःप्रमेहीवल्लयानिहैकःकृशस्तथैकःप-
रिदुर्वलश्च । संदृंहणंतत्रकृशस्यकार्यंसं
शोधनंदांपवलाधिकस्य ॥

अर्थ—कोई प्रमेहरोगी स्थूल और बल-
वान होता है, तथा कोई कृश और दुर्बल
होता है, इनमें से कृशकी दृंहण चिकित्सा
करना चाहिये और बलवान् को संशोधन
देकर उसके दोषों को दूर करे ॥

प्रमेही के अन्यउपचार ॥

स्निग्धस्ययोगाविविधाप्रयोज्याः कल्पो
पदिष्टामलशोधनाय । ऊर्ध्वतथाधश्चम-
लेऽपुनीतिभेहेपुसन्तर्पणमेवकार्यम् ॥ गु-
ल्लःक्षयोमेहनवस्तिशूलं मूत्रप्रहृच्छाप्य
पतर्पणेन । प्रमेहिणःस्युःपरितर्पणानि
कार्पाणितस्मात्प्रसमीक्ष्यन्निहम् ॥ सं
शोधननार्हेतियःप्रमेही तस्यक्रियारंशम
नीप्रयोज्या ।

अर्थ....रोगीको स्नेहन देकर कल्प-
स्थान में वर्णन किये हुए प्रयोगों को दोनों
के शोधन के निमित्त देंगे । जब बमन
विरचन करानेसे दोष निकलजाय तब स-
न्तर्पणविधि करना चाहिये ।

जो प्रमेहरोगी संशोधनके योग्य न हो-
उसकी संशमन चिकित्सा करे ॥

प्रमेही को पथ्य ॥

मन्या कृपायाःयवचूर्णलेहाःप्रमेहशान्त्यै
लघवश्चभस्याः ॥ येविकिरायेप्रतुदा
चिहंगास्तेषारंसेर्जाङ्गलजर्पनीजैः । यवौ
दनंरुक्षमयांपिवाधान्मद्यान्सश्कृन्पि

चाप्यूपान् ॥ मुद्गादियूपैरथत्तिकाशा
कैः पुराणशाल्योदनमाददीत । दन्ती
शुदीतैलयुतंप्रमेहीतथातसीसर्पतैलयुक्त
म् ॥ सपट्टिकंस्यात्तृणधान्यमन्नंयवप्रधान
नस्तु भवेत्प्रमेही ॥

अर्थ—प्रमेहकी शान्तिके निमित्त मन्थ
कपाय, जौ के चून्का लेह तथा हलका
भोजन खानेको देवै । त्रिफिर और प्रतुद
प्रकारके जांगल पक्षियोंके मांसरसके साथ
रूक्ष यवोदन या सत्तूके साथ मद्य या
अपूप भक्षण करै । मूंग आदिके यूपके
साथ अथवा चरपरे सागोंके संग पुराने
शालीचाबड़ोंका भात खाय ॥

दती और गौदीका तेल मिलाकर अथवा
अलसी और सरसों का तेल मिलाकर साठी
चावल तृणधान्यके अन्नका सेवन करै ॥
विशेषकरके प्रमेह रोगी जौके पदार्थोंका
सेवन करता रहै ।

कफप्रमेहमें अन्यविधि ॥

यवस्यभक्ष्यानविविधास्तथाद्यात्कफप्र-
मेहीमधुसम्प्रयुक्तान् ॥ निशिस्थितानां
त्रिफलाकपायैः स्युस्तर्पणासौद्रयुतायवा
नाम् । तान्शीधुयुक्तान्मपिवेत्प्रमेही प्रा
योगिकान्मेहवधार्थमेव ॥

अर्थ—कफ प्रमेही जौ के अनेक प्रकार
के पदार्थ शहत के संग सेवन करता रहै ।
रात्रिमें जौओंको त्रिफलाके काथ में भिगो
देवै, दूसरेदिन इनका शहतके साथ सेवन
करै तो तर्पण होवै । इन्हीं जौओं को शीधु
के साथ-पान करै तो प्रमेह नष्ट होजाताहै ॥

ये श्लेष्ममेहेविहिताः कपायास्तर्भाविताना
ञ्चपृथग्यवानाम् । श्वतूनूपानसगुडान्
सधानान् भक्ष्यांस्तथान्यान्विविधांश्च
खादेत् ॥ खराश्वगोधेनुकसम्भृतानां त-
थायवानांविविधाश्चभक्ष्याः ॥ देयास्त
यावेणुयवायवानां कल्पेनगोधूममयाश्च
भक्ष्याः ॥ संशोधनोल्लेखनलंघनानि
कालेप्रयुक्तानिकफप्रमेहान् । जयन्तिपि
त्तप्रभवान् विरेकाः सन्तर्पणः संशमनो-
विधिश्च ॥

अर्थ—कफ प्रमेहमें जो कपाय वर्णन
कियेगयेहैं उनकी जौओंको पृथक् पृथक्
भावना देकर उनके सत्तू अपूप, गुडमिश्रित
धानी तथा और अनेक प्रकार के पदार्थ
बनवाकर सेवन करता रहै ॥

गधा, घोडा, बैल या गौ की गुदामें हौ
कर जो बिना टूटे जौ निकल आतेहैं उ-
नके तथा वेणुयव और गेहूँके अनेक प्र-
कारके पदार्थ बनाकर सेवन करै । इसी त-
रह ठीक समय पर दियेहुये संशोधन, य-
मन, लंघन करानेसे भी कफ प्रमेह दूर
होजाते हैं ॥

तथा ठीक समयपर वमन, विरेचन, लं-
घन, संतर्पण और संशमन देने से पित्तज
प्रमेह भी शान्त होजाते हैं ।

प्रमेहोंपर सामान्यप्रयोग ॥

दार्षीसुराह्वं त्रिफलांसमुस्तां कपायसुत्
काध्यपिवेत्प्रमेही । सौद्रेणयुक्तामथवाह-
रिद्रां पिवेद्रसेनामलकीफलानाम् ॥

अर्थ—दारुहल्दी, देवदारु, त्रिफला और

मोथा इनके काथको शहत मिलाकर पीवै
अथवा आंवलेके रसके साथ हल्दीका पानकरै
कफप्रमेहपर कपाय ॥

हरीतकीकटफलमुस्तरोध्रपाठाविडङ्गा
जुनधन्वनथ । उभेहरिद्रेतगरंविडङ्गं कद
म्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ दार्वीविडङ्गं
खदिरोधवश्च सुराहकुप्रागुरुचन्दनानि ।
चव्याग्रिमन्थीत्रिफलासपाठा पाठाश्वदं
ष्ट्रेसहमूर्वयाच ॥ यवान्युशीराण्यभया
गुडूची जंघाभयाचित्रकसप्तपर्णाः । पादैः
कपायाःकफमेदिनान्ते दशोपादिष्टामधुस-
म्भयुक्ताः ।

अर्थ—(१) हरड, कायफल, मोथा,
लोध, (२) पाठ, वायविडंग, अर्जुन,
धन्वन [३] दोनों हल्दी, तगर और
वायविडंग, [४] कदम्ब, शाल, अर्जुन
और अजवायन, [५] दारुहल्दी, वा-
यविडंग, खैर और धव [६] देवदारु
कूठ, अगर और चन्दन [७] चव्य, अ-
रनी, त्रिफला और पाठा [८] पाठा,
गोखरू और मूर्वा [९] अजवायन, उ-
शीर, हरड और गिलोय [१०] काक-
जंघा, हरीतकी, चीता और सप्तपर्ण प्रत्येक
श्लोकके एक एक पादमें कहेहुए ये दस
काथ शहत डालकर पीनेसे कफ प्रमेह
को दूर करते हैं ॥

पित्तप्रमेहपर कपाय ॥

उशीरलोध्राञ्जनचन्दनानामुशीरमुस्ता
मलकाभयानाम् । पटोलनिम्बामलका
मृतानामुस्ताभयापन्नकबृत्तकाणाम् ॥

(२९)

रोध्राम्बुकालीयकघातकानानिम्बार्जुना
नान्तिनिशोत्पलानाम् ॥ शिरीषसर्जार्जु-
नकेसराणां प्रियंगुपत्रोत्पलकिंशुकानाम् ॥
अश्वत्थपाठासनवेतसानां कटङ्कटप्युत्प-
लमुस्तकानाम् । पेंत्तेपुमेहपुदशैवट्टाः
पादैःकपायामधुसम्भयुक्ताः ॥

अर्थ—[१] उशीर, लोध, रसौत,
और चन्दन [२] उशीर, आंवला, मो-
था और हरड [३] परवल, नीम, आं-
वला और गिलोय [४] मोथा, हरड,
पन्नाख और इन्द्रजौ (५) लोध, नेत्र-
वाल, पीतचन्दन और धायके फूल [६]
नीमकी छाल, अर्जुन, तिनिश और उत्पल
[७] सिरस, राल, अर्जुन और नागके-
शर, [८] प्रियंगु, लालकमल, नीलक-
मल और ढाक के फूल [९] पपिल-
पाठ, असन और वेत [१०] दारुह-
ल्दी, उत्पल और मोथा । प्रत्येक श्लोक
के एक २ पादमें कहेहुए ये दस काथ
शहत डालकर पीनेसे प्रमेहको दूर करतेहैं ॥
सर्वेपुमेहेपुमतौपूर्वां कपाययोगोविहि-
तास्तुसर्वे ॥ मन्थस्यपानेयवभावनायां
स्युर्भोजनेपानविधौपृथक्च । सिद्धानि
तैलानिघृतानिचैव देयानिमेहेष्वनिला
त्मकेषु ॥ मेदःकफश्चैकपाययोगैः स्नेहै-

श्ववायुःशममेतितेपाम् ।

अर्थ—सबसे पहिले जो दो कपायके
प्रयोग वर्णन किये गयेहैं वे सब प्रकार
के प्रमेहमें उपयोगीहैं ॥ इन कपायों का
प्रयोग मन्यपान, जौओं को भावना देने

अथवा सब प्रकारके भोजन पानमें पृथक्
२ देना चाहिये ॥ वातज प्रमेहोंमें औषधों
से सिद्ध किया हुआ घृत और तेल देवै ।
कफायोंसे भेद और कफ तथा स्नेहन योगों
से वायु शान्तहोती है ।

कफपित्तप्रमेहपरप्रयोग ॥

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरौ
हीतककौटजानि ॥ कपित्थपुष्पाणिचचू
र्णितानि क्षौद्रेणालिहात्कफपित्तमेही ।
पिवेद्रसेनामलकस्यवापि कल्कीकृतान्य
क्षसमानिकालं ॥ जीर्णेचभुञ्जीतपुराण
मन्नं मेहीरसैर्जाङ्गलजैर्मनोबैः । दृष्ट्वानु
बन्धंपयनं कफस्यपित्तस्यवास्नेहविधिर्वि
कल्प्यः ॥ तैलकफेस्यात्सकपायसिद्धं

पित्तेघृतं पित्तहरैः कफायैः ।

अर्थ—कवाला, सप्तपर्ण, सर्जरस, बहेडा
रोहातक [रोहेडा], इन्द्रजी, कथकेश्ल
इन सबका चूर्ण पीसकर शहतमें मिलाकर
चाटनेसे कफपित्त प्रमेह दूर होजाता है ।
अथवा इसी प्रकारके चूर्ण का दो तोले कल्क
आंबलेके रसके साथ पान करै और औ-
षध के पचने पर पुराने चांबलों का भा-
त जांगलजीयोंके मांसरसके साथ सेवनकरै
इस रोगमें वायुके कफानुबन्धी वा पि-
त्तानुबन्धी होनेपर स्नेहविधिकी विकल्पना
करनी चाहिये । यदि कफका अनुबन्ध हो
तो कफनाशक द्रव्योंके काथमें सिद्ध किये
हुए तेलका प्रयोग करै और जो पित्त का
अनुबन्धहो तो पित्तनाशक कफायोंमें सिद्ध
कियाहुआ घृत देवै ॥

अन्यप्रयोग ।

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवलकैर्भल्लातकैः
सातिविपैःसरोध्रैः ॥ वचापटोलाजुनानि
म्बमुस्तैर्हरिद्रयापन्नकदीप्यकैश्च । मञ्जि-
ष्टयावागुरुचन्दनेश्च सर्वैःसमस्तैःकफवा
तजेषु ॥ महेषुतैलंविपचेद्घृतंतुपैत्तेषुमिश्रं
त्रिपुलक्षणेषु ।

अर्थ—गोखरू, कचनार, खैर, भिलाया,
अतिस, लोध, वच, परवल, अर्जुन, नीमकी
छाल, मोथा, हलदी, पन्नाख, अजवायन,
मजीठ, अगर, चन्दन, इनसबके काथमें सिद्ध
किया हुआ तेल सेवन करनेसे कफघात ज-
न्य प्रमेह दूर होताहै । उन्हींमें सिद्ध किया
हुआ घृत वातपित्तजन्य प्रमेहको तथा घृत
और तेल दोनों त्रिदोषजन्य प्रमेह को दूर
करते हैं ।

सबप्रकार के प्रमेह पर काथ ।

फलत्रिकंदारुनिशाविशालामुस्ताचानि-
काध्यनिशासकल्का । पिवेत्कपायंमधु-
सम्पयुक्तं सर्वप्रमेहेषुसमुद्धतेषु ॥

अर्थ—त्रिफला, देवदारु, हलदी, इन्द्रा-
यण. और मोथा इनका काथकरके उसमें
हल्दी पीसकर डालदेवे और इस कफायमें
शहत मिलाकर पीनेसे सबप्रकारके उद्धत
प्रमेह दूर होजातेहैं ।

मध्वासव ।

लोध्रंशठीपुष्करमूलमेलं मूर्चाविडङ्गत्रि-
फलांयवानीम् ॥ चव्यंभियंगुत्रमुकांविशा-
लां किराततिकंकडुरोहिणीश्च । भार्गी
नतांचित्तकपिप्लीनां मूलंसकुष्ठाति-

विपंसपाठम् ॥ कलिङ्गकानकेशरमिन्द्र
 साहं नखंसपत्रंपरिचण्डुवञ्च । द्रोणो-
 ऽमसःकृपसमानिपवत्वापूतेचतुर्भागज
 लावशेषे ॥ रसेऽर्धभागमधुनःप्रदाय प-
 क्षान्निधेयोघृतभाजनस्थः । मध्वासवोऽ
 यंकफपित्तमेहान् क्षिप्रंविहन्त्यादाद्विपलम-
 योगात् ॥ पाण्डुवामयाशांस्यरुचिग्रहण्या-
 दोपकिलासंविचिधञ्चकुष्ठम् ॥

अर्थ—लोध्र, शठी, पौहकर मूत्र, इला-
 यची, मूरी, वायविडंग, त्रिफला, अजवायन
 चव्य, प्रियंगु, सुपारी, इन्द्रायण की जड़
 चिरायता, कुटकी, भाङ्गी, तगर, चीता,
 पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, ना-
 गकेशर, इन्द्रायणकी जड़, । नली, तेजपात
 कालीमिरच, केवटी, मोथा । इन सबको ए-
 क एक कर्प लेकर एक द्रोण जलमें पकावै
 जब चौथाई शेष रहजाय तब इसे छानले,
 फिर इस रसका आधा शहत मिलाकर धी-
 के चिकने पात्रमें भरकर पन्द्रह दिवस तक
 धरा रहने देवे । यह मध्वासव है, इसमें
 सेप्रतिदिन दोपलका सेवनकरनेसे कफपित्तज-
 नित प्रमेह, पाण्डुरोग, अशरोग, अरुचि,
 ग्रहणीदोष, किलास और सब प्रकारके कु-
 ष्ट दूर होजातेहैं ।

अन्य आसव ।

घ्राथःसएवाष्टपलेचदन्त्याभल्लातकाना
 ञ्चचतुष्पलंस्यात् ॥ सितांपलास्त्वष्टपला
 विशेषःसौद्रञ्चतावत्पृथगांसवौतौ ।

अर्थ—उसी पूर्वोक्त लोघ्रादि काथसे दो
 आसव और वनाये जातेहैं यथा (१) पू-

र्वोक्त क्याथमें दंती आठपल, शहत और मि-
 श्री आठ आठ पल डाले और (२) पू-
 र्वोक्त उसी क्याथमें मिलाया चार पल, मि-
 श्री आठ पल और शहत आठ पल डाले इ-
 न दोनोंके गुणभी मध्वासवके समानहैं ।

प्रमेह पर अन्य चिकित्सा ।

सारोदकश्चाथकुशादकंवा मधूदकंवात्रि-
 फलारसंवा ॥ शीधुंपिबेद्दानिगदंप्रमेही
 माध्वीकमग्यञ्चिरसंस्थितंवा । मांसा
 निश्ल्यानिमृगद्विजानां खादेद्यवांनाचि
 विधाञ्चभक्ष्यान् ॥ संशोधनारिष्टकपा
 यलेहेःसन्तर्पणज्ञःशमयेत्प्रमेहान् । मृ
 द्दान्यवान्भक्षयतः प्रयोगात् शुष्कांश्च
 शकूत्रभवन्तिमेहा ॥ श्वित्रञ्चकुष्ठञ्च
 कफञ्चकृच्छ्रं तथैवमुद्गामलकप्रयोगात् ॥

अर्थ—सारोदक वा कुशादक, वा मधूद-
 क वा त्रिफला काथ, वा शीधु वा पुराना
 माष्याक सेवन करनेसे प्रमेह दूर होजाता है
 पशुपक्षियोंका शूलपर भुना हुआ मांस, तथा
 जौके अनेक पदार्थोंका भक्षण करे । संशो-
 धन, अरिष्ट, कपाय, लेह और संतर्पण
 द्वारा प्रमेहको शमन करे । भुने हुए जौ,
 इनका सत्तू तथा मूंग और आंवला इन के
 प्रयोगसे श्वित्रकुष्ठ, कुष्ठ, कफ और मूत्र-
 कृच्छ्र दूर होजाते हैं ।

सन्तर्पणोत्थेपुगदेपुयोगा मेदत्विनायेच
 मयोपादिष्टाः ॥ विरूक्षणार्थकफपित्तजे
 पुसिद्धाःप्रमेहेष्वपितेप्रयोज्याः । व्याया-
 मयोगैर्विचिधैः प्रगाढैरुद्धर्चनेःस्नानजला-
 वसेकैः ॥ सेव्यंत्वंगलागुरुचन्दनाद्यै

विलेपनेश्चाशुनसन्तिमेहाः । क्लेश्चमेद-
श्चकफश्चबृद्धः नाशं प्रयाति प्रसमीक्ष्य तस्मा
त्तु विद्येन पूर्वकफपित्तजेषु मेहेषु कार्याण्य-
पतर्पणानि ॥

अर्थ—सन्तर्पणजन्य रोगोंमें तथा जिनका
मेदा बद्ध गया है उनके लिये जो रूक्षणकर्त्ता
प्रयोग वर्णन किये गये हैं इन का कफपि-
त्तौत्थ प्रमेहमें प्रयोग किया जाय तौ
तत्काल फलप्रद है ।

अयन्त परिश्रम [दंडकसरत आदि]
अनेक प्रकारके उबटने, स्नान, जलाबसेक
तथा खस, दालचीनी, अगर और चन्दन
का लेप करने से प्रमेह शीघ्र नष्ट होजाता है

अपतर्पणसे क्लेश, मेद और कफ ये नष्ट
होजाते हैं इसलिये कफपित्त प्रमेहोंमें प्रथम
अपतर्पण देना चाहिये ॥

यावातमेहान्प्रतिपूर्वमुक्ता वातोल्वणानां
विहिताक्रियासा । वायुहिमेहेष्वतिकर्षि-
तानां कुप्यत्यसाध्यान्प्रतिनास्तिचिन्ता

अर्थ—जहां तीनों दोषोंमें से वातकी
अधिकता हो वहां प्रथम वातज मेहकी
चिकित्साके अनुसार उपाय करै क्योंकि
वातप्रमेह मनुष्यको बहुत शीघ्र कृशकारके
रोगको असाध्य करदेताहै, तब फिर कोई
चिकित्सा काम नहीं देतीहै ॥

प्रमेहमें निदानपरिबर्जेन ॥

यैहेतुभिर्षेप्रभवन्तिमेहास्तेषु प्रमेहेषु नतेनि-
षेव्याः ॥ हेतोरसेवाविहितारथैवजात-
स्परोगस्य भवेच्चिकित्सा ।

अर्थ—जिन २ हेतुओंसे जो २ प्रमेह

उत्पन्न होतेहैं उनमें उन हेतुओंका कदापि-
सेवन न करना चाहिये क्योंकि हेतुका
परित्याग करदेना भी रोगकी एक प्रकार
की चिकित्सा है ॥

हारिद्रवर्णरुधिरश्चमूत्रं विना प्रमेहस्याहि-
पूर्वरूपः ॥ यो मूत्रयेत्तन्न वेदत्प्रमेहरक्तं
स्यापित्तस्य हि सप्रकोपः ।

अर्थ—जो मूत्रका रंग हलदीसा लाल
हो और उसमें प्रमेहका कोई पूर्वरूप न हो
तो उस रोगांके प्रमेह नहीं होती है वह
उसके रक्तपित्तके प्रकोप का कारण है ॥

मधुप्रमेहकालक्षण ॥

दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सापिच्छं मधुपमं स्याद्वि-
धोपचारः ॥

अर्थ—जो प्रमेह मधुर हो वा शहत के
समान गिलगिडी हो उसमें अनेक प्रकार
की चिकित्सा करनी चाहिये ।

प्रमेहको साध्यासाध्यत्व ॥

क्षीणे पुदोषेऽप्यनिलात्मकः स्यात् सन्तर्प-
णाद्वा कफसम्भवः स्यात् । सपूर्वरूपाः क-
फपित्तमेहाः क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः ॥
साध्यान्ते पित्तकृतास्तु याप्याः साध्यास्तु
मेदोयदिनमदुष्टम् । जातममेहो मधुमेहि-
नां वा नसाध्यरोगः सद्दिवीजदोपात् ॥
ये चापिकेचित्कुलजाचिकारा भवन्ति तां-

श्च भवदन्त्यसाध्यान् ॥

अर्थ—दोषोंके क्षीण होनेपर वातात्मक
प्रमेह होताहै और सन्तर्पणसे कफज प्रमेह
उत्पन्न होताहै ये कफज तथा पित्तज प्रमेह
जो पूर्वरूपसे युक्त होतेहैं अथवा जो वात-

कृते वे असाध्य होते हैं पित्तजप्रमेह याप्य है और कफजप्रमेह जिनमें मेदा दूषित नहीं होता है वे साध्य होते हैं । मधुमेही की सन्तान बीजदोष के कारण असाध्य होती है । तथा जो रोग कुलपरम्परासे चले आते हैं वे भी असाध्य होते हैं ॥

पिडकाओंकी चिकित्सा ॥

प्रमेहिणांयापिडकामयोक्ता रोगाधिकारेपृथगेवसप्त । ताःशल्यहृद्भिःकुशलैश्चिकित्स्याः शस्त्रेणसंशोधनरोपणैश्चेति ॥

अर्थ—रोगाधिकारमें जो प्रमेह रोगकी सात पिडका पृथक् वर्णन की गई हैं उनकी चिकित्सा शल्यशास्त्र में कुशल वैद्य शस्त्रसे संशोधन और रोपण द्वारा करे ।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

भवन्तिचात्र ॥

हेतुर्दोषादूप्यमेहानांसाध्यतानुरूपञ्च । मेहीत्रिविधस्त्रिविधंभिपग्जतलक्षणंतस्य आद्यायवान्नविकृतिर्मन्थामेहापहाःकषयाश्च । तैलघृतलेहयोगाभक्ष्याःप्रवरासवासिद्धाः ॥ व्यायामविधिर्विविधः स्नानान्युद्धर्तनानिगन्धाश्च । मेहानां प्रशमार्यचिकित्सितेदृष्टमेतावदिति ॥

अर्थ—इस प्रमेह चिकित्सितनामक अध्यायमें प्रमेहोंके हेतु, दोष, दूप्य, साध्यता अनुरूप, तीनप्रकारके रोग, उनकी तीन प्रकारकी चिकित्सा, लक्षण, भक्षणाय जोके पदार्थ, मन्थ, प्रमेहनाशक कषाय, तैल, घृत, लेह, भक्ष्ययोग, अनुभूत आसन्न, व्यायामविधि, अनेक प्रकारके स्नान, उद्धर्तन,

सुगंधित द्रव्यादि प्रमेह नाशक विधि वर्णन की गई हैं ।

इतिश्रीभाषाटीकांश्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थाने प्रमेहचिकित्सितनाम

षष्ठोऽध्यायः ॥

—*×*×*—

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातःकुष्ठचिकित्सितंन्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम कुष्ठचिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

कुष्ठोत्पत्तिका हेतु ॥

हेतुंलिङ्गविविधंकुष्ठानामाश्रयंप्रशमनञ्च ।

शृण्वग्निवेश ! सम्यग्विशेषतःस्पर्शनघ्नानाम् ॥ विरोधीन्यन्नपानानिद्रवस्निग्धगुरूणिच । भजतामागतांछर्दिवेगांश्चान्या

नप्रतिघ्नताम् ॥ व्यायाममतिस्नतापमतिभुक्त्वानिपेविणाम् । शीतोष्णलंघनाहारनक्रममुक्त्वानिपेविणाम् ॥ घर्भश्रमभपार्तानांद्भुतंशीताम्बुसेविणाम् ।

अजीर्णाध्यशिनान्चैवपञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ नवान्नदधिपत्स्यातिलवणाम्लनिपेविणाम् । पापमूलकपिष्टान्नगुहक्षीरतिलाशिनाम् ॥ व्यवायंचाप्यजीर्ण-

ञ्जोनिद्रांवाभजतांदिवा । विमान्गुरूर्धपयतांपापंवाकर्मकुर्वताम् ॥ वातादयस्त्रयोदुष्टास्त्वग्रक्तंमांसमम्बुच । दूपय-

न्तिसकुष्ठानांसप्तकोद्रव्यसंग्रहः ॥ अतः

कुष्ठानिजायन्तेसप्तचैकादशैवच । नचैक

दोषजंकिश्चित्कुष्ठसमुपलभ्यते ।

अर्थ—हे अग्निवेश ! अवमें तुम्हारे सा-
म्हने फोड़के अनेकप्रकारके हेतु, लक्षण आ-
शयस्थान और उनके शान्तिके उपायोंको
वर्णन करताहूं सुम सावधानहो कर सुनो ।
वे ये हैं यथा:—

विरुद्ध अन्नपान; पतले, चिकने और
भारी पदार्थोंका अत्यन्त सेवन; उपस्थित य-
मनके वेग तथा अत्यन्त मलमूत्रादि वेगोंका
रोकना; अत्यन्त भोजन करके अत्यन्त शा-
रीरिक परिश्रम और अत्यन्त सन्ताप का
सेवन, क्रमको छंडकर शीत, उष्ण, लघन
और आहारका सेवन, पसीनोंमें, पारिश्रम
करके वा भयजन्य कर्ममें शीतल जन्तुका
सेवन; अजीर्णमें अल्पशन, यमनविरेचनादि
पांच कर्मोंका अपचाय; नयाअन्न, दही, म-
छली, नमक और खटाईका अत्यन्त सेवन
उदर, मूली, पिष्टान्न, गुड, दूध और ति-
लका अत्यन्त सेवन, अन्नके विना पचे मै-
थुन करना; दिनमें नींद भरना, विप्र और
गुरुजनोंका तिरस्कार; पापकर्मका करना; इ-
न सब बातोंसे कुपितहुए वातादिक तीनों
दोष तथा इनमें दूषित कियेहुए त्वचा, रक्त
मांस और लसीका, ये सातों सब प्रकारकी
कुष्ठोंके कारणहैं । इस तरह सब मिलाकर
अठारह प्रकारके कुष्ठ उत्पन्न होतेहैं । एक
दोषके कुपित होनेसे कोई कुष्ठ नहीं होताहै
कुष्ठके पूर्वरूप ।

स्पर्शान्यगान्स्वेदोतिनवावैवर्ण्यगुन्वनिः

कोठानांलोपहर्षथक्कण्डूस्तोदःश्रमःकृमः
त्रणानामधिकंशूलशीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः

दाहः सुप्ताङ्गताचेतिकुष्ठलक्षणमग्रजः ।

अर्थ—त्वचाका अन्यथा होना, पसीनों
का अत्यन्त आना वा सर्वथा न आना, वि-
वर्णता, पित्तीका उद्वलना, रोमाञ्च खड़े
होना, खुजली तोड़, श्रम, क्लान्ति, शरीर
में घाव होकर उनमें अत्यन्त वेदना होना
घावोंका शीघ्र होना और बहुत दिवस तक
रहना, दाह और सुप्ताङ्गता, ये सब फोड़
के पूर्वरूपहैं ।

कुष्ठोंकेनाम ।

अत ऊर्ध्वमष्टादशानांकुष्ठानां कपालोदुम्ब-
रमण्डलर्ष्याजिह्वापुण्डरीकसिध्मकाकण-
कैककुष्ठचर्मकिटिमाविपादिकालसकदद्गुच-
र्मदलपामाविस्फोटकशतारूषिचर्चिकानां
लक्षणान्युपदेक्ष्यामः ।

अर्थ—अब हम यहां से कपाल, उदुम्बर
मण्डल, ऋष्याजिह्व, पुण्डरीक, सिध्म,
काकणक, एककुष्ठ, चर्म, किटिम, विपादि-
का, अलसक, दद्गु, चर्मदल, पामा, विस्फो-
टक, शतारू और विचारिका, इन अठारह
प्रकारकी फोड़ों के लक्षण वर्णन करेंगे ।
इनमें से पहिली सातको महाकुष्ठ और पिछ-
ली ग्यारहको क्षुद्रकुष्ठ कहते हैं ।

कपाल कुष्ठके लक्षण ।

कुष्णारुणकपालाभयद्रूसंपरुपन्तनु । का-
पालन्तोदवह्ललंतकुष्ठविषमस्मृतम् ॥

अर्थ—जो कुष्ठ कालापन लिए कुछ लाल
होता है, जो खीपड़े के सट्टन रूक्ष खरखरा

तथा पतला हो और जिसमें सुईके छिदने की सी अत्यन्त वेदना होती हो उसे कपाल कुष्ठ कहते हैं यह दुर्दिवाकित्य होता है ।

औदुम्बर कुष्ठके लक्षण ।

कण्डूविदाह्रुप्रागपरतिंलोमापिञ्जरम् ।
उदुम्बरफलाभासंकुष्ठमौदुम्बरविदुः ॥

अर्थ-जिस में खुजली, जलन, वेदना और लड़ाई होती है, रोमोंमें पीलापन होता है और जिसका आकार गूलरके सदृश होता है उसे औदुम्बरकुष्ठ कहते हैं ।

मंडलकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतरक्तस्थिरस्त्यानंस्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् ।
कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥

अर्थ-जिसका वर्ण सफेद और लाल हो, जो कठोर गीला, चिकना, ऊंचा उठा हुआ, मंडलाकार हो, जिसमें चकते एक दूसरेसे मिले हुए हों, यह मंडलकुष्ठ कृच्छ्रसाध्य होता है ॥

ऋष्यजिह्वा कुष्ठके लक्षण ॥

कर्कशरक्तपर्यन्तमन्तःश्यायःसवेदनं ।
यद्व्यजिह्वासंस्थानेऋष्यजिह्वतदुच्यते ॥
अर्थ-जो कुष्ठ खरस्पर्श होता है जिसके किनारे लड़ाई लिये होते हैं, जो नाचमें कृष्णवर्ण तथा वेदनायुक्त होता है । जिसका आकार रींछकी जिह्वाके सदृश होता है उसे ऋष्यजिह्वा कहते हैं ॥

पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण ॥

सश्वेतरक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ॥
सोत्सेधश्च सदाहञ्च पुण्डरीकं तदुच्यते ॥

अर्थ-जिसका श्वेत वर्ण और लाल किनारे हों, जो कमलके पत्तों के सदृश होता है, जो ऊंचा तथा दाहयुक्त होता है उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं ।

सिध्मकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतताम्रतनुचपद्रजोघृष्टं विमुञ्चति ।
अलाबुपुष्पवर्णं तत्सिध्मं प्रायेण चोरसि ॥
अर्थ-जिसका वर्ण सफेद और तांबे के समान होता है, जो पतला होता है, जिसको खुजाने से भुंसीसी [धूल के सदृश] उड़ती है जिसका आकार घांपाके पुष्पके समान होता है उसे सिध्मकुष्ठ कहते हैं, यह हृदयमें होता है ।

काकणक कुष्ठके लक्षण ।

यत्काकणन्तिकवर्णसपाकंतीव्रवेदनम् ।
त्रिदोषलिङ्गं तं कुष्ठं काकणं नैवा सिद्धयति ॥
अर्थ-जिसका आकार चिरामेठीके सदृश होता है अर्थात् बीचमें काला और किनारों पर लाल अथवा बीचमें लाल और किनारों पर काला, जो किञ्चित् पाकयुक्त और तीव्र वेदनायुक्त होता है उसे काकणक कुष्ठ कहते हैं, यह त्रिदोषाश्रित होने से आसाध्य होता है । यह सात प्रकारके महाकुष्ठ वर्णन किये गये हैं ॥

अब शुद्धकुष्ठों का वर्णन करते हैं ॥

एक कुष्ठ और चर्म कुष्ठके लक्षण ।

अस्वेदनं महावास्तुयन्मत्स्यशकलोपमम् ।
तदेक कुष्ठं चर्मोत्थं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥
अर्थ-जिसमें पसानी न आवे, जो बहुत जगह में व्याप्त हो जो मछलीके टुकड़ों के

समानहो उसे एककुष्ठ कहते हैं इसके वि-
षयमें सुश्रुत लिखता है कि “ कृष्णारुणं
येन भवेच्छरीरं तदेकं कुष्ठं प्रवदन्यसाध्यम्
अर्थात् जिससे देह फाला वा लाल पड़जाता
है उसे एककुष्ठ कहते हैं और यह असाध्य
होता है ।

जिसमें देहकी त्वचा हाथीके चमड़ेके स-
मान मोटी होती है उसे चर्मकुष्ठ कहते हैं ।

किटिम कुष्ठ के लक्षण ।

श्यावंकिणंखरस्पर्पपरुपांकिटिमंस्मृतम्

अर्थ जो काला, किण के सदृश खरस्पर्श
और खरदरी होती है उसे किटिम कहते हैं
सुश्रुत कहता है कि जिसमें कड़े गोल
चकत्ते से होते हैं और जो अत्यन्त खुजली
चलने के पीछे क्षरने लगता है उसे किटिम
कहते हैं ।

वैपादिका के लक्षण ।

वैपादिकंकरेपादेस्फोटनंतीश्रवेदनम् ॥

अर्थ—हाथ पांवके फटनेसे जो तीव्र वे-
दना युक्त होता है उसे विपादिका कहते
हैं, यहां सुश्रुत लिखता है कि “ कण्डूमती
दाहहजोपपन्ना विपादिका पादगतयेमेव, ।
अर्थात् खुजली दाहादियुक्त का नाम वि-
पादिका है और यह पांवही में होती है, ”
'श्रमेव, ये दोनों शब्द 'पादगता' के पास
ऐसे ढंगसे डाले गये हैं कि इससे जाना
जाता है कि यह पांवही में होती है इससे
भागमें इसका विवाई कहा जाना संभव हो
सकता है और विपादिका, इस शब्द के
अर्थ से भी 'पांवका फटनाही, प्रतीत होता

है, परन्तु यहां इन दोनों आचार्यों का मत
भिन्न है, यदि यह ' विवाई, न भी होती
भी विवाई कोठ से कम नहीं होती क्योंकि
इसकी वेदनाको वेही जानते हैं जिनके
यह होती है ।

अलसकके लक्षण ।

सकण्डूकैःसरावैश्रैगण्डैरलसकंस्मृतम् ।

अर्थ—जिसमें खुजली चलती हो, जो ल-
लरंगकी हो तथा जिसमें बड़े २ फोडे हो
गये हों उसे अलसक कहते हैं ॥

दद्रुमण्डलके लक्षण ॥

सकण्डूरागपिडकंदद्रुमण्डलमुद्रतम् ॥

अर्थ—जो खुजली युक्त और लालवर्ण
की फुत्सियों से युक्त हो जिसमें ऊंचे २
चकत्ते होजाय उसे दद्रुमण्डल कहते हैं ॥

चर्मदलके लक्षण ॥

रक्तंसकण्डूसस्फोटंसखदलतिचापियत् ।

तश्चर्मदलमारुयातंसस्पर्शासहमुच्यते ॥

अर्थ—जिसका वर्ण लाल हो जिसमें खु-
जली चलती हो, जो फोडे और वेदनाओं
से युक्त हो, जो फटगयी हो, जिसमें हाथ
का लगाना सहा न जाय उसे चर्मदल
कहते हैं ॥

पामाके लक्षण ।

**पामाःश्वेतारुणाःश्यावाःपिडकाःकण्डूला
भृशम् ॥**

अर्थ—जिसमें सफेद, लाल, फाली बहुत
खुजलीयुक्त फुत्सियां हों उसे पामा कहते हैं ।

विस्फोटकके लक्षण ।

**श्वेताःश्यावारुणाभासाविस्फोटाःस्युस्तं
नृत्वचः ।**

अर्थ....जिनमें सफेद, काले और लाल रंगकी शलक मारतीहो और जिनकी त्वचा पतलीहो ऐसे फोड़ोंको विस्फोटक कहते हैं शतारुके लक्षण ।

रुक्तश्यावसदाहार्त्तिग्रतारुः स्याद्दुग्धमम्
अर्थ....जिसमें लाल काले दाहयुक्त बहुत से प्रणहोज्ञाप उसे शतारु कहते हैं ॥

विचर्चिकाके लक्षण ॥

सकण्ठःपिडकाः श्यावावहुसावाविच-
र्चिकाः ।

अर्थ....खुजलीयुक्त काले रंगकी ऐसी फुलियां जिनमें बहुत स्राव होताहो उन्हें विचर्चिका कहते हैं ॥

कुष्ठोंको दोषपरत्व ।

वातेऽधिकतरेऽकुष्ठफालमण्डलंफे ॥
पित्तैर्वाऽदुम्बरां वियात्काकणन्तुत्रिदोष
जम् । वातपित्तश्लेष्मभिन्नेवातश्लेष्म
पिचाधिके ॥ ऋष्यजिह्वपुण्डरीकंसि
ध्मकुष्ठं चजायते । चर्मरुग्मेककुष्ठश्चकि
दिमसत्रिपादिकम् ॥ कुष्ठश्चालसकज्ञेयं
प्रायोवातकफाधिकम् । दम्ब्र्श्मदलपामा
विस्फोटाश्चशतारुः ॥ पित्तश्लेष्माधि-
काःप्रायकफमायाविचर्चिका ।

अर्थ....कपालकुष्ठमें वात अधिक होती है । मण्डलकुष्ठमें कर्ककी अधिकताहै । औ-
दुम्बरकुष्ठमें पित्तकी अधिकता है । और
काकणक कुष्ठमें तीनों दोषोंकी अधिकता
है । ऋष्यजिह्व में वातपित्तकी अधिकता
है । पुण्डरीकमें कर्कपित्तकी और सिध्म कुष्ठ
में वातकर्ककी अधिकता होती है ।

चर्मकुष्ठ, एककुष्ठ, किटिम, त्रिपादिका
और अलसक इन कुष्ठों में प्रायः वातकफ
की अधिकता होती है - दट्ट, चर्मदल,
पामा, विस्फोटक और शतारु इनमें प्रायः
कर्कपित्तकी अधिकता होती है, इसीतरह
विचर्चिका में कर्ककी अधिकताहोती है ॥

कुष्ठों में चिकित्साक्रम ।

सर्वत्रिदोषजकुष्ठदोषाणाञ्च यत्नवत् ॥
यथास्वर्लक्षणैर्धुद्ध्युद्धानां क्रियते क्रिया
दोषस्य यस्यपश्येत्कुष्ठेषु विशेषलिङ्गमुद्दि-
क्तम् । तस्यैवशर्मदुर्याचतःपरञ्चानुव
न्धस्य ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कुष्ठ त्रिदोषसे उत्पन्न होते
हैं, इनमें लक्षणों द्वारा दोषों का बलावल
देखकर तदनुसार चिकित्सा करना उचित
है । जिसकुष्ठमें जिस दोषके बड़ेहूए लक्षण
दिखाई दें प्रथम उसीकी चिकित्सा करे ।
तत्पश्चात् अनुबन्धी दोषोंकी चिकित्सा
करना चाहिये ।

कुष्ठकी पहचान ।

कुष्ठविशेषैर्दोषादोषविशेषैः पुनः कुष्ठानि ।
ज्ञायन्ते तैर्हेतुहेतुस्तांश्चमकाशयति ॥

अर्थ—कुष्ठ के भिन्न २ भेदों से दोष
और भिन्न दोषों के लक्षणों से कुष्ठ पह-
चानी जाती है, इसीतरह कुष्ठसे हेतु और
हेतुओं से कुष्ठ जाननेमें आती है, जैसे
कपालकुष्ठ के लक्षणों से वाताधिक्य और
वातकी अधिकता से कपालकुष्ठ की संभा-
वना होती है ।

वातजादि कुष्ठों के लक्षण ।

रीस्यंशोषस्तोदःशूलसङ्कोचनंतथायासः

पारुष्यस्तरभावोर्हर्षःश्यावारुणत्वंच ॥
कुष्ठेपुवातलिङ्गंदाहोरागःपरिस्रावःपाकः
विस्रोगन्धःक्लेदःयथांगपतनञ्चपित्तकृत
म् ॥ श्वैत्यंश्वैत्यंकण्डूःस्वैर्यसोत्सेधगौर
र्षस्नेहाः । कुष्ठेपुतुकफलिङ्गंजन्तुभिरभि
भक्षणंक्लेदः ॥ सर्वैरैतैर्लिङ्गैर्युक्तमतिमा
नृषिवर्जयेदबलम् ॥

अर्थ—जित कुष्ठ में रूक्षता, शोष, तोद
शूल, संकोच, आयास, कर्कशता, खरखराप
न, रोमोद्गम, कालापन, और लड़ाई, हों उसे
दातजन्यकुष्ठ समझो ।

दाद, रक्तवर्ण, स्नाय, पाक, घित्तगंध,
क्लेद और किसी अवयव का गिर पडना ये
पित्तकृत् कुष्ठ के लक्षण हैं । सफेदाई,
शीतलता, खुहली, स्थिरता, ऊंचापन, भारापन,
चिकनाई ये कफकृत् कुष्ठके लक्षण हैं । जिस
कुष्ठ में कांडे पडगये हों, क्लेद हो, तथा
पूर्वोक्त तानों दोषों के लक्षण हों और रोगी
दुर्बलहो तो वह कुष्ठ दुश्चिकित्स्य होता है ।

कुष्ठ को असाध्यत्व ।

तृष्णादाहपरीतंशान्ताभिर्जन्तुभिर्जग्धम्
वातकफप्रबलंयद्यदेकदोषोत्वर्णनतत्क
च्छम् ॥ कफपित्तवातपित्तप्रवलानिनतु
कृच्छ्रकुष्ठानि ॥

अर्थ—जिसकुष्ठ में तृष्णा, दाह, मन्दाग्नि
या कांडे पडगये हों वह असाध्य है । वात
कफाधिक वा एक दोषाधिक कुष्ठ कृच्छ्र
माध्य नहीं होता है और जिन कुष्ठों में क
फपित्त प्रबल होते हैं वे अत्यन्तकृच्छ्रसाध्य हैं
दोषानुसार चिकित्साक्रम ।

वातांतरेपुसर्पिर्वेधनंक्लेदोत्तरेपुं कुष्ठेषु ॥

पित्तोत्तरेपुमोक्षोरक्तस्यविरचनंचाम्प्रो॥वम
नविरचनयोगाःकल्पोक्ताःशुद्धिर्नाप्रयो
क्तव्याः ॥ मच्छनमल्पेकुष्ठेमतंशिरावेधनं
महितचशस्तं ॥ बहुदोषःसंशोध्यकुष्टी
बहुशोनुरक्षताप्राणान् । दोषेह्यतिमात्रह
तेवायुर्हन्यादवलमाशु ॥ स्नेहस्यपानमि
ष्टंशुद्धेकोष्ठेप्रवाहितेरुधरे । वायुर्हिंशुद्धको
ष्ठंकुष्ठिनमवलंविशतिशीघ्रम् ॥

अर्थ—वातप्रधान कुष्ठमें प्रथमही घृतपा
न, कफप्रधान में वमन और पित्तप्रधान में
रक्तमोक्षण और विरेचन देना चाहिये ॥

कुष्ठरोगियोंके लिये जो वमन विरेचन
के प्रयोग हैं वे कल्पस्थानमें वर्णन किये
गये हैं अल्पकुष्ठमें पछना लगाना और महा
कुष्ठमें सिरावेधन हित है ।

बहुत दोषोंसे युक्त कोष्ठमें बहुतबार सं
शोधन करना चाहिये परन्तु प्राणोंकी रक्षा
करता रहे ऐसा न हो कि संशोधन देते
देते रोगी मरजाय । क्योंकि दोषों के अत्य
न्त निकल जानेसे दुर्बल हुए रोगी को वायु
शीघ्रही मारडालती है ।

संशोधन द्वारा कोष्ठके शुद्ध होने पर
और फस्त खोलनेके पश्चात् रोगीको घृत
पान कराना हितहै क्योंकि कोष्ठके शुद्ध
होनेसे जब रोगी निर्बल होजाता है तब वायु
उसमें बहुतही शीघ्र प्रवेश करती है ।

कुष्ठनाशक प्रयोग ॥

दोषोत्तिलप्टेवृदयेवम्यःकुष्ठेषुचोर्द्धभागेपु
कुष्ठजफलमदनमधुकेःसपटोलान्निम्बरस
युक्तैः ॥ शीतरसःपक्ववसोमधूनिमधु-

कश्चमनानि । कुष्ठेपुत्रिवृतादन्तीत्रिफलाचविरेचनेशस्ताः ॥ सौवीरकंतुपोदकमालोढनमांसवांस्तुशीध्वादीन् । शंसन्त्यथेहराणांयथाविरेकःक्रमश्चेष्टः ॥

अर्थ—हृदयके दोषोंसे उल्लिष्ट होने पर और कुष्ठरोगके शरीरके ऊपरले भाग में होनेपर इन्द्रजौ, मेनकल, मुलहठी, परवल और नीमके रसको पान कराके वमन करावे कुष्ठरोगमें वमन कराने के लिये मेनकल

के शीतकपाय या कपायमें शहत और मुलहठी का चूर्ण डाले । तथा निसोय दन्ती और त्रिफला ये विरेचन में हितकारी हैं

विरेचनकर्त्ता द्रव्यों में सौवीरक, तुपोदक आश्रव वा शीधु लेना चाहिये तत्पश्चात् विरेचन में जो जो क्रम वर्णन किया गया है वह भी करना चाहिये ।

कुष्ठमें स्थापन प्रयोग ।

दार्वाद्यृहतीभैर्बैःपटोलपिचुमर्दमदनकृतमालैः । सस्नेहरास्थाप्यःकुष्ठीसकलिङ्गयधमुस्तैः ॥

अर्थ—दाहहलदी, बडी कीटरी, खस, परवल, नीम, मेनकल, कंजा, इन्द्रजौ और मोथा इनके काथ में सिद्ध किये हुये स्नेहसे फोडी को आस्थापनवास्ति देवे ॥

कुष्ठ में अनुवासन प्रयोग ।

घातोल्वणविरिक्तनिरूढमनुवासनार्हमालक्ष्य । फलमधूकनिम्बकुटजैःसपटोलैः ॥ साधयेत्स्नेहम् ॥

अर्थ—विरेचन और निरूढहण देने के पश्चात् यदि रोग वाताधिक्य हो तो रोगी को

मेनकल, मुलहठी, नीम, कुडाकी छाल और परवल इनके साथ सिद्ध किये हुए स्नेहकी अनुवासन वास्ति देवे यदि यह अनुवासन के योग्य हो ।

कुष्ठमें नस्य प्रयोग ।

दन्तीमधूकसेन्धवफणिज्झकाःपिप्पलीकरञ्जफलम् । नस्यस्यात्सविडङ्गक्रिमिकुष्ठकफप्रदोपन्नम् ॥

अर्थ—दन्ती, मुलहठी, संधानमक, फणिज्झक, पीपल, कंजा और घायविडंग इनकी नस्य देने से क्रिमिरोग कुष्ठ और कफप्रदोपनष्ट होजाते हैं ।

अन्य क्रम ।

वैरेचनिकैर्धूमैःश्लोकस्थानेरितैश्चशाम्यन्ति । क्रिमयःकुष्ठकिलासमयोजितैरुक्तमाङ्गस्थाः ॥ स्थिरकाठिनमण्डलानांखिन्नानांस्तरमणालीभिः । कूर्चविघटितानारक्तोत्केशोपनेतव्यः ॥

अर्थ—सूत्रस्थान में जो विरेचनकर्त्ता धूम वर्णन किये गये हैं उन के छेनेसे शिरस्थ क्रिमिरोग, कुष्ठ और किलास शीघ्र नष्ट होजाते हैं ।

स्थिर और कठोर चकत्तों को जो प्रस्तर स्वेदनकी रीति से स्वेदित किये गये हैं अथवा कूर्च से विघटित किये गये हैं उनके उत्कलेशित रक्तको निकाल देना चाहिये ।

रक्तमोक्षणविधि ।

आनूपवारिजानांमांसानांपोट्टलैःसुखीष्णैश्च ॥ स्वित्तोस्त्विजंवलिलेखंत्कुष्ठंतीक्ष्णेनशस्त्रेण ॥ शंघरागमार्थमयवामृद्गा

लावृभिराहरेद्रक्तम् । मच्छित्तमल्पकुष्ठं
विरचेयेद्वाजलोकाभिः ॥ येलेषाःकुष्ठा
नांगुज्यन्तेनिर्हृतास्त्रदोषाणाम् । संशो-
पिताशयानांसद्यःसिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥

अर्थ—आनूप और आँदक पशु पक्षियों
के मांसकी सुखोष्ण पोटाडियोंसे अग्नि और
उरिस्विन्न कुष्ठका ताँपण शस्त्रसे रुधिर नि-
कालनेके लिये लेखन को अथवा साँगीऔ-
र अलावृसे रक्तको निकाले तथा क्षुद्र कुष्ठ
में पछनालगाकर जोकोसे रुधिरको निकाले
कोष्ठके शुद्ध होने पर और रुधिर त-
था दोषोंके निकालनेपर जो लेप किये जा-
ते है वे तत्काल फलप्रद होतेहैं ।

येषुनशस्त्रकर्मतेस्पर्शेन्द्रियनाशनानियानि
स्युः । तेषुनिपात्यक्षारंरक्तंचदोषचनिः
स्त्राव्य ॥ पापाणकठिनपरुपेसृष्टेकुष्ठे
स्थिरपुराणेच ॥ पीतागदस्यकार्योविषैः
मदेहोऽगदैश्चानु ॥ स्तब्धानिमृत्सृष्टा
न्यस्वेदनकण्डूलानिकुष्ठानि । कूर्चदन्ती
त्रिफलाकरवीरकरञ्जनिम्बकुटजानाम् ॥
जात्यर्कनिम्बःकुटजैर्वापत्रैःशस्तैःसमुद्रफे-
नैर्वा । घृष्टानिगोभयैर्वाततःप्रलेपैःप्रदे-
ह्यानि ॥

अर्थ—जिन कुष्ठोंमें शस्त्र काम नहीं दे-
ता है और जिनमें केवल त्वचा का नाश
होताहै उनमें क्षार लगाकर रक्त और दोषों
को निकाल डाले ।

जो कुष्ठ पत्थरके समान कठोर, परुष
सुत; स्थिर और पुराना होता है उसमें रो-
गीको विपनाशक औषधों का पान करावे ।
तत्पश्चात् विष औषधियोंका लेपन करे ।

जो स्तब्ध, अत्यन्त शून्यता से फटी
हुई पसीनारहित और खुजलीयुक्त होता है
उनको दन्ती; त्रिफला; कनेर; कंजा; नीम
कीछाल; बुडाकी छाल इनकी कूर्चसे अथ-
वा चमेली; आक; नाँम और कुडाके पत्तों
से; अथवा शस्त्रोंसे; अथवा समुद्रफेनेस अ-
थवा गोबरसे रिगड़कर प्रलेप करे ॥

पित्तकुष्ठकी चिकित्सा ।

भारुतकफकुष्ठघ्नं कर्मोक्तं पित्तकुष्ठानां कार्यम् ।
कफपित्तरक्तहरणं तिक्तकपायैः प्रश-
मनञ्च सर्पीपि ॥ तिक्तकानि च यच्चान्य
द्रक्तपित्तनुत्कर्ष । बाह्याभ्यन्तरमभ्यन्तत्का-
र्यपित्तकुष्ठघ्नम् ॥

अर्थ—यातकुष्ठ और कफकुष्ठकी चिकि-
त्सा कही गई है और पित्तकुष्ठमें कफपित्त
तथा रक्तनाशकर्म करना चाहिये । ति-
क्तकपाय; तिक्तघृत तथा अन्य रक्तपित्तना-
शक कर्म एवं पित्तकुष्ठ के नाशकरने वाले
उत्तम २ बाह्य और आभ्यन्तरकर्म करने
चाहिये ।

दोषाधिक्यविभागादित्येतत्कर्मकुष्ठनु-
त्नोक्तम् । वक्ष्यामिशमनं प्रायस्त्वग्दो-
षसाधन्यात् ॥

अर्थ—यातपित्तादि दोषोंकी अधिकताके
अनुसार कुष्ठनाशक कर्मोंका वर्णन किया ग-
या है अब त्वग्दोषकी समानता से कुष्ठना-
शक कर्मोंका वर्णन करेंगे । सब प्रकार के
कोष्ठ त्वचाको विगाडतेहैं इस लिये सबप्रका-
र की कोष्ठोंमें त्वग्दोष साधारण धर्म है ॥

कुष्ठनाशक प्रयोग ।

दावीरसाञ्जनवागोमूत्रेणप्रवाधतेकुष्ठम् ।
अभयाप्रयोजितावामांसव्योपगुडतैलाः ॥

अर्थ ...दारुहल्दी वा रसौत वा हरडका गोमूत्र के साथ प्रयोग करने से कुष्ठ नष्ट होजाताहै; इसमें मांस, सोंठ, मिरच, पपिल, गुड तैलका त्याग करदे ।

कुष्ठनाशक दूसरा प्रयोग ।

मूलंपटोलस्यतथागवांस्याःपृथक्पलाशं
त्रिफलात्वचश्च । स्यात्त्रायमाणफडुरो
हिणीच भागाद्विकानागरपादयुक्ता ॥
पलंत्यथैकसहचूर्णितानांजलेभृतदोपहरं
पिवेन्ना । जीर्णैरसेधन्वमृगग्रजानांपुरा
णशाल्योदनमाददीत ॥ कुष्ठानिशोकंग्रह
णमिदोपं अर्शांसिकृच्छ्राणिहलीमकञ्च
पद्मात्रयोगेननिहन्तिचैव हृद्रस्तिशूलंवि
पमज्वरञ्च ॥

अर्थ—पुरखलकी जड़; इन्द्रायणकीजड़;
त्रिफला की त्वचा [गुठली निकालकर]
त्रायमाणा; कुठकी ये आधे २ पल
लेवै और सोंठ तोले भर लेकर सबका चूर्ण
कर लेवै; इस चूर्ण मेंसे प्रतिदिन एकपल
लेकर जल के साथ औटाकर पान करें ।
औषध के पचनेपर धन्वदेशस्थ पशुओंके
मांसरसके साथ पुराने शालीचांबलोंका भात
छः दिवस तक सेवन करनेसे शोक, कोढ़
ग्रहणीदोष, कृच्छ्राप्यवर्श, हर्लीमक, हृद्रशूल;
वस्तिशूल, और विपमज्वर ये नष्टहोजाते हैं

कुष्ठनाशक अन्यप्रयोग ।

मुस्तंन्योत्रिफलामक्षिष्ठादारुपञ्चम्
लेदे । सप्तच्छदनिम्बत्वक्सविशालश्च ।

त्रकोमूर्वा ॥ चूर्णतर्पणभागैर्नवभिःसंयो-
जितंसमध्वाज्यम् । श्रेष्ठंकुष्ठानिवर्हणमेत
त्प्रायोगिकंभक्ष्यम् ॥ श्वयथुंसपाण्डुरोगं
श्वितंग्रहणीप्रदोपमर्शांसि । ब्रध्मभगन्द
रपिडकाकण्डूकोठांश्चविनिहन्ति ॥

अर्थ— मोधा, त्रिकुटा, त्रिफला मजीठ
दारुहल्दी, लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल सप्तपर्ण
नामकी छाल, इन्द्रायण की जड़, चीता, मरो-
डफली, ये सब समान भागलेकर नौगुनाजौ
का सत्तू मिलाकर शहत और घृतके साथ
सेवन करें। यह प्रयोग कुष्ठ के नाश करने
में अत्यन्त उत्तम है । यह शोथ, पाण्डुरोग,
श्वित्रकुष्ठ, ग्रहणीदोष, अर्श, मज्ज, भगन्दर,
पिडका कण्डू, और कोढ़ इन सब रोगोंको
दूर करता है ।

मुस्तकुष्ठनाशक प्रयोग ।

त्रिफलातिविपाकटुकानिम्बकालिंगकाव
चापटोलानाम् । मागधिकारजनीद्वयपत्र
कमूर्वाविशालानाम् ॥ भूनिम्बपलाशा
नामदद्याद्विपलंततस्त्रिद्वद्वित्रिगुणा ।
तस्याश्चपुनर्वास्तीतच्चूर्णमुत्तिनुत्परमम् ॥

अर्थ—त्रिफला अतीस, कुठकी नामकी
छाल, इन्द्रजौ, वच, परवल, हल्दी, दारुह-
ल्दी, पद्मास, मरोडफली, इन्द्रायणकीजड़,
चिरायता, टाककीछाल इनमें से प्रत्येक दो
दो पल लेवै, निम्बोथ चारपल और बारहपल,
ब्राह्मी इन सबका चूर्ण बनाकर सेवन करने
से मुस्तकुष्ठ नष्टहोता है ।

मध्वासवका प्रयोग ।

स्वदिरसुरदारुसारंश्रपयिन्वातदमेनतो ।

यार्थः ॥ क्षौद्रप्रस्थकार्यः कार्येतेचाष्टपल
केच ॥ ततश्चायश्चूर्णानामष्ट पलंप्राप्ति
पेतथामूनि । त्रिफलात्वक्मरिचम्पत्रङ्ग-
नकञ्चकपर्शम् ॥ मत्स्याण्डिकामधुममां
तन्मासमायसेभाण्डे । मध्वासवभाचरतः
कुष्ठाकिलासेशमंयाताः ॥

अर्थ—खैरकी लकड़ी और देवदारु का
गूदा इनको इनही के रस में पकावै जब
पकजाय तब उस में दोप्रस्थ क्षौद्र, आठ२
पल उक्त दोनों चूर्ण, आठ पल लोहचूर्ण
और एक २ कर्ष त्रिफला की त्वचा, फा-
लीमिरच, तेजपात और धतूरा, शहतके व-
रायर मिथ्री इन सबको भिठाकर एक म-
हीने पर्यंत लोहे के पात्रमें भरकर रखदे,
इस तरह मध्वासव तयार होता है, इसेफ
सेवन करनेसे कुष्ठ और किलासरोग नष्ट
होजाते हैं ।

कनकविन्दु अरिष्ट ।

स्वदिरकपायद्रोणं कुम्भे घृतभाविते समा-
घ्राप्य । द्रव्याणि चूर्णितानि देवानित्वष्ट
पलकानि । त्रिफलाव्यापविडङ्गरजनी
सुस्तादरूपकेन्द्रयवा । सांवर्णत्वक्छिन्ना
मासंनिदधीतथान्यराशौ च । प्रातःप्रातः
पिवतः युक्तयामासेन कुष्ठहृद्भवति । पक्षे
णार्शः श्वासभगन्दरंकासकिलासदुष्टम् ।
पाण्डुसवातरकंहन्यात्सप्रमेहशोपाञ्च ।
नाभवतिकनकवर्णः पीत्वारिष्टं कनक
विन्दुम् ॥

अर्थ—खैरकी एक द्रोण क्वाथ पीसे
चिकने किये हुए बर्तनमें भरकर उसमें नीचे

लिखे हुए द्रव्य प्रत्येक आठ आठ पल डाल
देवै, जैसे- त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल,
बायविडंग, हलदी, नागरमोथा, अहूसा,
इन्द्रजौ, गिलोय और धतूरे की जड़की छाल
इन्है डालकर उस घडे को धानके ढेरमें एक
महिने तक गढा रहने दे फिर इसका प्रति
दिन प्रातःकाल सेवन करनेसे एक महिनेमें
कुष्ठ जाता रहना है और पन्द्रह दिन सेवन
करने से वक्रासीर, श्वास, भगंदर, खांती,
किलास, पांडुरोग, वातरक्त प्रमेह और शोष
दूर होजाते हैं. इस कनकविन्दुनामक अरिष्ट
के सेवनसे मनुष्य सुवर्ण के रंग के सदृश
होजाताहै.

कुष्ठेष्वनिलरूपकृतेष्वेवंपेयस्तथैवपित्ते-
षु । कृतमालकायश्चाप्येपविशेषात्कफ
कृतेषु ॥

अर्थ—घातकफसे उत्पन्न हुए कुष्ठमें तथा
पित्तज कोष्ठमें अमलतास का काय पीना
चाहिये और कफज कोष्ठमें तो यह क्वाथ
विशेष उपयोगी होता है ।

श्वित्रकुष्टनाशक प्रयोग ।

त्रिफलासवश्चर्मांडः सचित्रकः श्वित्ररोग
कुष्ठघ्नः । क्रमुकदशमूलदन्तीवराङ्गमधु
योगसंयुक्तः ॥

अर्थ—त्रिफला का आसव और मौड
(गुडकी शराव) इनको चाँतेके साथ
पान करनेसे श्वित्ररोग नष्ट होजाता है
अथवा सुपारी, दशमूल, दन्ती, दालचीनी
इन के साथ में शहत मिलाकर गुडके मय
के साथ पीने से श्वित्रकुष्ठ नष्ट होताहै ॥

कुष्ठपर पथ्यापथ्या ।

लघूनिचान्नानिहितानिविद्यात् कुष्ठेषुशा
कानिचित्तकानि । भद्रातकेशप्रिफलैः
सनिम्बैर्पुक्तानिचान्नानिघृतानिचैव ॥
पुराणधान्यान्यथजङ्गलानिमांसानियुद्धा

श्चपटोलयुक्ताः । शस्तानगुर्वम्लपयोद
धीनिनाम्रूपमत्स्यानगुडास्तिलांश्च ॥
अर्थ—हलकाभन्न, तिक्तसाफ, भिलाया
त्रिफला और नामके साथ सिद्ध किया हु-
आ अन्न और घृत, पुराने चाबल, जांग-
लपशुओंका मांस, मूंग, परबल ये सब कु-
ष्ठरोग पर हितकारी हैं । भारी, खटा अन्न,
दूध, दही, आनूपजोवीका मांस, मछली, गुड
और तिल ये सब अहित हैं ।

कुष्ठपर लेप ।

एलाकुष्ठन्दावीशतपुष्पाचित्रकंविडङ्गञ्च
फुष्टैलेपनमिष्टरसाञ्जनञ्चाभयाचैव ॥

अर्थ—इलायची, कूठ, दारुहलदी, सोंफ
चीता, वायर्विडग, रसौत और हरड इनका
लेप कुष्ठ रोग पर फटना चाहिये ।

दूसरा लेप

चित्रकपेलाविस्म्वीट्टपकात्रिट्टदर्कनागरक
म् । चूर्णीकृतमष्टाहंभावयितव्यम्पलाश
स्य ॥ क्षारणगवाम्मूत्रघृतनेतेनास्यमण्ड
लान्याथ । भिद्यन्तेचविशन्तिचिलसा
न्यर्काभितप्तानि ॥

अर्थ....चीता, इलायची, कंदूरी, अहूसा,
निसोध, आक और सोंठ इनका चूर्ण कर
ले फिर गौके मूत्रमें ढाकका क्षार मिला कर
उसे छानले इस छनेहुए मूत्रका पूर्वोक्त

चूर्णको आठ दिन तक भावना देवे, फिर
इस लेपको लगाकर सूर्यकी धूप से उस-
स्थानको तपावे, इस लेपसे मण्डल कुष्ठ व-
हुत शीघ्र भिन्न होकर विलीन हो जाता है ।

कुष्ठपर अन्य लेप ।

मांसीमरिचंलवणंरजनीतगरंस्तुधागृहोद्भू
मःपूत्रापित्तक्षारःपालाशःकुष्ठनुरलेपः ॥
त्रपुसीसमयश्चूर्णमण्डलनुत्फल्गुचित्रकं
वृहती । गोधारसःसलवणंदारुचमूत्रञ्च
मण्डलनुत् ॥ कदलीपालाशपाटलिनु
लक्षाराम्भसाप्रसवेन । मांसेपुतोयकार्य
कार्यम्पिष्टेचकिण्वेच ॥ तैमोदिकःसुजातःकि
ण्वैर्जनितमलेपनंशस्तम् । मण्डलकुष्ठवि
नाशनमातपसंस्थेक्रिमिघ्नञ्च ॥

अर्थ....जटामासी, कालीमिरच, सेंधा न-
नम, हलदी, तगर, गृहधूम, मूत्र पित्त और
ढाकका खार इनका लेप करनेसे कुष्ठरोग
जाता रहता है । अथवा रांग, सीसा, लोहचू-
र्ण, चांता और बडी कटेरी इनका लेप कर-
ने से मण्डल कुष्ठरोग जाता रहता है अथ-
वा गोधारस (लताविशेष) सेंधानमक, दा-
रुहलदी और गोमूत्र इनका लेप करने से
मण्डलकुष्ठ दूर होजाता है अथवा केली, ढां-
क, पाटला, हिज्जल इनके क्षारके शुद्ध
जल में मांसका पाक करे फिर उसी जलमें
चाबलों को पीसकर उसमें मुराकिण्व मिला
दे । यह सब मिलकर मोदक के समान गो-
लासा बन जायगा फिर, इसमें से मुराकिण्व
निकालकर लेप करनेसे मण्डल कुष्ठ जाता-
रहता है और लेपित भागको धूप में तपा-
नेसे क्रिमिरोम नष्ट होजाता है ।

कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

मुस्तमदनं त्रिफलाकरञ्ज आरग्वधं कलि-
ङ्गयथाः । दावीं सप्तपर्णास्नानं सिद्धार्थं
कंजाम् ॥ एकपायो वमनं विरेचनं वर्ण-
कस्तथोद्धर्षः । त्वग्दोषकुष्ठशोफनवाहनः
पाण्डुरोगघ्नः ॥ कुष्ठकरञ्जबीजान्येडगजः
कुष्ठसूदनोलेपः । प्रधुन्नाडवीजसैन्धवर-
साञ्जनकपित्थरोध्राश्च ॥ करवीरमूल
कल्कः कुटजकरञ्जयोः फलन्वचन्दाव्याः
सुमनःप्रवालयुक्तोलेपः कुष्ठारहः सिद्धः ॥
रोधस्य धातकीनां वत्सकबीजस्य नक्तमा-
लस्याकल्कश्च मालतीनां कुष्ठेपुद्गूर्त्तनालेपः
शैरीपीत्वक्पुष्पकार्पास्याराजवृक्षपत्रा-
णि । पिष्ट्वा च काफमाचीचतुर्विधः कुष्ठ-
नुलेपः ॥

अर्थ—मोथा, मेनफल, त्रिफला, कंजा
अमलतास, इन्द्रजौ, दारुहलदी, सप्तपर्ण
और सफेद सरसों इनको डालकर गरम
किये हुए जलसे स्नान करे । तथा इसी
कपायके पान करानेसे वमन और विरेचन
होकर कुष्ठ नष्ट होजाता है तथा इन्ही
द्रव्योंके कल्कसे उबटना करने पर त्वचा
के दोष, कुष्ठ, सूजन, प्रवाहन और पाण्डु-
रोग जाते रहते हैं अथवा कूठ, कंजाके धो-
ज, चक्रवर्ध, इन का लेप करनेसे कुष्ठरोग
शान्त होता है । अथवा चक्रवर्धके बीज,
सैन्धानमक, और, रमौत, कैय, लोध, कनेर
की जड़, कुडाकी छाल, कंजा, दारुहलदीकी
छाल और फल, चोमली की काँपल इनका
लेप करनेसे कुष्ठ दूर होता है ।

लोध, घायके फूल, इन्द्रजौ, कंजा और
मालती इनको पीसकर देह पर मल और
लेप करे तो कुष्ठ दूर होताहै । सिरसकी
छाल, कपासके फूल, अमलतासके पत्ते और
मकोय इन चार प्रकारका लेप करने से
कुष्ठ रोग दूर होजाता है ॥

सातप्रकार के कपायादि योग ॥

दाव्यां रसाञ्जनस्य चानिम्बपटोलस्य खदि-
रसारस्य । आरग्वधवृक्षकयोस्त्रिफलायाः
सप्तपर्णस्य । इति पञ्चकाययोगानिर्दिष्टाः
सप्तमश्चतिनिशस्य । स्नानेपानेचमता-
स्तथाप्यश्चास्यसारस्य ॥ आलेपनं प्रघ-
र्षणमवचूर्णनमेतएव च कपायाः । तैलघृ-
तपाकयोगे चैवन्तेकुष्ठशान्त्यर्थम् ॥

अर्थ—दारुहलदी और रसौतका काय
नीमकी छाल और परबलका काय, खैर
सारका काय, अमलतास और इन्द्रजौ का
काय, त्रिफलाका काय, सप्तपर्णका काय
और सातवां तिनिशका काय इन काथों
का स्नान और पानमें प्रयोग करने से कु-
ष्ठ जाता रहता है तथा तिनिशके सारका
लेप, प्रघर्षण और अवचूर्णन [चुकी] भाँ
हितहै, इसीतरह उक्त कपायों में सिद्ध कि-
या हुआ तेल और घीभी कष्टनाशक होताहै
कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

त्रिफलानिम्बपटोलमक्षिष्ठारोहिणीवचा
रजनी । एकपायोऽभ्यस्तोहिनस्तिक
फापिचजं कुष्ठम् ॥ एतैरेव च सर्पिः सिद्धवा-
तोल्बणजयतिकुष्ठम् । एकचकल्पोदृष्टः ख-
दिरासनदाखनम्बानाम् ॥

अर्थ—त्रिस्तला, नीम, परवल, मजीठ, कुटकी, वच, हल्दी इनके कषायके पीने का अभ्यास करनेसे कफपित्त से उत्पन्न हृथः कुण्ठ जागा रहताहै । इसी कषाय में सिद्ध कियाहुआ घृत वाताधिक कुष्ठ को विजय करताहै । और यही विधि खैर, असन, दाहहल्दी और नीम के कषाय की है ।

अन्यप्रयोग ॥

कुष्ठार्कतुरथकटफलमूलकवीजानिरोहिणी कटुका । कुटजफलोत्पलमुस्तंबृहतीकर वीरकाशीशम् ॥ एङ्गजनिम्वपाठादुराल भाचित्रकोविडंगञ्च । तिक्तेक्ष्वाकुवीजं कम्पिल्यकसर्पपत्रचादूर्वा ॥ एतैस्तैलांसि क्षुण्ठघ्नंयांगएपवालेपः । तन्मर्दनप्रघर्षणमवचूर्णनभेपएवेष्टः ॥

अर्थ—कूठ, आक, नीलाधोधा, कायफल, मूलीकेवीज, कुटकी, इन्द्रजै, नीलोत्तर, मोधा, बडीकटरी, कनेर, कसीस, चकवड, नीमकीछाल, पाठा, जवासा, चीता, वायाविडंग, कडवीतूशी के बीज, कवीला, सरसों, वच, दाहहल्दी, इनके कषायमें सिद्ध कियाहुआ तेल कुष्ठनाशक है, तथा इन्हीं द्रव्योंके कल्कका लेप, मालिश, प्रघर्षण और अवचूर्णनभी हितकारक है ॥

कनेर का तैल ॥

श्वेतकरवीररसोगोमूत्रांचित्रकोविडंगश्च कुष्ठृतैलयोगाःसिद्धोयसम्मतोभिपजाम्

अर्थ—सफेद कनेरकारस, गोमूत्र, चीता, और वायाविडंग इनमें सिद्ध कियाहुआ तैल कुष्ठनाशकहै इसपर सब वैद्यकी सम्मतिहै

अन्यप्रयोग ॥

श्वेतकरवीरपल्लवमूलत्वग्बत्सक्विडंगश्च कुष्ठार्कमूलसर्पपशिमुत्वग्रोहिणीकटुका ॥ एतैस्तैलांसाध्यकल्कैःपादांशिकैर्गोमूत्रमुदत्वातैलचतुर्गुणमभ्यंगःकुष्ठकंदूषः ॥

अर्थ—सफेद कनेरके पत्ते, जड, छाल, इन्द्रजै, वायाविडंग, कूठ, आककीजड, सरसों, सहजनेकीछाल, कूठकी छाल, कुटकी इनके कल्कमें चौगुना तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र डालकर पकावै फिर इसकी मालिश करै तौ कोढ़ और खुजली दूर होती है ॥

अन्यतैल ॥

तिक्तेक्ष्वाकुवीजद्वैतुथैराचनाहरिद्रेद्वे । बृहतीफलमेरुण्डःसविशालःचित्रकोमूर्वा ॥ काशीशर्दिगुशिग्रूयूपणसुरदारुतुम्बरुविडङ्गम् । लांगलकंकुटजत्वकटुकाख्यारोहिणीचैव ॥ सर्पपकल्कैरेतैर्मूत्रैचतुर्गुणसाध्यम् । कण्डूकुष्ठविनाशनमभ्यङ्गान्मारुतकफघ्नम् ॥

अर्थ—कडवीतूवीके बीज, दो प्रकार का धोधा, गाधेचन, दोनों हल्दी, कटरीकाफल, अण्डीकाजड, इन्द्रायणकाजड, चीता, मरोडफली, कसीस, हींग, सहजना, त्रिकुटा, देवदारु, धनियां, वायाविडंग, लांगली, कुडाकीछाल, कुटकी, और सरसों इनके कल्कमें तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र डालकर तेलको पकावे इस तैलका मर्दन करनेसे खुजली, कोढ़, वात और कफ नष्ट होजाते हैं ॥

कनकक्षीरतैल ॥

कनकक्षीरीशैलाभागीदन्तीफलानिमूल
श्च । जातीफलानिमवालसर्पपलभुनवि
दङ्गकरञ्जत्वक् ॥ समञ्चदार्कपल्लवमू
लत्वद्निम्बचित्रकास्फीताः । गुञ्जैरण्ड
बृहतीमूलकमुरसार्जकफलानि ॥ कुण्डपा
ठामुस्ततुम्बुरुमूर्वाविचासपट्ग्रन्था ॥ एद
गजकदुजशिशुभ्रूपणभल्लातकस्रवकाः ॥
हरितालमवावपुष्पीतुत्थकम्पिलकफोमृता
संगः ॥ सौराष्ट्रीकासीसंदावीत्वक्स
जिकालवणम् ॥ कल्कैरैतैस्तैलकरवीर
कमूलपल्लवकपाये । सार्पपमथवातैलं
गोमूत्रेचतुर्गुणेसाध्यम् ॥ स्थाप्यंकदुका
लावुनिसिद्धंतेनास्वमण्डलान्वाशु । भि-
न्द्यान्निपगभ्यंगास्त्रिमीश्वकण्डूघोनिह
न्यात्कुण्डम् ॥

अर्थ—स्वर्णक्षीरी, मनासिल, भाङ्गी, द-
न्तीफल, दन्तमूल, जायफल, चमेडी के
पत्ते, सफेदसरसों, लहसन, वायविडंग, कंजा
कीछाल, सप्तपर्णी, आकके पत्ते, जड और
छाल, नीमकीछाल, चीता, कोयल, चिरमठी,
भरण्ड, बडीकटेरी, मूलक, मुरसातुलसी,
अर्जकतुलसी, मैनफल, कूठ, पाठा, मोथा,
धनियाँ, मूवी पट्ग्रन्था, वच, चकवड,
कुडा, सहजना, त्रिकुटा, भिलाया, क्षवक,
(तुलसीमेद), हरताल, सोफ, नीलायोथ,
कवीला, अमृतासंग (मुर्दासिंग), सौराष्ट्र-
देशकी मिट्टी, सीसा, दारुहलदीकाँडाल, स-
जीखार, संधानमक, इनकेकल्क तथा कने-
रकाँजड और पत्तों के कषायमें सरसोंकातैल

और उसमें चौगुना गोमूत्र ढालकर तैल
सिद्धकरे, इस तैलको तूथमें भरकर रखदेवे
इस तैलके लगानेसे मण्डलकुष्ठ, क्रिमिरोग
कंठ तथा सब प्रकारके कुष्ठ दूर होताहै ।

सिध्मलेप ॥

कुण्ठमालपत्रंमरिचंसमनःशिलंसकाशी-
शम् । तैलेनयुक्तमुचितसप्ताहंभाजनताम्रे ॥
तेनालिप्तंसिध्मसप्ताहाद्द्वयेतितिष्ठतोद्यमे
मासाश्वरं किलासस्नानंमुचत्वा विधुद्ध
तनोः ॥

अर्थ—रूठ, तमाखूकापत्ता, फालीमिरक,
मनसिल, कशीस इन सबका चूर्णबनाकर ते-
लमें सानकर सात दिवसतक तांबेके पात्रमें
रखदेवे, फिर इसको लगाकर घूममें बैठजा-
या करे, ऐसा करनेसे सिध्मकुष्ठ जातारहताहै ।
तथा शुद्धदेहवाला मनुष्य इसको एक मही-
नेतक लगावे तो किलास कुष्ठ जातारहता-
है परन्तु इसमें स्नानसा नियेधहै ॥

अन्य तैल ।

सर्पपकरञ्जकोशातकीनातैलान्ययैगुदी
नाश्च ॥ कुप्रेपुहितान्याहुस्तैलयच्चारिख-
दिरस्यैतैलानि ।

अर्थ—सरसों, कंजा, तारके बीज, गो-
दी और खैर इन सबके जुदे जुदे तैल कु-
ष्ठनाशक होतेहै ।

विपादिकी की चिकित्सा ।

जीवन्तीमाञ्जिष्ठादावीकाम्पिलकस्तथातु-
त्यम् ॥ एषवृततैलपाकःसिद्धःसिद्धेचस
र्जरसःक्षेप्यः । समधूच्छिष्टोविपादिकाते
नशाम्यतीत्युक्तम् । चर्मककुष्ठ किटिमं कु-
ष्ठशाम्यत्यलसकञ्च ।

अर्थ—जीवन्ती, मजीठ, दाहलदी, कर्षाळा, नीलाधोधा, इनमें घृत और तेलको एक साथ पकावै फिर पकतेसमय राख और मोम डालदे इसको निवारमे भरदेनेसे निवारि जाती रहतीहै, तथा चर्मकुष्ठ एक कुष्ठ किटिप, कुष्ठ, और अलसक ये नष्ट होजातेहैं ।

मण्डल कुष्ठपरलेप ।

किण्वं वराहहृदि रं पृथ्वीकासैः धवञ्चलेपः
स्पात् ॥ लेपो योज्यः कुस्तुम्बुरुणिकुष्ठ
श्चमण्डलमुत् । पूर्तीकादारुजटिलापवव
सुराक्षौद्रमुद्रपर्ण्यै च ॥ लेपः सकाफणा
सोमण्डल कुष्ठपरहः सिद्धः ॥

अर्थ—पुरात्रीज, सूअरका रुधिर, काला जीरा, संधानमक इनका लेप तथा इसमें घ-
नित्रा और कूठ मिलाकर लेप करनेसे म-
ण्डल कुष्ठ दूर होजाताहै । अथवा कंजा दे-
वदारु, जटामांसी पकमय, शहत, मुद्रपर्णी
और काकनासा इनका लेप करने से भी
मण्डल कुष्ठ नष्ट होताहै ।

छः प्रकार के लेप

चित्ररुशोभाञ्जनकी गुह्यच्यपामार्गदेवदा
रुणि ॥ खदिरोधवश्चलेपः श्यामादन्तीद्र-
वन्तीच । लाक्षारसाञ्जनैलापुनर्नवाचे-
तिकुष्ठिनोलेपाः ॥ दधिमण्डयुताः सर्वेदे-
याः पणमारुतकफन्नाः ।

अर्थ—चीता और सहजना । गिलोय,
ओगा, देवदारु । खैर और घवखैर । श्यामा-
दन्ती और द्रवन्ती । लाक्ष, रसोत और
श्यायची । तथा पुनर्नवा । इन छ- आंको

पृथक् पृथक् दधिमण्डमें मित्राकर लेप क-
रनेसे कुष्ठ तथा वातकफ दूर होतेहैं ।

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरकसर्पपैः क्रिमिघ्नैश्च
क्रिमिकुष्ठमण्डलाख्यं दद्रुकुष्ठश्च शममुपैति ।
एडगजः सर्जरमोमूलकवीजश्च सिध्मकुष्ठा
नाम् ॥ काञ्जिकयुक्तन्तुपृथक् मतिमिदमुद्रर्त्त
नंक्रमशोलेपाः ॥

अर्थ.... चकवड, कूठ, संधानमक, सौवी-
रक, सरसों और याधविडंग इनका लेप क-
रनेसे क्रिमि, कुष्ठ, मण्डलकुष्ठ और दाद
जाते रहतेहैं । अथवा चकवड, राख, मूडी
के बीज इनको पृथक् पृथक् काजमें पीस
कर उबटना और लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ
जाता रहताहै ।

अन्य प्रयोग ।

वासात्रिफलापाने स्नाने चोद्वर्त्तने मलेपे च
वृहतीसेव्यपटोलाः सशारिवारोहिणीचैव
खदिरावघातककुभारोहीतककुटजधव
निम्बाः ॥ सप्तच्छदकरवीराः शस्यन्ते
स्नानेपानेषु ॥

अर्थ.... अडूसा और त्रिफला इनको पीने
स्नान करने, उबटने और लेपमें प्रयुक्त क-
रना चाहिये अथवा बडी फटेरी, खस,
परखल, सारिवा, कुटकी, खैरसार, अर्जुन, रो
हेडा, कुडा, धी, नीम, सप्तपर्ण, फनेर इनका
स्नान वा पीनेमें प्रयोग करना चाहिये ।

अभ्यंग प्रयोग ।

जलवाप्यलोहकेशरपत्रप्लवचन्दनमृणा-
लानि ॥ भागोत्तराणिसिद्धं मलेपनं पि
चकफकुष्ठे । यष्ट्याद्वारोधपक्कपटोल

पिचुमर्दचन्दनरसाश्च ॥ स्नानेपानेच
हिताःशुशीतलाःपित्तकुष्ठेभ्यः । आले
पनप्रियंगुहरेणुकावत्सकस्यचफलानि ॥
सातिविपाचसेन्यासचन्दनारोहिणीक-
डुका । तित्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यंगोदण्णमान
कुष्ठेषु ॥ तैलैश्चन्दनमधुकप्रपुण्डरीकोत्प-
लयुतेश्चाभ्यङ्गः ।

अर्थ—नेत्रवाला, कुडा, लोहचूर्ण, केसर-
तेजपात, केवटी मोथा, रक्तचन्दन, कमल
नाल, इनका उत्तरोत्तर एक एक भाग
आधिक लेकर पित्तकफ कुष्ठमें लेप करना
चाहिये (नेत्रवाला एक भाग, कुडा दोभाग,
लोहचूर्ण तीन भाग, इसी तरह और भी) ।
अथवा मुलहटी, लोध, पद्माक्ष, परवल, नीम
और रक्तचन्दन इनका ठंडा काथ स्नान
और पानमें देनेसे पित्तकुष्ठियोंको हित है ।
अथवा प्रियंगु, हरेणु, इन्द्रजौ, अतास, खस,
रक्तचन्दन, कुटकी इन द्रव्योंका लेप अथवा
तित्त औषधियों से सिद्ध कियाहुआ घी
अथवा शतधौत वा सहस्रधौत घृत का लेप
करनेसे दाहयुक्त कुष्ठ शान्त होताहै । इसी
तरह रक्तचन्दन, मुलहटी पुण्डरिया और
नीलोफर इनसे सिद्ध किये हुए तैलका म-
र्दनभी दाहयुक्त कुष्ठ में हितहै ॥

घृतप्रयोग ॥

क्षेपप्रयततिचांगिदाहे विस्फोटकेसर्चम-
दले ॥ शीताःप्रदेहसेकाव्यघनविरेचकी
घृतान्तिकम् । खदिरघृतनिम्बघृतदावी
घृतमुत्तमपटोलघृतम् ॥ कुष्ठेपुरक्तपित्त
प्रवलेषुभिपग्निजतांसीद्धम् ।

अर्थ—कुष्ठमें क्लेद हानेसे, अथवा किसी
अंगके गिरपड़नेसे, विस्फोटक वा चर्मदल
में शीतल लेप, सेक तथा शिराध्यधन, वि-
रेचन, तित्तघृत, खदिरघृत, निम्बघृत, दा-
वीघृत और पटोलघृत उत्तम होते हैं । ये-
ही प्रयोग उस कुष्ठमें हितकर, हैं जिनमें
रक्तपित्त प्रवळ होते हैं ॥

अन्यप्रयोग ।

त्रिफलात्वचोऽर्द्धपलिकाः पटोलपत्रञ्च
कार्षिकाःशेषाः ॥ कडुरोहिणीसनिम्बा
यष्ट्याहात्रायमाणाच । एकपायःसा
ध्योदस्वादिपलमसूराणाम् ॥ सलिलाद-
केऽष्टभागेशेषेतोरसोग्राहः । तैचकपाया
घृतलंचतुःपलसर्पिषश्चपक्तव्यम् ॥ याव-
त्स्यादष्टपलशेषेपेयंततःकोष्णम् । तद्वात
पित्तकुष्ठंवीसर्पवातशोणितंप्रवळम् ॥ ज्व-
रदाहगुल्मविद्राधिविभ्रमाविस्फोटकान्
हन्ति ॥

अर्थ—त्रिफला की त्यचा आधेपल, पटो-
लपत्र आधेपल और शेष कुटकी, नीम मु-
लहटी, त्रायमाणा ये एक २ कर्षलेवै तथा
दो पल मसूर मिलाकर एक आढक जल
में इनका काथ करे जब आठवांभाग शेष
रहजाय तब छानलेवै । इस काथमें से आठ
पल लेकर चारपल घृत के साथ पकावै
जब आठपल शेष रहजाय तब गुनगुना गं-
रम पीछे इसके पान करनेसे वातपित्तजन्य
कुष्ठ, विसर्प, प्रवळ वातरक्त, ज्वर, दाह,
गुल्म, विद्रधि, विभ्रम और विस्फोटक स-
व दूर होजाते हैं ॥

पटपलघृत ॥

निम्बपटोलेदावीन्दुरालभांतिकरोहिणी
त्रिफलम् ॥ कुर्यादूर्ध्वपलांशंपर्पटकत्राय
माणाश्च । सलिलाढकासिद्धानारसेऽष्ट-
भागस्थितेक्षिपेत्पूते ॥ चन्दनकिरा-
ततित्तकमागधिकात्रायमाणाश्च ।
मुस्तं वत्सकबीजं कल्कीकृत्वा र्द्धकार्षिकान्
भागान् ॥ नयसर्पिषश्च पटपलमेतत्सि-
द्धं घृतं पेयम् । कुष्ठज्वरगुल्माशोप्रहणीपा
ण्ड्वामयभयधुहारि ॥ वीसर्पपिण्डक
पामाकण्डूमदगण्डनुत्तित्तम् ।

अर्थ—नीम, परवल, दारुहल्दी, जवा-
सा, कुटकी, त्रिफला, पितपापडा और त्राय-
माणा इनको आधे २ पल लेकर एक आ-
ढक जलमें चढादे जब आठवांभाग शेष
रहजाय तब उतारकर छान लेंगे । फिर इस
में रक्तचन्दन, चिरायता, पीपल, त्रायमाणा,
मोधा, इन्द्रजौ इनको आधे २ कर्ष लेकर
घोटडाले और ताजी घी छःपल मिलाकर
सिद्धकरके इस घृतको पानकरे तौ कुष्ठ,
ज्वर, गुल्म, अर्श, प्रहणी, पाण्डुरोग, सूजन,
विसर्प, पिडका, पामा, कण्डू, मद तथा ग-
लगण्ड दूरहोजाते हैं ॥

महातिक्तघृत ॥

सप्तच्छदंप्रतिविपंशम्पाकंतिक्तरोहिणीपा-
ठाम् ॥ मुस्तमुशीरं त्रिफलांपटोलपिचुमर्द
पर्पटकम् । धन्वयवाशंचन्दनमुपकुल्यांप
अकरजन्धौच ॥ पद्मग्रन्थासविशालांश-
तावरींशारिवेचोभे । वत्सकबीजं वासां
मूर्वाभमृतं किराततिक्तञ्च ॥ कल्कान्

कुर्यान्मतिमान् यष्ट्याह्वांत्रायमाणा
श्च । कल्कस्यचतुर्भागेजलमष्टगुणंरसोऽ
मृतफलानाम् ॥ द्विगुणोघृतात्प्रदेयस्त
त्सर्पिःपाययोत्सिद्धम् । कुष्ठानिरक्तापित्त
प्रबलान्यशांसिरक्तवाहीनि ॥ वीसर्परक्त
पित्तंवातामृक्पाण्डुरोगञ्च । विस्फोट
कान्सपामानुन्मादं कामलांज्वरंकण्डूम् ॥
हृद्रोगं गुल्मपिडका असृग्दरगण्डमालाञ्च
हन्यादेतत्सर्पिःपीतं कालेयथाबलंसद्यः ॥
योगशतेरप्यजितान्महाविकारान्महाति-
क्तम् ।

अर्थ—सप्तपर्ण, अतीस, अमलतास, कु-
टकी, पाठा, मोधा, खस, त्रिफला, परवल,
नीम, पित्तपापडा, जवासा, रक्तचन्दन, पी-
पल, पन्नाख, दौनौहल्दी, बच, इन्द्रायण
की जड, सितावर, दोनों प्रकारके सारिवा,
इन्द्रजौ, अइसा, मरोडफली, मिठोय, चि-
रायता, मुलहठी और त्रायमाणा इनका
कल्क करे, इसका चौथाईघृत, घृत से अष्ट-
गुना जल, घृत से दूना आंगठेका रस इन
में सिद्ध कियाइआ घृतपान करावे । इस
घृतके पान करने से रक्तपित्ताधिक्य कुष्ठ,
खूर्नवासासिर, विसर्प, रक्तापित्त, वातरक्त, पा-
ण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, का
मला, ज्वर, कण्डू, हृद्रोग, गुल्म, पिडका,
रक्तप्रदर और गण्डमालारोग शांघही दूर
होजाते हैं, यदि यह ब्रह्मके अनुसार उचि-
तकालमें पान कियाजाय तौ जो रोग सं-
कटों योगों से भी अच्छे नहीं हुएहैं वे इस
महातिक्तघृत से शांघ जाते रहते हैं ॥

दोपेहतेपनीतिरक्तेवाह्यन्तरेकृतेक्षमना स्ने-
हेचकालयुक्तेनवृष्टपनुवर्चतेसाध्यम् ॥

अर्थ—दोपोंके दूर होनेपर, फस्त से वि-
गडेहुपरक्ते निकलने पर, वाह्य और आ-
न्तरिक शमन होने से, तथा उचितकालमें
स्नेह प्रयोगसे जो साध्यकुष्ठ शान्त होजाता
है वह निर उत्पन्न नहीं होताहै ।

महाखदिरघृत ।

खदिरस्यतुलाः पञ्चशिक्षपाशणयोस्तुला
तुलाद्वासर्वपर्वतेकरञ्जारिष्टपेतसाः । प
र्षटः कुटजश्चैववृषः कृमिहरस्तथा । हारि-
द्रोक्तमालश्वगुहृचीत्रिफलात्रिष्ट ॥ सप्त-
पर्णश्चसल्लुष्णादशद्रोणेषुवारिणः । धा-
त्रीरसंचतुल्यांशसापिंधश्चाढकंपचेत् ॥
अष्टभागायशेषः तुकपायमवतारयेत् ।
महातिक्तकककैस्तुयथाकैः पलसीम्भतैः ॥
निहान्तिसर्वकुष्ठानिपानाभ्यङ्गानिसेवना
त् ॥ महाखदिरमित्येतत्परंकुष्ठविकारमुत् ॥ ॥

अर्थ—खदिरकीलफड़ी पांच तुला, शीशम और
असन एक एक तुला; कंजा, नीम की छाल, वेत,
पितपापडा, कुडा, अडूसा, वाय विडंग, दोनों हलदी
अलतास, गिलोय, त्रिफला, निसोथ, सप्तपर्णी। ये
सब कुटीहुई आधे तुला दशद्रोण जलमें चढा
देवै, जब अष्टमांश शेष रहजाय तब उतारकर
छान लेंवै फिर इसमें इसकेबराबर आंवले का
रस और एक आढक घृत तथा महातिक्त
घृतमें कहे हुए एक-एक पल सब द्रव्य ले-
कर उसमें डालकर पाक करें । इस घृतका
पान और अभ्यंगमें सेवन करनेसे सब
प्रकारके कुष्ठ दूर होजातेहैं, यह महा खदिर
घृत अत्यन्त कुष्ठनाशक होताहै ।

क्रिमिनाशकप्रयोग ।

मपत्तसुलसीकामस्युतेपुगात्रेपुजन्तुदग्धेषु ॥
मूर्धनिम्बविडङ्गेस्नानं पानं प्रदेहथ । वृष
कुटजसप्तपर्णाः करवीरकरञ्जानिम्बाथ ॥
स्नानेपानेलेपेक्रिमिकुष्ठनुदः मगोमूत्रा ॥
पानाहारविधानेप्रसेचनेधूपनेप्रदेहेच ॥
क्रिमिनाशनांविडंगंविशिश्यंतंकुष्ठहृत्खदिरः

अर्थ—जो कोई अंगादव्य गलकर गिर
पडा हो, शरीरमें से लसिका निकलती
हो वा फाँडे-पड़ गयेहों तो गोमूत्र, वाय-
त्रि ग और नीम इनको पृथक् २ वा मिश्र
कर काथ करके पीने वा स्नान करने में
प्रयुक्त करें अथवा लेपकरें । अथवा अडूसा
कुडा, सप्तपर्ण, फनेर, कंजा, नीम, इन को
गोमूत्र में सिरु करके रतान, पान और
लेपमें प्रयुक्त करनेसे क्रिमिकुष्ठ जाना रहताहै
खाने, पीने प्रसेक, धूपन और प्रदेह में
प्रयोग किये जानेसे वायविडंग और खैर
विशेष करके कुष्ठनाशक होते हैं
अन्वय प्रयोग ।

एदगजः सविडंगोमूलान्यारग्वधस्यकुष्ठा
नाम् । उदालनंश्वदन्तागोद्वयराहोप्लु-
न्ताश्च ॥ एदगजः सविडंगोरजनीद्वयरा-
जवृक्षमूलञ्च । कुष्ठोदालनमयसपिप्पली
पाकलयोज्यम् ॥

अर्थ—चकवड, वायविडंग, कमन्तासकी
जड तथा कुत्ता, गौ, घोडा, सूअर और ऊं-
ट इन के दाँतों को घिसकर कुष्ठपर उबटना
करें । अथवा चकवडके बाँज, वायविडंग,
हलदी, दाहहलदी, अमन्तास की जड़,
पीपत्र और पाटला इनका भी उबटना करे।

शिवत्रकुष्ठपर प्रयोग ।

शिवत्राणां प्रशमार्थप्रयोक्तव्यं सर्वतो विभु
द्धानाम् । शिवत्रेहंसनमग्न्यं मलपूरसङ्घ्य
तेसगुडः ॥ तं पीत्वा सुस्निग्धो यथा बलं मू-
र्यपादसन्तापम् । सेचत विरिक्तश्च त्र्यहं
पिपासुः पिबेत् पेयाम् ॥ शिवत्रेऽङ्गेयस्फोट्य
जायन्तं कण्ठकेन ताभिन्द्यात् । स्फोटिषु वि-
स्रुतेषु मातः प्रातः पिबेत् पक्वम् ॥ मलपूषमं
भिवंशुशतपुष्पां चाम्भसासमुत्क्वाथ्य ।
पालाशं वा क्षारं यथा बलं फाणितोपेतम् ॥
यच्चान्यत्कुष्ठं शिवत्राणां सर्वमेव तच्छ-
स्तम् । खांदोदकसंयुक्तं खिदरोदकपान
मग्न्यं वा ॥ समनःशिलं विडंगकासीसंरो-
चनां कनकपुष्पीम् । शिवत्राणां प्रशमार्थं स-
सैन्धवं लेपनं दद्यात् ॥

अर्थ—शिवत्रकुष्ठियोंके लिये संशोधनादिसे
शुद्धकरके औषधदेवै ॥ शिवत्रकुष्ठमें कटूम-
रका रस और गुड मिश्रकर विरेचन देना
अत्यन्त हितकारी है । इस रसको पीकर
देहपर कुष्ठनाशक तैलका मर्दन करावे
और फिर जितना सहसकै उतनी देर धूप
में बैठे । विरेचन के पीछे प्यास लगने पर
तीन दिनतक केवल पेयाका पान करे ।

शिवत्रकुष्ठ में जो फुन्सियां होजाती हैं
उन्हें कांटोंसे बेध डालै, जब उनमें से सब
पीव निकलजाय तब प्रतिदिन प्रातःकाल
कटूमर, अशन, प्रियंगु और सोंफका क्वाथ
पीवे ॥ अथवा ढाकके क्षारको बलके अनु-
क्षार गुडकी राव के साथ पान करावे ॥
अथवा जो और २ कुष्ठनाशकप्रयोग वर्ण-

न किये गये हैं वे भी सब शिवत्रकुष्ठ में
उपयोगी होते हैं विशेष करके खैर के जल
के साथ लेप वा खैर के क्वाथादिक का पान
करना इस रोग में अत्यन्त हितकारक है ।
इस रोग में मनसिल, वायाविडंग, कसीस,
गोरोचन, अमलतास और सेंधानमक इनका
लेप करने से शिवत्रकुष्ठ जाता रहता है ॥
कुष्ठपर अन्यलेप ॥

कदलीक्षारयुतं वा खदिरास्थिदग्धगवां रुधि-
रयुक्तम् । हस्तिमदाध्यापितं वामालत्याः
क्षारकक्षारम् ॥ नीलोत्पलं सकुष्ठं ससेन्ध-
वं हस्तिमूत्रपिष्टं वा । मूलकवीजो वल्गुज-
लेपः पिष्टो गवां मूत्रे ॥ फाके दुग्धरिका वा
सवल्गुजचित्रकौ गवां मूत्रे । पिष्टामनः
शिलावासंयुक्ता वा हि पिप्तेन ॥ किलासह-
न्तामूलान्या वल्गुजानिलाक्षा च । गोपि-
त्तमञ्जनेद्वेषिप्लयः काललोहरजः ॥

अर्थ—केलाका खार वा खैरकी लफ्डी
का खार गौ के रुधिरमें मिलाकर लगावै अ-
थवा मालताके खारको हाथोंके मदके जल
में मिलाकर लगावै, अथवा नीलोफर, कूठ,
सेंधानमक इनको हाथोंके मूत्रमें पीसकर अ-
थवा मूशके बीज और वल्गुजा के बीजका
गोमूत्रमें पीसकर लेप करने से शिवत्रकुष्ठ
दूर होता है । अथवा कटूमर, अहूसा, व-
ल्गुजा, चीता इनको गौके मूत्रमें पीसकर
लेप करे अथवा मनसिलको मोर के पित्त
में पीसकर लेपकरे ॥

वल्गुजाकाजिड, लाख, गौकापित्त, अ-
ञ्जन गमौन, पंफुल और कान्तिशः

र्ण इनका लेप किलासको दूर करता है ।

शुद्धयाशोणितमोक्षैः विरुक्षणैर्भक्षणैश्च कृत्वा
नाम् ॥ श्वित्रकस्य चिदेवप्रशाम्यति क्षी
पापापस्य ॥

अर्थ— किसी किसी मनुष्य का जिसके
पाप क्षीण होगे हैं श्वित्रकुष्ठ, संशोधन, रक्त-
मोक्षण, विरुक्षण, तथा सत्तूके सेवन से ही
जाना रहता है ।

श्वित्रकुष्ठके भेद ।

दारुणदारुणश्वित्रकिलासनामभिश्चिभिः
विज्ञेयं त्रिविधं तच्च त्रिदोषमायश्चतत् ॥
दोषैरक्ताश्रितैरक्तताम्रमांससमाश्रिते ।
श्वेतमेदःश्रितैश्चिभ्रगुरुतच्चोत्तरोत्तरम् ॥

अर्थ— श्वित्रकुष्ठ प्रायः दारुण, अरुण, और
किलास इन तीन प्रकार का होजाता है तथा
यह कुष्ठ चिदोपाश्रित होता है दोष जब रक्ता-
श्रित होते हैं तब श्वित्रका वर्ण लाल होता है, मां-
साश्रित होने पर उसका वर्ण सफेद होता है,
तीनों प्रकारके श्वित्रोंमें लालसे ताम्रवर्ण और
ताम्रवर्णसे श्वेतवर्ण फठिन साथ्य होता है ।

श्वित्रको असाध्यत्व ।

यस्परस्परतोभिर्भ्रंशदुयद्रक्तलोमवत् । य-
च्चवर्षगणोत्पन्नं तच्चिश्चित्रनैवासिद्ध्यति ॥

अर्थ— जो दूसरीसे मिली हुई नहीं होती,
है, जिसका रंग अधिक लाल होता है जिस
में बहुत रोम होते हैं और जो बहुत पुरानी
होजाती है वह श्वित्रकुष्ठ असाध्य होता है ।

श्वित्रकुष्ठकी उत्पत्तिका हेतु ।

वचांस्यतथ्यानि कृतज्ञभावो निदासुरा
णांगुरुर्षणञ्च । पापक्रियापूर्वकृतञ्चकर्म
हेतुः किलासस्य विरोधि चानम् ॥

अर्थ— मिथ्याभाषण, कृतघ्नता, देवताओं
की निन्दा, गुरुजनोंका अपमान, इस जन्म
के पाप, पूर्व जन्मके कर्म, तथा विरुद्ध भो-
जनका सेवन, इन सब कारणोंसे किलास
कुष्ठ उत्पन्न होता है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

भवन्ति चात्र ।

हेतुर्द्रव्योलिङ्गसमाप्तो दोषनिर्देशात् ।
साध्यासाध्यं कृच्छ्रकुष्ठापहाश्वयेयोगाः ॥
सिद्धाः किलासहेतुलिङ्गगुरुलाघवंशांतिः ।
इतिसंग्रहः प्रणीतो महर्षिणा कुष्ठनाशनेऽ
ध्याये ॥ स्मृतिबुद्धिवर्द्धनार्थं शिष्याय हु
ताश्वेषाय ।

अर्थ— इस कुष्ठ चिकित्सत नामक अ-
ध्यायमें महर्षि पुनर्वसुने कुष्ठ रोगोंके हेतु,
द्रव्य लक्षण, दोषोंका साक्षित वर्णन, साध्य
असाध्य और कृच्छ्रसाध्यके लक्षण, कुष्ठना-
शक अनुभव किये हुए प्रयोग, किलासके
हेतु, लक्षण, भारापन, हलकापन शमनी-
पाय, अपने शिष्य अग्निवेशका स्मरणशक्ति
और बुद्धि वदानके निमित्त वर्णन किये हैं ।

इति श्रीभाषाटीकाश्वित्तायां अग्निवेश-
विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहि-
तायां चिकित्सितस्थाने कुष्ठचिकि-
त्सितनाम सप्तमोऽध्यायः । ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोरायजक्ष्मचिकित्सितं व्याख्यास्या
मइतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम 'रायजक्ष्मचिकित्सितनामक,
अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

रायजक्ष्मा के विषयमें प्राचीन इतिहास
दिवौकसांकथयतामृषिर्बिभृताकथा ।
कामव्यसनसंयुक्तापौराणीशशिनंप्रति ॥

रोहिण्यामतिसक्तस्यशरीरंनानुरक्षतः ।
आजगामात्पतामिन्दोर्देहःस्नेहपरिसया-
त् ॥ दुहितृणामसम्भोगाच्छेषाणाञ्च-

प्रजापतेः । क्रोधोनिःश्वासरूपेणमूर्तिगा-
न्निःसृतोमृत्वात् ॥ प्रजापतेर्हिदुहितुरष्टा-
विंशतिरंशुमान् । भार्यार्थप्रतिजग्राहन-

चसर्वास्ववर्तत ॥ गुरुणातमवध्यातंभायां
स्वसमवर्तिनम् । रजोऽन्धमवलर्दीनंयक्ष्मा
शशिनमाविशत् ॥

अर्थ—चन्द्रमा के विषयमें कामव्यसनसे
मरीडुई एक पौराणिककथा ऋषियोंने देव-
ताओंसे सुनी कि चन्द्रमा रोहिणी पर अ-
त्यन्त आसक्तथा अतएव उसने अपने श-
रीरके स्वास्थ्यपर कुछ ध्यान नहीं दिया इससे

स्निग्धताके अत्यन्त क्षीणहोनेपर उसका दे-
ह अत्यन्त कृश होगयाथा, चन्द्रमाका रोहि-

णी पर अत्यन्त प्यारथा इससे दक्षप्रजापति
की शेष कन्या चन्द्रमाके सम्भोगसुख से
थाव्यर्थी, यह व्यवस्था सुनकर दक्षके मु-

खसे श्वासद्वारा क्रोध मूर्तिमान प्रकटहूआ
दशकी अट्टाईस कन्या चन्द्रमाको व्याही-

गईथी परन्तु उसका वर्त्ताव सबके साथ ए-
कमानया और रोहिणीके अतिरिक्त किसी
अन्य के पास नहीं जाताथा ॥

चन्द्रमा रजोगुणसे अन्धा होकर अपनी
भार्याओं में असम व्यवहार रखता था
इससे दक्षके शापके कारण यक्ष्माने उसमें
प्रवेश किया और इस रोगसे वह अत्यन्त

दीन हीन होगयाथा ।
चन्द्रमाकी क्षमाप्रार्थना ।
सोऽभिभूतोऽतिगुरुणागुरुक्रोधेननिःश्रमः
देवदंर्षिसहितोजगामशरणंगुरुम् ॥ अथ
चन्द्रमसःशुद्धामर्तिबुध्वाप्रजापतिः । प्रसा-
दंक्रुतवान्सोमसतोऽश्विभ्यां चिकित्सितः
सविमुक्तमहश्चन्द्रोविररात्रविशंपतः ॥
तेजसावर्द्धितोऽश्विभ्यांशुद्धंसत्त्वमवापचा-
अर्थ....वह अपने श्वशुरके भारी क्रोधसे
आभिषत होकर कान्तिहीन होगयाथा तब
देवता और देवर्षियोंको साथ लेकर अपने
श्वशुरकी शरण गया, तदनन्तर जब प्रजा-
पतिने देखा कि चन्द्रमाकी बुद्धि शुद्ध होग-
ई है तब वह प्रसन्न हुआ और अपने शि-
ष्य अश्विनीकुमारको आज्ञादी तब उन्होंने
चन्द्रमा की चिकित्साकी । चन्द्रमा प्रहमुक्त
होकर पहिलेसे भी अत्यन्त कान्तियुक्त होग-
या और अश्विनीकुमारके द्वारा तेजके वद-
जानेसे अत्यन्त शुद्ध सत्वको प्राप्तहूआ ।
यक्ष्माके पर्यायवाचीशब्द ।
क्रोधोयक्ष्माज्वरोरोगकोऽर्थोदुःखसंज्ञि-
तः । यस्मात्सराज्ञःप्रागासीद्राजयक्ष्मा
ततोमतः ॥

भेद । त्रिदोषजन्य यक्ष्मामे क्रमसे ये उपद्रव होते हैं ॥

इसतरह व्याधियों के समूहोंसे युक्त रोगों के राजा राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेके चार हेतु और प्रत्येक हेतुके ग्यारह ग्यारह उपद्रव वर्णन किये गये हैं ॥

राजयक्ष्मा के पूर्वरूप ।

पूर्वरूपमतिशयायोर्दोर्वल्यंदोषदर्शनम् ।
अदोषत्वविभावेपुकायेवीभत्सदर्शनम् ॥
घृणित्वमश्नतश्चापिचलमांसपरिक्षयः ।
स्त्रीमद्यमांसमियतामियताचावगुण्ठने ॥
प्रक्षिकाघुणकेशानांतृणानांपतनानिच ।
प्रायोन्नपानेकेशानानखानाञ्चाभिवर्द्धनम् ।
पतन्निभिः पतंगैश्चश्वापदेश्चाभिर्घर्षणम् ॥
स्वप्नेकेशारिधराशीनांभस्मनश्चाधिरोहणम् ।
जलाशयानांशीलानांवनानांज्योतिपामपि ॥
शुष्यतांक्षीयमाणानांपततांयद्दर्शनम् ।
प्राग्रूपं बहुरूपस्यतज्ज्ञेयंराजयक्ष्मणः ॥
रूपंस्वस्ययथोद्देशपरंशृणुसंभोजनम् ।

अर्थ—इस रोगमें सबसे पहिले प्रतिश्याय होताहै, तत्पश्चात् क्रम से दुर्बलता, अदोष भावों में दोषदर्शन, शरीर में भयानकपन, घृणोत्पत्ति, भोजन करते करते भी बल और मांसकी क्षीणता, स्त्रीप्रियता, (स्त्रियोंका अच्छा लगना) मद्यमांसमें स्पृहा, एकान्तवासकी इच्छा, प्रायःअन्नपान में मन्थी, घुन केश और तृणों का गिरना; केश और नखोंका बहुत बढना; स्वप्नमें पक्षी पतंग और गे.हादिले

अभिघर्षण, स्वप्नमें केश, हड्डी और भस्म के ढेरपर चढना; सूखेहुए जलाशय, क्षीण होते हुए पर्वत और वन, तथा गिरते हुए तारागणोंका देखना; ये सब बहुरूपिया राजयक्ष्मामें पूर्वरूपहै ।

अब राजयक्ष्माके लक्षणानुसार औषधों के वर्णनको सुनो ॥

राजयक्ष्मा में पुरीपरक्षा ।

यथास्वेनोष्मणापाकंशरीरायान्तिधातवः ॥
स्रोतसाचयथास्वेनधातुःपुष्यतिधानुना ।
स्रोतसांसन्निरोधाच्चरक्तादीनाञ्चसंज्ञयात् ॥
धातुष्मणांचापचयाद्राजयक्ष्माभवर्तते ।
तास्मिन्कालेषचत्यभिर्घर्षदंशकोष्ठमाश्रितम् ॥
मलीभवति तत्प्रायः कल्पतेकिञ्चिदोजसे ।
तस्मात्पुरीपसंरक्षयांशेषाद्राजयक्ष्मिणः ॥
सर्वधातुक्षयार्तस्वबलंतस्याहिविह्वलम् ॥

अर्थ—जैसे अपनी २ ऊष्मासे शरीरकी सम्पूर्ण धातु पाकको प्राप्त होती है, इसी तरह अपने अपने स्रोतोंके योग से धातु धातुद्वारा पुष्ट होतेहैं । इसलिये स्रोतोंके रकने से, रक्तादिक धातुओंके क्षीण होनेसे तथा धातुओंकी ऊष्माके नष्ट होनेसे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति होतीहै उससमय अग्नि कोष्ठस्थ जिस अन्नको पचाती है वह प्रायः मल बन जाताहै और उसका बहुत थोडा भाग ओजमें परिवर्तित होताहै इसी हेतुसे राजयक्ष्मा रोगोंके मलकी विशेष करके रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि सम्पूर्ण

धातुओंके क्षीणहोजानेसे रोगी बहुत निर्वल होजाताहै और केवल विष्टाके बलसेही वह बल प्राप्त करताहै, इससे जहां तक बर्न ऐसा उपाय करता रहै कि विष्टामें परिवर्तित हुआ सब आहार बाहर न निकलजाय ।

रूढ़ स्रोतोंसे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति ।
रसःस्रोतःसुरुद्धेपुस्वस्थानस्थोविदह्यते ॥
सऊर्द्धकासवेगेनबहुरूपःप्रवर्तते । जा
यन्ते व्याधयश्चात्पदेकादशधापुनः ।

येपांसंघातयोगेनराजयक्ष्मेतिकल्प्यते ॥

अर्थ....स्रोतोंके रुकजानेसे आहारका रस सम्पूर्ण देहमें तौ फैलने नहीं पाताहै और अपने स्थान आमाशयहीमें स्थिररहकर विदग्ध होता रहताहै, यही रस खांसीके वेग के साथ ऊपरको जाकर अनेक रूप धारण करके निकलने लगताहै, तब छः वा ग्यारह प्रकारकी व्याधियां उत्पन्न होतीहैं इन सब व्याधियोंके ममुदायका नाम राजयक्ष्माहै ।

उक्त ग्यारह वा छः व्याधियोंके नामा
कासोऽसतापोवैस्वर्यज्वरःपार्श्वशिरोरुजी ॥
शोणितश्चेष्मणोच्छ्दिःश्वासःकोष्ठामयो
ऽरुचिः ॥ रूपाभ्येकादशैतानियश्मिणः
पट्टिमानिवा ॥ कासोज्वरःपार्श्वशूलस्व-
रवर्चोगदोऽरुचिः ॥

अर्थ....खांसी, स्कंधताप, स्वरभंग, ज्वर, पार्श्व शूल, शिरःशूल, रुधिरकी वमन, कफकी वमन, श्वास, कोष्ठामय, अरुचि ये यक्ष्माके ग्यारह रूप हैं । खांसी, ज्वर, पार्श्वशूल, स्वरभेद, मूत्रभेद, अरुचि, ये यक्ष्माके छः उपद्रव हैं ।

यक्ष्माका साध्यमाध्य विचार ।
सर्वैरद्वैस्त्रिभिर्वापिलिंगैर्मासवलक्षये ॥
युक्तोवर्ज्याश्चिकित्स्यस्तुसर्वरूपोऽप्यतो-
ऽन्यथा ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए ग्यारह वा छः लक्षणों से युक्त अथवा आगे आनेवाले तीन-लक्षणों से युक्त राजयक्ष्मामें यदि रोगीका मांस आर बल क्षीण होजाय तौ वह असाध्य होता है ऊपर कहेहुए सर्व लक्षणों से युक्त होनेपर भी यदि मांस और बल क्षीण न हुआ हो तौ वह साध्य होती है ।

प्रतिश्यायके लक्षण ।

घ्राणमूलेस्थितःश्लेष्मासंधिरपित्तमेववा ॥
मारुतःध्पातशिरसोमारुतश्यायतेप्राति ।
प्रतिश्यायस्ततोघोरोजायतदेहकर्षणः ॥
तस्यरूपांशिरःशूलगौरवंग्राणविषुवः ।
ज्वरःकामःकफोत्क्षेपःस्वरभेदोऽरुचिः...
रुमः ॥ इन्द्रियाणामसामर्थ्ययक्ष्माचःतः
प्रवर्तते । पिच्छिलबहुलं विसंहर्तितश्वे-
तपोतकम् ॥ कासमानोरसंयक्ष्मानिष्टी
वातिकफानुगम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्य का शिर वायुसे आघातित होताहै उसकी नासिका के मूत्र में स्थित कफ वा पित्त वायुके साम्हने अर्थात् भिरकी ओर दौंटेताहै तब देहको कर्षण करने वाया भङ्कररूप प्रतिश्याय होताहै इसको जुकाम वा सर्दी कहतेहैं, इस के होनेपर शिरमें दर्द, भातापन, नासिकासे स्राव होना, ज्वर, खांसी कफ निकलना, स्वरभंग, अरुचि, क्लान्ति, इन्द्रियोंमें अस्त-

मर्धता ये उपद्रव होतेहैं इनसे पीछे राजय-
क्ष्माकी उत्पत्ति होती है ॥ यक्ष्मरोगीके खां-
सते २ गिलगिळा गाढा, दुर्गन्धयुक्त हरे या
सफेद या पीले रंगका रस कफके साथ
निकलताहै ॥

राजयक्ष्माके विशेष लक्षण ।

अंसपाश्वाभितापथतापःपादकरस्यच ॥

ह्वरःसर्वांगगन्धेतिलक्षणंराजयक्ष्मणः ।

अर्थ—कंधे और पसलियोंमें संताप, हा-
थ और पांयमें संताप, सर्वांगगाम्ज्वर येरा-
जयक्ष्माके प्रधानलक्षणहैं ।

राजयक्ष्मा में स्वरभंग ।

घातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्कासवेगात्सपीन-
सात् ॥ स्वरभेदोभवेद्घाताद्भूतःसामथल-

स्वरः । तालुकण्ठपरिश्लोषःपित्ताद्रक्तमसू-
यंते ॥ कफान्मन्दोविषद्वयस्वरःखुरुखु-
रायते । सन्नैरक्तविषन्धत्वात्स्वरःकृच्छ्रा-
त्प्रवर्तते । कासातिवेगात्करुणपीनसा-
त्कफवातिकः ॥

अर्थ—घात से, पित्त से, कफ से, रक्त
से, खांसी के वेगसे, पीनस से इसरोग में
स्वरभंग होता है । जो स्वर घात से भंग
होता है उसमें स्वर रुक्ष, क्षीण और
चलायमान होता है । पित्त से कण्ठ और
तालुमें दाह और रक्तकी असूयता होती
है । कफसे स्वरमें मन्दापन और विषद्वता
होतीहै तथा खुर खुर शब्द होता है ॥ र-
क्तकी विषन्धता से स्वर अवसन होजाताहै
तथा बाहर कठिनतासे निकलता है । खांसी
के वेगसे स्वरमें खरखराट होताहै तथा पी-
नससे कफ घातके लक्षण होते हैं ॥

यक्ष्मा के अन्य उपद्रव ॥

पाश्वशूलत्वनियतसंकोचायामलक्षणम्।
शिरःशूलससन्तापयक्ष्मिणः स्यात्सर्गौर-
वम् ॥ अतिस्विन्नेशरीरैतुयक्ष्मिणोविष-
माशनात् ॥ कण्ठात्प्रवर्ततेरक्तश्लेष्मचोक्ते
पृसाञ्चितः ॥ रक्तविषद्वमार्गत्वान्मांसा-
दीन्जानुपद्यते ॥ आमाशयस्थमुत्किष्ट
बहुत्वात्कण्ठमेतिवा । वातश्लेष्माविषन्ध
त्वादुरसःश्वासमृच्छति ॥ दोषैरुपहतेचा-
ग्नौसपिच्छमभिसार्यते । पृथग्दोषैःसम-
स्तेर्वाजिह्वाहृदयसंश्रिते ॥ जायतेऽरु-
चिराहारैर्दुष्टैर्यश्चमानसैः ।

अर्थ—यक्ष्मामें जो पाश्वशूल होता है
वह अनियत होता है और उसमें संकोच
वा आयामके लक्षण होतेहैं ॥ शिरोवेदना
में सन्ताप और भारापन होता है ॥ अत्य-
न्त सिन्न देहवाले यक्ष्मारोगी के विषम
भोजन के करनेसे कण्ठकी नलीमें होकर
रक्त तथा उत्किष्ट और संचित कफ निकल-
ता है ॥

रक्तमार्गों के रुकजानेसे रुधिर मांसादि
धातुओं से मिलकर उनका पोषण नहीं क-
रसकता है यह अधिक बढ़कर आमाशयमें
स्थित होजाताहै वा कण्ठमें आजाता है इस
तरह वात और कफके रुकजानेसे हृदयस्थ
श्वासमें पड़चताहै और दोषोंके द्वारा अग्निके
नाश होनेपर पिच्छिलता युक्त मल निकलताहै।

पृथक् २ दोष वा सब मिलकर जब जि-
ह्वा और हृदयका आश्रय करलेते हैं तब
अरुचि उत्पन्न होतीहै । दुष्ट आहार तथा
मानसिक अर्थोंसे भी अरुचि होती है ।

अरुचिकी परीक्षा ।

कषायतिक्तमधुरैर्विद्यात्मुखरसैः क्रमात् ॥
वातादिररुचिजातामानसीदोपदर्शनात् ॥
अरोचकान्कासवेगाद्दोषोत्केशाद्भयादपि
छर्दिर्यासाविकाराणां अन्येषामप्युपद्रव ।
सर्वस्त्रिदोषजोयक्ष्मादोषाणान्त्वलाव-
लम् ॥ परीक्ष्यावस्थितवैद्यः शोषणंसमु-
पाचरेत् । प्रतिश्यायेशिरःशूलेकासेश्वासे
स्वरक्षये ॥ पार्श्वशूलेचाविवध क्रियाः
साधारणीः शृणु ॥

अर्थ—यदि मुखका रस कषायहो तो
घातज अरुचि, तिक्तहो तो पित्तज और मि-
ष्ट हो तो कफज अरुचि होती है इसी तरह
मानसी अरुचि दोषोंके देखने से जानी जा
ती है । अरुचि, आमवेग, दोषोत्केश और
भय इनसेही अन्यधिकारोंमें भी वमन होती है
तानों दोषोंसे उत्पन्न हुई यक्ष्मामें दोषों
का वशबल देखकर वचको शोष रोगी की
चिकित्सा करना उचित है । प्रतिश्याय
शिरःशूल, खासी, श्वास, स्वरक्षय और पा-
र्श्वशूल रोगोंकी अनेक प्रकारकी साधारण
चिकित्साओंको श्रवण करा ।

प्रतिश्यायादिछ रोगोंकी चिकित्सा ।
पीनमेत्स्वेदमभ्यङ्गधूममालेपनानि च ।
परिपेकावगाहांथपावकवात्यमेव च । ल-
घणाम्लकटूष्णांश्चरसान्स्नेहेः पसंहितान्
लावतित्तिरिदसाणां वर्तकानाञ्चकल्प-
येत् । सपिप्पलीकंसयवंसकुलत्थंसनाग-
रम् ॥ दाढिमामलकोपेतस्निग्धमाजंरसं
पिबेत् । तेन पद्मिनिवर्तन्ते विकाराः पीन

सादयः ॥ मूलकानांकुलत्थानांयूपैर्वासु-
पकल्पितैः ॥ यवगोधूमशाल्यन्नेर्यथासा-
त्म्यमुपाचरेत् ॥

अर्थ—पीनस वा प्रतिश्याय में अम्यंग,
धूमपान, आलेपन, परिषेक, अवगाहन
करावे तथा जौ की रोटियां, नमक, अम्ल,
कटु और उष्णरसों तथा घृत में संस्कृत
लवा, तीतर, मुर्गा और बतक के मांसरस
का पानकरे ॥ अथवा पीपल, जौ, कुलधी,
सोंठ, अनार, और आवला में डालकर घा-
से संस्कार किया हुआ बकरे का मांसरस
पानकरे । इस के सेवन करने से प्रतिश्याय
से पार्श्वशूल पर्यन्त छः ओं उपद्रव नष्ट
होजाते है । अथवा मूलक और कुलधी के
यूप में सिद्ध कर के जौ गेहूँ और शाली
चावलों को सात्म्यके अनुसार सेवन करे ।
पिबेत्प्रसादं वारुण्याजलं वा पाञ्चमूलिक-
म् । धान्यनागरसिद्धं वा तागलवयाथवा-
शृतम् ॥ परिणीभिश्चतसृभिस्तेन चान्ना-
निकल्पयेत् ॥ कृशरोत्कारिकामापकुल-
त्थयवपायसं ॥ सङ्गरस्वेदविधिना कण्ठं
पार्श्वमुरःशिरः ॥ स्वेदयेत्पत्रभङ्गेन शिर-
श्परिषेचयेत् ॥ बलागुहूचीमधुकशृत्तवा-
वारिभिः सुखैः । वस्तमत्स्यशिशोभिर्वा-
नाडीस्वेदैः प्रयोजयेत् ॥ कण्ठेशिरसिपा-
ञ्चपयोभिर्वासवातिकं ॥
अर्थ—मुगमण्ड, अथवा, पंचमूलसे सिद्धि-
कियाहुआ जल, अथवा धनियां और सोंठ
डालकर सिद्ध कियाहुआ जल, भूय आवला
डालकर सिद्ध कियाहुआ जल अथवा शालि-

पर्णी आदि चारोंपंजी डालकर सिद्धकियाहु-
आ जल पान कराये अथवा इन्हीं जलोंमें सिद्ध
कियाहुआ अन्न देवे ।

वृशारं, उत्कारिका, माप, कुण्ठी, जौ, पायस इन
से संकरस्वेदकी रास कण्ठ पसली, हृदय और
शिरमें स्वेददेवे अथवा वातनाशक पत्तोंसे स्वे-
दन करे, अथवा खरैटी, गिलोय, मुहलठी इनसे
सिद्ध किये मुखोष्ण जलसे परिपेचन करे ।

अथवा बकरेका शिर, मछलका शिर इनमें
सिद्ध फरफे जल द्वारा या वातघ्न औषधि-
योंके काथसे नाटास्वेद द्वारा कण्ठ, शिर और
पसलियोंमें स्वेदनदेवे ।

औदकानूपमांसानिसलिलंपात्रमलिकम् ॥
सस्नेहसारनालंघानाटीस्वेदंप्रयोजयेत् ।

अर्थ—औदक और आनूप पशुओंका मांस
पंचमूत्रसे सिद्धकिया हुआ जल अथवा स्नेह
युक्त फांजासे नाटास्वेद द्वारा स्वेदनकरे ॥

जीवन्त्याः शतपुष्पायावलायामधुकस्यच ।
घचायवेशवारस्यविदार्यामलकस्यच ।

औदकानूपमांसानामुपनाहाथसंस्कृताः ॥
शस्यन्तेचचतुःस्नेहाः शिरःपार्श्वसशूलि-
नाम् ।

अर्थ—जीवन्ती, सोंफ, घला, मुलहठी,
घच, वेशवार, विदारीकन्द, आंवला, औदक
और आनूप पशुओंका मांस चारों प्रका-
के स्नेह डालकर सिद्ध कियाहुआ लेपांतर प-
सली तथा कंधेके दर्दमें हितकारक होताहै ॥

शतपुष्पासमधुककुण्ठं तगरचन्दनम् ॥ आ-
लिपनं स्यात्सघृतं शिरःपार्श्वसशूलनुत् ।

अर्थ—सोंफ, मुलहठी, कूठ, तगर और

चन्दन इनको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे,
शिर, पसली और कंधे का शूल नष्ट होजाताहै ।

अन्य प्रयोग ।

वलारास्नातिलाः सर्पिमधुकं नीलमुत्पलम्
पलंकपादेवदारुचन्दनं केशरं घृतम् ॥ बी-
रावलाविदारीचकृष्णगन्धापुनर्नवा ॥

शतावरीपयस्याचकृष्णमधुकं घृतम् । च-
त्वारपते श्लोकार्थैः प्रदेहाः परिकीर्तिताः ॥

शस्ताः संबृद्धदोषाणां शिरःपार्श्वसशूलि-
नाम् ॥

अर्थ—(१) खरैटी, रास्ना, तिल, घी,
मुलहठी, नाँलकमठ । (२) गूगल, देव-
दारु, चन्दन, केशर, घी, । (३) क्षीर-
काकोली, खरैटी, विदारीकन्द, सहजना

और पुनर्नवा । (४) शितावर, क्षीरका-
कोली, कृष्ण, मुलहठी और घी । ये चारों

लेप जो आधे २ श्लोक में वर्णन किये ग-
ये हैं बड़ेद्वय दोषवाले शिरःशूल पार्श्वशूल

और असशूलमें हितकारीहैं ।

अन्यसंशमनक्रिया ।

नावनं धूमपानानि स्नेहाद्योत्तमभक्तिकाः
तैलान्यभ्यङ्गयोगानि च स्तिक्कर्म तथा परस्मा-

जलौकालावुशृङ्गार्धमदुष्टं व्यधनेन वा ॥
शिरःपार्श्वसशूलेषु रुधिरं तस्य निर्हरेत् ।

प्रदेहः सघृतश्रेष्ठपत्रकोशिरचन्दनैः ॥
दूर्वामधुकमजिष्ठाकेशरैर्घृताप्लुतैः । मधु-

ण्डरीफनिर्गुण्ठीपत्रकेशरमुत्पलम् ॥ क-
शेस्कापयस्याचसर्पिष्कं मलेपनम् ।

चन्दनाघेन तैलेन शतधोतेन सर्पिषा ॥ अ-
भ्यङ्गः पयसासेकः शस्तथमधुकाभुना ।

अर्थ—

मोहनेद्रणमुशीतेनचन्दनादिशृतेक्रिया ।

परिपेकःप्रयोक्तव्यइतिसंशमनीक्रिया ॥

अर्थ—नस्य, घूमपान, उत्तरभाक्तिकाघृत, अभ्यंगोपयोगी तैल और वस्तिर्गम ये सब उत्कृष्ट हैं । जोक, अलाबू सींगी और फास्त द्वारा दुष्टरुधिरको निकालनेसे शिरःशूल, पाश्चशूल और असशूल अच्छे होजाते हैं । पक्माव, चन्दन और खस को पीस कर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा दूध, मुलहठी, मजीठ और फेसर को घाँमें सानकर लेप करने अथवा पुण्डरिया फाष्ट निर्गुण्डी, कमल, फेसर, नीलोफर, फसेरू और क्षरिकफोली को घृतमें सानकर लेप करने से शिरःशूलदि दूर होजाते हैं ।

चन्दनादि तैल, वा शतघृत घृत का अभ्यंग, घृत तथा मुलहठी के जलका परिपेक, अथवा माहेन्द्रशीतल जल, वा चन्दनादिके फायका जल इनसे परिपेककरे । इस तरह यह संशमनी क्रिया वर्णन कीगई है ।

दोषाधिक्यमें संशोधन विधि ॥

दोषाधिकानां वमनं शस्यते स विरेचनम् ॥

स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यन्न कर्षणम् ॥

अर्थ—दोषोंकी अधिकतामें स्नेहन और स्वेदन देकर स्निग्ध वमन विरेचन देवै जिससे रोगी कृश न होने पावे ।

शोषीमुञ्चति गात्राणि पुरीषसंसनादापि ॥

अत्रलापेक्षिर्णामात्रां किंपुनर्यो विरिच्यते ।

योगानसंशुद्धकोष्ठानां कासेश्वासेस्वरस्ये ॥

शिरःपार्श्वसशूलेषु सिद्धानेतान्प्रयोजयेत् ॥

पलाविदारिगन्धार्थविदार्यामधुकेनवा ॥

(९९)

सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्यं स्यात्स्वर्यमुत्तमम्
प्रपुण्डरीकं मधुकपिप्पल्योवृहतीवला ॥

क्षीरं सर्पिश्च तत्सिद्धं स्वर्यं स्यान्नावनं परम् ॥

शिरःपार्श्वसशूलघ्नकासश्वासनिवर्हणम् ॥

प्रयुज्यमानं बहुशोघृतंचोत्तरभक्तिकम् ।

दशमूलेनपयसासिद्धं मांसरसेन च ॥ व-

लागभेघृतंसद्योरोमानेतान्प्रयाधते । भ-

क्तस्योपरिमध्येवायथाग्निप्रविचारितम् ॥

रास्नाघृतं वासक्षीरंसक्षीरं वावलाघृतम् ।

अर्थ—मलके निकलजाने से शोषरोगी

मनुष्यका देह पतन होजाता है, इससे रोगी

के बलके अनुसारही विरेचन मात्राका प्रयो-

ग करना चाहिये ॥

जब रोगीका कोष्ठ शुद्ध होजाय तथा

खांसी, श्वास, स्वरभंग, शिरःशूल, पार्श्व-

शूल, असशूल ये शेष रहजाय तब नीचे

लिखेहुए प्रयोगोंको देवै ।

खरैटी, विदारीगंधादिगण, विदारीकन्द

और मुलहठी, सब से सिद्ध कियेहुए नमक

साहित घृतकी नस्य देनेसे स्वरभंग दूर हो

जाताहै । प्रपुण्डरीक, मुलहठी, पीपल, व-

क्षीकटेरी, खरैटी और दूध इनके साथ सि-

द्धकियेहुए घृतकी नस्य देनेसे स्वरभंग दूर

होताहै । अथवा भोजन के पश्चात् अनेक

रातसे घृतपान करनेसे सिर, पसली और

कन्धोंका दर्द तथा खांसी और श्वास जाते

रहतेहैं । अथवा दशमूल, दूध, मांसरस और

खरैटी का गूदा इनसे सिद्ध किया हुआ घृ-

त तत्काल ऊपर कहे हुए रोगों को दूर क-

र देताहै । भोजन करने के पीछे वा बीच

में जठराग्नि के अनुसार दूध और रास्नाका घी अथवा दूध और बलाकाघी सेवन करने से पूर्वोक्त उपद्रव शान्त होजातेहैं ॥

स्नेहवर्णन ॥

लेहान्कासापहान्स्वर्यान्श्वाससिंहिकानि-
वर्हणान् ॥ शिरःपार्श्वीसशूलघ्नान्स्नेहान्-
श्वातःपरंशृणु । घृतंखर्जूरमृद्धीकाशर्करा-
क्षौद्रसंयुतम् ॥ सपिप्पलीकवैस्वर्यकास-
श्वासनिवर्हणम् । दशमूलशृतात्क्षीरा-
त्सर्पियदुदियान्नवम् ॥ सपिप्पलीकंसस्रौ-
द्रन्तत्परंस्वरबोधनम् । शिरःपार्श्वीसशू-
लघ्नंकासश्वासज्वरापहम् ॥ पञ्चभि-प-
ञ्चमूलैर्वाशृताद्यदुदियादृतम् । पञ्चानां
पञ्चमूलानारसेक्षीरचतुर्गुणे ॥ सिद्धं स-
र्पिर्जयत्येतद्यहमणःसप्तकंवलम् ।

अर्थ—अब हम यहां से कासनाशक, स्वरवर्द्धक, श्वास और हिचकी के दूर करनेवाले, शिरःपार्श्वीसशूलनाशक लेह और स्नेहों का वर्णन करेंगे । यथा-

घी, खिजूर, दाख शर्करा और शहत तथा पीपल इनको चाटने से स्वर-भंग, खांसी और श्वास नष्ट हो जाते हैं अथवा दशमूल डालकर औंटाये हुये दूधसे जो ताजी घी निकालाजाताहै उसमें पीपल और शहत डालकर सेवन करें तो स्वरभंग दूर होजाताहै, इसीसे शिरःशूल, पार्श्वशूल और अंशशूल तथा खांसी, और श्वास और स्वर ये भी दूर होजातेहैं ॥

पांचों पंचमूलके साथ औंटायेहुये दूध का घी भी पूर्वोक्त व्याधिनाशकहै अथवा

पांचों पंचमूलके साथ तथा चांगुने दूध में सिद्ध कियाहुआ घी यक्ष्मरोगी के पूर्वोक्त सार्तो विकारोंको दूर करताहै ।

लेह के चार प्रयोग ।

खर्जूरपिप्पलीद्राक्षपध्यांशुद्वीदुर्गालभा ॥
त्रिफलापिप्पलीमुस्तंशृंगाटीगुडशर्करा ।
वीराशठीपुष्कराख्यंसुरसःशर्करागुडः
नागरंचित्रकोलाजाः पिप्पल्यामलकंगुडः
श्लोकार्द्धविहितानेतानलिहान्नामधुसर्पि-
या ॥ कासश्वासपहान्स्वर्यान्पार्श्वशू-
लापहस्तथा

अर्थ—१-खिजूर, पीपल, दाख, हरड, काकडासींगी और जवासा २-त्रिफला, पीपल, मोथा, सिघाडा और गुड शर्करा ३-क्षीरकाकोली, शटी, पुष्कराख्य (कूठ), तुलसी, शर्करा, गुड । ४-सोंठ, चीता, खील, पीपल, आंबला, गुड । आधे २श्लोक में कहेहुये इन चार प्रयोगोंको घी और शहतके साथ चाटै तो खांसी, श्वास, स्वरभेद और पार्श्वशूल दूर होजातेहैं ॥

अन्य प्रयोग

सितोपलातुगाक्षीरीपिप्पलीवहुलांत्वच-
म् ॥ अन्त्याद्धूर्वाद्दिगुणितंलेहयेन्मधुस-
र्पिपाचूर्णितंप्राशयेद्वातश्वासकासकफा-
तुरम् ॥ सुसजिहारोचकिनमल्पाग्निपा-
र्श्वशूलिनम् । हस्तपादांगदाहेपुञ्ज्वरेर-
क्तैतयोर्ध्वगे ॥ वासासर्पिःशतावर्या सि-
द्धंवापरमंहितम् ।

अर्थ—मिश्री, बंशलोचन, पीपल, इलायची और दालचीनी । इनको पीछे से ऊपर-

को दूनार ले अर्थात् दालचीनीसे दूनी इ
लायची, इलायची से दूनी पीपल आदि घी
और शहत में सानकर चाटै । अथवा इसी
चूर्णको श्वास, खांसी, कफ, जिह्वासुप्त, अ-
रुचि, मन्दाग्नि और पार्श्वशूल में देवै ।

हाथ, पांव और शरीरके दाहमें, ज्वरमें
ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें वासाघृत वा शताथरी
घृतका सेवन अत्यन्त हितकारीहै ।

दुरालभाघघृत ।

दुरालभाश्वदंष्ट्राञ्चतप्तःपणिनीर्वलाम् ।
भागान्यलोन्मितान्कृत्वापलंपर्पटकस्य-
च । पचेद्दशगुणेतोयेदशभागवशेषिते ॥
रसेसुपूतेद्रव्याणामेपांकल्कान्समावपेत् ।
शठ्याःपुष्करमूलस्यपिप्पलीत्रायमाणयोः
तामलक्याःकिरातानांतिकस्यकुटजस्य
च । फलानांशारिवायाश्चसुपिष्टान्कर्प
सम्मितान् ॥ ततस्तेनघृतमस्यछीरद्विगु-
णितंपचेत् । अवरंदाहंभ्रमंकासमंसपाश्वशि
रोरुजम् ॥ तृष्णाञ्छार्दरंस्तिसारमेतान्स
पिरपोहति ॥

अर्थ—जयासा, गोखरू, चारोंपणी, ख-
रैटी और पित्तपापडा ये आठों एक एक
पल लेकर दसगुने जलमें पकावै जब दसवां
भाग शेष रहजाय तब उसे छानकर नीचे
लिखेहुए द्रव्य एक २ कर्षे ताल देवै । शठी,
पौहकरमूल, पीपल, त्रायमाण, भूम्यामलक,
चिरापता, कुटकी, इन्द्रजौ और शारिवा
इनको बारीक पीसकर डाँड देवै । फिर
इसमें एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध डा-
एकर पकावै । इस घृतके सेवन करनेसे

ज्वर, दाह, भ्रम, खांसी, अंसशूल, पार्श्वशूल
शिरःशूल, तृष्णा, वमन और अर्तासार दूर
होजाते हैं ।

जीवन्त्यादि घृत ॥

जीवन्तीमधुकंद्राक्षांफलानिकुटजस्यच ॥
शटीपुष्करमूलचन्याघ्नीगोक्षुरकम्बलाम्
नीलोत्पलतामलकीत्रायमाणान्दुरालभाम्
पिप्पलीञ्चसर्मापध्नाघृतवैद्योविपाचयेत् ।
एतद्द्वयाधेसमूहस्यसमुत्थंराजयक्ष्माणः
रूपमेकादशविधसर्पिरंकव्यपोहति ॥

अर्थ—जीवन्ती, मुलहटी, किसमिस, इन्द्र-
जौ, शठी, पौहकरमूल, कटेरी, गोखरू, ख-
रैटी, नीलकमल, भू आंयला, त्रायमाण, ज-
वासा, और पीपल इनको समानभाग लेकर
पीस डाले और इसमें घृतको पकावै। इसी
एक घृतके सेवन करनेसे राजयक्ष्माके ग्यारह
प्रकारके उपद्रव शान्त होजाते हैं ।

बलाघघृत ।

बलांस्थिरांपृथिनपर्णीवृहतीसनिदिग्धि-
काम् । साधयित्त्वारसेतास्मिन्पयोगव्य
सनागरम् ॥ द्राक्षाखजूरसर्पिर्भिःपिप्प-
ल्याचशृतंसह । सक्षौद्रंज्वरकासघ्नंस्व-
र्यञ्चेत्तत्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—खरैटी, शाळिपर्णी, प्रथिनपर्णी, बडी
कटेरी, छोटी कटेरी इनका क्याथ करले, इस
में गौ का दूध, सोंठ, दाख, खिजूर, घृत
और पीपल डालकर घृत पाककरै । इस
घृतको शहत के साथ सेवन करे । तो ज्वर
खांसी और स्वरभंग दूर होजाताहै ।

यक्ष्मामें अन्य प्रयोग ।

आजस्यपयसश्चेवमयोगोजंगलारसाः

यूपार्थेचणकामुद्गामकुष्ठाश्चोपकल्पिता
ज्वराणांशमनेयोगःपूर्वमुक्तः क्रियाविधिः
यक्षिणांज्वरदाहेपुससर्पिष्कःप्रशस्यते॥
कफप्रसेकेवलवान्श्लेष्मिकःछर्दयेन्नरः ।
पयसाफल्युक्तेनमधुरेणरसेनवा ॥ स-
र्पिष्मत्यायवाग्वावाचमनीयोपसिद्धया ।
चमितोद्याश्चलध्वन्नमन्नकालेसदीपनम्॥
यत्रगोधूममाध्वीकशीध्वरिष्टसुरासवान्ता
जांगलानिचशूल्यानिसेवमानःकफञ्ज-
येत् ॥

अर्थ—इस रोगमें यकरीका दूध और जांगल
जीवोंका मांसरस प्रशस्त है । दूधके निमित्त
चना, मूंग और मोठका प्रयोग करें । ज्वर-
नाशक प्रयोग तथा चिकित्साविधि जो पहिले
वर्णनकी गईहैं, वही विधि यक्ष्मारोगियोंके
ज्वर और दाहमें घृत सहित देवै ।

कफ दोषयुक्त और बलवान् रोगीको कफ
के गिरनेमें मैनफलके साथ दूध वा मैनफल
से युक्त मधुररस वा वमनीय द्रव्यों से सं-
स्कार की हुई घृतयुक्त यवागू पान कराके
वमन करावै ।

वमन होनेके पश्चात् क्षुधा लगनेपर लघु
अन्न खानेको देवै ॥ जो गेहूँ माषीक, शीधु,
अरिष्ट, सुरा, आसय, और शूलपर भुनाहुआ
जांगल पशुओंका मांस सेवन करनेसे कफ
दूर होजाताहै ।

अन्य प्रयोग ।

श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेतुवायुःश्लेष्माणमस्यति
कफप्रसेकान्तंविद्वान्स्निग्धोष्णनैवनि- ।
र्जयेत् ॥ क्रियाकफप्रसेकेपावम्यांसैवप्रश-

स्यते । ह्यानिचान्नपानानिवातध्याननि-
लघूनिच ॥

अर्थ—जब कफ अत्यन्त पड़ताहो तब
वायुही कफको उर्दीर्ण करतीहै, उस समय
स्निग्धोष्ण क्रिया द्वारा उस कफके पड़नेको
दूर करे । कफप्रसेक में जो चिकित्साकी
जाती है वही वमनके रोकने में हितकारी
होतीहै, इसमें दूध, वातनाशक और लघु
अन्नपान हितहै ।

मन्दाग्निमें कर्त्तव्य ।

प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमपित्तार्थेता
प्राप्नोत्यास्यस्यैरस्येनचाभ्रमभिनन्दाति॥
तस्याग्निदीपनाद्योगानतीसारनिवर्हणान्
वक्त्रशुद्धिकरान्कुर्वाद्दरुचिप्रतिवाधकानां

अर्थ—प्रायः मन्दाग्निसेही पिच्छल अर्त्ता-
सार होताहै, इसीसे मुखका जायका विगड
जाताहै और अन्नमें अरुचि होजातीहै उस
मनुष्यको अग्निसेदीपनकर्त्ता अतिसारना-
शक, मुखशुद्धकारक और अरुचिनाशक
योगोंका सेवन करावै ।

अतिसार नाशक योग ।

सनागरामिन्द्रियवान्पिचेद्वातण्डुलाम्बुजा
सिद्धायवागूञ्जार्णैचचांगेरीतत्रदाडिमैः॥
पाठाम्बिल्वंयवानीचपातव्यंतत्रसंयुतम्
दुरालभांगृगवेरंपाठाञ्चसुरयासह । जा-
म्वाभ्रविल्वमध्यञ्चसकपित्तंसनागरम्॥
पेयामण्डनेनपातव्यमतीसारनिवृत्तये ।

एतानेवचयोगांस्त्रीमाठादीन्कारयेत्खडान्
ससृपधान्यान्सस्नेहाम्लान्संग्रहणान्परान्

अर्थ—यक्ष्मारोगी अतिसारमें साँठ और

इन्द्रजौको चावलके जलके साथ पान करै, तथा औषधके पचजानेपर चांगेरी, मठा और अनारके रसके साथ सिद्ध कीहुई यवागू पान करै । अथवा पाठा, बेलगिरी, अजवाहन इनके क्वाथको मठाके साथ पीवै, अथवा जवासा, सोंठ, पाठा, इनके क्वाथको मयके साथ पीवै । अथवा जामन और आमकी गुठली, बेलगिरी, कैथ, सोंठ इनके क्वाथ को पेयामण्डके साथ पान करै । इन्हीं अतीसारनाशक तीन योगोंका दालके साथ खड्यूप बनाकर घी और खटाई डालकर सेवन करै यह अत्यन्त संग्राहक होताहै ।

अन्यप्रयोग ।

वेतसार्जुनजम्बूनामृणालीकृष्णगन्धयोः ॥
श्रीपर्णामदयन्त्याश्चयूथिकायाश्चपल्ल-
वान् । मातुलंगस्यधातक्यादाडिमस्यच
कारयेत् ॥ स्नेहाम्ललवणोपेतान्सस-
र्पिष्कान्सदाडिमान् ॥

अर्थ—वेत, अर्जुन, जामन, कमल, सहजना, खभारी, मल्लिका, विजौरा, आंवला, अनार इनके पत्तोंमें खटाई, नमक, घी और अनार डालकर यूप बनावै [किसी २ में में ऐसा पाठभी है (“ चांगेर्याश्चुक्रकायाश्च दुग्धिकायाश्चकारयेत् । खडान्दधिसरोपेतान् सर्सापश्रकान् सदाडिमान् ,) मांसानालघुपाकानारसाःसांग्राहिकैर्कृत्युताः व्यजनार्थप्रशस्यन्ते भोज्यार्थैरक्तशालयः । स्थिरादिपंचमूलेनपानेशस्तंशृतञ्जलम् ॥ नंक्रपुरांससुक्रिकादाडिमस्याथवारसः दीपनंग्राहिनिर्दिष्टभेषजाभिन्नवर्चसे ॥

अर्थ—व्यंजनके लिये सांप्राहिक द्रव्यों के साथ सिद्ध कियाहुआ लघुपर्का मांसों का रस और भोजनके लिये लालशालिचावलदेवै । शालिपर्णादि पंचमूलसे सिद्ध कियाहुआ जल पीनेको देवै । मठा, मदिरा, चूका और अनारका रस अतीसार में अग्निसंदापन और संग्राही होता है ।

वैरस्यनाशक प्रयोग ।

परंमुखस्ववैरस्यनाशनरोचनंशृणु । द्वै-
कालादन्तपवनंभक्षयेन्मुखधावनैः ॥
तद्वत्प्रक्षालयेदास्यंधारयेत्कवलग्रहान् ।
पिवेद्धूमन्ततोभृष्टमद्यादीपनपाचनम् ॥
भेषजंपानमन्नश्चाहितमिष्टोपकल्पितम् ।

अर्थ—अब हम मुखका विरसता को दूर करनेवाले प्रयोगोंका वर्णन करते हैं प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय दातुनकरना, मुखमें जलभर २ कर कुल्ले करना और कवलग्रह करना चाहिये, तदनन्तर धूमपान, फिर दीपनकर्त्ता और रुचिवर्द्धक द्रव्योंका सेवन करे । इच्छाके अनुसार बनाहुआ अन्नपानभी मुखकी विरसता दूर करने में हित है ।

मुखधावनपांचप्रयोग ।

त्वद्भूमस्तमेलाधान्यानिमुस्तेसामलकन्त्य-
चम् ॥ त्वचोदार्वीयवार्नीचपिप्पल्यस्ते-
जवत्यपि । यवार्नीतिन्तिडीकञ्चपञ्चे
तेमुखधावनाः ॥ प्लोकपादेपुषिदिताशो
धनामुखरोचनाः । गुल्लिकाधारयेदास्ये
चूर्णैर्वाशोधयेन्मुखम् । एषामालोडिता-
नांवाधारयेत्कवलग्रहान् ॥

अर्थ—दालचीनी, मोथा, इलायची और धनियां अथवा, दोनों मोथा, आंवला, दालचीनी, दारुहल्दी और अजवायन, पीपल और तेजवती, अथवा अजवायन और इमली, इनमें चौथाई रश्मिकर्म वर्णन किये हुये चूर्णोंकी दांतुन करना मुखको शुद्धकर्ता और रुचिवर्द्धक होता है । अथवा इनकी गोली बनाकर मुँहमें रखे अथवा इनका चूर्ण बनाकर मुखका शोधन करे अथवा जलमें मिलाकर कुल्ले करे ।

सुरामाध्वीकशीधूनातैलस्यमधुसर्पिपोः कवलान्धारयेदिष्टानक्षीरस्येक्षुरसस्यच
अर्थ—सुरा, माध्वीक, शीधु, तैल, मधुघृत, दूध और ईखके रसके कवल धारणकरे यवानीपाडव ।

यवानीतिन्तिडीकञ्चनागरंसाम्लवेतसम् दाडिमम्बदरंचाम्लंकार्पिकानुपकल्पयेत् धान्यसौर्वचलाजाजीवराङ्गञ्चार्द्धकार्पिकम् । पिप्पलीनांशतञ्चैकंद्वेशतेमरिचस्युच ॥ शर्करायाश्चत्वारिपलान्भेकत्र चूर्णयेत् । जिह्वाविशोधनंहृद्यंतच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ हृत्प्रीहपार्श्वशूलघ्नंविबन्धानाहनाशनम् । कासश्वासहरंग्राहि ग्रहण्यशौविकारनुत् ।

अर्थ—अजवायन, इमली, सोंठ, अम्लबेत, अनार, घेर इनको एक २ कर्प लेवै ॥ धनियां, संचरनमक, जीरा, दालचीनी ये चारों आधे २ कर्प लेवै, एकसौ पीपल, दो सौ कालीमिरच और शर्करा चार पल इन सबका चूर्ण बनलेवै । यह चूर्ण जिह्वा

को शुद्ध करनेवाला, हृदयप्रिय, भोजन में रुचि बढ़ानेवाला, हृद्रोग, प्रीहा और पाईशूलको नष्ट करनेवाला तथा विबन्ध और आनाह नाशक है । खांसी, श्वास, महणी, और अर्शविकारों को दूर करता है, संप्राहंही

तालीशपत्रादि वटिका ।

तालीशपत्रंमरिचंनगरंपिप्पलीधुभा । यथोत्तरंभागवृद्ध्यात्यगेलेचार्धभागिके ॥ पिप्पल्यष्टगुणाचात्रप्रदेयासितशर्करा । कासश्वासरुचिहरंतच्चूर्णंदीपनंपरम् ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीदोपशोपप्लीहज्वरापहम् । बन्धनीसारशूलघ्नमूर्द्धवातानुलोमनम् । कल्पयेद्गुडिकाञ्चैव चूर्णंपक्त्वासितोपलेः । गुडिकाहामिसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतराःस्मृताः ॥

अर्थ—तालीशपत्र, कालीमिरच, सोंठ, पीपल और बंशलोचन, इन सबको उत्तरोत्तर एक २ भाग अधिक लेवै । दालचीनी और इलायची आधे २ भाग लेवै । और पीपल से अठगुनी सफेदचीनी डालकर चूर्ण बनावै । यह चूर्ण खांसी, श्वास और अरुचि को दूर करता है, अत्यन्त अग्निसंदीपन है हृद्रोग, पाण्डुरोग, महणीदोष, शोष, प्लीहा, और ज्वरको दूर करनेवाला है । बमन, अतिसार और शूलको दूर करता है ऊर्ध्ववातानुलोमी है ।

मिश्रीकी चासनी में पूर्वोक्त चूर्ण को डालकर गोली बनालेवै, आम्रिके संस्कार से ये गोळियां चूर्णकी अपेक्षा हलकी होती हैं ।

यक्ष्मारोगमें मांसव्यवस्था ।

शुष्यतेक्षीणमांसायकल्पितानिविधानवि-
त् । दद्यान्मांसादमांसानिवृंहणानिविशेष-
पतः ॥ शोषिणेवाहिंणंदद्याद्वाहिंशब्देन
चापरान् । गृधानुलकाश्चांसांश्चविधि-
वत्सूपकल्पितान् ॥ काकांस्तिर्त्तरिश-
ब्देनमत्स्यशब्देनचारेगान् । शृष्टान्म-
त्स्योन्मत्स्यशब्देनदद्याद्गृह्यपदानपि ॥ लो-
मशान्स्फूलनकुलान्विडालांश्चोपकल्पि-
तान् । शृगालशावाश्चभिषक्शशशब्देन
दापयेत् ॥ सिंहावृक्षांस्तरक्षश्चव्याघ्रा-
नेवंविधांस्तथा । मांसादान्मृगशब्देन
दद्यान्मांसाभिवृद्धये ॥ गजखड्गितुरङ्गा-
णांवंशवारकृतान्भिषक् । दद्यान्महि-
पशब्देनमांसमांसाभिवृद्धये ।

अर्थ—जिस यक्ष्मारोगीका मांस छीण
होगयाहै उसे मांसाहारी जीवों का मांस
देना चाहिये क्योंकि यह अत्यंत वृंहण होता
है । इसरोगीको मोरेकामांस खवावे अथवा
मोरके शब्द से अन्य गिद्ध घुग्घू और चिल
कामांस अनेक तरहसे सागभाजी की तरह
बनाकर सेवन करावे । तत्तरके नामसे
कौण्टकामांस, मछली के नामसे सर्पकामांस,
मछली के अंत्रके नामसे गिडोये, खर्गोश के
मांसके नामसे रोमयुक्त भोटे नकुलकामांस,
विट्ठी या शृगाल के बच्चेका मांस साग
भाजीकी रीति से प्रस्तुत करके देवे । हि-
रनमांसके नामसे सिंह, रीछ, रोज बंधरे
तथा ऐसेही अन्य मांसाहारी पशुओंका मांस
मांसकी शक्ति के लिये देवे । भैंसेके मांसके

नामसे हाथी घोड़े वा गेंडे के मांसका वेश
वार बनाकर देवे । इन मांसों से मांसकी
शक्ति होती है ।

मांसेनोपचिताङ्गानामांसंमांसकरंपरम् ।
तीक्ष्णोष्णलाववाच्छस्तं विशेषान्मृगप-
क्षिणाम् ॥ मांसानियान्यनभ्यासादनि-
ष्टानिप्रयोजयेत् । तेषूपधामुखंभोक्तुत-
थाशक्यानिदानिहि ॥ जानन्जुगुपसनै-
वाद्याज्जग्धंवापुनरुल्लिखेत् । तस्माच्छ-
द्योपसिद्धानिमांसान्येतानिदापयेत् ॥
अर्थ—मांसाहारी जीवोंका मांस अत्यन्त
मांसवर्द्धक होताहै इनमें से मृग और पाक्षि-
यों का मांस तीक्ष्ण, उष्ण और लघु होने
से अत्यन्त हितकारी होताहै । अनभ्यास
के कारण जो अनिष्ट मांसोंका प्रयोग किया
जाता है उनमें भी रुचिको उत्पन्न करके
मुखपूर्वक भोजन करे । जो रोगी जानकर
भी घृणा प्रकट करता हुआ खातेता है वह
वमन करदेताहै, इससे इन मांसों को छल
से सिद्ध करके देवे ।

द्योपपरत्वसे यक्ष्मामें मांसविधान ।
वाहितित्तिरिदसाणांहंसानांशूकरोष्ट्रयोः ।
खरगोमहिषाणाञ्चमांसंमांसकरंपरम् ॥
योनिरष्टविधाचोक्तामांसानामन्नपानि-
के । तान्परीक्ष्यभिषग्बिद्वान्दद्यान्मांसा-
निशोषिणे ॥ प्रसहाभूशयानूपचारिजा-
वारिचारिणः । आहारार्थेप्रदातव्यामा-
त्रयावातशोषिणे । प्रतुदाधिकिरार्थव-
धन्विजाश्चमृगद्विजाः । कफपित्तपरीता-
नांप्रयोज्याःशोपरोगिणाम् ॥ विधि-

त्सूपसिद्धानिमनोज्ञानिमृद्निच । रसव
न्तिसुगन्धीनिमांसान्येतानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—मोर तीतर, मुर्गा, हंस, सूअर, ऊँट, गधा, गौ, भैंसा इनका मांस अत्यन्त मांसवर्द्धक होताहै । अन्नपानाध्यायमें जो आठ प्रकारके मांस वर्णन कियेगये हैं उन्हीं मांसों में से यक्ष्माके अनुसार रोगी को मांसका सेवन कराना चाहिये, यथा वात-शोथी रोगीको प्रसह, भूशय, आनूप देशज जलज और जलचर पशुपक्षियों का मांस खाने के लिये देवे । कफ पित्त शोष रोगियोंको प्रतुद, बिष्किर और धन्वज पशु-पक्षियोंका मांस देवे ॥

इन सम्पूर्ण मांसों को साग भाजी की तरह सिद्ध कराके मनोज्ञ मृदु रसाले और सुगन्धित द्रव्य डालकर देवे ॥

मांसमेवाश्रतः शोपेमाध्वाकपिचतोऽपिच
नियतस्याल्पचित्तस्याचिरकायेनतिष्ठति
वारुणीमण्डभक्तस्यवहिर्माजर्जनसेविनः ।
अविधारितवेगस्ययक्ष्मानलभतेऽन्तरम् ॥
प्रसन्नावारुणींशीधुमारिष्टानासवान्मधु ।
यथेष्टमनुपानार्थपियेन्मांसानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—उस नियमसे चलनेवाले और शान्तात्मा मनुष्यके शरीरमें यह रोग बहुत दिवस तक नहीं रहने पाताहै जो मांस खाता है और माध्वाक पीताहै । जो सुरा मण्डलको पीताहै और स्नानादि वहिर्माजर्जन करताहै तथा मलमूत्रादिके उपस्थित वेगों का नहीं रोकना है उसके यक्ष्मा भीतर प्रवेश नहीं करसकना । यक्ष्मारोग में प्रसन्ना

वारुणी, शीधु-अरिष्ट, आसव और मधु इन का यथेष्ट पानकरै और यथेष्ट मांसभक्षणकरै यक्ष्मा में मद्यके गुण ।

मद्यंतीक्ष्णोष्णैर्विशद्यस्सूक्ष्मत्वात्स्रोतसाम्मुख
म् । प्रमथ्यनिवृणोत्याशुतन्मोक्षात्सप्त
धातवः । पुष्यन्तिधातुयोगाच्चशीघ्रंशोष
प्रशाम्भ्यात् ॥

अर्थ—मद्य तीक्ष्ण, उष्ण, विशद और सूक्ष्महोने के कारण स्रोतों के मुखका प्रमथन करके उन्हें खोलदेताहै और उनके खुलनेसे सातों धातु पुष्ट होने लगताहै और धातुओं के पुष्ट होने से शोष शीघ्र शान्त होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

मांसादमांसस्वरससिद्धं सर्पिःभयोजयेत् ।
सक्षौद्रंपयसासिद्धं सर्पिर्दशगुणेनवा ॥
सिद्धंमधुरकैद्रव्यैर्दशमूलकपायिकैः । क्षी
मांसरसोपेतं घृतंशोपहरंपरम् ॥ पिप्प-
लीपिप्पलीमूलचव्याचिभ्रकनागरैः । स-
यावशुकैःसक्षीरैःस्रोतसाम्शोधनंघृतम् ॥
रास्नावलागोक्षुरकंस्थिरावर्षाभूसाधित-
म् । जीवन्तीपिप्पलीभार्गीसक्षीरंशोप-
नुद्घृतम् ॥ यवाग्वावापिचेन्मात्रांलिङ्गा-
द्रामधुनासह । सिद्धानांसर्पिपामेपामद्या
दन्नेनवासह ॥ शृष्यतामेपनिदिष्टोचिधि
राभ्यवहारिकः । वाहिःस्पर्शनमाश्रित्य-
वश्यतेऽपःपरंविधिः ॥

अर्थ.... यक्ष्मामें मांसाहारी जीवोंके मांस रसमें सिद्ध कियाहुआ घृत देवे । अथवा दसगुने दूध में घृत पकाकर शहत के साथ

सेवन करे । अथवा मधुरगणोक्त द्रव्य, और दशमूलके काथमें दूध और मांसरस मिलाकर उसमें घृत को पकाकर देवे यह अत्यन्त शोषनाशक प्रयोगहै । अथवा पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ जवाखार और दूध इनमें सिद्ध किये हुए घृतका सेवन कराने से छोटोंका मुख खुलताहै । अथवा रास्ना, खरैटी, गोखरू शालिपर्णी और सांठ इनके काथमें जीवन्ती, पीपल, भाडंगी और दूध डालकर घृत पकावे यह घृत शोषको दूर करताहै । ऊपर कहेहुये घृतोंको यवागू में मिलाकर पीवे अथवा शहतमें मिलाकर चाटे । अथवा आहारके साथ सेवन करे ।

शोषरोगीके लिये यह आहारविधि वर्णन की गई है अब यहांसे बहिःस्पर्शनविधिका वर्णन करेंगे ।

अवगाहनविधि ।

स्नेहक्षीराऽम्बुकोष्ठे तस्वभ्यक्तमवगाहयेत् ।
स्रोतोविबन्धमोक्षार्थं बलपुष्ट्यर्थमेव वा ॥
उत्तीर्णमिश्रकैः स्नेहैः पुनरुक्तैः सुखाकरैः ।
मृद्रीयात्सुखमासीनं सुखं चाच्छादयेन्नरम् ॥

अर्थ—रोगीके देहपर तैलमर्दन करके धी दूध या जलकी फोटीमें बिठलाकर स्नान करावे, ऐसा करनेसे स्रोतोंके मुख खुलजातेहैं तथा बल और पुष्टाई बढ़तीहै स्नानके पीछे रोगी को आराम से बिठाकर पूर्वोक्त मिश्रकस्नेहका रोगीकी देहपर धीरे २ मालिश करके उसको अच्छी तरहसे बद्ध उठादेवे ॥

उदूर्चनविधि ।

जीवन्तीशतवीर्याश्च विकसांसपुनर्नवाम् ।

(१००)

अश्वगन्धामपामार्गतकार्करीमधुकंचलाम् ॥
विदारिसर्पंकुण्डलानतसीफलम् ।
मापांस्तिलांश्चकण्वच्चसर्वमेकत्रचूर्णयेत् ॥
त्रिगुण्यवचूर्णेन दध्नायुक्तं समाक्षिकम् ।
एतदुत्सादनं कार्थ्यं पुष्टिवर्णवलप्रदम् ।

अर्थ....जीवन्ती, शतवीर्या (दूब भेद) मजीठ, सोंठ, असगंध, आंगा, अरनी, मुलहठी, खरैटी, विदारीकन्द, सरसों, कूठ, तण्डुल, अलसी, उरद, तिल और सुराधी-ज इन सबको पीसलेवे इसमें तिगुना जौ का चून, तथा दही और शहत मिलाकर के उबटना करे । इससे पुष्टाई, बल और वर्ण बढ़ताहै ।

गौरसर्पकल्केन गन्धैश्चापिसुगन्धिभिः ।
स्नायाद्दुसुखैस्तोयैर्जीवनीयौषधैः शृतैः ॥
गन्धैः समाल्यैर्वासोभिर्भूपणैश्च विभूषितः ॥
स्पृश्यान्संस्पृश्य संपूज्य देवताः सभिपग्-
द्विजान् ॥ इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धवत्पानभो-
जनम् ॥ इष्टमिष्टरूपहितं सुखमद्यात्सुख-
प्रदम् ॥

अर्थ—सफेद सरसोंका कल्क, और सु-सुगन्धित द्रव्योंको जीवनायगणोक्त औषधियों में काथ करके ऋतुके अनुसार सुखदायक जलोंसे स्नान करे जैसे गरमीमें शीतलजल से सरदीमें गरम जलेसे स्नान करे फिर अतर फुलेल लगाकर फूलमाला और स्वच्छ वस्त्र धारण करे, आभूषण पहरे । मंगल द्रव्यों का स्पर्श कर देवता, वैद्य और ब्राह्मणोंका पूजन करे फिर अपने इष्टमित्रोंके साथ इच्छानुसार इस, वर्ण स्पर्श और गंध से युक्त सुखपूर्वक अन्नपानका सेवन करे ।

पृथ्यतम भोजन ।

समातीतानिधान्यानिक्लपनीयानिशुष्य-
ताम् । लघूनिहीनवीर्याणिगतानिपृथ्यत
मानिहि ॥

अर्थ—शोषरोगियोंके लिये एक वरसके
रमले हुए पुराने चावलोंका सेवन करावै ये
लघु और हानिदायि होनेके कारण अत्यन्त
पृथ्यतम होते हैं ।

यक्ष्मामे अन्यपृथ्य ॥

पद्योपदेश्यतेपृथ्यक्षतज्ञाणाचिकित्सते ।

यक्ष्मिणस्तत्प्रयोज्यव्यवल्मासाभिदृढये ॥

अर्थ... क्षतक्षीण चिकित्सामे जो जो प्र-
योग वर्णन कियेगयेहैं वे सब बल और मांस
बढानेके लिये यक्ष्मामे देने चाहिये ।

यक्ष्मामे अन्यउपचार ।

अभ्यङ्गोत्सादनैः स्नानैरवगाहैर्विमार्जनैः ।

वस्तिभिः क्षीरसर्पिर्भिर्मांसैर्मांसैरसादनैः ॥

इष्टैर्मद्यैर्नोष्ठानाङ्गानामुपसेवनेः । यथ-

स्तुविहितैः स्नानैर्वासोभिरहतैः प्रियैः ॥ सु-

हृदारमणीयानां प्रमदानां च दर्शनैः । गी-

तवादित्रशब्दैश्चाप्रियश्रुतिभिरेव च ॥ हर्ष-

णाश्वासनैर्नित्यं गुरुणां समुपासनैः । ब्र-

ह्मचर्येणदानेन तपसा देवतार्चनैः ॥ सत्ये

नाचारयोगेन मङ्गलैर्विहिंसया । वैद्यवि-

प्रार्चनाचैवरोगराजो निवर्त्तते ॥

अर्थ.... तेलकी मालिश करने से, उबटना

करनेसे, स्नान, अबगाहन और मार्जन करने

से, वस्तिकर्म से, घृत, दुग्ध, मांसके सेवन

से, मांसरस के साथ भात खाने से, इष्ट

मद्यपान से, मनाहारी गंधों के सूंघने से,

श्रुत २ के अनुसार जलों से स्नान करनेसे,
अखण्ड और प्यारे वस्त्रोंको धारण करनेसे
इष्टमित्रोंके दर्शनसे, और कम्पीय स्त्रियोंके
देखनेसे गीत वाजोंके शब्दोंसे, प्यारी बातों
के सुनने से, हर्ष और आश्वासनसे, गुरुज-
नोंकी नित्यप्रति सेवा करनेसे, ब्रह्मचर्य,
दान तप और देवतार्चन नियमोंके पालन से
सत्यव्रतपालन, मंगलाचरण और अहिंसा
से, वैद्य और विप्रोंके पूजनसे यह रोगराज
राजयक्ष्मा दूर होजातीहै ॥

यथाप्रयुक्त्याचेष्याराजयक्ष्मापुराजितः ।

तावेद्विहितामिष्टमारोग्यार्थं प्रयोजेयत्

अर्थ—जिस प्रयोग और कामसे प्राचीन

कालमें यह रोग दूर किया गयाथा उस

वेदोक्तकार्य को आरोग्य प्राप्त करनेके लिये करें

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ॥

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानि प्राप्पूरूपसंग्रहः ॥

समासव्यासतश्चोक्तभेदपञ्चराजयक्ष्मणः ॥

नामहेतुरसाध्यत्वंसाध्यत्वंचूक्षुसाध्यता

इत्यर्थसंग्रहः प्रोक्तो राजयक्ष्मचिकित्सिते ॥

अर्थ.... इस राजयक्ष्माके चिकित्साध्यायमें

राजयक्ष्माकी प्रागुत्पत्ति, निदान, पूर्वरूप

रूप और चिकित्सा विस्तारपूर्वक तथा

संक्षेप से वर्णन किये गये हैं । इस रोगके

अन्यनाम, हेतु, असाध्यता, साध्यता, और

चूक्षुसाध्यताका वर्णन किया गया है ॥

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवशाविरचि-

तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चि-

कित्सितस्थाने राजयक्ष्मचिकित्सितं

नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

अथातोऽर्शांचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥
इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि
श्रव हम 'अर्शांचिकित्सित' नामक अध्याय
की व्याख्या करेंगे ।

आसीनं मुनिमव्यग्रं कृतजप्यं कृतक्षणम् ।

पृष्टवानर्शांशुक्तिमग्निवेशः पुनर्वसुम् ॥

प्रकोपहेतुः सस्थानस्थानं लिङ्गाचिकित्सितम् ।
साध्यासाध्यविभागश्च तस्मै तन्मु

निरग्रवीदिति ॥

अर्थ—जब महात्मा पुनर्वसु जपादि नि-
त्यकर्मसे निश्चिन्त होकर स्वस्थचित्तसे बैठे
हुए इस अवकाशको देखकर अग्निवेशने
उनसे अर्शरोग की युक्ति, प्रकोप हेतु, आ-
कृति, उत्पत्तिस्थान, लक्षण चिकित्सा, सा-
ध्यासाध्य लक्षण पूछे और मुनीश्वरने इन
सब प्रश्नोंका यथावत् उत्तर दिया ।

अर्श के भेद ।

इह त्वग्निवेश ! द्विविधान्यर्शांसि सह
जानिकानि चिद् ॥ कानिचिज्जातस्यो
त्तरकालजानि । तत्र वीजं गुदवलि वीजो
पतप्तमायतनमर्शांसि सह जानां ॥ तत्राद्वि-
विधौ वीजौ उपतप्तौ, हेतुः मातापित्रोर-
पचारः पूर्वकृतञ्च कर्म तथा न्यपामपिस
ह जानां विकाराणाम् ॥ तत्र सहजातानी-
ति शरीरेणार्शांसीत्यधिमांसविकाराः ।

अर्थ—हे अग्निवेश ! अर्श [ववासां ।
दो प्रकारके होते हैं एक सहज [जन्म
सेही होनेवाला] दूसरा उत्तरकालज

(जन्म लेनेसे पीछे होनेवाला) इनमें
सहज अर्शका आयतन गुदवलि वीजोप-
तप्त है, इनमें से माता पिताके अपचार से
वीजके उपतप्त होनेके कारण तथा पूर्वजन्म
के किये हुए कर्मसे सहज अर्श होता है, त-
था अन्य सहज विकारों के भी ये ही दो-
नों हेतु हैं ॥ जो अर्श शरीरके साथही होते
हैं वे एक प्रकार के अधिमांस विकार हैं ।

अर्श का स्थान ।

सर्वेषाञ्चार्शांश्चित्रं गुदस्यार्द्रपञ्चमांगुले
ऽवकाशे त्रिभागान्तरास्ति सौगुदवलयः
क्षेत्रमित्यदेशः । केचित्तु भूयांसमेव देशमु-
पादिशन्त्यर्शांशिश्रमपत्यपयंगलमुखना
सिकाकर्णाक्षि वर्तमानित्ववचात्तदस्यधि-
कमांसदेश एषः गुदवलि जानां त्वर्शांसीति
संज्ञातत्र अस्मिन् सर्वेषां चार्शांसां अधिष्ठानं
येदोमांसत्वकृच्च ॥

अर्थ—गुदाके द्वारसे भीतरको साडे पांच
अंगुलके बीचमें प्रवाहिणी, विसर्जनी और
संवरणी, ये तीन आंटी होती हैं इनमें ही
सब प्रकारके अर्शरोग उत्पन्न होते हैं और
अर्शरोगकी उत्पत्तिका यही स्थान अर्थात्
क्षेत्र है ॥ कोई-२ यह कहते हैं कि केवल
गुदाही अर्श का स्थान नहीं है किन्तु और
भी हैं, यथा भेट्ट, योनिमार्ग, गला, मुख,
नासिका, कान, आंख के कोण और त्वचा
परन्तु इन स्थानों में जो मांस घटता है
वह अर्श नहीं कहलाता है वह तो अधिमांस है
और गुदाकी आंटीयोंमें जो मांसकी वृद्धि
होती है उसे ही 'अर्श', कहते हैं । यहाँ सम्पूर्ण

में पसली, कूख, वस्ति, हृदयं, पीठ, गर्दन के जैते इनमें वेदना, और ताप, चिन्ताप्र-
स्तता अत्यन्त आलस्य के विकार रहा करतेहैं

उक्तउपद्रवोंका कारण ।

जन्मभृतिअस्यगुदजैराटुतोमार्गोपरोधा-
द्वायुरपानःप्रत्यारोहन्समानव्यानप्राणो
दानान्पित्तश्लेष्मणौचमकोपयति । ते-
प्रकृपिताःपञ्चवाताःपित्तश्लेष्मणौ चा-
शीसामभिद्रवन्तेएतान्विकारानुपजनय-

न्तित्युक्तानिसहजन्यशांसि ॥

अर्थ—जन्मसेही गुदमें उत्पन्नहुई अर्श से
रुफकर ऊपरको बढ़तीहुई अपानवायु समान
व्यान, प्राण, और उदान इन चारों वायुको
तथा पित्त और कफ को प्रकृपित करदेती
है । इसतरह प्रकृपित हुए पांचों वायु तथा
पित्त और कफ अर्श को उपद्रुत करके पूर्वोक्त
विकारोंको उत्पन्न करतेहैं ।

यह सहज अर्शोंका वर्णन कियागयाहै ।

उत्तरकालजअर्शके लक्षण ।

अतऊर्ध्वजातस्योत्तरकालजानिव्याख्या
स्यामः । गुरुमधुरशीताभिष्यन्दविदाहि
विरुद्धार्जीर्णप्र मिताशनासात्म्यभोजना
द्रव्यमत्स्यवाराहमाहिपाजाविकपिशित
भक्षणान्तुशुष्कपूतिमांसपैष्टिकपरमा-
शनीरपोदकदधितिलगुडविकृतिसेवना
न्मापयूपेक्षुरसापिण्याक पिण्डालकशुष्क-
शाकशुक्लशुनकिलाटपिण्डकविषमृणाल
शालूककौश्लादनकशेरुकाभृङ्गाटकतरुणवि-
रुदनवधान्याममूलकोपयोगाद्गुरुफलेशा-
करागहरितवसा शिरस्पदपर्युपितपूतिशी-
तसङ्कीर्णाभ्राभ्यवहरणान्मन्दकातिक्रान्त

मद्यपानाद्व्यापन्नगुरुसलिलपानादातिस्ने-
हपानादसंशोधनाद्दस्तिकर्मविभ्रमादव्यं-
वायाद्विवास्वमात्सुखशयनासनोपसेव-
नाच्चोपहृताग्नेर्मलोपचयोभवत्यतिमात्रम्
अथोत्कटुकविषमकठिनासनसेवनाद्बुद्धा-
न्तयानोप्प्रयाणादतिव्यवायाद्दिस्तने-
त्रासम्यक्प्रणिधानात्सुदक्षणादभीक्ष्णं
शीताभ्युसंस्पर्शाच्चेललोप्त्रुणादिघर्ष-
णात्प्रततातिनिवर्हणाद्वातमूत्रपुरीषवैगो-
दीरणात्समुदीर्णवैगविनिग्रहात् स्त्रीणा-
ञ्चामगर्भभ्रंशद्रभोत्पीडनाद्बहु विषमप्र-
सूतिभिश्चप्रकृपितोवायुरपानोमलमुपवि-
तमधोगममासाद्यगुदवलिप्वाधत्तेतस्ता-
स्वशांसिमादुर्भवन्ति ।

अर्थ—अब जन्मके पीछे होनेवाले अर्श-
रोगका वर्णन करेंगे—यथा भारी, मिष्ट, शी-
तल अभिष्यन्दी, विदाही, विरुद्ध, अजीर्ण-
कर्त्ता भोजन, प्रमितभोजन और असात्म्य
भोजन से, गौ, मछली, सूअर, भैंसा, बकरी,
भेड़ इनका मांस खानेसे, कृश शुष्क और
सडेहुये मांसके सेवन करनेसे, पिष्टक, पर-
मान्न, दूध, मोदक, दही, तिल, गुड इनके
बनेहुये पदार्थोंके सेवनसे, उरद का यूप
ईखका रस, पिण्याक, पिण्डालू, सु-
खासाग, सिरका, लहसन, कीला, पिण्ड-
क, कमलनाल, मृणाल, शालूक, कौञ्चा-
दन, कसेरू, सिंघाडोंके सेवनसे, तरुण, उ-
गेहुये, नवीन धान्योंके खानेसे, कच्ची मूली
के सेवनसे, भारीफल, शाक, रागखाडव,
हरितक, चर्बी, पक्षियोंके सिर, पांव तथा,
वासी, सडाहुआ, ठंडा, संकीर्ण भोजन करने

से, मन्दक दधि और अत्यन्त मद्यपान करनेसे, दूषित और भारीजलके पीनेसे, अत्यन्त स्नेह पानकरनेसे, असंशोधनसे वस्ति-कर्ममें उलट पुलट होनेसे, अव्यवायसे, दिन में सोनेसे, सुखासन, शय्या वा आसन पर अत्यन्त बैठे रहनेसे आग्निमन्द पडजातीहै और अग्निके मन्द पडजानेसे मलकी अत्यन्त दृक्छि होतीहै । इसीतरह उकड़ बैठनेसे, विषम वा कठोर आसनपर बैठे रहनेसे, ऐसी सवारीपर चढ़नेसे जिसमें झटके बहुत लगते हों, ऊँटपर चढ़नेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे वास्तिनेत्रके ठीक २ न लगनेसे, गुदामें घाव होजानेसे, अथवा बार २ बहुत ठंडे वा गरम जलसे धोनेके कारण अथवा कपडा, लोहा, मिट्टीका ढेला वा निनुकेसे अत्यन्त घर्षण करनेसे, अत्यन्त किंचनेसे अधोवायु मूत्र और पुरीषके अनुपस्थितवेग को निकालनेसे तथा उपस्थित वेगका निग्रह करनेसे, स्त्रियों के आमगर्भके गिरपडनेसे, गर्भके उत्पीडन से, बहुत संतान होने से वा विषम रीतिसे होनेपर अपानवायु प्रकुपित होकर पूर्व संचित मलसे उस समय मिलजातीहै जब वह नीचे को जाने लगताहै, वह अपानवायु गुदाकी आंठमें स्थित होजाताहै और वहां विकार उत्पन्न करके अर्श रोगको उत्पन्न करता है ॥

दोषपरत्वसे अर्शका आकार ।

सर्पपममूरमापमुद्रमकुपुकयवकलायाटि
ण्टिकेरखजूरककन्दकाकणान्तिकाविम्बी
बदरकरीरोदुम्बरजाम्बवर्गोस्तनीगुण्टक-

शेरुकामृद्गाटकमृद्गीदक्षशिखिशुकतुण्ड
जिहामुकुलकर्णिकासंस्थानानिसामान्या
द्वातपित्तकफप्रचलानितेपामयंविशेषः ।

अर्थ—सरसों, मसूर, उडद, मूंग, मौंठ, जौ, कलाय, टिण्टिकेर (टेंटी) खिजूर, वेर, चिरमिठी, कंदूरी, वेर, करीञ, गूडर, जामन, फंसमिस, अंगूठा, कसेरु, सिंघाडा, काकडासोंगी, मुर्गा, मोर, तोता, इनकी चोंच और जिह्वा तथा फूलकी कार्णिकाके समान आकार उन अर्शोंका होताहै जो वात, पित्त तथा कफकी प्रचलतासे हुई है । इनके विशेष लक्षण नीचे लिखे जाते हैं ।

घातप्रचल अर्शके लक्षण ।

शुष्कम्लानकठिनपरुकरूक्षश्यावानिती
श्याग्राणिवक्राणिस्फुटितमुरवानिविषम
विस्तृतानिशूलासेपतोदस्फुरणचिमिचि
मासंहर्षणपरीतानिस्त्रिगंधोष्णोपशयानि
प्रवाहिकाध्मानशिश्रृपणवस्तिवृत्तणह-
दग्रहाङ्गपर्देहृदयद्रवप्रचलानिप्रततवियद्
वातमूत्रचर्चोत्सिफीठनचर्चोत्सूरकटीपृष्ठ
त्रिकपाईर्वकुक्षिवस्तिशूलशिरोऽभितापिक्ष
वधुद्गारप्रतिश्यायकासायासशोषशोथ
मूर्च्छारोचकगुरखवैरस्यतैमिर्यकण्डूनासा
कर्णशंखशूलस्वरोपघातकराणिश्यावारु
णपरुपनखनयनचन्दनत्वक्मूत्रपुरीपस्य
वातोत्वणान्यशोसीतिविधात् ।

अर्थ—वे अर्श जो शुष्क, कुम्हलाईहुई कठोर, खरखरी, रूक्ष, श्यामवर्ण, तीक्ष्ण अग्रभागवाली, टेढी, फटेहूए मुखकी विषम रीतिसे केली हुई होतीहै तथा जिनमें

शूल, आक्षेप, तोद (सुई चुभने कीसी वेदना), स्फुरण (फुरफुरी) चिमचिम और रोमोद्गम होता है, जिनमें स्निग्ध और उष्णद्रव्योंके व्यवहारसे शान्ति होती है जिनमें प्रवाहिका अध्मान होता है तथा भेद, अण्डकोप, घस्ति, वंक्षण और हृदयमें वेदना होती है जिसमें अंगमर्द और हृदय द्रवकी प्रचलता होती है, जिसमें अधोवायु, मल और मूत्र रुकजाता है, मल कड़ा पड़जाता है, ऊरु, कमर, पीठ, त्रिक, पसली, कूख और घस्तिमें शूल होता है, शिरोवेदना, छींफ, डकार, जुकाम, खासी, आयास, शोष, सूजन, मूर्च्छा, अरुचि और मुखमें घिरसता, तिमिर, खुजली, नाककान कनपटीमें वेदना, स्वरभंग, तथा जिसमें नख, नेत्र, मुँख, त्वचा, मूत्र और विष्टा काले, लाल और परुष होजाते हैं, उसे घातज अर्थ कहते हैं ।

भवतिचात्र ।

कपायकटुतिक्तानिरूक्षशीतलघूनिच ।
ममितालपाशनन्तीक्ष्णमद्यमैथुनसेवनम् ॥
लघनदेशकालौचशीतोव्यायामकर्मच ॥
तीक्ष्णोवातातपस्यशोहेतुर्वार्ताशसामिति ॥

अर्थ—कपाय, कटु, तिक्त, रूक्ष, शीतल और लघु पदार्थोंका अत्यन्त सेवन, मित-भोजन, अल्पभोजन, तीक्ष्णमद्यपान, अत्यन्त मैथुन, लघन, शीतदेश, शतिकाकाल, व्यायाम प्रचंड पवन, तेज घूप, ये सब घातज अर्थ के प्रधान हेतु हैं ।

पित्तज अर्थ के लक्षण ।

मृदुशियेलसुकुमाराण्यस्पर्शसहानिरक्त-

पीतनीलकृष्णानि स्वदोषकृद्वहुला-
निविश्रगन्धीनितनुपीतरक्तस्रावीणिरुधि
रवाहीनिदाहकण्डूशूलनिस्तोदपाकवन्ति-
शिशिरोपशयानिसंभिन्नपीतहरितवर्चा
सिपीतविस्त्रगन्धप्रचुरविष्णूत्राणिपिपासा-
ज्वरतमकसंमोहभोजनद्वेषकराणिपीतन
खनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्यापिचोल्ब-
णान्यर्शासीतिविधात् ।

अर्थ....पित्तज अर्थ उसे कहते हैं जो मृदु, शियल और सुकुमारहो, जिसमें हाथ लगानेसे तकलीफ होताहो, जिस का वर्ण लाल, पीला, नीला वा काला हो जिस में पसीने और श्वेदकी अधिकता हो, जिसमें दुर्गन्ध आतीहो, पतला और पीला रक्त झरताहो, रुधिर बहताहो, जो दाह, खुजली शूल, तोद और पाकयुक्तहो, जो शीतल पदार्थों के सेवनसे शान्त होजाय, जिसमें फटाफटा पीला वा हरामल निकलै, जिसमें पीला दुर्गन्धयुक्त और अधिक मल मूत्र निकलै, जिसमें तृषा, ज्वर तमक, मोह, भोजनमें अरुचि ये उपद्रवहों, जिस में नख, नेत्र, मुख-त्वचा, मूत्र और विष्टा पीले पड़गये हों ।

भवतिचात्र ॥

कट्टम्ललवणक्षारव्यायामान्यातपप्रभाः
देशकालावाशिशिरोक्रोधोपद्यमसूयनम् ॥
विदाहितीक्ष्णमुष्णञ्चसर्षपानान्नभेषजम्
पित्तोल्वणानांविशेषःप्रकोपहेतुर्शसामिति
अर्थ—पित्तोल्वण अर्थके कोपके प्रधान कारण ये हैं, यथा-कटु, अम्ल, नमकीन और खारे पदार्थों का अत्यन्त सेवन, व्यायाम

म, अग्नि तथा धूपका अत्यन्त सेवन, उष्ण, देश कालका सेवन, क्रोध, मदिरापान, निन्दा तथा विदाही, तीक्ष्ण, उष्ण अनपान और औषधी का सेवन ।

कफजअर्श के लक्षण ॥

तत्रयानिप्रमाणवन्पुपाचितानिश्लक्षणा-
निस्पर्शसहानिश्चेत्पाण्डुपिच्छलानि
स्तब्धानिगुरूणीस्तिमितानिसुप्तसुप्तानि
स्थिरश्वयधूनिपततीपञ्जरश्चेत्तस्तीपच्छ
स्वावीणिकण्डूवहुलानिगुरुपिच्छलश्चे-
त्सूत्रपुरीपाणिरूक्षोष्णोपशयानिप्रवाहि
कान्तिमात्रोत्थानिवंक्षणानाहपरिकार्त्तिका
हृल्लासनिष्ठीविकाकासारोचकमतिशया
यगौरवच्छर्दिमूत्रकृच्छ्रशोपशोथपाण्डुरो
गशतिञ्चराश्मरीशर्कराहृदयेन्द्रियास्यो
पलेपास्यमाधुर्यप्रभेदकराणिदीर्घकालानु
पशयान्यतिमात्रमग्निमादर्वकैलव्यकराण्या
मविकारप्रवलानिगुरूणिकञ्जुकनखनयन
घदनत्वद्सूत्रपुरीपश्यश्लेष्मोत्वणान्यर्शा
सीतिविद्यात् ॥

अर्थ—कफजअर्श उन्हे कहतेहैं जो घडे, मोटे, चिकने, स्पर्शके अयोग्य, सफेद, पाले पिच्छल, स्तब्ध, भारी, स्तिमित, फैलेहुये, स्थिर सूजनयुक्त हों, जिसमेंसे पीला, सफेद, लाल और पिच्छल स्राव होताहै, जिसमें अत्यन्त खुजली चलतीहै, भारी, पिच्छल और श्रेत वर्णका मलमूत्र निकलता है, जो रूक्ष और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे शान्त होजाता है, जिसमें अत्यन्त प्रवाहिका, वंक्षणानाह, परिकार्त्तिका, हृल्लास, निष्ठीवका, खांसी, अरुचि, प्रतिश्याय, भारापन, मूत्रकृच्छ्र, वमन,

शोष, शोध, पाण्डु रोग, शीतञ्जर, अश्मरी, शर्करा, हृदयोपलेप, इन्द्रियोपलेप, आस्योप-
लेप, मुखमें मांठापन और प्रमेहरोग ये उपद्रव होतेहैं यह अर्श बहुत दिवस तक रहताहै और अग्निको अत्यन्त मन्द तथा श्लैबता करता है, इसमें आमविकार उत्पन्न होजाताहै, यह रोग बढाभारी है इसके होने से नख, नेत्र, मुख, त्वचा मूत्र पुरीष सफेद पडजाते हैं ।

भवतिचात्र ।

मधुरास्निग्धशतानिलवणानिगुरूणिकच।
अव्यायातदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरतिः।
भाग्वातसेवाशतिचिदेशकालावाचितनम्।
श्लेष्मिकाणांसमुद्दिष्टमेत्कारणमर्शसाम्॥

अर्थ—कफजअर्शके प्रधानहेतु ये हैं यथा मोटे, चिकने, शीतल, नमकीन और भारी पदार्थोंका सेवन, कसरत छुदती न करना, दिनमें सोना, पलंग या आसनपर सुखपूर्वक बैठेरहना, पुरवेवाहयाका खाना, शीतल देश-
कालमें रहना और बेफिकरी ।

द्वन्द्वजादिअर्श केक्षण ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वन्द्वोत्वणानिच।
सर्वोहेतुस्त्रिदोषाणांसहजैर्लक्षणैःसह ।

अर्थ....जिनमें दो दो दोषोंके हेतु और लक्षण मिलेहों उन्हे द्वन्द्वजअर्श कहतेहैं । जिनमें तीनों दोषों के मिलेहुए लक्षणहों तथा जो सहजअर्श के लक्षणों से युक्त हो उसे त्रिदोषजअर्श कहतेहैं ।

अशंकेपूर्वरूप ।

विष्टम्भोऽन्नस्यदोर्वल्पंकुक्षराटोपएवच ।

कार्श्यमुद्गारवाहुल्यंसक्थिसादोऽल्पवि-
दूकता ॥ ग्रहणीदोषपाण्ड्वार्तिरग्न्याचो
दरस्यच । पूर्वरूपाणिनिर्दिष्टान्यर्शसाम
तिष्ठद्ध्ये ॥

अर्थ....पेटमें गुडगुड होना, दुर्बलता,
कूजका फूलना, कृशता, डकारोंका अधिक
आना, सक्थिसाद, दस्तका कमहोना,ग्रहणी
दोष, पाण्डुरोग आर्त्त, उदररोगकी आशंका
ये सब अर्शरोगोंके पूर्वरूप हैं ।

अर्शकेनाम विशेषका कारण ।
अर्शासिखलुजायन्तेनासन्निपतितैः त्रि-
भिः । दोषैर्दोषविशेषात्तुविशेषःकल्प्य-
तेऽर्शसाम् ॥

अर्थ—बिना तीनों दोषोंके मिलनेके अ
र्शरोग नहीं होताहै परन्तु जिस दोषकी प्र-
यत्नता होताहै उसी के नामसे वह पुकारा-
जाताहै ॥

अर्शको कष्टसाध्यत्व ।

पञ्चात्मामारुतःपित्तकफोगुदवालित्रयम् ।
सर्वाण्येतानिकुप्यन्तिगुदजानांसमुद्भवौ
तस्मादर्शासिदुःखानिवहुव्याधिकराणि
च । सर्वदेहोपतापीनिपायःकृच्छ्रतमा-
निच ॥

अर्थ—प्राणादिक पांच प्रकारकी वायु पित्त,
कफ और गुदाकी तीनों अंठी अर्शके उत्पन्न
होनेसे एक साथ कुपित होजातीहै, इस हेतुसे
अर्श अत्यन्त दुःखदायक,बहुत व्याधियों की
करनेवाली सम्पूर्ण देहको उत्तम करनेवाली
प्रायःकष्टसाध्य होतीहै ।

असाध्य अर्शके लक्षण ।

हस्तेपादेगुदेनाभ्यांमुखेदृषणयोस्तथाशो

योहृत्पाश्वशूलीचयोऽर्शःसनसिद्धयति ।
हृदस्तिशूलंसंमोहच्छर्दिरङ्गस्यरुग्ज्वरः ।
तृष्णागुदास्यपाकश्चनिहन्युर्गुदजातुरम् ॥
सहजानिन्निदोषाणियानिचाम्यन्तराव-
लिम् । जायन्तेऽर्शासिसंश्रित्यतान्यसा
ध्यानिनिर्दिशेत् ॥ श्लेपत्वादायुपस्तानि
चतुष्पादसमन्विते । याप्यन्तेदीप्तकाया
ग्नेःप्रत्याख्येयोऽन्यतोऽन्यथा ॥ द्वन्द्वजा
निद्वितीयायांबलौयान्याश्रितानिच । कृ
च्छ्रसाध्यानितान्याहुः परिसम्बत्सरा
णिच ॥

अर्थ—जिस अर्शरोगीके हाथ, पांवगुदा,
नाभि, मुख, अण्डकोप, इनमें शोथ होताहै
तथा हृदय और पसलीमें शूल होताहै वह
अर्शरोग असाध्य होताहै ॥ जिस रोगीके
हृदय और वस्तिमें शूलहो तथावमन, संगोह
अंगवेदना, ज्वर, तृषा गुदाके अप्र-
भागका पाक इन रोगोंके होनेसे अर्श रोगी
मरजाताहै । जो सहज अर्श त्रिदोषसे कु-
पित्त होकर गुदाकी भीतरली आंटीका आ-
श्रय करलेतीहै वे असाध्य होतीहैं; यदि आयु
शेष हो, चिकित्साके चारों पाद युक्तहों और
जठराग्नि प्रदीप्तहो तौ यह रोग याप्य होजा-
ताहै, नहीं तौ असाध्य होताहै । जो सहज
अर्श गुदाकी दूसरी आंटीमें आश्रित रहतेहैं
वा जो एक बरसके पुराने होगयेहैं वे कृच्छ्र
साध्य होते हैं ।

साध्यके लक्षण ।

वाह्यायान्तुबलौजातान्येकदोषोत्वणा-
निच । अर्शासिमुखसाध्यानिनचिरोत्प-

तितानिच ॥ तेषांप्रशमनेयत्नमाशुकुर्याद्
द्विचक्षणः । तान्याशुहिगुदंबद्धांकुर्याद्
द्गुदोदरम् ॥

अर्थ—जो अर्श गुदाकी बाह्यवाली आंटी
में एक दोपसे उत्पन्न होताहै तथा जो बहुत
पुराना नहीं होताहै वह सुखसाध्य होताहै ।
उसके शान्त करनेके लिये बुद्धिमान् वैद्य
को शीघ्रही यत्न करना चाहिये, क्योंकि चि-
कित्सामें विलंब होनेसे अर्श गुदाके मार्गको
रोककर बद्ध गुदोदर रोगको उत्पन्न करती है।

साध्यअर्श में कर्त्तव्य कर्म ।

तत्राहुरेकेश्चक्षणकर्त्तनंहितमर्शसाम् ॥
दाहंक्षारेणचाप्येकेदाहमेकेतथाग्निना ।
अस्त्येतद्भूरितन्त्रेणधीमताहृष्टकर्मणा।
क्रियतेतिविधं कर्मभ्रंशस्तस्यसुदारुणः ।

अर्थ—कोई २ यह कहतेहैं कि मस्तोका
शस्त्रसे काट डालना हितहै कोई यह कहते
हैं कि क्षार वा आम्लसे दग्ध करदेना चाहिये
ये तीन उपाय शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् और क्रिया
कुशल वैद्यके करनेके हैं इन कर्मोंमें विघ्न
पडनेसे भयंकर उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

कर्मभ्रंशके उपद्रव ।

पुंस्त्वोपघातःश्वयुग्मुदेवेगपरिग्रहः ॥ आ-
ध्मानंदारुणंशूलंज्वधारक्तातिवर्त्तनम् ।
पुनर्विरोहोरूढानांक्रिदोभ्रंशोगुदस्यच ।
मर्गंवाभवेच्छीघ्रंशस्त्रक्षारामिविभ्रमात् ।

अर्थ—शस्त्रकर्म, क्षारकर्म वा आम्लकर्ममें
किंसी प्रकारसे विभ्रम पडनेसे क्लीबता, गुदा
में सूजन, मल गुदादि वेगका विनिग्रह, अ-
फाग, दारुणशूल, ज्वधा, रुधिरका बहना,

मस्तोका फिर उत्पन्न होना, कलेद, गुदाकी
भ्रंशता अथवा मृत्यु ये उपद्रव शीघ्रही होतेहैं
यत्तुकर्मसुखोपायमल्पभ्रंशमदारुणम् ॥

तदर्शसांप्रवक्ष्यामिसमूलानानिवृत्तये ।

अर्थ—अब हम अर्शसंबंधी उन उपायों
का वर्णन करतेहैं जो बहुत सुखसाध्यहैं, जिन
में भ्रंश होनेका बहुत कम डरहै और जो
बहुत कठिन नहीं हैं । ऐसे ऐसे उपायों को
जड समेत अर्श को खो देने के निमित्त वर्-
णन करते हैं ।

घातश्लेष्मोत्वणान्याहुःशुष्काण्यर्शांसित
द्विदः ॥ मस्रावीणितथाद्रौणिरक्तपित्तो
त्वणानिच । तत्रशुष्कार्शसांपूर्वमवक्ष्या
मिचिकित्सितम् ॥

अर्शके पहचाननेवाले घात कफोद्भव अर्श
को सूखी बवासीर कहतेहैं । औरजोरक्तपित्त
जन्महै, उसे स्याबी वा गीली कहतेहैं । अब
हम प्रथम शुष्क अर्श की चिकित्साका वर्-
णन करतेहैं ।

शुष्क अर्शकी चिकित्सा ।

स्तब्धानिस्वेदयेत्तानिशोफशूलान्वितानि
च । चित्रकक्षारविल्वानांतैलेनाभ्यज्य
बुद्धिमान् ॥ यवमापपुलाकानांकुलत्था
नांचपोटलैः । गोखराश्वशकृत्पिष्टैस्तिल
कलैकस्तुपैरापि ॥ वचाशताहापिण्डैर्वासु-
खोष्णैःस्नेहसंयुतैः । सक्तूनांपिण्डका
भिर्वास्निग्धानांतैलसर्पिषा ॥ शुष्कमूल
कापिण्डैर्वापिण्डैर्वाकापर्णगन्धिकैः रास्ना
पिण्डैःसुखोष्णैर्वासस्नेहैर्हपुपैरपि ॥ इष्टक-
स्पर्खराश्यायांशकैर्गृह्णनकस्यच । अभ्य

ज्यकुष्ठतेलनस्वेदेयत्पोटलीकृतैः ॥

अर्थ—जो अर्श स्तब्ध, शोकयुक्त और शूलयुक्त है उनमें चीता, जवाखार और बेल फलके तेलकी मालिश करके स्वेदन कर्म में नांचे लिखेद्वेष प्रयोगों को युक्तकरे, यथा जौ, उरद, पुलाक और कुन्थी इनको उ षालकर पोटली में बांधे और इस पोटली से धीरे २ सेकने पर स्वेदन होता है । अथवा गौ, गधा, और घोडे की लीदकी पोटली बनाकर सेकें । अथवा तिलका फल्क और तुप, प्रयुक्त करें । अथवा वच और सोंठको पीसकर घी डालकर पकावै और गरम २ से सेकें । अथवा घी तेल डालकर सत्तूका गोला बनाकर सेकें । अथवा सूखी मूल्याका गोला वा सड़नेका गोला बनाकर सेकें । रास्ना के गरम २ लुग्गद वा स्नेहयुक्त हा-जबरेके लुग्गदसे सेकें अथवा कूठका तेल लगाकर ईट, गंधकी लीद, और गाजर के सागकी पोटली बनाकर सेकें ।

वृषार्कण्डविल्वानांपत्रोत्काथैश्चसेचयेत् ।
मूलकत्रिफलार्काणांविष्णुनांवारणस्यच ॥
अधिमन्थस्यशिग्रोश्चपत्राण्यश्मन्तकस्यच
जलेनोत्काथ्यशूलात्तैस्वभ्यक्तमवगाहये
त् ॥ कीलोत्काथेऽथवाकोष्णेसौवीरकतु
पोदके । किण्वोत्काथेऽथवातकेदधिमण्डा
म्लकाजिके ॥ गोमूत्रेवासुखोष्णोत्

शूलात्तमुपवेशयेत्

अर्थ—अहूसा, आक, अंडी और बेल इनके पत्तोंका काथ कर के सेत्रन करें । शूलयुक्त अर्शरोगीको अच्छीतरह अभ्यक्त

करके मूली, त्रिफला, आक, यांस, वरना, अरनी, सहजना और अश्मन्तक इनके पत्तों काकाथ करके स्नान करावै । अथवा बरके काथम सौवीर वा तुपोदक में, अथवाकिण्व-के काथ में अथवा तक्र, दधिमण्ड वा अ-म्लकांजीमें अथवा गरम २ गोमूत्रमें शूलयु-क्त अर्शरोगी को विठादेवै ।

अर्श में अन्यप्रयोग ।

कृष्णसर्पवराहोद्भूजतूकावृषदंशजम् ॥ य-
सामभ्यजनंकुर्याद्रूपनचाशिसाहितम् । वृ-
केशाःसर्पनिर्मोकोवृषदंशस्यचर्मच ॥ अ-
र्कमूलशमीपत्रअर्शोभ्योधूपनंहितम् । तु-
म्बुरूणविडंगानिदेवदाधिभक्षताघृतम् । वृ-
हतीचाश्वगन्धात्त्रिपिप्लयःसुरसोघृतम् ।
वराहवृषविट्चैवधूपनंशक्तवोघृतम् ॥

अर्थ—कालसाप, सूअर, ऊंट, जतूका [चमगदड] वा बिल्डी की चर्बीका अर्श पर मर्दनकरे ॥ मनुष्यके केश, सर्पकी की कांचली, बिल्डीका चर्म, आककी जड, शमी-पत्र इन सबकी धूप मस्तों को देवै । अथवा धनिया, नायविडंग, देवदार, अक्षत और घृत । अथवा कटेरी, असंगंध, पीपल, सु-रसा तुलसी और घी ॥ अथवा सूअर और बेलकी विष्टा, सत्तू और घी इन प्रयोगोंको धूप देनेके लिये काममें लावै ॥

अर्शपरलेप ।

कुञ्जरस्यपुरीपन्तुघृतसर्जरसोरसःहरि
द्राचूर्णसंयुक्तंमुधाक्षीरप्रलेपनम् ॥ गोपि
त्रिपिष्टाःपिप्लयःसहरिद्राःप्रलेपनम् । शि
रीषवीजंकुष्ठञ्चपिप्लयःसैन्धवगुहः । अ-

कक्षीरसुधाक्षीरत्रिफलाचमलेपनम् ॥ पि-
प्पल्याः चित्रकाः श्यामाः किण्वंमदनतण्डु-
लाः । मलेपः कुक्कुटशकृत्हरिद्रागुडसंयुतः
निकम्भः सामृतासंगः पारावन्नशकृद्गुडः ।
मलेपः स्याद्गजास्थीनिनिम्बोभलातकानि
च ॥ मलेपः स्यादलकैणवसन्तजवसायु-
तः । शूलश्वयथुहृद्रोगे चुलकीवसयाथवा ॥
आर्कपयः सुधाकाण्डकडुकालावुपलवाः ।
करञ्जोवस्तमूत्रंचलेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥ अ-
भ्यंगाद्याः प्रदेहान्तापएतेपरिकीर्त्तिताः ॥
स्तम्भश्वयथुकण्डवर्त्तिशमनास्तेऽर्शसामताः

अर्थ—हार्थीकी लीद, घी, शल, पारा,
हल्दी और सेंहुडदूध इनको सानकर अर्श
पर लेप करे । अथवा पीपल और हल्दी
को गौंके पित्तमें पीसकर लेप करे अथवा
सिरसके बाज, कूठ, पीपल, सेंधानमक
गुड, आकका दूध, सेंहुडकादूध, त्रिफला
इनका लेप करे ॥ अथवा पीपल, चीता,
श्यामा, सुरावीज, मेनफल, चावल, मुर्गेका
बाँठ, हल्दी और गुड इन सबका मिलाकर
लेप करे ॥ अथवा दन्ती, मुर्दासंग,
कवृत्तरकी बीट, गुड, हार्थादात, नीम
और भिल्लया इनका लेप करे । अ-
थवा शूल, सूजन और हृद्रोग से युक्त
अर्श में ऊंटकी चर्बी वा चुलकी की चर्बी
के साथ सफेद आकका लेप करे । अथवा
आकका दूध, सेंहुडके डठल, कडवी तूवी
के पत्ते, कंजा, बकरेका मूत्र, इनका लेप भी
अर्शमें हितकारक है ।

अभ्यंगसे लेकर प्रदेहतक जो प्रयोग व-

र्णन कियेगये हैं वेस्तम्भता, सूजन, खुजली
और आर्तियुक्त अर्शमें हितकारक है ।
प्रदेहान्तरूपक्रान्तान्यर्शासिप्रसवन्तिहि
संश्रित्तदुष्टरुधिरंततः सम्पद्यते सुखम् ।
शीतोष्णस्निग्धरुक्षैर्हि नव्याधिरुपशाम्यति
रक्तेदुष्टेभिपकृतस्माद्रक्तमेवावसेचयेत् ।
जलौकाभिस्तथाशस्त्रैः सूचीभिर्वापुनःपुनः
अवर्त्तमानं रुधिरं रक्ताशोभ्यः प्रवाहयेत् ॥

अर्थ—प्रदेह पर्यन्त उपचारोंके करने
से विगडाहुआ संचित रुधिर निकलजाता
है इसके निकलजानेसे सुखहोता है । दुष्ट
रुधिरके विद्यमान होनेपर शीतल, उष्ण,
स्निग्ध और रुक्ष उपचारोंके करने से व्या-
धि शान्त नहीं होतीहै इसमें रुधिरका निका-
ल देना आवश्यकीय बातहै खूनीवधासार
में जो रुधिरका निकलना बन्द होगया हो
तो जोक, शस्त्र वा सूची द्वारा रुधिर को
निकालता रहे ॥

अर्श में पेय औषध ॥
शुदश्वयथुशूलार्शमन्दाग्निपाययेच्चतम् ।
त्र्युपणंपिप्पलीमूलपाठांहिगुंसचित्रकम् ॥
सौवर्चलंपुष्कराख्यमजार्जीविल्वपेपि
काम् ॥ विडंबवानीहपुपांविडङ्गसैन्धवं
वचाग् ॥ तिन्त्रिण्डीकञ्चमण्डेनमधेनो
ष्णोदकेनच । तथाशोग्रहणीदोपशूलाना
हादिमुच्यते ॥

अर्थ—गुदाके सूजन, शूल और मन्दाग्नि
युक्त अर्शमें निम्नलिखित द्रव्योंका पान
करावै, यथा त्रिकुटा, पीपलामूल, पाठा, ही-
ग, चीता, संचलनमक, कुडा, फालाजीरा,

बेलगिरी, विडनमक, अजवायन, हाऊवर, वायत्रिङ्ग, संधानमक, वच इमली, इनको सुरामण्ड, और उष्णजल क साथ पानकरै तो अर्शरोग, प्रहर्णादोष शूल और आनाह दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

कुर्याद्वापाचनंतस्ययदुक्तंहातिसारिके ।
सगुडामभयांवाथप्राशयेत्पूर्वभक्तिकीम्
पाययेत्त्रिवृच्चूर्णात्रिफलायारसेनवा ।

हृतेगुदाश्रयेदोपेगच्छन्त्यशीसिसंक्षयम्
अर्थ—अतिसारकी चिकित्सामें जो पाच

न द्रव्य वर्णन कियेगयेहैं उनका प्रयोग भी इस जगह हितहै । यथा भोजन करने से पहिले हरड और गुड मिलाकर सेवन करै । अथवा त्रिफलाके रसके साथ निसेधका चूर्ण पान करै । इन प्रयोगोंके द्वारा गुदाश्रित दोषोंके दूर होनेपर अर्श नष्ट होजाताहै ।

अन्यप्रयोग ।

गोमूत्राभ्युपिताद्द्यात्सगुडांवाहरीतकीम्
हरीतकीतक्रयुतांत्रिफलांवाप्रयोजयेत् ॥
सनागरंचित्रकंवाशीधुयुक्तंप्रयोजयेत् ॥
चव्यंवाशीधुसंयुक्तमजाजीदीप्यकांपिबेत्
सुरांवाहृपुपांपाठांयुक्तांसौवर्धलायुताम् ॥
दधित्यविल्वयुक्तंवातथावाचन्यचित्रकौ
भल्लातकयुतांवायमदद्यात्त्रतर्पणम् ॥
विल्वनागरयुक्तंवायवान्या चित्रकेणवा
चित्रकंहृपुपांर्हिगुंद्द्याद्वातक्रसंयुतम् ॥
पञ्चकोलयुतंवापितक्रमस्मैप्रदापयेत् ।

अर्थ—गोमूत्रमें हरडको भिजोकर गुड के साथ देवै । अथवा मठेके साथ हरड वा

त्रिफलाका प्रयोग करै अथवा सोंठ और चीते को शीधुमें मिलाकर देवै अथवा शीधुके साथ चव्य वा कालाजीरा और अजवायन पीवै अथवा हाऊवर, पाठां,संचलनमक इनको सुराके साथ पान करै । अथवा कैथ और बेलगिरी, अथवा चव्य और चीता अथवा मिलायेके साथ तर्पणका प्रयोग करै अथवा बेलगिरी और सोंठ, अथवा अजवायन और चीता अथवा चीता, हाऊवर और हिंग इनको मठेके साथमें देवै । अथवा मठाके साथ पंचकोलका चूर्ण देवै ।

तक्रारिष्ट ।

हृपुपांकुञ्चिकांधान्यमजार्जाकारवींशतीम्
पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पली
म्रायवानींचाजमोदांचूर्णितंक्रसंयुतम्
मन्दांम्लकडुकंविद्वान्स्थापयेवघृतभाजने
व्यक्तांम्लकडुकंजातंतक्रारिष्टंमुखमियम्
प्रापिवेन्मात्रयाकालेप्वन्नस्यतृपितस्त्रिपु ।
दीपनरोचनंघृण्यकफवातानुलोमनम् ॥
गुदश्वयधुकण्डूवर्तिनाशनंघलवर्द्धनम् ॥

अर्थ.... हाऊवर, छोटाजीरा, धनियां, काला जीरा, कारवी, कचूर पीपल पांपलामूल, चीता गजपीपल, अजवायन, अजमोद इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावै और मठेमें मिलाके इसमें कुछ खट्टा और कटु रस होगा, तदन्तर इसे घृत के पात्रमें भरकर रखदे जब इसमें अम्ल और कटुरस तेज होजाय तब जानना चाहियेकि तक्रारिष्ट तयारहुआ, यह मुखको अत्यन्त प्रिय लगताहै । भोजन के तीनों कालोंमें तृषा लगने पर इसीका मात्रा

के अनुसार पान करें । यह तक्रादिष्ट अग्नि
संदीपन, रोचन, वर्णकारक, कफवातानुलो-
मनकर्ता, गुदाकी सूजन, कण्डू और अर्ति
का नाश करने वाला तथा बलवर्द्धक होताहै
अर्श में तक्र प्रयोग ।

त्वचंचित्रकमूलस्यपिष्ट्वाकुम्भप्रलेपयेत् ॥
तक्रंवादाधिवातत्रजातमर्शांहरंपिबेत् । वा
तश्लेष्माशिसांतक्रात्परनास्तीहभेषजम् ॥
तत्प्रयोज्ययथादोषसंस्नेहंरूक्षमेववा । स
साहंवादाशाहंवापक्षंभासमधापिषा । चल
कालविशेषज्ञोभिपक्ततक्रप्रयोजयेत् ।

अर्थ—चीतेकी जड़की छालको पीसकर
घंघेके भीतर लेप कर दिया जाय तदनन्तर
उसमें तयार कियाहुआ मठा वा दही अर्श-
रोगमें अत्यन्त हितकारकहै । वात और क-
फसे उत्पन्न अर्शमें तक्रसे उत्तम और की-
ई औषध नहींहै, दोषके अनुसार सिग्ध वा
रूक्ष तक्रका प्रयोग करें । बल और काल
को जाननेवाला वैद्य सात दिन दसदिन,
पन्द्रह दिन वा महीने भरतक तक्रका प्रयोग
कर सकताहै ।

अत्यर्थमृदुपाकाग्नेस्तक्रभेदावचारयेत् ।
सायंवालाजशवतूनांदद्यात्क्रावलेहिका
म् । जीर्णतक्रमदद्याद्वातक्रेपेयांससैन्धवाम्
तक्रानुपानंसस्नेहतक्रौदनमथोत्तरम् । यू-
षमांसरसैर्वापिभोजयेत्तक्रसाधितम् ॥

अर्थ—जठराग्निके अत्यन्त मन्द होजाने
पर तक्रहंफे द्वारा चिकित्सा करें, अथवा
सायंकालके समय खीलोंके सतूका तक्रके
साथ अवलेह बनाकर दें । तक्रके पचने

पर तक्रके साथ संधानमक की पेया दें ।
तक्रका अनुपान करावे । तक्रके साथ घृत
युक्त चावलोंका भात दें । अथवा तक्रके
साथ सिद्ध कियाहुआ यूप वा मांसरस दें ।
तक्रसेवनका क्रम ।

कालक्रमणःसहसानचतक्रानिवारयेत् ।
तक्रप्रयोगान्मासान्तेक्रमेणोपशमोमतः ॥
अपकर्षोयथोत्कर्षोन्तत्रघ्रादपकृष्यते ।
प्रत्यागमनरक्षार्थाद्व्योर्धमनलस्यच ॥
बलोपचयवर्णार्थिक्रमोपवर्ण्यते ।

अर्थ....कालके क्रमको जाननेवाला वैद्य
तक्रके सेवनका सहसा परित्याग न करादे-
वे । जो तक्र एक महीने तक सेवन किया
गयाहै उसका त्याग एक महीनेमें क्रम रसे
करावे । अन्नके सेवनसे तक्र सेवनमें कमी
नहीं होतीहै इस क्रमके अवलंबन करने से
अर्शरोग फिर उत्पन्न नहींहोसक्ताहै अग्निदृढ
होजातीहै, बल, पुष्टि और वर्ण बढताहै ।
रूक्षमर्दोद्धृत्स्नेहंयतश्चानुद्धृतघृतम् ।
तक्रदोषाग्निबलधित्त्रिविधं तत्प्रयोजयेत् ।
इतानिनिविरोहन्तितक्रेणुदजानितु ॥
भूभाषपिनिपिक्तंइहेत्तक्रतृणोलुपम् ।
किंपुनर्दासकायाग्नेःशुष्काण्यशांसिदेहि-
नः ॥ स्रोतःसुतक्रशुद्धेपुरसाःसम्यगुपैति-
यः । तेनपुष्टिर्वलं वर्णःप्रहर्षश्चोपजायते ॥
वातश्लेष्माविकाराणांशतंचापिनिवर्त्तते ।

अर्थ—दोष, अग्नि और बलका जानने
वाला वैद्य रूक्षतक्र, अर्दोद्धृत स्नेह और
अनुद्धृतघृत इन तीन प्रकारसे तक्रका प्र-
योग करें । इनमेंसे पहिली विधि कफाधिक्य

दद्यान्मत्स्यण्डिकांपूर्वभक्षयित्वासनागराम् । गुडंसनागरंपाठांफलाम्लपायये-
चतम् । गुडघृतयवक्षारस्युक्तंवापिमयोज-
येत् । यमानीनागरंपाठांदाडिमस्यरसं-
गुडम् ॥ सतक्रंलयणंदद्याद्वातवर्चोऽनु-
लोमनम् ।

अर्थ—पहिले सोंठके चूर्ण और मिश्रीको फाँककर घृतयुक्त सच्चू और नमक मिलाइई प्रसन्ना अर्थात् मुरामण्डका पान करे । अथवा गुड, सोंठ और पाठा वा अनारका रस पान करावै । अथवा गुड घृत और जवाखार का प्रयोग करे । अथवा अजवायन, सोड, अनारकारस गुड तक्र और सेंधानमक ये सब मिलाकरदेवै । इस प्रयोगका सेवन करनेसे अश्वेयायु तथा विष्टाका अनुलोमन होताहै ।
दुःस्पर्शकेनविल्वेनयवान्यानागरेणवा ॥
एकंकेनापिसंयुक्तापाठादन्त्यर्शसांरुजमाः ।
प्रागुक्तयमकेभृष्टान्शक्तुभिश्चावचूर्णिताम्
करञ्जपल्लवान्दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनात् ।
मदिरांवासलवणांशीर्धुसौवीरकंतथा ।
गुडनागरसंयुक्तांपेवेदापैर्विभक्तिक्म् ॥

अर्थ....जवासा, वेलगिरी, अजवायन, और सोंठ इन चारोंमें से एक २ के साथ पाठाका काथ करके पानेसे अर्शरोग दूर होजाताहै । पूर्वोक्त घृत और तेल में कंजों के पत्तोंको भूनकर सच्चू के साथ सेवन करे सौ अश्वेयायु और मलका अनुलोमन होय है । अथवा भोजन करनेसे पहिले सेंधानमक मिलाकर मदिरा, अथवा गुड और सोंठ मिलाकर सांधू और सोवीरकका पान करे ॥

अर्शपरघृतके प्रयोग ॥

पिप्पलीनागरक्षारकारवीधान्यजीरकैः ।
फाणितेनचसंयोज्यफलाम्लदापयेद्दृतम् ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलंचत्रकोहस्तिपिप्प-
ली । शृंगवेरयवक्षारतैःसिद्धंवापिचैद्दृतम् ।
चन्यचित्रकसिद्धंवागुडक्षारसमन्वितम् ।
पिप्पलीमूलसिद्धंवासगुडक्षारनागरम् ॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलदधिदाडिमधान्यकैः
सिद्धंसर्पिविधातव्यंयातवर्चोविवन्धनुत्

अर्थ—पीपल, सोंठ, जवाखार, फालाजीरा, धनियां, जीरा और गुडकीराव इन सब में अनारदानेकी खटाई और घृत डालकर सेवन करे । अथवा पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, अदरख और जवाखार इनमें सिद्ध कियाहुआ घृत पानकरे । अथवा चन्य और चीतेके साथ सिद्ध कियाहुआ, वा गुड और जवाखारमें मिलाकर, वा पीपलामूलके साथ पिद्ध किया हुआ जिसमें गुड, जवाखार और सोंठ मिलाकर अथवा पीपल, पीपलामूल, दही, अनार, धनियां इनके साथ सिद्ध किया हुआ घृतपान करावै, अश्वेयायु और दस्तकी रुकावट दूर होजायगी ॥

चन्यादिघृत ।

चन्यंत्रिकदुर्कपाठाक्षारकुस्तुम्युरुणिच ।
यवानीपिप्पलीमूलमुभेचविडसंधवे । चि-
त्रकं विल्वमभयांपिष्ट्वासर्पिविपाचयेत् ।
शकृद्वातानुलोम्यार्थंजातेदध्नचतुर्गुणे ॥
प्रवाहिकांगुदभ्रंशंमूत्रकृच्छंपरिस्रवम् ।
गुदवंक्षणमूलञ्चघृतमेतद्व्यपोहति ॥

अर्थ—चव्य, त्रिकुटा, पाठा, जवाखार, धनियां, अजवायन पीपलामूल, विडनमक, सैधानमक, चीता, बेलफल, हरड इनको पीसकर चौगुने दहीके साथ घृतको पकावै। इस घृतके सेवनसे विष्टा और अधोवायुका अनुलोमन होता है। तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, परित्साव, गुदशूल और यक्षणाशूलको भी दूरकरता है।

नागरादिघृत

नागरंपिप्पलीमूलंचित्रकोइस्तिपिप्पलीश्वदंष्ट्रापिप्पलीधान्यं विल्वपाठायमानिकाः। चाङ्गेरीस्वरसेसर्पिःकल्कैरैतौविपाचयेत्। चतुर्गुणेनदध्नाचतुर्दृतकफवातनुत्। अर्शासिप्रहणीदोपंमूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाम्। गुदभ्रंशात्तिमानाहृष्टमेतद्व्यपोहति।

अर्थ—सोंठ, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनियां, बेलगिरी, पाठा, अजवायन, इन सबको पीसकर चांगेरीके रस तथा चौगुने दहीके साथ घृत को पकाकर सेवन करै तौ कफवात दूर होता है। इस घृतसे अर्शरोग, प्रहणीदोष, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, अर्ति और आनाह ये सब रोग दूरहोजाते हैं।

पिप्पल्यादिघृत।

पिप्पलीनागरपाठांश्वदंष्ट्राश्चपृथक्पृथक् भागांस्त्रिपलिकान्कृत्वाकपायमुपकल्पयेत् ॥ कण्ठीरंपिप्पलीमूलंच्योपंचव्यञ्चचित्रकम्। पिष्ट्वाकपायेविनयेत्पूतेद्विपलिकंभिषक् ॥ पलानिसर्पिपस्तास्मिश्च

त्वारिशन्मदापयेत्। चाङ्गेरीस्वरसंतुल्यं सर्पिपादधिपद्गुणम् ॥ मृदाग्निनाततःसाध्यंसिद्धंसर्पिर्निधापयेत्। तदाहारेविधातन्यपानेप्रायोगिकेविधौ ॥ ग्रहण्यंशो विकारघ्नं गुल्महृद्गोनाशनम्। शोथप्लीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम् ॥ कासहिकारुचिश्वाससूदनं पार्श्वशूलनुत्। बलपुष्टिकरं वर्ण्यमग्निसन्दीपनं परम् ॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, पाठा और गोखरू इन चारोंको तीन २ पल लेकर सयका काथ करलेवै। इस काथको छानकर इसमें कण्डीर [एक प्रकारकी तुलसी होती है], पीपलामूल, त्रिकुटा, चव्य और चीता दो २ पल पीसकर मिलादेवै, तथा घृत चालीस पल, इतनाही चांगेरीका रस और धांसे छः गुना दही डालकर मदी २ आग पर पकावै। इस घृतका विधिपूर्वक खानेपानेमें प्रयोग करनेसे प्रहणी, अर्श, गुल्म, हृदरोग, शोथ, प्लीहा, उदररोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, खांसी, हिचकी, अरुचि, श्वास और पार्श्वशूल दूर होजाते हैं ॥

हरीतकी प्रयोग।

सगुडांपिप्पलीयुक्तांघृतभृष्टांहरातकीम्। त्रिवृहन्दीयुतांवापिभज्जयेदानुलोमिकीम्। विह्वातकफपित्तानामानुलोम्येननिर्मले। गुदेऽर्शासिप्रशाम्यन्तिपावकश्चाभिवर्द्धते।
अर्थ—हरडको घीमें भूनकर पीपल और गुड मिलाकर सेवन करै अथवा निसोथ और दंती मिलाकर मक्षण करै तौ विष्टाका अनुलोमन होता है। इसके सेवनसे विष्टा,

अधोवायु, कफ और पित्तका अनुलोमन होता है, गुदा निर्मल होजाती है अर्शजाता रहता है और जठराग्नि प्रदीप्त होजाती है ॥

अर्श पर पथ्य ।

वर्हित्तिचिरिलावांनारसान्म्लान्मुसस्कृतान् ॥ दक्षाणां वर्तकानाञ्च दद्याद्द्विदवात्संग्रहेऽत्रिष्टन्तीपलाशानांचाद्द्वेय्याश्चित्रकस्य च ॥ मृष्टं पमके दद्याच्छकं दधिसरायुतम् ॥ उपोदिकात्पण्डुलीयवीरांश्चस्तु कपलवान्मुवर्चलांसलोपांक्रांयवशाकमवल्युजम् ॥ काकमाचींरुहापत्रंमहापत्रंतथा म्लिकाम्जीवन्तीशदिशाकञ्चशाकंरुज्जनकस्य च । दधिद्राडिमिसिद्धानिष्टृष्टानियमकेऽपि च धान्यनागरयुक्तानिशाकान्येतानिदापयेत् । गोधाश्वत्थित्सलोपाकमार्जारोष्णवामपि ॥ कूर्मशल्लकयोश्चैवसाधयेच्छाक्यद्रसान् । रक्तशाल्योदनं दद्याद्रसैरैर्वातशान्तये ॥

अर्थ....विद्य और अधोवायुका अवरोध होने पर मोर तीतर मुर्गी, बतक और लघाके मांसरसमें खटाई डालकर सेवन करें। अथवा निसोप, दन्ती, टाक, चांगेरी और चीता इनके शाकको घी तेलमें भूनकर दही की मलाईके साथ सेवन करें अथवा पोई, चॉलाई, काकोली, वधुआ, सांचौली, नीनिया, यवशाक, वावची, मकोय गिलोयके पत्र, महापत्र, अम्लिका, जीवन्ती, शटी, गाजर इनके शाकको घीतेलमें भूनकर दही और अनारकी खटाई डालकर तथा धनियां और सोंठ मिखाकरदेवै ॥

गोह, सेह, लोपाक, विहरी, ऊंट, गौ, कछुआ और शल्लकी इनके मांसरसको ऊपर कहे हुए शाकोंकी तरह सिद्ध करें और इन मांसरसोंके साथ वातकी शान्तिके निमित्त लाल शालीचावलोंका भातदेवै ॥

अर्श पर मद्यविधि ।

ज्ञात्वावातोल्बणंरुसंदीप्ताग्निशुद्धजातुरम् ॥ मदिरांशार्करंजातशीधुतंक्रंतुपोदकम् ॥ अरिष्टं दधिमण्डंवाशृतंवाशिशिरंजलम् । कण्टकार्य्यामृतंवापिशृतंनगरधान्यकैः ॥ अनुपानंभिपग्दद्यात्वातवर्चोऽनुलोमनम् अर्थ....वाताधिक्य अर्शमें यदि रोगी के रूक्षता तथा अग्निसंदीपनहो तो शर्करा से बर्नाहुई मदिरा, शीधु, तक्र, तुपोदक अरिष्ट दधिमण्ड, वा औटाकर, ठंडा किया हुआ जल वा कटेरी डालकर औटायाहुआ जल, वा सोंठ और धनियां डालकर औटीयाहुआ जल अनुपानमें देवै तो अधोवायु और विद्य का अनुलोमन होता है ।

अनुवासनके योग्य मन्त्रप्य ।

उदावर्त्तपरीतायेयचात्यर्थं विरुक्षिताः ॥ विलोमवाताःशूलार्चाःतेष्विष्टमनुवासनम् अर्थ....जो उदावर्त्त रोगीहैं, अत्यन्त रूक्ष हैं जिनकी वायु विलोम हांगई है तथा जो शूलार्चहैं उनको अनुवासन हित है ।

आनुचासनिक तैल ।

पिप्पलीमदनं विल्वंशताहामधुकं वचाम् ॥ कुपुंशर्वापुष्कराख्यंचित्रकं देदारुच । पिष्ट्वातैरेविपक्तं पयसाद्विगुणेन च ॥ अर्शसांभूदवातानांतच्छेष्टमनुवासनम् ॥

दनिःसरणंशूलंमूत्रकृच्छ्रंमवाहिकाम् । क
द्यूरुपुप्रदौर्विलयमानाहंक्षणाश्रयम् । पि
च्छास्त्रावंगुदंशोफंवातवर्चोविनिग्रहम् ॥
उत्थानं बहुशोयच्चजयेत्तच्चानुवासनम् ।

अर्थ....पीपल, मेनफ़ल, बेलगिरी, सोंफ, मुल्हठी, बच, कूट, शठी, पुष्कर, चीता, देवदारु, इन सबको पीतकर दूना दूध डालकर ते अर्धे पकावै । यह अनुवासन अर्श रोग तथा गूढवातमें हितकारी होता है । इसमें गुदाका निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका, कमर, ऊरू और पीठकी दुर्बलता, बंधनका आनाह, पिच्छास्त्राव, गुदाकी सूजन तथा अधोवायु और विष्टाका विबंध, धारवार रोगका उठना ये सब दूर होजातेहैं ।
आनुवासनिकैःपिष्टैःसुखोष्णैःस्नेहसंयुतैर्दाबन्तैःस्तब्धशूलानिगुदजानिमलेपयेत् दिग्घ्वातैःप्रस्रवन्त्याशुश्चेन्मपिच्छांसशोषिताम् ॥ कण्ठस्तम्भसरुकशोफःस्नुतानां विनिवर्त्तये ।

अर्थ—पीपलसे लेकर देवादारु पर्यन्त सब आनुवासनिक द्रव्योंको पीतकर स्नेह मिलाकर कुछ गरम करले और इसका लेप करै तो अर्शसे उत्पन्न हुआ शूल और स्तब्धता दूर होजाती है । इस लेपके करनेसे रक्तसहित पिच्छिल कफ तत्काल निकलजाताहै और खुजली, स्तम्भता, वेदना और सूजन रक्तके निकलनेसे दूर होजाती है ।

निरुहण प्रयोग

निरुहवाप्रयुज्जीतसत्तीरंदाशमूलिकम् ॥
समूत्रस्नेहलवणकल्केयुक्तफलादिभिः ॥

अर्थ—दूध, दशमूल, गोमूत्र, स्नेह, सेंधा नमक और मेनफ़ल इनका काथ करके निरुहणवास्तिका प्रयोग करै ॥

हरीतकवारिष्ट ।

हरीतकीनांप्रस्थार्द्धमस्थमामलकस्यच ॥
स्यात्कपित्याद्दशपलंततोऽर्द्धाचेन्द्रवारुणी । विडङ्गपिप्पलीरोध्रंमरिचंसैलवालुकम् । द्विपलांशंजलस्यैतच्चतुर्द्रोणेषुविपाचयेत् । द्रोणशेपेरसेतस्मिन्पूतशीतिसमावपेत् ॥ गुडस्यद्विशतंतिष्ठेत्तत्सर्वघृतभाजने । पक्षादध्वभेवत्पेयाततोमात्रांयथाबलम् ॥ अस्याभ्यासादरिष्टस्यनश्यन्ति गुदजानपि । ग्रहणीपाण्डुद्रोगप्लीहागुल्मोदरापशः ॥ कुष्ठशोफासुचिहरोबलवर्णाग्निवर्द्धनः । सिद्धोऽयमभयारिष्टःकामलाभित्रनाशनः ॥ किमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्ग

राजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ।

अर्थ....हरड आधाप्रस्थ, आंवला एक प्रस्थ, कैथ दशपल, इन्द्रायण पांचपल, धायाविडंग दो पल, लोध दोपल, फालीमिरच दोपल, एलुआ दोपल इन सबको चार द्रोण जलमें पकावै जब चौथाई शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवै, जब यह ठंडा होजाय तब इसमें दो सौ पल गुड डालकर घाँके पात्रमें भरदेवै और एकपक्ष पीछे बलके अनुसार इसकी मात्राका सेवन करै । इस अरिष्टके सेवनका अभ्यास करनेसे अर्शरोग ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म रोग, उदररोग, कुष्ठ, शोफ, धारुचि, इनको नाश करता है, यल वर्ण और अग्निको

बढाता है, यह अरिष्ट अनुभव किया हुआ है, इस से कामला और श्वित्र दूर होजाते हैं । तथा क्रिमिरोग, ग्रन्थिरोग, अर्बुद, व्यंग राजयक्ष्मा और ज्वर नष्ट होजाते हैं ॥

दन्त्यारिष्ट ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोःपञ्चमूलयोः॥
भागान्पलांशानामोध्यजलद्रोणेविपाचयेत् ॥
त्रिकलायादलानांचमक्षिप्यत्रिपलं ततः ॥
रसेचतुर्थशेषेतुपूतशीतिसमावपेतुलान्गुडस्यतत्त्रिप्रेतमासार्द्धघृतभाजने ।
तन्मात्रयापिवेत्रित्यमशोभ्योऽपिप्रमुच्यते ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंवातवर्चोऽनुलोमनम् ॥
दीपनश्चारुचिघ्नश्चदन्त्यारिष्टमिदंविदुः ।

अर्थ....दन्ती, चीतेकी जड़, दोनों पंचमूल इन सबको एक एक पल लेकर [सब वारह पल] तथा त्रिकलाके छिछके तीन पल कूटकर एक द्रोण जलमें पकावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब उतारकर छानले और ठंडा होनेपर एक तुला गुड डालकर घाँके चिकनेपात्रमें भरकर पन्द्रह दिवस तक धरा रहनेदेवै । तदनन्तर बलके अनुसार नित्यप्रति सेवन करने से अर्श, ग्रहणीरोग पाण्डुरोग दूर होजातेहैं । अधोवायु और विघ्नका अनुलोमन होता है, यह दन्त्यारिष्ट अग्निसंदीपन और अराचिनाशक होताहै।

फलारिष्ट ।

हरतीकफलमस्यं प्रस्थमामलकस्यच ।
विशालायादाधित्यस्यपाठाचित्रकमूलयोः॥
द्वेपलेसमापोध्यद्विद्रोणेसाधयेदपाम् ॥

पादावशेषपूतचरसेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥
गुडस्यैकांतुलान्वेद्यःसंस्थाप्यघृतभाजने ॥
पक्षास्थितंपिबेदेनग्रहण्यशोविकारवान् ॥
हृत्पाण्डुरोगंघ्नीहानंकामलांविषमज्वरम् ॥
वर्चोमूत्रानिलकृतान्विवन्धानग्निमार्दव-
मूकासंगुल्ममुदावर्त्तफलारिष्टोव्यपोहति ॥

अर्थ—हरड एक प्रस्थ, आंवलाएक प्रस्थ, इन्द्रायणकी जड़ दोपल, कैथ दोपल पाठा दोपल, चीतेकी जड़ दोपल, इनसबको कूटकर दोद्रोण जलमें पकावै । चौथाई शेष रहनेपर उताकर छानले और जब यह ठंडा होजाय तब उसमें एक तुला गुड डालकर घाँके पात्रमें भरकर पंद्रह दिन तक धरा रहनेदे । फिर मात्रा के अनुसार ग्रहणी और अर्श विकारवाला रोगी इसका सेवन करे । इस फलारिष्टके सेवन करनेसे हृद्रोग पाण्डुरोग, झीहा, कामला, विषमज्वर, मलविवन्ध, मूत्रविवन्ध, अधोवायुविवन्ध, मन्दाग्नि, कास, गुल्म और उदावर्त्त येसब रोग नष्ट होजातेहैं ।

दुरालभारिष्ट ।

दुरालभायाःप्रस्थःस्याच्चित्रकस्यवृषस्य च ॥
पथ्यामलकयोश्चैवपाठायानागरस्य च ।
दन्त्याश्चाद्रिमलान्भागान्जलद्रोणेविपाचयेत् ॥
पादावशेषपूतचसुशीतशर्कराशृतम् ॥
प्रक्षिप्यस्थापयेत्कुम्भेमासार्द्धघृतभाजने ॥
प्रलिप्तेपिप्लीचव्यमियंगुत्तौद्रसर्पिपा ॥
तस्यमालांपिबेत्कालेशार्करस्ययथावलम् ॥
अर्शासिग्रहणीदोपमुदावर्त्तमरोचकम् ॥
शकृन्मूत्रानिलोद्गारविवन्धानाग्निमार्दवम् ॥

हृद्रोगपाण्डुरोगञ्चसर्वमेतेन साधयेत् ।

अर्थ—दुरालभा एक प्रस्थ, चीता, अइसा, हरड, आंवला, पाठा, सोंठ, दन्ती, इनके दोदो पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावै । फिर चौथाई शेष रहनेपर छानकर ठंडा होनेपर सौ पल शर्करा मिलाकर पन्द्रहदिन तक घीके पात्रमें भरारखै। इस घडेके भीतर पीपल, चव्य, प्रियंगु, शहत और घी इनका लेप करदेवै । वल के अनुसार इसकी मात्रा का सेवन करै । इसके सेवन करनेसे अर्शरोग, ग्रहणी दोष, उदावर्त, अरुचि, विद्या, मूत्र, अधोवायु, उद्गार, विबन्ध, मन्दाग्नि, हृद्रोग, पाण्डुरोग दूर होजातेहैं ।

कनकारिष्ट ॥

नवस्यामलकस्यैकांकुट्याज्जर्जरितांतुलाम् । कुडवांशविडङ्गानिपिप्पलीमरिचानिच पाठामूलंचापिप्लयाःक्रमुक्चव्यचित्रकौ ॥ मञ्जिष्टैस्त्रालुंकरोध्रपालिकान्युपकल्पयेत् कुण्डारुहरिद्रांचसुराह्वंशारिवाद्भयम् ॥ इन्द्राद्वाभद्रमुस्तंचकुप्यादिर्दपलोन्मितम् चत्वारिणागपुष्पस्यपलान्यभिनवस्यच द्रोणाभ्यामभसोद्वाभ्यांसाधयित्वावतारयेत् ॥ पादावशेषपूतेचरसेतस्मिन्समावपेत् ॥ मृद्रीकाद्व्याडकरसंशीतानिर्गृहसंमितम् ॥ शर्करायाञ्चशुक्रायांदद्याद्भिगुणितान्तुलाम् ॥ कुसुमस्वरस्यैकमर्द्धप्रस्थं नवस्यच ॥ त्वगेलाप्लवपत्रा—
म्बुसेव्यक्रमुक्केसरम् ॥ चूर्णयित्वातुभातिमान्कार्षिणकानत्रदापयेत् । तत्सर्वस्थापयेत्पञ्चशुचौचघृतभाजने । प्रलिप्तेसर्पि

पाकिञ्चिच्छर्करागुरुधूपिते । पक्षादूर्ध्वमरिषोऽयंकनकोनामविश्रुतः ॥ प्रायःस्वादु रसोहृद्यःप्रयोगाद्भक्तरोचनः । अर्शांसिग्रहणीदोषमानाहमुदरंज्वरम् । हृद्रोगपाण्डुतांशोपंगुलमवर्चोविनिगृहम् : कासंश्लेष्पामयांशोग्रान्सर्वानेवापकर्पति ॥ बलीपलितखालित्यदोषजंचव्यपोहति ।

अर्थ—नये आंवले एक तुला; वायविडंग, पीपल और कालीमिर्च ये तीनों एक एक कुडव । पाठा पीपलामूल, सुपारी, चव्य, चीता, मर्जीठ, एलुआ, लोध इनको एक एक पल लवै; कूठ, दाकहलदी, देवदार, दोनों साग्वा, कुटज, भद्रमोथा ये आधे आधे पल लवै तथा नई नागकेसर चारपल इन सबको जौकुट करके दो द्रोण जलमें पकावै जब चौथाई शेष रहजाव तब उतार कर छानले और उसमें उस काथके समान दो आठक दाखकारस, दो तुला सफेद चीनी, नया शहत आधा प्रस्थ; दालचीनी, इलायची, तेजपात, मोथा, नेत्रवाला, सुपारी, केसर, इन सबको एक एक कर्प लेकर चूर्ण करके उसमें मिलादेवै । फिर एक शुद्ध घीके बर्तनमें भरकर पन्द्रह दिन तक धरा रखै । पूर्वोक्त द्रव्योंको घडेमें भरनेसे पहिले घीमें चीनी डालकर उसके भीतर लेप करदेवै और अगरकी घुनी देवै । एक पक्ष पीछे यह कनकारिष्ट तयार होजाताहै । यह स्वादमें मिष्ट, हृदयप्रिय और भोजनमें रुचि बढ़ाने वाला होताहै । इसके सेवन करनेसे अर्श, ग्रहणीदोष, आनाह, उरदरोग, ज्वर, हृद्रोग;

पाण्डुरोग, शोष, गुल्म, पुरीषविबन्ध, खांसी तथा सब प्रकारके उग्र कफरोग दूर होजाते हैं और बल, पलित और खालिय रोगभी नष्ट होजाते हैं ।

पत्रभद्रोदकैःशौचंकुर्व्यादुष्णेनचाम्भमा इतिशुष्कार्शसांपूर्वमुक्तमेतच्चिकित्सितम् अर्थ—वायुनाशक पत्रोंका ब्याध करके गरम र से गुदाप्रक्षालन करता रहे । ये सब शुष्क अर्शकी अनुभवकी हुई चिकित्सा वर्णन की गई है ।

रक्तार्शकी चिकित्सा ।

चिकित्सितमिदं सिद्धं साविणांभृष्वतः प-
रम् ॥ तत्रानुबन्धोद्विविधः श्लेष्मणोमारु-
तस्य च ।

अर्थ—अब खूनी ब्याभीरके अनुभव किये हुए प्रयोगोंका वर्णन करते हैं । इस में दो दोषों का अनुबन्ध होता है एक कफका, दूसरा वायु का ॥

वातकफानुबन्धी रक्तार्श के लक्षण ।
विद्वेष्यायं कठिनं रुक्षं चाधो वायुर्न वर्त्तते ॥
तनुचारुणवर्णं च फेनिलं चासृग्गर्शसाम् ।
कटयुरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि वा अधिकम् ॥
तत्रानुबन्धोवातस्य हेतुर्यदि विरुक्षणम् ।
शिथिलं चेतपीतं च विट्स्निग्धगुरु पिच्छि-
लं ॥ पद्मशंसायनं चासृक्स्तु मत्पाण्डुपि-
च्छिद्रम् ॥ गुदः सपिच्छः स्तिमितो गुरुस्नि-
ग्धश्चकारणम् ॥ श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयः त-
त्ररक्तार्शसांपुथैः ।

अर्थ... जो रोगीका दस्त काला, कडा और रुक्षहो और अधोवायुकी प्रवृत्ति न होती

हो, और अर्शका रक्त पतला लाल, रंगका और घागदारहो, रोगीकी कमर, ऊरु और गुदामें शूल होनाहो, दुर्बलता अधिक हो, तथा जो रुक्ष पदार्थोंके सेवनसे उत्पन्न हुई हो उसे वातानुबन्धी अर्श कहते हैं ।

जिसरोगीका विष्टा टीला, सफेद, पीला, स्निग्ध, भारी और पिच्छिलहो, जिस अर्श का रक्त गाढा, तन्नुदार, पाण्डु वर्ण और पिच्छिलहो, गुदा पिच्छिल और स्तिमित हो, जो गुरु और स्निग्ध पदार्थोंके सेवन से उत्पन्न हुआ हो उसे कफानुबन्धी रक्तार्श कहते हैं ॥

रक्तार्श में चिकित्सा क्रम

स्निग्धशीतं हितं वातेरुक्षशीतं कफेऽनुगे ॥
चिकित्सितमिदं तस्मात्सम्प्रधाप्यै प्रयो-
जयेत् । पित्तश्लेष्माधिकमत्वाशोधनेनोप-
पादेयत् ॥ स्रवणं चाप्युपैशेतलघ्वनर्वासगमा-
चरेत् । मृत्तमादावर्शोभ्यो योनिशुद्ध्या-
त्यबुद्धिमान् ॥ शोणितदोषमनिलंतद्रोगा-
ञ्जनयेद्बहून् । रक्त पित्तं ज्वर तृष्णा-
मग्निनाशमरोचकम् ॥ कामलांश्वयंशु-
लं गुदवंक्षणसंश्रयम् । कण्डूवरुःकोठपिद्-
काकुष्ठपाण्डूवागयंगदग् ॥ वातमूत्रपुरा-
पाणां विबन्धं शिरसोरुजम् । स्तोमित्यंगुरु-
गात्रन्वंतं गन्धान् रक्तजान्गदान् ॥ तस्मा-
त्तनुतेदुष्टरक्ते रक्तसंग्रहणं मतम् । हेतुलक्ष-
णकालज्ञोचन् शोणितवर्णवित् ॥

अर्थ—वातानुबन्धी रक्तार्शमें स्निग्ध और शीतल, तथा कफानुबन्धी रक्तार्शमें रुक्ष और शीतल चिकित्सा करना आवश्यकीयहोती

रक्तार्शमें कफ पित्तकी अधिकताहो तो संशो-
धनद्वारा चिकित्सा करै अथवा स्त्रावकी उ-
पेक्षा करके लघनद्वारा चिकित्सा करै ॥

जो मूर्ख वैद्य प्रथमही अर्शके बहते हुए
रुधिरको रोकदेताहै; तब रक्त वातज दोषों
से दूषित होजाताहै और वायुकर्तृक अनेक
प्रकारके उपद्रव खडे होजातेहैं, यथा—रक्त
पित्त, ज्वर, तृष्णा, मन्दाग्नि, अरुचि, कामला
रोग, सूजन, गुदशूल, वंक्षणशूल, खुजली,
फुन्सी, पित्ती, पिडका, कोठ, पाण्डुरोग, अधोवायु
और मलमूत्रका विवन्ध, शिरोवेदना, स्तिमिता,
देहमें भारापन, तथा और भी बहुतसे रक्त-
जरोग उत्पन्न होजातेहैं । इस हेतुसे दूषित
रक्तके स्त्रावके हेतु, लक्षण, काल, बल और
रुधिरको रोग देखकर रुधिर को बन्द करना
चाहिये ।

कालं तावदुपेक्षतयात्रनात्ययमाप्नुयात् ।
अग्निं सन्दीपनार्थं चरक्तसंग्रहणाय च ॥
दोषाणां पाचनार्थं च परितिकैरुपाचरेत् ।
यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वा तोल्वणस्य च ।
वर्त्तते स्नेहसाध्यं तत्पानाभ्यङ्गानुवासनैः
यत्तु पित्तोत्त्वणं रक्तं घर्मकालं प्रवर्त्तते ॥
स्तम्भनीयं तदेकान्ताञ्च द्वातकफानुगम् ॥

अर्थ—रक्तस्त्रावकी उस समयतक उपेक्षा
करनी चाहिये जबतक किसी उपद्रवके होने
की सम्भावना नहै । तदनन्तर अग्निको ब-
ढाने, रक्तको रोकने और दोषोंको पचानेके
लिये तित्त औषधियों का प्रयोग करै ॥

क्षीणदोषवाले वाताधिक्य अर्शरोगीका
रक्त जो स्नेहमाप्य होता है वह स्नेहपान,

अभ्यंग और अनुवासन द्वारा शान्त होजाता
है जो पित्ताधिक्य रक्त ग्रीष्मकालमें प्रवृत्त
होताहै, यदि उसमें वातकफका अनुबन्ध न
हो, तो उसे सर्वथा रोकदेना चाहिये ।

रक्तसंग्राही औषध ।

कुटजत्वङ्निगूर्हः सनागरः स्निग्धरक्तसं-
ग्रहणः ॥ त्वग्दाडिमस्य तद्द्वत्सनागरः च
न्दनरसश्च । चन्दनकिरातित्तकधन्वयवा
साः सनागराः कथितः ॥ रक्तार्शसंग्रह-
मनादावी त्वगुशीरनिम्बाश्च । सातिविपा
कुटजतत्वक्फलं च सरसाञ्जनम् ॥ मधुयुतं
हिरक्तापहंप्रदद्यात्पिपासवे तण्डुलजलेन ॥

अर्थ—कुड़ाकी छालके काथमें सोंठ
डालकर पानसे स्निग्ध रक्त बन्द होजाताहै ।
इसीतरह अनार के छिलके के काथमें सोंठ
डालकर सेवन करने से, अथवा चन्दन के
काथ में सोंठ डालकर सेवन करने से रक्त
बन्द हे जाता है । अथवा चन्दन, चिायता,
जवासा, और सोंठ इनका क्वाथ कर के
सेवन करने से रक्तार्श बन्द होता है । अ-
थवा दारुहल्दी, दालचीनी, उसीर और नीम
के क्वाथ का सेवन करै । अथवा अर्ताम,
कुड़ाकी छाल, इन्द्रजौ और रसात इनके चूर्ण
को शहत और तण्डुल जलके साथ जब प्यास
लगे तबही पान करावेतो रक्तार्श दूरहोवे ।

कुटजादिकाथ ।

कुटजशुक्लस्य साध्यं पलशतमार्द्रस्य मेघ
सलिलेन ॥ यावत्स्याद्दतरसंतद्द्रव्यं
पूतोरसस्ततो ग्राह्यः । गोचरसः ससमद्रः ।
फलीनीचसमांशिकैस्त्रिभस्तिथ । वरसक

वीजंतुल्यंचूर्णितमत्रप्रदातव्यम् ॥ पूतः
 कथितःसरसोदावीलेपोततःसमवतार्यः।
 मात्राकालोपहितारसक्रियैपाजयतिरक्त-
 म् ॥ छागलीपयसापीतापेयामण्डेनवाय
 थाभिवलम् । जीर्णोपघ्नशालीनपयसा
 छागेनभञ्जीतः ॥

अर्थ....हरीकुडाकी छालके छोटे २ टुकड़े
 सौ पल लेकर आन्तरीक्ष जलमें पकावें, जब
 पकते २ उनका रस निकलआवै तब उसे
 उतारकर छान लें। इस क्वाथ में मोचरस
 वाराहक्रान्ता और प्रियंगु का चूर्ण समान
 भाग लेकर मिलादेवै, फिर इन तीनोंके वरा-
 धर इन्द्रजौ पीसकर मिलादेवै इन सबको अ-
 ग्निपर चढादे और चलाते २ जब यह ऐसा
 गाढ़ा पडजाय कि करछी से लगने लगे
 तब उतारकर मात्रा और कालके अनुसार
 इसका सेवन करे तौ यह रक्तार्श को दूर
 करदेताहै । इसको बकराके दूध साथ अथ-
 वा पेया वा मण्डके साथ सेवन करना चा-
 हिये औपधके पवनेपर बकराके दूधके सा-
 थ शालीचांबलोंके भातका सेवन करे ॥

अन्यप्रयोग ।

नीलोत्पलंसमङ्गापोचरसश्चन्दनंतिला-
 लोध्रम् । पीत्वाछागलीपयसाभोज्यंप-
 यसैवशाल्यन्त्रे ॥ छागलीपयःप्रयुक्तंनिह
 न्तिरक्तंसवास्तुकरसश्च । घन्वविहंगमृगा
 पांसोनिर्मलःकदम्बोवा ॥ पाठावत्स
 कवीजरसाञ्जननागरंयवार्नीवा । विल्व
 मितिचगुदजान्ताविचूर्णपेयानिशूलेषु ॥
 दार्याकिराततित्तमुस्तदुःस्पर्शकञ्चरुधि-

रघम् । रक्तेऽतिवर्त्तमानेशूलचघृतविधा-
 तव्यम् ॥

अर्थ—नीलकमल, समंगा, मोचरस, रक्त-
 चन्दन, तिल और लोध्र इनको बकराके दूध
 के साथ पानकरे और बकराके दूधके साथ
 ही शालीचांबलोंका भात भोजनकरे । अथवा
 बकराका दूध और वथुयेका रस इनकोमि-
 लाकर पीनेसे रक्तार्श दूर होजाती है । अ-
 थवा घन्वदेशज पशुपक्षियोंका मांसरस विना
 खटाईका अथवा थोड़ी खटाई डालकर सेवन
 करे । अथवा पाठा, इन्द्रजौ, रसौत सौंठ,
 अजवायन और बेलगिरी इनके चूर्णका सेवन
 करनेसे शूलयुक्त अर्श दूर होजाताहै । अथवा
 दारुहल्दी, चिरायता, मोथा और जवासा
 इनका चूर्ण सेवन करनेसे भी रक्त बन्द
 होजाताहै । तथा जो शूल होताहो और रक्त
 अत्यन्त बहताहो तौ इन्हीं दारुणादि चारों
 द्रव्योंके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत सेवनकरे।
 अर्शपरघृतप्रयोग ।

कुटजफलवल्ककेसरनीलोत्पलरोध्रधात
 कीकल्कैः । सिद्धंघृतविधेयंशूलरक्तार्श
 सांभिषजा । सर्पिःसदाडिमरसंसायव
 शूकंजयन्त्याशु । रक्तेसशूलमध्वानिदि
 ग्धिकादुग्धिकासिद्धम् ॥

अर्थ—कुडाका छाल, इन्द्रजौ, केसर, नी-
 लकमल, लोध्र और धातके फूल इनके कल्क
 के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत शूलयुक्त अर्श
 में देवे । अथवा अनारके रस और जवाहार
 के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा कटेरी
 और दुद्धा के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत श-

ल युक्त रक्ताशमें सेवन करे ।

रक्ताशपरपेया ।

लाजैःपेयापीताचुक्रिकाकेसरोत्पलैः सि-
द्धाहन्त्याशुरक्तरागंतथावलापृथिपणी-
भ्याम् । ह्रीवेरविल्वनागरनिर्यूहेसाधि-
तांसनवनीताम् ॥ वृक्षाम्लादाडिमाम्ला
मल्लीकाम्लासकालाम्लाम् । गृञ्जनक-
सुरासिद्धांभृष्टांयमकेनवापिवेत्पेयाम् ।
रक्तातिसारशूलप्रवाहिकाशोधनिग्रहणीम्

अर्थ—चुक्रिका, केसर, नीलकण्ठ, तथा
मठा और पृथिणपर्णी सहित सिद्ध की हुई
खिलौकी पेया रक्ताशको दूर करतीहै; अथवा
नेत्रवाला, बेलगिरी, सोंठ इनके काथमें सिद्ध
की हुई पेयामें मांखन डालकर पान करे
अथवा लहसन और मद्यके साथमें सिद्धकी
हुई अथवा घी तेलमें भुनीहुई पेयामें वृक्षाम्ल,
अनार, इमली या घेरकी खटाई डालकर पान
करे । इस पेयाके पान करनेसे रक्तातिसार,
शूल प्रवाहिका और शोध दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

काशमर्यामलकानांसकर्वृदारफलाम्ला-
नाम् ॥ गृञ्जनकशालमलीनांक्षीरिण्याः
चुक्रिकायाश्च । न्यग्रोधशुद्धकानांखण्डा
स्तथाकोविदारपुष्पाणाम् ॥ दध्नःशरे-
णसिद्धांदद्याद्रक्तेप्रवृत्तेऽति ।

अर्थ—खमारी, आंवला, सफेदकचनार,

सिद्धपलाण्डुशाकंचतक्रेणोपदिकांसवद-
रांच ॥ रुंधिरस्रवेमदधान्मसूरपञ्चतक्रा
म्लम् । पयसाश्रुतेनयूपैर्मसूरमुद्गाढकीम
कुष्ठानाम् ॥ भोजनमद्यादम्लैःशालिश्या
माककोद्रवजम् । शशहरिणलावमांसैःक-
पिञ्जलैण्यैःसुसिद्धैश्च ॥ भोजनमद्याद
म्लैर्मधुरैरीपत्समारिचैर्वा । दक्षशिखिति-
त्तिरिर्सेद्विककुललोपाकजैश्चमधुराम्लैः
अद्याद्रसैरतिवहेप्सुर्शः स्वनिलोव्वणशरी
रः । रसस्वडयूपयवागूसंयुक्तःकेवलोऽथ
वाजयति । रक्तमतिवर्त्तमानंघातंचपला
ण्डुरूपयुक्तः । छागान्तरौधितरुणंसकधि
रमुपसाधितंवहृपलाण्डु । व्यत्यासान्म-
धुराम्लंविद्शोणितसंक्षयेदयम् ॥

अर्थ—जो अशमेंसे रुंधिर बहता हो तो
प्याजका शाक, पोईका शाक, या बेरका शाक
तकके साथ सिद्धकरके देवे, अथवा मसूरकी
दालमें मठा डालकर देवे । मसूर, मूंग अ-
डहर और मीठ इनके यूपको दूधके माथ
सिद्धकरके देवे । अथवा शाकी चांबळ, मों-
खिया और कोंदो इनको मद्य और खटाईके
साथमें देवे । अथवा सस्ता, हिरन, लदा,
सफेद तीतर और एणमृगका मांस मदिग,
खटाई, मीठा और घोंडाकी काडीनिरच
डालकर देवे ।

प्याजका खाना या केवल प्याजही का सेवन करना अत्यन्त बहतेहुए रक्त और धातुको दूरकर देताहै ।

इस रोगमें विष्टा और रुधिरके अत्यन्त क्षीण होनेपर बकरेकी देहके बीचका ताजी मांस रुधिरसहित बहुतसी प्याज डालकर सिद्ध करे और विपरीत क्रमसे खटाई मिठाई डालकर सेवन करे ॥

नवनीतघृताभ्यासात्केसरनवनीतशर्कराभ्यासात् । दधिसरप्रथिताभ्यासादर्शास्यपयान्तिरक्तानि ॥ नवनीतघृतछागं मांससपष्टिकःशालिः । तरुणश्चसुरामण्डः तरुणाचसुरानिहन्त्यजस्रम् ॥ प्रायेण घातबहुलान्यर्शासिभवन्त्यतिष्ठुचेरक्ते ॥ तस्माद्रक्तेदुष्टेऽप्यनिलःसविशेषतोऽप्येयः दृष्टातुरंक्तपिचामवलंकफघातलिङ्गमल्पश्च । शीताःश्रियाःप्रयोऽप्याःयथेरितावश्यतेचान्याः ॥

अर्थ—मक्खन घाँके सेवन करने से, केसर, मक्खन और शर्कराके अभ्यास से, तथा देहीको मलाई समेत रईसे मधकर सेवन करनेसे रक्तार्श दूर होजाताहै । मक्खन, घृत, बकरे का मांस, साठी चांबल, शाडी-चांबल, नवीन सुरामण्ड, नवान मदिरा इनके सेवनसे भी अर्श शीघ्र शान्त होजाताहै । रक्त के अत्यन्त निकल जानेपर अर्शमें प्रायःधातुकी अधिकता होजातीहै । इस लिये रक्तके दूषित होनेपर भी विशेष करके वायुको शान्त करने का उपाय करे । अर्श में रक्तपिचकी प्रचलता तथा कफघात की

अल्पताको देखकर पहिले कही हुई बातोंगे आनिवाली शांतल क्रियाओं का प्रयोगपरिपेकादि प्रयोग ।

टोलम् ।

वापनिर्म्वाश्च ॥

अर्थ—मुलहटी, पंचवल्क [गूलर, पीपल, बड़, पाकड़ और वेतकी छाल] बरकी छाल उदुम्बर, धौकी छाल, पखल, अद्रस्ता, अर्जुन, जवासा, और नीम इनका क्वाथ करके रक्तार्शमें परिपेचन करे ॥

अवगाहन प्रयोग ॥

रक्तेऽतिवर्चमानेदाहेवलेदेचगाहयेष्वापि मधुकमृणालपद्मकचन्दनकुशकाशनिक्वाथे ॥ इक्षुरसमधुकचेतसनिर्यूहेशीतलेपयसिवातम् । अवगाहयेत्प्रदिग्धपूर्वशिथिरणतैलेन ॥

अर्थ—रक्तके अत्यन्त बहनेपर तथा दाह और छेदके उत्पन्न होनेपर शरीर में शीतल तेलकी मालिश करके मुलहटी, कमलनाल, पदमाख, रक्तचन्दन, कुशा, कांस इनके क्वाथमें स्नान करावे अथवा ईखका रस, मुलहटी और वेतके क्वाथ से या ठंडे दूधसे रोगीको स्नान करावे ।

दत्त्वाघृतंसशर्करमुपस्थदेशगुदेत्रिकदेशे । शिशिरजलस्पर्शमुखाधाराःप्रस्तम्भनीर्ज्याः ॥ कदलीदलेरामिनयश्शीतजलसिक्तैः । प्रच्छादनमुहुर्मुहुरिष्टंप्रोत्पलदलैश्च ॥ दूर्वाघृतमदेहःशतधौतसहस्रधौतमपिसर्पिः । व्यजनपवनश्चरक्तरक्तसावजयत्याथ ॥

अर्थ—उपस्थेन्द्रिय, गुदा और त्रिकस्थान में घी और शर्करा सांनकर लेप करे, फिर धीरे २ ठंडे जलकी धार डाले तो रक्तका बहना बन्द होजाता है । नवीन केलेके पत्ते अथवा शीतल जलसे छिडके दूये कमल के पत्ते वा नीलकमलके पत्तों से बार २ अर्श को टकना भी हितहै ॥ दूध और घीका लेप अथवा सौवार वा हजारवार धुलाडुआघी इनका लेप, वा प्रेलेकी हवा इनसे भी बहताडुआ रक्त शीघ्रबन्द होजाता है ॥

अर्शपर घृत ।

समहामधुकाभ्यां तिलमधुकाभ्यां रसाञ्जनघृताभ्यां । सर्जरसघृताभ्यां वानिम्बघृताभ्यां मधुघृताभ्याम् ॥ दार्वीत्वक्सर्पिभ्यां सचन्दनाभ्यामथोत्पलघृताभ्याम् । दाहे क्लेदं भ्रंशे गुदजाः प्रतिसारणीयाः स्युः ।

अर्थ—समंगा और मुलहटी; तिल और मुलहटी; रसौत और घी; राठ और घी; नीम और घी; दाहहल्दी काँछाल और घी; अथवा रक्तचन्दन, नीलकमल और घृत इनका लेप करनेसे दाह, क्लेद, गुदभ्रंश और अर्श शान्त होजातेहैं ॥

आभिः क्रियाभिरथवाशीताभिर्यस्यतिष्ठति न रक्तम् । तं काले स्निग्धोष्णैर्मसैस्तपयेन्मतिमान् । अवपीडकसर्पिर्भिः कोष्णैर्घृतैस्तैलैस्तथाभ्यंगैः ॥ सीरघृततो यस्यैकैः कोष्णैः समुपाचरेदाशु । कोष्णे नवातप्रबलं घृतमण्डेनानुवासयेत्साधम् । पिच्छावस्तिदद्याद्वस्तिकाले तस्याथवा सिद्धम् ॥

अर्थ—इन ऊपर कहीहुई क्रियाओंसे अथवा शीतल क्रियाओंसे जिसका रधिरबन्द न हो उसको ठीक समयमें स्निग्धोष्ण मांस द्वारा तर्पण देवे, अथवा शिरोधिरचनकर्ता घृत देवे, अथवा ईषदुष्ण घृत तेलकी मालिश करावे अथवा ईषदुष्ण दूध घी वा जलसे परिपेक करे ॥ ऐसे वातप्रवळ रोगीको ईषदुष्ण घृतमण्ड भे शीघ्र अनुवासन देवे । अथवा यथा समय पिच्छावस्ति वा सिद्धावस्ति देवे ॥

पिच्छावस्ति सिद्धावस्ति ।

यवासकुशकाशानामूलपुष्पञ्चशालमलम् । न्यग्रोधोडुम्बराश्वत्थशुक्राक्षद्विपलोन्मिताः त्रिप्रस्थेसलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थेचसाधयेत् । क्षीरशेषं कपायं च पूतं कल्कैर्विमिश्रयेत् । कल्काः शाल्मलिनिर्य्याससमंगाचन्दनोत्पलं वत्सकस्यचवीजानि भियंगुपद्मकेसरम् । पिच्छावस्तिरयं सिद्धः सघृतक्षीद्रशर्करः ॥ प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्वरापहः ॥

अर्थ—जगसा, कुशा और कांसकांजड़ सेमरका फूल, बड, गूलर और पीपल की कोंपल ये सब दो २ पल छेवें ॥ तथा तानि प्रस्थ जल और एक प्रस्थ घृत में मिलाकर पकावे जब दूध शेष रहजाय तब इसको छान छेवें फिर इसमें सेमरका गोंद, काउहकान्ता, चन्दन, नीलकमल, इन्द्रजी, प्रियंगु, नाम केसर इनको पीस कर मिलादेवे इसका नाम पिच्छावस्ति है यदि इसमें घी, शहत, और चनांभी मिलाई जाय तो यह सिद्धावस्ति होजाता है । इन कर्तव्यको

प्रयोग करनेसे प्रवाहिका, गुदभ्रंश, रक्तला-
व तथा ज्वर शान्त होजाताहै ।

अनुवासन-वस्ति प्रयोग ।

मपीण्डरीकंपधुकंपिच्छावस्तौयथेरितम् ॥
पिप्पुवा अनुवासनं स्नेहंक्षीरद्विगुणितपचेत् ।

अर्थ—पुण्डरिया, मुलहटी तथा पिच्छा-
वस्तिमें कहेहुए द्रव्योंको पीसकर स्नेह तथा
दुग्धना दूध डालकर सिद्ध करके अनुवास-
न वस्ति देवै ।

हीवेरादि घृत ।

हीवेरमुत्पलरोध्रसमंगाचव्यचन्दनम् ॥
पाठासातिविपाचिष्वधातकीदेवदारुच ।
दावीत्वक्नागरंमासींमुस्तंक्षारोयवागृजः ।
चित्रकश्चेतिपेप्याणिचांगीरीस्वरसोघृतम्
एकध्वंसाधयेसर्वतत्सर्पिःपरमोपधम् ॥
अंशोऽतिसारगृहणीपाण्डुरोगज्वरारुचौ ।
मूत्रकृच्छ्रेगुदभ्रंशेवस्त्यानाहमवाहने ॥ पि-
च्छासावेऽर्शसांशूलेयोज्यमेतत्त्रिदोषनुत् ।

अर्थ—नेत्रपाला, नीलकमल, लोध, लज्जा-
ल, चव्य, चन्दन, पाठा, अतीस, बेलगिरी
धातके फूल, देवदारु, दारुहल्दीकी छाल, सों-
ठ, जटामांसी, मोथा, जवाखार, चीता, इ-
न सबको पीसकर चांगीरीके रसके साथ
घृत मिलाकर सबको सानकर पकावै, यह
घृत अत्यन्त गुणकारी होताहै । इसका
सेवन अर्श, अतिसार, ग्रहणदोष,
पाण्डुरोग, ज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, गुदभ्रं-
श, वस्तिका आनाह, प्रवाहन, पिच्छास्राव,
अर्शमूल और त्रिदोषजन्य अर्श को दूर क-
रनेवाला है ॥

अधाकपुष्पादि घृत ।

अधाकपुष्पीवलादावीपृथिपणी ।

कपायपपेप्यास्तुजीवन्तीकडुरोहिणी ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलनागरंमुरदारुच ।
कलिंगाःशाल्मलंपुष्पंवरिचन्दनमुत्पल

म् । कदफलंचित्रकंमुस्तंभियंग्वतिविपा
स्थिराः ॥ पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कंस
मंगासनिदिग्धिका ॥ विल्वंमोचरसः
पाठाभागाःकपसमन्विताः । चतुःप्रस्थे

श्रितंप्रस्थंकपायस्यावतारयेत् ॥ त्रिंशत्प
लानिप्रस्थोऽत्रविज्ञेयोद्विपलाधिकः ।

मुनिपण्णकचांगेर्याःप्रस्थोद्वांस्वरसस्यच
सर्वैरेतैर्यथादिष्टैर्घृतमस्थंविपाचयेत् । ए

तदर्शस्त्वतीसारैरक्तस्रावेन्निदोषज ॥
प्रवाहनेगुदभ्रंशेपिच्छास्राविविधासुच ।

उत्थानेचातिबहुशःशोधशूलेगुदाश्रये ॥
मूत्रग्रहेमूदवातेमन्देभ्रावरुचावपि ॥ प्रयो

ज्यंविधिवत्सर्पिर्वलवर्णाभिवर्द्धनम् ॥
त्रिविधेष्वक्षपानेषुकवल्बानिरत्ययम् ।

अर्थ—सोंफ, खरेटी, दारुहल्दी, प्रणि-
पणी, गोखरु, बड़को कोंपल, गुलरकी कों-
पल; पीपलका कोंपल इन्मेंसे प्रत्येक दो-

दोपल लेकर चार प्रस्थ जलमें चढादे जब
चोथाई होप रहै तब उतारकर छानलेवे ।

फिर जेती, कुट्टकी, पीपल, पीपलामूल, सों-
ठ, देवदारु, इन्द्रजौ, सेमरका फूल काकोली

रक्तचन्दन, नील कमल, कायफल, चीता,
मोथा, प्रिमशु, अतीस, शालिपर्णी, लाङ्गकम-
की केसर, नीलकमलकी केसर, वजाल,

कटेरी, बेलगिरी, मोचरस, पाठा इन सबको एक एक कर्प लेकर पीसकर उसमें मिलादे-
वै (यहाँ ३२ पलका प्रस्थ समझना चाहिये)
फिर इसमें चौपतियाका रस एक प्रस्थ, ज्वं-
गेरीका रस एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ इन सबको
मिलाकर पाक करे । यह घृत अर्शरोग,
अर्शासार, त्रिदोषज रक्तसाव, प्रवाहिका, गु-
दभ्रंश, अनेक प्रकारके पिच्छासाव, अनेक
प्रकारसे बार बार मलका निकलना, गुदशो-
थ, गुदशूल, मूत्रग्रह, मूढवात, मन्दाग्नि, अ-
रुचि. इन रोगोंको दूर करताहै । बल, वर्ण
और अग्निको बढ़ाताहै । यह घृत अकेलाही
वा अनेक प्रकारके अन्नपान के साथ दि-
या जाताहै ।

भवन्ति चात्र ।

व्यत्यासान्मधुराम्लानिशीतोष्णानिच
योजयेत् ॥ नित्यमग्निबलापेक्षीजयत्य
र्शःकृतान्गदान् ॥ त्रयोविकाराःप्रायेण
येपरस्परहेतवः । अर्शासिचातिसारश्च
ग्रहणीदोषएवच ॥ एषामग्निबलहीने
वृद्धिशुद्धेपरिक्षयः । तस्मादग्निबलरक्ष्य
मेपुत्रिपुत्रिशेषतः ॥

अर्थ—अर्शरोगमें विपरीत क्रमसे मधुर
और अम्ल, तथा शीत और उष्ण द्रव्यों
का व्यवहार करना चाहिये । अग्निबलको
अपेक्षा करनेवाला अर्शसे उत्पन्न हुए रोगों
को जीत लेताहै । अर्श, अतिसार और ग्र-
हणीदोष ये तीन रोग ऐसे हैं कि इनमें से
परस्पर एक दूसरेका हेतु होताहै । आग्निके
क्षीण होने से इन रोगों की वृद्धि होती है

और अग्निके बढ़ने से इन रोगोंकी क्षीणता
होतीहै । इस लिये इन तीनों रोगोंमें विशेष
करके अग्निबलकी रक्षा कर्तव्यहै ।

सेव्यासेव्यका संक्षिप्तवर्णन ।

भृष्टैःशार्कर्यवागुभिर्यूपामांसरसैःखंडैः ।
क्षीरतक्रमयोगैश्चविचित्रैर्गुदजान्जयेत् ॥
यद्वायोरानुलोम्यायदग्निबलवृद्धये ।
अन्नपानौपधद्रव्यतत्सेव्यंनित्यमर्शसैः ॥
यदतोविपरीतस्याग्निदानेयत्प्रदाशितम् ॥
शुद्धैस्तत्परीतेनैवसेव्यं कथञ्चन ॥

अर्थ—अनेक प्रकार के भुने हुए सांग
यवागू, यूप, मांसरस, खड्डयूप, दूध और
मठके प्रयोगोंसे अर्शरोगोंका दमन करना
चाहिये । जो द्रव्य वायुका अनुलोमन कर
ते है, जो अग्निबलको बढ़ाते है वह अन्नपान
और औषध नित्यही अर्श रोगियोंको सेवनी-
यहै । जो इनसे विपरीतहै तथा अर्शके उ-
त्पन्न होनेके हेतुओं में जो द्रव्य वर्णन कि-
ये गयेहै वे अर्शरोगियोंको कदापि सेवनीय
नहीं हैं ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

अर्शसांद्दिविधंजन्मपृथगायतनानिच
स्थानसंस्थानलिङ्गानिसाध्यासाध्यत्रि
निश्चयः ॥ अभ्यंगाःस्वेदनधूमाःसावर्गा
हाःपलेपनाः ॥ शोणितस्यांसेकश्चैयो
गादीपनपाचनाः ॥ तक्रुपोगाक्षपांनानि
वातवचोऽनुलोमनैःयोगांसंशोधनाश्चैव
सार्पविविधानिच ॥ अन्नपानमधोभागं
वस्त्यरिष्टाःसशर्कराः । शुष्काणामर्शसां
शस्तास्त्राविणालक्षुणानिच ॥ द्विविधंसा

नुबन्धानांतेषांचेष्टयौपधम् ॥ रक्तसंश
मनायोगाश्रेष्ठाश्चिविधिभात्मिकाः ॥ स्ने
हपानविधिश्चाप्रचोविधिःपानान्नयोश्च
यः॥परिपेकावगाहाश्चमदेहाप्रतिसारणम्
अतिदृत्तस्यरक्तस्यविधातव्ययदुत्तरम् ।
तत्सर्वमिहनिर्दिष्टंगुदजातांचिकित्सितम्
अर्थ—इस अर्श चिकित्सित अध्याय में
निम्नलिखित बातें वर्णन की गई हैं, यथा
अर्शकी दो प्रकारकी उत्पत्ति; अर्शके भिन्न
भिन्न कारण, स्थान, आकृति, लक्षण, सा-
ध्यासाध्यः विचार, अम्यंग, स्वेदन, घूम,
अवगाह, प्रलेप, फस्त खोलना, दीपनयोग
पाचनयोग, तक्रयोग, अघोवायु और पुरांध
के अनुलोमन करनेवाले अन्नपान, संशोधन
योग, अनेक प्रकारके घृत, वास्तिप्रयोग,
शर्करा मिलेबुए अरिष्ट, सूखीबवासीर की
औषध, स्नावीअर्श के लक्षण, दो प्रकारके
अनुबन्ध, अर्भाष्ट औषध, रक्तसंशमनकर्ता
अनेक प्रकारके उत्तम २ प्रयोग स्नेहपान,
विधि, अन्नपानविधि, तथा रक्तके अत्यन्त
बहने में परिपेक, अवगाह, प्रदेह और प्र-
तिमारण । ये सब इस अध्यायमें वर्णन
किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्धितायांअग्निवेशविरचिता-
यांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकी-
त्सितवर्णने अर्शचिकित्सितं नामन-
वगोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ॥

अयातोऽतीसारचिकित्सितंन्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोलेकि
अब हम अतीसार चिकित्सित नामक अ-
ध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

भगवन्तत्त्वत्वात्रेयंकृतान्दिकंकृताग्निहोत्र
मासीनमृपिगणपरिदृत्तमुत्तरोहिमवतःपार्श्वे
विनयादुपेत्याभिवाद्याग्निवेशजवाचभ-
गवन्नतीसारस्यमापुत्पत्तिनिमित्तलक्ष
णोपशमनानिप्रजानुग्राहार्थमारूपातुमर्ह
सीति ।

अर्थ—एक समय हिमालयके उत्तर की
ओर जब भगवान् आत्रेय आग्निहोत्र तथा
अग्निहोत्रादिकर्म से निश्चित होकर बैठे
हुए तथा बहुतसे ऋषि मुनि भी उस स-
मय उपस्थित थे, उससमय अग्निवेश ने
बहुत नम्रतापूर्वक अभिवादन करके पूछा
कि हे भगवन् ! प्रजाके अनुग्रहके लिये
आप अतीसारकी प्रथम उत्पत्तिका वर्णन,
हेतु, लक्षण तथा उसके शमनोपायोंका व-
र्णन करने योग्य हैं ॥

अतीसारकी प्रागुत्पत्ति ॥

अथभगवानात्रेयःतदभिवेशचनमजुनि-
शम्योवाच । धूयतापमिवेश ! सर्वमेत
दस्त्रिलेनन्याख्यायमानमादिकाले । स्व
लुपज्ञेषुपशवःसमालम्बनीयावभूवुर्नार
म्भायप्रक्रियन्तेस्य ततोदक्षयज्ञमत्यवर-
कालंमनोःपुत्राणांमरिष्यन्नाभागेस्वाकु-
कुविदचर्यात्यादीनाञ्चक्रुषुपयुनाभेवा

भ्यनुज्ञानात्पशवभोक्षणमवापुः । अत-
 धप्रत्यवरकालंपृपधेर्दार्धिसूत्रेणयजमानेन
 पशुनामलाभाद्रवामालम्भःप्रवर्तितः ।
 तंहृष्वामन्यथिताभूतगणाःतेषाञ्चोपयो-
 गादुपकृतानांगवांगौरवादीप्यादसात्म्य
 स्वादशस्तोपयोगाचोपहताग्नीनामुपहत
 मनसांअतीसारःपूर्वमुत्पन्नःपृपधयज्ञे ।

अर्थ—अग्निवेशके इस वचनको सुनकर
 भगवान् आत्रेय बोलेकि हे अग्निवेश ! यह
 सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तेरे साम्हने कहताहूँ तू
 सावधान होकर श्रवणकर । प्राचीनकाल में
 यह प्रथा थी कि यज्ञमें पशुओंका वध नहीं
 कियाजाता था, परन्तु यज्ञभूमि में लाये
 जाते थे, तदनन्तर दक्षके यज्ञके पीछे मरि-
 च्यन्, नाभाग, इक्ष्वाकु, कुविडचर्या आदि
 मनुके पुत्रोंके यज्ञों में पशुओंकी अनुमति से
 पशु छोड़ दियेजाते थे । इससे पीछे राजा
 पृपधने जो यज्ञ कियेथे । उनमें पशुओं के
 न मिलनेसे गोवधकी प्रथा प्रचलित करदी
 थी । इस बातको देखकर गौओं के अत्यन्त
 उपयोगी होने के कारण सम्पूर्ण प्राणी बहुत
 दुःखित हुये उसी पृपधके यज्ञमें गोमांस के
 भारी, उष्ण असात्म्य होनेसे तथा उसके
 अशस्त उपयोगसे खानेवालोंकी जठराग्नि
 मन्द पडगई और मनभी उत्साहहीन होगया
 तब ऐसे मनुष्यों के प्रथम अतीसार उत्प-
 न्न हुआ ॥

वातात्तिसार के हेतु ।

अथापरकालंवातलस्यवातातपन्यायामा
 तिमात्रनिपेविणोरुशालपमिताशेनः ॥

तीक्ष्णमद्यव्यवायनित्यस्यउदावर्त्तयतश्च
 वेगाद्वायुःप्रकोपमापद्यतेपक्ताचोपहन्यते-
 सवायुःकुपितोऽग्रावुपहतेमूत्रस्वेदौपुरीषा
 शयमुपहृत्यताभ्यांपुरीपंद्रवीकृत्यातीसा
 रायप्रकल्पते ।

अर्थ....वातप्रकृतिवाले मनुष्य के हवा घूप
 और शारीरिक परिश्रमके अत्यन्त सेवन से,
 रूक्ष, थोडा और प्रमित भोजन करने से,
 नित्यप्रति तीक्ष्ण मदिरापान और स्त्रीसम्भोग
 से वा मल मूत्रादिके उपस्थित वेगों के रो-
 कने से वायु प्रकुपित होजाती है तथा जठ-
 राग्नि क्षीण पडजाती है । इसतरह अग्नि के
 क्षीण होजानेपर वह प्रकुपित वायु मूत्र और
 स्वेदको पुरीषायमें लेंजाकर उनके द्वारा
 मलको पतला करदेती है तब अतीसार उ-
 त्पन्न होता है ।

वातात्तिसारकेरूप ।

तस्यरूपाणिविडजलमामविप्लुतमवसा-
 दितंरूक्षंद्रवंसशब्दगशब्दवा विवद्धमूत्रवा
 तमतिसार्यतेपुरीषंवायुश्रान्तः कोष्ठस्य
 सशब्दशूलःतिर्यक्चरतिविविद्धइत्यामा
 तिसारः ।

अर्थ—जिसका विष्टा जलके समान पत-
 ला पडजाताहै और वह विष्टा अपक्वमल से
 मिश्रित होताहै, तथा अवसादी, रूक्ष पत-
 ला होथे, दस्त होनेमें शब्दहो या सर्वथा
 शब्दहीनहो, मूत्र और अवात्रायु की विवन्ध
 ता के साथ दस्तहो, तथा जिसमें वायु कोष्ठ
 के भीतरही विवन्धके साथ और शल्युक
 होकर तिरछेपन से विचरती है । यह आ-
 मात्तिसार है ॥

वातात्पक्वविद्धमल्पालं सशब्दं सशूलफे
नपिच्छापरिकर्त्तिकहृष्टरोमाविनिश्चसन्
शुष्कमुखः कट्यूरुत्रिकजानुशूलपृष्ठशुली
भ्रष्टगुदोमुहुर्मुहुर्विप्रथितमुपवेद्यतेपुरीषं
वातात्तमाहुरनुग्रन्थमित्येकेवातानुग्रन्थि
तवर्चस्त्वात् ॥

अर्थ.... वातसे पक होकर विद्या विद्ध
युक्त शूलयुक्त, शशादार, गिलगिला, परिक-
र्त्तिका (ऐंठा) युक्त निकलताहै, उस, स-
मय रोमाख खडे होजातेहैं, श्वास चलने लग
ताहै, मुख शुष्क होजाताहै, कमर, उरु,
त्रिक, जानु और पीठमें शूल होने लगताहै,
गुरास्थि बाहर निकल आतीहै तथा वार
वार गांठदार मल निकलने लगताहै। वात
के कारण मलमें गांठ पड जाने से कोई
कोई इसे वातनुग्रन्थ कहतेहैं।

पित्तातिसार के हेतु रूपादि ।

पित्तलस्यापुनरम्ललवणकटुककक्षारोष्ण
तीक्ष्णातिमात्रनिषेविणः प्रतताग्निस्त्र्यस
न्तापोपहमरुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहु
लस्यपित्तप्रकोपमापद्यते। तत्रप्रकुपितद्रवत्वा
दूष्माणमुपहत्यपुरीपाशयविस्तृतमोष्ण्याद्
द्रवत्वात्सरन्वाच्चभित्वापुरीषमतेसाराय
प्रकल्पते । तस्यरूपाणिहृद्ग्रहरितनील
कृष्णापित्तोपहितमातिदुर्गन्धमतिसार्यते
पुरीषं तृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलब्रध्मसन्ता
पपाकपरीतइतिपित्तातिसारः ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका खटे
नमकीन, कडवे, खारी, तीक्ष्ण और उष्ण
पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे, अथवा अग्नि

और सूर्यके सन्ताप द्वारा निरन्तर उप-
हत होनेके कारण वा वायुद्वारा उपहत
होने के कारण वा अत्यन्त क्रोधी ईर्ष्यायु-
क्त पुरुष का पित्त प्रकुपित होजाता है ।
वह प्रकुपित पित्त पतला होनेके कारण अ-
श्लिको मन्द करके पुरीपाशय में स्थित हो-
जाताहै और वहां अपने पतले पन, गरमी
तथा सरताके कारण मन्को भेदन करके
अतीसारको उत्पन्न करता है इस अतिसार
का रूप हृद्दके समान पीला, हरा, नीला,
काला, पित संसृष्ट होतु है तथा विष्टामें
अत्यन्त दुर्गन्ध आती है । इस अतिसारमें
तृष्णा, दाह, स्वेद, मूर्च्छा, शूल, ब्रध्मसंता
प और गुदपाक ये उपद्रव भी होते हैं ।

कफातिसार के हेतु रूपादि ।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेवि-
नः सम्पूरकस्याचिन्तयतोदिवास्वप्नपर-
स्यालस्याश्लेष्माकोपमापद्यते । सत्वभा
वाद्गुरुमधुरशीतस्निग्धः सस्तोऽग्निमुपह-
त्यसौम्यस्वभावात्पुरीपाशयमुपहत्योप-
क्षेद्यपुरीषमतिसारायकल्पते । तस्यरूपा
णिस्निग्धंश्वेतंपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदु-
र्गन्धश्लेष्मोपहितमनुबद्धशूलमल्पालपम
भीष्णमतिसार्यतेसप्रवाहिकंगुरुदरगु-
दवस्तिवंसणोद्देशः कृतोऽप्यकृनसंज्ञोभव
तिसलोमहर्षः सोत्केशः निद्रालस्यपरीतः
सादनोऽबद्धेपीचेतिश्लेष्मातिसारः ।

अर्थ—कफ प्रकृति वाले पुरुष का कफ
भारी, मीठे, शीतल और चिकने पदार्थों
के अत्यन्त सेवनसे, पेटभर कर खालेनेसे

वा वेफिकरीसे दिनमें सौने का अम्यास वा आलस्य प्रसूत होनेसे कुपित होजाता है । यह श्लेष्मा स्वभावह्रांसे गुरु, मधुर, शीत, स्निग्ध और स्रस्त होता है इसलिये अग्नि को क्षीण करके अपने सौम्य स्वभावके कारण पुरीपाशय में पट्टंचकर पुरीपको क्लेदित कर के अतिसार में चिकना, सफेद, गिळगिळा, तन्तुयुक्त, अपक्व, भारी, दुर्गन्धित, कफ मिश्रित, शूलयुक्त थोडा २ चार चार दस्त होता है । प्रवाहिकाभी होती है, उदर, गुदा, यस्ति और वंक्षण इनमें भारापन होता है रो म हर्ष, उत्केश, निद्रा, आलस्य ये भी होते हैं तथा अंग ग्लानि और अन्नमें अरुचि ये उपद्रव भी होते हैं ।

त्रिदोषज अतिसार के हेत्वादि ।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुस्वरकठिनविपमविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यात्किञ्चिदभ्यवहरणाद्दुष्टमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात्प्रतिकर्मणां विपमगमनादनुपचाराज्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसयनादस्वप्नादतिस्वप्नाद्वेगविधारणाद्दुष्टविपर्ययादयथाबलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्वेगातियोगात्क्रिमिशोषज्वराशोषविकारातिकर्षणाद्वाविपन्नाग्नेस्त्रयोदोषाः प्रकुपिताभूयएवाग्निमुपहत्यामपकाशयमनुप्रविश्यातीसारं सर्वदोषालिङ्गजनयन्ति ।

अर्थ—अत्यन्त शीतल, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, भारी, खर, कठिन भोजन, विपम भोजन विरुद्ध पदार्थोंका भोजन असात्म्य भो-

जन, निराहार, कालातीत भोजन, अल्पभोजन, दूषित मदिरा और जलका पीना, अत्यन्त मद्यपान, असंशोधन, विरेचनआदिकों विपम गमन अनुपचार, अग्नि, धूप, हवा जलका अत्यन्त सेवन, सर्वथा न सोना, अत्यन्त सोना, मलमूत्रादि वेगोंका रोकना ऋतुविपर्यय (ग्रीष्ममें कम गर्मी वा अधिक गर्मी पड़ना) वलसे अधिक कार्य करना भय, शोक और चित्तोद्वेगका अतियोग, क्रिमिरोग शोपरोग, ज्वर, अर्श विकार । इन सब कर्मोंसे जो व्यक्ति अत्यन्त कृश होजाता है उसके तीनों दोष कुपित होकर प्रथमही दोषको प्राप्त हुई अग्निको अधिक तर मन्द करके आमपकाशय में प्रविष्ट होकर तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त अतिसार को उत्पन्न करते हैं ।

कृच्छ्रसाध्य के लक्षण ।

अपिचशोणितादीन्धातून्ततिप्रदुष्टान्दूपयन्तोधातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णानुपदर्शयन्ति । तत्रशोणितादिपुधातुपु अतिप्रदुष्टेपुहारिद्रहरितनीलमाज्जिष्ठमां सधावनसन्निकाशंरक्तकृष्णंश्वेतंवराहमेदःसदृशमनुवृद्धवेदनमवेदंवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशकृद्मथितमामंसकृतसकृदपिपकमनतिक्षीणमांसशोणितचलोमन्दाग्निर्विहतमुखरसस्तादृशमातुरं कृच्छ्रसाध्यंविद्यात् ।

अर्थ—अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु जब तीनों दोषोंके प्रकोपसे अत्यन्त दूषित हो जाती हैं तब धातुओंके दोषोंके स्वाभाविक

वातात्पक्वविद्वद्मल्पाल्पसंशब्दसशूलफे
नापिच्छापारिकात्तिकहृष्टरोमाविनिश्वसन
शुष्कमुखःकट्यूरुत्रिकजानुशूलपृष्ठशूली
भ्रष्टगुदोमुहुर्मुहुर्विग्रथितमुपवेद्यतेपुरीपं
वातात्तमाहुरनुग्रन्थमित्येकेवातानुग्रन्थि
तवर्चस्त्रात् ॥

अर्थ....वातसे पक्व होकर विद्या विद्वद्
युक्त शूलयुक्त, ज्ञागदार, गिलगिला, परिक-
त्तिका (ऐंठा) युक्त निकलताहै, उस, स-
मय रोमाञ्च खडे होजातेहैं, श्वास चलने लग-
ताहै, मुख शुष्क होजाताहै, कमर, उरू,
त्रिक, जानु और पीठमें शूल होने लगताहै,
गुदास्थि बाहर निकल आतीहै तथा धार
धार गांठदार मल निकलने लगताहै । वात
के कारण मलमें गांठ पड जाने से कोई
कोई इसे वातनुग्रन्थ कहतेहैं ।

पित्तातिसार के हेतु रूपादि ।

पित्तलस्यापुनरल्लवणकटुककक्षारोष्ण
तीक्ष्णातिमात्रनिषेविणःप्रतताग्निस्वर्यस
न्तापोपहमरुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहु
लस्यापि संभ्रकोपमापद्यते।तत्रकुपितंद्रवत्वा
दूष्माणमुपहत्यपुरीपाशयाविस्तृतमोष्प्याद
द्रवत्वात्सरन्वाच्चभित्वापुरीपमातिसाराय
प्रकल्पते । तस्यरूपाणिहंघ्रिद्रहरितनील
कृष्णापित्तोपहितमतिदुर्गन्धमतिसार्यते
पुरीपंतोष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलब्रध्मसन्ता
पपाकपरीतइतिपित्तातिसारः ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका खडे
नमकीन, कडे, खारी, तीक्ष्ण और उष्ण
पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे, अथवा अग्नि

और सूर्यके सन्ताप द्वारा निरन्तर उप-
हत होनेके कारण वा वायुद्वारा उपहत
होने के कारण वा अत्यन्त क्रोधी ईर्ष्यायु-
क्त पुरुष का पित्त प्रकुपित होजाता है ।
वह प्रकुपित पित्त पतला होनेके कारण धु-
म्रिको मन्द करके पुरीपाशय में स्थित हो-
जाताहै और वहां अपने पतले पन, गरमी
तथा सरताके कारण मन्को भेदन करके
अतिसारको उत्पन्न करता है। इस अतिसार
का रूप हलदीके समान पीला, हरा, नीला,
काला, पित्त संसृष्ट होताहै। तथा विद्यामें
अत्यन्त दुर्गन्ध आती है । इस अतिसार-में
तृष्णा, दाह, स्वेद, मूर्च्छा, शूल, ब्रध्मसंता-
प और गुदपाक ये उपद्रव भी होते हैं ।

कफातिसार के हेतु रूपादि ।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेवि-
नःसम्पूरकस्याचिन्तयतोदिवास्वप्नपर-
स्यालस्याश्लेष्माकोपमापद्यते । सत्वभा-
वादगुरुमधुरशीतस्निग्धःसस्तोऽग्निमुपह-
त्यसौम्यस्वभावात्पुरीपाशयमुपहत्योप-
क्षेयपुरीपमतिसारायकल्पते । तस्यरूपा
णिस्निग्धंभेतपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदुः-
र्गन्धश्लेष्मोपहितमनुबद्धशूलमल्पाम
भीक्ष्णमतिसार्यतेसप्रवाहिकंगुरुदरगु-
दवस्तिवसणोदेशःकृतोऽप्यकृनसंज्ञोभव-
तिसलोमहर्षःसोतकेशःनिद्रालस्यपरीतः
सादनोऽन्नदोषीचेतिश्लेष्मातिसारः ।

अर्थ—कफ प्रकृति वाले पुरुष का कफ
भारी, मोठे, शीतल और चिकने पदार्थों
के अत्यन्त सेवनसे, पेटभर कर खालेनेसे

वा वेफिकरीसे दिनमें सौने का अभ्यास वा आलस्य प्रस्त होनेसे कुपित होजाता है । यह श्लेष्मा स्वभावहंसे गुरु, मधुर, शीत, स्निग्ध और स्रस्त होता है इसलिये अधिको क्षीण करके अपने सौम्य स्वभावके कारण पुरीयाशय में पट्टंचकर पुरीपको क्लेदित कर के अतिसार में चिकना, सफेद, गिलागिला, तन्तुयुक्त, अपक्व, भारी, दुर्गन्धित, कफ मिश्रित, शूलयुक्त थोडा र चार चार दस्त होता है । प्रवाहिकाभी होती है, उदर, गुदा, यस्ति और वक्षण इनमें भारापन होता है रो म हर्ष, उल्लेख, निद्रा, आलस्य ये भी होते हैं तथा अंग ग्लानि और अन्नमें अरुचि ये उपद्रव भी होते हैं ।

त्रिदोषज अतिसार के हेत्यादि ।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुस्वरकठिनविषमविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यात्किञ्चिदभ्यवहरणाद्दुष्टमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात्प्रतिकर्मणांविषमगमनादनुपचाराञ्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसयनादस्वप्नादतिस्वप्नाद्वेगविधारणादतुविपर्ययादयथाबलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्वेगातियोगात्क्रिमिशोषज्वराशोविकारातिकर्पणाद्वाविपन्नाग्नेस्त्रयोदोषाःप्रकुपिताभूयएवाग्निमुपहृत्यामपकाशयमनुप्रविश्यातीसारंसर्वदोषलिङ्गजनयन्ति ।

अर्थ—अत्यन्त शीतल, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, भारी, खर, कठिन भोजन, विषम भोजन विरुद्ध पदार्थोंका भोजन असात्म्य भो-

जन, निराहार, कालातीत भोजन, अल्पभोजन, दूषित मदिरा और जलका पीना, अत्यन्त मद्यपान, असंशोधन, विरेचनआदिका विषम गमन अनुपचार, अग्नि, घूप, हवा जलका अत्यन्त सेवन, सर्वथा न सौना, अत्यन्त सौना, मलमूत्रादि वेगोंका रोकना ऋतुविपर्यय (ग्रीष्ममें कम गर्मी वा अधिक गर्मी पड़ना) यलसे अधिक कार्य्य करना भय, शोक और चित्तोद्वेगका अतियोग, किमिरोग शोषरोग, ज्वर, अर्श विकार । इन सब कर्मोंसे जो व्यक्ति अत्यन्त कृश होजाता है उसके तीनों दोष कुपित होकर प्रथमही दोषको प्राप्त हुई अग्निको अधिक तर मन्द करके आमपकाशय में प्रविष्ट होकर तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त अतिसार को उत्पन्न करतेहैं ।

कृच्छ्रमाध्य के लक्षण ।

अपिचशोणितादीन्धातून्तिप्रदुष्टान्दूषयन्तोधातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णांनुपदर्शयन्ति । तत्रशोणितादिपुधातुषु अतिप्रदुष्टेपुहारिद्रहरितनीलमाञ्जिष्ठमांसधावनसन्निकाशरक्तकृष्णश्वेतवराहभेदःसदृशमनुचन्द्रवेदनमवेदनंवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशकृद्मथितमामंसकृतसकृदपिपकमनतिक्षीणमांसशोणितवलामन्दाग्निविहतमुखरसस्तादृशमातुरकृच्छ्रसाध्यविद्यात् ।

अर्थ—अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु जब तीनों दोषोंके प्रकोपसे अत्यन्त दूषित हो जातीहै तत्र धातुओंके दोषके स्वाभाविक

अनुसार अतीसारके वर्ण में भेद होजाताहै ।
यहां अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि घातु
ओंमें हल्दी का सा पीला हरा, नीला, मज्जठ
के सदृश, मांसके धुले हुए जल के समान
छाल, काला, सफेद, सूअर की मेटा के सदृ
श, श्लयुक्त वा शूल रहित विष्टा थोड़ा
थोड़ा वा विपरीत क्रम से निकलता है, कभी
२ गांठदार कच्चा मल निकलता है, और
कभी पक्का मल आने लगता है । इसमें
रोगी का मांस रुधिर और बल अत्यन्त क्षी
ण नहीं होता, अग्निमन्द पड़जातीहै और
मुखका स्वाद विगड़ता चलाजाता है । इन
लक्षणोंसेयुक्त रोगी कृच्छ्रसाध्य होता है ।

असाध्य के लक्षण ।

एभिर्वर्णैरतिसार्यमाणसोपद्रवमातुरम
साध्योऽयमितिमत्याचक्षीवतघयाकाप
शोणिताभयकृतपिण्डोपमंमांसोदकसन्नि
काशदधिघृतमज्जतैलवसाक्षीरवेशवारा
भमतिनीलमतिरक्तमतिकृष्णमुदकमिवा
च्छपुनर्मेचकाभंअतिस्निग्धहरितनीलक
पायवर्णकर्पूरमाविलंतन्तुमदामंचन्द्रकोप
हितमतिकृष्णपूतिपूयगन्धमामत्स्यगन्धं
मक्षिकाक्रान्तंकायितवहुधातुद्रवमल्पपुरीप
मपुरीपंवातिसार्यमाणंतृष्णादाहज्वरभ्र
मतमकाहिकाश्वासानुवद्मतिवेदनमवेदनं
वास्तसत्पक्वगुदंपतितगुदंवल्लिमुक्तनालम
तिक्षीणत्रलमांसशोणितबलं सर्वपाश्र्वास्थि
शूलिनंमरोचकातिमलापसंमोहपरीतंस
हगोपरतंबिकारमतिसारिणमचिकित्स्यं
विषादितिसान्निपातातिसारः॥

अर्थ—यदि विष्टाका रंग नांचे टिखेहुए
वर्णोंके समान हो और उक्तारोगमें उपद्रव भीहो
तौ वह असाध्य और दुर्दिकित्स्य होताहै; य-
था—यदि विष्टाका रंग काथ, रुधिर, यकृतपि-
ण्ड, मांसघात जल के सदृश, दही, घी, मज्जा,
तेल, चवी, दूध, बेशवारके समान हो, अत्यन्त
नीला, अत्यन्त छाल, अत्यन्त काला वा अत्य-
न्त स्वच्छ जलके सदृश हो; मेचक (मुरमा
वा मोर की चन्द्रिका) के समानहो, अत्य-
न्त चिकना, हरा, नीला, कपायवर्ण, कर्पूर
(विचित्र वर्ण) आधिल (अस्वच्छ) तन्तुयुक्त,
आम चन्द्रिकायुक्त मुर्दे की गंधके समान,
सड़ीहुई तथा पीवकी गंध के समान, आम-
मत्स्यगन्धयुक्त, जिसपर बहुत सी मक्खियां
आचिपटें, काथ की हुई द्रवधातुके सदृश,
अल्पपुरीप (थोड़ा विष्टा और बहुत सा
जठ) अपुरीप (केवल पतला दस्त) इन
सब लक्षणोंसे युक्त मलहो तथा तृष्णा, दाह
ज्वर, भ्रम, तमकश्वास, हिचकी, श्वास अति,
शूल, शूलरहित हो, गुदाढीली वा पक्वगई
हो, गुदाबलि नष्ट हो गई हो काचनिकलती
हो; बल मांस और रुधिर का बल अतिक्षीण
होगया हो, सब पसली और हड्डियोंमें शूल
होता हो, अरुचि, अतिप्रलाप और मोहहो,
और यदि ये सम्पूर्ण उपद्रव एक साथ विलुप्त
होगये हों, तौ ऐसा अतीसार रोगी असाध्य
होता है । ये सन्निपातातिसार के लक्षणहैं ।
साध्यातिसारकाचिकित्साक्रम ।
तमसाध्यतामंसमांसीचिकित्सेयथाप्रधानो
पक्रमेणहेतूपश्रयदोषावेशेषपरीक्षयाचेत्ता

अर्थ.... जो आतिसार असाध्य नहीं हुआ है उसकी चिकित्सा प्रधान दोष के उपचार, हेतु, उपशाय और दोष विशेष की परीक्षा द्वारा कर्तव्य है ।

आगन्तु अतीसारके लक्षण ।

आगन्तुद्वावतीसारौमानसौभयशोकजौ ।
ततपोलक्षणंयायोर्यदतीसारलक्षणम् ॥

अर्थ.... आगन्तु अतिसार दो प्रकार के होते हैं यथा—भयातिसार और शोकातिसार । इन दोनोंके लक्षण वातज अतिसारके सदृश होते हैं ।

आगन्तु अतिसार में चिकित्साक्रम ।

पांस्तौभयशोकाभ्यांशीघ्रांहिपारिकुप्यति ।
तयोःक्रियावातहरार्हर्षणाश्वासनानिच ॥

अर्थ—भय और शोकसे वायु एक साथ कुपित होजाता है । इसमें वातनाशक चिकित्सा कर्तव्य है, तथा हर्षोत्पादककर्म और आश्वासनभी विधेय है ।

इत्युक्ताः पडतीसाराः अतः परं साध्यानां सा

धनमनुव्याख्यास्यामः

अर्थ.... इस तरह छः अतीसारों का वर्णन किया गया है, अब यहांसे साध्य अतीसारोंकी चिकित्सा वर्णन करेंगे ।

दोषाः सन्निचितायस्यविदग्धाहारमूर्च्छिताः अतीसारायकल्पन्ते भूयस्तानुसंभवर्त्तयेत् ॥ नतुसंग्रहणं देयं पूर्वमामातिसारिणे त्रिवध्यमानाः प्राग्दोषाजनयन्त्यामयान्बद्धन् ॥ शोथपाण्डुवामयश्रीहृक्पृग्गुल्मोदरचरान्दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यशोर्गदांस्तथा तस्मादुपेक्षेतोत्क्रुष्टान्वर्चमानान्स्वयं

मलानां कृच्छ्रं वा बहुतान्दद्यादभयांसंभवर्त्तनीम् ॥ तया प्रवाहिते दोषे मशम्यत्युदरामयः । जायते देहलघुता जठारग्निश्च वर्द्धते ॥

अर्थ.... जिस मनुष्यके अपनय आहार के कारण दोष संमूर्च्छित होकर इकठे होजाते हैं और अतीसार को उत्पन्न करते हैं उसके दोषों को फिर प्रवृत्त करावै । आमातिसार में प्रथमही संग्राही औषधोंका देना अयोग्य है । क्योंकि प्रथमही से रोकेहुये दोष अनेक प्रकार के रोगोंको उत्पन्न करदेते हैं; यथा—शोक, पाण्डुरोग, प्रीहा, कोष्ठ, गुल्मरोग, उदररोग, ज्वर, दण्डक, अलसक, आप्मान, ग्रहणी, और अर्शरोग इसलिये अपने आप प्रवृत्त हुए उच्छिष्ट मलोंकी प्रथम उपेक्षा करे । जो मल कष्टसे निकलता हो तो हरड का सेवन करावै । हरडकेद्वारा दोषोंके निकलने पर उदररोग शांत होजाते हैं, देहमें हलकापन उत्पन्न होता है और जठराग्नि भी बढती है ॥

प्रमथ्यामध्यदोषाणां दद्याद्दीपनपाचनीम् लघनश्चाल्पदोषाणां मशस्तमत्तिसारिणाम् ।
अर्थ—मध्यबलवाले अतिसारों में दीपन और पाचन प्रमथ्या (औषध) देवै, इसी तरह अल्प दोषवालों में लघन हित है ।

प्रमथ्या के प्रयोग ।

पिप्पलीनागरंधान्यं भूतीकमभयावचां शीवेरं भद्रमुस्तानिविल्वैनागरंधान्यकम् ॥ पृश्निपर्णीश्वदंष्ट्राचसर्मांशोकण्टकारिकातिस्रः प्रमथ्याविहिताः श्लोकाज्ज्वरतिसारिणाम् ॥

१—संमगाकण्टकारिकेति गंगाधरः ।

अर्थ...पीपल, सोंठ, धनियाँ, अजवायन
हरड. और वच । नेत्रवाला, भद्रमोथा, बेल-
गिरी, सोंठ और धनियाँ । प्रष्णिपर्णी, गो-
खरू, और समानभाग कटेरी । आधे २
श्लोकमें कहेहुए ये तीन प्रमथ्याप्रयोग अ-
तिसारमें हित हैं ।

अतिसार में अन्नपानादिप्रयोग ।

वचामतिविपाभ्यांवामुस्तर्पटकेनवा ।
द्विवेरश्रद्धेराभ्यांपक्ववापाययेज्जलम् ॥
युक्तेऽन्नकालेक्षुत्क्षाम्लघून्यन्नानिभोज-
येत् । तथासर्शाग्रामोतिरुचिमग्निबलं
बलम् ॥ तत्रेणावन्तिसोमेनयवाग्वातर्प-
णेनवा।सुरयामधुनाचादौयथारात्म्यगु-
पाचरेत् ॥ यवागूभिर्विलेपीभिःखड्यैरुपैर-
सादनैः । दीपनग्राहिसंयुक्तैःक्रमश्चस्या
दतःपरम् ॥

अर्थ—वच और अतास, अथवा मोथा
और पित्तपापडा; अथवा नेत्रवाला और अद-
रल इनको डालकर औटायानुआ जल पान-
करावै । अतिसार में क्षुधा के लगने पर
हलके अन्नका भोजन करावै, ऐसा करने से
रोगी की रुचि, अग्निबल, शारीरिक बल शी-
घ्र बढ़जायगे । अतिसारमें यथा सात्म्य तक्र,
कांजी, यवागू, सर्पण, मदिरा और मधु इन
में से कभी किसीका और कभी किसीका
सेवन कराता रहै । तत्पश्चात् दीपन और सं-
ग्राही औषधोंसे सिद्ध करके क्रमसे यवागू,
विलेपी, खड्यूप, मांसरस और आदनदेताहै।
साल्पर्णीपृश्निपर्णीद्विहृतीकण्टकारिकाम् ।

बलांश्वदंष्ट्रांविश्वानिपाठानागरधान्यकम् ।
शुंठीपलाशंहृषुपावचार्जीरकपिप्पलीम्
यवानीपिप्पलीमूलचित्रकंहस्तिपिप्पलीम्
वृक्षाम्लंदाडिमाम्लञ्चसंहिगुविटसन्धवम्
प्रयोजयेदन्नपानेविधिनासूपकल्पितम् ॥
घातश्लेष्महरोहोपगणोदीपनपाचनः ॥
ग्राहिवलयोरोचनश्चतस्मात्शस्तोऽति-
सारिणाम् ॥

अर्थ...शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, बडाकटेरी
छोटी कटेरी, खरैटी, गोखरू, बेलगिरी, पा-
ठा, सोंठ, धनियाँ, कचूर, ढाक, हाऊबेर,
वच, जीरा, पीपल, अजवायन, पीपलामूल,
चांता, गजपीपल, वृक्षाम्ल, अनार, हींग,
विडनमक, सेंधानमक, इन सबको व्यजन
की तरह सिद्ध करके अन्नपान में प्रयुक्त क-
रै । यह गण वात कफनाशक, दीपन, पा-
चन, संग्राही, बलकर्ता और रुचिवर्द्धक है,
इसलिये अतिसार में हित है ।

आमेपरिणतेयस्तुविबद्धमति सार्यते ।
सशूलपिच्छमल्पालंपवहुशःसमवाहिकम्
तंमूलकानांयूपेणवदराणामयापिवा । उ-
पोदकायाःक्षीरिण्यातवान्यावास्तुकस्य
वा । सुवर्चलायाश्चोर्वाशाकेनावलगुज-
स्यवा । शठ्याःकर्कारुकाणांवाजीवन्त्या
श्विर्भटस्यवा ॥ लोणीकायाःसपाठायाः
शुष्कशाकेनवापुनः । दधिदाडिमसिद्धेन
बहुस्नेहेनभोजयेत् ॥

अर्थ. आमके पारेपक होजानेपर जा
दस्त रुकर कर शूलयुक्त, गिलगिला थोडा२,
वार २ और प्रवाहिका युक्तहोवै तो उस

अर्थ—चागेरी, बेर, दही, अनार, सोंठ, जवाहार इनको मिलाकर पकाया हुआ घी गुदभ्रंश और शूलको नष्ट करताहै ।

चव्यादि घृत ।

सचव्यपिप्पलीमूलसव्योपविडदाडिम
मू । पेयमम्लंघृतंयुक्तवासधान्याजाजि
चित्रकम् ॥

अर्थ—चव्य, पीपलामूल, त्रिकुटा, विड नमक, अनार, धनियाँ, जीरा, चीता इनसे सिद्ध कियाहुआ घृत पूर्वोक्त गुणकर्ता है ।

दशमूलोपसिद्धंवासविल्वमनुवासनम् ।

शताद्वाशटिविल्वैर्वात्रचयाचित्रकेणवा ॥

स्तन्यभ्रष्टोगुदेपूर्वस्नेहस्वेदौपयोजयेत् ।

सुखिभञ्जमृदुभृतंपिचुनासंभवेशयेत् ॥

अर्थ—दशमूल और कच्ची बेलगिरीको

भिद्ध करके अनुवासनवस्ति देवे । अथवा सोंठ, कचूर, बेलगिरी, अथवा वच, और चीता इनको सिद्ध करके अनुवासन वस्ति देवे । इससे गुदस्तन्य, गुदभ्रंश दूर होजाते हैं, परन्तु प्रथम स्नेहन और स्वेदनकर्मकरे ।

पसीने देने पर जब गुदा मृदु होजाय तब रुई के फौए से प्रवेश करे ॥

विषद्वेषात्तत्रर्चास्तुयद्गुशूलप्रवाहिकः ।

सरक्तपिच्छस्तृष्णात्तःक्षीरसौहित्यम-

हति ॥ यमकस्योपरिस्त्रीरंधारोष्णंवा

पिबन्नरः । शृतमैरण्डमूलेनबालविल्वेनवा

पयः ॥ एवंक्षीरप्रयोगेणरक्तपिच्छावशा

म्पात् । शूलप्रवाहिकाचेविविबन्धशोप

शाम्यति ॥

अर्थ—शोधोपाय और मलक बद्ध होनेपर

शूल और प्रवाहिकाके अत्यन्त बद्धजाने पर; रुधिर सहित पिच्छिल मलके निकलने पर और तृषाके अधिक होने पर दूधको पेट भर कर पान करावे । यमक जैह (घी तेल) के ऊपर धारोष्ण दुग्ध पान करावे । अथवा अंडीको जड़ या कच्ची बेलगिरी डालकर दूध को औटाकर पान करावे । दूधके इन प्रयोगोंसे रक्त और पिच्छा शान्त होजाते हैं तथा शूल प्रवाहिका और विबन्ध भी नष्ट होजाते हैं ।

पित्तातिसारकी चिकित्सा ।

पित्तातिसारंघुननिदानोपशयाकृतिभिरा
मान्वयमुपलभ्ययथावलं लघनपाचना
भ्यामुपाचरेत् तृप्यतस्तुमुस्तर्पटकोशी
रंशारिवाचन्दनकिराततिककोदीच्यवा
रिभिरुपाचरोलंघितस्यचाहारकालेबला
तिबलासूप्यशालपर्णीपृथिनपर्णीवृहतीक-
ण्टकारिकाशतावरीश्वदंष्ट्रानिपुंहसंयुक्तेन
यथासात्स्यंयवाग् मण्डादिनातर्पणादि
नावाक्रमेणोपचारःसुह्रमसूरहरेणुमकुण्टकपू
पैःलावकपिञ्जलशहरिणंशैयकालपुच्छक
रसैरीपदम्लैरनम्लैर्वाक्रमशोऽग्निसन्धुस्त
तेदनुबन्धत्वेत्वस्वर्दापनीयपाचनीयोपश्र
मनीयसंग्रहणीयान्योगान्प्रयोजयेदिति

अर्थ—पित्तातिसारमें निदान, उपशय आंर आकृति द्वारा यदि यह जाना जाय कि रोग आमाचितहै तो बलके अनुसार लघन पाचन देवे । यदि तृषा प्रवलहो तो मोया, पित्तपापडा, खण, शारिवा रक्त चन्दन, चिरायता और नेत्रवाला इनके साथ सिद्ध किया

हुआ जल देवै । लंघन करानेके पीछे भोजन के समय बला, अतिबला, मुद्रपर्णी, शालिपर्णी, पृथिगपर्णी, दोनों कटेरी, सितावर, गोखरू, इनके काथके साथ यवागूमण्ड और तर्पणादिको भोजनमें देवै । मूंग, मसूर, हरणु, मोंठ इनका यूथ अथवा लवा, कार्पिजल खर्गोश, हरिण, एण, कालपुच्छ, इनके मांस रस में खटाई डालकर वा बिना खटाई देकर धीरे २ जठराग्निको उत्तेजित करे । इन उपायों के करने परभी यदि कुछ शेष रहजाय तौ दीपन, पाचन, संशमनीय और संप्राही औषधोंका प्रयोग करे ।

भवति चात्र ।

ससौद्रातिविषंपिष्ट्वावत्सकस्यफलरवचम

पिवेत्पित्तातिसारघ्नतण्डुलादेकसंयुतम् ॥

अर्थ—अतीस, इन्द्रजौ, कुडाकी छाल इनको जलमें पीसकर तण्डुलजल और शहत के साथ सेवन करे तौ पित्तातिसार नष्ट होजाताहै ।

पित्तातिसार पर छः प्रयोग ।

किराततित्तकमुस्तंबत्सकःसरसाञ्जनः ।

विल्वं दारुहरिद्राश्चत्वक्कृद्दीवेरंदुरालभम् । च

न्दनश्चमृणालञ्चनगरंरोध्रमुत्पलम् ॥ तिला

मोचरंसोरो धंसमहाकमलोत्पलम् । कट्फ

लनागरंपाठा जम्बाप्रसियदुरालभाः ॥

योगाःपडेतेस सौद्रास्तण्डुलोदकसंयुताः ।

पेयाःपित्तातिसारघ्नाःश्लोकाद्धेननि

दर्शिताः ॥

अर्थ—(१) चिरायता, मोया, इन्द्रजौ, रसौत । (२) बेलगीरा, दारुहलदा,

दालचीनी, नेत्रवाला, जवासा । (३)

चन्दन, कमलनाल, सोंठ, लोध, नीलकमल,

(४) तिल, मोचरस, लोध, लजालु, नील-

कमल, लालकमल । (५) नीलकमल, धाय

के फूल, अनारकी छाल और सोंठ । (६)

कायफल, सोंठ, पाठा, जामनकी गुठली,

आमकी गुठली जवासा । आधे आधे श्लोक

में कहेहुए इन छः प्रयोगों को शहत और

तण्डुल जलके साथ सेवन करने से पित्ताति

सार दूर होजाताहै ।

जीर्णोपधानांशस्यन्तेयथायोगंमकल्पितैः

रसैःसांग्राहिकैर्युक्ताःपुराणारक्तशालयः ।

अर्थ—औषध के जीर्ण होनेपर उसी

उसी योगकी औषधों से सिद्ध किये हुए

संप्राही-मांसरसों के साथ लाल शालीचावलों

का सेवन करे ।

पित्तातिसारोदीप्ताग्नेःक्षिप्रंसमुपशाम्यति

आजसीरप्रयोगेनवर्णवर्णश्वर्द्धते ॥ बहु-

दोपस्यदीप्तान्नेःसमाणस्यनतिष्ठति । प-

त्तिकोयद्यतीसारःपयसातंविरेचयेत् ॥

पलाशफलनिर्यहंपयसापाययेततम् । त-

तोऽनुपाययेत्कोष्णंसीरमेचयथावलम् ॥

प्रवाहितेतेनमलेप्रशाम्यत्युदरामयः । प-

लाश्वत्प्रयोज्यावात्रायमाणाविशोधिनी

अर्थ—दीप्ताग्निवाले पुरुषका पित्तातिसार

शीघ्रही शान्त होजाताहै । इससमय बकरी

का दूध सेवन कराने से बल और वर्ण ब-

ढजाते हैं । बहुत दोषों से युक्त दीप्तानि

वाले और बलवान् पित्तातिसारीको दूध के

साथ विरेचन देनेसे फिर पित्तातिसार नहीं

रहताहै । इस रोगांको दूधके साथ ढाक कों फलोंका काय पान करावै । फिर यथाशक्ति कुछ २ गरम दूधका अनुपान करावै । इस रीतिसे मलके निकलजानेपर उदररोग शान्त होजाते हैं । अथवा मलके शोधनके निमित्त पलाशफलेके सदृश त्रायमाण का प्रयोगकरौ संसर्गाक्रियमाणायामांशूलेयधनुवर्त्तते । अतदोपस्यतंशीघ्रंयथावदनुवासयेत् ॥ शतपुष्पावरीभ्याञ्चपयसामधुकेनवा । तैलपादंघृतंसिद्धंसविल्वमनुवासनम् । कृतानुवासनस्यापिकृतसंसर्जनस्यच ॥ घत्तैयघर्तासारःपिच्छावस्तिरतःपरम् ।

अर्थ—विरेचनके पछिलाकी सम्पूर्ण क्रियाओं कें करनेपर भी यदि उदरशूल रहजा वै तो दोषोंके निकलनेके पश्चात् अनुवासन कर्म करे ॥ सौंफ, सितावर, दूध, मुलहटी, घी से चौथाई तैल, बेलगिरी इन सबको सिद्ध करके इनके द्वारा अनुवासनवस्ति देवै अनुवासनवस्ति देनेपरभी तथा तत्पश्चात् पेयादि श्रमके अवलंबन करने परभी जो अंतिसार दूर नहीं तो नीचेलिखी हुई रीति से पिच्छावस्ति देवै ॥

पिच्छावस्ति विधान ।

परिवेष्यकुशैरादैरार्द्रवृत्तानिशालमलेः ॥ कृष्णमृत्तिकयालिप्यस्वेदयेद्रोमयाग्निना सुशुष्कांमृत्तिकांज्ञात्वातानिदृत्तानिशालमलेः ॥ श्रितेपयसिमृद्गीयादापोभ्योल्खलेततः । पिष्ट्मृष्टिसमंमस्येतत्प्लुतंतैलसर्पिपा ॥ योजितमात्रयायुक्तंक्ल्लेनमधुकस्यच । वस्तिमभ्यक्तगात्रायदद्यात्प्रत्या-

गतेततः ॥ स्नात्वाशुद्धीतपयसाजात्र लानारसेनवा । पिचातिसारज्वरशोथगुल्मा । जीर्णातिसारग्रहणीप्रदोपान् ॥ जयंत्ययंशीघ्रमतिप्रवृद्धान् । विरेचनास्थापनगोश्चयस्तिः

अर्थ—सेमरके हरे डंठलोंको हरी कुशा से लपेटकर ऊपरसे कालीमिट्टी लपेट कर मर्दा २ आगमें पकावै, जब मृत्तिका अच्छी तरह सूखजाय तब सेमर के डंठलोंको उड़ खलमें कूटकर चार तोले लेकर एक प्रस्थ दूधमें औटावै, फिर मात्राके अनुसार तैल, सरसों और मुलहटीमें सानकर वस्तिसे देवै, परन्तु प्रथम रोगांके देहपर तैल की मालिश करलेवै । वस्तिके प्रत्यागमन होनेपर स्नान करके दूध अथवा जांगल पशुओंके मांसरस के साथ भोजन करावै।इस वस्ति से पित्तातिसार, ज्वर, शोथ, गुल्म, अजीर्ण, अतिसार ग्रहणीदोष, तथा विरेचन जन्य और आस्थापन जन्यरोग शीघ्रही शान्त होजाते हैं ।

रक्तातिसारकावर्णन ।

पिचातिसारीयस्त्वेतांक्रियांमुक्त्वानिपेव ते।पिचलान्यन्नपानानितस्य पिचमहाधलम् । कुर्याद्रक्तातिसारन्तुरक्तमाशुमदूपयेत् ॥ तृष्णांशूलंविदाहञ्चगुदपाकञ्च दारुणम् । छागंतल्पयःशस्तंशीतंसमधुशर्करम् ॥ पानार्थेव्यञ्जनार्थेचगुदमक्षालनं तथा । भोजनंरक्तशालीनांपयसातेनभोजयेत् ॥

अर्थ—पिचातिसारी मनुष्यं इन ऊपर फहीहुइ क्रियाओंको छाड़कर पित्तकी अ-

ल्कस्तिलानांकृष्णानांशर्करापाञ्चमाग्निकः
आजेनपयसापीतःसद्योरक्तंनियच्छति ॥
पल्वत्सकवीजस्यश्रपयित्वारसंपिबेत् ।
योरसाशीजयेच्छीघ्रसंपैतंजठराभयम् । पी-
त्वासशर्कराक्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्भसा ।
दाहवृष्णाप्रमेहेभ्योरक्तसावाद्विमुच्यते ॥

अर्थ.... दाहहल्दीकी छाल, इन्द्रजौ, पीपल
अंदाख, दाख और कुटकी इन छः औष-
धियोंसे सिद्ध कियाहुआ घी तथा ऊपरसे पेया
और मण्डका अनुपान करे तो त्रिदोषजनित
दाहण अतीसारभी दूर होजाताहै ।

कालीमिठी, शंख की भस्म, कुकुम और
तण्डुलजल इनसबको शहतमें मिलाकर सेवन
करे तो रक्त बन्द होजाताहै, प्रियगुका कल्क,
शहत, और तण्डुल जल इनको सेवन करने
से रक्त बन्द होजाताहै, इसके साथही जां-
गल पशुओंके मांस रसका भी सेवन करता
रहे ॥ एकभाग चीनी और पांचभाग काले
तिल इन सबको बकरी के दूधके साथ पान
करे तो शीघ्रही रक्तातिसार दूर होजाताहै ।
इन्द्रजौ एकपल के काथ को पीकर मांसरस
का सेवन करे तो पित्तजनित उदररोग शीघ्र
ही नष्ट होजाताहै ॥ रक्तचन्दन, तण्डुलजल,
शहत, शर्करा, इनको मिलाकर पीनेसे दाह,
तृष्णा, प्रमेह और रक्तातिसार दूर होजातेहैं।

गुदपाककीचिकित्सा

गुदावद्भिस्त्यानैर्यस्यपित्तेनपच्यते ।
सेचयेच्चंशुशीतेनपटोलमधुकाम्पुना ॥ पं-
चवल्कमधुकानारसैरिक्षुरसैर्धृतः । छागै-
र्गन्धःपयोभिर्वाशर्करासांद्रसंयुतः ॥ मसा

लनानांकल्कैर्वाससर्पिकैःमलेपयेत् ।
एपांवासुकृतैश्चूर्णैस्तंगुदंप्रतिसारयेत् ॥
घातकीरोधचूर्णैर्वासमांशैःप्रतिसारयेत् ।
तथातत्रस्रवत्यसंगुदस्तैःप्रतिसारितम् ॥
यथोक्तसेचनैःशीतैःशोणितेनिःस्रवत्यपि ।
गुदवंक्षणकट्यूरुसेचयेद्घृतभाबितम् ॥
चन्दनाद्येनतैलेनशतधातेनसर्पिणा । का-
र्पाससहयोगेनसेचयेद्गुदवंक्षणौ ॥

अर्थ—जिस पित्तातिसारी मनुष्यकी गुदा
बहुत दस्तोंके होनेसे पकजातीहै उसकी गुदाको
परवल और मुलहटीके शीतल काथसे प्रक्षा-
लन करे । अथवा पंचवल्क और महुआंके
काथसे, अथवा ईखके रस और घी से अ-
थवा शहत और चीनी मिलेहुए गौ बकराके
दूधसे गुदा को प्रक्षालनकरे, अथवा इन प्र-
क्षालनकर्त्ता द्रव्योंके कल्कको घीमें सानकर
गुदापर लेपकरे । अथवा इन द्रव्योंका चूर्ण
करके गुदापर प्रतिसारण करे अथवा धायके
फूल और लोथ समान भाग लेकर इनसे
प्रतिसारण करे । इन द्रव्योंसे प्रतिसारित
किये जानेपर गुदासे रक्तस्राव होताहै । रक्त
के निकलने पर गुदा, वंक्षण, कमर और
ऊरु इन पर घृत लगाकर पूर्वोक्त शीतल
काथोंसे सेचन करे । अथवा चन्दनाद्य तैल
वा सौवार के धुलेहुए घी को कपासके जल
में डालकर गुदा और वंक्षणको सेचनकरे ।
अल्पाल्पबहुशोरक्तंसशूलमुपवेश्यते ।
यदावायुर्विबद्धश्चक्षुश्चरन्तिवानवा ॥
पिच्छावस्तिंतदातस्ययथोक्तमुपकल्पयेत्
प्रपुण्डरीकसिद्धेनसर्पिणाचानुवासयेत् ।

प्रायशोर्दुर्बलगुदाःचिरकालातिसारिणः।
तस्माद्भीक्षणशस्तेपांगुदस्नेहप्रयोजयेत् ॥
पवनोऽतिप्रवृत्तोहिस्वेस्थानेऽधिकम्
बलंतस्यसपित्तस्यजयार्थेवस्तिरुत्तमः ॥

अर्थ—जब बारबार थोडा थोडा रक्त शूल
समेत निकले और वायु रुककर कोष्ठमें क-
ठिनतासे विचरै अथवा न विचरै तौ उस समय
पूर्वोक्त रीतिसे पिच्छावस्तिका प्रयोगकरै तथा
पुण्डरिया डालकर सिद्धकियेहुए घृतसे अनु-
वासनवस्ति देवै ।

बहुत दिवस तक अतिसार रहनेसे गुदा
प्रायः दुर्बल पड़जातीहै इसलिये उन मनुष्यों
की गुदा पर जेह लगाना चाहिये ।

अतिसार की अत्यन्त प्रवृत्तिमें वायु अपने
स्थानमें अत्यन्त कुपित होकर पित्त से मि-
लजातीहै अतएव यातपित्तके मिलेहुए बलकी
शान्तिके निमित्त वस्तिक्रिया उत्तम होतीहै ।

रक्तमिश्रित मलमें चिकित्सा ।

रक्तविद्रसहितपूर्वपश्चाद्वायोऽतिसार्यते ।
शतावरीघृतंतस्यलेहार्थंमुपकरयेत् ॥ श-
र्करार्द्धाशिकलीद्रवानवनीतनबोद्धृतम् ॥
सौद्रपादंजयेच्छीघ्रंतविकारंहितशिनः ।
न्यमोर्धोदुम्बराश्वत्थशुक्रानापोध्यवास
येत् ॥ अहोरात्रंजलेतप्तेघृतंतेनाम्भसाप-
चेत् । तदर्द्धशर्करायुक्तलिङ्गात्ससौद्रपा-
दिकम् ॥ अधोवायदिवाप्यूर्ध्वस्यरक्तं
प्रवर्त्तते । यस्त्वेवंदुर्बलोमोहात्पित्तला-
न्येवसेवते ॥ शीघ्रंविपद्यतेप्राप्यबलीपा-
कंसुदारुणम् ॥

अर्थ—जिसके प्रथमही दस्तके साथ रु-

धिर निकले और फिर अधोवायुकी प्रवृत्ति के
साथ पतला दस्तहो उसको सितार का
सिद्ध कियाहुआ घृत चटावै अथवा ताजी
माखन घी, उससे आधी चीनी और चौ-
थाई शहत मिलाकर सेवन करनेसे वह रोग
शान्त होजाताहै परन्तु हित आहार का से-
वन करै ॥

बड़, गुलर और पीपल इनकी काँपलों
को लेकर कूटकर गरम जलमें एक दिन
रात भिजो रक्खे, उस जलसे घृत पाक
करै इसमें आधी चीनी और चौथाई शहत
मिलाकर चाटे ।

जिस मनुष्यके दस्त अथवा वमन द्वारा
रुधिर निकले और वह दुर्बल यदि मोहसे
पित्तकर्त्ता द्रव्योंका सेवन करै तौ उस के
दारुण वर्जापाक होजाताहै और वह शीघ्र
ही मरजाता है ।

कफातिसारकी चिकित्सा ।

श्लेष्मातिसारेप्रथमंहितंलघनपाचनम् ॥
योज्यश्चामातिसारघ्नोयथोक्तोदीपनोऽग-
णः । लंघितस्यानुपूर्व्याश्चकृतायान्ननि-
वर्त्तते ॥ कफजोपद्यतीसारःकफघ्नैस्त
मुपाचरेत् ।

अर्थ—कफातिसारमें प्रथमही लघन और
पाचन हितहै तथा इसमें पहिले कहाहुआ
आमातिसारनाशक दीपनीय गणका प्रयोग
करना चाहिये । लघन कराने और तत्प-
श्चात् पेयादि अनुपूर्वी क्रम के करनेपर भी
यदि कफातिसार शान्त नहो तौ कफनाशक
औपधियों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥

कफातिसारपर चारयोग ।

विल्वककटिकापुरतमभयाविश्वभेषजम् ॥
वचाविडङ्गभूतीकंधान्यकंदेवदारुच ॥ कु
पुंसातिविपापाठाचव्यंकटुकरोहिणी ॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पली
योगान्श्लोकार्द्विविहितांश्चतुरस्तान्प्रयो
जयेत् ॥ शृतान्श्लेष्मातिसारेणुकायाग्नि
बलवर्द्धनान् ।

अर्थ—बेलगिरी, काकडासोंगी, मोथा,
हरड, सोंठ, (२) वच, बायविडंग, भज-
वायन, धनियां और देवदारु, (३) कूठ-
अतीस, पाठा, चव्य कुटकी, (४) पीपल,
पीपलामूल, चीता, गजपीपल । इन आधे
आधे श्लोकमें कहे हुए चारों प्रयोगों का
काथ पान करनेसे कफातिसार दूर होजाता
है तथा कायाग्नि और बल बढ़ताहै ।

अजार्जाससितांपाठानागरंमरिचानिचा
धातकी द्विगुणं दद्यात्पातुं लुगंरसाप्लुतम्
रसाञ्जनंसातिविपंकुटजस्यफलानिच ॥
धातकीद्विगुणं दद्यात्पातुं सक्षीदनागरम्

अर्थ—जीरा, मिश्री, पाठा, सोंठ काली
मिरच इन सबसे दूने धायके फूल का
चूर्ण बनाकर विजौरेके रसमें घोटकर देवे अ-
थवा रसौत, अतीस, इन्द्रजौ, इनसे दूने
धायके फूल शहत और सोंठ में मिला-
कर सेवन करे ।

धातकीनागरं विल्वं लोघ्रंपद्मस्यकेशरम् ।
जम्बूत्वक्कनागरंधान्यंपाठायोचरसंबला-
समन्नाधातकीविल्वमध्यंजम्बवाघमोस्तत्र
चा । कपित्थानिविडङ्गानिनागरंमरिचा

निच ॥ चाङ्गेरीफालतकाम्लान्श्चतुरस्तान्
कफातुरे । श्लोकार्द्विविहितान्दद्यात्स
स्नेहलवणान्खडान् ।

अर्थ—[१] धायके फूल, सोंठ, बेल-
गिरी, लोघ, नागकेशर, [२] जामनकी
छाल, सोंठ, धनियां, पाठा, मोचरस, खैरटी
[३] लज्जालु, धायके फूल, बेलगिरी,
जामनकी छाल, आमकी छाल, [४] केश
वायविडंग, सोंठ काली मिरच, । इनआधे
आधे श्लोकमें कहेहुए चार प्रयोगों को
चांगेरी, बेर और मठामकी खटाई देकर तथा
स्नेह लवण डाडकर खडपूय बनाकर कफ-
रोगमें सेवन करे ।

कपित्थमध्यंलीद्व्यातुसव्योपक्षौद्रशर्कर
म् ॥ कटफलंमधुयुक्तंवामुच्यतेजठराम-
यात् ।

अर्थ—कैथकीगिरी, त्रिकुटा, शहत औ
शर्कराको चाटनेसे अथवा कायकलमें शहत
मिलाकर चाटने से उदररोग दूर होजाते हैं
कणामधुयुतांपीत्वातकंचीत्यासचित्रकं।
जग्ध्यावावालविल्वानिमुच्यतेजठराम-
यात् ॥

अर्थ—शहत और पीपल चाटने से अ-
थवा मठामें चीता डाडकर पीनेसे अथवा
कच्ची बेलगिरी खानेसे उदररोग दूर होजातेहैं
वालविल्वंमुडंतैलंपिप्पलीं विश्वभेषजम् ।
लिखाद्वातेमतिहतेसशूलः समवाहिकः ॥
भोज्यमूलकपायेणवातघ्नेशोपसेवनैः ।
वातातिसारविदितैर्यूपैर्मांसरसैः खटैः ॥
पूर्वोक्तमम्लसर्पिर्भापद्रूपलंबापाथालम् ।

पैर्विविधैःस्निग्धैर्नित्यं कुमुदसम्पदैः ॥ वम
द्रिर्मथुरान्गन्धान्सर्वतः स्वभ्यलंकृते।विह
रन्तंजितात्मानमात्रेयमृषिवन्दितमांमहर्षि
भिःपरिवृतविभुंभूतहितैरतम् । अग्निवेशो
गुल्फालेविनयादिद्रुक्तवान् । भगवन् !
दारुणरोगमाशीचिपविषोपममृषिविसर्पन्तं
शरीरेपुद्गेहिनामुपलक्षये ॥ सहस्रवनरा
स्तेनपरीताःशीघ्रकारिणः । विनश्यन्त्य
नुपक्रान्तास्तत्रनःसशयामहानासनाम्नाके
नविज्ञेयःसंज्ञितःकेनहेतुना । कतिभेदः
कियद्दातुंकिनिदानःकिमाश्रयः ॥सुख
साध्यःकृच्छ्रसाध्योक्षेपोयश्चानुपक्रमः ।
कथंकैलक्षणैःकिञ्च भगवंस्तस्यभेषजम् ॥

अर्थ—एक समय कैलाश पर्वतपर जहां
बहुतसे किन्नर निवास करतेहैं जहां अनेक
झरने, अनेक प्रकार की औषधी और अने-
क प्रकारके वृक्ष सदैव फलफूलसे लदे रहते
हैं इन पुष्पोंमें से अनेक प्रकारकी सुगन्ध
चली आतीधी, ऋषिगणपूज्य जितेंद्रिय आ-
त्रेय ऋषि विचार रहेये, बहुतसे ऋषि, सु-
नि, उनके साथ थे और प्राणियोंके हितमें
दत्ताक्षित थे । इस समय को उचित सम-
झकर अग्निवेशने अत्यन्त मृदुभाव से पूछा
कि हे भगवन् ! एक भयंकर रोगप्राणियों
के शरीरमें फैलताहुआ देखने में आता है
यह रोग सर्पके विषसे भी तीक्ष्णहै । इस
रोगमें मनुष्य प्रसन्न होकर शीघ्रही नष्ट हो-
जातेहैं उनकी चिकित्साका समय भी हाथ
नहीं लगता । इसका हमको क्या संशयहै ।
इस रोग का नाम क्याहै ? इस नाम पडने

का कारण क्याहै ? इस के कितने भेदहैं ?
कौनसी धातुहै ? हेतु क्याहै ? आश्रय क्या
है ! यह सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य या असाध्य
है ? इसके लक्षण क्या हैं ? और औषधी क्या हैं ?
तदग्निवेशस्यवचःश्रुत्वात्रेयःसुदुर्वचम् ।
यथावदखिलं सर्वमोवाचमुनिसत्तमः ॥
अर्थ—अग्निवेश के इस प्रश्नको सुनकर
र मुनिसत्तम आत्रेय इस सम्पूर्ण महाकठिन
त्रिययका पूर्ण रीतसे वर्णन करने लगे ।

विसर्प की निरुक्ति ।

विविधंसर्पतियतोतिसर्पस्तेनसस्मृतः ॥
परिसर्पोऽथवानाम्नासर्वतःपरिसर्पणात् ॥

अर्थ....यह रोग शरीरमें अनेक प्रकारसे
फैलता है अतएव विसर्प कहलाता है । अ-
थवा चारोंओर परिसर्पण करनेसे परिसर्प
भी कहलाता है ॥

विसर्प के भेद ।

सचसप्तविधोदोषैर्विज्ञेयःसप्तधातुकः ।
पृथक्प्रयत्तिभिधैकोविसर्पाद्विन्द्रजास्त्रयः ॥
वातिकःपैत्तिकश्चैवकफजःसाभिपातिकः ।
चत्वारपृतेवीसर्पावीक्ष्यन्तेद्विन्द्रजास्त्रयः ॥
आग्नेयोवातपित्ताभ्यांघ्न्याख्यं कफवा-
तजः । यस्तु कर्दमकोघोःसपित्तकफस-
म्भवः ॥

अर्थ ...दोषोंके अनुसार विसर्प सात प्र-
कारका होता है, यह स्पन्दलताओंका आ-
श्रयभूत है । पृथक्हतेसशूलः स्तोत्रोंसे ती-

भाज्यमूलकपायेणवातघ्नोदोषोसे एक
प्रकार का, दो-द्विहितैर्युग्मैर्जन्ने-से तीन
प्रकार का । इसतरह सब मिलकर सात प्र-

विपरीत द्रव्योंके सेवन से दूर होता है । यह सब वातजविसर्प का वर्णन है ।

पित्तविसर्पकेलक्षणादि ।

पित्तमुष्णोपचारादिविद्राहम्लाशनैश्चित्तम् । दूष्यंसदूष्यमार्गोश्चपूरयन्वैविसर्पति ॥ तस्यरूपाणिज्वरस्तृष्णामूर्च्छा मोहच्छर्दिरोचकोऽङ्गभेदः स्वेदोऽतिमा भ्रमन्तर्दाहः प्रलापः शिरोरूक्चक्षुषोराकुलत्वमरतिभ्रमः शीतवातचारितर्षोऽतिमात्रहरितनेत्रमूत्रवर्चस्त्वन्तेपांहरितहारिद्ररूपदर्शनयस्मिश्चावकाशेविसर्पोऽनुसर्पतिसोऽवकाशस्ताम्रहारितहारिद्रनीलकृष्णरक्तानां वर्णानामन्यतमंपुष्यति । सोत्सेधैश्चातिमात्रंदाहसस्वेदनपरीतैः स्फोटकैरुपचीयतेतुल्यवर्णास्त्रावैरचिरपाकैर्निदानोक्तानिनोपशेरतेविपरीतानिचोपशेरतइतिपित्तविसर्पः ॥

अर्थ—उष्णक्रियाके अवलम्बनसे तथा विद्राही और खट्टे पदार्थों के सेवनसे संचित हुआ पित्त दूष्य धातुओं को दूषित करके स्रोतोंके मार्गोंको रोकदेताहै । तब पित्तजनित विसर्प फैलने लगता है । इस विसर्पके रूप ये हैं यथा—ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, मोह, चमन अरुचि, अंगभेद, स्वेद, अत्यन्त अन्तर्दाह, प्रलाप, शिरोभेदना, नेत्रों में धिकलता, अरति, भ्रम, शीतलवायु और शीतलजल की अत्यन्त तृष्णा, नेत्र, मूत्र, विष्टाका हरावर्ण, नेत्रोंसे प्रलेक वस्तुका हरा वा हल्दीके समान दीखना । जिस स्थानमें विसर्प फैलताहो उसका ताव्रवर्ण, हरा,

(१०६)

हल्दीके समान, नीलवर्ण, रक्तवर्ण इनमें से किसी एक रंगका होजाताहै । यह विसर्प अत्यन्त ऊंचा तथा दाह और स्वेदयुक्त फोड़ोंसे आच्छादित होताहै, इन फोड़ों में से इनकेही रंगके सद्यः स्राव होताहै और ये फोड़े थोड़ेही कालमें पकभी जातेहैं । निदानोक्त द्रव्योंके सेवन से ये बढ़तेहैं और उन से विपरीत द्रव्योंके सेवन से घटते हैं । ये सब पित्तज विसर्प का वर्णन है ।

कफ विसर्पकेलक्षणादि ।

स्वादम्ललवणस्निग्धगुर्वन्नस्वप्नसंचितः कफःसदूषयन्दूष्यंकृच्छ्रमङ्गेविसर्पति ॥ तस्यरूपाणि शीतकःशीतकज्वरोगौरवंनिद्रातन्द्रारोचकोमधुरास्पत्वमास्योपलेपोनिष्ठीविकाछर्दिंरालस्यस्तैमित्यमग्निनाशोदावैल्यंयस्मिश्चावकाशेविसर्पति सोऽवकाशःश्वयथुमान्पाण्डुमान्नातिरक्तस्नेहःसुप्तिस्तम्भगौरवैरन्वितोऽल्पवेदनः कृच्छ्रपाकैःचिरकारिभिःबहुलत्वगुपलेपैः स्फोटैः श्वेतपाण्डुभिरनुबध्यतेमभिन्नस्तु श्वेतपिच्छिलतन्तुमज्जनमनुषर्द्धस्निग्धमास्त्रावस्रवत्पूरुर्ध्वचगुरुभिःस्निग्धैर्जलावततैः स्निग्धैर्बहुलत्वगुपलेपैर्व्रणैरनुबध्यतेऽनुसङ्गीश्वेतनखनपनवदनत्वङ्मूत्रवर्चस्तानिनिदानोक्तानि नोपशेरतेविपरीतानिचोपशेरतइतिश्लेष्मवीसर्पः ॥

अर्थ—मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध और भारी अन्न और अधिक निद्रा इनके सेवन करनेसे संचित हुआ कफ दूष्य धातुओं को दूषित करके कृच्छ्रसाध्य विसर्पको उत्पन्न

करताहै। इसके रूप ये हैं यथा—शीत, शीतज्वर, भारापन, निद्रा, तन्द्रा, अरुचि मुखमें मीठापन, मुखमें ल्हिसाघट, मुंहका भरना, वमन, आलस्य, स्तिमिता, अग्निनाश और दुर्बलता, जिस स्थानमें यह विसर्प फैलताहै वह स्थान सूजन, पाण्डुता, अतिस्राव, अतिस्नेह, सुप्ति, स्तम्भता, भारापन, और अल्पवेदनां इनसे युक्त होता है इसमें कठिनतासे तथा देरमें पकनेवाले घट्ट लवगुपलेपी स्वेत वा पाण्डुवर्ण के फोड़े हो जाते हैं इन फोड़ोंके फूटनेपर सफेद गिलगिला तन्तुयुक्त, गाढा, लगातार तथा क्षिग्धस्त्राव होता रहताहै। इसका ऊपरला भाग मारी, क्षिग्ध, जलयुक्त, स्निग्धगाढे, त्वगुपलेपी वर्णोंसे आच्छादित होजाता है। अनुपंगी नख, नेत्र, वदन, त्वचा, मूत्र, विष्टाका वर्ण सफेद होजाताहै। यह रोग निदानोक्त द्रव्योंके सेवनसे बढ़ताहै और तद्विपरीत द्रव्योंके सेवन से घटताहै। यह कफजविसर्प का वर्णन है।

घातपित्तजविसर्पके लक्षणानि ।

घातपित्तमकुपितमतिमात्रंस्वेदुभिः । प-
रस्परलब्धबलदहद्ग्राहं विसर्पति ॥ त-
दुपतापादातुरः सर्वशरीरमंगारैरिचाकी-
र्यमाणंमन्यते । छर्द्यतीसारमूर्च्छादाह
मोहज्वरतमकारोचकास्थिसन्धिभेदत्-
प्याविपाकागभेदादिभिश्चाभिभूयते ।
यंयंचावकाशं विसर्पोऽनुसर्पति सोऽवका-
शःशान्तांगारभकाशोऽतिरिक्तोवाभव-
र्याग्निदग्धमकारैश्चस्फोटैरुपचीयतेस-

शीघ्रंगत्वादाश्वेचमर्मानुसारीभवतिमर्मा-
णिचोपतप्तपवनोऽतिबलोभिनत्यंगान्य-
तिपात्रंमोहयतिंसङ्गाहिकाश्वासौजन-
यतिनाशयतिनिद्रां । सनष्टनिद्रःप्रमूढसं-
ज्ञोन्ययितचेतानरुचिद्वचनमुखमुपलभं
अरतिपरीतः स्थानादासनातृशय्याका-
न्तुमिच्छतिक्लिष्टभूयिष्ठश्चाशुनिद्रांभज-
त्यवलोदुखमबोधश्चतमेवंविधमग्निर्वा-
सर्पपरीतमचिकित्स्यंविद्यात् ॥

अर्थ—अपने २ हेतुओं से अत्यन्त कु-
पितहुए घात पित्त एक दूसरे के संगसे अ-
त्यन्त बलवान् होकर शरीरको दग्ध करते
हुये विसर्पको उत्पन्न करते हैं। इन कफ
घातके उपतापसे रोगीको अपना सब श-
रीर जलतेहुए अंगारोंके सदृश मादृम होनि
लगताहै। वमन, अतीसार, मूर्च्छा, दाह
मोह, ज्वर, तमक, अरुचि, अस्थिभेद, सन्धि
भेद, तुष्णा, अविपाक, अंगभेद आदि उपद्रव उ-
त्पन्न होते हैं। शरीरके जिस २ विभाग में
विसर्प फैलता है। उस २ स्थान में युष्ठा-
ए हुए अंगारों के सदृश कृष्णवर्ण, तथा
उस से भी अधिक फाटापन होता है।
इसमें आग से जलेहुए कफोले के सदृश
फोड़े होजाते हैं यह अत्यन्त शीघ्र गामी
होनेसे मर्मांसे गमन करताहै मर्मांसे वायु
को उत्तप्तता से अत्यन्त वेग से अंगों का
भेदन और चैतन्यता का नाश होता है।
हिचकी और श्वास, उत्पन्न होतेहैं, निद्रा
का नाश होताहै, रोगी इस तरह निद्राना-
श, और संज्ञानाश, और व्यथितचित्ताहै

किसी तरह मुख प्राप्त नहीं करता है । अत्यन्त दुःख के कारण वह स्थान, आसन वा शय्या पर आढा तिरछा होना चाहता है इसतरह अत्यन्त क्लिष्ट होकर शीघ्र सोजाता है, यह रोगी अत्यन्त दुर्बलता के कारण जगाने से भी नहीं जगता है । इस अग्निविसर्प का रोगी दुश्चिकित्स्य होता है ॥

कफपित्तज्विसर्पकैलक्षणानि ॥

कफपित्तप्रकुपित्वलवत्स्वेनहेतुना ।
विसर्पत्येकदेशंतुप्रक्लेदयतिदेहिनः ॥
तद्विकाराःशीतज्वरःशिरोयुरुत्वंदाहःस्तै-
मित्यमंगावसादनानेदातन्द्रामोहोऽन्धद्वेषः
प्रलापोऽग्निनाशोदौर्बल्यमस्थिभेदोमूर्च्छा
पिपासास्रोतसाम्लेषोजाड्यमिन्द्रियाणां
आमोपवेशनमंगविषेषोऽमर्दोऽरतिरौ-
त्सुक्यंचोपजायतेप्रायश्चामाशयेविसर्प-
त्पलसकफदेशग्राहीयस्मिन्धावकाशोवि-
सर्पतिसोऽवकाशोरक्तपीतपाण्डुषिडका-
पकीणइवमेचकाभःकालोमलिनःस्निग्धो
बहूप्मागुरुस्तिमितवेदनःश्वयधुमान्गम्भी-
रपाकःनिरास्रावःशीघ्रक्लेदःस्विन्नविल-
न्नपूतिमांसत्वक्क्रमेणाल्परुक्परमृष्टोऽव-
दीर्यते । कर्दमइवापीडितोऽन्तरप्रय-
च्छन्त्युपाकिलन्नपूतमांसत्यागीशिरास्ना-
युसंदशीकुणपगन्धीसंज्ञास्पृतिहर्चातर्कद-
मवीसर्पपरतिमचिकित्स्यविद्यात् ।

अर्थ....अपने अपने हेतुओंसे कफपित्त प्रकुपित होकर तथा एक दूसरेकी सहायता से अत्यन्त बलिष्ठ होकर देह को क्लेदित करके शरीरके एक भाग में विचरता है । उस

के विकार ये हैं यथा-शीत ज्वर, सिरका मो-
रपन, दाह, स्तिमिता, अंगगलानि, निद्रा,
तन्द्रा, मोह, अन्नमें द्वेष, प्रलाप अग्निनाश,
दुर्बलता, अस्थिभेद, मूर्च्छा, तृषा, स्रोतःस-
गृहमें स्थिसावट, इन्द्रियोंमें जडता, आमका
निकलना, हाथ पांवका पटकना, अंगमर्द,
अरति, उत्सुकता ये उपद्रव होते हैं । यह
प्रायः आमामाशयमें उत्पन्न होकर शरीरके किसी
एक भागमें फैलता चला जाता है । जिस
स्थान में यह फैलता है उस स्थानमें लाल पीले
तथा पाण्डु वर्ण के फोड़े होजाते हैं । तथा
सुरमाके सदृश काला, मलीन, क्षिण्य अत्यन्त
गरम, भारी, स्तिमित, वेदनायुक्त सूजनयुक्त,
गंभीरपाकी, निरुप्रायी और शीघ्रक्रेदी होता
है । उस स्थानका मांस स्थिन्न, क्लिन्न और
सडा हुआ सा होजाता है । इसमें घोडा २
दर्द होता है और हाथसे रगडने पर फट-
जाता है । अधिक रगडने पर इसमें कीचकी
तरह उंगली गठजाती है । धीरे धीरे इसमें
से सडा हुआ दुर्गन्धित मांस निकलने ल-
गता है और भीतर की नस, स्नायु आदि
दिखाई देने लगती हैं, इसमें मुर्देकी सी गंध
आने लगती है, इससे संज्ञा और स्मरण शक्ति
का नाश होजाता है ॥ यह कर्दमवीसर्प का
हलाता है, यह रोग असाध्य होता है ॥

ग्रन्थिविसर्पकैलक्षणानि ॥

स्थिरगुरुकठिनमधुरशीतस्निग्धान्नपाना-
भिष्यन्दिसेविनामन्यायामासेविनामम-
तिकर्मशालिनां प्लेप्यावायुश्चमकोपमा-
पद्यतेतावुमौदुष्टप्रवद्धौ अतिबलामदप्यद्

प्यविसर्पायकल्पते । तत्रवायुःश्लेष्माणा
विवद्वमार्गस्तमेवश्लेष्माणमनेकधाभिन्द
नृक्रमेणग्रन्थिमालांकृच्छ्रापाकसाध्यांक
फाशयेसंजनयत्युत्सन्नरक्तस्यवाग्दूप्यर
क्तसिरास्नायुमांसत्वगाश्रितग्रन्थिवीस-
र्पकुरुतेतीव्ररुजाग्रन्थीनांस्थूलानामप्यु
नादीर्घवृत्तरक्तानांतदुपतापाज्वरराती
सारकासदिकाश्वासशोषप्रमेहवैचर्ण्यारो
चकाविपाकच्छर्दिमूर्च्छागिभंगानिद्रारति
संसदनाथाःप्रादुर्भवंत्युपद्रवास्तेरुपद्रवै
रुपद्रुतःसर्वकर्मणांविषयमातिपातितोवि
वर्जनीयोभवतीतिग्रन्थिवीसर्पः ॥

अर्थ—स्थिर, भारी, कठोर, मधुर, शी-
तल और सिग्ध, अन्नपान के सेवनसे अ-
भिषण्दी द्रव्योंके सेवनसे, शारीरिक परि-
श्रम न करनेसे, संचित दोषोंको वमन वि-
रेचनादि द्वारा दूर न करनेसे कफ और
वायु प्रकुपित होजाते हैं, ये दोनों दूषित
होकर वृद्धि पाकर अत्यन्त बलवान् होजाते
हैं तब रक्तादि दूष्य भागों को दूषित
करके विसर्पारोग को उत्पन्न करते हैं । उ-
त्सन्नमय वायु का मार्ग कफके द्वारा रुक जा-
ने पर यह वायु उसी कफके अनेक भाग
करदेती है और कफाशय में कृच्छ्रापाक और
कृच्छ्रापाय ग्रन्थिमाला को उत्पन्न करदेती है
अथवा कफ और वायु ये दोनों ही उत्सन्न
रक्तवाले मनुष्य के रक्तको दूषित करके सि,
रा, स्नायु, मांस और त्वचामें गांठदार वि-
सर्पको उत्पन्न करते हैं । इन गांठोंमें बड़ी
सीन वेदना होती है, ये गांठें मोटी, छोटी,

दीर्घ, गोल होती है, इनमें उपताप होनेसे
ज्वर, अतीसार, खांसी, हिचकी, स्वास, शो-
ष, प्रमेह, विवर्णता, अरुचि, अविपाक, व-
मन मूर्च्छा, अंगमंग, निद्रा, अरति, ग्लानि
आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं, उन उपद्रवोंसे
अभिभूत होकर रोगी सम्पूर्ण कर्मोंके करने
के अयोग्य होजाता है, इस कारणसे ग्रन्थि-
वीसर्पकी चिकित्सा करना वर्जनीय है ।

रोग और उपद्रव में अन्तर ।

उपद्रवस्तुखलुरोगान्तरकालजोरागाश्र
योरोगएवस्थूलोऽणुर्वारोगात्पद्माज्जा
यतेत्युपद्रवसंज्ञः ॥ तत्रप्रधानोव्याधि-
व्याधिर्गुणीभूतउपद्रवस्तस्यप्रायःप्रधान-
प्रशभप्रशमोभवति । सत्तुपीडाकरत्तरोभ-
वाति । पश्चादुत्पद्यमानोव्याधिःपरिविलं
ष्टशरीरत्वात्तस्मादुपद्रवत्वरमाणोऽभिवा
धते ॥

अर्थ—उपद्रव रोग के उत्पन्न होने से
पीछे उसी रोगका आश्रय लेकर उत्पन्न होता
है । यह रोग स्थूल वा सूक्ष्मरूप में रोग
से पीछे उत्पन्न होता है इसीसे इसे उपद्रव
कहते हैं । यहाँ पहली व्याधि प्रधान होती
है और उपद्रव व्याधि का गुणीभूत होता
है अर्थात् व्याधिके अनुसार ही उपद्रव में
गुण होते हैं । इस उपद्रव की शान्ति प्रधा-
न रोग की शान्ति के साथ होजाती है ।
शरीर में अत्यन्त क्लेश होने से यह व्याधि
पीछे उत्पन्न होती है, परन्तु प्रधान व्याधिसे
भी अधिक क्लेशकारक होती है अतएव अत्यन्त
शीघ्रता से उपद्रवोंके शान्ति का उपायकरे ।

साक्षिपातिकाविसर्प ।

सर्वायतनसमुत्थं सर्वाल्लिङ्गव्यापिनं सर्वधा
त्वनुसारिणमाशुकारिणं महात्पथिकमिति
सन्निपातवीसर्पमाचिकित्स्यविद्यात् ।

अर्थ—सम्पूर्ण कारणों से उत्पन्न हुआ स
म्पूर्ण लक्षणों से युक्त, सम्पूर्ण धातुओं का
अनुसरणकर्ता, शीघ्रकारी, महाउपद्रवों का
करनेवाला सन्निपातिक विसर्प दुश्चिकित्स्य
होता है ॥

विसर्पोंका साध्यासाध्यवर्णन ।

तत्र वातापि च श्लेष्मनिमित्ताविसर्पास्त्रयः
साध्याभवन्त्याग्निर्दमाख्यौ पुनरनुपष्ट
ष्टमर्मणि अनुपहतवासिरास्तायुमांसवले
देसावधारणाक्रियाभिरुपायैः तावेवाभ्य
स्यमानौ प्रशान्तिमापद्येयातामनादरोप
क्रान्तपुनस्तयोरन्यतरोहन्याद्देहमाश्वेवा
शीविपवत् । तथा ग्रन्थिवीसर्पमज्जातो
पद्रवमारभेताचिकित्सितुमुपद्रवोपद्रुतन्वे
नपरिहरेत् । सन्निपातजसर्वधात्वनुसारि
त्वादाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वाच्चासा
ध्यविद्यात् । तत्र साध्यानां साधनमनु
व्याख्यास्यामः ॥

अर्थ -- इन सब विसर्पों में से वातज, पित्त
ज और कफज ये तीन विसर्प साध्य होते हैं,
अग्नि विसर्प और कर्दम विसर्प मर्मस्थान से
बिना मिले होने पर और सिरा स्नायु, मांस
और क्लेद के अनुपहत होने पर साधारण
क्रियाओं के द्वारा चिकित्सा किये जाने पर
शान्त होजाते हैं, तथा प्रयत्नपूर्वक चिकित्सा
न किये जाने पर आशीविपकी तरह देह को

शीघ्रही नष्टकर देते हैं । ग्रन्थिवीसर्प की चि
कित्सा करने का प्रारम्भ उस समय करे
जो उस में उपद्रव उत्पन्न न हुए हों । उप
द्रवोंके उत्पन्न होनेपर चिकित्सा करना छोड़
देवे सन्निपातज विसर्प भी असाध्य होता है
क्योंकि वह सर्वधात्वानुसारी, आशुकारी हो
ता है और इसकी चिकित्सा भी विरुद्ध उ
पायों से करनी पड़ती है ॥ अब हम साध्य
वीसर्पों की चिकित्साका वर्णन करेंगे ।

विसर्प की साधारण चिकित्सा ।

लंघनोल्लेखनेशस्तोत्तक्तकानांचसेवनम् ।
कफस्थानगतेसामेरुक्षशीतैः प्रलेपयेत् ॥
पित्तस्थानगतेऽप्येतत्सामेकुर्याच्चिकित्सि
तम् । शोणितस्यावसेकञ्चाविरेकंच
विशेषतः ॥ मारुताशयसम्भूतेऽप्यादि
तः स्याद्विरुक्षणम् । रक्तपित्तान्वयेऽप्या
दौस्नेहननहितमतम् ॥ वातोत्त्वणोत्तक्तृ
तपैत्तिकेचमशस्यते । लघुदोषे महादोषेप
त्तिकेस्याद्विरेचनम् ॥ नष्टतंबहुदोषायदे
यंयन्नविरेचयेत् । तेनदोषोद्भयुपस्तब्धः
त्वह्मांसरुधिरं चेत ॥ तस्माद्विरेकमेवा
दौशस्तंविद्याद्विसर्पिणः । रुधिरस्याव
सेकंचतद्भ्रूयस्याश्रयसंज्ञितम् ॥ इति वीस
र्पनुत्प्राक्तं समासेन चिकित्सितम् । एतदे
वपुनः सर्वव्यासतः संमचस्यते ॥

अर्थ—आमयुक्त दोषके कफस्थानमें जाने
पर लंघन, वमन और तिक्त द्रव्योंका सेवन
हित है तथा जिस स्थानपर विसर्प हुआ हो
वहां रुक्ष और शीतल द्रव्योंका लेप करे ।
उसी आमसंयुक्त दोषके पित्ताशयमें जान

पर पूर्वोक्त क्रमका अवलम्बन उचितहै, इस रोगमें फस्त खोलना और दस्त करना ये दो बातें अधिक कर्त्तव्य हैं । वाताशय सम्भूत रोगोंमें तथा रक्तापित्तान्त्रय में उत्पन्न होनेवाले रोगों में प्रथमही से रूक्षण क्रिया करना उचितहै, इसमें स्नेहन क्रिया अहित होती है वाताधिक्य विसर्पमें तथा अल्पदोष वाले पित्तज विसर्प में तित्त घृत हित हैं, एवं महादोषों से युक्त पित्तज विसर्प में विरेचन उत्तम होताहै । जो घृत विरेचनकर्त्ता न हो वह बहुत दोगोंसे युक्त विसर्प रोगी को देना उचित नहीं है क्योंकि इस घृत के देने से दोष बहकर त्वचा, मांस और हृदि में पकावट पैदा करदेते हैं, अतएव विसर्प रोगीको सबसे प्रथम विरेचन देना चाहिये । पीछे रक्तमोक्षणभी करावार्है क्यों कि तत्रिही विसर्पका प्रधान स्थानहै । यह सक्षेपमें विसर्प की चिकित्सा वर्णन कीगई है । अब हम यहां से विसर्परोगों की चिकित्साका विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे ।

कफपित्तविसर्प की चिकित्सा ।
मदनमधुकान्तिन्ववस्तकस्पफलानि च । व
मनसंपदातव्यर्षासर्पकफपित्तजे ॥ पटो
लपिचुमदाभ्यां पिप्यल्पामदनेन च । वी
सर्पेवमनशस्ततथाचेन्द्रयवै सह ॥ यथ
योगान्प्रवक्ष्यामि कल्पेषुकफपित्तिनाम् ।
विसर्पिणां प्रयोज्यास्ते दोषनिर्हरणाः परम् ।
ब्रह्मनिम्बपटोलानाञ्चन्दनोत्पलयोरपि
। शारिदात्मन्मोक्षीरंमुस्तान्वाविचक्षण
॥ पापयेत कृपायान्निहिंसदान्वीसर्पनाश
नान् । किराततिकरुंरोध्रदुःखालभांस च

न्दनाम् ॥ नागरंपर्षाकिञ्जल्कमुत्पलसवि
भीतकम् ॥ मधुकं नागपुष्पचदद्याद्दीसर्प-
शान्तये ॥ प्रपुण्डरीकंमधुकपत्राकिञ्जल्क
मुत्पलम् ॥ नागपुष्पचरोध्रचतेनैवविधि
नापिवेत् ॥ द्राक्षांपर्षकेशुर्ष्ठीगृह्णीध्र-
यासकम् । निशापर्षुपित्तदद्यात्तृष्णावीस-
र्पशान्तये ॥ पटोलंपिचुमर्दञ्चदावीकडु-
करोद्दीहणीम् । यष्ट्याहात्रायमाणञ्च
दद्याद्दीसर्पशान्तये ॥ पटोलादिकपायं वा
पिवेत्त्रिफलयासह । मसूरविदलैर्युक्तं घृ-
तमिश्रप्रदापयेत् ॥ पटोलपत्रमुद्गानारस
मामलकस्य च । पापयेत घृताग्निश्रंरंघी
सर्पपीडितम् ॥

अर्थ—कफ पित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पमें
मेवफल, मुलहठी, नीम, इन्द्रजौ इनका काथ
पान कराके बमन करावै । अथवा परबल,
नीम, पीपल, मैनफल, और इन्द्रजौ इनका
काथ पान कराके बमन करावै कल्पस्थानमें
कफपित्त रोगियोंके लिये जो जो प्रयोग वर्णन
किये जायगे वे सब विसर्प रोगमें प्रयोजनीय
होते हैं, ये प्रयोग असंख्य दोषनिःसारकहैं ।
मोथा, नीम और परबल अथवा रक्तचन्दन
और नीलकमल अथवा शारिदा, आंबला,
उसीर और मोथा । इन तीन योगोंके काथ
का पान करानेसे विसर्प दूर होजाताहै, ये
अनुभूत प्रयोगहै ।

अथवा चिरायता, लोध, जवासा, रक्तच-
न्दन, सोंठ, नागकेशर, नीलकमल, बंहेडा
मुलहठी, नागपुष्प इन का काथ विसर्पना-
शक होताहै ।

पुण्डरियाकाठ, मुलहटो, पत्रकेशर, नील कमल, नागपुष्प और लोघ इनके काथ को पूर्वोक्त विधिसे विसर्प रोगी को देवै। अथवा दाख, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय, जवासा इनको रात्रि में भिजोकर प्रातःकाल पान करै तो तृपा और विसर्प दूर होवै। अथवा परचल, नीम, दाखहलदी कुटकी मुलहटो श्रायमाणा, इनका काथ विसर्प की शान्ति के निमित्त देवै।

अथवा पटोलादि काथ का त्रिफलाके साथ पान कराने से विसर्प की शान्ति होती है। अथवा घी मिलाकर मसूरकी दाल देवै अथवा परचल, मूंग और आंवले के रसमें घृत मिलाकर उस मनुष्यको पान करावै जो विसर्प रोग से पीडित हो।

विसर्पनाशकअन्यप्रयोग ।

यद्यसर्पिर्महातिक्तपित्तकुष्ठनिर्वहणम् ।
निर्दिष्टतदपिमाज्ञोदद्याद्वीसर्पशान्तये ॥
त्रायमाणाघृतंसिद्धं गौलिमकेयदुदाहृतम् ।
वीसर्पाणां प्रशान्त्यर्थं दद्यात्तदपिबुद्धिमान् ।
त्रिवृच्चूर्णसमालोच्य मपिपापयसातथा
धर्माभ्युनावासंयोज्यामृद्धीकानारसेन
वा । विरेकार्थं प्रयोक्तव्यंसिद्धं वीसर्पना
शनम् ॥ त्रायमाणाघृतं वापिपयोदद्या
द्विरेचनम् ॥ त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिसिद्धि
घृतयासह । प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं वीसर्प
ज्वरनाशनम् ॥ रसमामलकानां वाघृत
मिश्रप्रदापयेत् । सपत्रगुरुकोष्ठाय त्रिवृच्चू
र्णयुतोद्दितः ॥ दोषकोष्ठगते भूय एतत्कु
र्याच्चिकित्सितम् । शाखादुष्टतुरुधिरर-

क्तमेवादितो हरेत् ॥ भिषग्वातान्वितं तरंक्तं
विपाणेनाभिनिर्हरेत् । पित्तान्वितं जलौ
काभिः कफान्वितं मलाबुभिः ॥
अर्थ..... पित्त कुष्ठनाशक जो महातिक्तक
घृत वर्णन किया गया है वह घृत विसर्प के नष्ट
करनेमें भी अत्यन्त उपयोगी है । गुल्मरोग
में जो त्रायमाणादि घृत वर्णन किया गया है
वह भी विसर्पकी शान्तिके निमित्त उत्तम है।
निसोथके चूर्ण को घीके साथ, दूधके साथ,
उष्णजलके साथ अथवा दाखके रसके साथ
विसर्पको दूर करनेके लिये पान करावै। अ-
थवा त्रायमाणा डालकर औटाया हुआ दूध
विरेचनके लिये देवै। त्रिफलाके काथके साथ
अथवा निसोथके साथ घृत का प्रयोग करने
से विरेचनके द्वारा विसर्प जनित ज्वर जाता
रहता है। अथवा आंवले के काथमें घृत मि-
लाकर देवै और जो रोगीका कोठा कडाहो
तो उसीमें निसोथका चूर्ण और मिला देवै।
दोषोंके कोष्ठगत होनेपर यही चिकित्सा फि-
र करै जो रुधिर शाखामें दूषित हुआ हो उसे
प्रथमही फस्त लगाकर निकाल देवै। वैद्य
को उचित है कि घात संसृष्ट रुधिरको सीगी
लगाकर निकाले, पित्तसंसृष्ट को जोकों से
और कफसंसृष्टको अलावू द्वारा निकाले ॥
यथासंघं विकारस्य व्यधेयदाशुवासिनाम्
त्वह्मांसस्नायुसंक्लेदोरक्तेदाडिजाय-
ते ॥ अन्तःशरीरसंशुद्धे दोषत्वह्मांससं-
श्रिते । आदितः स्वल्पदोषाणां क्रियावा-
ह्याप्रवक्ष्यते ॥
अर्थ—विसर्पके पासवाली नरसमें नरतर

लगाकर फस्त खोलें जिससे रुधिरमें क्लेद-
ता न होनेपावै क्योंकि रक्तमें क्लेदताके होने
ही से त्वचा, मांस और स्नायुमें क्लेदता उ-
त्पन्न होती है । इन उपायोंके करने से जब
शरीर भीतरसे शुद्ध होजाताहै और दोष
केवल त्वचा और मांस में रहजातेहैं तब दोष
बहुत सूक्ष्म रहजाते हैं उस समय बाह्यक्रिया
की जाती है, अथ उन बाह्य उपायोंको व-
र्णन करते हैं ।

वातपित्तजघिसर्पपरमलेप

उदुम्बरत्वङ्मधुकंपन्नकिञ्जल्कमुत्पलम् ।
नागपुष्पप्रियंगुश्वप्रदेहःसघृतोहितः ॥
न्यग्रोधपादास्तरुणाःकदलीगर्भसंयुताः ।
विसग्रन्थिःसलेपःस्यात्शतशौतघृताप्लुतः
कालीयमधुकंहेमवलयचन्दनपद्मकम् । ए
लामृणालफलनीमलेपःस्यादघृताप्लुतः।
शाद्वलक्षमृणालश्चशंखचन्दनमुत्पलम् ।
वेतसस्यचमूलानिप्रदेहःस्यात्सतण्डुलम्।
शारिवापन्नकिञ्जल्कमुशीरंपन्नकोत्पलम्
मञ्जिष्ठाचन्दनरोध्रमभयाचमलेपनम् ॥
नलदंश्वहरेणुधरोध्रमधुकपन्नकौ । दूर्वा
सर्जरसश्चसघृतस्यात्पलेपनम् ॥ या-
वकाःशक्तवैश्वसर्पिपासहयोजिताः ।
प्रदेहोमधुकंवीरिसघृतायवशक्तवः ॥ व
लामुत्पलशालूकंवीरामगुरुचन्दनम् ।
कुर्म्यादालेपनवैद्योमृणालञ्चविसान्वि-
तम् ॥ यवचूर्णसमधुकंसघृतञ्चमलेप-
नम् ॥ हरेणवोममूराश्चसमुद्गाःश्वेतशा-
लयः । पृथक्पृथक्प्रदेहास्युःसर्वेयासर्पि-
पासः ॥ पश्चिमकिर्दमःशीतोभौक्तिकं

पिष्टमेववा । शंखःप्रवालःशुक्तिर्वागैरि-
कोवाघृताप्लुतः ॥ प्रपुण्डरीकमधुकं व-
लाशालूकमुत्पलम् । न्यग्रोधपत्रद्रुग्धी
कासघृतस्यात्पलेपनम् ॥ विसानिचमृ
णालाश्चसघृताचकशेरुकं । शतावय्या
विदार्याश्चकन्दौघौतघृताप्लुतौ ॥ श-
वालंनलमूलानिगोजिहावृषकर्णिका ।
इन्द्राणीशाकंसघृतशरीरपत्वग्बलाघृतम्
न्यग्रोधोदुम्बरपुल्लवेतसाश्वत्थपल्लवैः ।
त्वक्कल्कैर्वह्नुसर्पिष्कैःशीतैरालेपनंहितम् ॥
प्रदेहाःसर्वैर्वैतवातापित्तोत्वणेशुभाः ।
सकफेतुमवक्ष्यामिमलेपनपरान्शुभान् ॥

अर्थ—गूलरकी छाल, मुलहटी, पद्मकेशर
नीलकमल, नागपुष्प, प्रियंगु इनको, पीस-
कर घी में सानकर लेप करे । बडकी नब्री
न डाढी, केलेका गूदा, कमलनालकाजड
इनको सौवार धुलेहुए घी में मिलाकर लेप
करे । अथवा कालीय (पीतचन्दन) मुल-
हटी, धतूरा, बल्या, चन्दन, पद्याख, इला-
यची कमलनाल और प्रियंगु इनको घृतमें
सानकर लेप करे । अथवा दूब, कमलनाल
शंखकीमस, रक्तचन्दन, नीलकमल, वेत
कीनड और वायविडंग इनको पीसकर लेप
करे अथवा शारिवा, पद्मकेशर, खस, पद्माख
नीलकमल, मजीठ, रक्तचन्दन, लोध, हरड
इनको पीसकर लेप करे । अथवा खस, क-
रेणु, लोध, मुलहटी, पद्माख, दूब, राल, और
घी इनका लेप करे, अथवा जौ के सत्तूको
घीमें सानकर लेप करे । अथवा मुलहटी,
क्षीरकाकोली, घी और जौका सत्तू इनका

लेप करें अथवा खैरी, नीलकमल, शाळक (कुमुदादिकी जड), क्षीरकाकोली, अगर, लालचन्दन, अथवा खस और लालचन्दन, इनका लेप करें, अथवा जौका चून, मुजहदी और घी का लेप करें । अथवा हरेणु, मसूर, मूंग, सफेदचाँवल इनको पृथक २ वा सबको मिलाकर घी में सानकर लेपकरे अथवा कमलकीजड की ठंडीकाँच, अथवा मोतियोंको जलमें पीसकर अथवा शंख, मूंग, स्त्रीपी वा गेरूको घीमें सानकर लेप करें । अथवा पुण्डरिया काठ, मुलहदी, खैरी, शाळक, उत्पल, बडके पत्ते और दुद्धी इनको घीमें सानकर लेप करें । अथवा विस, मृणाल और कसेरूको घीमें सानकर लेप करें अथवा शतावरी और विदारीकंद इनको धुलेहुए घृतमें सानकर लेप करें । सित्रार (तलात्र के जलकी ऊपरवाली काई), सरकंडेकी जड, गोजिह्वा, वृषकर्णी और इन्द्राणाके पत्ते इनको घीमें सानकर लेप करें अथवा सिरसकी छाल और खैरीको घीमें सानकर लेपकरे । अथवा बड, गूलर, पाकड, बेत, और पीपलके पत्ते और छाल इनको पीसकर बहुतसे घीमें सानलेवै और ठंडे २ का लेप करें ताँ विसर्प रोग दूर हो जाते हैं । ... ये जो ऊपर सम्पूर्ण लेप वर्णन किये गये हैं वे वातपित्तकी अधिकता वाले विसर्प में हितकारी होते हैं । अब हम वात कफ में उपयोगी लेपोंका वर्णन करेंगे ॥

वातकफविसर्पमें लेप ।

त्रिफलापत्रकोशीरंसमर्णाकरवीरकम् ।

(१०७)

नलमूलान्यनन्तचमदेहमुकल्पयेत् ॥ खदिरंसप्तपर्णञ्चमुस्तमारग्वधंधवम् । कुरण्टकदेवदारुदघादालेपनांभिषक् ॥ आरग्वधस्यपत्राणित्वचंश्लेष्मान्तकस्यचन्द्राणीशाकंकाकाहाशिरीषकुसुमानि च । प्रपुण्डरीकंहीवेरंदावीत्वङ्मधुकंबलाम् ॥ पृथगालेपनंकुर्याद् द्वन्द्वशःसर्वशोऽपिवा । प्रदेहाःसर्वएवैतेदेयाःस्वल्पघृतायुताः । वातपित्तोल्बणेपेतुप्रदेहास्तेघृताधिकाः ॥ घृतेनशतधैतेनप्रदिद्यात्केवलेनच ॥

अर्थ—त्रिफला, पत्राल, उशीर, लज्जालू कनेरकी जड, सरकंडे की जड, अनन्तमूल इनका लेप बनाकर लगावै । अथवा खैरसार, सप्तपर्णी, मोथा, अमलतास, धौंकी छाल, कुरण्टक और देवदारु इनका लेप करें । अथवा अमलतासके पत्ते, बहेडे की छाल, इन्द्राणी शाक, मकोय, सिरस के फूल पुण्डरियाकाठ, हाऊबर, दारुहल्दी की छाल मुलहदी, खैरी, इनमेंसे एक २ का वा दो २ का वा सबका मिलाकर लेप करें इन लेपोंमें घी बहुत थोडा मिलाया जाता है, वातपित्त के विसर्प में जो लेप कियेजाते हैं उनमें घी अधिक होता है । केवल सौ बार धुलेहुये घीका लेपकरे ।

विसर्पकाअन्याचिकित्सा ।

घृतमण्डेनशीतेनपयसायधुकाम्बुना । पंचवल्ककपायेणसेचयेच्छीतलेनवा ॥ वातासृक्पित्तबहुलं विसर्पं बहुशोभिषक् । सेचनास्तेप्रदेहायेतएवघृतसाधनाः ॥

तेचूर्णयोगांवीसर्पचूर्णानामवचूर्णनाः ।

दूर्वास्वरसासिद्धचघृतस्याद्व्रणरोपणम् ॥

दार्वात्त्वद्मधुकरोध्रकेसरञ्चावचूर्णनम् ॥

पटोलःपिचुमर्दस्तुत्रिफलामधुकोःपले ॥

पतत्रप्रसालनसर्पिर्वणचूर्णप्रलेपनम् ।

अर्थ....जो विसर्प पित्त बहुल और यात

रक्तसे उपद्रुतहै उसपर घृतमण्ड, शीतल

दूध, जल मिलाहुआ शहत अथवा पंचबल्क

के ठंडे काय द्वारा सेचन करें। जिन प्र-

योगोंका घीमें लेप कियाजाता है, उन्हीं

द्रव्योंका काय सेचनमें कामआता है। उन्हीं

द्रव्योंको पीसकर विसर्पपर युकी दीजाती है

दूधके रसमें सिद्ध कियाहुआ घी लगाने से

व्रण पुरजाताहै। अथवा दारुहल्दी की छाल

मुलहटी, लोध, और केसर इनको पीसकर

विसर्पपर घुरकें अथवा परवरु, नीम, त्रि-

फला, मुलहटी नीलकमल, इनका काय

बनाकर विसर्पको धोवै। इन्हीं द्रव्यों के

घृत, चूर्ण प्रलेपादि नियमों को काममें लावै

लेपलगाने की विधि।

प्रदेहाःसर्वेष्वतेकर्षण्य्याःसंप्रसादनाः ॥

क्षणेक्षणेप्रयोक्तव्याःपूर्वमुद्भृत्यलेपनम् ।

नवीनघृतेपूर्वप्रदेहावद्भुशोधनाः ॥ दे-

याःप्रदेहाःकफजैपर्याधानोदघृतेधनाः ।

त्रिभागांगुष्ठमात्रःस्पात्प्रलेपःकल्कपेपितः

नातिस्निग्धोनरुक्षथनपिण्डोनद्रवःसमः ॥

नचपयुपित्तलेपंकदाचिदवचारयेत् ॥ न

चतेनैवलेपेनपुनर्जातुमलेपयेत् । क्लेदवी

सर्पयूलानिसोष्णभावात्प्रवर्त्तयेत् ॥

लेपोद्भृत्परिपट्टस्पृक्तःस्वेदयतिव्रणम् ।

स्वेदजाःपिडकास्तस्यकण्डूश्चैवापजायते ॥

उपर्युपरिलेपस्यलेपोयद्यवचार्यते ।

तानेवदोपान्जनयेत्पट्टस्योपरियानुकृतः ॥

अतिस्निग्धोऽतिद्रवश्चलेपोयद्यवचार्यते

त्वचिनाश्लिष्यतेसम्यहनदोपंशमयत्यपि

तन्वालिप्तनकुर्वतिसंशुष्कोद्वापुटायते ॥

नचौपधिरसोव्याधिप्रामोत्यपिचशुष्य

तितान्वालिप्तेनयेदोपास्तानेवजनयेद्दश

म् । संशुष्कःपीडयेद्द्वपाधिनिस्नेहोद्यव

चारितः ॥

अर्थ—ये सब लेप चित के प्रसन्नकर

नेवाले हैं, पहिले लेपको छुडा छुडाकर

योडी २ देरमें फिर नये करने चाहियें ॥

पुराने घी में मिलाहुआ लेप बहुत शोधक

होताहै ॥ कफज विसर्प में पहिले लेपका

छुडाकर गाढ़ा २ लेपकरै, औपधों को

पीसकर जौभर मोटा लेपकरै ॥ लेप अत्यन्त

चिकना, रूखा, पिण्डित और द्रव नहो सब

जगह समान हो, वासी लेप को कभी न

लगावै ॥ जिसका एकवार लेप किया है

उसका फिर लेप न करै क्योंकि वह उष्ण

भाव से क्लेद, विसर्प और शूलरोगों को

उत्पन्न करताहै, व्रणके ऊपर पट्टी धरकर ले-

प करनेसे व्रण में स्वेदन होता है। उन

पसीनोंसे फुन्तियां और खुजली उत्पन्न हो-

जाती हैं ॥ लेप के ऊपर लेप करनेसे भी

वही दोष उत्पन्न होते हैं जो धत्वके ऊपर

लेप करने से होते हैं ॥ जो लेप बहुत चि-

कनां और बहुत पतला किया जाता है वह

त्वचा में अच्छी तरह नहीं लगता है और

न उससे दोष शान्त होते हैं ॥

पतला लेप कभी न करना चाहिये क्योंकि वह सूखकर पपडा जाता है ॥ इस लेप की औषध का रस व्याधि के पास भी नहीं पहुंचने पाता और पहिलेही सूखजाता है । पतले लेपके करनेसे पूर्वोक्त दोष बहुत बढ़ जाते हैं । विना चिकनाईका लेप सूखकर व्याधिको अत्यन्त पीड़ित करता है ॥

विसर्पमेषध्यापथ्य ॥

अन्नपानानिवक्ष्यामिर्वीसर्पाणांनिवृत्तये
लंघितेभ्योहितोमन्थोरुक्षःसक्षौद्रशर्करः
मधुरःफिञ्चिदम्लोवादादिमामलकान्वि
तं॥सपरूपकगृद्धीकःसखर्जूरःश्रुताम्बुना
तर्पणैर्यवशालीनांसस्नेहावावलेहिका ॥
जीर्णोपुराणशालानायूपैर्भुञ्जीतभोजनम्
सृष्टान्मसूरांश्चणकान्यूपार्थमुपकल्पयेत् ।
अनम्लान्द्रादिमाम्लान्वापटोलामलकैः
सह ॥ जाङ्गलान्ब्रह्मसांनारंसांस्त
स्योपकल्पयेत् । रुक्षान्परुपक्रदासादा
दिमामलकान्वितान् ॥ रक्ताःश्वेतामहा
हाश्चशालयःपीठकैःसह ॥ भोजनार्थं
मशस्पन्तेपुराणाःसुपरिस्तुताः । पयोगो-
धूमसात्म्यानांसात्म्यान्वेवप्रदापयेत् ।
येषांनात्युचितःशालिर्नरायेचकफाधिकाः

अर्थ—अब हम विसर्पकी शान्तिके निमित्त अन्नपानकी विधि वर्णन करते हैं विसर्प रोगीको लंघन करानेके पदचात् शहत और चीनीके साथ रुक्ष मन्य देवै । अथवा उसी मन्य में अनार और आंवले की खटाई देकर वा कुछ गिट्ट करके देवै । फालसा कित्सामिस, खजूर इनके साथ में औटाये हु

ये जलके साथ तर्पण देवै । अथवा जौ और शाली चांवलों का अवलेह घृत मिला कर देवै । इनके पचनेपर पुराने चांवलोंका भात यूपके साथ भोजनमें देवै, मंग, मसूर चना इनका यूप विना खटाईका अथवा अनारकी खटाई डालकर परवल और आंवलेके साथ देवै । जांगल पशुओंका मांस रस विना चिकनाई डाले फालसे, दाख, अनार और आंवले डालकर सेवन करावै, भोजनके लिये लाल चांवल, सफेद चांवल, महाशाख, साठी चांवल, इनको उपांलकर अच्छीतरह मांड निकाल कर देवै परन्तु ये पुराने होने चाहिये । जिस रोगीको दूध और गेहूं सात्म्यहों उनको ये ही देवै, जिनको शालीचांवल सात्म्य नहीं है और जिनको कफकी अधिकताहै उनको दूध और गेहूंदेवै विदाहीन्यन्नपानानिविरुद्धानिचवर्जयेत् । क्रोधन्यायामसूर्याग्निप्रचातस्वपनं दिवा ॥ कुर्याच्चिकित्सतान्यस्मात्शीतमायाणिपैत्तिके ॥ रुक्षमायाणिकफजे सैहिकान्यनिलात्मके । वातपित्तप्रशमनमग्निर्वीसर्पणेहितम् ॥ कफपित्तप्रशमनं प्रायःकर्मसंज्ञिते ।

अर्थ—विदाही और विरुद्ध अन्नपान का परित्याग करदेना उचितहै, क्रोध भी त्याग कर देवै । पैत्तिक विसर्पमें शीत प्राय चिकित्सा करै, कफज विसर्पमें रुक्षप्राय और वातज विसर्पमें स्निग्धप्राय चिकित्सा करै । अग्निर्वीसर्पमें वातपित्त को शमन करनेवाली औषधी देवै । कर्म विसर्प में प्रायः कफ पित्तनाशक औषधियोंका प्रयोग करै ॥

ग्रन्थिविसर्प में चिकित्सा ।
 रक्तपित्तोत्तरदंष्ट्राग्रन्थिवीसर्पमादितः ॥
 रूक्षणैर्लघनैःसैकैःप्रदेहैःपाञ्चवालिकैः ।
 शिरामोसैर्जलौकाभिर्वमनैःसाविरेचनैः ॥
 घृतैःकपायतित्तैश्चकालज्ञैःसमृपाचरेत् ।
 ऊर्ध्वञ्चापश्चशुद्धायरक्तेचाप्यवसेचिते ॥
 वातश्लेष्महरं कर्मग्रन्थिर्वासापिणेहितम् ॥
 उत्कारिकाभिरुष्णाभिरुपनाहःप्रशस्यते ॥
 स्निग्धाभिर्वेशवारैर्वाग्रन्थिर्वासर्पशूलिनः
 दशमूलोपसिद्धेनतैलेनोष्णेनसेचयेत् ॥
 सुखोष्णयापदिद्याद्वापिष्ट्याकृष्णगन्ध
 या । शुष्कमूलकफक्लेननक्तमालत्वचा
 पित्रा ॥ विभीतकस्यवाग्रन्थिकक्लेनोष्णे
 नवापिवेत् । घलानागवलापथ्याभूर्जप्र
 न्थिविभीतकम् । वंशपत्राण्यग्निमन्थंकुट्यर्था
 तृगुण्यप्रलेपनम् ॥ दन्तीचित्रकमूलत्व-
 कसौषार्कपयसीगुडः ॥ भ्रूतकास्थि
 कासीसलेपोभिन्द्याच्छिलामपि । वहि
 मार्गस्थितंग्रन्थिकिंपुनःकफसम्भवम् ॥
 अर्थ—ग्रन्थिर्वासर्पमें जो रक्तपित्तकी अ-
 धिकता होती तो प्रथमही से रूक्षक्रिया
 लघन, पंचवल्लक के कायका परिपेक,
 प्रदेह, फस्तखोलना, जोंक लगाना, वमन,
 विरेचन, कपाय और तित्त औषधियों से
 सिद्ध कियाहुआ घी देवें । तथा इस रोग
 में वमन विरेचन और फस्त खोलकर शुद्ध
 करने के पश्चात् वातकफ नाशक क्रियाका
 अवलम्बन करना हितहै । गरम २ लुपडी
 और उपनाह भी हितकारी होतेहैं । जो यह
 रोग शल्युक्त हो तो स्निग्ध वेशवार का

प्रयोग करे और दशमूलसे सिद्ध कियेहुए
 तेलद्वारा परिपेचन करे ॥ अथवा सहजने
 की छालको पीसकर सुहाते हुए गरम गरम
 का लेप करे, अथवा सूखी मूली या फंजा
 की छाल को पीसकर लेप करे अथवा ब-
 हेडेके कस्को कुछ गुनगुना करके लेप-
 करे अथवा खैरेटी, नागवला, हरड, भोज-
 पत्रकी गांठ, वहेडा, वांसके पत्ते, अरनी इन
 का ग्रन्थि विसर्प पर लेप करे । अथवा दन्ती
 चीते की छाल, सेंडुड और भाक का दूध
 गुड, भिलावे की गुठली, फसीस इनका लेप
 करनेसे शिला भी टूट जातीहै तब बाहर-
 वाली कफकी गांठ के भिन्न होजानेमें क्या
 संदेह है ।

चिरकलीन ग्रन्थिकी चिकित्सा
 दीर्घकालस्थितंग्रन्थिभिन्द्याद्वाभेपजैरिमैः
 मूलकानांकुलत्यानांयूपैः सक्षारदाडिमैः
 गोधूमार्जैर्षवाभैर्वासशीधुमधुशर्करैः ।
 सक्षौद्रैर्वारुणीमण्डैर्मातुल्यरसान्वितैः ॥
 त्रिफलायाःप्रयौगैश्चपिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः ।
 मुस्तभ्रूतशकूनांपयोगैर्माक्षिकस्यच ॥
 देवदारुशुद्ध्याश्चमयोगैर्गिरिजस्यच
 अर्थ—नाचे लिखीहुई औषधियोंसे बहुत
 दिनकी उत्पन्न हुई गांठके तोडनेका उपाय
 करे । यथा जवाखार और अनार डालकर
 कुल्थी वा मूलीका यूप; शीधु, शहत और
 चीनी मिलाकर गेहूँ वा जीके पदार्थ, विजौरे
 का रस डालकर शहत मिलाहुआ सुरामण्ड,
 पीपल और शहत डालकर त्रिफलाका प्र-
 योग, मोथा, भिलाया और शहत ये डाल-

कर सत्तुओंके प्रयोग, देवदारु और गिलोय के प्रयोग तथा गेरूके प्रयोग। इन प्रयोगों से पुरानी गांठ टूट जाती है।

ग्रन्थिनाशक अन्य विधि ।

धूम्रविरैकैःशिरसःपूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः ॥
अयोलवणपापाणहमताम्रप्रपीडनैः ।
आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिर्विविधाभिर्ब-
लीस्थिरः ॥ ग्रन्थिःपापाणकठिनोयदा
नैवोपशाम्यति । अथास्यदाहःसारेण
शरैर्लोहेनवाहितः ॥ पाकिभिःपाचयि
त्वावापाटयित्वासमुद्धरेत् । मोसयेत्व
हुशश्चास्यरक्तमुत्क्षेपशमागतम् ॥ पुनश्चा
पहृतरक्तेत्रातश्लेष्मजिदौपधम् । धूम्रवि-
रैकैःशिरसःस्वेदनपरिमर्दनम् ॥ अपशा-
म्यतिदाहेनपाटवंवाप्रशस्यते । प्रक्लिन्ने
दाहपाकाभ्यांभिपक्षुशोधनरोपणैः ।
वाहैश्चाभ्यन्तरैश्चैवग्रणवत्समुपाचरेत् ।

अर्थ—गुल्मके दूर करनेके लिये जो धूम्रपान, शिरोविरैचन, लोह, लघण, पापाण सोना, तांबा और प्रपीडन पहिले वर्णनकिये गयेहैं उनका प्रयोग इस गांठके दूर करने के लिये करें। और यदि इन अनेक प्रयोगोंके करने परभी इस बलवान, स्थिर और पत्थरके समान कठोर गांठका शमन न हो तों क्षार, शर और लोहसे दग्ध करना हित है। अथवा पकाने वाली औषधों से पकाकर चीर डालें तथा इसके उत्क्षेपित हुए रक्तको बार बार निकाटदेवै रुधिरके निकलनेके पीछे वातकफनाशक औषध, धूम्रपान, शिरोविरैचन, स्वेदन, परिमर्दन आदिका प्र-

योग करे। जो गांठ दाहसे शान्त न होतो उसका चीरना हितहै। इस ग्रन्थिके दाह और पाकसे क्लिन्न होनेपर व्रण की रीतिसे वाह्य और आम्यान्तरिक शोधन रोपणद्वारा चिकित्सा करे।

ग्रन्थिव्रणकीचिकित्सा ।

कम्पिल्यकंविडङ्गानिदार्वाकारश्चकफ-
लम् ॥ पिष्ट्वातैलंविपक्तव्यंग्रन्थिव्रणचि-
कित्सितम् । द्विव्रणीयोपादेष्टेनकर्मणा
चाप्युपाचरेत् ॥ देशकालप्रमाणज्ञाव्रण-

ग्रन्थिविसर्पवित्

अर्थ—कवीला, वायविडंग, दारुहल्दी, कंजेके फल, इनको पीसकर तैलमें पकाकर ग्रन्थिव्रण पर लगावै। तथा देशकाल और प्रमाणको जाननेवाला वैद्यद्विव्रणीय चिकित्सित प्रकरणमें कहेहुये प्रयोगों को भी इस जगह प्रयुक्त करे।

गलगण्डकीचिकित्साकाक्रम ।

यएवविधिरुद्दिष्टोऽगन्धीनांविनिवृत्तये ॥
सएवगलगण्डानांकफजानानिनिवृत्तये ।
सर्वेचगलगण्डास्तुयेकफानुगतावृणाम् ॥
घृतक्षारकपायाणामभ्यासान्नभवन्तिते
अर्थ—ग्रन्थियोंके दूर करनेके लिये जो २ विधि यहां वर्णन की गईहैं, वेही कफज गलगण्ड के दूर करने में उपयोगी होती हैं। कफसे उत्पन्न हुए सब प्रकार के गलगण्ड घी, क्षार और कपाय का अभ्यास करनेसे नहीं होने पाते।

रक्तमोक्षणकी उत्कृष्टता ।

यानीहोक्तानिकर्माणिवीसर्पाणांनिवृत्तः

ये ॥ एकतस्तानिसर्वाणिरक्तमोक्षणमे-
कतः । विसर्पनिहससृष्टोरक्तपित्तेनजा-
यते ॥ तस्मात्साधारणंसर्वमुक्तमेतच्चि-
कित्सितम् । विषोपोदोपैवपम्यान्नचनो-
क्तःसमासतः ॥ समासन्यासनिर्दिष्टांकि-
यांबिद्यानुपाचरेत् ॥

अर्थ.... विसर्पोंकी शान्तिके निमित्त जो
कर्म वर्णन किये गयेहैं वे सब एक ओर हैं
और रक्तमोक्षण एक ओर हैं, क्योंकि रक्त-
पित्तकी संसृष्टताके बिना विसर्प होना ही
नहीं है । इसतरह सम्पूर्ण विसर्पोंकी साधारण
चिकित्सा वर्णन कीगई है । तथा दोषों की
भिन्नताके कारण यह वर्णन मर्यादा संक्षिप्त
भी नहीं है । इस संक्षिप्त और विस्तृतवर्णन
के अनुसारही चिकित्सा करना योग्यहै ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

निरुक्तनामभेदाच्चदोषादूप्याणिहेतवः ।
आश्रयोमार्गतश्चैववीसर्पगुरुलाघवम् ॥
लिङ्गान्युपद्रवापेचयल्लक्षणउपद्रवाः ।

साध्यत्वंनचसाध्यानांसाधनश्चयथाक्रम-
म् ॥ इतिपिप्रभयोसिद्धिमग्निवेशायधीमते ॥
उक्तंभगवताद्यतद्वीसर्पाणांचिकित्सिते ।

अर्थ.... इस विसर्प चिकित्सितान्यायमें
भगवान् आत्रेयने चतुरशिरोमणि और
जिज्ञासु अग्निवेश की विसर्प की निरुक्ति
नामभेद, दोष, दूष्य, हेतु, आश्रय, विसर्प
के मार्ग, गुरुता, लघुता, लिंग, उपद्रव,
उपद्रवों के लक्षण, साध्यासाध्य वर्णन, सा-
ध्य विसर्पों की यथा क्रम चिकित्सा का व-
र्णन सुनाया ।

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विर-
चितायां चरकप्रति संसृष्टायां संहितायां
चिकित्सितस्थाने वीसर्प चिकित्सित
नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

—*—

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथातोमदात्ययचिकित्सितं व्याख्यास्या-
मइतिहस्माद्भगवान् आत्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले-
कि अब हम मदात्ययचिकित्सित नामक अ-
ध्याय की व्याख्या करेंगे ।

सुरैःसुरेभ्यसाहितैर्यापुरामतिपूजिता । सौ-
त्रामण्याद्द्वयतेयाकर्मभिर्यामतिष्ठिता ॥
यज्ञेहितायाशक्रस्यसोमोनिपिवतोभृशम्
नीरुजस्तमसाविष्टस्तस्माद्दुर्गात्समुद्धृतः
विधिभिर्वेदावेहितैर्यायजद्भिर्महात्माभिः ।

दृश्यास्पृश्याप्रकल्प्याचयज्ञियायज्ञसिद्ध-
ये ॥ योनिस्संस्कारनामार्थैर्विशैर्षैर्वहुधा-
चया । भूत्वाभवत्येकविधासामान्यान्म-
दलक्षणात् ॥ यादेवानमृतंभूत्वास्वधा-
भूत्वापितृक्षया । सोमोभूत्वाद्दिजातीन्या
युद्धक्तेश्रेयोभिरुत्तमैः ॥ आश्विनंयामह-
चेजोयीर्य्यसारस्वतञ्चया । बलमैन्द्र-
ञ्चयासोमः सौत्रामण्याञ्चयामता ॥

शोकारतिभयोद्वेगनाशनीयामहाबला ।
याम्रीतिर्यारतिर्यावाग्यापुष्टिर्याचानिर्दृ-
तिः ॥ यामुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषैः ॥
रतिःसुरेत्यभिहितातांसुरांविधिनापिवत् ॥
अर्थ—जिस मदिराका अमरेश्वर इन्द्रने
पूर्वकालमें पूजन कियाहै, जिसकी सूत्रामणि

हवन में आहुति दी जाती है जो वेद विहित कर्मों से प्रतिष्ठित होती है, जो सोमपान करनेवाले इन्द्रके यज्ञमें हित है तमसाविष्ट इन्द्र जिसके पानसे निरोग तथा क्रेशसे उद्धत होगया । यज्ञमें उपयोगी यह सुरा यज्ञ की सिद्धिके लिये वेदविहित कर्मोंके द्वारा यज्ञकरनेवाले महात्माओंसे दर्शन के योग्य, छूने के योग्य, और कल्पना करने के योग्य की जाती है । यह सुरा अनेक द्रव्यों से बनाये जाने के कारण या अनेक नाम भेद से अनेक प्रकारकी होती है परन्तु 'नशा होना, यह एक साधारण धर्म सबमें है इस से अनेक प्रकारके मद्य भी एकही प्रकारके माने जाते हैं । यह सुरा अमृतरूप होकर देवताओंकी, स्वधा होकर पित्रांशुओं की और सोम होकर द्विजन्माओंकी शोभा और कान्ति को बढ़ाती है । यह सुरा स्वर्ग वैद्य अश्विनीकुमार का महत्तेज है, सरस्यताका वीर्य है, इन्द्रका बल है और सूत्रामणि यज्ञ में सोमके सदृश है । यह सुरा शोक, अरति भय, उद्वेगका नाश करनेवाली है, अत्यन्त बलको बढ़ाने वाली है, यही सुरा, प्रीति, रति, वाणी, पुष्टि और निवृत्ति की साक्षात् मूर्ति है । जिस सुराको देवता अमुर, गन्धर्व यक्ष, राक्षस, मनुष्य रति नामसे पुकारते है उस सुराको विधि पूर्वक पानकरे । (विधि पूर्वक कहने का यहाँ तात्पर्य है कि इसके पानमें न्यतिक्रम होनेसे यह पूर्योक्त गुणों से विपरीत फल देती है) ।

सुरापानकी विधि ॥

शरीरकृतसंस्कारःशुचिरुतमगन्धवान् ।
 प्राहतोनिर्मलैर्वस्त्रैर्यथर्तुद्धामगन्धिभिः ॥
 विचित्रविधिस्रग्वीरत्नाभरणभूषितः ।
 देवाद्दिजातीनसंपूज्यस्पृष्ट्वामङ्गलमुत्तमम्
 देशेयथर्तुकेसृष्टेकुसुममकरीकृते ॥ संवा
 ससंमतेमुख्येधूपसंभोदवोधिते । सोपधा
 नेसुसंस्तीर्णेविहितेशयनासने ॥ उप
 विष्टोऽथवातिर्यह स्वक्षरीरमुखोऽस्थितः ।
 सौवर्णेःराजतैश्चापितथामणिमयैरापि ॥
 भाजनैर्विमलैश्चत्रैःसुकृतैश्चपिवेत्सदा ।
 स्त्रीभिर्यौवनमवाभिःशिक्षिताभिर्यथर्तुकैः
 वस्त्राभरणमाल्यैश्चभूषिताभिर्विभूषितः ।
 शौचानुरागयुक्ताभिःममदाभिरितस्ततः॥
 संवाप्तमानइष्टाभिःपिवेन्मद्यमनूत्तमम् ॥
 पिवेन्मद्यानुकूलैर्वाफलैर्हार्तिकैःशुभैः ॥
 लवणैर्गन्धापिशुनेर्वरदशैर्यथर्तुकैः । भृष्टै
 र्मांसैर्बहुविधैर्भूजलाम्बरचारिणाम् ॥
 पांगवजविहितैर्भक्ष्यैश्चविधिवात्मकैः
 अर्थ—वसन विरचन के पदचात देहके शुद्ध होने पर पवित्र, उत्तम सुगंधित पदार्थोंसे युक्त होकर सुगंधित निर्मल वस्त्रों को धारणकरे अनेक प्रकार के पुष्पों की माला धारण करे, तरह तरह के रत्नजडित आभूषणोंको पहरे देवता और द्विजोंकी पूजाकरके मंगलद्रव्योंका स्पर्श करे । तदन्तर ऋतुके अनुकूल अनेक प्रकार के पुष्पों से निर्मित, सुगंधित द्रव्योंसे भूषित, बसन योग्य स्थानमें एक क्षया विद्यवाये जिसपे मनोऽनुकूल तोसक तकिये लगा रहे हों, उस

शय्या वा आसनपर बैठकर अथवा मुख फेर कर सोने, चांदी वा मणिमय निर्मल चित्र विचित्र और अच्छे बने हुए पात्रमें मद्यको भरकर पान किया करे । यौवनके मदमें चूर, सुशिक्षित ऋतुके अनुकूल वस्त्र आभूषण, मालाओंसे अलंकृत, आभूषणोंसे भूषित, शौच और अनुरागसे युक्त, मनोहारिणी स्त्रियां देह पर इधर विधर हाथ फेरतीहों । मदपानके पश्चात् मद्यानुकूल उत्तम हरे फल वा ऋतु के अनुकूल नमकीन और सुगंधित अवदंशादि (माजून, चटनी इत्यादि) का सेवन करे ॥ अनेक प्रकारके थलचर जलचर आकाशचर जीवोंका मांस भूज कर उन में नमक सुगंध द्रव्य आदि मसाले डालकर अनेक प्रकार के बनाकर सेवन करे ॥

दोषानुसार मद्यपान विधि ।

पूजयित्वासुरान्पूर्वमाशियःभ्राक्प्रमुज्यच
प्रदायसजलमद्यमादितोवसुधातले ।
अभ्यङ्गोत्सादनस्नानवासोधूपानुलेपनैः
स्निग्धोष्णैर्भाषितैश्चान्नैर्वातिकेमद्यमा-
चरेत् । शीतोपचारैर्विधिर्मधुरस्निग्ध-
शीतलैः । पित्तिकोभाषितश्चात्रैःपिवे-
न्मद्यंनसीदति ॥ उपचारैरशिशैर्यव
गोधूमभृकुपिवेत् । श्लैष्मिकैर्धन्वजैर्या-
सैर्मद्यमारिचकैःसह ॥ विधिर्वसुमतामे-
वमविष्यद्विभवाश्रये । यथोपपत्तिकै-
र्मद्यपातव्यंमात्रयाहितम् ॥

अर्थ—प्रथम देवताओंका पूजन करके
शुभल पाठ्यकर फिर मद्यमें घोटासा जल मि-

लाकर पृथ्वी पर डाल दें । तदनन्तर वा-
तप्रकृति वाला मनुष्य अभ्यंग, उबटना खान
करके, कपडे पहनकर, धूमपानकरके चन्दन
लगाके स्निग्ध और उष्ण अन्नके साथ मद्य
का सेवन करे । पित्तप्रकृति वाला पुरुष अ-
नेक प्रकारके शीतल उपचारोंके पीछे मधुर,
स्निग्ध और शीतल अन्नोंके साथ मद्यका
सेवन करे । इक्षीतरह कफप्रकृतिवाला पुरुष
उष्ण उपचारोंके करनेके पश्चात् गेहूँके प-
दार्य और कालीमिरच डालकर सिद्ध किये-
हुए धन्वज पशुओंके मांसकेसाथ मद्यपानकरे
जो मनुष्य धनपात्रहै, वा भविष्यत्में
धनपात्र होनाचाहेतहै वे ऊपर कहीहुई विधि
के अनुसार प्रमाण पूर्वक मद्य का पानकरे ।

प्रकृत्यनुसार पेयमद्य ।

वातिकेभ्योहितमद्यंमायोगौडिकपैष्टिकम्
कफपित्ताधिकेभ्यस्तुफालमाधवशर्करम्
बहुद्रवंबहुगुणंबहुकर्ममदात्मकम् ॥
गुणैर्दोषैश्चतन्मद्यमुभयैरुपदेक्ष्यते ।

अर्थ....वातप्रकृतिवाले पुरुषों को प्रायः
गुडसे बनाहुआ और पिष्टकसे बनाहुआ मद्य
हितहै, कफप्रकृति तथा पित्त प्रकृति वालों
को फल, मधु और शर्करासे बनाहुआ हित
होताहै । मद्य अत्यन्त पतला होताहै यह अ-
नेक प्रकारके कर्म और गुणोंका करने वा-
ला है । अब मद्यके गुण और दोष वर्णन
कियेजाते हैं ।

मद्यके गुणदोष ।

विधिनामात्रयाकालेहितैरन्नैर्यथावलम् ॥
महृष्टोयःपिवेन्मद्यंतस्यस्यादमृतोपमम् ।

यथोपेतंपुनर्मद्यंपसंगाद्येनपीयते ॥ रूक्ष
व्यायामनित्येनविपद्यथातितस्यतत् ।
मद्यंहृदयमाविश्यस्वगुणैरोजसोगुणान् ॥
दशभिर्दशसंक्षोभ्यचेतो नयतिचिक्रियाम् ।

अर्थ.... उचित समयमें विधिपूर्वक मात्रा-
वत् और हितकारी अन्नके साथ बलके अ-
नुसार प्रसन्न चित्त से मद्यपान करे । तौ
यह मद्य अमृतके समान गुणकारक होताहै।
और जो रूक्ष और परिश्रमी मनुष्य यथा-
प्राप्त मद्यको अत्यन्त प्रसंगसे पीलेता है उस
को विपके समानहै ।

मद्य हृदयमें प्रवेश करके अपने दशगुणों
से ओजोधातुके दशगुणोंको क्षुभित करके
चित्तमें विकार उत्पन्न करताहै ।

मद्यकेदशगुण ।

लघूप्व्णतीक्ष्णमूक्षमाम्लव्यवायाशुगमे
वच ॥ रूक्षंविकासिविपदंमद्यंदशगुणं
स्मृतम् ।

अर्थ—मद्यमें दश प्रकारके गुण होतेहै,
यथा—हलकापन, उष्णता, तीक्ष्णता, सू-
क्ष्मता, खटाई, व्यवायत्व, शीघ्रगामित्व, रू-
क्षता, विकासित्व और विपदता ।

ओजोधातुकेदशगुण ।

गुरुशीतमृदुश्लक्ष्णं बहुलमधुरंस्थिरम् ॥
प्रसन्नं पिच्छिलंस्निग्धं ओजोदशगुणंतथा ॥

अर्थ.... भारीपन, शीतलता, मृदुता, श्ल-
क्ष्णता, बहुलता, मधुरता, स्थिरता, प्रसन्न-
ता, पिच्छिलता और स्निग्धता ये दश गुण
ओजोधातुके हैं ।

मद्यगुणोंसे ओजुकेगुणोंकानाश ।
गुरुत्वंलाघवाच्छत्यं चाण्ण्यादम्लस्वभा

वतः । माधुर्यमादिवंतैक्षण्यात्प्रसादश्चा
शुभावनात् ॥ रौक्ष्यात्स्नेहं व्यवायित्वा
त्स्थिरत्वंश्लक्ष्णतामपि । विकासिभा
वात्पिच्छिल्यं वैशद्यत्सान्द्रतांतथा ।
सौक्ष्म्यान्मद्यंविहन्त्येवमोजसःस्वगुणैर्गु
णान् ॥

अर्थ... मद्यके दशगुणोंसे ओजोधातुके द-
शगुणोंका नाश नीचे लिखीहुई रीतिसे होता
है । यथा मद्यके हलकापनसे ओजका भारा-
पन, उष्णतासे शीतलता, अम्लतासे मधुर-
ता, तीक्ष्णतासे मृदुता, शीघ्रगामित्व से स्व-
च्छता, रूखापनसे चिकनाई, व्यवायितासे
स्थिरता, विकासितासे श्लक्ष्णता, पिच्छिलता
से विशदता और सूक्ष्मतासे गाढेपनका
नाश होताहै ॥

नशेकाकारण ।

सत्वंतदाश्रयं चाशुसंक्षोभ्यजनयेन्मदम् ।

अर्थ—मन ओजोधातुके आश्रितहै अत-
एव ओजो धातुके नष्ट होनेसे शीघ्र ही मद्य
उत्पन्न होताहै ।

रसधात्वादिमार्गानां सत्वबुद्धीन्द्रियात्म
नाम् ॥ प्रधानस्याजसर्भ्वहृदयस्थानमु
च्यते । अतिपीनेन मद्येन चिदनेनोजसा
चतत् ॥ हृदयेनानिवृत्त्येनप्रश्यायेन
धानव ।

अर्थ—हृदय रसादि धातुओं का स्थानहै,
मन, बुद्धि, इन्द्रियगण, आत्मा आदि प्रधान
ओजोधातुका स्थानहै । अन्यत्र मद्यपान
करनेमें ओजोधातु नष्ट होजातीहै इससे
ओजोधातुके नष्ट होनेमें हृदय विकृत हो जाताहै
और हृदयस्थधातु भी नष्ट होजातीहै ।

मद्यको पूर्वापरत्व ।

ओजस्यविहितेपूर्वहृदिचप्रतिबोधिते ॥

मध्यमेविहितेऽल्पेचविहितेत्तमोमदः ।

अर्थ—जितने मद्यके पानसे ओज अविहितहो और हृदयमें चैतन्यताहो उसको पूर्व मद कहतेहैं । ओजके अल्पविहित होने पर मध्यममद और सर्वथा विहित होनेपर उत्तममद कहाताहै ॥

पैष्टिकमद्यकेगुण ।

नैवंविधातंजनयन्मद्यपैष्टिकमोजसः ॥

विकासरूपाविपदागुणास्तत्रहिनोत्वणाः

अर्थ—पैष्टिकमद्य भोजोधातुमें ऐसा विकार कभी उत्पन्न नहीं करताहै, क्योंकि इसमें विकासी, रूक्ष और विपद ये गुण अधिक नहीं होतेहैं ॥

मद्यगुणाविष्टकेलक्षण ।

हृदिमद्यगुणाविष्टेहर्षस्वपौरतिःसुखम् ।

अर्थ....हृदयके मद्यगुणसे आविष्ट होनेपर हर्ष, तर्प (इच्छा), रति और सुख ये उत्पन्न होतेहैं ।

अतिसेवितमद्यकेउपद्रव ।

विकाराश्चयथासत्संचित्राराजसतामसाः
जापन्तेमोहनिद्रार्त्तामद्यस्यातिनिपेवणा
त्तासमद्यविभ्रमोनाम्नामदइत्यभिधीयते ॥

अर्थ—मद्यके अत्यन्त पानसे जैसा मध्य होताहै उसके अनुसार अनेक प्रकार के रजोगुण उत्पन्न होतेहैं मोह तथा निद्रा की उत्पत्ति भी होती है । इसीदशा को मद्यविभ्रम वा मद कहते हैं ॥

मद्यकेभेद ।

पयिमानस्यमद्यस्याविज्ञातव्यास्रयोमदाः

प्रथमोमध्यमोऽन्त्यश्चलक्षणैस्तान्प्रवक्ष्यते

अर्थ—मद्यपानसे तीनप्रकारका नशा उत्पन्न होताहै, यथा—प्रथम, मध्यम और अन्त्यम । अब इनमें से प्रत्येकके लक्षण कहतेहैं

प्रथममदकेलक्षण ।

महर्षणःप्रीतिकरःपानान्नगुणदर्शकः ॥

वाद्यगीतप्रहासानांकथानाञ्चप्रवर्त्तकः

नचबुद्धिसृष्टिहरोविपयेपुनचाक्षमः ॥

सुखनिद्राप्रबोधश्चप्रथमःससुखोमदः ।

अर्थ—प्रथममद हर्षवर्द्धक, प्रीतिकारक अन्नपानके गुणोंका दिखानेवाला, बाजा, गीत, प्रहास और अनेक प्रकारकी वार्ताओंका प्रवर्त्तक होताहै, इससे बुद्धि और स्मृति का नाश नहीं होता, इन्द्रिय विषयोंमें असंमर्धता नहीं होती, सोने और जागने में सुख होता है ॥

मध्यममदकेलक्षण ।

सुहुःसृष्टिर्गुहुर्योहोव्यक्तासज्जातिवाहसुहुः

युक्तायुक्तप्रलापश्चप्रचलायनमेवच ।

स्थानपानान्नसांक्ष्येयोजनासविपर्यया

लिङ्गान्येतानिजानीयादाविष्टेमध्यमेमदे

अर्थ....कभी वाणी की व्यक्तता, कभी कण्ठ

का धिरजाना, युक्त और अयुक्त प्रचाप,

कभी चलना, कभी बैठजाना, कभी खाना,

कभी पीना आदि विपर्ययकर्म होते हैं ॥

मध्यममदकानिपेध ।

मध्यमेमदसुत्कम्यमदमप्राप्यचोत्तमम् ॥ न

किञ्चिन्नाशुभंकुर्तुर्नररररजसतामसाः

कोमदताहशविद्धानुन्मादमिचदारुणम् ॥

गच्छेद्दध्वानमस्वन्तवहुदोपमिवाध्वगः ।

अर्थ—रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्यों को जो उत्तममद प्राप्त न हो तो वे मध्यममद को प्राप्त करके अनेक प्रकारके अशुभकर्म कर बैठते हैं। इस भयानक मध्यम मदका इत्तरह त्यागकर देना चाहिये जैसे यात्री बहुत विघ्नोंसे युक्त मार्गका परित्याग करते हैं।

तृतीय मद के लक्षण ॥

तृतीयंतुमदं प्राप्य भद्रदार्ढ्यानिष्क्रियः ॥
मदमोहाहतमना जीवन्नपिभूतः समः । र-
मणीयान् सविपया भवेत्तिनसुहृज्जनम् ॥
यदर्थं पीयते मद्यं रतितां च न विन्दति ॥ का-
र्याकार्यसुखदुःखं लोके यद्यहिताहितम् ।
यदवस्थानजानाति कोऽवस्थातां व्रजेद्युधः ।
सदूप्यः सर्षभूतानिन्धया प्राणैश्च ॥
व्यसन्ति त्वा दुदुर्कं च सदुःखं व्याधि मश्नुते ॥

अर्थ—तीसरे मदके होनेसे मनुष्य टूटा लकड़ीकी तरह निष्काम होजाता है, उसका मन मद और मोहसे आरुत होनेके कारण यह जीता हुआ भी मरे हुए के समान होता है, उस दशामें उसको भोग्य विषय और सुहृज्जनोंका भी ज्ञान नहीं रहता है। जिस रति विहास के शिथे वह मद्यपान करता है उसका आनन्द भी उसके हृष्य नहीं लगता है। जिस अवस्थाके ज्ञान होनेमें कर्तव्याकर्तव्यकर्म, सुख दुःख और हिताहित का ज्ञान नहीं रहता है, उस अवस्थाके प्राप्त काले को कौनसा बुद्धिमान् दृष्टा करता है। ऐसा मद्य मनुष्य सब प्राणियों की दृष्टिमें दूष्य, निन्दनीय और अपाक्ष होजाता है और सुदामें पूर्व दुर्घ्यमनों

के कारण कृच्छ्रसाध्य व्याधियोंसे ग्रस्त होजाता है

मदके अवगुण ॥

प्रत्यचेहचयच्छ्रेयः श्रेयोमोक्षदचयत्परम् ॥
मनःसमाधौ तत्सर्वभायत्सर्वदेहिनाम् ।
मद्येन मनसश्चास्यसक्षोभः क्रियते महान् ।
महामारुतवेगेन तदस्थस्य वशास्विनः ।

अर्थ....इस लोक और परलोक में जो श्रेय पदार्थ हैं और जो उत्तम मोक्ष है वह प्राणियों के मनकी एकाग्रता पर निर्भर है। यह एकाग्रता मद्यपान से नष्ट होजाती है, जैसे वायु के वेग से किनारे के वृक्ष झुकने पडते हैं ॥

मद के अन्य अवगुण ।

मद्यमसद्मदानं महादोषं महागदम् ॥ सु-
खमित्यधिगच्छन्ति रजोमोहपराजिताः ॥
मद्योपहतविद्वाना विबुक्ताः सार्चिकर्गुणः ॥
श्रेयोभिर्विभृग्यन्तमदान्यामदव्यावृत्ताः ।
मद्ये मोहो मयं प्राक् क्रोधा मृग्युश्च संश्रिताः ।
मोन्मादं मदमूर्च्छायाः सापस्मारापनान-
काः ॥ यत्र कस्मिन् विप्रं गुस्ता प्रययं पया-
वृत्तम् । इत्येवं मद्योपपन्नमर्थगर्होन्वित-
नयः ॥

अर्थ....मद्य में आर्गिक का होना अज्ञान, महादोष और यत्रकर्म गंभीरका उत्पत्त करने वाला है। रज और मोह में पगलप हृष्य मनुष्यों का इस में गुण गुणना है। मदान्ध और मद की व्यावृत्ता कर्मों की मनुष्य मद्यपान से ज्ञान शक्ति का ज्ञान है, उनके मत्तगुण नष्ट होजाते हैं और श्रेय-कार पदार्थों में यह विषुय होजाते हैं।

पान में मोह, भय, शोक, क्रोध मृत्यु उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार और अपतानक इतने उपद्रव आश्रित रहते हैं, मद्य में स्मृतिविभ्रंश एक सव में भारी दोष है इसी से सम्पूर्ण उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

इसतरह मद्यके दोषोंके जानने वालों ने मद्य की निन्दा की है।

युक्ति वाजत मद्यपान के दोष।

सत्यमेतेमहादोषामद्यस्योक्तानसंशयः ॥

अहितस्यातिमात्रस्यपीतस्यधिधिबर्जनम्

किन्तुमद्यस्वभावेनयथैवाभ्रंतथास्मृतम् ।

अयुक्तियुक्तंरोगाययुक्तियुक्तं तथा मृतम् ॥

प्राणः प्राणभृतामभ्रंतद्रयुक्त्यानिहन्त्यसून ।

विपंप्राणहरंतद्युक्तियुक्तंरसायनम् ॥

अर्थ—विधि रहित अहितकारी मद्यका

अत्यन्त पान करने से जो महादोष मद्य के

कहे गये हैं वे ठीकही हैं, उनमें कोई संदेह

नहीं है, परन्तु मद्यका और अन्नका स्वभाव

एकसा है। बिना युक्ति से युक्त किया मद्य

रोगों को उत्पन्न करता है और उसीका

युक्ति पूर्वक सेवन करना अमृत के समान

गुणकारी है, जैसे युक्ति पूर्वक अन्नका से-

वन करनेसे प्राणोंका पोषण होता है और

अयुक्ति पूर्वक सेवन करने से प्राणों का हर

ण कर लेता है। जो विष प्राणोंका नष्ट कर

ने वाला है उसी का युक्ति पूर्वक सेवन कर

नेसे रसायन का काम देता है ॥

युक्तिपूर्वक मद्यके गुण ॥

हृषीमूर्त्तामदं पुष्टिमारोग्यं पौरुषं परम् । यु

क्त्यापीतं करोत्याशुमद्यमं दुःखं वा वहम् ॥

रोचनं दीपनं हृद्यं स्वरवर्णमसादनम् । प्री

णनं वृंहणं त्रयं भयशोकश्रमापहम् ॥ स्वा

पनं नष्टनिद्राणां मूकानां वाग्बोधनम् ।

बोधनञ्चातिनिद्राणां विवृद्धानां विबन्धनु

त् ॥ वध्वन्धपरिक्षेशदुःखानाञ्चावमो

हनम् । मदोत्थानाश्च रोगाणां मद्यमेव

प्रसाधकम् ॥ रतिविषयसंयोगप्रीतिसं

योगवर्द्धनम् । अतिप्रवयसामद्यमुत्सवा

मोदकारकम् ॥

अर्थ....युक्तिपूर्वक मद्य के सेवनसे हर्ष,

उत्साह, मद, पुष्टि, अरोगिता और अत्यन्त

पुरुषार्थ बढ़ता है, मद्यका मद सुख प्रबोधक

होता है। यह शक्तिवर्द्धक अग्निसंदीपन,

हृदयको हितकारी, स्वर और वर्णको बढ़ाने

वाला, प्रीणनकर्त्ता, वृंहणकर्त्ता बलकर्त्ता भ-

यनाशक, शोकहर्त्ता, श्रमनाशक है जिसकी

निद्रा नष्ट होगई हो उसको नींद आजाती

है, गुणोंकी बोलै खुलजाती है, अतिनिद्रित

अर्थात् गाफिलों को चेत होजाता है, जिन

को दस्तकी कवजियत होती है उन का क-

ब्ज मिट जाता है। बध्वन्ध, परिक्षेश

और दुःखोंका इससे नाश होजाता है, मद

से उत्पन्न हुए रोगों को मदही दूर करता

है, यह रति विषयमें संयोजक, प्रीतिके संयो

ग का वर्द्धक, वृद्धमनुष्योंको आल्हाद और

आमोद का उत्पन्न करने वाला है ॥

प्रथम मद के गुण ।

पञ्चस्वयंपुक्कान्तेपुयारतिः प्रथमेपदे । यू

नांवास्थविराणां चातस्यनास्त्पुपमाभुवि

बहुदुःखकृतस्यास्यशोकेनोपहतस्य च ।

विश्रामोजीवलोकस्यमदयुक्त्यानिपेधि
तम् ॥

अर्थ—मदकी प्रथमावस्था में युवा और
वृद्ध मनुष्यों को जो आनन्द पाँचों इन्द्रियों
के निषेधों में प्राप्त होता है उसकी उपमा पृ-
थ्वी में नहीं है। युक्ति पूर्वक सेवन किया
हुआ मद बहुत दुःखों से व्याप्त और शोक
से उपहत प्राणियों के लिये विश्राम दायक है ॥

मद्यपान में कर्त्तव्य ।

अन्नपानवयोव्याधिवलकालात्रिकाणि
षट् । प्रीन्द्रोपांस्त्रिविधसत्त्वंज्ञात्वामद्यं
पिवेत्सदा ॥

अर्थ....अन्न, पान, वय, व्याधि, वल
कालकी तीन अवस्था ये सब छः और ती-
नों दोष, तीनों प्रकारका सत्व इनको वि-
चार के मद्यपान करे ।

तेपात्रिकाणामष्टानां योजनायुक्तिरुच्यते।
यथायुक्त्यापिवेमद्यंमद्यदेर्पिनयुज्यते ॥
मद्यस्यचगुणान्सर्वान्यथोक्तान्समुपाश्नुते।
धर्मार्थयोरपीडार्थिनैरःसत्त्वगुणोच्छ्रितः ॥

अर्थ—इन आठोंकी तीन तीन युक्तियों
के अनुसार मद्यका योग करना मद्य की
युक्ति कहाती है। युक्ति पूर्वक मद्यके सेवनसे
मद्य के दोष नहीं होने पाते, और मद्य के
यथोक्त सम्पूर्ण गुण भोगने में आते हैं, त-
था धर्मार्थ के अवर्षाडन और सतोगुणके
वढनेसे आनन्द प्राप्त होता है ॥

सत्त्वानितुप्रमुद्यन्तेप्रायशःप्रथमेमदे । द्वि-
तीयेव्यक्ततायातिमदेचोत्तममध्ययोः ॥
सत्त्वंसम्बोधकहर्षहेमप्रकृतिदर्शकः । यथा
प्रिरेवंसत्त्वानांमद्यमकृतिदर्शकम् ॥

अर्थ—उत्तम और मध्यम प्रकृतिवाले
मनुष्योंके प्रथम मदमें सम्पूर्ण सत्व प्रबुद्ध
होते हैं और मध्यम मदमें सम्पूर्ण सत्व व्य-
क्त अर्थात् स्पष्ट होजाते हैं, जैसे अग्नि से
सुवर्णकी प्रकृति दीखने लगती है उसी त-
रह मद्य भी सत्व सम्बोधक, हर्षवर्द्धक और
और प्रकृतिदर्शक होता है ॥

सुगन्धमाल्यगन्धैर्वासुप्रणतिमनाकुलम् ।
मिष्टान्नपानविशदंसदामधुरसंकथम् ॥
सुखप्रमाणंसुमदंमहर्षप्रीतिवर्द्धनम् । स्व-
न्तंसात्त्विकमापन्नंचोत्तममदमदम् ॥

अर्थ....सुगन्धित गंधमालाकी धारण कर
के, सुन्दर वनायेहुए निर्मल मिष्टान्न पान
के साथ प्रमाणसे सेवन कियाहुआ मद्य तथा
मिष्टवार्ताओं से युक्तिपूर्वक सेवन कियाहुआ
मद्य उत्तम नशा करता है, हर्ष और प्रीति
को वढाता है यह मद अन्तमें सात्त्विकता
उत्पन्न करता है तथा इससे उत्तम और
कोई मद नहीं है ॥

वैगुण्यंसहसायान्तिमद्यदोर्पैर्नसात्त्विकाः।
मर्थाहवलवत्सत्त्वंभृद्ग्रातिसहसान्तु ॥

अर्थ....मद्यके दोषसे सत्वप्रकृति पुरुष
शीघ्रही विगुणताको प्राप्त नहीं होजाते हैं।
मद्य बलवान् सत्व को सहसा पराजित नहीं
करसक्ता है ॥

राजसादिप्रकृतिमद्यकेकर्म ॥

सौम्यासौम्यकथामायंत्रिपदाविपदक्षणा
त्। चित्रंराजसमापानंभायेणास्वन्तमाकुल
म् ॥ हर्षस्मृतिकयोपेतमदुष्टपानभोजने।संमो
हक्रोधनिद्रार्त्तमापानंतामसंस्मृतम् ॥

अर्थ—राजसप्रकृतिवाला मनुष्य मद्यके पीने से कभी सौम्य कभी असौम्य यातें करने लगता है, क्षणभर में विशद और क्षणभर में अविशद भाव को ग्रहण करता है, उस के स्वभाव में एक तरह की विचित्रता पैदा होजाती है, अन्त में प्रायः आकुल होजाता है। इसको हर्ष, स्मरण और कथोपकथन बढ़जाता है, खाने पीने में तुष्टि नहीं होती है। जिसमें मोह, क्रोध और निद्रा पीनेवाले को घेरलेते हैं उसे तामस आपान कहते हैं।

आपानेसात्त्विकानुद्वधातथाराजसतामसान् । जहात्सहायान्यैःपीत्वासहदां पानुपाश्रुते ॥

अर्थ—मदिरालयमें सात्विक, राजस और तामस का विचार करके जिन के साथ मद्यपान करने से दोष बढ़ते हों उन का परिखाग करेदेवे ॥

मद्यपानकेभोग्यसाथी ।

सुखशीलाःशुभभाषा सुमुखाःसमताःसताम् । कलामुवाक्यविपदाविषयप्रवणाश्चये ॥ परस्परविधेयायेपामैक्यंसुहृत्तया । प्रहर्षप्रीतिमाधुर्यैरापानवर्द्धयन्ति ये ॥ उत्सवादुत्सवतरयेपामन्योन्दर्शनम् । तेसहायाःसुखाःपानैःतैःपिवन्सहमोदते ॥ रूपगन्धरसस्पर्शैःशब्दैश्चापिमनोरमैः । पिवन्तिसुसहायायेतेनैसुकृतिभिःसमाः । पञ्चभिर्विषयैरिष्टरूपैर्मनसःमिषैः । देशकालोपवेन्मद्यग्रहणान्तरात्मना ॥

अर्थ—जिन मनुष्यों का स्वभाव शील-सम्पन्न हो, जो मधुरभाषी, सुमुख, सत्संगी हों जो कलाकुशल, बात कहने में प्रवीण, विषयों में लीन, परस्परस्नेही, ऐक्यतायुक्त सुहृदता सम्पन्न हों, जो मदिरालय में हर्ष प्रीति, और मधुरता को बढ़ावें। जिन के एक दूसरे से मिलने में अत्यन्त आनन्द की वृद्धि हो। ऐसे मनुष्यों के साथ मद्यपान करने से सुख बढ़ता है और इन्हींके साथ में मद्यपान करना चाहिये। मनकोहरण करनेवाले रूप, रस गंध, स्पर्श तथा शब्दों के बीच में उत्तम साधियों के साथ जो मद्यपान करतेहैं वे बड़े सुकृती पुरुष होतेहैं ॥ उत्तमदेश काल में अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे मनोऽनुकूल शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध इन पांच विषयों से युक्त होकर मद्यपान करना चाहिये।

स्थिरसत्त्वशरीरायेपुराणामद्यपान्व्याः । बहुमद्योचितायेचमाश्रन्तिसहसान्ते ॥ प्राह्मद्याःशुत्पिपासार्त्ताहुर्यलावातपैत्तिकाः । रूक्षाल्पप्रमिताहाराविस्तृब्धःसत्त्वदुर्वलाः ॥ श्रोथिनोऽनुचिताःक्षीणाः परिश्रान्तामदक्षताः । अल्पेनापिमदशीघ्रयान्तिमद्येनमानवाः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यका मन और शरीर स्थिरहै, जिसके कुटुम्बमें मद्य पीतेआये हैं जो बहुत मदिरा पीनेका अभ्यास रखतेहैं उनको नशा बहुत शीघ्र नहीं होता जो क्षुधा और प्यास से आतुर है, दुर्वल है, वापित्त की प्रकृतिवाले हैं, जो रूखा थोड़ा

और प्रमित मोजन करते हैं, जो विस्तब्ध हैं जिनका मन दुर्बल है, जो क्रोधी हैं, जिनको मद्यपान का अभ्यास नहीं है, जो क्षीण, धकेहुए और मद्य से क्षय हैं, ऐसे मनुष्योंको थोडा भी मद्य पाने से बहुत शीघ्र-नशा होजाता है ॥

ऊर्ध्वमदात्ययस्यातःसम्भवेस्वस्वलक्षणम् । अग्निवेश ! चिकित्साञ्चप्रवक्ष्यामियथाक्रमम् ॥

अर्थ....हे अग्निवेश! अब यहां से मदात्यय की उत्पत्ति, लक्षण और पृथक् र चिकित्सा का क्रम से वर्णन करेंगे ॥

वातमायमदात्ययकी उत्पत्तिका कारण । स्त्रीशोकभयमारारुध्वकर्म्मभियोऽतिकर्षितः । रूक्षाल्पप्रमिताशवायःपिवत्यतिभात्रया ॥ रूक्षपरिणतमर्द्यनिशिनिद्राविहृत्यच । करोतितस्यतच्छीघ्रवातमायमदात्ययम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त स्त्रीसेवन, शोक, भय, भारबहन और मार्गगमन आदि परिश्रमोंसे अत्यन्त कृश होगया है और रूक्ष; अल्प और प्रमित भोजन किया करता है । ऐसा मनुष्य यदि अत्यन्त मद्यपान करे तो वह मद्य परिणाममें अत्यन्त रूक्षता को उत्पन्न करके रात्रिमें निद्रा को दूर करके शीघ्रही वातजन्य मदात्यय रोगों को उत्पन्न करदेता है ॥

वातिकमदात्यय के लक्षण ।
दिक्काकासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागैः ।
विद्याद्बहुप्रलापस्यैवातमायमदात्ययम्
अर्थ....हिचकी, सांती, शिरःकम्प, पार्श्व

शूल, निदानाश और अत्यन्त प्रलाप ये वातप्राय मदात्यय के लक्षण हैं ।

पित्तजमदात्ययका वर्णन ।

तीक्ष्णोष्णमद्यमम्लेवायोऽतिमात्रंनिपेवते । अम्लोष्णतीक्ष्णभोजीचक्रोधनोऽन्यातपप्रियः ॥ तस्योपजायतेपित्ताद्विशेषेणमदात्ययः । सतुवातोल्बणस्याशुप्रशमयतिहन्तिवा ॥ तृष्णादाहज्वरस्वेदमूर्च्छातीसारत्रिभ्रमैः । विद्याद्दरितवर्णस्यपित्तमार्यमदात्ययम् ॥

अर्थ....जो मनुष्य तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्य का अत्यन्त सेवन करताहै, तथा जो खट्टे, उष्ण और तीक्ष्ण भोजन किया करता है, जो अत्यन्त क्रोधी होताहै तथा जिसको अग्नि और धूप अच्छे लगते हैं उसके पित्तजन्य मदात्यय उत्पन्न होताहै । वातोल्वणवाले मनुष्यको पित्तजन्य मदात्यय या तो शीघ्रही मारडालता है या अच्छा होजाता है ।....तृष्णा, दाह, ज्वर, स्वेद, मूर्च्छा, अतीसार, विभ्रम और देहका हरावर्ण ये पित्तज मदात्यय के लक्षणहैं ॥

कफप्रायमदात्ययका वर्णन ।

तरुणमधुरप्रायगोडपेट्टिक्रमेववा ॥ मधुरस्निग्धशुर्वाशीयःपिवत्यतिगात्रया । अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरतः ॥ मदात्ययंकफमार्यसशीघ्रमधिगच्छति ।
ऊर्ध्वरोचकहृत्तासतन्द्रास्तेमित्यगौरवैः ॥
विद्यात्शीतपरितस्यकफमार्यमदात्ययम्
अर्थ....मोठे, चिकने और मारी पदार्थों का भोजन करनेवाला मनुष्य यदि, गया,

मधुरप्राय गुडका वनाहुआ वा पैष्टिकमद्य का अत्यन्त सेवन करे और कसरत कस्ती न करे, दिन में सोवै सुखासन वा शय्या पर पडारहै तौ उसके कफप्रायमदात्यय उत्पन्न होता है । वमन, अरुचि, हृत्प्रास, तंद्रा, स्तिमिता, गौरव और शीत ये सब कफप्राय मदात्यय के लक्षण हैं ॥

विपश्येयगुणादृष्टाः सन्निपातप्रकोपणाः ॥ तएवमद्येदृश्यन्तेविपेतुघलवत्तराः ॥ इन्त्या शुद्धिविपकिञ्चित्किञ्चित्त्रोगायकल्पते ॥ यथाविपंतथैवान्तयोज्ञेयोमद्यकृतोमदः तस्मात्त्रिदोपजंलिङ्गसर्वत्रापिमदात्यये ॥ दृश्यतेरूपवैशेष्यात्पृथक्कंचास्यलक्ष्यते अर्थ.... विपके जो सन्निपातको प्रकोप करानेवाले गुण हैं वेही सम्पूर्ण गुण मद्य में दिखाई देतेहैं और तत्र वेहीगुण विपमें अत्यन्त बलवान् दिखाई देते हैं, कोई विप शीघ्रही प्राणों का नाश करतेहैं और कोई रोगों को उत्पन्न करतेहैं । विपके सदृशही मद्यकृत अन्यमद्य होताहै । इसी हेतुसे मदात्यय रोगोंमें सब जगहही त्रिदोषके लक्षण दृष्टिगत होते हैं । केवल भिन्न २ लक्षणों के कारण उनमें पृथक्ता दिखाई देती है ॥

मदात्ययकेरूप ।

शरीरदुःखं बलवत्संमोहो हृदयव्यथा ॥

अरुचिः प्रततातृष्णाज्वरः शीतोष्णलक्षणः

शिरःपार्श्वस्थिसन्धीनां विद्युत्तुल्याचवे

दना ॥ जायतेऽतिबलाजृम्भास्फुरणं व-

पनश्रमः । उरोविबन्ध कासश्चहिकाश्वा

सः प्रजागरः ॥ शरीरकम्पः कर्णाक्षिप्तव

रोगक्षिकग्रहः । छर्द्यतीसारमुत्केशोवात पिचकफात्मकः ॥ भ्रमः प्रलापोरूपाणा मसतांचैव दर्शनम् । तृणभस्मलतापर्णपां सुभिश्चावपूरणम् । प्रधर्षणं विहङ्गश्च भ्रान्तचेताः समन्यते ॥ व्याकुलानामशस्वानां स्वमानां दर्शनानि च । मदात्ययस्य रूपाणिसर्वाण्येतानिलक्षयेत् ।

अर्थ.... अत्यन्त शारीरिक क्लेश, सम्मोह, हृदयव्यथा, अरुचि निरन्तर तृषा की अधिकता, ज्वर, शीतज्वर, उष्णज्वर, शिर, पसली, हड्डी और जोड़ों में विजलीके समान वेदना, वेगवती जंभाई, फडफडाहट, कंपन, परिश्रम, हृदयमें रुकावट, खांसी, हिचकी श्वास, निद्रान.श, शरीर कम्पन, कर्णरोग, नेत्ररोग, मुखरोग, त्रिकप्रह, वमन, अतीसार, वातोत्केश, पित्तोत्केश, कफोत्केश, भ्रम, प्रलाप, भयंकर रूपोंका दर्शन, तिनुका, भस्म लता, पत्ते, धूल आदिसे भराहुआसा दिखाई देना, विहंगोंसे भयका बोध, भित्तमें भ्रूति, घबडाहट पैदा करनेवाले दुःस्वप्नोंका दीखना ये सब मदात्ययके लक्षण हैं ।

मदात्यय में चिकित्साक्रम ।

सर्वमदात्ययं विधात् त्रिदोषमधिकन्तु यत्ता

दोषं मदात्यये पश्येत् स्यादौषतिकारयेत् ॥

कफस्थानानुपूर्व्या च क्रियाकार्या मदात्य-

ये । पित्तमारुतपर्यन्तः प्रायेण हि मदा-

त्ययः ॥

अर्थ—सब प्रकारके मदात्यय त्रिदोष से

होतेहैं, परन्तु जो दोष अधिक दीखे उसी

की प्रथम चिकित्सा करना उचित है कफ-

स्थानके आनुपूर्वक्रमसे मदात्ययमें चिकित्सा करना योग्य है जैसे प्रथम कफ स्थान है, पीछे पित्तस्थान है, उससे पीछे वायुस्थान है। इसी क्रमसे प्रथम कफकी, फिर पित्तकी और फिर वातकी चिकित्सा करे ॥

मिथ्यातिहीनपीतेनयोच्याधिरुपजायते।
समपीतेनतेनैवसमयेनोपशाम्यति ॥ जी
र्णाममद्यदोपायमद्यमेवमदापयेत् । प्रका
क्षालाघवेजातेयद्यदस्मैहितंभवेत् ॥
सौवर्धलानुसंविद्धंशीतंसविडसैन्धवम् ॥
मातुलुङ्गार्द्रकोपेतंजलयुक्तंममाणचित् ।

अर्थ.... मद्यके मिथ्यापान, अतिपान या हीन पान से जो व्याधि उत्पन्न होती है उनको समान मद्यपान द्वारा शमन करे। जिसका आमजीर्ण होगया हो ऐसे मदात्यय रोगीको मद्यही का पान करावे। तथा शरीरमें हलकापन होनेपर इच्छाके अनुसार हितकारी मद्यपान करावे। मद्यमें सौवर्धल नमक, विडनमक, सैधानमक, विजोरेका रस, अदरक का रस, जल और शीतवीर्य औषध मिलाकर प्रमाणके अनुसार पान करावे।

तीक्ष्णोष्णेनातिमान्नेणपीतेनाम्लविदा-
हिना ॥ मयेनान्नरसोत्प्लेदोविदग्धः क्षा
रतांगतः । अन्तर्दाहंज्वरं तृष्णां प्रमोहं वि-
भ्रमं मदम् ॥ जनयत्याशुतच्छान्त्यै मद्यमे
वमदापयेत् । क्षारोहिपातिमाधुर्य्यं शीघ्र
मम्लोपसंहितः ॥ श्रेष्ठमम्लेषु मद्यञ्चयै

गुणैस्तान्परं शृणु ।

अर्थ.... उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल और विद्राही मद्यके अत्यन्त सेवन करनेसे अन्नके रसका

उच्छेद होकर विदग्धता होती है और फिर उसमें खारीपन होता है तदनन्तर अन्तर्दाह, ज्वर, तृष्णा, प्रमोह विभ्रम और मद ये शीघ्र ही उत्पन्न होजाते हैं इससे इनकी शान्ति के निमित्त मद्यपानही करावे। अम्लसे मिलने पर क्षार में फिर शीघ्र ही मधुरता उत्पन्न होजाती है ॥

अब हम उन गुणोंका वर्णन करते हैं जिनके कारण मद्य सब अम्ल रसोंमें श्रेष्ठ है।

मनके चार अमुरस ॥

मद्यस्याम्लस्वभावस्य चत्वारोऽनुरसा-
स्मृताः ॥ मधुरश्च कपायश्चातिक्तः कटुक
एव च । गुणाश्च दशपूर्वोक्तास्तैः चतुर्दश
भिर्गुणैः ॥ सर्वेषामद्यमम्लानामुपर्युप-
रितिप्रति ।

अर्थ.... मद्यका स्वभाव अम्ल है, इसमें चार अनुरस होते हैं यथा- मधुर, तिक्त, कटुक और कपाय। और इस मद्यके दस गुण पहिले वर्णन किये हैं। इन चौदह गुणोंके कारण मद्य सब अम्ल रसोंमें उत्तम होता है।

मदोत्क्रिष्टेन दोषेण रुद्धः स्रोतः सुमारुतः ।

फरोति वेदनातीव्रांशिरस्यस्थिपुसन्धिषु

अर्थ.... मदोत्क्रिष्ट दोषसे स्रोतः समूहोंके रुकजाने पर वायु सिर, हड्डी और संघियोंमें अत्यन्त तीव्र वेदनाको उत्पन्न करती है।

दोषविष्वन्दनार्थं हितस्मै मद्याविशेषतः ॥
व्यनायितीक्ष्णोष्णतया देयमम्लेषु सत्-
स्वापि । स्रोतोविबन्धमुन्मथ्यमारुतस्वा

नुलोमनम् ॥ रोचनदीपनं चाग्नेरभ्यासा
तसात्म्यमेव च । रसस्रोतःस्वरुद्धेपुमारु
ते चानुलोमिते ॥ निवर्त्तन्ते विकाराश्च शा
म्यन्त्यास्यमदोदयाः ।

अर्थ.... दोषोंको निकालनेके निमित्त उ-
सको विशेष करके मद्यपान करावै । मद्य
व्यथायी तीक्ष्ण और उष्ण होने के कारण
स्रोतः समूहके विवन्ध को दूर करके वायु
का अनुलोमन करता है तथा रुचिकर्त्ता
अग्निवर्द्धक और साम्य होताहै ॥ रस-
वाही स्रोतों के खुलने पर और वायुके
अनुलोमन होनेपर सम्पूर्ण विकार शान्त
होजाते हैं और सब प्रकारके मदजन्य विकार
भी दूर होजाते हैं ॥

वातशमनमें मद्यका प्रयोग ।

बीजपूरकट्टक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम्
पमानीहपुपाजाजीमूद्वेरावचूर्णितम् ।
सस्नेहैः शक्नुभिर्घुक्तमर्धदंशैश्चिचरोत्थितम्
दद्यात्सलवणं मधुपैष्टिकं वातशान्तये ॥

अर्थ—बिजौरा, कट्टक्षाम्ल, वेर, अनार इन
का रस अजथायन, हाऊयेर, जीरा, अदरख
इनका चूर्ण डालकर दे अथवा स्नेह सहित
संतू के साथ नमक डालकर पुराना मद्य
पान करावै तो वातजन्यरोग शान्त होनाताहै

वातोत्त्वणमदात्ययमें चिकित्सा ।

दृष्ट्वावातोत्त्वणं लिङ्गं रसैश्चैनमुपाचरेत् । ला
वति चिचिरिदक्षाणां स्निग्धाम्लैः शिखिनाम
विपाक्षिणां मृगमत्स्यानामानूपानाञ्च संस्कृ
तैः भूशयमसदानाञ्च रसैः शाल्योदनेन च ।
स्निग्धोष्णलवणाम्लैश्च वेशवारैर्मुखामि

यैः ॥ चित्रैर्गोधूमिकैश्चांशैर्वा रूपांमण्ड-
संयुतैः । पिशिताद्रकगर्भाभिः स्निग्धाभिः
धूमवर्तिभिः ॥ मापपूपलिकाभिश्च वाति
कंसमुपाचरेत् । नातिस्निग्धेन चाम्लेन
सिद्धं समरिचार्द्रकम् ॥ रसप्रलोपिसंपूपैः
सुखोष्णैः सह संपिबेत् ।

अर्थ—मदात्ययमें यदि वातकी उत्त्व-
णता के लक्षण दिखाई दें तो लवा, तातर,
मोर और मुर्गेका मांसरस चिकनाई और
खटाई के साथ देकर इसकी चिकित्सा
करै । तथा आनूप, भूशय और प्रसहजा-
तिके पशु और मछलियोंके मांसरस के साथ
शालीचावल देवै । चिकने, गरम, नमकीन
और खट्टे तथा मुखके जायके को सुधा
रनेवाले वेशवार, मुरामण्ड से युक्त अनेक
प्रकार के गेहूँओंके पदार्थ, मांस और अ-
दरख की पिंडी भर्राहई स्निग्ध धूमवर्ती
और उरद के बडे आदिको देकर वातिक
मदात्ययको दूर करै । इस पूर्वोक्त मांसरस
को थोड़ी चिकनाई डालकर खटाई, काली
मिरच और अदरख डालकर देवै । अधवा
सुहाता २ गरम गोशूमपिष्टक में मांसरस
मिलाकर पानकरावै ।

भक्तेन वारुणीमण्डं दद्यात्पातुं पिपासवे ॥
दाटिमस्य रसं वाथजलं वापाञ्च मूलिकम् ।
धान्यनागरतोयं च दधि मण्डमथापिवा ॥
अम्लकाञ्जिकमण्डं वाथुक्तोदकमथापिवा
कर्म्मणानेन सिद्धेन विकार उपशाम्यति ॥
मात्राकालप्रयुक्तेन वलवर्णश्च वर्द्धते ।

अर्थ—मदात्ययमें तृपाकी प्रवर्द्धता होने

पर भातके साथ धारुणीमण्डका पान करावे । अथवा अनार का रस वा पंचमूल का काथ, वा धनिये और सोंठका काथ, अथवा दधिमण्ड वा अम्ल कांजीका मण्ड वा शुक्तोदक देवे । इन अनुभव कियेइये प्रयोगों से मदात्यय के विकार शान्त हो जाते हैं, तथा उचित समयपर प्रमाणके अनुसार देनेसे बल और वर्णकी वृद्धि होतीहै रागखाण्डवसंयोगैर्विधिवैर्भक्तरोचनैः ॥
पिशितैर्वहुपिष्टान्भैर्यवगोधूमशालिभिः ।
अभ्यङ्गोत्सादनैःस्नानैरुष्णैःमावरणैर्धनैः ॥
घनैरगुरुपङ्कैश्चधूपैश्चागुरुजैर्धनैः ॥
नारीणांयौवनोष्णानानिर्देयरवगूहनैः ॥
श्रोण्यूरुकुचभारैश्चसरोधोष्णसुखावहैः ॥
शयनाच्छादनैरुष्णैःरुक्षैश्चान्तर्ग्रहैःसुरैः
मारुतःप्रबलःशीघ्रप्रशाम्यतिमदात्ययः ॥

अर्थ—इस बातिक मदात्यय में भोजन में रुचि बढ़ानेवाले अनेक प्रकारके राग पाडव, अनेक प्रकारके मांस, अनेक प्रकार के मिष्ठान, अनेक प्रकारके जौ, गेहूं, शाली चांवल, अम्पंग, उत्सादन, स्नान, गरम और गाढे ओढने के वस्त्र, कपूर और अंगरका लेप, कपूर और अंगरकी धूप, यौवन के जोरसे उष्ण स्त्रियोंसे गाढ आलिंगन उन स्त्रियों के श्रोणी, ऊरु, कुर्चोंके घर्षण से उत्पन्न गर्मी, उष्णशय्या, उष्ण आच्छादन वस्त्र, सुखदायक रुक्ष अन्तर्ग्रह, इन वस्तुओंका सेवन करने से वातजन्य प्रबल मदात्यय शीघ्रही शान्त होजाता है ।

पित्तमदात्ययमें चिकित्सा ।
भव्यस्वर्जूरमृत्तृकापरूपकरसैर्युतम् ॥
सदाडिपरसंशीतंशक्तुभिःस्ववचूर्णितम् ।
सशर्करंशार्करंवामाध्वीकमथवापरम् ॥
दद्यात्त्वहृदकंकालेपातुंपित्तमदात्यये ।
शशान्कपिञ्जलानेणान्लावानसितपुच्छा
कान् । मधुराम्लान्प्रयुञ्जीतभोजनेशालि
पिष्टिकान् ॥ पटोलयूपमिश्रवाछागलंकल्प-
येद्रसम् ॥ सतीनमुद्रमिश्रवादाडिमामल-
कान्वितम् ॥ द्राक्षामलकस्वर्जूरपरूपकर-
सेनवा ॥ कल्पनान्तर्पणान्पूपान्तरसां
श्चविधिधात्मकान् ॥

अर्थ....भव्य, खजूर, किसमिस और फालसे का रस, तथा अनारका रस सत्तू के साथ मिलाकर, थोड़ीसी चीनी डालकर शर्करामय, वा माध्वीकमय अथवा और किसी मय में बहुतसा जल मिलाकर पित्तजनित मदात्ययमें पान करावे ।

सस्सा, सफेदतीतर, एण, लवा, काली-
पूठका हरिण इनके मांसको मधुराम्ल फरके
शाली चांवल और साठी चांवलों के भात
के साथ देवे । अथवा बकरे के मांसरस में
परबलका यूप मिलाकर उक्तभात का भो-
जन करावे । अथवा मटर और मूंगे के यूप
में अनार और आंवले का रस मिलाकर
इनके साथमें उक्त भात देवे । अथवा दाख
आंवला, खजूर, फालसे का रस इनके साथ
में अनेक प्रकारसे सिद्ध किये हुए तर्पण,
यूप और मांसरस देवे ।

कफपित्त मदात्ययमे चिकित्सा ।

आमाशयस्थमुत्क्रिष्टकफपित्तमदात्यये ॥

विज्ञायचहुदोपस्पदहमानस्यतृप्यतः ।

मधंद्राक्षारसंतोयंदत्यातर्पणमेववा ॥ नि

शेषवामयेतशीघ्रमेवैरोगाद्दिमुच्यते ।

अर्थ—बहुत दोषोंसे युक्त कफपित्त मदात्ययमें आमाशयस्थ आमके अत्यन्त उत्क्रिष्ट होनेपर जब दाह और तृपाकी अधिकताहो तब मद्य, दाखका रस और जलको तृप्ति पर्यन्त पान कराके नि-शेष यमनकरा देवे तौ शीघ्रही रोग जाता रहता है ।

कालेषुनस्तर्पणाढ्यक्रमं कुर्यात्प्रकांक्षिते

तेनाग्निर्दीप्यतेतस्यदोषशेषान्नपाचनः ।

कासेसरक्तनिष्टीवैपाश्वेस्तनरुजोस्तथा ॥

तृप्यतेसविदाहेयसोरलेशेहृदयोरसि ।

गृह्यचीभद्रमुस्तानांपटोलस्याथवाभिपक्व

रसंसनागरंदद्यात्तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥

तृप्यतेचातिबलवद्वातपित्तसमुद्धतो दद्या

द्द्राक्षारसंपातुंशतिदोषान्नुलोमनम् ॥

जीर्णसमधुराम्लेनछागमांसरसेनतम् ।

भोजनंभोजयेन्मद्यस्यानुतर्पञ्चपार्ययेत् ॥

अनुतर्पस्यमात्रासाययानोहन्यतेमनः ।

तृप्यतेमद्यमल्पालंप्रदेयंस्यादबहुदकम् ॥

तृष्णायेनचसंशम्येन्मदयेनचनान्पुपात्

परूपकाणांपीलूनारसंशतमयापिवा ॥

पणिनीनांचतस्पृणापिबेद्वाशिशिरंजलम्

मुस्तदादिमलाजानांतृष्णाध्नंवापिवेद्रस

म् ॥ कोलदादिमृष्टाम्लचुम्बीकाजुकि

कारसः । पञ्चाम्लकोमुखालेषः सद्यःतृ-

ष्णानियञ्छति ॥

अर्थ—फिर उचित समयपर मुख में इच्छा उत्पन्न होनेपर तर्पणः क्रमका अवलम्बन करे, जिससे जठराग्नि बढजाय और दोष निःशेष होकर अन्न पचजाय ।

जो खांसीके साथ रुधिर निकलने लगे, पसली और छातीमें वेदना होवे, दाहके साथ तृपा उत्पन्न होवे, हृदय और वक्षः स्थलमें उत्केश हो तौ गिलेय और भद्र-मोथा वा परबलका काथ सोंठ डालकर देवे और खाने के लिये तीतरका मांस देवे ।

जो वातपित्त के प्रयत्न होनेपर तृपाका वेग अधिक हो तौ उसको किसमित का काथ ठंडा करके देवे इससे दोषों का अनुलोमन होता है । औषध के पचने पर मधुराम्ल बकरी के मांसरस के साथ भोजन करावे और तृपा लगने पर मद्यका पान करावे । तृपित्तको मद्यकी ऐसी मात्रा देवे कि जिससे बेहोशी नहो, तृपाके लगनेपर मद्यमें बहुतसा जल मिलाकर थोडा २ पान करावे जिससे तृपाभी शान्त होजाय और नशा भी उत्पन्न नहो । अथवा फालसा, पीकू इनका शीतल काथ अथवा चारोंपणी का ठंडा काथ अथवा टंडा जल अथवा मोथा, अनार, खील इनका काथ पान करावे । इन प्रयोगों से तृपा शान्त होतीहै । अथवा बेर, अनार, वृक्षाम्ल, चुम्बीका, चूका इन पाँचों खटाइयों का मुख में लेप करने से तृपा तत्काल शान्त होजाती है ॥

पित्त मदात्ययमें सेवनीय कर्म ।

शीतलान्पञ्चपानानिशीतशय्यासनानिच

शीतवातजलस्पर्शः शीतान्युपवनानिच॥
 क्षौमपद्मोत्पलानाञ्चमणीनांमौक्तिकस्य
 च । चन्दनोदकशीतानांस्पर्शाश्चन्द्रांशु
 शीतलाः ॥ हेमराजतकांस्यानांपात्राणां
 शीतवारिभिः । पूर्णानां हिमपूर्णानां हता
 नांपवनाहताः । संस्पर्शाश्चन्दनार्द्राणां
 रीणाञ्चसमारुताः ॥ चन्दनानाञ्चमुख्या
 नांशस्ताः पित्तमदात्यये ।

अर्थ—शीतल अन्नपान, शीतल शय्या
 और आसन, शीतल वायु, जलका स्पर्श
 शीतल उपवन, रेशमीवस्त्र, छालकमल, नी
 लकमल, मणि, मोती, चन्दन और शीत-
 लजलका स्पर्श, चन्द्रमाकां शीतल किरणों का
 सेवन, शीतल जलसे भरे हुए साने, चांदी
 और कांसी के पात्रों का स्पर्श हिमपूर्ण पव
 नाहत दृति (मशक) का स्पर्श तथा ह-
 वादार स्थानमें चन्दनसे तर बतर स्त्रियोंका
 स्पर्श और चन्दनका लेपन ये सब पित्त-
 मदात्ययमें श्रेयस्कर हैं ।

मदात्ययजन्य दाहमें फलव्यकर्म ।
 कुमुदोत्पलपत्राणांसित्तानाञ्चन्दनाम्बु
 ना ॥ हिताःस्पर्शामनोज्ञानांदाहेमद्यसमु
 त्थिते । कथार्थविविधाःशस्ताःश्चन्द्राञ्च
 शिखिनांशिवाः ॥ तोषदानाश्चशब्दाहि
 रामयन्तिमदात्ययम् । जलयन्त्राभिवर्षा
 णिवातयन्त्रवहानिच ॥ कल्पनीयानि
 भिपजादाहेधारागृह्णाणिच । फल्गुनीसे
 व्यलोधाम्बुहेमपत्रकुट्टनम् ॥ फार्सीय
 फरसोपेतदाहेगस्तंलेपनम् । चद्रापि
 ल्लवोत्थाधतर्पचारिष्टकोद्भवाः । फेनि

लायाश्रयःफेनस्तर्दाहेलेपनंशुभम् ॥ सु-
 रासमण्डादध्यम्लंमातुल्लङ्गरसोमधु ॥
 सेकप्रदेहेशस्यन्तेदाहघ्नाःसाम्लकाञ्चि
 काः । परिपेकावगाहेपुव्यञ्जनानाश्चसे
 वने । शस्यतेशिशिरंतोयंदाहवृष्णामशा
 न्तये ॥ मात्राकालप्रयुक्तेनकर्मणानेन
 शाम्यति । धीमतोवैचवदयस्यशीर्षपित्त
 मदात्ययम् ।

अर्थ—मद्यसे उत्पन्न हुए दाहमें चन्दन
 के जल से सींचे हुए कमोदनी और कमल
 के मनोह पत्तों का स्पर्श हितहै, अनेक
 प्रकारकी कथा, मोरोंका मधुर शब्द, वाद-
 लों की गर्जन ये सब मदात्यय को शान्त
 करने वाले हैं । इस दाहमें रोगी को ऐसे
 धागगृहमें निवास करावे जिसमें फव्वारे च
 लतेहो और कलके पंखों की हवा आतीहो।
 इस दाह में प्रियंगु, खस, लोध, नेत्रघाला
 हेमपत्र और कुट्टन इनको पीत चन्दन
 के जलमें पसिकर लेप करे । अथवा घेर के
 पत्तोंकेशाग, नमिके पत्तों के शाग, या रीठा
 के शागों का भी लेपकरने से दाह शान्त
 होता है । गुरामण्ड, दही, खटाई, भिजारेका
 रस, शहत इनको अम्लकांजी में मिलाकर परि
 पेक और प्रदेहमें उपयुक्त करने से दाह
 शान्त होजाता है । शीतल जलसे परिपेक
 स्नान और जलार्द्र पंखोंकी हवाका सेवन
 दाह और तृणकी शान्ति के निमित्त है ।
 यथांचिन फालमें मात्रा के अनुत्तर इन क-
 र्मोंका प्रयोग करने में बुद्धिमान और वैद्यानुया
 यी रोगीका मदात्यय शीघ्र शान्त होजाताहै

कफमद्यकी तृपा के उपाय ॥ :

उल्लेखनोपचासाभ्यांजयेत्कफमदात्यय
म् ॥ तृप्यतेसलिलंचासैदद्याद्हीवेरसा
धितम् । बलायाःप्राश्रेपण्यावाकण्टका
र्याथवाशृतम् ॥ सनागराभिःसर्वाभि
र्जलंवाभृतशतिलम् । दुःस्पर्शितेनमुस्ते
नमुस्तर्पणकनवा ॥ जलंमुस्तैःशृतंवा
पिदद्याद्दोषविपाचनम् । एतदेवचपानी
यंसर्वत्रापिमदात्यये ॥ निरत्पयंपीयमा
नंपिपासाज्वरनाशनम् ॥

अर्थ—कफजन्य मदात्यय को वमन और
लघन द्वारा दूर करें, इस रोगमें तृपाकी
प्रयत्नता होने पर नेत्रवाला डालकर औंटा
याहुआ जल ठंडा करके देवे । अथवा खैरे-
टी, पृष्णिपर्णी वा कटेरीका ठंडा काथ देवे,
अथवा तीनों ये और चौथी सोंठ डालकर
औंटायाहुआ जल ठंडा करके देवे ॥ अथवा
जवासा और मोथा अथवा मोथा और पित्त-
पापडा अथवा केवल मोथा डालकर औंटाया
हुआ जल पान कराने से दोष पचजातेहैं ॥
सय मदात्ययमें इन्हींका प्रयोग श्रेष्ठहै । इस
के पानसे किसी प्रकारका उपद्रव नहीं हो-
ताहै, किन्तु तृपा और अवर मष्ट होजातेहैं ॥

कफमदात्ययमेंअन्यप्रयोग ।

निरामंकांसितकालेससौद्रपाययेन्नुतम् ।
शार्करमधुवाजीर्णमारिष्टंशोधुमेववा ॥
रुक्षतर्पणसंयुक्तंयवानीनागरान्वितम् ।
यवगोधूमिकंचान्नंरुक्षयूपेणभोजयेत् ॥
कुलत्थानांसुशुष्कानांमूलकानारसेनवा ॥
संतुनाल्पेनलघुनाकट्वम्लेनाल्पसंपिपा ॥

व्योपयूपमथाम्लंवायूपंवासाम्लवेतसम् ।
छागमांसरसंरुक्षमम्लवाजांगलरसम् ॥
स्थाल्यांवायकपालेवाभृष्टंनीरसवात्सैनम्
कट्वम्ललवणंमांसंभक्षयन्वृणुयान्मधु ॥

अर्थ—जब कफमदात्यय में रोगी का
आम दूर होजाय और भूख पर इच्छाहो
तब उस समय उसे शहद डालकर शर्करा
मद्य देवे अथवा पुराना शहत, वा अरिष्ट
वा शीघु पान करावे । इस रोग में अजवा
यन और सोंठ डालकर रुक्षतर्पण देवे अ-
थवा रुक्ष यूपके साथ जौ और गेहूं का अ-
न्न देवे ॥ अथवा कुल्थीका यूप वा अत्य-
न्त सूखीहुई मूलियोंका रस पतला, थोडा,
हलका, कटु और अम्लयुक्त थोडा घी डा-
लकर देवे । अथवा त्रिकुटा डालकर अम्ल-
यूप वा अमलवेत डालाहुआ यूप वा यक्रे
का रुक्ष मांसरस वा अम्लजांगल पशुओं
का मांसरस देवे । अथवा घटले वा मिष्टी
के पात्रमें भूना हुआ नीरस मांस कटु, अ-
म्ल और नमक डालकर भोजन करे ऊपर
से शहत पीवे ॥

अन्यप्रयोग ।

व्यक्तपारिचिकंपांसंपातुलुङ्गरसान्वितम् ।
भृष्टंदादिमसारांम्लमुष्णयूपोपवोष्टितम् ॥
ययार्थिभक्षयेत्कालेमभूताद्रिकपोशितम् ।
पिवेच्चनिगदंमद्यंकफप्रायेमदात्यये ॥
सौवर्चलमजाजीचट्टसाम्लंसांम्लवेतसम् ।
त्वगेलामारिचाद्धींशशर्कराभागयोजितम् ॥
एतल्लवणमष्टांगमथिसन्दीपनंपरम् ! मदा
त्ययंकफप्रायेदद्यात्सौतोविशोधनम् ॥

एतदेवपुनर्युक्त्याधूमराम्लैर्द्रवीकृतम् । गो
धूमान्नयवान्नानामांसानाञ्चातिरोचनम्
पपयेत्कडुकैयुक्तांश्वेतांवीजविवार्जिताम्
मृद्धीकामातुलङ्गस्यदाडिमस्यरसेनवा ।

अर्थ—तेजमिरच डालकर तथा विजौरे
का रस मिलाकर मांसको भूने इसमें अना
रदाने की खटाई डालकर गरम २ यूप का
जठराग्नि के बल के अनुसार भक्षण करै
इसमें बहुतसी अदरख भी पांसकर डालदेवै
इस कफजग्य मदात्यय में निगद मद्य का
पान करावै । अथवा संचलनमक कालाजी
रा, वृक्षाम्ल, अमलवैत, दालचीनी, छोटी
इलायची और नमक से आधी मिश्री डाल
कर चूर्ण तय्यार करै । यह चूर्ण अत्यन्त
अग्निसंदीपन है, इस चूर्णको अष्टांगलवण
कहते हैं, । यही चूर्ण स्रोतः समूह के मार्गों
का शुद्ध करनेवाला भी है । इसी चूर्णको
मधुराम्ल द्रव्यों से पतला करके गेहूँ और
जौ के पदार्थ तथा मांस के साथ सेवन करै
तौ अत्यन्त रुचि घटै ॥ अथवा मिरच आ-
दि तीक्ष्ण द्रव्योंको डालकर सफेद दूब,
विनावीजकी दाखको विजौरे अथवा अनार
के रसमें पीसकर सेवन करै ॥

अन्यप्रयोग ॥

सौवर्चलैलामरिचैरजाजीमृद्गदीप्यकैः ।
सरामःसौद्रसंयुक्तःश्रेष्ठोरोचनदीपनः ॥
मृद्धीकानांविधानेनकारयेत्कारवीमपि ।
युक्तमत्स्यण्डिकोपेतरागंदीपनपाचनम् ।
आम्रामलकपेशानांरामान्कुर्यात्पृथक्
पृथक् । धान्यसौवर्चलाजाजीकारवीष-

रिचान्वितान् ॥ गुडेनमधुयुक्तेनव्यक्ता
म्ललवणीकृतान् । तैरन्नरोचतेदिग्धः
सम्यक्पुक्तांविजीर्यति ॥

अर्थ—संचरनमक, छोटीइलायची, काली
मिरच, जीरा, भांगरा, अजवायन, इनका
चूर्ण रागपाडव और शहत में मिलाकर से-
वनकरौ ॥ यह अत्यन्त उत्तम रुचिवर्द्धक और
अग्निसंदीपन प्रयोगहै ॥ विधिपूर्वक दाख,
कारवी और मिश्री का रागपाडव दीपन
और पाचन होता है । आम और आंवले
के गूदे का जुदा २ रागपाडव बनावै ।
और इनमें धनिया, संचरनमक, जीरा, का-
रवी और मिरच डालै तथा गुड और शहत
भी मिलावै, खटाई और नमक तेज डालै ।
इन रागपाडवों से भोजन करै तौ अच्छी
तरह पचजाय ॥

अन्यउपचार ।

रूक्षोष्णान्नपानेनस्नानेनाशिशिरेणच ।
व्यायामलंघनाभ्यांचयुक्ताभ्यांजागरेणह
कालेयुक्तेनतीक्ष्णेनस्नानेनोद्वर्त्तनेनच ।
स्नानवर्षकवासानांपहर्षाणाञ्चसेवया ॥
सेवयायमनानाञ्चगुरूणामगुरोरापि ॥
सकामोष्णसुखाद्दीनामङ्गनानाञ्चसेवया
सुखशिक्षितहस्तानांस्त्रीणांसंवाहनेनच ।
मदात्ययःकफप्रायःशीघ्रमेवोपशाम्यति ।

अर्थ—रूक्ष और उष्ण अन्नपान का
सेवन, उष्णजल से स्नान, व्यायाम, उष्ण-
याम, जागरण, तीक्ष्ण द्रव्यों का उवटन
करके स्नान करना, रूक्षवस्त्र

तदुक्तमखिलं मदात्ययचिकित्सिते ॥

अर्थ — इस मदात्यय चिकित्सित नामक अध्यायमें भगवती मदिरादेवीका प्रभाव उसके पानेकी विधि, मदिराके द्रव्य, जिसको यह अर्भाष्ट है, मदिराके भिन्न भिन्न मदाँके भेद, मदिराके महागुण, मद के तीन भेद, तीनोंके पृथक् पृथक् लक्षण, मयकृत दोष, मयकृत गुण, तीन प्रकारके मदिरालय, तीनों सत्वोंके पृथक् २ लक्षण, मयपानके योग्य साथी, जिनको देखमें नशाहोवै और जिनको शीघ्रनशाहोवै ऐसे पुरुषोंका वर्णन मदात्यय के हेतु और लक्षण, मयसे उत्पन्न हुए रोगोंको चिकित्सा, ये सब घातें पूरीशक्ति, से वर्णन की गई हैं ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचिता
यांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि
त्सित स्थाने मदात्यय चिकित्सित-
नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१-२॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो द्वित्रणीयचिकित्सितव्याख्या
स्याम इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ — तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम द्वित्रणीय चिकित्सितनामक
अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

परावरजमात्रेयगतमानमदव्यथम् ॥ अग्नि
वेशोगुरुकाले विनयादिदमुक्तवान् ॥ भगव
न्पूर्वमुद्दिष्टोद्वायुणौ रोगसंग्रहोत्थोर्लिङ्गं
चिकित्साञ्चवक्तुमर्हसि शर्मद ॥ ॥

इत्यग्निवेशस्यवचोनिश्चयगुरुरग्रवात्

यौत्रणौ पूर्वमुद्दिष्टौ निजश्चागन्तुरेव च ॥ भूय
तां विधिवत्सौम्यां तथोर्लिङ्गञ्च भेषजम् ॥

अर्थ — अग्निवेशने अवकाश पाकर अति
नम्रतासे परावरके ज्ञाननेवाले, मान, मद
और व्यथा से रहित अपने गुरु आत्रेय से
पूछा कि भगवन् ! जो आपने रोगों के
संग्रहमें दो प्रकारके वर्णोंका वर्णन किया
था अब आप हे कल्याणदाता ! उनके
लक्षण और चिकित्सा कहे । अग्निवेशके
इस यचनको सुनकर गुरु बोले कि हे
सौम्य ! जो निज और आगन्तु दो प्रकार
के वर्णों का वर्णन किया गया है, उनके
विधिपूर्वक लक्षण और चिकित्सा श्रवण करो ।

निजागन्तुवर्णों के लक्षण ।

निजः शरीरदेपोत्थ आगन्तुर्बाह्यहेतुजः ॥

अर्थ — जो शरीरके दोष से उत्पन्न होते
हैं वे निजवृण कहाते हैं, तथा जो बाहर
के हेतुओं से उत्पन्न होते हैं वे आगन्तुवृण
होते हैं ।

आगन्तुवृणके हेतु ।

वधवन्धमपतनाद्दृष्टान्नखक्षतात् । आ
गन्तुवोव्रणास्तद्द्विपस्पर्शाग्निशस्त्रजाः ॥
मन्त्रागदप्रलेपाद्यैर्भेषजैर्हेतुभिश्चते । लि
ङ्गैकदेशैर्निर्दिष्टा विपरीतानि जैर्त्रणाः ॥

अर्थ — वध, बन्ध, प्रपतन (गिरपडना)
झाड़, दांत नख आदिका लगना विपका
स्पर्श, अग्निसे जलना, शस्त्रका लगना,
मन्त्र, औषधका लेप आदि हेतुओंसे
आगन्तुवृण होते हैं । इसीतरह निज ल-
क्षणों के एक देशद्वारा जो वृण निर्दिष्ट

होते हैं वे निज हैं उनकी उत्पत्ति ऊपर कहे हुये हेतुओं से विपरीत होती है ।

व्रणानानिजहेतूनामागन्तूनामसाध्यताम् ।
कुर्व्यादोषवलापेक्षीनिजानामौषधतया ॥

अर्थ—दोष और बल की अपेक्षा करके निज और भागन्तुव्रणोंकी चिकित्सा करें एवं निज व्रणोंकी औषधियोंका वर्णन करते हैं ।

निजव्रणों का कारण ।

यथास्वैर्हेतुभिर्दुष्टावातपित्तकफानृणाम् ।
बहिर्मांसमाश्रित्यजनयन्तिनिजान्ब्रणान् ॥

अर्थ—अपने २ हेतुओं से दूषित हुये वातपित्त कफ बहिर्मांस का अवलम्बन करके निज व्रणों को उत्पन्न करते हैं ।

वातजव्रणकेलक्षण

स्तब्धःकठिनसंस्पर्शोमन्दस्त्रावोऽतितीव्ररुक् ।
तुद्यतेस्फुरतिश्यावोव्रणोमारुतसम्भवः ॥

अर्थ—जो व्रण वातसे उत्पन्न होता है वह स्तब्ध, घूने में कठोर, धीरे २ स्त्रावित होनेवाला, अत्यन्त तीव्र शूलयुक्त, तोदयुक्त, स्फुरणयुक्त, कृष्णवर्ण होता है ।

वातजव्रणका चिकित्साक्रम ।
संपूरणैःस्नेहपानैःस्निग्धैःस्वेदोपनाहनैः ।
प्रदेहैःपरिपेकैश्चवातव्रणमुपाचरेत् ॥

अर्थ—संपूरण, स्नेहपान, स्निग्धस्वेद, स्निग्ध उपनाहन, प्रदेह, परिपेक से वातजव्रण का चिकित्सा करें ।

पित्तजव्रणकेलक्षण और चिकित्सा
तृष्णाभोहज्वरस्वेददाहावदरणौषधैः ।
व्रणंपित्तकृतंविद्यात्गन्धस्तावैःसपूतिकैः ॥
शीतलैर्मधुरैस्तिक्तैःप्रदेहपरिपेचनैः ।
सर्पिःपानैर्विरेकैश्चपैत्तिकंशमयेद्व्रणम् ॥

अर्थ—पित्तजव्रण में तृष्णा, मोह, ज्वर, स्वेद, दाह, औषधियों द्वारा अवदारण, दुर्गन्ध, दुष्टस्त्राव होते हैं । शीतल, मधुर, तिक्त, प्रदेह, परिपेक तथा घृतपान और विरेचन द्वारा इसकी चिकित्सा की जाती है ।

कफजव्रणके लक्षणादि ।

बहुपिच्छोगुरुःस्निग्धःस्तिमितोमन्दवेदनः ।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेश्चिरकारीकफव्रणः ।
कपायकटुरुक्षोष्णैःप्रदेहपरिपेचनैः ॥
कफव्रणप्रशमयेत्थालंघनपाचनैः ॥

अर्थ—कफजव्रणमें बहुत पिच्छलता, भारापन, स्निग्धता, स्तिमिता, मंदवेदना, पाण्डुवर्ण, अल्पसंक्लेश तथा चिरकारिता होती है अर्थात् इसमें बहुत दिन लगते हैं । कपाय, कटु, रूक्ष, उष्ण, प्रदेह, परिपेक तथा लंघन और पाचन द्वारा कफव्रणकी चिकित्सा होती है ।

दोनोंव्रणोंकेभिन्न २ भेद ।

तौद्वौनानात्वभेदेनिरुक्ताविंशतिव्रणाः ।
तेपांपरीक्षात्रिविधामदुष्टाद्वादशस्मृताः ॥
स्थानान्यष्टौतथागंधाःपरिस्त्रावाश्चतुर्दश ।
पोडशोपद्रवादोपाश्चत्वारोविंशतिस्तथा ।
तथाचोपक्रमाःसिद्धाःपदात्रिंशत्समुद्राहताः ।
विभाच्यमानाःशृणुतानसर्वानवयथैरितान् ॥

हैं। तौ व्रणं कष्टसाध्य होता है और जो सबही गुणों का अभाव होता है तौ व्रण दुःसाध्य होता है ।

व्रणमें प्रथमकर्त्तव्य ।

व्रणानामादितःकार्य्ययथासंघीवशोधनम् । ऊर्ध्वभागैरधोभागैःशस्त्रैर्वस्तिभिरेवच ॥ सद्यःशुद्धशरीरानांप्रथमंयान्तिहिव्रणाः । यथाक्रममतश्चोर्ध्वमृणुसर्वानुपक्रमान् ॥

अर्थ—व्रणकी चिकित्सा करनेके आरम्भमें प्रथमही व्रणका संशोधन करना उचित है और यह संशोधन आसन अर्थात् समीपवर्ती होना चाहिये अर्थात् कफज-व्रणमें ऊर्ध्वभागगामी संशोधनदेवै, पित्तज व्रणमें अधोभागगामी अर्थात् दस्त करावै । रक्तजव्रणमें फस्त खोलै, और वातजव्रणमें वस्तिप्रयोग करै । इसतरह शरीरके शुद्ध होनेपर व्रण बहुत शीघ्र शान्त होजाते हैं ।

अब हम यहांसेयथाक्रम सबकी चिकित्सा वर्णन करते हैं ।

छत्तीसप्रकारकीचिकित्सा ।

शोफग्रंपद्द्विविधश्चशस्त्रकर्मविपीडनम् ।

निर्वापणंसन्धानंस्वेदःशमनमेपणा ।

शोधनारोपणीयाचकपायांसमलेपना ॥

द्वौश्लेहोतद्गुणौपत्रच्छेदेनेद्वचवन्धने । भो

ज्यमुत्सादनंदाहोद्विविधःसावसादनः ॥

काठिन्यमार्दवकरेघूपनालेपनेशुभे । व्र

णावचूर्णनं व्रण्यलेपनं लोमरोपणम् ॥

इतिषड्विंशद्दृष्ट्याव्रणानांसहस्रक्रमाः ॥

अर्थ—शोफ तसक छः प्रकार के शस्त्र

कर्म, अवपीडन, निर्वापण, संधान, स्वेद, शमन, एपणा, दो प्रकार के शोधनकर्त्ता कपाय, दो प्रकार के रोपणकपाय, शोधन प्रलेप, रोपणप्रलेप, शोधन स्नेह, रोपण स्नेह, दो प्रकार का पत्रच्छेद, दो प्रकार का बन्धन, भोजन विधि, उत्सादन, दो प्रकार का दाह, अवसादन, काठिन्यकर घूपन, काठिन्यकर आलेपन, मार्दवकर घूपन, मार्दवकर आलेपन, व्रणावचूर्णन, व्रण की हितकारी लेप, लोमरोपण इसतरह व्रणोंकी ये ३६ प्रकार की चिकित्सा हैं ।

व्रणकेपूर्वरूपमेंकर्त्तव्य ।

पूर्वरूपंभ्रिपक्वदुध्वाव्रणानांशोफमादितः । रक्तावसेचनंकुट्यादिजातव्रणशान्तये । शोधयेद्बहुदोषान्तुस्वल्पदोषान्नाविलंघयेत् ॥ पूर्वकपायैःसर्पिर्भिर्जयेद्दामारुतोचरम् ॥

अर्थ—वैद्य को उचित है कि जब उस व्रणका पूर्वरूप विदित होनेलगे तबही अनुत्पन्न व्रण की शान्तिके निमित्त रुधिर निकाल देवै । जो व्रण बहुत दोषोंसे युक्त हो तौ लघन करावै ।

प्रथमही काथ वा घृत प्रयोग से वाताधिक्य व्रण की शान्ति करै ।

शोफनाशकलेप ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपुत्तचेतसवल्कलाः ससर्पिष्कःप्रलेपःस्यात्शोफनिर्वापणंपरम् । विजयामधुकंचीराविसग्रन्धिःशंताचरी । नीलोत्पलनागपुष्पप्रदेहःस्यात्सचन्दनः ॥ शक्तत्रोमधुकंसर्पिःप्रदेहः

स्यात्सर्करः । अत्रिदाहीनिचानानि
शोफेभेपजमुत्तमम् ॥ सर्वदैवमुपक्रान्तः
शोफोनप्रशमंत्रजेत् । तस्योपनाहैः प्रकस्य
पाटनंहितमुच्यते ॥

अर्थ—वड, गूलर, पीपल, पाकड़, और
वेत इनकी छालको पीसकर घृतमें सान-
कर लेप करनेसे शोफ दूर होजाती है ।
अथवा हरड़, मुलहठी, फाकोली, कमलनाल
की जड़, सतावर, नलिकमल, नागकेसर,
रक्तचन्दन, इत को पीसकर लेप करनेसे
शोफ जातारहता है । अथवा सतू, मुल
हठी, घी और चीनी का लेप करें । शोफमें
अधिदाही अन्नका भोजनभी उत्तम औषध
है । जो इन लेपों से शोफ की शान्ति न-
हो तो उसपर छपड़ी वा पुलटस बांधकर
उसे पकाले और पकने पर चीरा लगादेवै
शोफ पर पुलटिस ॥

तैलेनवासर्पिपावाताभ्यांवाशक्तुपिण्डि
क्ता । सुखोष्णाशोफपाकार्थमुपनाहः प्रश
स्यते ॥ सतिलासातसीबीजदध्पम्लाश
क्तुपिण्डिका । सक्लिष्वकुष्ठलवणाशस्ता
स्यादुपनाहने ॥

अर्थ—सतूमें तेल वा घी डालकर पुल-
टिस तयार करें, इसको गरम शोफ के प-
कानेके निमित्त बांध देवै ॥ अथवा तिल,
अलसी, दही, कांजी, सतू, सुराबीज, कूठ
और नमक इनकी पुलटिस भी बहुत अ-
च्छी होती है ॥

विदग्ध शोधके लक्षण ।
रुदाहरोगतोदैश्चविदग्धशोधमादिशेत् ॥

अर्थ—जिस सूजनमें वेदना, जलन,
सूची भेदन के समान पीडा होती है उसे
विदग्ध कहते हैं ।

पक्क शोध के लक्षण ।

जलवस्तिमसस्पर्शसंपर्कीपिण्डितोन्नतम्

अर्थ—जो स्पर्श करने में जलकी मशक
के समानहो, गोल तथा ऊँचाहो उसे पक्क
समझो ।

पक्कशोध के भेदन कर्त्ता द्रव्य ।

उमायगुग्गुलुःसौषंपयोदक्षकपोतयोः ।

विट्पलाशभवःक्षारोहेमक्षीरीमकूलकः ॥

इत्युक्तोभेपजगणःपक्कशोधप्रभेदनः ।

सुकुमारस्यकृच्छ्रस्यंशंस्त्रुत्पुत्रमुच्यते ॥

अर्थ—पकी हुई सूजन को फाडने वाले
ये द्रव्य हैं, यथा—गूगल, सेंहुडका दूध,
मुर्गा और कबूतरकी बीट, विह्नमक, डाक
का खार, स्वर्णक्षीरी और दन्ती ।

जो शोफ कोमल और फट साध्य हो
अर्थात् औषधों से न फटताहो तो शस्त्र
कर्म करें ।

छः प्रकार के शस्त्र कर्म ।

पाटनंन्यधनंचैवछेदनंलेखनंतथा । प्रच्छ

त्रंसीवनञ्चैवपड्विधंशस्त्रकर्ममतु ।

अर्थ—पाटन, व्यधन, छेदन, लेखन,
प्रच्छन्न और सीवन, ये छः प्रकार के शस्त्र
कर्म होते हैं ।

पाटन के योग्य शोध ।

नाडीव्रणाःपक्कशोयास्तथाक्षतगुदोदरम् ॥

अन्तः शल्याशयेदेशः पात्र्यास्तेतद्विधा

शये ॥

अर्थ—नाडीव्रण, मकरशोथ, क्षतगुदोदर
अन्तःशल्य (जिनके भीतर शल्यहो) तथा
ऐसेही और भी पाटन अर्थात् चीरा लगने
के योग्य होते हैं ।

• व्यधन योग्य व्रण ।

दकोदराणिसंपकागुल्मायेयेचरक्तजाः॥
बध्याःशोणितरोगाश्चविसर्पपिडकादयः

अर्थ—दकोदर [जलंधर], पकाहुआ
गुल्म, रक्तजगुल्म, तथा विसर्प और पिड
कादिक अन्य. रक्तके रोग व्यधन अर्थात्
वैधने के योग्य होते हैं ।

छेदनीय व्रण ।

उद्धृत्तान्स्थूलपर्यन्तानुत्सन्नान्कठिनान्
वृणान् । अर्शःप्रभृत्यधीमांसछेदनेनोप
पादयेत् ॥

अर्थ—उद्धृत्त [जिसका गोलासा बन
गयाहो], स्थूलपर्यन्त (जिसके किनारे
मोटे हों), जो उत्सन्न और कडा हो,
अर्श आदि रोग जिनमें मांस बढ गयाहो
वे छेदनके योग्य होते हैं ॥

लेखन के योग्य रोग ।

किलासानिसकुष्ठानिलिखेल्लेख्यानि-
बुद्धिमान् ।

अर्थ—किलास और फोड आदि लेख
नीय रोगोंका लेखन करै ॥

प्रच्छन्नके योग्यरोग ।

वातासृग्ग्रान्थिपिडिकाः सकोठारक्तमण्ड
लाः ॥ कुष्ठान्यभ्याहतेचाङ्गशोथांश्चम
च्छयेद्विपरुः ।

अर्थ—वातरक्त, ग्रन्थि, पिडका, कोठ

(पित्ती) रक्तमण्डल (खूनके चकते),
कुष्ठ, अभ्याहत अंग और शोथ ये प्रच्छन्न
अर्थात् पछना के योग्य होते हैं ।

सीवन के योग्य व्रण ।

सीव्यंकुक्ष्युदराद्यन्तुगम्भीरंयद्विपाटित-
म् ॥ इतिपद्द्विधमुद्दिष्टंशस्त्रकर्ममनी
पिभिः ।

अर्थ—कूख और उदर में जो गहरा
फटगया हो वह सीवन के योग्यहोता है ।
ये छः प्रकार के शस्त्रकर्मः पण्डितों ने व-
र्णन किये हैं ।

पीडनयोग्य व्रण ।

सूक्ष्माननाःकोपवन्तोयेवृणास्तान्प्रपी-
डयेत् ॥

अर्थ—सूक्ष्ममुखवाले तथा कोपवानव्रण
(जो भीतर पोला पडजाता है) प्रपीडन
के योग्य होते हैं ।

पीडनद्रव्य ।

कलायाश्चमसूराश्चगोधूमाःसहरेणवः ।
कल्कीकृताःप्रशस्यन्तेनिःस्नेहाव्रणपीडने

अर्थ—कलाय, मसूर, गेहूं, रेणुका इन
का कल्क करके बिना चिकनाई डालेव्रण
पर चिपकादेवै ।

अन्यप्रयोग ।

शास्त्रमालीत्वग्बलामूलतथान्यग्रोधपल्लवाः
न्यग्रोधादिकमुद्दिष्टंशलादिकमथापिर्वो ॥

आलेपननिर्वापयंतद्विधान्यैश्चसेचनम् ॥
सर्पिपाशतथोतेनपयसामधुकाम्बुना ।

निर्वापयेत्सुशीतेनरक्तपित्तोत्तरान्वृणान्
लम्बानिवृणमांसानिप्रलियमधुसार्पिषा

नूप मांस, बेशवार, तथा गरम २ लुपडी
द्वारा स्वेदन देवे । इस स्वेदन से, रोगी को
शीघ्रही सुख प्राप्त होताहै॥ जिन वातप्रधान
ग्रणों में दाह और वेदना इन दोनों की अ-
धिकता होती है उन में तिल और अलसी
को मूनकर दूध में भिगो देवे । फिर उसी
दूध के साथ उन्हें पीसकर लेपकरदेवे ॥

वृणोपरप्रयोग ।

बलागुहृचीमधुकंपृश्निपणीशतावरी ॥
जीवन्तीशर्कराक्षरितैलपत्रस्यवसाघृतम् ।
ससिद्धासमधुच्छिष्टाशूलघ्नीस्नेहशर्करा ॥
द्विपञ्चमूलकाथितेनाम्भसापपसाधवा ।
सर्पिपावासतैलेनकोष्णेनपरिपेचयेत् ॥
यवचूर्णसमधुकंसतैलसहसर्पिपा । द-
द्यादालेपनंकोष्णदाहशूलोपशान्तये ॥
उपनाहश्चकर्त्तव्यःसतिलोमुद्रपायसः ।
रुग्दाहयोःप्रशमनोवृणेष्वेवुविधिर्हितः ।

अर्थ—खरेटी, गिलोय, मुलहठी, पृष्णि-
पणी, सितावर जीवन्ती, चीनी, दूध, तेल,
मछली, चर्बी, घी और मोम इन को पक-
कारके लेप करे तो ग्रणका शूलजाता रहता
है । इस मरहम का नाम स्नेह शर्करा है ॥

दशमूल डालकर सिद्ध किया हुआ कुछ
कुछ गरम जल या दूध अथवा तेल मिले-
हुए घृत का सेचन करे ॥

जौ का चून, मुलहठी, तेल और घी
इन को पक्व करके सुहाते हुए गरमका लेप
करने से दाह और शूल शान्त होजातेहै ॥

तिल और मूंग का दूध के साथ पीस
कर लेप करने से वेदना और दाह शान्त
होजाते है ॥

एपणीय वृण ।

सूक्ष्मानानावहुसावाकोशवन्तश्चयेब-
णाः ॥ नचमर्माश्रितास्तेपामेपणाहित-
मुच्यते ।

अर्थ—जो ग्रण सूक्ष्म, अनेक प्रकार के
बहुत स्यावयुक्त और कोशयुक्त हों परन्तु
मर्म स्थान में न हों उन में सलाई डालना
हितकरहै ॥

एपणा के भेद ।

द्विविधामेपणांविद्यात्मृद्रीञ्चफठिनामपि
उद्भिर्दर्मृदुभिर्नालैर्लोहानांवाशलाकया ।
गम्भीरमांसगेदेशेपाम्बैलौहशलाकया ॥
एष्यंविद्याद्द्रवणनालैर्विपरीतमतोभिपक-
अर्थ—एपणा अर्थात् सलाई मृदु और
फठिन दो प्रकार की होतीहै । इन में से
उद्भिदकी सलाई मृदु और लोहे की फठिन
होती है । जहां गहरा मांस हो वहां लोहे
की सलाई डाले और जहां गहरा मांस न
हो वहां मृदु सलाई डाले ॥

शोधनीय वृण ।

पूतिगन्धानविवर्णाश्चवहुसावान्महा-
रुजः ॥ वृणानशुद्धानविज्ञायशोधनैःस-
मुपाचरेत् ॥

अर्थ—जिन ग्रणों में दुर्गन्ध आती हो,
जो विवर्ण, बहूसावी, अत्यन्त, वेदनायुक्त,
और अशुद्ध हों उन को प्रथम शुद्ध करे ।

शोधनद्रव्य ।

त्रिफलाखदिरोदावीन्यग्रोधोऽतिबला-
कुशः । निम्बकोलकपत्राणिकपायाः
शोधनामताः ॥ तिलकल्कःसलवणो

द्वेदिरिद्वेचिद्विद्वृत्तम् । मधुकंनिम्बपत्राणि
मूलपात्रणशोधनः ॥

अर्थ—त्रिफला, खैरसप्त, दारुहल्दी, न्य-
म्रोधादि गण, आतिवला, कुशा, नीमके पत्ते
घेरके पत्ते इनके साथसे व्रण को धोयै तो व्रण
शुद्ध हो जाता है । तिलका कल्क, संधानमक, दो-
नों हल्दी, निसोथ, घृत, मुलहटी और नीमके
पत्तों का लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजाता है ॥

रोपणीय व्रणोंकी चिकित्सा ।

नातिरक्तोनातिपाण्डुर्नातिश्यावो नचाति
रुक् । नचोत्सन्नो नचोत्सङ्गीशुद्धो रोप्यः
परव्रणः ॥ न्यग्रोधोदुम्बराभक्तकदम्बप्ल-
क्षवेतसाः । करवीरार्ककुटजाः कपाया
रोपणाः स्मृताः ॥ चन्दनपत्रकिञ्चलकदावी
त्वङ्नीलमुत्पलम् । मेदांमूर्वासमज्ञाञ्चय
प्टयाहावर्णरोपणम् ॥ मपुण्डरीकंजी
वन्तीज्ञोजिह्वापातकीवलाम् । रोपणं स-
तिलंकुर्यात्प्रलेपसघृतव्रणे ॥ कम्पिलकं
विडंगानिवत्सकं त्रिफलावलाम् ॥ पटो
लंपचुमर्दचरोधंमुस्तांमियंगुकम् ॥ खदि
रं पातकीं सनेमेलामयुरुचन्दने । पिप्ट्वा
साभ्यंभवेत्तैलं तत्परव्रणशोधनम् ॥ मपु
ण्डरीकं मधुकं काकोल्यौ द्वे सचन्दने । सि
द्धमेतैः समस्तैस्तर्पणव्रणरोपणम् ॥ दूर्वास्व
रससिद्धं वा तैलं कम्पिलकेन वा । दावीत्वच
श्चकल्केन मधानं व्रणरोपणम् ॥ येन विधि
ना तिलघृतं तेनैव साधयेत् । रक्तपित्तोत्त
रं दृष्ट्वा रोपणीयं घृतं तथा ॥ कदम्बार्जु
ननिम्बानां पाटल्याः पिप्पलस्य च । व्रण
प्रच्छादने विद्वान्पत्राण्यर्कस्य चादिशेत् ॥

वासोऽथवा दंरश्चैव पट्टोन्नहितः स्मृतः ॥

बन्धश्च द्विविधः शस्तो व्रणानां सव्यदक्षिणः

अर्थ.... जो व्रण असन्त छाल, पाण्डुवर्ण
श्याव, वेदनायुक्त, उत्सन्न और उत्संगी
नहीं होते हैं वे रोपण करने के योग्य हो-
ते हैं । वट, गूलर, पीपल कदम्ब, पाकर,
वेत, कनेर, आक, कुड़ाकीं छाल, इनका
कपाय रोपणकर्ता होता है ॥ रक्तचन्दन, छा-
ल कमल की केशर, दारुहल्दीकी छाल, नी-
लकमल, मेदा, मूर्वा, लज्जाल और मुलह-
टी ये व्रणको रोपण करने वाले हैं ॥ पुण्ड-
रिया, जीवन्ती, गोभी, धायके फूल, खैरटी,
तिल इनके कल्कको घीमें सानकर लेप क-
रनेसे व्रणका रोपण होता है ॥ कवीला, धां
यविडंग, इन्द्रजौ, त्रिफला, खैरटी, परपल,
नीम, लोध, मोथा, प्रियंगु, खैर, धायके
फूल, राठ, इलायची, अगर, चन्दन इनका
तैल व्रणको शोधन कर्ता होता है ॥ पुण्ड-
रिया, मुलहटी, दोनों काकोली, चन्दन,
इनके साथमें सिद्ध कियाहुआ तेल तर्पणकर्ता
और रोपणकर्ता है । दूवका रस डालकर अथवा क
वीला डालकर अथवा दारुहल्दी की छाल डालकर
सिद्ध किया हुआ तेल व्रणरोपण के निमित्त
अत्यन्त उत्तम प्रयोग है । जिन २ द्रव्यों
को डालकर तेल पकाया जाता है उनही
से घृत भी सिद्ध किया जाता है । जो व्रणमें
रक्त पित्त की अधिकता होती है तो घृतही
प्रयुक्त किया जाता है । कदम्ब, अर्जुन, नीम,
पाटला, पीपल और आक के पत्ते व्रण के
ढकनेमें काम आते हैं रूपंदार चर्मे वा

सूती कपडे की पट्टी ब्रण पर बाई और दाहिनी दोनों ओर से बांधी जाती है ॥

ब्रणपर पथ्यविधि ।

लवणाम्लकट्टूष्णानिविदाहीनिगुरुणि
च ॥ वर्जयदन्नपानानिवृणीमैथुनमेवच।
नातिशीतगुरुस्निग्धमविदाहियथाक्रमम्।
अन्नपानवृणाहितंहितंवास्वापनंदिवा ॥

अर्थ—नमकीन, खटा, कडवा, ऊष्ण, विदाही और भारी अन्नपान तथा मैथुन ब्रणरोग में वर्जित है ॥ न अत्यन्त शीतल न भारी, न स्निग्ध, अविदाही अन्नपान और दिनमें न सोना ये ब्रणमें हितकर होते हैं ॥

स्तन्यानिजीवनीयानिबृहणीयानियानि
च । उत्सादनार्थानिम्नानांब्रणानातानि
कल्पयेत् ॥ भूर्जग्रन्थ्यश्मकाससिम्धो
भागानिगुग्गुलुः । ब्रणावसादनंतद्रक्त
लविङ्कफपोतविद् ॥

अर्थ—नीचे ब्रणोंको ऊंचा करने केलिये स्तन्यवर्द्धक गणोक्त, जीवनीयगणोक्त और बृहणीय गणोक्त औषधोंका प्रलेप करे ॥ भोजपत्र की गांठ, पाखानभेद, हीराकसीस और गूगलका लेप करनेसे ब्रण एक होजाता है और इसीतरह मुर्गे और कबूतर की धीट का प्रयोग भी किया जाता है ॥

अग्निकर्मकेयोग्यब्रण

रुधिरंतिप्रवृद्धेतुच्छिन्नेछयेऽधिमांसके ।
कफग्रन्थिपुगण्डेषुवातस्तम्भानिलातिपु।
गूढपूलसीकेपुगम्भीरुपुस्थिरेषु च । कि
न्नेषुचाद्देशेषुकर्मग्नेः संप्रशस्यते ॥

अर्थ—छेदन के योग्य अधिमांसके काट-

नेपर जो रुधिर अत्यन्त बहने लगे तो, कफग्रन्थि, गलगण्ड, वातस्तम्भ, वातजवेदना, गूढपूल (जिसमें पीव बहुत भीतरको हो), गूढलसीका, गम्भीर, स्थिर, और छिन्न अंगावयवों में अग्निर्कर्म श्रेष्ठ होता है ।

मधुच्छिद्येनतैलेनमज्जसौद्रवसाघृतैः ।
तप्तैर्वाविविधैर्लोहैर्दहेद्देहांशेषोपानित् ॥
रुक्ताणांमुकुमाराणांगम्भीरान्मारुतोचः
रान् ॥ दहेत्स्नेहैर्मधुच्छिद्यैर्लोहैःसौद्रैस्त
तोऽन्यथा ॥

अर्थ—मोम, तेल, मज्जा, शहत, चर्बी, घी, तथा लोहा आदि अनेक धातुओंको गरम कर करके ब्रण को दग्ध करे । रुक्ताणाम्बु, गम्भीर और वाताधिक्य ब्रणोंको स्नेह और मोम द्वारा दग्ध करे । पित्ताधिक्य ब्रणको लोह द्वारा और कफाधिक्य ब्रणको शहतद्वारा दग्धकरे ।

अग्निकर्म के अयोग्यव्यक्ति ।

वालदुर्बलवृद्धानां गर्भिण्यारक्तपित्तिना
म् । तृष्णाज्वरपरीतानांप्रवलानांविपा
दिनाम् ॥ नाग्निकर्मोपदेष्टव्यंस्नायुमर्मव्र
णेषुचा सविशेषेषुचशल्येषुनेत्रकुष्ठव्रणेषुच

अर्थ—वालक, दुर्बल, वृद्ध, गर्भिणीस्त्री रक्तपित्तरोगी, तृषारोगी, ज्वररोगी, प्रवल विपादग्रस्त, स्नायुवृणी, मर्मवृणी, सविपारोगी, शल्ययुक्त रोगी, नेत्रवृणी, कुष्ठवृणी आदिरोगी अग्निकर्म से वर्जित हैं । रोगदोषवलापेक्षामात्राकालाग्निकोविदः शस्त्रकर्माग्निकृत्येषुक्षारमप्यवचारयेत् ॥ कठिनत्वंब्रणापान्तिगन्धःसारैश्चधूपिताः

सर्पिर्मज्जवसाधूपैःशैथिल्यंयान्तिहिवृणाः॥

रुजःस्नावाश्वगन्धाश्चक्रिययश्चवृणाश्रिताः

शैथिल्यंमार्दवंवापिधूपनेनोपशाम्यति॥

अर्थ—रोग, दोष, बल, मात्रा काल और अग्नि की अपेक्षा करके शस्त्रकर्म और अग्निकर्मके योग्य स्थलोंमें क्षारका प्रयोग करे ॥ गन्धद्रव्य और रालआदि की धूनी देनेसे वृण कड़ा पड़जाता है, इसी तरह घी, मज्जा और चर्बीकी धूनी देनेसे वृण शिथिल पड़जाते हैं । वृणकी वेदना, स्नाव; गंध और क्रिमि तथा ढाँडापन और मृदुना धूनी देनेसे मिटजाती है ।

अन्यप्रयोग ॥

रोध्न्यग्रोधशुक्रानिखदिरस्त्रिफलाघृतम्
मलेपोवृणशैथिल्यंसौकुमाय्यभिवाधेनः॥

सरुजकठिनाःस्तब्धानिरास्नावाश्वयेवृणाः । यवचूर्णैःससर्पिर्कैवहुशस्तान्मलेपयेत् ॥ मुद्गपीष्टकशालीनांपायसर्वायथाक्रमम् । सघृतैर्ज्वनीयैर्वातर्पयेत्तानभीक्षणशः ॥ ककुभोटुम्बराश्वत्थरोध्रजाम्बवकदफलैः । त्वचमाश्वेवमृदणन्तित्वचचूर्णैश्चूर्णितावृणाः ॥ मनःशिलैलामञ्जिण्डालाक्षाचरजनीद्वयम् । मलेपःसघृतःसौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरःपरः॥ अयोरजःसकासीसंत्रिफलाकुसुमानिच । करोति लेपःकृष्णत्वसद्यप्यनवत्वचि ॥ कालीयकनताप्रास्थिहेमकालारसोत्तमाः । लेपःसगोमयरसःसवर्णिकरणःपरः ॥ क्रमुकाश्वत्थनिचुलमूलंलाक्षासगैरिका । सहेमश्चापृतासद्वाकासीसञ्चेतिवर्णकृत् ॥

यकनताप्रास्थिहेमकालारसोत्तमाः ।

लेपःसगोमयरसःसवर्णिकरणःपरः ॥ क्रमु

काश्वत्थनिचुलमूलंलाक्षासगैरिका । स

हेमश्चापृतासद्वाकासीसञ्चेतिवर्णकृत् ॥

अर्थ—पठानां लोध, बडकी कौपल, खैर सार, त्रिफला, घी इनका लेप वृणकी शिथिलता और सुकुमारताको दूर करता है । जिन वृणोंमें वेदना, कडापन, स्तब्धता, निरास्त्रावता होतीहै उनपर बहुत घी मिले हुए जौके चून का लेप करे । मृगा, साठी चावल, शाली चावल इनमें से प्रत्येक को दूधके साथ सिद्ध करके लेप करे अथवा जीवनीय गणोक्त औषधियों को घृतमें सानकर लेप करे तौ तर्पण होता है । अर्जुन गुल्म, पीपल, लोध, जामन, कायफल इनकी छाल का चूर्ण करके लेप करने से वृण पर शीघ्र खाल आजाती है । मनसिल, इलायची, मज्जाठ, लाख, दोनों हलदी, घी और शहत इनका लेप त्वचाको शुद्ध करता है । लोहचूर्ण, फसीस, त्रिफलाके फूल इनका लेप करने से नई त्वचा शीघ्र काली पड़जाती है । कालीयकतगर, आमकी गुठली, नागकेसर, कांती सार इनको गोबर के रसमें मिलाकर लेप करनेसे वृणकी त्वचा शरीर की अन्य त्वचाके समान होजाती है । सुपारी, पीपल की जड़, हिंजलकी जड़, लाख, गेरू, केसर, मुर्दासंग, हीराकसीस इनका लेप करने से वृणका वर्ण देहकी त्वचाके समान होजाताहै ॥

वृणपर बालजमने की विधि।

चतुष्पदाहित्वग्लोमसुरमृंगास्थिमसना

तैलाक्ताचूर्णिताभूमिर्भवेत्प्रोमरुहापुनः ॥

पोडशोपद्रवायेचवृणानांपरिकीर्तिताःते

पाचिकित्सानिर्दिष्टायथास्वंचिकित्सिते

चित्तप्रमोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ॥

अर्थ—बहुत भोजन करने से तथा शरीरके मन्द व्यवहारसे ऊष्मा सहित कफ मर्मस्थान अर्थात् हृदय में शब्दे पाकर बुद्धि और स्मृतिका नाश करके चित्तको मुग्ध करता हुआ उन्मादको उत्पन्न करताहै ।

कफज उन्माद के लक्षण ।

वाक्चेष्टितमन्दमरोचकश्चनारीचिविक्तप्रियतातिनिद्रा छर्दिश्चलालाचबलञ्चभुक्तेनखादिशौक्यञ्चकफात्मकेस्यात् ॥

अर्थ—घाणी और चेष्टाका मन्द पडजाना अरुचि होना, खियोंमें अनुराग, एकान्तकी अभिलाषा, असन्त निद्रा, वमन, लालास्राव, भोजन के पछे रोगकी शब्दि, नख नयन, मूत्र पुरीपादिका सफेद पडजाना ये सब कफज उन्मादके लक्षण हैं ॥

सान्निपातिक उन्माद के हेत्वादि ।

पःसन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैःसमस्तैःसत्तुहेतुभिःस्यात् ॥ सर्वाणिरूपाणिविभर्त्सिताह्माविरुद्धभैषज्याविधिर्विबर्ज्यः ॥

अर्थ—जो उन्माद सान्निपातसे होता है वह असन्त घोर होता है और वह पूर्वोक्त तीनों दोषों के मिले हुए लक्षणों से उत्पन्न होता है तथा इसके लक्षण भी मिले हुए तीनों दोषोंके समान होंतेंहैं, इसकी चिकित्सा विरुद्ध होती है, इससे यह रोग वर्जित होता है ।

आगन्तु उन्माद के हेत्वादि ।

देवपिगन्धर्वीपशाचयज्ञरसःपित्तणामभिर्भरणानि ॥ आगन्तुहेतुभियमपृतादि विध्याकृतःकर्मचपूर्वदेहे ॥

अर्थ—देवता, ऋषि, गंधर्व, पिशाच, यक्ष, राक्षस और पितृगणों की अवधर्षणानियम और ब्रतों में विक्षेप, तथा पूर्वजन्माजित कर्मफलसे आगन्तु उन्माद होता है ।

भूतोन्मादके लक्षण ॥

असत्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्भयः ॥ उन्मादकालोऽनियतक्षयस्यभूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—वाणी, पराक्रम, वीर्य, चेष्टा ज्ञान, विज्ञान और बलके मिथ्या आचरण से जो उन्माद होता है तथा जिसके घटने बढ़ने का समय नियत नहीं है उसे भूतोन्माद कहते हैं ।

देवादिके शरीरमें प्रविष्ट हानिमें दृष्टान्त अदृश्यन्तःपुरुषस्यदेहदेवादयःस्वैधगुणप्रभावाः । विशन्त्पददृश्यास्तरसायथैवछायातपौदर्पणसूर्यकान्तौ ॥

अर्थ—देवतादिक अपने गुणों के प्रभाव से शरीरको बिना दूषित किये अलक्षित रीति से मनुष्योंके देहमें ऐसे प्रविष्ट होजाते हैं जैसे दर्पण और सूर्यकान्तिमणि में छाया और आतप प्रविष्ट होजाते हैं ।

आयातकालोहिसपूर्वरूपःप्रोक्तोनिदानेऽस्यपरंमुराद्यैः ॥ उन्मादरूपाणिपृथङ्निबोधकालश्चमग्न्यपुरुषाञ्चतेषामिति

अर्थ—निदानस्थान में इस उन्मादरोग में देवादि गणका शरीर में प्रवेश होने का काल, और पूर्वरूप वर्णन कियागयाहै । अब हम उन्मादके पृथक् लक्षण और शरीरमें प्रविष्ट होने का काल वर्णन करते हैं ।

देवोन्मत्त के लक्षण ॥

सौम्यदृष्टिगम्भीरमप्रधृष्यमकोपनमस्व
भंभोजनाभिलाषिणमल्पस्वेदमूत्रपुरी
पवाचंधुभगन्धकुल्लपद्मबदनइतिदेवो-
न्मत्तंविधात् ॥

अर्थ--सौम्य दृष्टिवाला, गम्भीर, अप्रधृ-
ष्य [धर्षणके अयोग्य] अक्रोधी, निद्राही
न, भोजनाभिषापी, तथा जिसके पसनि, मू-
त्र मल कम होते हों, जो कम बोलता हो, दे-
ह में सुगन्ध आती हो, जिसका मुख प्रफु-
ल्लित कमलके समान हो, ऐसा पुरुष देवो-
न्मत्त होता है ।

अभिचारोन्मादके लक्षण ।

गुरुदृढसिद्धर्षीणाभिचाराभिध्याना
जुरुपाहारचेष्टान्याहारतैरुन्मत्तंवि-
धात् ॥

अर्थ....जिस उन्मादमें गुरु, दृढ, सिद्ध
तथा ऋषियोंके अभिचार और अभिध्यान
के अनुरूप आहार, चेष्टा और व्याहार हो-
ता है यह उन्माद गुरुदृढादिकृत होता है ।

पितृगणकृतउन्माद ।

अमसन्नदृष्टिमपश्यन्तनिद्रालुंप्रतिहतवाच
मनःशिलापारोचकाविपाकपरीतंपितृ-
भिरुन्मत्तंविधात् ।

अर्थ....जो मनुष्य पित्रोंके किये हुए
उन्माद से ग्रस्त होताहै उसकी दृष्टि स्वच्छ
नहीं होतीहै वह पदार्थों को अच्छी तरह
नहीं देख सकताहै, और निद्रालु होता है
उसकी वाणी यथावत् नहीं निकल सकती है,
अन्नमें अनिच्छा और भोजनमें अक्षि होतीहै

तथा वह अविपाक रोगसे पीडित होताहै ।

गन्धर्वोन्मादके लक्षण

चण्डंसाहसिकतीक्ष्णगम्भीरमप्रधृष्यमु-
खवाचनृत्यगीतानुपानस्नानपानमाल्य
धूपगन्धरक्तवस्त्रबलिकर्महास्यकथायो-
गप्रियंशुभगन्धमितिगन्धर्वोन्मत्तंविधात्-
अर्थ—जो चण्डप्रकृति, साहसिक, तीक्ष्ण
स्वभाव, गम्भीर, अप्रधृष्य, मुखसे वाजा
बजाने का अनुरागी, नृत्य, गीत, अनुपान,
स्नान, मालाधारण, धूप, गंध, लालवस्त्र,
बलिकर्म, हास्य, आदिकर्मों, में प्रीति रखने-
वालाहो जो देहमें सुगन्धित पदार्थों को लगा-
ताहो उसे गन्धर्वोन्मत्त समझो ॥

यक्षोन्माद के लक्षण

असकृत्स्वप्नरोदनहास्यंनृत्यमीतवाद्य
कथानपानस्नानमाल्यधूपगन्धरतिरक्त
विप्लुतासंद्दिजातिवैद्यपरिचदिनरहस्य
भाषिणमितियक्षोन्मत्तंविधात् ।

अर्थ—जो बार २ सोताहै, रोताहै, हंसता
है, नाचताहै, गाताहै, बजाताहै, बकताहै,
खाता पीताहै, स्नान करता है, शूलमाला,
धूप गंध धारण करता है, जिसकी आँखें
अत्यन्त लाल होताहै जो द्विजाति और वैद्य
की निन्दा करता है जो अपनी या और की
गुणवातोंका प्रकाश करदेताहै उसे यक्षो-
न्मादी समझो ।

राक्षसोन्माद के लक्षण ।

नष्टीन्द्रमन्नपानद्वेषिणमनाहारमपतिव-
लिनंशस्त्रशोणितमांसरक्तमाल्याभिला-
षिणंतर्जनपितराक्षसोन्मत्तंविधात् ।

अर्थ—जिसकी निद्रा नाश होगई हो, जिसको अन्नपानसे द्वेष हो, जो भोजन न करता हो, जो अतीव बलवान् हो, जो शस्त्र रुधिर, मांस और लालपुष्पोंकीमाला धारण करनेका अभिलाषीहो उसे राक्षसोन्मत्त समझो॥

ब्रह्मराक्षसोन्मत्त के लक्षण

प्रहासनृत्यप्रधानदेवविप्रवैद्यद्वेषावज्ञाभि
प्लुतिवेदमन्त्रशास्त्रोदाहरणैःकाष्ठादिभि
रात्मपीडनेनचब्रह्मराक्षसोन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ—जो अत्यन्तही हँसता वा नाचता हो, जो देवता, ब्राह्मण और वैद्योंसे द्वेष रखता हो, जो अबुद्धा पूर्वक स्तुति करता हो, जो वेदमन्त्र और शास्त्रके उदाहरण देता हो, जो अपनी देहमें लकड़ी लाठी आदि मारताहो, वह ब्रह्मराक्षसोन्मत्त होताहै ।

पिशाचोन्मत्त के लक्षण ।

अस्वस्थचित्तस्थानमलभमानंनृत्यगीतहा
सिनंयद्वाचद्ब्रभाषिणसङ्कटकूटमालिनर
ध्याचेत्तृणेष्वारोहणरतिसंभ्रववर्णरू
क्षस्वरंनग्नंविधायन्तंनैकत्रतिष्ठन्तदुःखा
न्यावेदयन्तंनष्टस्मृतिपिशाचोन्मत्तंविद्यात्

अर्थ—जिसका चित्त एक ठिकाने नहीं रहताहै और चंचल होताहै, जो नाचता, गाता और हँसता रहताहै, जो प्रसंगाप्रसंगगत बातें बकता रहताहै, जो कष्टकारक पहाड़ों की चोटियों पर चढ़जाता है, जो ऊँचे भागों पर, चिथड़ोंके ढेरोंपर, तृणों के ढेरोंपर चढ़जाता है, जिसके देह का वर्ण विगड़जाताहै, स्वरमें रूखापन होता है, जो गंगा होजाता है, इधर उधर दौ-

ड़ने लगता है, एक स्थान पर नहीं ठहरता है, दुःखों को कहता फिरता है, जिसकी स्मृति नष्ट होजातीहै उसे पिशाचोन्मत्त कहते हैं ॥

देवादिभूत उन्माद की विधि ॥

तत्रशौचाचारंतपःस्वाध्यायकोविदनरंप्रा
यःशुक्रमतिपदित्रयोदश्याञ्चदेवाः॥स्ना
नशुचिविविक्तसेविनधर्मशास्त्रश्रुतिका
व्यकुशलंप्रायःपृष्णिनवम्योक्तपयः । पा
तृपितृगुरुदृष्टसिद्धाचार्योपसेविनंप्रायोद
शम्याममावास्यायाञ्चापितरः॥ गन्धर्वा
स्तुस्तुतिगीतवादित्ररतिपरदारगन्धमाल्य
भियशौचाचारंद्वादश्याञ्चतुर्दश्याञ्च ॥
सत्त्वबलरूपगर्वशौर्ययुक्तंमाल्यानुलेपनं
हास्यभियमतिवाकरणंप्रायःशुबलैकाद
श्यांसप्तम्यांचयक्षाः । स्वाध्यायतपोनि
यमोपवासव्रतचर्यादेवयतिगुरुपूजारति
भ्रष्टशौचब्राह्मणमब्राह्मणंब्राह्मणवादिनं
शूरमानिनंदेवतामारसालिलक्रीडनरति
प्रायःशुक्रपञ्चम्यांपूर्णचन्द्रदर्शनेचब्रह्मरा
क्षताः । रक्षःपिशाचास्तुहीनसत्त्वपिथुन
स्त्रैणलुब्धंप्रायेतिद्वितीयातृतीयाष्टमीपुपुरु
पंछिद्रमवेक्ष्याभिधर्षयन्तीत्यपरिसंख्ये
यानांग्रहाणामाविष्कृततमाहृष्टावेतेन्या
ख्याताः ।

अर्थ....इन में से जो मनुष्य शौच, आचार, तप और स्वाध्याय में निरत है उसको छिद्र पाकर देवगण शुक पक्षकी प्रतिपदा वा त्रयोदशी को दबते हैं । जो स्नानादि से पवित्र रहता है एकान्त में रहता

है जो धर्मशास्त्र, श्रुति और कान्यमें कुशल है उसको ऋषिगण प्रायः छट् वा नवर्षाको दवाते है । जो माता, पिता, गुरु वृद्ध, सिद्ध और आचार्यों की सेवा करता है उसे पितृगण प्रायः दशमी वा अमावास्या को दवाते हैं । जो मनुष्य स्तुतिपाठ, गाने और यज्ञाने में लीन रहता है, पर स्त्री गामी होता है, गंध, माला, शौचाचार से हित रखता है उसे गन्धर्व द्वादशी वा चतुर्दशीको दवाते हैं । जो मनुष्य सत्व, बल, रूप, गर्व शौर्य से युक्त होता है, हंसी दिल्ली करता रहता है, अत्यन्त बोलता है, उसे यक्षगण प्रायः शुक्लपक्षकी एकादशी वा सप्तमी को दवाते हैं । जो स्वाध्याय, तप, नियम, उपवास, व्रतचर्या देवता, यति और गुरु की पूजा में विरक्त मन है, अपवित्र है, जो ब्राह्मण को अग्राहण कहता है, जो ब्रह्मवादी है, जो शूरमानी है जो देवस्थानमें जलक्रीडा करता है उसे ब्रह्मराक्षस प्रायः शुक्लपक्षकी प्रथमी वा पूर्णमासी को दवाते हैं । जो मनुष्य हीन पराक्रम छली पर स्त्री लम्पट और लोभी होता है उसे राक्षस और पिशाचगण छिद्रपाकर द्वितीया तृतीया वा अष्टमी को धर दवाते है । असंख्य ग्रहोमें से ये आठ बड़े उग्र हैं इससे इन्ही का यहाँ वर्णन किया गया है

असाध्य उन्माद के लक्षण ।

सर्वेष्वपितुखल्वेपुयोहस्तानुद्यम्यरोषसरं-
म्भानिःसंज्ञमन्येष्व्वात्मनिवापातयेत् ।
सोह्यसाध्योऽज्ञेयस्तथासाश्रुनेत्रोद्गमदृष्ट

रक्तःसतजिह्वःप्रसृतनसिकः । छिद्यमा-
नमर्माभतिहन्यमानपाणिःसततविकूजन-
दुर्धर्गस्तृपार्तःपूतिगन्धिश्चहिंसार्थीउन्म-
चोऽज्ञेयस्तपरिवर्जयेत् ॥

अर्थ—इन सब रोगियोंमें जो रोगी अपने दोनों हाथोंको ऊंचे करके रोपके आवेग में अचेत होकर और के देह पर स्वयं ही गिर पड़ताहै वह असाध्य होता है; तथा जिस उन्मादरोगी के नेत्रों में आंसू आते हैं, मूँदसे रक्त निकलता है, जीभमें घाव होजाताहै, नाक टपकतीहै, मर्म स्थान में छिदने की सी पीड़ा होतीहै हाथोंको दे मारताहै, कंठ में कूजन शब्द होता है, शरीर का रंग विगड़ जाताहै, तृपा से पीडित होता है जिसके देहमें दुर्गन्ध आतीहै जो हिंसा करनेके लिये उद्यत होता है, ऐसा रोगी त्यागनेके योग्य होता है ॥

मंत्रादि द्वारा चिकित्स्य रोगी ।

रत्यर्चनाकामेन्मादिनैतुभिपगभिप्राया
चाराभ्यां बुद्ध्वा तदङ्गैः पहारवलिभ्रमेणमं-
त्रभैषज्यविधिनापक्रमेत । तत्र द्वयोरपि निजा-
गन्तुनिमित्तयोरुन्मादयोः समासविस्तारा

भ्यांभेपजाविधिं व्याख्यास्यामः ।

अर्थ—देवतोंके पूजा पाठमें व्यक्तिक्रम होनेसे वा काम पीडित होनेसे जो अभिशाप वा अभिचार द्वारा उन्माद होता है उसमें उपहार, बलिदान और मंत्रमिश्रित औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥

अथ हम निज और आगन्तु दोनों प्रकार

र के उन्मादों की चिकित्सा संक्षेप और विस्तारसे कहते हैं ।

वातज उन्माद में चिकित्साक्रम ।

उन्मादेवातजेपूर्वस्नेहपानेविशेषावित् ।
कुर्यादाद्युत्तमार्गेतुसस्नेहंमृदुशोधनम् ।

अर्थ—वातज उन्मादमें प्रथम स्नेह पान कराना उचित है और जो स्रोतों के मार्ग रुकरहे हों तौ स्नेह मिश्रित मृदु संशोधन देवै ।

कफपित्तोन्माद में चिकित्साक्रम ।

कफपित्तभवेऽप्यादौवमनंसाविरेचनम् ॥

स्निग्धस्विन्नस्यकर्त्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः

निरूहणस्नेहवस्तीशिरसश्चविरेचनम् ।

ततःकुर्याद्यथादोषंतेपांभूयस्त्वमाचरेत् ॥

अर्थ—स्नेहन और स्वेदनकर्म कराने के पश्चात् कफज उन्मादमें वमन और पि-

तजमें विरेचन देवै अथवा दोनों ही देवै ।

इसके पीछे पूर्वोक्त क्रमसे पेया आदि

का सेवन करावै । फिर निरूहणवस्ति

और शिरो विरेचन देवै । फिर जैसा दो-

ष हो उसीके अनुसार बार बार वमन विरे

चनादि का प्रयोग करतारहै ॥

वमनादिकाफल ।

हृदिन्द्रियशिरःकोष्ठसंशुद्धेवमनादिभिः ।

मनःप्रसादमाप्नोतिस्मृतिसंज्ञाञ्चाविन्दति

अर्थ—वमन विरेचनादि प्रयोगोंसे हृदय

इन्द्रियगण, शिर और कोष्ठके शुद्ध हो

जाने पर मनमें प्रसन्नता तथा स्मरणशक्ति

और चैतन्यता बढ़ती है ।

आचारविभ्रंशोपपाय ।

शुद्धस्याचारविभ्रंशोतीक्ष्णनावनमञ्जनम् ॥

ताडनञ्चमनोबुद्धिदेहसंतर्जनहितम् ॥

यःशक्तोविनयेत्पट्टैःसंयम्यमुद्वटैःमुखैः ।

अपंतलोपृष्ठाप्राद्यैःसंरोध्यश्चतमोगृहे ॥

अर्थ....वमन विरेचनादि से शुद्धव्यक्ति

के आचार विभ्रंश होने पर तक्षिण नस्य, अं

जन और ताडना का प्रयोग करे । मन,

बुद्धि और देह का ताडना हित होता

है जो रोगी बलवान् हो तौ लोह और

काष्ठको छोड़कर मजबूत सुखदाई पट्टियोंसे

बांधकर अंधेरे घर में बन्दकरदेवै ॥

स्मृतिवर्द्धक उपाय ।

तर्ज्जनत्रामनंदानंसान्त्वन्नंहर्षणंभयम् ।

विस्मयोविस्मृतेर्हेतुर्नयन्तिप्रकृतिमनः ॥

प्रदेहोरसादनाभ्यङ्गधूमापानञ्चसर्पिषः ।

प्रयोक्तव्यंमनोबुद्धिस्मृतिसंज्ञामवोधनम् ॥

अर्थ....डराना, धमकाना, दैना, समझाना,

प्रसन्नकराना, भय दिखाना और भूलमें डा

लना इन बातों से स्मृति बढ़ती है और

मन सुस्थ होता है । प्रदेह, उत्सादन, अ-

भ्यंग, धूमपान, घृतपान इन प्रयोगों से

बुद्धि स्मृति और संज्ञा बढ़तीहै ।

आगन्तु उन्मादमें उपाय ।

सर्पिःपानादिरागन्तोर्षःत्रादिश्रेष्यतेवि-

धिः । अतःसिद्धतपानयोगान्मृण्णुन्माद

चिनाशनान् ॥

अर्थ—आगन्तु उन्माद में घृतपान और

मंत्र प्रयोग बहुत अच्छे होते हैं । अब उ-

न्मादको दूर करनेवाले उत्तम २ अनुभव

वियेह्ये प्रयोगों को लिखते हैं ।

उन्मादनाशकप्रयोग ।

द्विगुसौवर्चलाव्योपैद्विपलाशैर्घृताढकम् ।
चतुर्गुणैर्गवांमूत्रैसिद्धमुन्मादनाशनम् ॥

अर्थ—हींग, संचलनमक, त्रिकुटा इनमें से प्रत्येक द्रव्य को दो २ पल लेकर एक आढक घृत और चौगुने जल में पकाकर सेवन करें, यह उन्मादनाशक प्रयोग है ॥

कल्याणकघृत ।

विशालात्रिफलाकौन्तीदेवदार्वैलवालुकम् ।
स्थिरानन्तारजःपौट्टेशारिवेदेमियंगु
कम् ॥ नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्ती
दाडिमकेसरम् । तालीसपत्रं हृत्तमाल
त्याकुमुमंनवम् ॥ विडंगपृश्नीपर्णीचकु
पुचन्दनपद्मकम् । कल्कैः कर्पसमैरेतौविंश
त्यष्टाभिरैवच ॥ चतुर्गुणेजलेपक्त्वा
घृतप्रस्थं प्रयोजयेत् । अपस्मारेज्वरेकासे
श्वासेमन्देशनलक्षये ॥ वातरोगेप्रतिश्या
येतृतीयकचतुर्थके । छर्द्यशोमूत्रकृच्छेच
विसर्पोपहतेपुच ॥ कण्डूपाण्ड्वामयो
न्मादविपमेपुगरेपुच । भूतोपहताचित्ता
नांगद्वदानामरतेसाम् ॥ शस्तस्त्रीणाञ्च
बंध्यानांधन्यमायुर्वलप्रदम् । अलक्ष्मी
पापरक्षोघ्नंसर्वग्रहविनाशनम् ॥ कल्या

णकमिदंसर्पिःश्रेष्ठं पुंसवनपुच ।

अर्थ....इन्द्रायण, त्रिफला, रेणुका, देवदारु, एलुआ, शालिपर्णी, अनन्ता, दोनोहल्दी, दोनो शारिवा, प्रियंगु, नीलोत्तर, इलायची, मजीठ, दन्ती, अनार, नागकेशर, तालीसपत्र, बडी कटेरी; मालती के नये फूल, वायव्यदिङ्ग, पृष्णिपर्णी, कूट, चन्दन, पद्माक्ष,

इन अट्ठाईस द्रव्योंका एक एककर्म कल्क लेंवै । इनको चौगुने जलमें पकाकर एक प्रस्थ घी डाल देंवै । यहघृत मृगीरोग, ज्वर खांसी. स्वास. मन्दाग्नि. वातरोग. प्रतिश्याय तृतीयकज्वर. चतुर्थकज्वर. वमन. ववासीर. मूत्रकृच्छ्र. विसर्प. खुजली. पाण्डुरोग. उन्माद विप. प्रमेह. विपरोग भूतोपहत चित्त, गद्गदरोग वीर्यनाश तथा स्त्रियों के बन्ध्यापन को दूर करताहै । यह आयु और बलका बढ़ानेवाला है तथा अलक्ष्मी. पाप. राक्षस और सम्पूर्ण ग्रहों को नष्ट करनेवाला है । यह कल्याणनामकघृत पुंसवनकर्ममें श्रेष्ठहै ।

महाकल्याणकघृत ।

एभ्यएवस्थिरादीनिजलेपक्त्वाविंशति-
म् ॥ रसेतस्मिन्पचेत्सर्पिष्टुष्टिक्षीरचतुर्गुणे
वीराद्विमापकाकोलीस्वद्युत्सर्पभर्कादिभिः
मेदयाचसमैः कल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकं
महत् । वृंहणीयंविशेषेणसन्निपातहर-
परम् ॥

अर्थ....शालपर्णी से आदि लेकर इक्कास द्रव्यों को ऊपर कहेहुये प्रमाण से लेकर जलमें औटावै, उस काथमें एक बार ब्याई डई गौ का चौगुना दूध डालकर घी पकावै इसमें क्षीरकाकोली, दोनोप्रकारकेमाप, काकोली, केच, ऋपभक, ऋद्धि और मेदा इन सब को समान भाग लेकर कूटकर डाल देंवै यह महाकल्याणक घृत है । यह घृत अत्यन्त वृंहणकर्ता और सन्निपात को दूर करने वाला है

महापैशाचिक घृत ।

जाटिलांपूतनाकेशोचारदामर्कद्विचाम् ।

त्रायमाणान्जयांवीराञ्चीरकंकडुरोहिणीम्
 वयःस्थांशुकरंछिन्नामतिच्छत्रापलङ्कपाम् ।
 महापुरुषदन्ताञ्चवयःस्थानाकुलीद्वयम् ॥
 कटम्भरांष्ट्रिकालींस्थिरांचाहृत्यतैर्घृतम्
 सिद्धंचतुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।
 महापैशाचिकंनामघृतमेतद्यथाभूतम् ॥
 बुद्धिसृष्टिकरंचैववालानांचाङ्गवर्द्धनम् ।

अर्थ....जटांमासी, हरड, केसी (नीली-
 वृक्ष), चारटी, केंच, वच, त्रायमाणा, जया,
 क्षीरकाकोली, चौरपुष्पी, कुटकी, गिलोय,
 वाराहीकन्द, छत्रा, अतिक्षत्रा गूगल, शतभू-
 ली, वपस्या, दोनों नाकुली (दो प्रकार की
 रास्ना), कटभी, वृश्चिकाली, शालिपर्णी
 इन को कूटकर इनके क्वाथ में घृत पकावै
 यह घृत अनुभव किया हुआ है । इस के
 सेवन से चौथैया ज्वर, उन्माद, ग्रह, अप-
 स्मार नष्ट होजातेहै यह महापैशाचनामक
 घृत अमृत के समान गुणकारी बुद्धि और
 स्मृति को बढ़ाने वाला है । यह घृत वा-
 लकों के अंगों को बढ़ाता है ॥

लथुनाद्य घृत ।

लथुनानांशतंत्रिशदभयाद्युपणात्पलम् ।
 गवांचर्ममसीप्रस्योद्घ्यादकंक्षीरमूत्रयोः ॥
 पुराणसर्षिपःप्रस्यमोभिःसिद्धंप्रयोजयेत् ।
 हिंशुचूर्णपलंशतिदत्त्वाचमधुमानिकाम् ॥
 तद्वापागतुसम्भूतानुन्मादानुविपमज्वरान्
 अपस्मारांश्चहन्त्याधुपानान्म्यजननावनैः

अर्थ—सौ गांठ लहसन, तांस हरड, त्रि-
 कुटा एक पल, गवांचर्म का भस्म एक प्रस्थ
 गों का दूध और गों का मूत्र एक एक

आढक, पुराना घी एक प्रस्थ इन सब को
 मिद्ध करलेवे । जब यह ठंडा होजाय तब
 इसमें एक पल हांग पिसी हुई और आठ
 पल शहत डालकर मिलावे । इस घृतको
 पान अभ्यजन और नस्यकर्म में प्रयोग क-
 रने से आगन्तुक उन्माद, विपमज्वर और
 अपस्मार नष्ट होजाते हैं ॥

अन्य लथुनादि घृत ।

लथुनस्याविनष्टस्यतुलार्द्रिनिस्तुपीकृतम्
 तदर्द्धदशमूलस्यदृषाढकेऽपांचिपाचयेत् ।
 पादशेषेघृतप्रस्थंलथुनस्यरसंतथा ॥
 कालमूलकटुक्षाम्लमातुलुङ्गाद्रंकरसैः ।
 दाडिगाम्बुसुरामस्तुकांजिकाम्लैस्तदर्द्ध
 कैः । साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्याप
 दीप्यकैः ॥ यवानीचव्याहिलवम्लवेतसै
 श्वपलादिकैः । सिद्धमेतत्पिपेच्छूलगुल्मा
 पोजररापहम् ॥ दध्मपाण्ड्वामयंष्ट्रीह
 योनिदोषज्वरकिमीन् । वातश्लेष्मामया
 न्सर्वानुन्मादञ्चापकर्षति ॥

अर्थ—उत्तम लहसन की छिछका दूद
 की हुई गांठ पचासपल, दशमूल पचीसपल
 इन को दो आढक जठमें पकावै, जब
 चौथाई शेषरहजाय तब इस काथमें एक
 प्रस्थ घी, एक प्रस्थ लहसन का रस, बेर,
 मूली, वृक्षाम्ल, त्रिजैरा, अदरखका रस
 अनारका रस, ये सब एक एक प्रस्थ लेवै
 तथा सुरा, मस्तु और कांजी आधे आधे
 प्रस्थ लेवै । तथा त्रिफला, दारुहलदी, संधा
 नमक, त्रिकुटा, दोनों अजवायन, चन्य,
 हांग, अमलवेत इन सबका आधे आधे

पल चूर्ण मिलाकर पाक करै । इस घृतका पान करनेसे शूल, गुल्म, अर्श, जठररोग ब्रध्म, पाण्डुरोग, प्रीहा, योनिदोष, ज्वर क्रिमिरोग, वातकफरोग तथा सबप्रकार के उन्मादरोग नष्ट होजाते हैं ।

अन्य घृत ।

हिङ्गुनाहिङ्गुपर्णचिसकायस्याव्यस्ययांसि
क्षेसर्पिर्हिततद्ब्रह्मस्याहिङ्गुरोचकैः केवलं
सिद्धमेभिर्घापुराणंपाययेद्घृतम् । पाय
यित्वात्तमांमात्रांश्वभ्रेरुन्ध्याद्गृहेऽपिवा
अर्थ—हींग, हिङ्गुपर्णी, हरड और गि-
लोय इनको डालकर पुराना घी पान करै
अथवा गिलोय, हींग और रोचक [राजपला-
डु] डालकर पुराना घी सिद्ध करै । इस
घृत की उत्तम मात्रा पान कराके रोगी को
किसी श्वभ्र [तहलाने] में वा घर में वि-
ठलाये रखे ।

पुराने घी के गुण ।

विशेषतःपुराणञ्चघृतंतंपाययेद्भिपक् ।
त्रिदोषघ्नंपवित्रत्वाद्दिशेपाद्ग्रहमोक्षणम्
गुणकर्माधिकस्थानादास्वादान्कृति-
क्तकम् ॥ उग्रगन्धंपुराणस्याद्दशवर्षस्थि
तंघृतम् । लाक्षारसानिभक्षीतं तद्विसर्व-
ग्रहापहम् । मेध्यंविरेचनेष्वग्न्यंपुराणम
तःपरम् । नासाध्यनामतस्यास्तियत्स्या
द्वर्षशक्तस्थितम् ॥ दृष्टस्पृष्टमयाघ्रातंत
द्विसर्वग्रहापहम् । अपस्मारग्रहोन्मादव-
तांशस्तंविशेषतः ॥

अर्थ—वैद्यको उचित है कि उन्माद
रोगमें विशेष करके पुराना घी पान करगै

यह घृत त्रिदोषनाशक और पवित्र होने से
ग्रहमोक्षण कर्त्ता है । पुराना घी बहुत दि-
वस का होने से गुण और कर्म में अधिक
होताहै, स्वादमें कटु और तिक्त होता है,
इसमें गंध बड़ी उग्र आती है इस तरह
दसवर्ष का घी पुराना होता है । जो घृत
छाल के रस के समान और शीतल होता
है वह सर्वग्रह नाशक होताहै । दश वर्ष
से अधिक दिनका घी मेधावर्द्धक और उ-
त्तम विरेचनकर्त्ता है, इसे प्रपुराण कहते हैं
सौ बरसके घी के सामने कोई भी ऐसा
रोग नहीं है जो साध्य न हो । इस घृत
के देखने, छूने और सूंघनेहीसे सम्पूर्ण ग्रह
शान्त होजाते हैं । यह घृत अपस्मार
और ग्रहोन्माद रोगियों को विशेष करके
उपयोगी होता है ।

नस्याञ्जन प्रयोग ।

एतैरौषधवर्गैर्वाविधेयत्वंसगच्छति । अ
ञ्जनोत्सादनालेपान्नाचनादींश्चयोजयेत्
शिरिषोमधुकं हिङ्गुलधुनंतगरंयचाम् ॥ कु
ष्ठञ्चवस्तमूत्रेणपिष्टस्यान्नाचनाञ्जनम् ।
अर्थ—इन्हीं नीचे लिखीहुई औषधियों
द्वारा उन्मादका विधान कियाजाता है,
तथा अंजन, उत्सादन, आलेपन और न-
स्यकर्म में भी प्रयुक्त कीजाती है । उन
औषधियों के नाम ये हैं, सिरस, मुट्टहटी,
हींग, लहसन, तगर, वच, और कूठ इन
को चकर के मूत्र में पीसकर नस्यकर्म और
अञ्जन में प्रयुक्तकरै ॥

त्रैरेचनिक धूममें कोह हुए सुगंधित द्रव्यों की बत्ती बनाकर धूमपान करै, अथवा ऊपरके प्रयोग में कहीं हुई स्वेत कोयल से भादि लेकर सब द्रव्य और हाँग इनकी बत्ती बनाकर धूमपान करै । अथवा सेह, घुग्घू, विट्ठी, सिरकटा, भेडिया और बकरा इन के मूत्र, पित्त, विष्टा, लोम, नख, और चर्म इन सब के द्वारा सेक अंजन, प्रथमन, नस्य और धूम ये कर्म करै ।

अन्यप्रयोग ॥

वातश्लेष्मात्मके प्रायः पैतृके च प्रशस्यते ॥
तिक्तकंजीवनीयश्च सर्पिः स्नेहश्चामिश्रकः ।
शीतानि चान्नपानानि मधुराणि मृद्निच ॥

अर्थ—प्रायः वातश्लेष्मात्मक तथा पित्तज उन्मादमें तिक्तकघृत, जीवनीयघृत और मिश्रस्नेह तथा ठंडा मीठा और कोमल अन्नपान का प्रयोग करै ॥

उन्माद में फस्त ।

शंखकेशान्तसन्धौ वा मोक्षयेत् शोभिपकृशिराम् ।
उन्मादे विपमे चैव ज्वरेऽपस्मार एव च ॥

अर्थ—उन्माद, विपमज्वर और अपस्मार में कनपटी और केशान्त की सन्धियों में फस्त खोडै ॥

अन्यप्रयोग ।

घृतमांसवितृप्तवानिवातेस्थापयेत् सुखम् ।
त्यक्त्वामतिस्मृतिभ्रंशं संज्ञालब्ध्या प्रबुध्यते ।
आश्वासयेत् सुहृद्वातवाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः ॥
मूषादिपुंविनाशं वा दर्शयेदक्रुता निवावश्वासपतैलाक्तं यस्य सौ चानममा ॥

[११३]

तपे ॥ कापिकच्छ्वाथवातमैल्लोहतैलजलैः स्पृशेत् ॥
कशाभिस्तादयित्वा वा सुबद्धं विजने गृहे ॥
रुन्ध्याच्चेतो हिविभ्रान्तब्रजत्यस्य तथा शमम् ।

अर्थ—उन्मादरोगी को पेट भरकर पुराना घी वा मांस पान कराके सुखपूर्वक निर्वातस्थान में बैठवै ऐसा करने से रोगी की बुद्धि और स्मरणशक्ति ठीक होजाती हैं और वह होश में आजाता है । अथवा रोगी के सुहृदजन धर्म और अर्थ के वाक्यों द्वारा रोगी को आश्वासन देवै किसी प्यारी वस्तु के नाश होनेका संवाद सुनावै अथवा कोई आश्चर्योत्पादक वस्तुओं का दर्शन करावै । कभी २ सरसों का तेल लगाकर चित्त करके तथा बांधकर घूप में डालदेवै । अथवा केंचकी फली, गरमलोहा, गरमतेल, गरमजल रोगी के शरीर के लगावै । अथवा निर्जन घरमें रस्सियों से इट्ट बांधकर कोठों की मार लगावै । अथवा उसके विभ्रान्त चित्तको ऐसी रीति से रोके जिस से उसको शान्ति होवै ।

अन्यप्रयोग ।

सर्पेणोद्घृतदंष्ट्रेण दान्तैः सिंहैर्गजैश्च तम् ।
त्रासयेच्छस्त्रहस्तैर्वा तस्करः शत्रुभिस्तथा ।
अथ वाराजपुरुषावीहिर्नीत्वा सुसंयतम् ॥
त्रासयेत्तुर्बधेनेन तर्जयन्तो नृपाम्नाया ।
देहदुःखमयेभ्यो हि परंप्राणभयं महत् ॥
तेन याति शमत्स्य सर्वतो विप्लुतमनः ।
इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनोयस्योपहन्यते ॥
तस्य तत्सदृशमाप्तिश्चान्त्याश्रासैः शमनयेत् ।
का-

मशोकमयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान् ॥
परस्परप्रतिद्वन्द्वेरेभिरेवशमनयेत् ॥

अर्थ—दांत उखाड़े दूये सर्पों से उसे कटवावै, पालतू सिंह और हाधियों से डर पावै, हाथमें शस्त्र लेकर, तस्करों द्वारा वा शत्रुओं द्वारा भय दिखावै । अथवा राजा के कर्मचारी राजाकी आज्ञा लेकर उसे अच्छी तरह बांधकर बाहर ले जाकर खूब मारपीट करें क्योंकि देह के दुःखों के भय से प्राणों का भय अधिक होता है । उसी प्राणभय के कारण उसका विभ्रान्त चित्त स्थिर होजाताहै । जिस अभीष्ट वस्तुके नष्ट होने से मन चलायमान होजाता है, उसको उसीके सदृश वस्तुका दर्शन करानेसे, तथा समझाने और आश्वासन करने से चित्त शान्त होजाता है । जिसका मन काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और लोभ द्वारा चालित होताहै उस को उसीके विपरीत कारणसे शान्त करे, जैसे क्रोधजन्य उन्माद को हर्ष से, इसी तरह और भी ।

बुद्ध्वादेशंबयःसात्त्विकदोषकालंबलावलम् ॥
चिकित्सिताभिर्दंक्षुर्ष्यादुन्मादे भूतदोषजे ।
देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मात्तस्य तुवृद्धिमान् ॥
वर्जयेदञ्जनादीनितीक्ष्णानिभ्रूकर्मच ।
सर्पिष्पानादितस्पेहृष्टदुर्भेषज्यमाचरेत् ॥
पूजाम्बल्युपहारांश्चमन्त्राञ्जनाविधांस्तथा ।
शान्तिकर्मैष्टिहोमांश्चजप्यस्वस्त्यपनानिचावेदोक्ताग्निज्यमांश्चापिमायीश्चत्यानिचाचरेत् ।
भूतानाम

धिपेदेवमीश्वरंजगतःप्रभुम् ॥ पूजयन्प्रयतो नित्यंजयत्युन्मादंभयम् ।
रुद्रस्यप्रमथानामगणालोकेचरन्ति ये ॥
तेषांपूजाञ्चकुर्वाणउन्मादेभ्योविमुच्यते ।

अर्थ—भूत दोषज उन्माद में देश, वय, सात्म्य, दोष, काळ, बल और अवलकी परीक्षा करके चिकित्सा करे । देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व इन से किये हुए उन्माद में तीक्ष्ण अञ्जनादि तथा भ्रूकर्म न करे । तथा घृतपान और मृदु औषध इस मेंहितकारी होती हैं और पूजा, बलिदान, उपहार मंत्र तथा अंजन विधिका प्रयोग करे । शान्तिकर्म, यज्ञ, होम, जप स्वारितवाचन तथा वेदोक्त नियम और प्रायश्चित्त का अवलम्बन करे । जगत् के स्वामी भूतनाथ महादेवजी का विधि पूर्वक नित्य नियम से पूजन करता रहै तो उन्मादज भय दूर होजाता है । रुद्र के जो प्रमथ नामक गण संसार में विचरते रहते हैं उनका पूजन करनेसे उन्माद पास नहीं आताहै ।

बलिभिर्मंगलैर्होमैरौषध्यगदधारणैः ।
सत्याचारतपोज्ञानप्रदानिनियमवृत्तैः ।
देवगुह्यकविभाणांगुर्णांपूजनेनच ॥
आगन्तुःप्रश्नमयातिसिद्धैर्मन्त्रौषधैस्तथा ।

अर्थ—बलिदान, मंगलपाठ, होम, अंगद, औषधधारण, सत्याचरण, तप, ज्ञान, दान, नियम, व्रतादि नियमोंका पालन, देव, गुह्यक, विप्र, गुरुका पूजन, तथा सिद्ध मंत्र और औषधियों द्वारा आगन्तु उन्माद शान्त होजाता है । यच्चोपदेक्ष्यतेकिञ्चिदपस्मारेचिकित्सिते

उन्मादेतच्चकर्त्तव्यसामान्याद्हेतुदूष्ययोः

अर्थ—जो जो चिकित्सा अपस्मार रोग में वर्णन कीजायगी, वही चिकित्सा उन्मादरोग में भी कर्त्तव्य है क्योंकि इनदोनों रोगों के हेतु और दूष्य एकही हैं ।

उन्माद के अयोग्यव्यक्ति ।

निवृत्तामिपमथोयोहिताशीप्रयतःशुचिः॥

निजागन्तुभिश्नमादैःसत्त्ववान्नसयुज्यते।

अर्थ—जो मद्य मांसका सेवन नहीं करता है, हित भोजन करता है जितेन्द्रिय और पवित्र रहता है, ऐसे सत्त्ववान् पुरुषके निज और आगन्तु उन्माद नहीं होने पाते हैं ।

उन्मादमुक्तके लक्षण

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानांबुद्ध्यात्ममनसांतथा

धातुर्नाप्रकृतिस्थत्वंविगतोन्मादलक्षणम्।

अर्थ—इन्द्रियों के विषय, बुद्धि, आत्मा तथा मन इनकी प्रसन्नता, तथा धातुओं का प्रकृतिस्थ होना ये विगत उन्मादके लक्षण हैं ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ॥

उन्मादानांसमुत्थानंलक्षणंसचिकित्सितम् ॥

निजागन्तुनिमित्तानामुक्तवान्भि

पशुत्तमः॥

अर्थ—वैद्यवर आत्रेयने इस अध्याय में निज और आगन्तु भेद वाले उन्मादों की उत्पत्ति, लक्षण और चिकित्सा वर्णन की है ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सित स्थाने उन्माद चिकित्सित-

नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथातोऽपस्मारचिकित्सितं व्याख्यास्याम

इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम अपस्मार रोग की चिकित्सा का वर्णन करेंगे ।

अपस्मार की निरुक्ति ।

स्मृतेरपगमं प्रहुरपस्मारं भिपग्विदः । तमः

प्रवेशवीभत्सचेष्टधीसत्त्वसंप्रवात् ॥

अर्थ—आयुर्वेदज्ञ स्मृति के नाश होजाने को अपस्मार कहते हैं । इस में बुद्धि और मनके संप्रावित अर्थात् नष्ट होने से अंध-

कार में प्रवेश होनेकी सी दशा और भयंकर चेष्टा होजाती है ।

अपस्मार के कारण ।

विभ्रान्तबहुदोषाणामहिताशुचिभोजि-

नाम् । रजस्तमोभ्यांविहतेसत्वेदोपावृ

तेहृदि ॥ चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्रेगा

दिभिस्तथा । मनस्यभ्याहतेन्ष्टणामपस्मा

रंभवर्तते ॥

अर्थ—चलितचित्त, बहुदोषी अहित और अपवित्र भोजी के तथा जिसका सतो-

गुण रजोगुण और तमोगुण द्वारा नष्ट हो-

गया है, जिसका हृदय दोषों से आवृत है

तथा जिसका चित्त चिन्ता, काम, भय, क्रोध शोक और उद्रेगादिसे व्याप्त है उस के

अपस्मार रोग होता है ।

अपस्मारके वेगका रूप ।

घमनीभिःश्रितादोपाहृदयंपीडयन्ति ।

दूध और मूत्र डाल देवे । यह अमृत के समान गुणकारी महापंचगव्यनामक घृत है । यह घृत अपस्मार, उन्माद, सूजन, उदररोग, गुल्म, अर्शरोग, पाण्डुरोग, कामला, भगन्दर, अलक्ष्मी, प्रहरोग, चातुर्थिकज्वर इन सबको नष्टकर देता है ॥

अन्यप्रकारकेघृत ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेवच ॥
पुराणघृतमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्माजित्
घृतंसैधवाहिगुभ्यांवापैवान्तेचतुर्गुणे ॥
मूत्रेसिद्धमपस्मारहृद्ग्रहामयनाशनम् ॥
वचासम्पाककैडर्यवयःस्थाहिगुरोचकैः ॥
सिद्धंपलकपायुक्तैर्वातश्लेष्मात्मकेघृतम् ।
तैलप्रस्थंघृतप्रस्थंजीवनीयैःपलान्मितैः ॥
क्षीरद्रोणेपचेत्सिद्धमपस्मारविनाशनम् ।
कसेक्षीरेक्षुरसयोःकाश्मर्येऽष्टगुणेरसे ॥
कार्पकेर्जीवनीयैश्चघृतप्रस्थंविपाचयेत् ।
वातापित्तोद्भवाक्षिप्रमपस्मारानिन्यच्छति ॥

अर्थ—ब्राह्मीका रस, वच, कूट, शंख-पुष्पी इन के साथ में पुराने घृत को पककर के सेवन करे, तो उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार और पाप्मा दूर होजाती है । सैधानमक; हींग इन से चौगुना घी, घी से चौगुना थैल या बकरे का मूत्र इन को सिद्ध कर के पान करने से अपस्मार, हृद्‌रोग, प्रहरोग सब शान्त होजातेहैं । वच, अमलतास; कायकूल, वहेडा, हींग, रोचक. [राजपल्लंडु] और गूगल इन के साथमें घृतको पक्व करके सेवन करने से वातश्लेष्मात्मक अपस्मार दूर होजाती है । एक प्रस्थ ते-३

एक प्रस्थ घी. जीवनीय गणोक्तद्रव्य एक २ पल, इनको एक द्रोण दूध में पकाकरदे तो अपस्मार नष्ट होवे । दूध और ईख का रस चार २ सेर खैभारी का रस आठगुना; जीवनीय गणोक्त द्रव्य एक २ कर्प, एक पूथ घी इनको पकाकर सेवन करने से वातापित्तोद्भव अपस्मार शान्त होजाता है ॥

अन्यप्रयोग ।

तद्वत्काशविदारीक्षुकुशववाथशृतपयः ।
मधुकाट्टिपलेकलकेद्रोणेचामलकीरसात् ।
तद्वत्सिद्धोघृतप्रस्थःपित्तापस्मारभेषजम् ॥
अभ्यङ्गःसार्पपतैलवस्तमूत्रचतुर्गुणे ।
सिद्धस्याद्रोशकृन्मूत्रेस्नानोत्सादनमेवच
कटभीनिम्बकद्वङ्गमधुशिशुत्वचारेसे ।
सिद्धंमूत्रसमतैलमभ्यङ्गार्थमशस्यते ॥
पलङ्कपावचापथ्यावृश्चिकान्यर्कसर्पपैः ।
जटिलापूतनाकेशीनाकुलोहिगुरोचकैः ॥
लशुनातिरसाचित्राकुष्ठैर्विद्भिभश्चपक्षि-
णाम् । मांसाशिनांपथालाभेवस्तमूत्रेच-
तुर्गुणे ॥ सिद्धमभ्यञ्जनंतैलमपस्मार-
विनाशनम् । एतैश्चैवौषधैःकार्पेधूपनं-
सम्भलेपनम् ॥

अर्थ—इसीतरह से कांस्त, विदारी कंद, ईखकी जड़, कुशा इनके क्वाथ में औटाया हुआ दूध देवे । किसी २ पुस्तक में घृत है । यह दूध वा घृत पूर्वोक्त गुणकर्ताहै । मुलहटी दो पल, आंवले का रस एकद्रोण इस में एक प्रस्थ पुराना घी पकाकर सेवन करने से पित्तापस्मार दूर होजाता है सरसों के तेल को चौगुने बकरे के मूत्रमें औटाकर:

मालिश करे । फिर गोबरका उबटना करके गोमूत्र से स्नान करे । कटभी, नीम, कट्वंग और सहजना इनकी छाल का रस तथा गोमूत्र और इसके समानही तेल डालकर औंटावै फिर इससे मालिश करे तौ अपस्मार दूर होवै। गूगल, वच, हरड़, बिछवन, आक, सरसों, जटामांसी, पूतना (हरड़) केशी, रास्ना, हॉग, राजपलांडु, लहसन, आतिरसा (मुलहठी) चीता, कूठ, मांसाहारी पक्षियों की विष्टा जिनकी मिलसकै लाकर तेलसे चौ-गुना बकरे का मूत्र डालकर सिद्ध करै। इस तेल का मर्दन करने से अपस्मार नाता रहता है । इन्हीं औषधियों को पीसकर अपस्मार रोगीको घूप देवै वा उसके लेप करे ।

अन्य प्रयोग ।

पिप्पलीलवणशिशुहिगुंदिगुंशिवटिकाम्
काकोलीसर्पपान्काकनासाकैड्यचंदने।
शुनःस्कंधास्थिनखरान्पृथुकांश्चितपेप-
येत् । वस्तमूत्रेणपुष्यक्षेप्रदेहःस्यात्सधू-
पनः ॥ अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिरोच-
कैः ॥ उत्सादनंमूत्रपिष्टैर्मूत्रैर्वावसेचनम्
खरास्थिभिर्हस्तिनखैस्तथागोपुच्छलोम-
भिः । कपिलानांगवांमूत्रंनावनंपरमंहि-
त्तम् । श्वगृगालविडालानांसिंहादीनां
चशस्यते ॥ भार्गवचानागदन्तीश्वेता
श्वेताविषाणिका । ज्योतिष्पतीनागद-
न्तीपादोत्थामूत्रपेपिताः ॥ योगास्त्रयोऽ-
तःपड्विन्दूनपञ्चवानावयोद्विपक् । त्रि-
फलाव्योपपीतद्रुवक्षारफणिञ्जकैः ॥
श्यामापामार्गकारञ्जफलेभूत्रैःस्थवस्तजे।

साधितंनावनंतैलमपस्मारविनाशनम् ॥
अर्थ—पीपल, संधानमक, सहजना, हॉग
गौदनी के पत्ते काकोली, सरसों, कौआ टोटी,
कायफल, रक्तचन्दन, कुत्ते का कंधा, नख,
पसली इनको पुष्यनक्षत्र में छाकर बकरे के
मूत्र में पीस लेवै इसका लेप करने से वा घूप
देने से अपस्मार दूर होजाता है । काली
तुलसी, कूठ, हरड़, केशी, राजपलाण्डु,
इनको गोमूत्र में पीसकर उत्सादन करे तथा
गोमूत्र में घोलकर इनके द्वारा सेचन करे ।
चमगिहड़ की विष्टाका लेप करै अथवा जले
हुये बकरेके लोम, गंधकी हड्डी, हाथीके नख
वा गौ की पूंछ के लोमों का लेप करे ॥ क-
पिला गौके मूत्र की नस्य परमहितकारी होती
है ॥ इसी तरह कुता, सिग्कटा, बिल्ली और
सिंहादिक जीवों के मूत्रकी नस्य भी उत्तम
होती है । भांडगी, वच, नागदन्ती, तथा दो-
नों प्रकार की अपराजिता और भेड़ासिंगी
तथा मालकांगनी और नागदन्ती इन तीनों
प्रयोगों को गोमूत्र में पीसलेवै फिर इसमें से
पांच वा छः विन्दुनाक में डालै । त्रिफला,
त्रिकुटा, दाहहस्ती, जवाखार, फणिञ्जक,
निसोध, आंगा, कंजा के फल इनको पीस
कर बकरे का मूत्र और तेल अग्निपर चढ़ादे ।
पक होने पर इसकी नास लेवै तो अपस्मार
दूर होजाता है ॥

पिप्पलीवृश्चिकालीचकुपुंचलवणानिच ।
भार्गवचूर्णितंनस्तःकार्थमधमनंपरम् ॥
कायस्थानशारदान्मुद्गान्मुस्तोशीरयवां
स्तथा ॥ सव्योपान्स्त्वमूत्रेणपिष्ट्वाव-

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुर्कुर्वन्त्यपस्मारदोषाः प्रकुपितायथा ॥
सामान्यतः पृथक्त्वाच्चलिङ्गं तेषांच भेषज
म् ॥ महागदसमुत्थानं लिङ्गं चोवाचसौप
धम् ॥ मुनिर्व्याससमासाभ्यामपस्माराचि
कित्सिते ॥

अर्थ—इस अपस्मार चिकित्सित अध्याय
में पुनर्वसुने अपस्मार के हेतु, प्रकुपित दोषों
के द्वारा रोगकी उत्पत्ति, तथा सामान्य री-
ति से पृथक् पृथक् उसके लक्षण और औ-
षध, महागदकी उत्पत्ति लक्षण और औ-
षध ये सब बातें संक्षिप्त और सविस्तर उ-
भय प्रकार से वर्णन की हैं ॥

इति श्री भाषाटीकाश्रितायां अग्निवशविरचि
तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहिताय
चिकित्सितस्थानेऽपस्मारचिकित्सितं
नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

—: () :—

षोडशोऽध्यायः

अथातः क्षतक्षीणचिकित्सितव्याख्यास्याम
इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम क्षतक्षीण रोगोंकी चिकित्सा
का वर्णन करेंगे ।

उदारकीर्तिर्ब्रह्मर्षिरात्रेयः परमार्थवित् ॥
क्षतक्षीणचिकित्सार्थमिदमाह चिकित्सि
सम् ॥

अर्थ—उदारकीर्ति, ब्रह्मर्षि और परार्थ
वित्, आत्रेयने क्षतक्षीण की चिकित्सा के
निमित्त यह अध्याय वर्णन किया है ॥

क्षतरोगकाहेतुः

धनुषपायस्य तोऽत्यर्थं भारमुद्ग्रहतोगुस्म ॥
पततो विपमोचेभ्यो युध्यमानस्य चात्रिकेः
रुपंहयं वाधावन्तदम्यं वान्यं निवृत्तः ॥
शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातानाक्षिपतो निप्रतः
परान् ॥ अधीयमानस्यात्युच्चैर्दूरं वा ब्रज
तोद्भुतम् ॥ महानदीं वा तरतोगर्जं वा सह
धावतः ॥ सहस्रोत्पातो दूरं तूर्णं चातिम
नृत्यतः ॥ तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशम-
भ्याह तस्य वा ॥ चिक्षते वक्षसि व्याधिर्व
लवान् समुदीर्यते ॥

अर्थ—धनुष लेकर अत्यन्त डोलना
बहुत भारी बोझको उठाना, उंचे नीचे
स्थानोंसे गिर पडना, अधिक बलवान्के
साथ युद्ध करना, दौडते हुये पैल वा घोडे
के रोकने का प्रयत्न करना, शिला, काठ
वा पत्थर का मुद्गर फेंकना और उनसे
शत्रुओंका मारना, बहुत चिल्ला चिल्लाकर
पडना, जोरसे दूर तक भागते हुए चला
जाना, गम्भीर बड़ी नदी में तैरना, हाथी
घोडेके साथ दौडना; सहसा उछलकर दूर
जा पडना, वेगसे नृत्य करना वा और
और काठिनकर्मोंको करना । इन सब बातों
से आहत होकर वक्षःस्थल में घाय होजाता
है तब बलवान् व्याधि का उदय होता है ।
क्षीणरोगकाहेतुः ।

स्त्रीपुत्रातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः
अर्थ—रूक्ष, अल्प और थोडा खानेवाला
मनुष्य जो स्त्रियोंसे अत्यन्त संगम करता है
उसके क्षीणरोग होता है ।

क्षतक्षीणकेलक्षण ।

उरोरिनिरुज्यतेतस्यभियतेऽयविदहते ॥

मपीड्यतेततःपार्श्वशुष्यत्यङ्गमवेपते ।

क्रमादीर्य्वलंबर्णोरुचिराग्निश्चहीयते ॥

ज्वरोव्यथामनोदैन्यंविद्भेदोऽग्निवधस्त

थादुष्टःश्यावःसदुर्गन्धःपीतोविग्रंथितो

बहुः । कासमानस्यचश्रेष्ठासरक्तःसंम

वर्त्तते । क्षतःक्षीपतेत्यर्थं तथाशुक्रौ

जसोक्षयात्

अर्थ—जिनके क्षतक्षीण रोग होतेहैं

उनके हृदयमें वेदना, भेदन और दाह होता

रहताहै पसलीमें पीडा, अंग का शुष्क होना

और शरीरका कांपना ये बातें भी होतीहैं ।

क्रम २ से वरु, वर्ण रुचि, और अग्निक्षीण

होती चलीजाती है । ज्वर, व्यथा, मनमें

दौनता, पुरीषभेद और अग्निमान्द्य होता है।

खांसीके साथ विगडा हुआ, कुछ काला,

दुर्गंध युक्त, पीतवर्ण, गांठदार, बहुतसा कफ

रुधिर निकलताहै ॥ इस प्रकार क्षतयुक्त

प्राणी अत्यन्त क्षीण होजाता है और शुक

आदि के क्षीण होने से भी प्राणी ऐसे ही

क्षीण होजाता है ॥

क्षतक्षीण के वैशेषिकलक्षण ।

अव्यक्तलक्षणंतस्यपूर्वरूपमितस्मृतम् ।

उरोरुक्शोणितश्छर्दिःकासोवैशेषिकः

क्षते । क्षीणिसरक्तमूत्रत्वंपार्श्वपृष्ठाटिग्रहः ॥

अर्थ—पूर्वोक्त समस्त लक्षण जब तक

अस्पष्ट हों तब तक उनको इन दौनों रोगों

के पूर्वरूप कहते हैं । क्षतरोग में वक्षःस्थल

में पीडा रुधिरकी, वमन, और खांसी होती

है । क्षीणरोग में रुधिर सहित मूत्र, पसली

पीठ और कमर में जकडन होतीहै ।

साध्यासाध्यलक्षण ।

अल्पलिङ्गस्यदीप्ताग्नेःसाध्योबलवतोनरः

गतेसम्बत्सरेयाप्यःसर्वलिङ्गतुवर्जयेत् ॥

अर्थ—दोपोंका अल्प लक्षण, अग्निकी

तीव्रता और रोगीका बलवान् होना, जब ये

बातें होतीहैं तब उक्त रोग साध्य होतेहैं ।

एक वर्षके पुरानेरोग याप्य होतेहैं और जि-

न रोगोंमें पूर्ण लक्षण होजाते हैं वे

असाध्य होतेहैं ॥

क्षतक्षीणचिकित्सा ।

उरोमःवाक्षतलाक्षांपछसामधुसंयुताम् ।

सद्यप्यपिवेर्जाणिपयसाद्यात्सार्करम् ॥

पार्श्ववस्तिरुज्ज्वल्येपित्ताग्निस्तांसुरायु

ताम् । भिक्षविद्रकःसमुस्तातिविपांषावां

सवत्सकाम् ॥ लाक्षांसर्पिर्मधुच्छिद्रंजीव

नीयगणंसिताम् । त्वक्क्षीरीसन्मितक्षीरे

पक्त्वादीप्तानलःपिवेत् ॥ इक्ष्वालिकवि

सग्राथिपक्षकेसरचन्दनैः । शृतंपयोमधु

युतंसन्धानार्थंपिवेत्क्षती ॥

अर्थ—हृदयमें घावका अनुमान होनेपर

लाख को दूध और शहतके साथ तत्काल

पान करावे और औषधके जर्ण होनेपर

दूध और चीनीके साथ भोजन करावे ॥

यदि पसली और वस्तिमें वेदना होती हो

और पित्ताग्नि अल्प पडगई हो तो लाख

को मद्यमें मिलाकर पान करावे । मन्त्रके

फटनेपर मोथा, अतीस, पाठा और इन्द्र

जी का काथ देवे । अग्नि के तीव्र होनेपर

दाख, घी, मोम, जीवनीय गणोक्त द्रव्य
मिथी, वंशलोचन इन का समान भाग ले-
कर दूध में औटाकर पीये । क्षत के संधान
कारने के लिये इक्ष्वालेक, फमल की जड़,
भागकेसर, रक्तचन्दन इनको दूध में औटा-
कर शहत डालकर पीये ॥

यवानांचूर्णमादायसीरसिद्धघृताप्लुतम् ।
ज्वरदाहसिताक्षौद्रशक्नुवापयसापिबे-
त् ॥ कासीपर्वास्थिशुलाचलिह्यात्सघृत
माक्षिकाः । मधुकमधुकद्राक्षात्त्वक्षीरी-

पिप्पलीवलाः ॥

अर्थ....ज्वरदाह में जाँके चून को दूध
में सिद्ध करके बहुतसा घी डालकर पीये
अथवा मिथी शहत और सजूको मिलाकर
दूध के साथ पीये, जो रोगी के खांसी होवे
अथवा पोरु और हड्डियों में वेदना हो तौ
महुआ, मुलहठी, दाख, वंशलोचन, पीपल
और खैरटी, इनके चूर्ण को घी और शहत
में सानकर सेवन करे ।

पलादि बटिका ।

पलापत्रत्वचाध्वाक्षाःपिप्लव्यर्षपलंतथा-
सितामधुकत्वज्जूरमृद्धीकाभपलोम्बिताः ॥
संचूर्णमधुनायुक्तागुलिकाःसंमकल्पयेत् ।
अशतुल्यास्ततश्चैकांभशयेद्वादिनेदिने-
कासंश्रवांसंज्वरंहिकांछादिंमूर्च्छामिदंभ्रम-
म् ॥ रक्तनिष्ठीवनंतृष्णांपार्श्वशूलमरो-
चकम् । शोषप्रीहाद्व्यवाताश्चस्वरभेदंक्षत
क्षयम् ॥ शुलिकातर्पणावृष्यारक्तपित्त-
चचनाशयेत् ।

अर्थ—ठोटी इत्यादी, तेजपात, दाखचीनी

इनमें से प्रत्येक आधे २ तोला, पीपल दो,
तोला, मिथी, मुलहठी, खजूर और दाख
प्रत्येक चार तोला, इन सब को पीसकर
शहत में तोले तोले भरकी गोली बनालेये
और प्रति दिन एक गोली का सेवन करे
तौ खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, यमन
मूर्च्छा, मद, भ्रम, रक्तनिष्ठीवन, तृषा,
पार्श्वशूल, अरुचि, शोष प्रीहा, आद्व्यवात
स्वरभंग, क्षत, क्षीणता और रक्तपित्त इत-
ने रोग नष्ट होजाते हैं । येगोली तुतिकर्त्ता
और वृष्य होती है ।

रक्तेऽतिरुचेदक्षाण्डंयूपेस्तोयेनवापिघेत ॥
चटकाण्डरसंवापिरक्तवाद्यागजाङ्गलम् ।
चूर्णपौनर्नवंरक्तशालितण्डुलशार्करम् ॥
रक्तप्रीवीपिबेत्सिद्धद्राक्षारसपयोघृतैः ।
मधुकमधुकक्षीरसिद्धंवातण्डुलीयकम् ।
मृदवातस्त्वजामेदःसुराभृष्टसंन्धवमृक्षा
मःक्षीणःक्षतोरस्कस्त्वानिद्रःसबलेऽनले ॥
शृतक्षाररसेनाद्यात्सौद्रघृतशर्करम् ॥

अर्थ—रुधिरके अत्यन्त निकलनेपर मु-
र्छा के अंटे, अं चिडियाके अंडों का रस
वा बकरी या जांगल जीवों का रक्त मूष वा
जल के साथ पीये । सांठ, लाल शाली चा-
वल, शर्करा, द्राक्षारस दूध और घी इनको
मिलाकर पानेसे रुधिर बन्द होजाता है ।
महुआ और मुलहठीको दूधमें औटाकर अ-
थवा चीलाई की जड़को दूधमें औटाकर
पीये । मृदवातरोगी बकरके मूदको मुरागें
गर्भ करके संधानकर डालकर पीये ॥
घातकी अधिकता से जब क्षत रोगी रुधिर

और क्षाण हाजाय और निद्रा जाती रहै
तो औंटे हुए दूध के साथ मांसरसका सेवन
करै उसमें शहत, घी और चीनीमी डाललैवै
शर्कराञ्चपवसौद्रजचिकर्षभकौमधु ॥
शृतक्षीरानुपानंवालिद्यात्क्षीणःक्षतःकृशः
क्रव्यादमांसनिर्ग्रहघृतभृष्टंपिबेच्चसः ।
पिप्पलीचौद्रसंयुक्तंमांसशोणितवर्द्धनम्
न्यग्रोधोदुम्बराश्नत्थप्लक्षशालमियंमुभिः ॥

तालमस्तकजम्बूत्वकूपियालैशसपशकैः॥
साश्वकर्णैःशृतात्क्षीरादथाञ्जातेनसर्पि
पा । शालयोदनक्षतोरस्कःक्षीणशुक्रद्वच
मानवः । यत्पञ्चाह्वानागवलयोःकाथेक्षी-
रसमेघृतम् ॥ पयसापिप्पलीचांशीकल्क
सिद्धंक्षतेभुभम् । कोललाक्षारसेतद्रत्नी
राष्ट्रगुणसाधितम् । कल्कःकट्वद्गदावी
त्यम्बत्सकत्वयफलैर्घृतम् ।

अर्थ—जब क्षतक्षाण रोगी कृश होजाय
तब वह शर्करा, जीका चून और शहत अ
थवा जांवक, ऋषभक और शहत को चाट
कर ऊपर से गरम दूध पीवै । मांस और
रुधिरकी वृद्धिके लिये मांसाहारी पशुओं के
मांस रसको घी में छोककर पीपल और श-
हन मिलाकर सेवन करै । अथवा बड, गुलर
पीपल, कांकर, प्रियंजु, ताडकांठाल, पियाल
जामनमोठाल, पञ्जाव, अश्वकर्ण (शालका
भेट) इनको डालकर दूध ओंटावै, इस दूध
में से घृत निकाल कर शाली चावलों का
भात सेवन करे तो वक्षःस्थल का क्षत और
शुक्रकी क्षीणता दूर होजाताहै । अथवा
मुटहरी और नागवलयके काथ में दूध और

घी समान भाग डाले तथा क्षीर काकोठी,
पीपल और वंशलोचन डालकर पान करै
तो क्षतरोग दूर होजाता है । अथवा वेर और
लाक्षारस का समान भाग घी और दूध में
ओंटाकर पूर्ववत् सेवन करै । अथवा सीना-
पाठा, दारुहलदी की छाल, कुडाकी छालः
इनको घृतसे अठगुने दूध में ओंटाकर से-
वन करै ।

अमृत प्राशघृत ।

जीवकर्षभकौवीरांजीवन्तीनागरशठीम् ।
चतस्रःपर्णिनीमेंदकाकोल्यांद्देनिदिग्धिके
पुनर्नयेद्रेपधुक्रंसात्मगुप्तंशतावरीम् ॥
ऋद्धिपरूपकंभार्गीमृद्धीकांघृहर्तितथा । श्रद्धा
टर्कीतामलकींपयस्यांपिप्पलीबलाम्बद
राक्षोदत्तवर्ज्जूरयातामाभिपुकाण्यपि ।
फलानिचैत्रमादीनिकलकान्कुर्वीतकार्षिका
न् । धात्रौरभविदारीक्षुछागमांसरसंपयः
कुट्यात्सस्थोन्मितेनघृतप्रस्थंविपाचयेन्
प्रस्थार्द्धमधुनःशीतेशर्कराद्धतुलांतथा ।
द्विकार्षिकाणिपध्रलाहेमत्वद्भ्रमरिचानिच ॥
चूणितानिविनीयास्माल्लिह्यन्मात्रांसदा
नरः । अमृतप्राश्यमित्येतन्नराणाममृतघृतम्
सुधामृतरसंमाश्रयक्षीरमांसरसाग्निनाानष्ट
शुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्षितान् । स्त्री
मसक्तान्कृशानवर्णस्वरहीनांश्चतुर्हयेत् ।
कासद्विक्लाञ्ज्वरश्वासदाहत्तृष्णास्रपित्तनु
त् । पुत्रदंभमिगूर्च्छाह्योनिमुत्रामंयागहम्-
अर्थ—जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोठी,
जीवन्ती, सौंठ, कचूर चारोपर्णी [शालि-
पर्णी, पृथिवीपर्णी, मापपर्णी, मुद्गपर्णी]

मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, छोटी कटेरी, बड़ीकटेरी, सफेदसांठ, लालसांठ, मुलहठी, केंच, सितावर, ऋद्धि, फालसा, भ्रांडगी, दाख, बड़ी कटेरी, सिंघाड़ा, भूम्यां बला, विदारीकन्द, पीपल, खैरी, बेर अग्वरोट, खजूर, बदाम, पिस्ता, तथा अन्य ऐसे ही फलोंको एक २ कर्ष लेकर पीसलेवै ॥ छांवेलेका रस, विदारीकारम, ईखका रस, यकरोका मांसरस, दूध प्रत्येक एक २ प्रस्थ लेकर एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, ठंडी होने पर आधा प्रस्थ शहत, आधा तुला शर्करा तथा तेजपात, इलायची, दाखचीनी, काली मिरच प्रत्येक दो दो कर्ष लेकर चूर्ण कर के मिजांदेवै । जो मनुष्य इस अमृतप्राश नामक घृत का प्रति दिन ठीक प्रमाण से सेवन करता है, उसे यह अमृतके समान गुणकारी है ॥ इसपर दुग्ध और मांसरस का अनुपान करै । इसके सेवन से शुक्रक्षय, क्षतक्षीणता, दुर्बलता व्याधिसे कर्षता, स्त्री प्रसंग से कृशता, वर्णहीनता और स्वरहीनता ये सब नष्ट होजाते हैं । तथा खांसी, हिचकी, अवर, स्वास, दाह, तृष्णा, रक्तापित्त, यमन, मूर्च्छा, योनिरोग, मूत्ररोग भी नष्ट होजाते हैं ॥ इसके सेवन से पुत्र की उत्पत्ति होती है ।

स्वदंष्ट्रादिघृत ।

स्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाशमर्यकचटणम् ॥ दर्भमूलं पृथक्पूर्णापलाशपर्णमकीस्थिराम् । पालिकंसाधयेत्तेपारसेक्षीरचतुर्गुणम् ॥ कल्कैः स्वगुप्ताजीवन्तमिदं कर्ष-

भजीवकैः ॥ शतावर्युद्धिमृद्धीकाशर्कराश्रावणीविसैः ॥ प्रस्थःसिद्धोपृताद्वातापिचद्बृद्ववशूलजुत् । मूत्रकृच्छ्रमहेदार्शःकासशोपसयापहः ॥ धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानांवलमांसदः ।

अर्थ—गोखरू, खस, मजीठ, खैरी, खंभारी, कतृण, दामफ्री जड़, पृथक्पूर्णा, ढाक, ऋपमक, शालिपर्णा, इनमें से प्रत्येकको एक २ पल लेकर इनका काथ करै । चौथाई शोष रहनेपर चौगुना दूध, तथा केंच, जीवन्ती, मेदा, ऋपमक, जीवक शतावरी, ऋद्धि, दाख, शर्करा, श्रावणी, कमलनाल, इनका कल्क डालकर एकप्रस्थ घृत सिद्ध करै । यह घृत वातापित्त, हृच्छूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अशरोग, खांसां, शोष, क्षयी इनको दूर करता है । जो धनुष, स्त्रांसेवन, मद्यपान, भारवहन, मार्ग भ्रमण से व्याधित है उसको बल और मांस का बढ़ानेवाला है ।

मधुकाष्टपलद्राधाप्रस्थववाधेघृतं पचेत् ॥ पिप्पलयष्टपलेकलेमस्थंसिद्धेचशीतले । पृथगष्टपलंक्षौद्रंशर्कराभ्यांचिमिश्रेयेत् ॥ समंशक्तुक्षतक्षीणेरक्तगुल्मेपुताद्वितम् ॥

अर्थ—मुलहठी आठ पल, दाख एक प्रस्थ, पीपल आठपल, इनके काथमें एक प्रस्थ घृत पक करै ठंडा होने पर आठपल शहत और आठपल शर्करा मिलाकेवै फिर इसमें समान भाग सत्तू मिलाकर मात्रावत् सेवन करै तो क्षतक्षीणता और रक्तगुल्म दूर होजाते हैं ।

धायादिघृत ।

धात्रीफलविदारीभुजनीयपरसाद्घृतात्
छागगोपयसोश्वेवसप्तस्थानपचोद्रेपक
सिद्धशीतोसिताक्षौद्राद्विप्रस्थांविनयेत्ततः ॥
यक्ष्मापस्मारपित्तासृक्कासमोहक्षयापहम् ।
वयःस्थापनमायुष्यमांसशुक्रबलप्रदम् ॥

अर्थ—आंवलेका रस, विदारीका रस ई-
खंका रस, जीवनीय द्रव्योंका रस, घृत,
बकरीका दूध, गौका दूध, येसब एक एक
प्रस्थ लेकर पकावै । जब टंडा होजाय तब
उसमें एक २ प्रस्थ मिश्री और शहत-
मिलादेवै । इस घृतका सेवन करने से य-
क्ष्मा, अपस्मार, रक्तपित्त, खांसी, मोह और
क्षयरोग दूर होजाते हैं । यह घृत वयः
स्थापन कर्ता, आयुवर्द्धक, मांसवर्द्धक, शु-
क्रोत्पादक और बलकारक होता है ॥

घृतंतुपित्तेऽभ्याधिकेलिह्येद्वातेऽधिकेपिवेत्
लीढंनिर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्द्रन्तिनानिल-
म् ॥ आक्रामत्यनिलंपतिमूष्माणानिरुण
द्धिच । क्षामभणिकृशाङ्गानामेताप्येवघृता
निच ॥ त्वकुक्षीरीशर्करालाजचूर्णैःपा-
नानियोजयेत् । सर्पिर्गुडान्समध्वंशान्
जग्ध्वादघात्पयोनुच ॥ रेतोवीर्यबलं
पुष्टिरैराशुतरमाप्नुयात् ॥

अर्थ—इस क्षतक्षीण रोगमें पित्तकी अ-
धिकता होने से घृतको चाटै, वातकी अ-
धिकता में घृतका पानकरै, क्योंकि चाटा-
हुआ घृत थोड़ा होनेके कारण पित्त को
शान्त करदेताहै किन्तु वायु नष्ट नहीं करने
पाता है । पियाहुआ घृत वायुको नष्ट कर
देता है और ऊष्मा को रोकदेताहै ॥ दुर्बल,

क्षीण और कृश मनुष्योंको ऊपर फहेहुये
घृत वंशलेचन, मिश्री और लाजचूर्ण डा-
लकरदेवै ॥ सर्पिर्गुडमें मधु मिलाकर देवै
ऊपर से दूधका अनुपान करावै, तौ रोगी
शीघ्रही शुक्र, वीर्य, बल और पुष्टि से युक्त
होजाता है ॥

सर्पिर्गुड ।

चलांविदारीह्रस्वञ्चपञ्चमूर्त्तीपुनर्नवाम् ।
पञ्चानांक्षीरिवृक्षाणांशुद्धामृत्प्यंशकाम
पि ॥ एपांकपायेद्विर्क्षीरेविदार्याजरसां
सिकोजीवनीयैःपचेत्कल्कैरक्षमात्रैघृताढ
कम् ॥ सितापलानिपूतेऽस्मिन्शीतेद्या
त्रिशतंक्षिपेत् ॥ गोधूमपिप्पलीवांशचू-
र्णभृङ्गाटकस्यच । सक्षौद्रकुड्वांशेनतत्
सर्वस्वजमूर्च्छितम् ॥ स्थानंसापिर्गुडान्
कृत्वाभूर्जपत्रेणवेष्टयेत् । तान्जग्ध्वापलि-
कानक्षीरंमथंवानुपिवेत्कफे । शोषेकासे
क्षतेक्षीणेश्वरस्त्रीभारकापितः ॥ रक्तनिष्ठी-
वनेतापेपीनसेचौरसिस्थिते ॥ शस्ताः
पार्श्वशिरःशूलविभेदेस्वरवर्णयोः ।

अर्थ—खैरटी, विदारीकन्द, लघुपंचमूल
साठ और पांचों क्षीर वृक्ष, ये प्रत्येक एक
एक पल लेकर इनका काथ करै ॥ फिर
इस काथमें काथसे दूना दूध, विदारी का
रस, बकरेका मांसरस और घृत एक एक
आढक लेवै और इसी में जीवनीय, गणोक्त
द्रव्य दो दो तोले डालदेवै । जब पकाते
पकाते घृत शेष रहजाय तब छान कर
टंडा होने पर वर्तासपल मिश्री डालदे-
वै और गेहू, पीपल, वंशलेचन, मिवाडा,

ज्ञाता, प्रवर, पुनर्वसु ने निज आगन्तुक, एकांगज, सर्वांगज, शोथों के वातादि दोषों से किये हुए तीन भेद वर्णन किये ।

निजशोथकेकारण ॥

धृद्धामपमाभक्तकृशावलानांक्षाराम्लतीक्ष्णाप्यगुरुषुसेवा । दृष्यामसृच्छाकाविरोधिदुष्गरोपसृष्टान्ननिषेवणंच ॥ अर्शास्पचेष्टानचदेहशुद्धिर्मर्मोपघातोविपमाप्रसूतिः । मिथ्योपचारःप्रतिकर्मणाञ्च निजस्येहतुःश्रययौमादिष्टः ॥

अर्थ—संशोधन किया, रोग और निराहार रहनेसे जो मनुष्य कृश और दुर्बल होगये है उनके क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और गुरु, पदार्थों के सेवन से, दही कच्चा-पदार्थ, शाक, विरोधी अन्न, दुष्ट भोजन, विषसंसृष्ट भोजन के अत्यन्त करने से अर्शादि रोगों से, चेष्टा न करनेसे, देहकी शुद्धि न होने से, मर्म में चोट लगने से, विपमरति से प्रसूति होनेके कारण, शोथन क्रियाओं के मिथ्या उपचार से निज शोथ उत्पन्न होता है ।

आगन्तु के लक्षण ।

बाह्यास्त्वचोद्रूपयिताभिघातः ।

फाण्डाश्मशस्त्राम्ब्यशनीविपाद्यैः ॥

अर्थ—एकड़ी पत्थर, शस्त्र, आग्नि, यज्ञ विग आदिकी चोट बाहरकी त्वचा पर लगने से आगन्तुशोथ होता है ।

शोफके भेद ।

आगन्तुहेतुःत्रिभिर्धोनिजश्च ।

सर्वादिगात्रावपवाश्रितत्वात् ॥

अर्थ—आगन्तुनिमित्तक तथा तीन प्रकारकी निजशोफ सर्वांग अर्द्धांग या अर्द्धांग अंगावयव का आश्रय लेकर उत्पन्न होता है ।

चातिकशोथ का हेतु ।

बाह्यांसिराः प्राण्ययदाकफास्फुरपित्ताः
निसंदूषयतीह्वायुः ॥ तैर्वद्मार्गःसतः
दाविसर्पन्नुत्सेधलिङ्गंश्वयधुङ्करोति ॥

अर्थ—वायु जब बाहरकी शिराओंका ग्रहण करके कफ, रक्त और पित्तको दूषित करती है, तब कफादिके द्वारा वायुके बाहर निकलने का मार्ग बन्दहोजाता है, तब सम्पूर्ण शरीर में फैलती हुई शोफको उत्पन्न करती है। देह के किसी भागके झूल जाने का नाम शोथ है ।

नामपरत्वसेशोथों के भेद ।

उरःस्थितैरूर्ध्वमधस्तुवायोः स्थानस्थि-
तैर्मध्यगतैस्तुमध्ये ॥ सर्वांगगैःसर्वगतैः
कचित्स्यैर्दोषैःकचित्स्यात्श्वयधुस्त-
दाख्या ॥

अर्थ—दोषों के ऊर्ध्वस्थान में स्थित होनेसे देह के ऊपर के भागों में सूजन होती है, इसी तरह नीचे के अवयवों में स्थित होनेसे नीचे और बीच में स्थित होनेसे मध्य देह में सूजन होती है। दोषों के सम्पूर्ण देह में विचरने से सर्वांगगामी शोफ होता है तथा शरीर के जिस २ विभागमें दोष स्थित होकर सूजनको उत्पन्न करते हैं वह सूजन उसी स्थान विशेष के नामसे कहलाती है। ऊष्मातयास्याइवधुः शिराणा मायास इत्येवचपूर्वरूपं ॥ सर्वास्त्रिदोषोऽधिक

दोषलिंगैस्तत्संज्ञमभ्येतिभिषकृजितंच
अर्थ—सूजन उत्पन्न होनेसे पहिले देह में गरमी और दाह होता है, नसें फूल जाती है, सब प्रकारकी सूजन त्रिदोष से होती है, इन में जिस दोषकी अधिकता होती है, उसी के नाम से यह सूजन कहलाती है और उसी प्रधान दोष पर दृष्टि रखकरचिकित्साकी जाती है।

शोफकेसामान्यलक्षण ।

सगौरवंस्यादनवस्थितत्वं । सोत्तेषु
प्याथशिरातनुत्वम् । सलोमहर्षांगविवर्णता
चसामान्यलिङ्गैश्चयथोःप्रदिष्टम् ॥

अर्थ—भारपन, चंचलता, ऊंचापन, गर्माई, नसों का पतलापन, लोमहर्षण, अंग की विवर्णता, ये सब सूजन के सामान्य लक्षण हैं।

वाताधिक्यशोफ के लक्षण ।

चलस्तनुत्वकूपरुषोऽरुणोशितः सुपुंसिह
पीत्तियुतोनिमित्ततः ॥ प्रशाम्यतिप्रोन्न
मतिमपीडितो । दिवावलीचश्वयथुः
-समारणात् ॥

अर्थ—वायुकी अधिकता से सूजन स्थानान्तर में जाती रहती है, खालपतली पड़ जाती है, और उसका वर्ण पुरुष, छाल का काला पड़जाता है सूजनकी जगह सुन्न, रोमाञ्चित और वेदनायुक्त होती है, हेतु विपरीत अथवा से ये शान्त होजाती है । दवाने पर फिर ऊंची होजाती है, दिन में इसका वेग बढ़जाता है ॥

पित्ताधिक्यशोफके लक्षण ।

मृदुःसगन्धोऽसितपीतरागवान् । भ्रमज्व

रस्वेदतृपामदान्वितः । यत्प्यतेस्पर्शस-
होऽशिरागकृत्सपित्तशोभोभृशदाहपाकवान्

अर्थ—पित्ताधिक्य शोफ क्रोमल, गन्ध युक्त, काली, पीली वा छाल होती है इसके होने से चकर, ज्वर, पभीना, तृप्ता, और भ्रम होता है ॥ इस सूजन में हाथ लगाना बुरा मालूम होता है, आंखें बाल पड़जाती हैं, दाह और पाक बहुत होता है ।

कफाधिक्यशोफकेलक्षण ।

गुरुःस्थिरःपाण्डुररोचकान्वितःमसेकनि
द्रावमिवदिहमन्थकृत् ॥ सुकृच्छजन्ममशयो
निपीडितोन्नचोन्नमेद्रात्रिवलीकफान्वितः

अर्थ—कफाधिक्य शोफ भारी, अचंचल और पांडुरंगका होता है, इसके होने से अन्नमें अरुचि, लार टपकाना, निद्रा, वमन और मंदाग्नि होती है, इसके उत्पन्न होने और शान्त होने में बड़ी कठिनता होती है दाबनेपर फिर उठती नहीं है रात्रिके समय इसका वेग बढ़जाता है ।

असाध्य शोफके लक्षण ।

कृशस्यरोमेरवलस्यथोभवेदुपद्रवैर्वावामि
पूर्वकैर्युतः । महातिमर्मानुगतोऽधराजि-
मान्परिस्रवन्भीमबलश्चसर्वेशः ॥

अर्थ—कृश मनुष्यकी, रोमसे दुर्बल मनुष्य की, वमनादि उपद्रवों से युक्त सूजन, मर्म स्थान की सूजन, रेखाओं की सूजन सावयुक्त सूजन और हीनबल पुरुष की सूजन असाध्य होती है ।

साध्य शोफ के लक्षण ।

अहीनगांसस्ययएकदोषजोनवोबलस्तः

स्यसुखःसत्ताधने । निदानदोषर्तुविपर्यय
यक्रमैरुपाचरेत्तवलदोषकालवित् ॥

अर्थ....जिसका मांस क्षीण न हुआ हो
प्रेमे बलवान् व्यक्ति की एक दोष से उत्प-
न्न हुई नवीन-सृजन सुख साध्य होती है ।
बल, दोष और काल को जाननेवाले वैद्य
को उचितहै कि इस की चिकित्सा निदान,
दोष और ऋतुकी विपरीततासे करे ।

निक्त्सिक्रम ॥

अधामजलंघनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुत्व-
णदोषमादितः । शिरोगतशीर्षाचिरेचनैर-
धोविरेचनैरूर्ध्वह्रैस्तपोर्ध्वजम् ॥ उपा-
चरेत्स्नेहंगतविरुक्ष्णैःप्रकल्पयेत्स्नेहवि-
धिव्धुचरुक्षजे । विवृद्धाविट्केनिलजेनिरू-
हणंघृतन्तुपित्तानिलजेसत्तिक्रमम् ॥ प-
यश्चमूर्च्छारतिदाहतपित्तेशोधनीयेतुस-
मूत्रमिष्येत । कफोत्थितंभारकट्टणसंगु-
तैःसम्पूत्रतक्रासवयुक्तिभिर्जयेत् ॥

अर्थ — आम से उत्पन्न सृजन को लंघन
और पाचन से, उत्पन्न दोष वाली सृजन
को विशोधन द्वारा, अधोगामी शोफ को
दस्त फराके, उर्ध्वगि शोफको वमन करा-
के, घृतके अधिक सेवन से उत्पन्न शोफको
विरुक्षण क्रियांस, रुक्षज शोफको स्नेह
विधिसं, जीतने का उपाय करे । विवन्धुयु-
क्त यातज शोफ को निरूहणवस्ति से, वा
या पित्तज शोफ को तिक्तकघृत से, विजय
करे । मूर्च्छा, अरति, शह और तृपासे यु-
क्त सृजन में दूधको और विशोधन के यो-
ग्य सृजनमें गोमूत्रमिलाकर दूध को देवे ।

इसीतरह कफज शोफमें क्षार, कटु, उष्ण
द्रव्यों से युक्त गोमूत्र मिले हुए तक वा
आसव का प्रयोग करे ॥

सृजन में त्याग के योग्य पदार्थः
ग्राम्यान्पंपिशितलवणंशुष्कशाकंनवाभ-
म् । गौर्दंपिष्टंदधितिलकृतांविज्वलंमद्यम-
म्लम् ॥ धानाबल्लूरसमशनमथोगुर्वसा-
स्म्यंविदाहि । स्वप्नश्चरात्रौश्वयधुगद-
वान्वर्जयेन्मैथुनंच ॥

अर्थ—प्राण्य और आनूप पशुओं का
मांस, लवण, सूखाशोफ, नवीन अन्न, गुड़
के पदार्थ, पिट्ठी के पदार्थ, दही, तिलके
पदार्थ, कुछ रसीले व्यंजन, मद्य, खटाई,
जौ की धानी, सूखामांस, समशन, भारी,
असात्म्य और विदाही अन्न, रात्रिमें सौना
और मैथुन इन कर्मों का परित्याग शोथ
रोगी को करदेना उचित है ।

कफज शोफ पर प्रयोग ॥

व्योपत्रिष्टित्तिकरोहिणीचसायोरजस्का-
त्रिकलारसेन । पीतंकफोत्थंशमयेत्तुशोफ-
मूत्रेणगव्येनहरीतकीया ॥ हरतिकीना-
गरदेवदारुसुखाम्बुयुक्तंसपुनर्नंबवा । सं-
र्वपिवेध्विपामूत्रयुक्तंस्नातश्चजर्णिपय-
सान्निमघात् ।

अर्थ—त्रिकुटा, निसोथ, कुटकी, लोह
चूर्ण इनको त्रिकलके रस के साथ पानक-
रै अथवा हरड़के चूर्ण को गोमूत्रके साथ
पानकरे तो कफकी सृजन दूर होजाती है ।
अथवा हरड़, साँठ, देवदारु और साँठ इन
के चूर्ण को गरम जलके साथ फाँके तो क

फ की सूजन जाती है अथवा इसी चूर्ण को गोमूत्र के साथ फांके ती तीनों प्रकार की सूजन दूर होजाती है, औषध के पचने पर दूधके साथ अन्न का सेवन करै ॥

वातज शोफ के प्रयोग ।

पुनर्नवानागरमुस्तकल्कानमस्थेनधीरः
पयसोऽक्षमात्रान् । ययूरकंपागधिकांसमू
लासनागरांबाप्रधिवेत्सवाते ॥ दन्तीत्रि
हृत्पणचित्रकैर्वापयःशृतदोषहरंपिवेत्त्रा
द्विप्रस्थमात्रञ्चपलाजिकैस्तैर्द्वाशिष्टं
पयनेसापित्ते । सधुण्डिपीतदुरसंप्रयोज्यं
श्यामोरुधुकोपणसाधितंवा ॥ त्वग्दारुच
र्पान्तमहौषधैर्वागुडचिकानागरदन्तिभिर्वा

अर्थ—सांठ, सांठ और मोथा प्रत्येकदो तोला इनको एकप्रस्य दूधमें औटाकर आधा शोष रहने पर पान करै । अथवा ओंगा की जड़, पीपल, पीपलागूल और सांठ इनको ऊपरकी रीतिसे पीये तौ वातकी सूजन जाती रहतीहै । अथवा दन्ती, निसोध, त्रिकुटा, चीता इनको दूधमें डालकर औटावे और पान करै तौ सूजन के दोष दूर होजाते हैं॥अथवा दन्ती निसोध, त्रिकुटा चीता इनको आधे आधे पल लेकर दो प्रस्थ दूध में औटावे जब एक प्रस्थ रहजाय तत्र पान करै तौ वातपित्त का शोफ दूर होजाता है॥सांठ और देवदारु का काथ दूध के साथ पीने से अथवा काली निसोध, अरंड की जड़ और कालीमिरच इन सबको समान भाग लेकर अठगुने दूध और उससे चौगुने जल में चढाकर दूध शोष रहने पर छानक

र पीये तौ वातपित्त की सूजन जाती रहती है ॥ अथवा दालचीनी, दाहहलदी, पुनर्न वा और सांठ, अथवा गिलोय, सांठ और दन्ती इन दोनों में से किसी को दूधमें औटाकर पान करने से वातपित्त की सूजन दूर होजाती है ॥

सप्ताहमौर्ध्यदिवापिमांसपयःपिवेद्भोजन
धारिर्वर्जा । गव्यंसमूत्रंमहीपपीपयोवाक्षाः
राशनंमूत्रमद्योगवांश ॥ तत्रापिधेद्रागुरु
भिन्नवर्चासव्योपसौवर्चलमाक्षिकंवा ।
गुढाभयांवागुडनागरांवासदोषभिन्नाम
विवद्धवर्चाः ॥ विद्धवातसोऽपपसारसैर्वा
प्राग्धुक्तमयादुरुचुकृतलम् । स्रोतोवियं
न्येऽग्निरुचिप्रणाशेमद्यान्परिष्टांश्रपिये
त्युजातान् ॥

अर्थ—वातपित्तकी सूजनमें भोजन और जलको छोडकर एक सप्ताह या एक महीने तक केवल ऊंटनी का दूध पीकर रहै अथवा इसी तरह से गोमूत्र और भैंस के दूधका सेवन करै, अथवा गौ के दूध को भोजन में और पीने में प्रयुक्त करै । सूजन में मलका अत्यन्त भेद होनेसे त्रिकुटा संचलनमक और साहत डालकर मठा पीये दोषोंके द्वारा भिन्न हुए आम और विवद्ध मद्यमें गुड और हरड अथवा गुड और सांठका पान करावे । मल और अधोवायु के रुकनेपर भोजन करने से पहिले अंडा का तेल दूध या मांस रसके साथ पान करावे स्रोतोंके बन्द होने पर जठराग्नि और रुचि के नष्ट होने पर उत्तम वने हुए मद्य और अरिष्टों का पान करै ॥

कण्ठीराधिरष्ट ।

कण्ठीरभलातकचित्रकांश्चन्योपविडङ्गु
इतीद्वयश्च । द्विप्रस्थिकंगोमयपावकेन
द्रोणपचेत्काञ्जिकमस्तुनस्तु ॥ त्रिभा
गशेषंश्चसुपूतशीतद्रोणेनतत्प्राकृतमस्तुना
श्च । सितोपलायाश्चशतेनयुक्तलिप्तेघटे
चित्रकपिप्पलीनाम् ॥ वैहायसेस्थापित
मादशाहात्प्रयोजयंस्तद्विनिहान्तिशोकान्
भगन्दरार्शः। क्रिमिकुष्ठमेहान् वैवर्ण्यकाश्या
निलहिकनञ्च ॥

अर्थ.... कण्ठार, भिलाथा, चीता, त्रिकुटा
वायविडंग, दोनों कटेरी, इन सबको दो
प्रस्थ लेकर जौकुट करले फिर इसे एक
हाण कांजी और दही के तोड़में गौ के गो-
बके उपलों की आगपर पकावै । तिहाई
जलजाने पर इस को उतारकर छान लेवै
और टंडा होने पर एक द्रोण दहीका तोड़ सौ
पल मिश्री इसमें मिलाकर एक ऐसे घड़े
में भरदेवै जिसमें चीते और पीपलों की
भावना दी हो, इस घड़े को ढककर छंके
पर दस दिन तक टंगा रहनेदे । फिर इस
का सेवन करने से सूजन, भगन्दर, अर्श,
क्रिमिरोग, कुष्ठ प्रमह, विवर्णता, कृशता,
वातरोग और हिचकी नष्ट होजाते हैं ।

अष्टाशतअरिष्ट ।

काशमर्त्यधात्रीमारिचामयानांद्राक्षाफला
नाञ्चसंपिप्पलीनाम् । शतंशतंजीर्णगु
हातुलाञ्चससुधकुम्भेमधुनाप्रालिप्तै ॥
सहाहमृष्ट्याद्विगुणन्तुश्रीतेस्थितंजलद्रोण
शुतापिबेत्वा । शोफान्निवन्धान्कफचात

जांश्चसहन्त्यरिष्टोऽष्टशतोपिकृष्ट ॥

अर्थ.... खंभारी के फल, अत्रला, कांड
मिरच, हरड, दाख और पीपल, प्रत्येक सौ
सौ लेवै, पुपुना गुड एक तुला इन सब
को जौकुट करके गुडमें सानकर एक ऐसे
घड़ेमें भरै जिसमें भीतर शहत पोता गया
हो और उम घड़ेमें एक द्रोण जल भी म
रदेवै, इस घड़ेको गरमी की शक्तमें एक स-
ताह इसी तरह धरा रहने देवै ॥ इस अरि
ष्टका सेवन करने से सूजन, कफचातज
विवन्ध दूर होजाते हैं और जठराग्नि बढ़तीहै ॥

पुनर्नवाद्यरिष्ट ।

पुनर्नवेद्वेचबलेसपाठेदन्तीगुडूचीमथचित्रक
ञ्चानिदिगिधकाञ्चत्रिपलानिपत्तवाद्रोणा
र्द्धशेषसलिलेततस्तम् । पूत्वारसंज्ञेचगुडा
त्पुराणात्तुलेमधुमस्थयुतंसुशतिम् ॥ मां
संनिदध्याद्घृतभाजनस्थपल्लेयवानांपीर
तस्तुमासान् । चूर्णाकृतैरर्द्धपलांशिकैस्तं
पत्रत्वगेलामरिचाम्बुलोहैः ॥ गन्धान्वि-
तंक्षौद्रघृतमदिग्धेनीर्गपिबद्ध्यधिबलेसभी-
क्ष्य । हृत्पाण्डुरोगंश्चयधुंमघृद्धंघ्नीहभ्रमारोच
कमेहगुल्मान् । भगन्दरंपट्टजठराणिकासं
श्वासंग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥ शास्त्रानिलं
वद्धपुरीपताञ्चहिकांकिलासञ्चहलीम
कञ्च । क्षिपंजयेद्धर्णवलापुरोजस्तेजोन्वि
तामांसरसान्भोक्ता ॥

अर्थ.... सफेद साठ, लालसाठ, खरेटी,
नागवला, पाठा, दन्ती, गिलोय, चीता और
कटेरी, इनमें से प्रत्येक को तीन तीन पल
लेकर एक द्रोण जलमें चटावै जब आधा

शेष रहजाय तब छानकर ठंडा होने पर इस में दो तुला पुराना गुड और एक प्रस्थ शहत मिलाकर घीके चिकने घडेमें भरकर जौके ढेर में एक महीने तक गढ़ा रहनेदेवे । महीने भर पीछे इस में तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची, काली मिरच और नेत्रवाला का चूर्ण आधा २ पल डालकर सुगंध युक्त करै ॥ पुराना होने पर इस अरिष्टमें घृत शहत मिलाकर व्याधि और बलके अनुसार सेवन करै तौ हृदरोग, पाण्डुरोग, बढाहुई सूजन, झाँहा, भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्मरोग, भगन्दर, छःप्रकारके जठररोग खाँसी, श्वास, ग्रहणीरोग, कोठ, खुजली, शाखागत धातु, मलकी बद्धता, हिचकी, फिलास और हली मक, ये सब रोग शीघ्रही दूर होजाते हैं ॥ इस अरिष्टको सेवन करके मांसरस और अन्नका भोजन करने से वर्ण, बल, आयु, आज और तेज बढता है ॥

त्रिफलारिष्ट ।

फलत्रिकंदीप्यकाचित्रकौचसपिप्पलीलो हरजोविडङ्गम् । चूर्णाकृतकौडविकंदिरंशं क्षौद्रंपुराणस्यतुलांगुडस्य ॥ मासनिदध्या द्यूतमाजनस्थंयत्रेपुतानेवनिहन्तिरोगान् ।
अर्थ....त्रिफला, अजवायन, चीता, पीपल, लोहमस, वायविडंग, प्रत्येक एक २ कुडव, शहत दो कुडव, पुराना गुड एक तुला इन सबको घी की हाँडी में भरकर महीने भरतक जौ के ढेरमें गाढदे और फिर सेवन करै तौ पूर्वोक्त फलहोय ॥

ये चार्शसापाण्डुविकारिणाञ्च । प्रोक्ताः शुभाः शोफिपुतेऽप्यरिष्टाः ॥

[११६]

अर्थ....अर्शरोग और पाण्डुविकारों में जो २ अरिष्ट वर्णन कियेगये हैं वे सब शोफमें हितकारी होते हैं ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

कृष्णासपाठागजपिप्पलीचनिदिग्धिका चित्रकनागरेच । सपिप्पलीमूलरजन्यजाजीमुस्तञ्चचूर्णसुखतोयपतिम् ॥ इत्यात्त्रिदोषंचिरजञ्चशोफंकल्कश्चभूनि म्वमहौपधस्य । अयोरजस्यूपणयावशु-
कंचूर्णञ्चपीतंत्रिफलारसेन ॥

अर्थ—पीपल, पाठ, गजपीपल, कटेरी, चीता, सौंठ, पीपलामूल, हल्दी, कालाजीरा और मोथा इनके चूर्णको गुनगुने जलके साथ फांकनेसे त्रिदोषज पुराना शोफ दूरहो जाताहै, इसीतरह चिरायता और सौंठका चूर्ण गरमजलके साथ फांकनेसे पूर्वोक्त गुण होता है । अथवा लोहचूर्ण, त्रिकुटा, जवाखार इनके चूर्णको त्रिफला के रसके साथ पीनेसे भी पूर्वोक्त गुण होता है ॥

क्षारादिवटिका ।

क्षारद्वयस्याल्लवणाानिचत्वार्थयोरजोव्यो पफलत्रिकंच । सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं मुस्ताजमोदामरदारुविल्वम् । कलिङ्गका त्रिचत्रकमूलपाटंसयष्टिकञ्चातिविपपलां शम् ॥ सहिसुकर्पत्वनुसुक्ष्मचूर्णद्रोणंयथा मूलकशुण्डिकानाम् । स्याद्भस्मनस्तत्स लिलेनसाध्यमालोढ्ययावद्वनमप्रदग्धम् ॥ स्त्यानंततःकोलसमान्तुमात्रांकृत्वा सुशुष्काविधिनाभजेत् । झीहोदरश्वित्रहलीमकांस्तुपाण्डुवामयारोचकशोपशो-

फान् ॥ विसूचिकागुल्मगराश्वरीश्चस

श्वासकासाःप्रणुदेत्सकुप्राः

अर्थ—दोनों प्रकारके खार, चारोंमक, लोहचूर्ण, त्रिकुटा, त्रिफला, पीपलामूल, वायाधिदंगकी मींगी, मोथा, अजमोद, देवदारु, बेलगिरी, इन्द्रजौ, चित्ते की जड़, पाटा, मुलहठी, और अतीस एक २ पल लैवै और एक कर्प मुनी हुई हाँग लैवै इन सबका महीन चूर्ण करलैवै । फिर मूली और सोंठ की भस्मको अठगुने जलमें डालकर, अग्निपर चढ़ादे जब चौथाई शेष रहै तब उतारकर छानले । फिर इनमें पूर्वोक्त चूर्ण डालकर अग्निपर धरकर चलातारहै जिससे लगने न पावै। गाढाहोने पर बेर की बराबर गोली बनाकर सुखालेवै । इन गोलियोंका विधिपूर्वक सेवन करने से प्लीहा, उदररोग, दिक्प्रकुष्ठ, हर्षामक, पाण्डुरोग, अरुचि, शोष, शोफ, विसूचिका गुल्मरोग, पथरी, श्वास, खांसी और कोढ़ शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग

मयोजयेदाद्रकनागरंवातुल्यं गुडेनार्द्धपला भिष्टद्वया । मात्रापलंपञ्चपलानिमांसंजी र्णैपयोयूपरसान्नभोक्ता ॥ गुल्मोदरार्शः श्वयधुममेहान्श्वासाप्रतिश्यालसकाविपा कान् । सकामलाशोपमनोविकारान्का संकफञ्चैवजयेत्प्रयोगः ।

अर्थ—अधिपल अदरख वा सोंठ को समानभाग पुराने गुड़के साथ सेवन करै । फिर प्रतिदिन आधा २ पल बढ़ाता रहै,

जब पांचपल पूरे होजाय तब महीने भरतक प्रतिदिन पांचपल का सेवन करता रहै । औषधके जीर्ण होने पर दूध, यूप और मांसरस का सेवन करता रहै । इस औषध सेगुल्म, उदररोग, अर्शविकार, सूजन, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अविपाक, कामला, शोष, मनोविकार, खांसी और कफ दूर होजाते हैं ।

रसस्तथैवार्द्रकनागरस्यपेयोऽथजीर्णपयसान्नमथात् जत्वश्मजञ्चात्रिफलारसेन हन्यात्त्रिदोषंश्वयधुमसह ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिके अनुसार ही प्रतिदिन आधे २ पल बढ़ाकर अदरख का रस पान करै, जब पांचपल पर पहुँच जाय तब एक महीने पर्यन्त प्रति दिन पांच पल सेवन करतारहै । औषध के पचनेपर दूध के साथ अन्नका भोजन करै । त्रिफला के क्वाथ केसाथ शिलाजतु पीनेसे भी त्रिदोष की सूजन जाती रहती है ।

हरितक्यादिप्रयोग

द्विपञ्चमूलस्यपचेत्कपायेकंसेभयानाञ्च शतंगुडस्य । लेहेसुसिद्धेचविनीयचूर्णान्यो पत्रिसौगन्ध्यमुपांस्थितेच ॥ मस्यार्द्धमांश्रंमधुनः सुशीतेकिञ्चिच्चूर्णादापिया चशुकात् ॥ एकाभ्यांमाश्यततश्चलेहा च्छुक्तिनिहन्तिश्वयधुमंशुद्धम् । श्वासञ्चरारोचकमेहहिकाष्ठीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ॥ काश्यामवातानसृगम्लपिचैव र्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥

अर्थ—चारसेर दशमूल और सौ हरडको

सोलह सेर जल में भरकर अग्निपर चढ़ा देवै जब चौथाई रहजाय तब उतारकर छान लेवै और हरडोंके भीतर से गुठली निकालकर फेंकदे । फिर उस क्वाथ को हरडोंके गूदे और पुराने गुडके साथ अग्निपर चढ़ादे जब चाटने के योग्य गाढी होजाय तब अग्निपरसे उतारकर त्रि कुटा, दाळचीनी, इलायची, तेजपात, इन को पीसकर उसमें डाल देवै तथा आधा प्रस्थ शहत और थोडासा यवशुक डालकर मिलाकर उतार लेवै । फिर प्रतिदिन इनमें से एक हरड खाकर आधेपल चटनी चाट लेवै तौ अस्यन्त बढीहुई सृजन नष्ट होजाती है तथा श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, हिचकी, घ्राहा, त्रिदोषजन्य उदर रोग, पाण्डुरोग, कृशाता, आमशत, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, यातदोष, शुक्रदोष ये सब रोग दूर होजाते हैं ॥

पटोलादिघृत ।

पटोलमूलासुरदारुदन्तीत्रायन्तिपिप्यल्य भयाविशालाः ॥ यष्ट्याह्विकातित्त करोहिणीच । सचन्दनास्यांभ्रिचुला निंदावी ॥ कर्पोत्थितैस्तैःकथितःकपा यो । घृतस्यपेयःकुडवेनयुक्तः । वीसर्पदाहज्वरसन्निपातां स्तृष्णांविपाणिश्वययुंनिहन्ति ॥

अर्थ....परबलकी जड, देवदारु, दन्ती, त्रायमाणा, पीपल, हरड, इन्द्रायणकोजड, मुलहठी, कुटकी, रक्तचन्दन निचुल और दारुहलदी, इनमें से प्रत्येक को एक एक क-

र्ष लेकर अठगुने जल में चढ़ा दे चौथाई शेष रहने पर उतारकर छान ले और इस क्वाथ में एक कुडब घृत डालकर फिर पकावै जब घृत शेष रहजाय तब नित्यप्रति मात्राके अनुसार सेवन करै तौ विसर्प, दाह ज्वर, सन्निपात, तृष्णा विपरीग और सृजन दूर होजावैगी ॥

चित्रकादिघृत ॥

सचित्रकंधान्ययवान्यजाजी । सौवर्च लंघ्यूपणवेतसाम्लम् । विल्वात्फलंदाडिमयावशुको । सपिप्पलीमूलमथोऽपि चव्यम् ॥ पिष्ट्वाक्षमात्राणिजलाढकेनपवत्वाघृतप्रस्थमथोविदध्यात् ॥ अर्शासिगुलमंश्वययुञ्चदुःखं । तदन्तिवन्दिश्वकरोतिदीप्तम् ॥ पिबेद्घृतंवाष्टगुणाम्बुसिद्धं । सचित्रकक्षारमुदारचर्यम् ॥ कल्याणकंवापिसपञ्चगव्यं । तिस्रमहद्वाप्यथित्तकंवा ॥

अर्थ--चीता, धनियां, अजवायन, कालजीरा, संचलनमक, कालीमिरचं, सोंठ, पीपल, अमलवेत, बेलफल, अनारकीछाल, जवाखार, पीपलामूल, चव्य, इन सबको दो २ तोले लेकर एक आढक जल में पकावै फिर चौथाई शेष रहनेपर छानकर पूर्वोक्तरीतिसे एक प्रस्थ घृत पकावै, घृत शेष रहनेपर उतार लेवै । इस घृतके सेवन करनेसे अर्शरोग, गुल्म, सृजन और मूत्रदोष दूर होजाते हैं और जठराग्नि प्रबल होतीहै । भधवा चीते और जवाखारको अठगुने जलमें चढ़ाकर उसके साथ घृत

पथियोंका वर्णन किया गया है अब उन औ-
पथियोंका का वर्णन करेंगे जो बाहर लगा-
नेमें काम आती हैं, यथा वातजशोधमें स्नेह,
प्रदेह, परिपेचन और स्वेदन ॥

शैलेयतैल ।

शैलेयकुप्रागुरुदारुकौन्ती । त्वक्पद्मकै-
लाम्बुपलाशमुस्तैः ॥ मियंगुथौणेयकहे-
ममांसी । तालीसपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥
श्रीवेष्टकध्यामकपिप्लीभिःस्पृक्त्वानसै
श्वैयवथोपलाभम् । वातान्वितेऽभ्यङ्गु
पन्तितैलसिद्धसुपित्तरपिचप्रदेहमूजलेच
वासार्षकरञ्जिशिशुकाश्मर्यपत्रार्जकजैश्च
सिद्धैः । श्विन्नोमृद्णोरवितप्ततोयस्ना
तश्चगन्धैरनुलेपनीयः ॥

अर्थ....शिलापुष्प, कूठ, अगर, दारुह-
लदी, पन्नाख, इलायची, नेत्रवाला, पलाश,
मोथा, प्रियंगु, धूनेर, जटामांसी, तालीसपत्र,
क्रेवटीमोथा, तेजपात, धनियां, श्रीवेष्टक,
ध्यामक, स्पृष्का, नखी, इनद्रव्योंमें से जित
नी मिलसके उनको लेकर उनके काथमेंतेल
पकाकर घादीकी सूजनपर लेपकरे ॥

अडूसा, कंजा, सहजना, खंभारी, और
तुलसी, इनके पत्तोंको डालकर जलऔटावै
और इस गरम, गरम, जलसे सूजनके स्थान
को धोवै अथवा घूपसे कियेहुए गरम जल
द्वारा पसीनेलेवै । इसजलसे स्नानकरके ग-
न्धद्रव्यों का लेपकरे ॥

पित्तज शोफपर तैलादि ।

सवेतसाःक्षीरवतान्द्रुमाणान्त्वचःसमाञ्जि-
ष्ठवंलामृणालाः । सचन्दनाःपक्षकवाल-

कौचपैत्तेप्रदेहस्तुसतैलपाकः ॥ आक्तस्य
तेनाम्बुरविमत्तसचन्दनसाभयपद्मकञ्ज
स्नानेमत्तक्षीरवतांकपायःक्षीरोदकचन्दन
लेपनंच ॥ कफेत्कृष्णासिकतापुराण
पिण्याकशिशुःवगुमामलेपःकुलत्थशुण्ठी
जलमूत्रमेकचण्डागुरुभ्यामनुलेपनंच ॥

अर्थ—पित्तजशोफमें त्रेत और गूलर, पीप-
ल आदि दूधके बृक्षोंकी छाल, मजीठ, खैर-
टी, कमलनाल, रक्तचंदन, पन्नाख, नैग्रथा
ला, इनको पीसकर लेपकरे अथवा इनद्रव्यों
के काथमें तेल पकाकर लगावै । इसतैलको
लगाकर रक्तचंदन, हरड और पन्नाख डाल
कर जलको घूपमें गरमकरके स्नानकरे ।
इसीतरह दूधिया बृक्षोंकी छालके काथसे
वा दूध मिलेहुए जलसे स्नान करके चन्दनका
लेपकरे ॥

कफजशोफपर तैलादि ।

विभीतकानांफलमध्यलेपःसर्वेपुदाहार्ति
हरःप्रलेपः । यष्याहमुस्तैःसकपित्यपत्तैः
सचन्दनैस्तत्पिडकासुलेपःरास्नाद्युर्पाक-
त्रिफलाविडंगा ॥ शिशुत्वचोभूपिकर्कणि
काचानिम्बार्जकौव्याग्रनखसदूर्वासुवर्च
लास्यात्कटुरोहिणीचसकाकमार्चिहृतांस
कुप्रापुनर्नवाचित्रकनागरेच ॥ उन्मर्दनं
शोफिपुमूत्रपिप्लंशस्तथाभूलकतोयसकः

अर्थ....कफकी सूजन में पीपल का चूर्ण,
पुरानीखल, सहजनेकी छाल और राई इन
को पीसकर लेप करे । कुलथी और सोंठके
काथ में गोमूत्रको मिलाकर परिपेक करे ॥
पीछे चण्डा और अमरका लेपकरे । बहेडे

के गूदे का लेप करने से सब प्रकार की सूजनोका दाह शान्त होजाताहै । जो सूजन में फुन्सियां होजाय तौ मुलहट्टी, मोथा, कैथके पत्ते, और रक्तचंदन का लेप करै ।

रास्ना, अड्सा, आक, त्रिफला, वायविडंग, सहजने की छाल, मूषिकपर्णी, नीम, तुलसी, बाघनखी, दूध, सुवर्चला, कुटकी, मकीय, कटेरी, कूट, पुनर्नवा, चीता और सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करै । अथवा सूखीमूली को जळ में औटाकर इस जळसे परिके करै ॥

शोफास्तुगात्रावयवाश्रितायेतेस्थानंदूष्या कृतिनामभेदात् । अनेकसंख्याःकतिचिद्यतेपांनिदर्शनाथंशुचोच्यमानान्।दोपास्त्रयस्वैःकुपितानिदानैःकुर्वन्तिशोफान् शिरसःसुयोरान् ॥ अन्तर्गलैर्घुर्घुरिकाभ्रितं चशालुकमुत्श्वासीनरोधनानि । गलस्यसन्ध्याचिबुकेगलेचसदाहरागश्च सनासुबोग्रःशोफोभृशार्तिस्तुविडालिका स्याद्दन्त्याम्लेचेद्वलयीकृतास्यात् ॥

अर्थ—जो सूजन शरीर के जुदे २ स्था नोंमें होती है वह स्थान, दूष्य, आकृति और नामके भेदसे अनेक प्रकार की होती है, अब हम उनमें से उदाहरण के निमित्त थोड़ीसी शोफोका वर्णन करते हैं उन्हें सुनों।

अपने २ कारणोंसे कुपित होकर तानों दोप सिरमें घोर सूजन उत्पन्न करते हैं ॥ इममें गले के भीतर घुर्घुर शब्द होने लगता है और स्वास रुकने लगता है इसका नाम शालुकशोफ है ॥ गलेकी संधि

ठोड़ी और गले में दाह, राग और स्वास से युक्त सुचोग्रनामक शोफ उत्पन्न होता है ॥ जब यह सूजन गलेमें मंडलाकार हो कर अत्यन्त वेदना उत्पन्न करके मनुष्य को मारती है तब उसे विडालिका कहतेहैं।

अन्यशोफोकेनाम ।

स्यात्तालुविद्रध्यपिदाहरोगैर्युताभवेत्ता ल्निसात्रिदोपात् । जिहोपरिप्टादुपजिहिकास्यात्कफादधस्तादधिजिह्विकाचोदन्तमांसेपुत्रक्तविचात् पाकोभवेत्सोपकुशःप्रदिष्टः।स्यादन्तविद्रध्यपिदन्तमांसेशोफःकफाच्छोणितसंच्चयोत्थः॥

अर्थ—जोशोफ दाह युक्त और रक्त वर्ण की तालुमें होताहै उसे तालुविद्रधि कहतेहैं। यह त्रिदोषसे होताहै ॥ जो जिह्वा के ऊपर होती है उसे उपजिह्विका कहते हैं ॥ और जो कफके कारण जिह्वासे नीचे होती है उसे अधिजिह्विका कहते हैं ॥ रक्तपित्त के कारण दांतों के मांस में जो पाकयुक्त शोफहोती है उसे उपकुश कहते हैं ॥ दांतोंके मांस में जो सूजन रक्त और कफ के संचय से उठती है उसे दन्त विद्रधि कहते हैं ।

गलगण्डशोफ ।

गलस्यपार्श्वेगलगण्डएकः स्याद्गण्डमाला बहुभिस्तुगण्डैः । साध्याःस्मृताःपीनसपार्श्वशूलकामज्वरच्छर्दियुतास्वसाध्याः

अर्थ—गलेकी वगलमें जो एक गांठ उठती है उसे गलगण्ड कहते हैं और जो बहुतसी गांठ होती है उन्हें गण्डमाला क-

होते हैं । ये दोनों साध्य होती हैं परन्तु जब ये पीनस, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और ब-
मनसे युक्त होती हैं तब असाध्य होती हैं ।

शोफों में चिकित्साक्रम ।

तेपांसिराकायशिरोविरेकोधूमःपुराणस्य
घृतस्पानम् । सलङ्घनं वक्रभवेपुचापि
महर्षणं स्यात्कवलग्रहश्च ॥

अर्थ—इन ऊपरकी शोफों में सिरामो-
क्षण, कायविरेचन, और शिरोविरेचन, धूम
पान, पुराना घृतपान, और लघनहितकाराहै
तथा मुखमें होनेवाली सूजनोंमें सूजन के
नाश करने वाले द्रव्योंको रगडे और उन्हीं
द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ कवल धारणकरे ।

अन्य ग्रन्थियों कावर्णन ।

अत्रैकदेशेष्वनिलादिभिः स्यात्स्वरूपधा-
रीस्फुरणः सिराभिः । ग्रन्थिर्महान्मांस
भवस्त्वन्तिर्मिदोभवः स्निग्धततश्चलश्च ॥

अर्थ—वातादि दोषोंकी प्रबलतासे शरीर
को विशेष २ अंगों में मूर्तिमान् लक्षणों से
युक्त सूजन होती है । एक सूजन तो नसों
में अधिरका बहना बन्द होजाने से होती है।
एक बड़ी गांठ मांसमें होती है इसमें वेदना
नहीं होती है । एक गांठ मेदामें होती है
यह बहुत चिकनी और चलायमान होती है
तंशोधितस्वेदितमद्रमकाष्ठैः साङ्गुष्ठदण्ड-
विनयेदपक्वम् । विपात्र्यचोद्धृत्यभिष-
कुसकोशं शस्त्रेण दग्ध्वा व्रणवधिकात्सेतु ॥
अदग्धैर्पित्परिशोपितथप्रयातिभूयोऽपि
शनैर्विवृद्धिम् । तस्मादशेष-कुशलसमन्ता
त्तेयोभवेद्दीप्यशरीरदेशान् ॥ शोषेक

तेपाकवशेन शीघ्येत्ततः सतोत्थः प्रसेरद्वि-
सर्पः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके ऐसी गांठ होजाय
उसको बिना पकेही शोधन देकर पत्थर
वा काठ द्वारा स्वेदन देकर अंगूठा वा ट-
कड़ी लगाकर नरम करदे । उसके पकने
पर शस्त्रसे चीरा लगाकर सब मवाद और
गर्मी हुई खालको अलग करके दग्धकरे
और फिर व्रणवत् चिकित्सा करे । जो दग्ध
न काजाय तो कम शुष्क होने के कारण
यह फिर धीरे २ बढजाती है । इसलिये
कुशल वैद्यको उचित है कि उस टन्नि
के स्थान का विचार करके टन्नि जड़
से दूरकर देवे । काठने पर नी शोषवर्द्धे
तो पाकके कारण शीघ्र होकर टन्निमें सूजन
विसर्प टन्नि होगा ।

वर्जनिय ग्रन्थि ।

उपद्रवंतं प्रनिवारयन्त्रः स्वभेषजैर्न पूर्ववर्ग्ये
धोक्तैः । ततः क्रमेणास्य यथाविधानमुग्रं
व्रणवत्स्वरथाचिकित्सेन् ॥ विवृज्यन्तु
कुसुमुद्राश्रितश्चतयाग्रेपम्मगिमांश्रितश्च
स्यूलः स्वरच्चापिमर्शोद्वेजः शोषश्चापि
वाल्स्यदिरावधानां ॥

अर्थ—इस शनत्र विमर्ष नामक उपद्रव
को दूर करनेके लिये पहिले कही हुई
विसर्प चिकित्साओंके द्वारा चिकित्सा करे
फिर क्रम से यथाविधान व्रणके ममान क्रि-
याओं का प्रारम्भकरे] जो गांठ कृष्ण, उदर
गले और मर्मस्थान में हुई हो वह साध्य
है । जो वालक, बूढ़े और दृबल के दृष्टे
वह भी वर्जनिय है ।

नयेदोषहरैर्यथास्व । मालेपनच्छेदन-

भेददोहः ॥

अर्थ—इसमें तीनों दोष होते हैं परन्तु पित्त प्रबल होता है । यह तीव्र पतली और रक्तपाक युक्त होती है । इसमें जो सूजन होती है उस में ज्वर और तृषा का वेग होता है । यह जालगर्दभ नामक विसर्प रोग होता है । इस में लघन, रक्तमोक्षण, विरूक्षण, कामविरचन, आंशुलेका प्रयोग और शीतल लेप हितकारी होते हैं । इसीतरह अन्य सूजनों में भी वातादि दोषोंके लक्षणों की विवेचना करके यथा दोष आलेपन, भेदन, और दाहआदि कर्मों से शोथ को अच्छा करे ॥

आगन्तु शोफ का वर्णन ।

प्रायोऽभिघातादनिलःसरक्तः ।

शोथं सरागं मकरोत्तितत्र ॥

वासर्पनुन्मारुतरक्तनुच्च ।

कार्यविपघ्नं विपजेचकर्म ॥

अर्थ—प्रायः चोट लगने से वातरक्त दूषित होकर लालरंगकी सूजन उत्पन्न करते हैं । इस सूजन में विसर्प नाशक और वातरक्त नाशक क्रिया करे तथा विपज शोथ में विपनाशक क्रिया करे ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

त्रिविधस्य दोषभेदात्सर्वाङ्गवियवगात्रभेदाच्च । अथयोत्रिविधस्य तथा लिङ्गानि चिकित्सितं चोक्तम् ॥

अर्थ—इस अध्याय में भगवान् पुनर्वसु तीन दोषों के भेद से तीन प्रकार की

शोफ, सर्वांग शोफ, अर्द्धांगशोफ, अवयव-शोफ, निजशोफ, आगन्तु शोफ इनके लक्षण और चिकित्सा वर्णन की है ।

इति श्री भाषाटीकावित्तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने श्वयधु चिकित्सितनामसप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

—*—

अष्टादशोऽध्यायः ॥

अथात उदरचिकित्सितं व्याख्यास्याम

इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोलेंकि अब हम उदर चिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

सिद्धविद्याधराकीर्णकैलासेनन्दनोपमे । तप्यमानंतपस्तीव्रसाक्षाद्भ्रमिद्यस्थितम् ॥ आयुर्वेदविदां श्रेष्ठिभपविद्याप्रवर्तकम् । पुनर्वसुजितात्मानमग्निवेशोऽब्रवीद्भवः ॥ भगवन्नुदरैर्दुःसहस्यन्ते लदितानराः । शुष्कवक्त्राः कृशैर्गात्रैराध्मातोदरकुक्षयः ॥ प्रणष्टाभिचलाहारा सर्वचेष्टास्वनीश्वराः । दीनाः प्रतिक्रियारभावाज्जहतोऽमूननाथवत् ॥ तेपामायतनं संख्यां प्राभूपाकृतिभेपजान् । यथावत् ज्ञातुमिच्छामि सुखासम्यगीरितम् ॥ सर्वभूताहितायपिः शिष्येणैवं प्रचोदितः । सर्वभूतहितं वाच्यं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥

अर्थ—सिद्ध और विद्याधरों से सेवित, नन्दन काननके सदृश कैलास पर्वतमें तीव्रतप में लीन, साक्षात् भूतिमान्धर्मस्वरूप,

आयुर्वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठतम, आयुर्वेद प्रवर्त्तक और जितेन्द्रिय पुनर्वसु से अग्निवेशने यह प्रश्न किया कि हे भगवन् ! प्रायःसर्व मनुष्य उदर रोगों से पीडित दिखाई देते हैं जिनके मुखसूख गये हैं, गात्र कृश पड गये हैं, उदर और कूखकूल गये हैं जठराग्नि बल और आहार धक गये हैं, सम्पूर्ण चेष्टाओंसे हीन होगये हैं ॥ ये दीन मनुष्य चिकित्सा के अभावसे अनाथकी तरह प्राणोंका परित्याग करदेते हैं । इस से हे प्रभो ! मैं आप के मुखसे उनका आयतन, संरूपा, पूर्वरूप आकृति और चिकित्सा यथावत् सुनना चाहताहूँ । शिष्य से इस तरह प्रेरणा किये जाने पर सम्पूर्ण प्राणियों के हित के निमित्त सम्पूर्ण प्राणियों के हितकारी वाक्योंके कहने में उद्यत हुए ।

उदरविषयमें आश्रेयकावाक्य ।

अग्निदोषान्मनुष्याणारोगसंघाःपृथग्विधाः । मलवृद्ध्यामवर्त्तन्तेविशेषणोदराणितु ॥ मन्देऽग्नौमलिनैर्भुक्तैरपाकादोपसञ्चयः । प्राणापानान्निहंसदूष्यमार्गान्वद्भोत्तरोत्तरान् ॥ त्वद्भ्रमांसान्तरमागम्यकुक्षिमाध्मापयन्भृशमृज्जनयत्युदरं तस्यहेतुंशृणुसलक्षणम् ॥

अर्थ—जठराग्नि के दोषसे मनुष्यों के अनेक प्रकारके रोगों के समूह उत्पन्न होते हैं, तथा विशेष करके मलकी वृद्धि से उदर रोग होते हैं । मन्दाग्नि में मलवर्द्धक भोजनों के अपाक से दोष संचित होकर प्राण और अपान वायुओंको दूषित करके ऊपर और

नीचेके मार्गोंको रोक कर स्वचा और मांस के मध्यमें स्थित होकर कुक्षिको अत्यन्त फुला देते हैं और फिर उदर रोगोंको पैदा करते हैं उसके लक्षण सहित हेतुओं को सुनो उदररोग के हेतु ।

अत्युष्णलवणक्षारविदाहम्लरसाशानात् मिथ्यासंसर्जनाद्रूक्षविरुद्धाशुचिभोजनात् ॥ श्लिहाशोग्रहणीदोषकर्पणात्कर्मविभ्रमात् । क्लिष्टानामप्रतीकाराद्रौक्ष्याद्देगविधारणात् ॥ स्रोतसाद्भूषणादामात्संक्षोभादतिपूरणात् । अशोऽवातशुद्धोधादन्त्रस्फुटनभेदनात् । अतिसञ्चितदोषाणां पापकर्मचक्रवृत्ताम् । उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ।

अर्थ—अत्यन्त उष्ण, नमकीन, खारी, विदाह और खट्टे रसोंके भोजन करने से, मिथ्या और असंसर्जनकर्मसे रूक्ष, अशुचि और विरुद्ध भोजनोंके करने से, प्लीहा, अर्श ग्रहणी दोष इनके कारण शरीरके कृशहो जानेसे, स्वेदनादि कर्मोंके पथावत् महानेसे, क्लिष्ट रोगोंकी चिकित्सा न करने से, रूक्षतासे, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगोंको रोकने से, स्रोतोंके दूषित होनेसे, आम दोष से संक्षोभसे, अत्यन्त पेट भरकर भोजन करने से अर्शकी अवलि के कारण विष्टके रुकने से, आंतों में फटनेकी सी पीडा होने से, अति संचित दोषवाले मनुष्यों के पापकर्मों के करने से, और विशेष करके मन्दाग्नि वालों के उदररोग उत्पन्न होते हैं ।

उदररोग के पूर्वरूप ।

सुत्रादाःस्वाद्भोत्तिस्रग्धुर्गुणैपच्यतीचरा-

त् ॥ भुक्तं विदाहते सर्वजीर्णाजीर्णनवे
त्तिच । सहतेनातिसौहित्यं शोफरोपञ्च
पादयोः ॥ शश्वद्वलक्षणोऽल्पेऽपि व्या
यामे श्वासमृच्छति । पुरीषानिचयो वृद्धि
रुदावर्त्तकृता चरुक् ॥ वस्ति सन्ध्या रूमा
ध्मानवर्द्धते पात्र्यतेऽपिच । आतन्यते च
जठरमपिलघ्वल्पभोजनात् ॥ राजीजन्म
वलीनाश इति लिंगभविष्यताम् ॥

अर्थ—क्षुधाका नष्ट होना, मीठे, चिकने
और भारी अन्नका देरमें पचना; मुक्त अन्न
से विदाह होना; जीर्ण वा अजीर्ण का ज्ञान
न होना; पेट भरकर भोजन करने में अ-
समर्थता; पाँवों में कुछ सूजन होना, बल
का निरन्तर नष्ट होना, धोड़े परिश्रम में
भी श्वास बढ़ना, मलकी वृद्धि, उदावर्त्तकृत
वेदना, वस्ति सन्धि में वेदना, अफरा का
बढ़ना, हृत्के और धोड़े भोजन से भी पेट
का तन जाना, उदरमें रेखाओं की उत्पत्ति
और अबलीका नाश, ये सब उदररोग के
पूर्वरूप हैं ।

उदररोग की साधारण उत्पत्ति ।

रुद्धास्वेदान्मुवाहानिदोषाः स्रोतांसिसञ्चि
ताः । प्राणापानान्द्विसंस्पृज्यजनयन्स्पृद
रंनृणाम् ॥

अर्थ—स्वेदवाही और जलवाही स्रोतों
को रोककर संचित दोष, प्राण और अपान
वायुओंको स्पृज्य करके उदररोगों को
उत्पन्न करते हैं ॥

उदररोग के साधारण लक्षण ।

पादकरस्य च ॥

मन्दोऽग्निः श्लक्ष्णगण्डत्वंकार्श्यञ्चोदर
लक्षणम् ॥

अर्थ—कृशमें आध्मान, अफरा, हाथ
पाँवमें सूजन, मन्दाग्नि, गण्डस्थल में श्ल-
क्ष्णता और देह में कृशता ये सब उदर-
रोगों के लक्षण हैं ॥

उदररोगों की संख्या ।-

पृथग्दोषैः समस्तैश्चर्षीहवद्वक्षतोदकैः ॥
संभवन्त्युदराण्यष्टे पांलिंगपृथक्स्पृणु ।

अर्थ....पृथक् पृथक् दोषों से, सम्पूर्ण
दोषों से, ग्रीहा, वद्व, क्षत और उदक से
आठ प्रकार के उदररोग उत्पन्न होते हैं ।
अब उन के पृथक् २ लक्षण सुनो ॥

वात के कारण उदर रोग ।

रूक्षाल्पभोजनायासवेगोदावर्त्तकर्शनैः ॥

वायुः प्रकुपितः कुक्षिहृद्वस्तिगुदमार्गः ।

हत्वाग्निं कफमुच्चयते रुद्धगतिस्तथा ॥ आ-
चिनोत्पुदरं जन्तोः त्वद्दमांसान्तरमाश्रितः ॥

अर्थ....रूक्ष और अल्पभोजन करने से,
आयास से, वेग धारण से उत्पन्न उदावर्त्त
से, और कृशता से कृश, हृदय, वस्ति और
गुदमार्गोंमें विचरने वाली वायु कुपित
होकर अग्निको मन्द करके कफको बढ़ा
देती है । तब इस कफसे मार्ग रुकजाने के
कारण त्वचा और मांसके बीच में स्थित
होकर वायु उदर रोगों को उत्पन्न करती है ।

वायुजन्य उदररोगके लक्षण ।

तस्य रूपाणि कुक्षिपाणि पाददृपणश्वयधु

दरविपाटनमनियतौ च वृद्धिहासौ कुक्षिपा-

र्शश्च लोदावर्त्तोगमर्दपर्वभेदश्च क्कासका-

शर्यदौवर्त्यारोचकविपाकाअधोगुरुत्वंवा
तवर्चोमूत्रसहःश्यावारुणत्वंनखनयनव
दनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरंन्नसितरा
जीशिरासन्ततमाहतमाध्मातदातिशब्दव
द्भवति । वायुशोर्ध्वमधास्तिर्यक्सचशु
लशब्दश्चरत्येतद्वातोदरंविद्यात् ॥

अर्थ—कूख, हाथ, पांव और अंडकोशों
में सूजन, उदरमें फटनेकी साँ पीड़ा क-
भी उदर का बढना और कभी घटना,
कुक्षिशूल, पसलगिंशूल, उदावर्त; अंग-
मर्द; संधियोंमें हड्ढन; सूखी खांसी,
कृशता; दुर्बलता, अरुचि, अविपाक, पेटके
नीचे के भागमें भारापन, अधोवायु, विष्टा
और मूत्रका रुकजाना, नख, नेत्र, मुख,
त्वचा, मूत्र और विष्टाका काला या लाल
होजाना, पतली और काली रेखाओंका उ-
दरपर पडना, नीली नसोंका चमकना, पेट
को बजाने से फूलीहुई मशक के समान
शब्दहोना, तथा वायुका ऊपर, नाँचे,तिरछे
शूल और शब्दयुक्त धूमना ये सब वातो
दर के लक्षण हैं ॥

पिचोदरका कारण ॥

कत्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णाग्न्यातपसे
घनैः । विदाह्यध्यशनाजीर्णैःचाशुपित्तं
समाचिन्म ॥ प्राप्यानिलकफोरुद्ध्वा
मार्गमुन्मार्गमास्थितम् । निहत्यःमाशये
वर्निहनजनयत्युदरंततः ॥

अर्थ—कडे, खट्टे, नमकीन, अत्यन्त
उष्ण और तीक्ष्ण भोजनों के करने से, अ-
ग्नि और धूपका सेवन करने से, विदाही

अन, अध्यशन और अजीर्णकर्त्ता अग्नि
सेवन से पित्त इकठ्ठा होकर कफ और वात
से मिलजाता है और तब ये पित्तके मार्ग
को रोकलेंते हैं, इस मार्ग के रुकने से पित्त
ऊपरको जाताहै और आमाशयस्थ वह्निका
नाश होजाता है और तब पित्त के कारण
उदररोग उत्पन्न होते हैं ॥

पित्तोदर के लक्षण ॥

तस्यरूपाणि । दाहज्वरतृष्णासूर्च्छाती-
सारभ्रमाः कडुकास्यत्नंहरितहरिद्रत्वंन
खनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरं-
नीलपीतहारिद्रहरितताभ्रराजीशिरावन
दंद्दह्यात् । शूपयतेधूप्यतेउष्मायतेस्विद्यते
क्लिद्यतेमृदुस्पर्शक्षिपपाकश्चभवत्येतत्पि-
चोदरंविद्यात् ।

अर्थ—दाह, ज्वर, तृष्णा, सूर्च्छा, अ-
तीसार, भ्रम, मुखमें कडवापन, नख, नेत्र,
मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका हरा वा
हलदी के समान वर्ण होजाना, पेटमें नीली
पीली, हारिद्रवर्ण, हरी और ताँवेकीसी रे-
खाओं का पडजाना, नसोंकाचमकना, तथा
पेट में दाह, ऐंठा, धूमनिर्गम, ऊष्मा, स्वे-
दन, क्लेद, मृदुस्पर्श और शीघ्रपाक भी हो
ता है, ये सब पित्तोदर के लक्षण हैं ॥

कफोदर के हेतु ॥

अग्न्यायामदिवास्वप्नस्वाद्रतिस्निग्धपि-
च्छिलैः । दधिदुग्धोदकानूपमांसैश्च
त्युप वेवितैः॥ कृद्धेनश्लेष्मणास्रोतःस्वाह
तेप्रावृत्तोऽनिलः।तमेवपीडयत्कुटुर्यादुद
रंवाहिरन्वगः ॥

अर्थ—व्यायाम न करने से दिनमें सोने से, मीठे, अत्यन्तचिकेन, पिच्छिल भोजनों के करने से, दही, दूध, जल और आनूप-मांसके अत्यन्त सेवन से कुपित कफ स्रोतः समूह से वायुको रोक देता है। तब वह वायु श्लेष्माको बाहर और भीतर पीडित कर के कफोदर को उत्पन्न करती है ॥

कफोदर के लक्षण ॥

तस्यरूपाभिगौरवारोचकाविपाकाङ्गमर्द सुक्षिपाणिपादमुष्कोरुशोकोस्त्रलेशनिद्राका सश्वासाःशुक्लत्वञ्चनखनयनवदनत्वङ् मूत्रवर्षसामपिचोदरंशुक्लराजीसिरासन्त तगुरुंस्तमितस्थिरंकठिनञ्चभवत्येतत् श्लेष्मोदरंविद्यात् ॥

अर्थ....भारापन, अरुचि, अविपाक, अङ्गमर्द, सुप्ति, हाथ, पांव और अङ्गुलीयों में सूजन, उत्कलेश, निद्रा, खांसी, श्वास, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका श्वेत होजाना, पेट में श्वेतधारियों और नसोंका चमकना, पेटमें भारापन, स्तिमिता, स्थिरता और कठिनता ये सब लक्षण कफोदरके हैं ॥

सन्निपातिक उदर रोग के हेतु ॥

दुर्बलाभिरपध्यामविरोधिगुरुभोजनात् । सभुक्तश्चरजोरोगविष्मूत्रास्थिनखादिभिः । विषश्चापन्दैर्वातायाःकुपिताःमञ्चिताःत्रयः । शनैःकोष्ठमकुर्वन्तोजनयन्त्युदरंनृणाम् ॥

अर्थ—मन्दाग्नि वाला मनुष्य अहिता कन्धा, विरोधा और भारी भोजन करे। अथ रज, रोम, विष्टा, मूत्र हड्डी और नख भोजनके साथ खाजाय अथवा मन्द

विपाका सेवन करे तब उसके तौनों टोप कुपित होकर शनैः २ कोष्ठमें इकट्ठे हो कर उदररोगों को करते हैं ॥

सन्निपातिक उदर रोगके लक्षण ॥
सर्वेषामेवदोषाणांसमस्तानिलिङ्गान्युपलभ्यन्तेवर्णाश्वनखादिपूदरमपिनात्रायर्णराजीसिरासन्ततंभवत्येतत्सन्निपातोदरंविद्यात् ।

अर्थ—त्रिदोषज उदररोगमें सम्पूर्ण दोषों के मिलेहुए लक्षण पाये जाते हैं। नख, नयन, वदन, मूत्र और पुगीपमें सब प्रकार का रंग होता है। पेटमें अनेक रंगोंकी धारियाँ और नसोंका जाल होता है इन लक्षणों से युक्त उदरको सन्निपातोदर कहते हैं ।

प्लीहोदर के कारण ।

अशितस्यातिसंक्षोभाद्यानयानाभिचेष्टितैः । अतिव्यवायभाराध्वमनव्याधिकर्षणैः ॥ वामपार्श्वीश्रितःप्लीहाच्युतः स्थानात्प्रवर्द्धते । शोणितवारसादिभ्यो विवृद्धन्तीववर्द्धयेत् ॥

अर्थ—भोजन करके सवारी पर चढ़कर वा वैसेही कठिन चेष्टाओंके द्वारा संक्षोभ करनेसे, अत्यन्त व्यवाय, भारवहन, मार्ग चलना, वमनादि व्याधियों से कर्षण, इन हेतुओंसे बाये पसवाडे में स्थित प्लीहा (तापतिल्ली) अपने स्थानको छोड़कर वढने लगती है। अथवा रसादि से बढा हुआ रक्त प्लीहा को बढाने लगता है ।

प्लीहोदर की वृद्धि ।

इतितस्पप्लीहाकठिनोष्ट्रिलेवादीवर्द्धमानः

कच्छपसंस्थानउपलभ्यतेसचोपैक्षितः
क्रमेणकुक्षिजठरमग्न्याधिष्ठानंचपरीक्षम-
न्नुदरमाभिनवर्त्तयति ॥

अर्थ—इस तरह यह प्लीहा प्रथम पथर के समान कठोर होती है, और फिर बढ़ते बढ़ते कछुएकी पीठके समान आकृति धारण करलेती है। यदि इसकी चिकित्सा न की जाय तौ यह क्रम से कूख, जठर और अग्निस्थानको परिक्षिप्त करके उदर रोगको उत्पन्न करती है।

प्लीहोदर के लक्षण ।

दौर्बल्यागोचकाविपाकवर्चोभूत्रग्रहतमकपि
पासाङ्गमर्दच्छर्दिमूर्च्छांगसादकासश्वास
मृदुज्वरानाहाग्निनाशकार्यास्मैरस्यप
र्षभेदकोष्ठवातशूलान्पिचोदरमरुणवर्णवि
वर्णवानीलहरितहारिद्राजिमद्भवस्वेषमे
वयकृदपिदक्षिणपार्श्वस्थकुम्भ्यास्तुल्यहे-
तुर्लिगौपधत्वात्तस्यप्लीहजएवावरोधइ-
त्येतत्प्लीहोदरविद्यात् ।

अर्थ—दुर्बलता, अरुचि अविपाक, मूत्रग्रह-
तमकश्वास, ध्यास, अंगमर्द, वमन, मूर्च्छा
अंगरुजानि, खांसी, श्वास, मृदुज्वर, आनाह
मग्नाग्नि, कृशता, मुख में बिरसताहड्ड-
टन, कोष्ठ में वात वेदना, पेटका लाल वर्ण
वा विवर्णता, पेटपर नीली, हरी, हरिद्वर्ण
रेखाओं का होना आदि उपद्रव होते हैं। इसी
तरह दाहिनी कूखमें जो यकृत होती है वह
भी ऊपर कोहे हुए लक्षणों को प्रकट करती
है। परन्तु यकृत और प्लीहाके हेतु, लक्षण
और औषध एकसेही हैं। इससे प्लीहा से

इसकी उत्पत्तिका अवरोध है ये प्लीहोदर
के लक्षण हैं ॥

बद्धोदर के हेतु ।

पद्मवालैःसहान्नेनभुक्तैर्वदयनेगुदे
उदावर्त्तस्तथाशोभिरन्त्रसमूर्च्छेन्नवा ॥
अपानोमार्गसंरोधादत्वार्गिनकुपितोऽन-
लः।वर्चःपित्तकफानरुद्ध्वाजनयस्युदरततः

अर्थ—पद्म और बाल मिलाहुआ भोजन कर लैने से उदावर्त्त से; अर्शसे वां आंतों के सुकड जानेसे गुदाका मार्ग रुक जाने पर मार्ग संरोध के कारण कुपित हुई अपानवायु जठराग्नि को नष्ट करके पुरीष, पित्त और कफको रोककर उदर रोग को उत्पन्न करती है।

बद्धगुदोदर के लक्षण ।

तस्यरूपाणितृष्णादाहज्वरमुखतालुशोपो
रुसादकासश्वासगौर्बल्यारोचकाविपाकव-
र्चोभूत्रसंगाध्मानछर्दिःक्षवधुशिरोहृन्नाभि
गुदशूलान्यपिचोदरंयूढवातंस्थिरमरुणनी
लराजिसिरावनद्धंमराजिकंवाप्रायोनाभ्यु
परिगोपुच्छवदभिनिवर्त्ततइत्येतद्बद्धगु-

दोदरंविद्यात् ॥

अर्थ—तृष्णा, दाह, ज्वर, मुखशोष, ता-
लुशोप, ऊरुसाद, खांसी, श्वास, दुर्बलता,
अरुचि, अविपाक, पुरीषवद्धता, मूत्रवद्धता,
आध्मान, वमन, छोक, शिरः शूल, हृदशूल,
नाभिशूल, गुदशूल, तथा अधोवातकी
विवन्धता, पेट में स्थिरता, लाल और नी-
लवर्णकी रेखा, नसेकजालों का चमकना,
अथवा रेखाओं का न होना, प्राग् नभ

के ऊपर गौकीं घृष्ट के आकार के सदृश होजाना, ये सब वद्वगुदोदरके लक्षण हैं ॥

छिद्रोदर के हेतु ॥

शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्नसंयुतैः ।

भिद्येतान्नत्र्यदाभुक्तैर्जृम्भयात्याशितस्यच ॥

इयात्पाकरसस्तेभ्यःछिद्रेभ्यःप्रसवद्व

हिः । पूरयन् गुदमत्रञ्चजनयत्युदरं नतः ॥

अर्थ.... भोजनके साथ में रेत, कंकर, तिनुका, काठ, हड्डी वा कांटे खालेनेसे जब आंतें फटजाती हैं अथवा अत्यन्त भोजन करके जोर से जैभाई लेने के कारण जब आंतें फटजाती हैं । तब उन छिद्रोंमें होकर पाक रस बाहर टपकने लगताहै और गुदा और आंतोंको पूर्ण करके उदररोगों को उत्पन्न करता है ॥

छिद्रोदरके लक्षण ॥

इतितदधोनाभ्याःमायोऽभिनिवर्त्तमान
मुदकोदरस्यचयथावलंचदोपाणारूपाणि
दर्शयत्यापिचातुरःसलोहितनीलपीतीप
च्छिलकुणपगन्धामवर्चउपवेशतोहिकाश्वा
सकासतृष्णाप्रमेहारोचकाधिपाकदूर्बल्यप
रीतश्चभवत्येताच्छिद्रोदरंविद्यात् ॥

अर्थ—यह रोग प्रायः नार्भके नीचे उत्पन्न होता है और दोषों के बढके अनुसार इसमें जलोदरके से लक्षण दिखलाई पडते हैं और रोगीके लाल, नीला, पीला निच्छिल, कुणुपगंधी और आम विष्टा निकलता है । तथा उसके हिचकी, श्वास, खांसी, तृष्णा, प्रमेह, अरुचि अधिपाक, दुर्बलता ये उपद्रव होते हैं इसे ही छिद्रोदर वा क्षतोदर कहते हैं ॥

जलोदरके हेतु ॥

स्नेहपीतस्यमन्दाग्नेःक्षीणस्यातिकृशस्यत्रा
अत्यम्बुपानान्नेष्टेऽर्नामारुतःवलोम्निस
स्थितः ॥ स्रोतःसुरुद्धमार्गेषुकफश्चोदक
मूर्च्छितः ॥ वर्द्धयेतांतदेवाम्बुतत्स्थानादुद
रायतौ ॥

अर्थ—जिसने जेह पान कियाहै, जिसकी अग्नि मन्द है, जो क्षीण और अत्यन्त कृशहै उसके अत्यन्त जल पल्लिनेसे, आग्नि मंद पडजाती है और वायु पिपासास्थानका आश्रय लेकर और जल से मूर्च्छित कफ स्रोतों के रुकेहुए मार्गोंमें ठहरकर दोनों कफ और वायु बढने लगते हैं और वह जल वहांसे उदरमें आकर जलोदर उत्पन्न करता है ।

जलोदरके लक्षण ।

तस्यरूपाण्यनन्नकांक्षापिपासागुदस्त्राव
शूलश्वासकासदूर्बल्यान्यपिचोदरना
नावर्णराजिशिरासन्ततमुदकपूर्णदृष्टिक्षो
भसंस्पर्शभयत्येतदुदकोदरंविद्यात् ।

अर्थ—अन्नमें अनिच्छा, तृषा, गुदा से जलका स्त्राव, शूल, श्वास, खांसी, दुर्बलता पेट में अनेक रंगकी रेखाओं का होना, नसोंका चमकना तथा जलसे भरीहुई मशकके समान उदरका हाथ लगातेही थलर थलर करना, ये सब जलोदर के लक्षणहैं ।

चिकित्साके योग्य उदररोग ॥

तत्राचिरोत्पन्नमनुपद्रवमनुदकप्राप्तमुदरं
त्वरमाणःचिकित्सेदुपेक्षितानांशेषांदोषाः
स्वस्थानादपाट्टाःअपरिपाकाद्द्रवीभूता

पंनरम् ॥ जन्मनैरोदरं सर्वमायः कृच्छ्रत
मंतमृग्वलिनस्तदजाताम्युपत्नसाध्व्यन
चोत्थितम् ॥

अर्थ....जिस उदररोगी की आंखों पर
सूजन आजाती है, उपस्थेन्द्रिय टेढ़ी पड़-
जाती है, स्त्रिचा श्लिन्न और पतली पड़जाती है
बल, रक्त, मांस और जठराग्नि क्षीण पड़-
जाती है, उसे त्याग देवै । मर्मस्थानों में सू-
जन, श्वास, हिचकी, अरुचि तृषा, मूर्च्छा,
घमन, अतिसार आदि उपद्रवों के होने से
उदररोगी मरजाता है । उत्पन्न होतेही सब
प्रकारके उदररोग प्रायः असाध्य होते हैं
परन्तु इन में से वह रोग जो बलवान् पुरुष
के नहीं ही हुआ हो और जिस में जल
उत्पन्न न हुआहो वह बहुत यत्न करने से
साध्य होजाता है ॥

अजातउदकोदरके लक्षण ।

अशोधमरुणाभासंसञ्चर्दनातिभारिकम्
सवागुडगुडायन्तंशिराजालगवाक्षितम् ।
नाभिषिष्टेभ्यपायौतुवेगंकृत्वाप्रगड्याति ॥
हृन्नाभिवंक्षणकटीगुदप्रत्येकशूलिनः ।
कर्कशसृजतेवातंनान्तिगन्द्रेचपायके ॥
मूत्रेऽल्पेसंहतेविपिलालयाविरसेमुखे ।
अजातोदकमित्येतैर्लिङ्गैर्विज्ञायतत्त्वतः ॥
उपक्रोमत्भिपगदोपचलकालविशेषीवत् ।

अर्थ—जिस उदररोगी के पेट पर सू-
जन नहीं होती है, उदरका रंग लाल हो,
शब्दयुक्तहो, पेटमें बहुत भारापन न हो,
सदा गुड गुड शब्द होता रहताहो, गवाक्ष
के समान नसों के जाल से प्रति, वायु

नाभि के पाससे गुड गुडाहट उत्पन्न कर
के गुदा में वेग उत्पन्न करके नष्ट होजाती
हो रोगी के हृदय, नाभि, वंक्षण, कमर
और गुदा प्रत्येक स्थान में शूल होता हो
कर्कश शब्द करती हुई वायु निकले ।
अग्नि अति मन्द न हो, पेशाब थोड़ा हो,
विष्टा कमहो, मुखसे छारटपकती हो, मुख
का जायफा विगड़ गया हो । ये सब लक्ष-
ण उस उदररोग के हैं जिस में जल उत्प-
न्न न हुआ हो । इन सब लक्षणों का विचा-
र करके दोष, बल और काल के अनुसार
उदररोगों का चिकित्सा करे ।

वातोदर में चिकित्साक्रम ।

वातोदरेवलवतःपूर्वस्नेहैरुपाचरेत् ॥स्नि-
ग्धायस्वेदितां गायद्यात्स्नेहविरचनम् ॥
हृतेदोपेपरिम्लानवेष्टयेद्वासोदरम् ॥
तथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाभ्यापयेत्पुनः ॥
वोपातिमात्रेपचयात्स्रोतसांसन्निरोध-
नात् ॥ सम्भवन्त्सुदराण्येवमतो नित्यं
विशोधयेत् । शुद्धंससृज्यचक्षीरं वलांथं
पाययेत्तुतम् ॥ भागुत्केशान्निघृत्य
श्रवलेलेष्यक्रमात्पयः । यूपैरसैर्वामन्दा
म्ललवणैरोधितानलम् ॥ सोदावर्त्तपुनः
स्निग्धंस्निग्धन्नास्थापयेन्नरम् ॥

अर्थ—वातोदर में बलवान् मनुष्यकी
प्रथम स्नेहनकर्म द्वारा चिकित्सा करे । स्ने-
हन और स्वेदन के पीछे स्नेह विरेचनका
प्रयोग हित है इस तरह दोषोंके दूर होने
पर जब म्लानता उत्पन्न होजाय तब
उदर पर बल लपेटना चाहिये, ऐसा करने

से वायु प्रवेश होनेका स्थान न पाकर फिर पेटको नहीं फुलासकती है ॥ दोषों के अधिक इकट्ठे होजाने से और स्रोतों के रुक जानेही से उदररोग हुआ करते हैं इससे उदररोग में नित्यप्रति विरेचन देना चाहिये ॥ जब रोगी शुद्ध होजाय तब पेयादि विरेचन के उत्तरक्रमोंका साधन कराके बल बढ़ानेके निमित्त दुग्धपान करावै । बल आजाने पर दोषों के उत्केश होने से पहिलेही क्रम से दुग्धका त्याग करादेवै, अग्नि का रोध होजाने पर और उदावर्त्तमें फिर स्नेहन करके किंचित् नमक और खटाई डालकर यूप वा मांस रस की आस्थापन वस्ति देवै ॥

स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपार्श्वपृष्ठात्रिकार्तिपु॥
दांसाग्निबद्धविड्वातंरूक्षमप्यनुवासयेत्॥
तीक्ष्णाधोभागयुक्तःस्यान्निरूहोदाशमूलिकः ॥ वातघ्नान्म्लसृत्तैरण्डतिलतैला
नुवासनः ॥

अर्थ—फुरफुरी वा आक्षेप (हाथ पांव फेंकना) होने से तथा सन्धि, अस्थि, पसली पाठ और त्रिकोंमें वेदना होने से उस दांसाग्नि पुरुषका जिसका विष्टा बन्द होगा याहो और जो रूक्षभी हो उसे अनुवासन वस्ति देवे ॥ तीक्ष्ण विरेचनकर्त्ता औपधियों को मिला कर दशमूल के क्वाथ से निरूहणवस्ति देवै । तथा वातनाशक अम्ल औपधियों को संयुक्त करके अरंडी के तेलकी अनुवासन वस्ति देवै ॥

विरेचन के अयोग्य व्यक्ति ।

अविरेच्यंतुयंविद्याद्दुर्बलंस्थविरंशिथुम्॥

सुकुमारंमृकत्याल्पदोषंवातोत्वणानलम्
तंभिपक्वमनैःसर्पिंधूपमांसरसौदनैः ।
वस्यभ्यङ्गानुवासैश्चक्षीरैश्चोपाचरेद्बुधः
अर्थ—दुर्बल मनुष्य, बुड्ढा, बालक, सुकुमार, प्रकृति से अल्पदोष युक्त व्यक्ति तथा वातोत्वण मनुष्यको विरेचन देना ठीक नहीं है । ऐसे रोगीको घृत, यूप, मांसरस और ओदनके संयोगों से संशमन औपधियां देवै, तथा वस्ति, अभ्यंग, अनुवासन और दुग्धद्वारा चिकित्सा करै ॥

पित्तोदर में चिकित्साक्रम ॥

पित्तोदरेतुवालिनंपूर्वमेवविरेचयेत् । दुर्बलन्त्वनुवास्यादौशोधयेत्क्षीरवस्तिना ॥
संजातबलकायाग्निपुनःस्निग्धविरेचयेत् । पयसासन्निवृत्कल्केनोरूक्मृतेनवासातलात्रायमाणाभ्यांशृतेनारग्वधेनवासकफेवासमूत्रेणसवातोत्तिसर्पिणा ॥
पुनःक्षीरप्रयोगंचवस्तिकर्मविरेचनम् ॥
क्रमेणधुवमातिप्रनयुक्तःपित्तोदरंजेयत् ।

अर्थ—पित्तोदरमें बलवान् रोगीको प्रथम विरेचन देवै ॥ और जो रोगी दुर्बल हो तौ उसे प्रथम अनुवासन देकर क्षीरवस्ति द्वारा शुद्धकरै ॥ इस तरह बल और जवराग्निके बढनेपर स्नेहनकर्म करने के पछे विरेचन देवै ॥ विरेचन देने के अनन्तर हैं, यथा दूध और नित्तकेका कल्क, जेने के बीज डालकर आठमड्डल दूध, कपूर, सातला और प्रायमाणा दारकर क्लृप्त हुआ दूध, कपूर, उन्मत्त इत्येक, जे टायडुआ दूध । ककतुका, विरेचन

गोमूत्र मिलाकर दूध पानकरावे और वाता-
नुबन्धी पित्तोदरमें तित्क घृतद्वारा विरेचन
देवे ॥ इस्तरह दूधका प्रयोग करने के पीछे
वास्तिकर्म करके विरेचन देने से रोगिका वृत्त
ठीक रहताहै और पित्तोदरभी शीघ्रही शान्त
हो जाता है ॥

कफोदर में चिकित्साक्रम ॥

स्निग्धस्निग्धविशुद्धतुकफोदरिणमातुरम् ।
संसर्जयेत्कटुसारगुक्कैरशैःकफापहैः ॥
गोमूत्रारिष्टपानैश्चचूर्णायस्ततिभिस्तथा
संसारैस्तैलपानैश्चशमयेत्तुकफोदरम् ॥

अर्थ—कफोदर रोगी को स्नेहन, स्वेदन
और संशोधन देकर कफनाशक कटु और
क्षार युक्त अन्नका पथ्य विधान करे । तथा
गोमूत्र, अरिष्ट, लोहचूर्ण, क्षार, तैलपान
आदि से कफोदर को दूर करे ॥

सन्निपातोदर में चिकित्साक्रम ॥

सन्निपातोदरेसर्वायथोक्ताःकारयेत्क्रि-
याः ॥ सांपद्रवन्तुनिर्गृत्तंप्रत्याख्येयंवि-
जानता ॥

अर्थ....सन्निपातोदरमें पूर्वोक्त सम्पूर्ण क्रि-
याओंका करना उचित है । यदि इस उ-
दररोग में उपद्रव हों तो चिकित्सा करना
त्याग देवे ॥

श्लीहोदर में चिकित्साक्रम ॥

उदावर्तशगानाहृदाहमोहवृषाज्वरैः ॥
गौरवारुचिकाठिन्यैःचानिलादीन्यथाक्र-
मम् । लिङ्गैःश्लीहोदरानुद्वेषारक्तवापि
स्वलक्षणैः ॥ चिकित्सासंश्रुर्वातयथा-
दोषयथावलं ॥

अर्थ—श्लीहोदर में उदावर्त, शूल और
आनाह के होने पर वात की चिकित्सा करे
करे । दाह, मोह, वृषा और ज्वर होनेपर
पित्तकी और भागप्रन, अरुचि और काठिन
ता के होनेपर कफ की चिकित्सा कर्तव्यहै,
और यदि रक्तज श्लिहा के लक्षण दिखाई
दें तो रक्त की चिकित्सा करे । इसमें दोष
और बलपर अवश्य ध्यान देना उचितहै ॥

उदररोग में कर्तव्य कर्म ॥

स्नेहंस्वेदंविरेकञ्चनिरूहमनुवासनम् ।
समीक्ष्यकारयेद्वाहौवामेवाव्यधयेच्छिरा-
म् ॥ पट्टपलंबापिपेत्सर्पिःपिप्पलीर्वाप्र-
योजयेत् । सगुडामभर्वावापिक्षारारि-
ष्टगणांस्तथा ॥

अर्थ—जैसा उदररोगहो उस के अनु-
सारही स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूहण
और अनुवासनादि कर्म करावे अथवा वाम
वाहू में रगको वेधकर रुधिर निकाल दे ।
अथवा पट्टपलघृत, वा पिप्पल्यादि रसायन,
वा गुड और हरड वा क्षारों और अरिष्टोंका
देना उचित है ॥

उदररोग में प्रयोग ॥

पिप्पलीनागरंदन्तीचित्रकंद्विगुणाभयम्
विडङ्गाशयुतचूर्णमेतदुष्णांस्त्रुणापिवेत् ॥
विडङ्गचित्रकंशुठींसघृतांसैन्धवंयचाम् ।
दग्ध्वाकपालेपयसागुल्मप्लीहापहंभवेत् ।
रोहीतकलतानान्तुकाण्डिकासाभयाज-
ले । मूत्रेवाप्तमेतच्चसप्तरात्रस्थितोपिवेत्
कामलागुल्ममेहार्शःप्लिहासर्वोदरकिमीन्त
द्रन्याजांगलरसैर्जीर्णस्याच्चात्रभोजनम् ॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, दंती और चीता ये चारों समानभाग, दोभाग हरड, चतुर्थांश पायत्रिंडंग इन सबका चूर्ण बनाकर गरम-जलके साथ फांकना चाहिये ॥ वायवि-
 ङ्ग, चीता, सोंठ घृत, संधानमक और वच इन को एक कुलड़े में भरकर फूंकले फिर इनका चूर्ण बनाकर दूधके साथ सेवन करे ताँ गुल्मरोग और-प्लीहा दूर होजाते हैं ॥ रोहेडेकी शाखाके अप्रभागों को लेकर और हरडको कूटका जल वा गोमूत्र में औ-
 टाकर छानले और सातरात तक धरारहने दे । तदुपरांत इनका सेवनकरने से कामला गुल्म, मेह, अर्श, प्लीहा, सब प्रकार के उ-
 दररोग और क्रिमि नष्ट होजाते हैं । इस औषध के पचने पर जांगल जीवों के मांस रसके साथ भोजन करे ।

रोहीतक घृत ।

रोहीतकत्वचःकृत्वापलानांपञ्चविंशतिम्
 कोलद्विप्रस्थसंयुक्तकपायमुपकल्पयेत् ॥
 पालिकैःपञ्चकोलैस्तुतैःसर्वैश्चापितुल्यया
 रोहीतकत्वचापिट्टैःघृतमस्थंविपाचयेत् ।
 प्लीहातिवृद्धिशमयत्येतदाशुप्रयोजितम् ।
 तथागुल्मोदरश्वासक्रिमिपाण्डुत्वकामलाः
 अर्थ—रोहेडे की छाल पच्चासपल, को
 ल दो प्रस्थ इन दोनों को अठगुने जल में
 चढादे और चौथाई शेष रहने पर उतार
 कर छानले । फिर इस में पंचकोलोक्त द्रव्य
 एक एक पल और रोहेडे की छाल पांच
 पल इनका चूर्ण करके ढालदे और एक प्र
 स्थ धी ढालार पकावै घृत शेष रहने पर

उतार लेवै यह घृत अत्यन्त बढी हुई प्लीहा
 को शीघ्रही शान्त करदेता है, तथा गुल्म-
 रोग, उदररोग, श्वास, क्रिमिरोग, पाण्डुरो-
 ग और कामला इन को भी दूर करदेता है ॥

अन्यप्रयोग ।

अग्निर्कर्मचकुर्वाताभिषग्वातकफोत्पणे ।
 पैत्तिकेजीवनीयानिसर्पीपिशीर्यस्तयः ॥
 रक्तावसेकःसंशुद्धिःक्षीरपानंचशस्यते ॥
 यूपैर्मांसरसैश्चापिदीपनीयसमांयुतैः ।
 लघून्यन्नानिसंरुज्यभजेत्प्लीहोदरीनरः
 अर्थ....वात और कफकी अधिकता में
 अग्निर्कर्म करना हित है । पैत्तिक उदर में
 जीवनीय गणोक्त द्रव्य, तिक्तकादि घृत क्षी
 र वास्ति, रक्तमोक्षण, संशोधन और दुग्ध-
 पान हितकर होते हैं प्लीहोदर में दीपनीय
 औषधियों से सिद्ध यूप और मांसरस के
 साथ लघु अन्नका भोजन हितहै ।

उदोदर में चिकित्सा ।

स्विन्नागवद्धोदरिणेमूत्रतीक्ष्णौषधान्वि-
 तम् ॥ सैतललवणदद्यान्निरुहंसानुवास
 नम् ॥ परिस्त्रिंसीनिचान्नानितीक्ष्णञ्चैव
 विरेचनम् । उदावर्त्तहरं कर्मकापैषातन्नेमवच
 अर्थ....बद्धोदररोगी को स्वेदन देकर ती
 क्ष्ण विरेचन देवै, उदावर्त्त नाशक कर्म तथा
 वातनाशक क्रिया का भी प्रयोग करे ॥

छिद्रोदर में कर्त्तव्यकर्म ।

छिद्रोदरघृतेस्वेदात्तद्वलेप्पोदरवदाचरेत् ।
 जातंजातजलंस्नान्यमेवंतत्पाययेद्विपका ।
 तृष्णाकासज्वरात्तनुक्षीपमांसाग्निभोज
 नम् ॥ वर्जयेत्स्वासिनंतद्वत्शूलिनंदु-
 बलेन्द्रिगम् ॥

अर्थ....छिद्रोदरमें स्वेदनकर्मके अतिरिक्त कफोदर के सदृश शेष चिकित्सा करनी चाहिये। जितना जितना जल पेटमें उत्पन्न होता जाय उतना उतनाही निकाल देना उचित है। इसतरह इस रोगको यांय करता रहे। जिस छिद्रोदर में तृष्णा, खांसी उषर, क्षीणमांस, क्षीणाग्नि, क्षीणभोजन, श्वास, शूल और दुर्बलेन्द्रियता आदि उपद्रव होते हैं वह दुर्दिचिकित्स्य होता है ॥

जलोदर में चिकित्सा ।

अपांदोपेग्रहण्यादौविदध्यादुदकोदरे ।
मूत्रयुक्तानितीक्ष्णानिविबिंधंत्तारवेन्तिच
दीपनीयैःकफघ्नैश्चतमाहारैरुपाचरेत् ।
द्रव्यैश्चोदकादिभ्योनियच्छेदनुपूर्वशः
अर्थ—जलोदरमें ग्रहणी आदि में जल का दोष होनेपर गोमूत्र मिश्रित तीक्ष्णक्षार युक्त औषधियोंका प्रयोग करे। दीपनीय औषधियोंसे संयुक्त कफनाशक आहार का सेवन करावे। इस रोगमें जल आदि द्रव पदार्थों का सेवन कराना बन्द रखे ॥

उदररोगोंमेंसाधारणविधि ।

सर्वमेवोदरंप्रायोदोपसंघातजंमतम् । त-
स्मात्त्रिदोपशमनींक्रियांसर्वेषुकारयेत् ॥
दोषःकुसौहिसंपूर्णैर्वन्दिहर्मन्दत्वमृच्छति ।
तस्मान्नोऽन्यानि योज्यानिदीपनानिलघू-
निच ॥ रक्तशालीन्यवान्शुद्धान्जांगला-
श्चमृगद्विजान् । पयोमूत्रासवारिष्ठांमधु-
शीधुंस्तथासुरान् । यवागूमोदनंवापियू-
मुर्याद्रसैरपि ॥ मन्दांम्लस्नेहकटुभिः
यच्चमूलोपसाधितः ॥

अर्थ—प्रायः सम्पूर्ण उदररोग त्रिदोष से उत्पन्न होते हैं इससे इनमें त्रिदोषनाशिनी क्रिया करना उचितहै। दोषों के कुक्षिमें भरजाने से अग्नि मन्द पडजाती है इस लिये अग्निसंदीपन और लघु भोजन कराना चाहिये, यथा रक्तशालि, जौ, मूंग, जांगल पशुपक्षियोंका मांस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु, शीधु, और सुरा देवे। थोड़ी सी खटाई, चिकनाई और कटुद्रव्य डाळ कर लघुपंचमूलसे सिद्ध कियेहुये यूप और मांसरस के साथ यवागू और भातका सेवन करावे।

उदरमेंवर्जितकर्म ।

औदकानूपजंमांसंशाकंपिष्टकृतंतिलान् ॥
व्यायामाध्वद्विवास्वप्नयानयानञ्चव-
र्जयेत् । तथाप्लवणाम्लानिविदा-
हीनिगुरुणिच । नाद्यान्नानिजठरीतो-
यपानंचवर्जयेत् ॥

अर्थ—औदक और आनूपजीवोंका मांस शाक, पिष्टपदार्थ, तिलके पदार्थ, व्यायाम, भ्रमण, दिवानिद्रा, सवारीपर चढकरचलना इन कर्मोंका त्याग देना उचितहै। तथा उष्ण, नमकीन, खट्टे, विदाही, भारीभन्नोंका सेवन और जलपानभी त्यागदेना चाहिये।

उदरमेंतक्रमयोग ।

नातिसान्द्रंभतंपानेस्वादुतक्रमपेलवम् ।
त्र्युपणक्षारलवणैर्युक्तंतुनिचयोदरी ॥
वातोदरीपिवेत्तक्रोपिप्लीलवणान्वित-
म् । शर्करामरिचोपेतंस्वादुपित्तोदरीपि-
वेत् ॥ यवानीसैन्धवाजाजीव्योपयुक्तं

कफोदरी । पिवेन्मधुयुतंतकंन्यक्ताम्लं
नातिपेलवम् । मधुतैलवचाशुंठीशताद्वा
कुपुसैन्धवैः ॥ युक्तग्रीहोदरीजातंसन्यो
पन्तुदकोदरी । यद्धोदरीतुह्युपायमान्य
जाजीसैन्धवैः ॥ पिवेच्छिद्रोदरीतक्रपि
प्लीक्षौद्रसंयुतम् ॥ गौरवारोचकार्चा
नांसमन्दाग्न्यातिसारिणाम् । तक्रवात
कफार्त्तानामपृतत्यायकल्पते ॥

अर्थ—सब प्रकारके उदररोगोंमें त्रिकुटा
क्षार और नमक डालकर ऐसा मठा पीना
चाहिये जो स्वादु और स्निग्धहो परन्तु ब-
हुत गाढा नहो । वातोदरमें पीपल और
नमक डालकर मठा पीये । पित्तोदरमें श-
र्करा, फालीमिरच, डालकर मीठा मठापीये
कफोदरमें भजवायन, संधानमक, कालाजीरा
और त्रिकुटा डालकर तक्रपान हित है ।
परन्तु इस तक्रमें शंहत और तेज खटाई
डालेवै । यह अत्यन्त गाढा भी न होना
चाहिये । ग्रीहोदरमें शहत, तेल, वच, सोंठ
सोंफ, कूठ और संधानमक डालकर तक्र
का पानकरै । जलोदरमें त्रिकुटा डालकर
तक्रपान करै । वज्रोदरमें हाऊवेर, भजवा-
यन, कालाजीरा और संधानमक डालकर
तक्रपान करै । छिद्रोदरमें पीपल और श-
हत डालकर तक्रपान करै । जो मनुष्य
गौरव, अरुचि, मन्दाग्नि, अतिसार और
वातकफ रोगों से पीडित हैं उनको मठा
अमृत के समान गुणकारी होता है ॥

उदरमेंदुग्धप्रयोग ।

दाहाशोकार्त्तितृष्णामूर्च्छापीडितेकारभंपयः

शुद्धानांसामदेहानांगन्यछागंसमाहिपम् ॥
अर्थ—दाह, शोक, अर्त्ति, तृष्णा और
मूर्च्छा इन रोगोंके होनेपर हाथिनीका दूध
पान करावै । तथा संशोधन से जो क्षीण
देह होगये हैं उनको गौ, बकरी और भैंस
का दूध पान करावै ॥

उदरपर लेपनादिप्रयोग ।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिङ्गैः ॥
साश्वगन्धैःसगोमूत्रैःप्रदिह्यादुदरसमैः ॥
वृश्चिकालीवचाकुपुपञ्चमूलापुनर्नवाम् ॥
भूतीकानागरंधान्यंजलेपकावसेचयेत् ॥
पलाशंकतुणंरस्नातद्दपक्त्वावसेचयेत्
मूत्राण्वघाघुदरिणांसेकेपानेचयोजयेत् ॥

अर्थ—देवदारु, ढाक, आक, गुजपीपल
संहजना और असगन्ध इनको गोमूत्र में
पीसकर पेटपर लेप करै । तथा विछवन,
वच, कूठ, पंचमूल, सांठ, भजवायन, सोंठ
और धनियां इनको जलमें औटाकर उस
जलसे पेट पर तरडा देवै । अथवा ढाक,
कतूण और रास्ना इनको जलमें औटाकर
इस जलसे तरडा देवै । अंठों प्रकारके मूत्र
उदररोग में परिपेक और पानमें प्रयुक्त
किये जाते हैं ।

रूक्षाणां बहुवातानां तथा संशोधनाधिनाम्
स्नेहनीयानिसर्पीपिजठरघ्नानिवक्ष्यते ॥

अर्थ—रूक्ष, बहुवातपीडित और संशो-
धन के योग्य मनुष्यों के निमित्त उदर-
नाशक स्नेहनीय घृतोंका वर्णन कियाजाताहै

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचन्याचित्रकनागरः ॥

सक्षौररुद्धपलिकैस्तैःप्रस्थंसर्पिपःपंचेत् ॥
कल्कौद्विर्पञ्चमूलस्यतुलाद्धस्थरसेनच ।
दधिमण्डातकोपेतत्सर्पिर्जठरापहम् ॥

श्वयधुंवातविष्टम्भगुल्मार्शासिचनाशयेत्
अर्थ....पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता,
सोंठ और जवाखार इनमें से प्रत्येक आधे २
पल लेवै, घृत एक प्रस्थ, दशमूल का का-
थ आधातुला और दहीका तोड़ एक तुला
इन सबको पकाकर घृत प्रस्तुत करै इस
घृत के सेवन करनेसे उदररोग, कृजन,
पात विष्टम्भ, गुल्म और शर्शा दूर होजातेहैं
नागरादिघृत ।

नागरत्रिफलाप्रस्थघृतौलात्थाढकम् ॥
मस्तुनःसाधयित्वैतत्पित्रेत्सर्वोदरापहम्
कफमारुतसम्भूतेगुल्मेचैतत्प्रशस्यते ॥
अर्थ—सोंठ और त्रिफला एक प्रस्थ
धी और तेल एक आढक इनको दहीके
दूने तोड़में पकावै । यह घृत सम्पूर्ण प्रकार
के उदररोग, तथा कफवात से उत्पन्न गु-
ल्मरोगों में हित है ।

चित्रकघृत ।

चतुर्गुणेजलेमूत्रेद्विगुणेचित्रकास्पले ॥
कल्केसिद्धघृतमस्थंसचारंजठरीपिवेत् ।
अर्थ—चीता एक पल, घृत एक प्रस्थ,
जवाखार एक पल, गोमूत्र दो प्रस्थ और
जल चार प्रस्थ इनको पाक करले । यह
घृत घटरोग में हित है ॥

यवादि घृत ॥

यवकोलकुलत्थानांपञ्चमूलरसेनच । सु
क्षौरीकाश्यांसिद्धंवापिपिन्देदघृतम् ॥

अर्थ—जौ, बेर, कुलथी इनका कल्क
पञ्चमूल का काथ मुरा और सौवीर इन
के साथ घृत को पकाकर सेवन करै ।

एभिःस्निग्धायसजातेवेलशांतेचमारुते ॥
सस्तेदोपाशयेदद्यात्कल्पदृष्टाविरचनम् ॥

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए घृतोंसे जब
रोगी स्निग्ध होजाय, उसमें बल बढजाय
और वातभी शान्त होजाय तब दोपाशय
की शुद्धिके निमित्त कल्पस्थानमें कहा हुआ
विरचन देवै ।

पटोलादि चूर्ण ॥

पटोलमूलरजनीषिडङ्गात्रिफलात्वचम् ।
काम्पिल्यकोनीलिनीचित्रिताचेतिचूर्णं
येत् ॥ पडाद्यान्कापिकानन्त्यांस्त्रिचद्वि
त्रिचतुर्गुणान् । कृत्वाचूर्णमतोमृष्टिगवां
मूत्रेणवापिवेत् ॥ धिरिक्तोमृदुशुजति
भोजनजांगलैरसैःमण्डपेयाञ्चपीत्वावासा
व्योपंपदहंपयः ॥ शृतंपिवेत्ततःचूर्णंपिवे
देवपुनःपुनःहन्तिसर्वोदराण्येतच्चूर्णंजा
तोदिकान्यापि ॥ कामलांपाण्डुरोगञ्च
श्वयधुंचापकर्षति ॥

अर्थ—पवलकी जड़, हलदी, वायविडंग
त्रिफलाकी छाल, प्रत्येक एक एक कर्प, क-
वीला दोकर्प, नीलनी तीन कर्प, और नि-
सोध चारकर्प ॥ इन सबका चूर्ण बना लेवै
इसमें से एक पल चूर्ण गोमूत्र के साथ सेवन
करै ॥ दस्त होने के पीछे जांगल मांसरस
के साथ मृदु भोजन करै अथवा मण्ड पेया
को पीकर त्रिकुटा डाला हुआ दूध छः दि-
वस तक पान करै ॥ इसी तरह फिर चूर्ण

का सेवन करके फिर दुग्धादि का सेवन करे । यह चूर्ण उन उदररोगों को भी दूर कर देता है जिन में जलकी उत्पत्ति हो आई है, तथा कामला, पाण्डुरोग और सूजभ को भी दूर कर देता है ॥

गवास्यादि चूर्ण ।

गवाक्षीशंखिर्नादन्तीतिल्वकस्यत्वचंचवचाम् । पिवेद्द्राक्षाभ्युगोमूत्रकोलकर्फकशुशीधुभिः ॥

अर्थ—इंद्रायण, शंखपुष्पी, दन्ती, लोध, वच इनके चूर्णको दाखके काथ के साथ, वा गोमूत्रके साथ वा कौल वा कर्फकशुके काथ के साथ वा शीधुके साथ पानकरे ॥

नाराच चूर्ण ।

यमानीह्वुपाधान्यांत्रिफलाचोपकुञ्चिका । करवीपिप्ललीमूलमजगंधाशटीवचा ॥

शताहाजरिफंब्योपंस्वर्णक्षीरीसचित्रफा ॥ द्वौक्षारौपौष्करंमूलंकुण्डलवणपञ्चकम् । विदङ्गस्यसर्माक्षानिदन्त्याभागास्त्रयस्तथा ॥ त्रिवृद्धिशालयोर्द्वौक्षीसातलास्याचतुर्गुणा । एतन्नाराचकंनामचूर्णरोगगणापहम् ॥ नैतत्प्राप्यातिवर्त्तन्तेरोगाविष्णुमिवासुराः । तक्रेणोदारिभिःपेयंगुलिभिर्वैदराम्बुना ॥ आनद्धवातेसुरयावातरोगेप्रसन्नया । दधिमण्डेनविदस्येदाडिमाम्बुभिरर्शसैः ॥ परिफर्त्तंसदृष्टाम्लमुष्णाम्बुभिरर्जीर्णके । भगन्दरेपाण्डुरोगेश्वासेकासेगलग्रहे ॥ हृद्रोगेग्रहणीदोषकुष्ठेमन्देऽनलेज्वरे । दंष्ट्राविपेमूलविपेसगरेकृत्रिमेविपे । यथाईस्निग्धकोष्ठेनपेयमेतद्विरेचनम् ॥

ह्वुपाकाञ्चनाक्षीरीत्रिफलाकटुरोहिणी

अर्थ....अजवायन, हाऊवेर, धनियां, त्रिफला, कालाजीरा, छोटा कालाजीरा, पापलामूल, अजगन्ध, कचूर, वच, सोंफ, जीरा, त्रिकुटा, स्वर्णक्षीरी, चीता, दोनों प्रकार के क्षार, पुहकरमूल, कूठ, पांचों नमक और वायविडंग एक एक भाग, दन्ती तीन भाग निसोथ और इंद्रायण दो २ भाग, सातला चारभाग। इन सबको कूट पीसकर चूर्ण बना लेवै । इस चूर्णका नाम नाराचचूर्ण है यह सम्पूर्ण रोग समूहों का नाश करने वाला है । इस चूर्णका सेवन करनेके पश्चात् रोग ऐसे नहीं बढनेपाते हैं । जैसे विष्णु के साम्हने असुर गण सिर नहीं उठासक्ते हैं । इसचूर्ण के भिन्न २ अनुपान ये हैं, यथा इस चूर्ण को उदररोग में तक्रके साथ गुल्मरोग में बरेके काथ के साथ; आनाहमें सुराके साथ; वातरोग में प्रसन्ना के साथ, मलकीवद्धता में दधिमण्ड के साथ; अर्शमें अनार के क्याथ के साथ; परिकर्त्तिका (पेठा) में वृक्षाम्बके काथके साथ; अजीर्ण में गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये । तथा इन रोगोंके अतिरिक्त यह चूर्ण पाण्डुरोग, द्वास, खांसी, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणी दोष, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविप (दांत का विप) मूलविप, विपरोग और कृत्रिमविप को दूर करदेताहै । यह विरेचनकर्त्ता औषध रोगोंके कोष्ठ को स्निग्ध करने के पीछे दीजाती है ॥

ह्वुपादिचूर्ण ॥

ह्वुपाकाञ्चनाक्षीरीत्रिफलाकटुरोहिणी

क्रमका अवलंबन करना चाहिये । बार बार घृतपान करके मिश्रकघृतका पानकरै कुशुभ घैद्यको उचित है कि गुल्म, गरदोष तथा उदररोगों की शान्ति के निमित्त ऊपर कहे हुए घृतों का पान करै ।

पीलुकल्कोपसिद्धंवाघृतमानाहभेदनम्रागुल्मघ्ननीलिनीसर्पिःस्नेहंवामिश्रकंपिबेत् ॥

अर्थ—पीलू के कल्क क साथ सिद्ध किया हुआ घी आनाह को दूर करताहै । गुल्म नाशक नीलिनी घृत वा मिश्रक स्नेह का पान करने से भी उदररोग दूर होजातेहैं ।

क्रमाग्निहृतदोषाणांजांगलप्रतिभोजिनामृदोषशेषनिवृत्त्यर्थयोगान्बक्षाम्यतःपरम्

अर्थ—क्रम से विरेचनादि द्वारा दोषों के निकलने पर जांगल मांसरसादि का भोजन करना चाहिये । अब हम यहां से उन योगों का वर्णन करते हैं जो शेष दोषोंकी निवृत्ति के लिये उपयोगी होते हैं ।

अन्यप्रयोग ।

चित्रकामरदारुभ्यांकल्कंक्षीरेणवापिबेत् ॥
मांसयुक्तस्तथाहस्तिपिप्पलीविश्वभेषजात् ।
विडङ्गचित्रकोदन्तीचव्यंव्योपञ्चतैः
पयः ॥ कल्कैःकोलसमैःपीत्वामृदमुदरं
जयेत् । पिबेत्कपायंत्रिफलादन्तीरोहीत
कैःशृतम् ॥ व्योपसारयुतंजर्णिरसरथात्
सजांगलैः । मांसवाभोजनंभोज्यंमुद्याशा
रगृतान्वितम् ॥ क्षीरानुपानंमोमूत्रमपयां
घामयोजयेत् । सप्ताहंमाहिपमूत्रंक्षारिंचा
नन्नरूपिपेत् । मांसमौष्टंपयःछागंत्री
न्मासान्व्योपञ्चयुत्म् ॥

अर्थ—चीता और देवदारु इन दोनों के कल्कको दूधके साथ सेवन करै । अथवा गजपीपल, सोंठ, वायविडंग, चीता, दन्ती, चव्य, और त्रिकुटा इन सबको समान भाग लेकर पीसले । इस कल्कमें से बेरके बराबर दूधके साथ एक महीने तक पीवैतो बड़ा हुआ उदररोग शान्त होजाताहै । अथवा त्रिफला, दन्ती और रोहेडा इनका ब्वायकरके त्रिकुटा और क्षार डालकर पान करै । औषधक पचनेपर जांगल पशुओंका मांसरस देवै अथवा सेहुंडके दूधके घाके साथ पकाया हुआ मांस देवै । अथवा गोमूत्र के साथ हरडको फांककर ऊपरसे दूध पीवै । अथवा सात दिवसतक भैंसका मूत्र पीवै और उसी का दूध पीकर रहै, बन्न छोड़ देवै । अथवा ऊंटका मांस और बकरी का दूध त्रिकुटा डालकर तीन महीने तक पीवै ।

हरितकीसहस्रंवाक्षीराशीवांशलाजतु ।
शिलानतुविधानेनगुग्गुल्लंवाप्रयोजयेत् ॥
शृङ्गेरार्द्रकरसःपानेक्षीरसमोमतः । तल्लं
रसेनतेनवसिद्धंशशुणेनवा ॥ दन्तीद्र-
वन्तीफलजंतैलदूप्योदंरुमतम् । शूलाना
हविवन्धेषुसक्तयुपरसादिभिः । १० सर
लामरशिभ्रूणांवीजिभ्योमूलकस्यच ॥ तै
लान्यभ्यंगपानार्थंशूलघ्नान्यनिद्रोदरे ।
स्तमित्यारुचिहृल्लासेप्त्रन्याग्निर्मद्यपस्त-
था ॥ अरिष्टान्वापिबुज्जारानुक्रफस्त्वान्
नस्थिनोदरेः ।

अर्थ—सहस्र हरडका सेवन एक पद बढ़ाने घटाने का रोग से करै और दुः

पान करके रहे । अथवा शिलाजीत का सेवन करै अथवा शिलाजीत की रीतिही से गूगलका प्रयोग करै । अथवा दूध में समान भाग अदरखका रस मिलाकर पीवै अथवा दसभाग अदरखके रसमें एक भाग तेल पकाकर सेवनकरै । अथवा दन्ती और द्रवन्ती के फलों का तेल दूष्योदर में सेवन करै - शूल आनाह और विबन्ध रोगों में शकृत्, यूप और मांसरसके साथ इसी तेल का सेवन करै । वातोदर में शूलको नष्ट करने के लिये सरलकाष्ठ, सहजना वा मूली के बीजोंका तेल अम्यग और पानमें प्रयोग करै ॥ कफोदर में जब उदर कफ के कारण क्षिब्ध और स्थिर होजाय तब तथा स्तिमिता, अरुचि, हृत्तास, और अल्पाग्नि में मद्यपनिद्राला मनुष्य अरिष्ट वा क्षारोंका पानकरै ।

पिप्पलीतिलवकंहिगुनागरंहस्तिपिप्पलीम्
भरलातकंशिशुफलंत्रिफलांकदुरोहिणीम् ।
देवदारुह्रिद्रेसरलातिविपेवचाम् ।

कुण्डसुरतंथापञ्चलवणानिप्रकल्प्यते ॥
दधिसर्पिर्वसातैलमज्जायुक्तानिशाहयेत् ।
अन्नधूमंतथाक्षाराद्विडालकपर्दापिबेत् ।
मदिरादाधिमण्डोष्णजलारिष्टसुरासवैः ।

हृद्गोश्वयधुंगुल्मंघ्नीहाशौजठराणच ॥

विमूचिकाशुदावर्त्तवाताष्ठीलाञ्चनाशयेत्

अर्थ—पीपल, लोष, हींग, सोंठ, गज पापल, मिलाशा, सहजना, त्रिफला, कुटकी देपदारु, दोनों हल्दी, सरला, अर्तास, वच, शूट, मोथा- पाचो नमक, इनको कूटकर

दही, घी, वसा, मज्जा; और तेल मिलाकर ऐसी रीतिसे दग्धकरै कि धूँआं भीतरका भी-तरही भरजाय बाहर न निकलने पावै । इस क्षारमें से प्रतिदिन दो तोले मदिरा, दधि-मण्ड, उष्णजल, अरिष्ट, सुरा और आसव के साथ पान करै तो हृद्गो-सूजन, गुल्म रोग, घ्नीहा, अर्श, जठर, विसूचिका, उदा-वर्त्त और वातशीला दूर होजाते हैं ।

आजकरीपिका प्रयोग ॥

सारञ्जाजकरीपाणांशृतमृत्रैर्विपाचयेत् ।
कार्पिकापिप्पलीमूलंपञ्चैवलवणानिच ॥
पिप्पलीचित्रकंधुण्ठीत्रिफलांत्रिष्टतांवाचा
मूत्रौक्षारौशातलांन्दन्तीस्वर्णक्षरिांविपा
णिकाम् ॥ कोलममाण्णावटिकांपिबेत्
सौवीरसंयुताम् श्वयथावविपाकेचमष्टेद्
चोदकोदरे ।

अर्थ—बकरीकी मूत्रनिर्घोको जलाकर अठगुने मूत्रमें पकावै जब औटजाय तब एक छन्नेमें होकर चुआडे इसतरह घीस कर्प क्षार लेवै और पीपला मूल, पांचौनमक पीपल, चीता, सोंठ, त्रिफला, निसोध, वच, दोनों क्षार,शातला, दन्ती, स्वर्णक्षीरी, और मेढासंगी इनको एक एक कर्प लेकर पीसकर बरती बराबर गोली बनावै एकगोली खाकर ऊपरसे सौवीरका पान करले।इससे सू-जन,अविपाक और बढेहुए उदररोगनष्टहोजातेहैं।

उदररोग में भोजन ।

भावितानांगवांमूत्रेपिष्टकानांतुतण्डुलैः
यवागूपयसासिद्धंक्रामंभोजयेन्नरम् ।
पिबेदिधुरसञ्चानुजठराणांनिष्टत्तयोस्व

स्वस्थानं ब्रजत्येपांतथापित्तकफानिलाः ॥

अर्थ—साठीचांबळों को गोमूत्रकी भावना देकर दूधके साथ उनकी यवागू बनाकर यथेष्ट भोजन करावे । ऊपरसे इक्षुरस का पान करै, ऐसा करनेसे जठर रोग शान्त होजातेहैं और वात पित्त कफ अपने अपने स्थानोंको चले जातेहैं ।

श्रीखिनीस्तुक्रिष्टदन्तीचिरिविल्वादिपल्लवैः। शाकं गाढपुरीषाय प्राग्भक्तं दापयेद्विपक्वम् ॥ ततोऽस्मै शिथिलीभूतवर्चोदोषायशास्त्रवित् । दद्यान्मूत्रयुतं क्षीरंदोषशेपहरं शिवम् ॥ पाश्चर्शल्युपस्तम्भं हृद्ग्रहं च्चापिमारुतः । जनयेद्यस्य तैलं सविल्वक्षारेण नापिवेत् ॥

अर्थ—जिस रोगीका मल गाढा पड गया हो उसे शंखाहूली, सेंडुड, निसीध, दन्ती और कंजेके पत्तोंका साग भोजन करने से पहिले देवै । जब विष्टा और दोंप ढीले पडजाय तब वचे हुए दोंपोंको दूर करने के लिये गोमूत्र और दूधका सेवन करावै । जब वायु पाश्चर्शल्य, उपस्तम्भ और हृद्ग्रह उत्पन्न करै तब उसे विल्वक्षार के साथ तैलपान कराना चाहिये ॥

तथाग्रिमन्यश्यानाकपलाशतिलनालजैः वलाकदल्पपामागक्षारैः प्रत्येकशः सुतैः ॥ तैलंपक्त्वाभिपगद्घादुदराणां प्रशान्तये नियतेते चोदरिणां हृद्ग्रहश्चानिलोज्ज्वलः ॥

अर्थ—अरनी, सौनापाठा, ढाक, तिलकी नाळ, खैरीटी, फेला, आंगा, इन सब के तारोंको अलग अलग तयार करै । फिर

इन क्षारों के साथ तैल सिद्ध करै । यह तेल उदररोग तथा वातज हृद्ग्रह को दूर करदेता है ।

कफेवातेसपित्तेनताभ्यांवाप्यावृतेऽनिले वलिनःस्वौषधयुतं तैलमैरण्डजं हितम् । सुविरिक्तो नरो यस्तु पुनराधमती हितम् ॥ सुश्लिष्टैरम्ललवणैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥

अर्थ—कफ, वात वा वातापित्तसे वायु के आवृत होने पर बलवान रोगी को वात नाशक वा कफनाशक औषधियों के साथ में सिद्ध किया हुआ अंडी का तेल देवै । अच्छी तरह विरेचन होने के पीछे भी जो फिर उदररोग की उत्पत्ति होवै तौ अम्ल और लवण द्वारा सिग्ध निरूहण वस्ति देवै । जिसरोगी के वायु उपस्तम्भ के साथ उदररोग की उत्पत्ति करै उसे क्षार और गोमूत्र द्वारा तीक्ष्ण वस्ति देवै ।

सोपस्तम्भोऽपि वा वायुराध्मापयति यं नरम् तीक्ष्णैः सक्षारगोमूत्रैर्वेस्ती भस्तेमुपाचरेत् ॥

अर्थ—अथवा उपस्तम्भ सहित वायु जिस नरको ग्रस्त कर लेती है, उस मनुष्य का तीक्ष्ण क्षार सहित गोमूत्र और वस्ति से उपचार करै ॥

त्रिदोषज उदर में कर्तव्य । क्रियातीते त्रिदोषे च जाठरे चाप्रशाम्यति ॥ ज्ञाती न ससुहृदोदारान्नाह्वानान्नुपतीन् शुरुन् । अनुज्ञाप्याभपक्कर्मविदध्यात्संशयं युक्त्वा । अक्रियायां भ्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ॥ एवमारुह्या यतस्येदं मनुज्ञातः प्रयोजयेत् ॥

नाभि से चार अंगुल नीचे नापकर बाईं कु
खमें चार अंगुल के शस्त्रसे चीरा लगाकर
बद्ध वा क्षत आंतों की परीक्षा करे और
उस आंत में घी चुपड़कर केश आदि जो
शल्य उसमें हों उनको निकाल डाले । इन
के निकालने से जो आंतों में छिद्र होजाय
उनको बड़ी बड़ी चींटियों से फटवाये ऐसा
करने से आंतें इकट्ठी होकर पुरजायगी
पुरने पर चींटियों को छुड़ा देवे और
भांतों को उनके स्थान पर रखकर मणको
बाहर से सीदेवे ।

जातोदकउदरमें शस्त्रकर्म ।

तथाजातोदकसर्वमुदरव्यधयोद्भपक् ॥
धामपाश्वत्वधोनाभेनाडीदस्वाचगालये
त् । निःस्त्राण्यचाविशृज्यतद्दृष्टयेद्रासो-
दरम् ॥ तथावस्तिविरैकाद्यैर्ग्लानसर्व-
चवेष्टयेत् । निःमृते लघितः पेया मस्नेहल-
घणापिबेत् ॥ अतः परश्चपन्मासान्क्षी-
रवृत्तिर्भवेन्नरः । त्रीन्मासान्पयसापे-
यापिबेत्त्रींश्चापिभोजयेत् ॥ श्यामाक-
क्षोरदूष्यंवाक्षरिणेलघुभोजनः ॥

अर्थ...जिस उदररोग में जलबद्ध गयाहो
उसमें भी नाभिके नचिनाई ओर की चीरा
लगाकर एक नली द्वारा सब जल को नि-
काल देवे । जल के निकलनेके पीछे खाल
को जहाँ की तहाँ लगाकर बस्त्र से उपेटदे
वे । इसी तरह यस्ति और विरेचनादिसे म्वा
न उदर को मस्त्रसे लपेट देवे । जलके नि-
कलनेके पीछे लंघन कराके विना चिकनाई
और नमक की पेयाका सेवन करावे इन में

पीछे छः महीने पर्यन्त मनुष्य केवल दूध
पीकर रहे । उससे पीछे तीन महीने तक दूध
के साथ पेया पीवे और फिर तीन महीने
तक दूधके साथ सौंखिया और कीरदूध आ-
दि हलके अन्नका सेवन करता रहे ॥

नरःसंबत्सरेणैवंजयेत्प्राप्तजलोदरम् ।
प्रयोगाणान्तुसर्वेषामनुक्षीरंमयोजयेत् ॥
दांपानुबन्धुरक्षार्थवलयस्थैर्याधिमेवच । प्र-
योगापचिताङ्गानांहितहृद्यदारिणांपयः ॥
सर्वधातुक्षयातर्नादिवानाममृतंयथा ॥

अर्थ....इस तरह एक बरस तक सुपच्य
और उत्तम आहार विहार करने से मनु-
ष्य जलोदर को विजय करसकता है । उ-
दररोगों में सम्पूर्ण प्रयोगोंके पीछे दूध का
पीना अवश्य है, ऐसा करनेसे वातादि दो-
षों का अनुबन्ध दूर होजाताहै और बल
तथा दृढता बनी रहतीहै । ब्रह्मसंसे प्रयोगोंके
कारण रोगीका देह क्षीण होजाताहै और
सम्पूर्ण धातुभी क्षय होजाती है इससे उद-
रोगीको दूध ऐसा गुणदायक है जैसे देवतां-
ओं को अमृत ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुंप्राप्पमप्टानांलिंगंव्याससमासतःउप-
द्रवान्गरण्यस्त्वसाध्यासाध्यत्वमेवच ।
जाताजाताम्बुलिगानचिकित्सांचोक्त्या
नृपिः ॥ समासव्यासानेदेशैरुदराणांचि-
कित्सितम् ।

अर्थ—इस उदरचिकित्सित नामक अ-
ध्यायमें भगवान् पुनर्वसुने आठ प्रकार के
उदररोगोंके हेतु, पूर्वस्वरूप, और चिकित्सा

रसाद्रक्तविसदृशात्कथं देहेऽभिजायते ।
 रसस्य च न रज्जोऽस्ति सकथं याति रक्तताम् ॥
 रसाद्रक्तात्स्थिरमांसं कथं तज्जायते नृणाम् ।
 रसाद्रक्ताच्च यामांसां मेदसः श्वेतता कथम् ॥
 श्लक्ष्णाभ्यां मांसमेदोभ्यां खरत्वं कथमास्थि
 षु । खरेष्वस्थिषु मज्जाचकेन स्निग्धो मृदु
 स्तथा ॥ मज्जाश्च परिणामेन यदिभ्रुकं प्रव
 र्त्तते । सर्वे सर्वगतं भ्रुकं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
 अथापि मध्ये मज्जाश्च भ्रुकं भवति देहिनाम् ।

छिद्रं न दृश्यतेऽस्थनाच्च तन्निःसरति नुः कथम्

अर्थ.... जब आग्नेय इस तरह कह रहे थे

तब उनके शिष्यने पूछा कि हे भगवन् ! रस

और रक्तमें विसदृशाता है फिर रससे, रक्त

कैसे उत्पन्न होता है ? रस में छलाई नहीं

होती है फिर, रक्तलाळ क्यों होजाता है ?

रस और रक्त तौ पतले हैं फिर इनसे स्थिर

मांस कैसे उत्पन्न होता है ? रस, रक्त त-

था मांससे उत्पन्न हुआ मेद सफेद क्यों

होता है ? मांस और मेदा तौ चिकने होते

हैं फिर इनसे उत्पन्न हुई हड्डियों में खरख-

राहट क्यों होता है ? खरदरी हड्डियोंमें फि-

र मज्जा किस कारणसे स्निग्ध और मृदु

होती है । और यदि मज्जा के परिणामसे

ही वीर्य यौ प्रवृत्ति होती है और उसी शुक्र

संबं पंडित सर्वगत अर्थात् सम्पूर्ण देह

व्यापक कहते हैं, इससे वीर्य मनुष्योंकी

कें बीच में ही होता है परन्तु हडि-

के बीच में उसके निकलने का कोई

नहीं दिखाई देता है फिर बाहर कैसे

आता है ॥

रससे रक्त बनने का कारण ॥

एवमुक्तस्तु शिष्येण गुरुः प्राहेदमुत्तरम् ।

तेजोरसानां सर्वेषामनुजानां यदुच्यते ॥

पित्तोष्णः सरागेण रसोरक्तत्वमृच्छति ॥

अर्थ.... इस तरह शिष्य से प्रश्न किये

जाने पर गुरुने उत्तर दिया कि सम्पूर्ण

मनुष्यों के आहार रसमें एक तेज नामकरस

होता है यह पित्त की ऊष्मा से रक्त हो-

जाता है ॥

मांस और मेदकी रीति ॥

वाप्याग्नि तेजसाररक्तमूष्मणाचाभिसंयुतेभ्यो

स्थिरतां प्राप्य शौक्ल्यश्च मेदो देहेऽभिजायते

अर्थ—वह रक्त वायु और अग्नि का तेज

तथा ऊष्मा से मिलकर जमजाता है और

मांस बन जाता है एवं मांसकी ऊष्मा से उ-

सीका सफेद मेद बनजाता है ॥

अस्थिकी विधि ॥

पृथिव्यग्न्यानि लादीनां संघातः श्लेष्मणा वृतः

खरत्वं भ्रुकरोत्यजायतेऽस्थिततो नृणाम् ॥

अर्थ—कफसे आवृत पृथ्वी, अग्नि और

वायु के संघात में खरखराहट पैदाहोती है

इसी से हड्डियां उत्पन्न होती हैं ॥

मज्जाकी उत्पत्ति ॥

क्रोतितत्र सौशिर्यमस्थानां मध्ये सर्गारणः ॥

मेदसस्तानि पूर्यन्ते स्नेहो मज्जा ततः स्मृतः ॥

अर्थ.... तब वायु हड्डियों के मध्य में छिद्रों

को उत्पन्न कर देती है और वे छिद्र मेदा से

परिपूर्ण होजाते हैं, उससे हड्डियों में स्नि-

ग्ध मज्जा उत्पन्न होती है ॥

शुक्रकी उत्पात्ति ॥

तस्मान्मज्जस्तुयःस्नेहःशुक्रसञ्जायतेततः
वाय्वाकाशादिभिर्भावैःसौश्रियंजायतेऽ
स्थियु । तेनस्रवतितत्शुक्रंवात्कुम्भादि-
बोदकम् ॥

अर्थ.... उस मज्जा की चिकनाई से शुक्र
की उत्पात्ति होती है और हड्डियों में वायु
और आकाशादि के भावोंद्वारा बहुत से छो
टे २ छिद्र होजाते हैं उन्ही छिद्रों में होकर
५ वीर्य ऐसे निकलता है जैसे नये घडे में
में जल चुचाता है ॥

वीर्य के निकलने की रीति ।

स्रोतोभिःस्यन्दतेदेहात्समन्तात्शुक्रवाहि-
भिः । हर्षेणोदीरितंरागात्संकल्पाच्चम-
नोभवात् ॥ विलिनिघृतवद्व्यायामोष्म-
णास्थानविच्युतम् । वस्तौसंभृत्यनिर्वा
तिस्यलान्निम्नादिवोदकम् ॥

अर्थ.... सम्पूर्ण देह से शुक्रवाही स्रोतों
द्वारा मन से उत्पन्न हुए हर्ष, राग और स
कल्प से शुक्र उद्गीर्ण होताहै तथा मैथुनादि
परिश्रमकी ऊष्मा से घृत के समान पिघल
कर अपने स्थान से च्युत होकर वस्ति में
इकट्ठा होकर इस तरह निकलने लगता
है, जैसे नीची जगह से जल निकलताहै ।

पृथक् २ मलों का वर्णन ।

किट्मन्स्यविष्मूत्रंरसस्यचक्रफोऽमृजः
पित्तंमांसस्यचमलामलःस्वेदस्तुमेदसः ।
स्यात्किट्केशलोमास्त्रोमज्जःस्नेहोऽक्षि
विद्वचाम् ॥ मसादकिट्टेधातूनांपाका
द्वैवम्बिधः स्मृतः॥

अर्थ.... अन्नका किट्ट अर्थात् मल विष्टा
और मूत्र है, रस और रक्त का किट्ट कफ
है, हड्डी का मल केश और लोम, है मर्जा
का किट्ट स्नेह है, त्वचा का किट्ट आंखों का
मल है, इसी तरह धातुओंके पाक से प्रसा-
द और किट्ट उत्पन्न होते हैं ।

परस्परपसंरम्भाद्वातुस्नेहपरम्परा ॥
वृष्यादीनांप्रभावस्तुपुष्पातिबलमाशुहि
पद्भिःकेचिदहोरात्रैरिच्छन्तिपरिवर्तनम्
सन्तत्याभोज्यधातूनांपरिष्ठात्तस्तुचक्रवत्

अर्थ—स्नेह परम्परा धातु आपस में
एक दूसरीको पुष्ट करती हैं, परन्तु वृष्य
औषधियोंका यह प्रभाव है कि वे बलको
ही शीघ्र बढ़ाती हैं । किसी २ का यह मत
है कि एक धातु से दूसरी धातु के धनने
में छःदिनरात लगते हैं, परन्तु वास्तव में
एक धातुसे दूसरी धातु का धनना गाढे कि
पहिये की तरह घूमता रहताहै ।

व्यानेनरसधातुर्द्विविधोचितकर्मणा ॥
युगपत्सर्वतोऽजस्रदेहेविक्षिप्यतेसदा ।
क्षिप्यमाणस्तुवंगुण्याद्रसःसज्जतियत्रसः
करोतिविकृतिंचात्रखेवर्षमिवतोपदः ।
दोषाणामपिचैवंस्यादेकदेशमकोपनम् ॥

अर्थ—विक्षेपकारी व्यान वायु रसधातु
को निरन्तर सम्पूर्ण देहमें विक्षिप्त करती
रहतीहै । इसतरह विक्षिप्त रस विगुण हो
कर देहमें जहाँ कहीं एकत्रित होजाताहै व-
हाँ विकृति उत्पन्न करता है जैसे आकाश
में बादल एक जगह इकट्ठे होकर बरसमें
लगतेहैं । इसीतरह दोष एक स्थानमें
प्रकृपित होजातेहैं ।

जठराग्नि की उत्कृष्टता ।

इतिभौतिकधात्वन्नपकृणांकर्मभाषितम् ॥
अन्नस्यपक्तासर्वेषांपवत्त्वणामधिकोमतः ॥
तन्मूलास्तेहितदृद्धिद्विषयदृद्धिक्षयात्मकाः ॥
तस्मात्तंविधिवद्युक्तैरन्नपानेन्धनैर्हितैः ॥
पालयेत्प्रयतस्तस्यस्थितौबायुर्वलस्थितिः

अर्थ—ऊपर लिखी हुई रीति के अनुसार भौतिक धातु और पाचकाग्निके कर्म वर्णन किये गये हैं । सम्पूर्ण अग्नियोंमें अन्नको पचानेवाली अग्नि अधिक होती है, पाचकाग्निही सम्पूर्ण अग्नियोंका मूल है क्योंकि इसीके घटने बढ़नेसे औरों की भी घटती बढ़ती होती है । इसलिये ईंधनरूपी हितकारी अन्नपानके विधिपत्सेवन करने से जठराग्नि का पालन करै । पाचकाग्नि के स्थित होनेही से आयु और बल की स्थिति होती है।

ग्रहणी दोषों का कारण ।

योहिधुंक्तेविधिमुक्त्वाग्रहणीदोषजान्गदान् ।
सलौह्याल्लभतेशीघ्रवक्ष्यन्तेऽतः परन्तुये ॥

अर्थ—जो मनुष्य विधि छोड़कर भोजन करता है, उसके जिह्वाकी लोलुपतासे ग्रहणी दोषसे उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के रोग होजाते हैं । अब उन्हीं का वर्णन करते हैं ।

अग्नि के दूषित होने का कारण
अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विपमाश्ननात् ।
असात्म्यगुरुशीतातिरूक्षसन्दुष्टभोजनात् ॥
विरेकवमनस्नेहविभ्रमाद्द्वयाधिकर्षणात् ।
देशकालर्तुवैषम्याद्देवानाञ्च विषारणात् ॥
दुष्यत्यग्निःसदुष्टोऽन्नंनत

त्पचातिलघ्वापि । अपच्यमानंशुक्तत्वंयात्यन्नंविपताञ्चतत् ॥

अर्थ—भोजन न करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, अतिभोजनसे, विपम भोजन से, विरेचन, वमन, और स्नेहन कर्मों के अतियोगसे, व्याधिद्वारा अत्यन्तकृश होनेसे, देशकाल और ऋतुकी विपमता से, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, अग्नि दूषित होजाता है और दुष्ट होनेसे वह लघु अन्न को भी नहीं पचासकती है । और अपचमान अन्न खटा और विपवत् होजाता है ॥

अजीर्ण अन्न के लक्षण ॥

तस्यलिंगमजीर्णस्याविष्टम्भोऽगञ्चसीदति ।
शिरसोरुक्चमूर्च्छाचभ्रमःपृष्ठकटिग्रहः ॥
जृम्भांगमर्दस्तृष्णाचज्वरच्छर्दिःप्रवाहणम् ।
अरोचकोविपाकश्चघोरमन्नविपञ्चतत् ॥

अर्थ—अपच्यमान अन्न इन उपद्रवों को करता है, यथा गुडगुडाहट, अंगलानि, सिरदर्द, मूर्च्छा, भ्रम पृष्ठग्रह कटिग्रह, जृम्भा, अंगमर्द, तृष्णा, ज्वर, वमन, ऐंठा; अरुचि और अविपाक, इस्तरह, अन्न घोर विपके समान होजाता है ॥

भिन्नदोषों से संसृष्ट त्रिपान्न ॥

संसृज्यमानेनापित्तेनदाहंतृष्णांशुखामयान् ।
जनयत्यम्लपित्तंचपित्तजांश्चापरान्गदान् ॥
यक्ष्मर्षानसेमहादीन्कफजान्कफसंगतः ।
करोतिवातसंसृष्टंवातजांश्चगदान्बहून् ॥
मूत्ररोगांश्चमूत्रस्यंक्ताक्षिरोगान्शकृद्गतान् ।
रसादिभिश्चसंसृष्टं

कुर्याद्भोगान् रसादिजान् ॥

अर्थ—वही अपच्यमान अन्न पित्तसे मिलकर दाह, तृष्णा, मुखरोग, अम्लपित्त तथा पित्तजन्य अन्य २ रोगोंको उत्पन्न करता है। कफ से मिलकर यक्ष्मा, पीनस प्रमेह तथा अन्यकफज विकारोंको करता है वात से मिलकर अनेक प्रकारके वातरोगोंको करता है, मूत्रसे मिलकर अनेक प्रकारके मूत्ररोगोंको, विष्टासे मिलकर अनेक प्रकारके कुक्ष रोगोंको और इसीतरह रसादिसे मिलकर रसादिसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको करता है।

भिन्नजठराग्निके कर्म ।

विषमो धातुवैषम्यं करोति विषमं पचन् ।
तीक्ष्णो मन्देन्धनो धातुं विशोभयति पावकः ॥
युक्तं भुक्तवतो युक्तो धातुसाम्यं समं पचन् ।
दुर्बलो विदहत्यन्नं तद्यात्पुर्ध्वमधोऽपि वा ॥

अर्थ—विषम अग्नि अन्नको विषमरीतिसे पकाकर धातुओंको विषम करदेती है, तीक्ष्णानि भोजनरूपी ईंधनको अल्पपाकर सम्भ्रू पच करके धातुओंको शुद्ध कर देती है। समाग्नि युक्तिपूर्वक भोजन करनेके कारण धातुओंमें साम्यता करती है तथा मन्दाग्नि अन्नको अच्छीतरह न पचानेसे विदग्धता करती है और वह अन्न वमन द्वारा वा मलद्वारा बाहर निकल जाता है ॥

ग्रहणी रोग के लक्षण ।

अधश्चपकमामंवाप्रवृत्तं ग्रहणीगदः ।
उच्यते सर्वमेवान्नं प्रायो ह्यस्य विदग्धते ॥

अतिसृष्टं विवद्वं वा द्रवंतदुपवेद्यते ।

अर्थ—पक्व वा कच्चा अन्न जो अधो-गार्गद्वारा होकर निकलता है, इसे ग्रहणी रोग कहते हैं, इसमें प्रायः सब प्रकार का अन्न विदग्ध होजाता है। विवद्वता के साथ वा पतला होकर निकलता है ॥

ग्रहणी रोग के लक्षण ॥

तृष्णारोचकवैरस्य प्रसेकतमकान्वितः ॥
शून्यपादकरः सास्थिपर्वरुक्छर्दनंज्वरः ।
लोहामगन्धिस्तित्काम्लउद्गारश्चास्य जायते ॥

अर्थ.... इस रोगमें तृष्णा, अरुचि, विरसता, लालस्राव, तमकश्चास, हाथपांव में सूजन, हड्डी पर्वोंमें वेदना, वमन, ज्वर, लोहगन्धि, आमगन्धि, तथा तित्त और खट्टी डकार आदि उपद्रव होते हैं ॥

ग्रहणी रोगके पूर्वरूप ॥

पूर्वरूपंतु तस्येदं तृष्णालस्यं बलक्षयः ।
दाहोऽन्नस्यपाकश्चिरात्कायस्य गौरं चम् ॥

अर्थ—तृष्णा, आलस्य, बलकी क्षीणता, अन्नका विदाह, देरमें अन्नका पाक और देह का भारापन ये सब ग्रहणी के पूर्वरूप हैं।

ग्रहणीका विशेष वर्णन ।

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणीमता ।
नाभेरुपरिराहाग्निबलोपस्तम्भटीहता ॥
अपकं धारयत्यन्नं पकं सृजति पाश्चर्यतः ।
दुर्बलाग्न्यबलाद्दुष्टादा मपेव विमुञ्चति ॥

अर्थ—ग्रहणी आग्निका अधिष्ठान है, यह अन्नको ग्रहण करती है इससे इने ग्रहणी

कहते हैं, यह नाभिके ऊपर होती है, अग्निबलही इसके लिये उपस्तम्भ और वृंहण कर्ता होता है यह अपक्व अन्न को धारण करती है और पक्व अन्नको पार्श्वद्वारा निकाल देती है। अग्निबलके दूषित होने से यह दूषित होकर अपक्व अन्न को ही निकालने लगती है।

ग्रहणी रोग के भेद ।

घातात्पित्तात्कफात्सर्वात्ग्रहणीदोष उच्यते । हेतुंलिंगंचिकित्साश्चशृणुतस्य पृथक्पृथक् ॥

अर्थ....ग्रहणीरोग चार प्रकार का होता है, यथा—घातिक, पित्तिक, श्लैष्मिक और साक्षिपातिक। अब इनके पृथक् २ हेतु लक्षण और चिकित्सा वर्णन किये जाते हैं, उन्हें सुनो।

घातिक ग्रहणी के हेतु ।

कडुतिक्तकपायातिरूक्षशीतलभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैधुनैः ॥ क शोतिकुपितोमन्दमग्निसच्छाद्यमारुतः ।

अर्थ—कडवे, तखिले, कसाले, अत्यन्त रूखे, अत्यन्त शीतल भोजन करने से, थोड़ा भोजन करने से, या सर्वथा न करने से, अत्यन्त मार्ग चलने से, उपस्थित वेगों के रोकने से और मैथुन करने से वायु कुपित होकर अग्निको ढककर मन्द करदेती है, इसी से ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है।

घातिक ग्रहणी के लक्षण ।

तस्यान्नपच्यतेदुःखंशुक्रपाकःखरांगता ॥ कृण्वन्शोषःशुतृष्णातिमिरकण्ठपोः

स्वनः । पार्श्वोरुक्षणाग्नीवारुजोऽभीष्ण विस्फुचिका ॥ हृत्पीडाकार्यदौर्बल्यैवैर स्यंपरिकर्तिका । शृद्धिःसर्वरसानांचम नसःसदनतथा ॥ जीर्णेजीर्यतिचाध्मानंशुक्तेस्वास्थ्यमुपैतिच । सवातगुल्म हृद्रोगश्रीहाशङ्कीचमानवः ॥ चिराद्दुःखंद्रवंशुष्कतन्वामंशब्दफेनवत् । पुनःपुन सृजेद्वर्चःकासश्वासान्वितोऽनिलात् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके घादी से ग्रहणी रोग होताहै उसका अन्न कठिनतासे पचता है और अम्लपाक होताहै अर्थात् खट्टी डकारें आने लगती हैं। देहमें खुरदरापन, कण्ठ और मुखमें खुरकी, क्षुधा, तथा आंखों के साम्हने अंधेरा, कानों में शब्द, पार्श्ववेदना, ऊरुशूल, वंक्षणशूल, प्रांवा में वेदना, बार बार विस्फुचिका, हृत्पीडा कृशता, दुर्बलता, विरसता, पैंठा, सम्पूर्ण रसोंमें स्पृहा, मनका शिथिल होना, अन्न के पचनेपर वा पचने के समय अफरा, होता है केवल भोजन करने से सुस्थता होती है। इस रोगी को यह शंका होती है कि मेरे वात गुल्म, हृद्रोग और श्रीहा होगई है। इस रोगमें देहमें कष्टसे पतला, सूखा थोड़ा कच्चा, शब्दयुक्त, और शागदार मल बार २ निकलता है, तथा रोगी के खांसी और श्वास भी उत्पन्न हो आते हैं।

पित्तिक ग्रहणी का हेतु ।

कृद्वर्जीर्णचिदाह्नम्लसाराद्यैः पित्तमुत्क्षेपम् । अधिमाप्लावयद्वन्तिजलंतसमि-
वानलम् ॥

अर्थ—विदग्ध आहारसे मूर्च्छित होकर जब दोष ग्रहणीका आश्रय लेते हैं तब वि-
ष्टम्भता, डालास्त्राय, आर्त्ति, विदाह, अरुचि,
भारापन और आमके लक्षण दिखाई देने
लगते हैं । उस समय सुहाता हुआ गरम
जल, मेनफलका क्वाथ वा पीपल और सरसों
का कल्क देकर वमन करा देंगे ॥ तथा जो
पक्वाशय में लीन होजाय तो संदीपन औ-
पथोंके प्रयोगसे आमको निकाल डालें ।

शरीरानुगतसामेरसेलघनपाचनम् ॥ वि-
शुद्धामाशयायास्मैपञ्चकोलादिभिर्युतम् ।
दद्यात्पेयादिलघ्वन्नपुनर्यागांश्चदीपनान् ।

अर्थ—जब आम रस शरीरमें फैलजाय
तब लघन पाचन औपथियों का प्रयोगकरे
इसतरह आमाशयके विशुद्ध होनेपर पंच
कोलादि मिश्रित पेयादि लघु अन्न तथा सं-
दीपन योगोंका प्रयोग करे ।

ज्ञात्वात्पारिपक्वाममारुतग्रहणीगदम् । दी-
पनीयपुतंसर्पिःपाययेत्ताल्पशोपिक् ॥ कि-
ञ्चित्सन्धुक्षितत्वग्रौसक्त विष्णुवमारुत
म् । द्वित्रीण्यहानिसस्नेहस्नेहाभ्यक्तानिरू-
हयेत् ॥ ततःपरण्डतैलेनसर्पिपातैलकेन
वा । तस्यारेणानिलेशान्तेस्त्रस्तदोषविरे-
चयेत् ॥ शुद्धरूक्षाशयंत्रद्वयर्चसञ्चानु-
धासयेत् । दीपनीयाम्बुवातघ्नसिद्धतै-
लेनमात्राया ॥ निरुद्धथविरिक्तश्चसम्य-
वचनानुवासितः । लघ्वन्नपतिसम्भुक्तः
सर्पिरेवाचरेत्पुनः ॥

अर्थ—जानक ग्रहणी रोगमें आमकी प-
रिपक्वता जान पड़े तो दीपनीय औपथि-

यों से सिद्ध किया हुआ घृत थोड़ा थोड़ा
देवै । इससे अग्नि के कुछ बढने पर जब
विष्टा, मूत्र और अधोवायुकी विवद्धता दि-
खाई देवै तो दो तीन दिनतक स्नेहन कर्म
और अम्यक्त करने के पश्चात् निरूहण
वस्ति देवै । इस तरह दोषों के शिथिल
होनेपर तथा वादीके शान्त होनेपर क्षार
युक्त अंडीका तेल वा विरेचन औपथियों
द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत वा तेल देकर
विरेचन करावै । इसतरह संशोधन औपथों
के प्रयोग से पक्वाशयके रूक्ष होनेपर विष्टा
की विवन्धतामें दीपनीय औपथों का काथ
वा वातनाशक औपथियों से सिद्धकिये हुए
तेल द्वारा अनुवासनवस्ति देवै । इसतरह
अच्छी प्रकार से निरूहण, विरेचन और
अनुवासन होने के पश्चात् लघु अन्न का
भोजन कराके नाचि लिखे हुए घृतों का
सेवन करावै ।

द्विपंचमूलादि घृत ।

द्वेपञ्चमूलसरलंदेवदारुसनागरम् । पिप्प-
लीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् ॥
शणवीजंयवान्कोलान्कुलत्थान्मुरभी-
स्तथा । पाचयेदारुनालेनदध्नासौवीर-
केणवा ॥ चतुर्भागावशेषेणपचेत्तेनघृ-
तादकम् । स्वर्जिकायावशुकारुयौक्षारौ
दत्वाचयुक्तितः ॥ सैन्धवोद्भिदसाशुद्र
विहानारोमकस्यच । ससौर्वचलपावया
नांभागान्द्विपलिकानपृथक् ॥ विनीय
चूर्णितानसिद्धात्ततोद्वेद्रेपलोपिवेत् । करो
त्यग्निबलवर्ण्यवातघ्नंभुक्तपाचनम् ॥

अर्थ—दोनों पंचमूल, सरला, देवदारु, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चींता; गजपीपल सन के बीज, जी, बेर, कुलथी और सुरभी इन सबको समान भाग लेकर चौगुनी, फांजी, दही या सौवीरके साथ पकावै, जब चतुर्थांश शेष रहजाय तब उतारकर छान ले, फिर उसमें सज्जी, जवाखार, सेंधा, उद्दिद, सामुद्र, विड, रोमक, सौवर्चल और पाक्य ये सात प्रकारके नमक सबको दो २ पल डाले और एक आठक घृत डालकर पकावै । यह घृत प्रति दिन दोपल सेवन करनेसे अग्नि, बल, और वर्णकों बढ़ाताहै, मादी को मारता, और भोजनको पचाताहै, ।

त्र्युपणादि घृत ।

त्र्युपणात्रिफलाकल्फेविल्वमात्रेगुडात्पले ।
सर्पिपोऽष्टपलंपयत्त्वामात्रामन्दानिलःपि-
बेत् ॥

अर्थ—त्रिकुटा और त्रिफला का कल्क एकएक पल, गुड एकपल, घी आठ पल, और चौगुना जल डालकर पानकरै और मात्राको अनुसार सेवन करै तो मन्दाग्नि दूर होजाती है ॥

पंचमूलादि घृत और चूर्ण ।

पञ्चमूलाभयाव्योपविङ्गश्रुतिभिर्घृतम् ।
शुक्तेनमातुलङ्गस्यस्वरसेनार्द्रकस्यच ॥ शु-
ष्कमूलककोलाम्बुचुक्रिकादाडिमस्यच ।
तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुपोदकैः ॥
फाञ्जिकेनचतत्पकमाग्निदीप्तिकरंपरम् ।
शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम् ॥
सयीजपूरकरसंसिद्धंवापाययेदघृतम् ।

सिद्धमभ्यक्षनार्थञ्चतैलभेतैःप्रयोजयेत् ॥
एतेपामौषधानांवापिवेच्चूर्णसुखाम्बुना ।
वातेश्लेष्मावृतेसामेकफेवावायुनोद्धते ॥

अर्थ—पंचमूल, हरड, त्रिकुटा, वायवि-
डंग, कचूर, इन सबसे चौगुना घी, शुक्त, विजैरेका रस, अदरकका रस, पृथक् २ घी के समान लेंवै । सूखी मूली, बेर, नेत्र वाला, चूका, अनार इनका काथ घी के समान, तक्र घी के समान तथा मस्तु, सुरामंड, सौवीरक और तुपोदक ये सब घृत के समान लेकर पकावै । यह घृत अत्यन्त अग्नि को बढ़ानेवाला है तथा शूल, गुल्म उदररोग, श्वास, खांसी और वातकफ को दूर करताहै । अथवा सम्पूर्ण द्रव्यों का कल्क और केवल विजैरे के रसमें सिद्ध कियाहुआ घृत भी ऊपर कहे हुए गुण करताहै । उक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ तेल मालिशमें लगावै । अथवा इन्हीं औषधों का चूर्ण गरम जलके साथ पीवै । इससे कफाघृत वात, आमयुक्त कफ या वात कफ दूर होजाते हैं ॥

मलपरीक्षा ॥

मज्जत्यामाद्गुरुत्वाद्विद्रूपकात्तृप्यवतेजले ।
विनातिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्ममदूपणात् ॥
परीक्ष्यैवंपुरासामंनिरामंवासदोषिणाम् ।
विधिनोपाचरेत्सम्यक्पाचनेनेतरेणवा ॥
अर्थ—कच्चा मल भारी होने के कारण जल में डूबजाता है, पक विष्टा जलके ऊपर तैरता रहता है, परन्तु पकाहुआ मलभी अत्यन्त पतला, गाढा, अत्यन्त शीतलता

युक्त वा श्लेष्मासे दूषित होने के कारण
द्वयजाताहै । इसतरह रोगियों की आम
सहित और आमरहित मलकी परीक्षाकरै,
तथा विधिपूर्वक पाचन और दीपन औषधियों
द्वारा चिकित्सा करै ॥

चित्रकादि चूर्ण ॥

चित्रकांपिप्पलीमूलद्रौक्षारौलवणानिच ।
घ्योपंहिग्वजमोदञ्चचन्यचैकत्रचूर्णयेत् ॥
गुडिकामातुल्यस्यदाडिमस्यरसेनचा ।
कृताविपाचयन्त्यामन्दीपयन्त्याशुचान-
लम् ॥

अर्थ—चीता, पीपलामूल, दोनों क्षार,
पाँचों नमक, त्रिकुटा, हींग, अजमोद और
चव्य इन सबको विजैरे वा अनार के रस
में खरल करके गोली बनालेवै । ये गोलियाँ
आमको पचाती हैं और आग्नि को प्रदीप्त
करती हैं ।

अन्यप्रयोग ।

नागरातिविषामुस्तकायःस्यादामपाचनः
मुस्तान्तकल्कः पथ्यावानागरंचोष्णवा
रिणा ॥ देवदारुवचामुस्तनागरातिवि
षामयाः । वारुण्यामामुतास्तोयेकोष्णे
वालव्रणंपिचेत् ॥

अर्थ—सोंठ, अतास और मोथेकाफाय
आमको पचाताहै । अथवा इन्हीं तीनोंद्रव्यों
का चूर्ण, अथवा हरड अथवा सोंठ को
गरम जलके साथ फाँकेने से आम पचजा-
ता है । अथवा देवदारु, वच, मोथा, सोंठ
अतास और हरड इनको वारुणी मद में
ढाँके जब इनका सार उसमें आजाय तब

छानकर पीले अथवा इन्हीं द्रव्यों के चूर्ण
को संधानमक मिलाकर गुनगुने जलके
साथ पीवैतो आम पचजाता है ॥

पिवेत्सपरिकर्चामेलेवादाडिमाभ्युना ।
विडेनलवणंपिष्ट्वाविल्वंचित्रकनागरम् ॥
सामेवासकफेवातेकोष्टशूलकरेपिवेत् ।
कलिङ्गहिंवातिविपावचासौवर्चलाभयाः
छर्द्यशोप्रन्थिशूलेपुपिवेदुष्णेनवारिणा ।
पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णगरिचसंयुतम् ।
अभयांपिप्पलीमूलवचांकडुकरोहिणीम्
पाठांयत्सकवीजानिचित्रकांविश्वभेपजम्
पिवेन्निकाध्यचूर्णानिकृत्वावाकोष्णेनवा-
रिणा । पिचदश्लेष्मादृतेवातेग्रहण्यामरु-
चातथा ।

अर्थ—जो आम और पेटाहो तो बेल-
गिरी, चीता और सोंठ तथा विडनमक
डालकर अनार के कोंथ के साथ पीवै ।
कफयुक्त आम और वातज कोष्ठशूलमें इन्द्र-
जी, हींग, अतास, वच, इनके चूर्ण को
गरम जलके साथ पीवै । अथवा बमन, अर्श
रोग, प्रन्थिशूलमें हरड, संचरनमक जीरा
और कालीमिरच का चूर्ण गरम जल के
साथ पीवै । अथवा हरड, पीपलामूल, वच
कुटकी, पाठा, इन्द्रजी, चीता और सोंठ
इनका व्वाथ करके पीवै, अथवा इनका चूर्ण
गरम जलके साथ फाँके तो कफ, पित्त और
वातकी ग्रहणी और अरुचि दूर होजाती है
सामेसातिविषांघ्योपलवणक्षारंहिगुवत्
निःकाध्यपाचयेच्चूर्णकृत्वावाकोष्णवा-
रिणा । पिप्पलीनागरंपाठांशारिवांष्टह

तीद्वयम् ॥ चित्रकंकौटजवीजलवणान्य
थपञ्चच । तच्चूर्णसयवक्षारंदध्युष्णाम्बु
सुरादिभिः ॥ पिवेदग्निवृद्ध्यर्थकोष्ठवा
तहरंनरः ।

अर्थ—आमयुक्त पित्त श्लेष्मावृत ग्रहणी
में अतीस त्रिकुटा, नमक, क्षार, और हींग
इनका कथाथ करके वा चूर्ण बनाकर गरम
जलके साथ पीवै ! अथवा पीपल, पाठा
शारिका, दोनोंकटेरी, चीता, कडा, के बीज
पाँचों नमक और जवाखार इनका चूर्ण ब-
नाकर दही, गरम जल वा सुराके साथ
सेवन करै तौ आग्निकी वृद्धि होती है और
कोष्ठगतवायु दूर होजाती है ।

मरिचादि चूर्ण ।

मरिचःकुञ्चिकाम्बप्रावृक्षाम्लकुडवाः
पृथक् ॥ पलानिदशचाम्लस्येवेतसस्य
पलाद्धिकम् । सौवर्चलीवडम्पावयंयव
क्षारःससैन्धवः ॥ शटीपुष्करमूलानिहिं
एहिगुशिवाटिका । तत्सर्वमेकतःसूक्ष्मं
चूर्णकृत्याप्रयोजयेत् ॥ हितंवाताभिभूता
यांग्रहण्यामरुचौतथा ॥

अर्थ—कालीमिरच, कालाजीरा, पाठ,
वृक्षाम्ल इनको एक २ कुडब ले । अमल-
वेत दसपल, तथा संचलनमक, विडनमक
पात्रयनमक, जवाखार, सैधानमक, कचूर,
पुहकरनूल, हींग और हिंगुपत्री ये सब आधे
आधे पल लेकर चूर्ण बना लेवै । यह चूर्ण
वाताभिभूत ग्रहणी और अरुचि में हितहै ।
चतुर्णांप्रस्थमल्लानांत्र्यूपणाचपलत्रयम् ॥
लवणानांचवत्वारिशंकरायाःपलाएकम् ॥

संचूर्णशाकंसूपान्नरागादिष्ववचारयेत् ॥
कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डूवामयगु-
ल्मनुत् ।

अर्थ—चारों प्रकारकी खटाई एक प्रस्थ
त्रिकुटा तीनपल, चार प्रकारके लवण चार
पल, शंकरा आठपल इनका चूर्ण बनाकर
साग, दाल, तथा रागादि में डालकर सेवन
करता रहै तौ खांसी, अजीर्ण, अरुचि, स्वा-
स, पाण्डुरोग और गुल्म दूर होजातेहैं ।

यवागू विधि ।

चन्यत्वकूपिप्पलीमूलधातकीव्योपचित्र
कम् ॥ कपित्थंविष्वमम्वष्टांशालमलंह-
स्तिपिप्पलीम् ॥ शिलोद्भेदंतथाजाजौपि
एवावदरभागिकम् । परिभर्ज्यघृतेदध्ना
यवागूंसाथयेद्विपक् ॥ रसैःकपित्थचुम्बी
कावृक्षाम्लैर्दाडिमस्यच । सर्वातिसारम
न्दाग्निगुल्मार्शःप्लीहनाशिनी ॥

अर्थ—चन्य, दालचीनी, पीपलामूल, धाय
के फूल, त्रिकुटा, चीता, कैथ, बेलगिरी,
पाठा, सेमर, गजपीपल, शिलोद्भेद, काला-
जीरा ये सब एक २ तोले लेकर पीसडाले ।
फिर दही, वा कैथ, वा चूका, वा वृक्षाम्ल,
वा अनारके रस के साथ यवागू तयार कर
के घृत में छोंक कर सेवन करै तौ सर्वा-
तिसार, मन्दाग्नि, गुल्म, अर्श और ग्रीहां दूर
होजाते हैं ।

भोजनादि विधि ।

पञ्चकोलकयूपश्चमूलकानांचसोपणः ।
स्निग्धोदाडिमतक्राम्लोजाङ्गलःसंस्कृतो
रसः ॥ क्रव्यादस्वरसःशस्तोभोजनायै-

सदीपनः । तक्रारनालभयानिपानार्थेरि-
ष्टएवच ॥

अर्थ....पंचकोल के साथ सिद्ध किया हुआ मूंग का यूप, सूखी मूली का यूप, अनार वा तक्रकी खटाई डालकर सिद्ध किया हुआ जांगल पशुओं का मांसरस, अथवा मांसाहारीजीवों का मांसरस, भोजन में हित है और मठा, कांजी वा मय पीने में हित है तक्रके गुण ।

तक्रानुग्रहणीदोषदीपनग्राहिलाघवात् ।
श्रेष्ठमधुरपाकित्वान्नचपित्तप्रकोपयेत् ॥
कपायोष्णाथेकासित्वाद्रौक्ष्याच्चैवकफमेत-
म् । वातेस्वाद्मलसान्द्रत्वात्सद्यस्कामाविदा-
हित् ॥ तस्मात्तक्रमयोगाथेजठराणां-
थार्शिसाम् । विहिताग्रहणीदोषेसर्वशस्ता-
नुप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—दीपन; संग्राही और हलका होने के कारण तक्र गृहणी दोषों में हित है । गधुर पाकी होने से पित्त को कुपित नहीं करता है । यह कपाय, उष्ण, विकासी और रूक्ष होने से कफ में हितकारक है । य-
॥ स्थादु, अम्ल और सान्द्र है अतएव वात में हित है । ताना मठा अत्रिदाही होता है । इसी कारण से तक्रके जोजो प्रयोग जठर रोग और अर्शरोग में कहे गये हैं यमी महणी दोषमें प्रदास्त है ।

तक्रारिष्ट ।

यवात्प्यामलकेपथ्यामारिचं त्रिपलांशिकम् ।
लक्षणांनिपलांशानिपञ्चैवचूर्णयेत् ॥
तक्रसंसाधुतनातंतक्रारिष्टं पिवेन्नरः । द्वी

पनंशोथगुल्मार्शः क्रिमिमेदोदरापहम् ॥

अर्थ....अजवायन, आंवला, हरड, कांजीमिरच, प्रत्येक तीन-तीन पल; पांचों नमक एक एक पल इन सबका चूर्ण करके फिर इनको सोलह सेर मठे में भरकर तीन चार दिन तक रखवा रहने दें । इस तक्रारिष्ट का पान करने से शोथ, गुल्म, अर्श, क्रिमि रोग, मेदरोग, उदररोग, दूर हो जाते हैं और यह दीपनभी है ।

स्वस्थानगतमुत्कृष्टयग्निनिर्वापकंभिषक्-
पिचंज्ञात्वाविरेकेणानिर्हरेद्वमनेनवा ॥

अविदाहीभरन्नेश्चलघुभिस्तिक्तसंयुतैः ॥
जाङ्गलानारसैर्यूपैर्मूत्रादीनांखडैरपि-
दादिमालैःससर्पिष्कैर्दीपनग्राहिसंयुतैः ।
तस्याग्निदीपयच्चूर्णैःसार्धंनिर्वासतित्तकैः

अर्थ....अग्नि का बुझानेवाला पित्त जब अपने स्थान में हो तब विरेचन दें और यह उत्कृष्ट हो तब यमन द्वारा निकाल डाले । इस रोग में अविदाही, हलका, तिक्त औषधियों से संस्कृत भोजन, जांगलमांसरस मूंगकायूप, अनारदाने की खटाई, घृत तथा दीपन और संग्राही औषधियों से संस्कार किया हुआ खडयूप तथा दीपनाथ चूर्ण और तिक्तक घृत के प्रयोगों से जठराग्नि को उत्तेजित करना उचित है ।

चन्दनादिघृत ॥

चन्दनपत्रकोशीरं पाठांमूर्वाकुट्टनटम् ।
पद्मगन्धाशारिवास्फोतासप्तपणाटिरूपका-
न् ॥ पटोलोदुम्बराश्वत्थवटशुक्लकपीत-
नान् । कडुकारोहिण्यंमुस्तंनिम्बञ्चदि-

लांशिकम् ॥ द्रोणेऽपांसाधयेत्पादशेषे.
प्रस्थघृतात्पचेत्किराततित्केन्द्रयत्रवरा
मागधिकोत्पलैः ॥ कल्कैरक्षसमैःपेयंत-
त्पित्तग्रहणीगदे । तित्ककंयद्घृतंचोक्तं-
कौष्ठिकेत्तच्चदापयेत् ॥

अर्थ—... चन्दन, पद्माक्ष, उसीर, पाठा, मरो
डफली, फेद्यटीमोथा, वच, सारिवा, भास्फोता
सप्तपर्ण, आमडा, परवल गूलर, पीपल, बड, पा
कर, अडूसा; कुटकी, मोथा, नमि, इनमें
से प्रत्येक द्रव्य दो २ पल लेकर एकद्रोण
जल में सिद्ध करै जब चौथाई शेषरहजाय
तब उतारकर छानले और उसमें एकप्रस्थ
घा डालकर पकावै और इसमें साथ ही
चिरायता, इन्द्रजौ, शालिपर्णी, पीपल,
और नीलकमल इन सबका एक २ तोले
कल्क डाल देवै । इस घृतके पान करने
से पित्तग्रहणी दूर होजाती है तथा कुष्ठरोग
में जो तित्कक घृत वर्णन किया गया है
वह भी हित है ॥

नागराद्यचूर्ण ॥

नागरात्त्रिपेष्टुस्तंथातर्कासरसाञ्जनम् ।
वत्सकत्वक्फलंयिल्वंपाठांकटुकरोहिणी-
म् । पित्त्रसमांशतच्चूर्णसंज्ञाद्रंतण्डुलाम्बु
ना ॥ पैचिकेग्रहणीदोषेरक्तंयच्चोपये
श्यते ॥ अर्शासिचमुदेशूलंजयेच्चैवप्रवा
हिकाम् । नागाराद्यमिदंचूर्णकृष्णात्रेयेन
पूजितम् ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस, मोथा, धायकेफूल,
रसौत, कुडाकीछाल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पा-
कुटकी इनसबको समानभागलेकरचूर्ण बना

वै इस चूर्णको शहत और तंदुलजलके सा-
थ पीवै इससे पित्तज ग्रहणीदोष, रक्त रोग,
अर्श गुदशूल और प्रवाहिका दूर होजाती है ।
इस नागराद्य चूर्ण की कृष्णात्रेयेने बडी प्र-
शंसाकी है ॥

भूजिवाद्यचूर्ण ॥

भूनिम्बकटुकक्योपंमुस्तमिन्द्रयवान्समा
न् । द्रौचित्रकाद्वत्सकत्वग्भागान्पोडश
चूर्णयेत् ॥ गुडशीताम्युपीतंतद्ग्रहणीदो-
पगुल्मनुत् । कामलाज्वरपाण्डुन्वमेहार-
च्यतिसारनुत् ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, मोथा,
इन्द्रजौ, ये सब समान भाग लैवै । चीता
दोभाग, कुडाकी छाल सोलहभाग, इनसब
का चूर्ण बनाकर गुड और ठंडे जलके
साथ पानकरै तो ग्रहणी दोष, गुल्म, कां
मला, ज्वर, पांडुरोग, मेह, अरुचि और
अतिसार दूर होजाता है ॥

वचाद्यचूर्ण ॥

वचामतिविपांपाठांसप्तपर्णरसाञ्जनम् ।
श्योनाकोदीच्यकट्वक्वत्सकत्वग्दुराल
भाः ॥ दार्वापपटंकंमूर्वायचानंमिधुशिष्ट
कम् । पटोलपत्रंसिद्धार्थान्पृथिकञ्जा
तिपल्लवान् ॥ जाम्बाम्रविल्वमध्यानि
निम्बपत्रफलानिच । तद्रोगशममन्विच्छ
न्भूनिम्बाद्येनयोजयेत् ॥

अर्थ—वच, अतीस, पाठा, सप्तपर्ण, रसौत,
नेत्रवाला, श्योनाक, नेत्रवाला, सोनापाठा, कुडा-
कीछाल, जवासा, दारुहलदी, पित्तपापडा, मरोड-
फली, अजवायन, सहजना, परवलकेपत्ते, सपेट

विपाचयेत्। द्रोणशेषेतुत्च्छीतमध्वर्धाढक
संयुतम् ॥ एलामृणालागुरुभिश्चन्दनेन
चरुपिते ॥ कुम्भेमासस्थितेजातमासव
न्तंप्रयोजयेत् ॥ ग्रहणीदीपयत्येपहृहणः
कफपित्तजित् । शोपंकुण्डकिलासञ्जममे-
हांश्चमणाशयेत् ॥

अर्थ—महुआके फूल एक द्रोण, वायवि
डंग आधा द्रोण, चीता चौथाई द्रोण मिलाया
एक आढक, मजीठ आधापल इन सबको ती
न द्रोण जलमें पकावे जब एक द्रोण शेष
रहजाय तब उतारकर छानले उसमें ठंडा
होने पर आधा आढक मधु मिलादेवै । फि
र इसको एक घीकी चिकनी हांडीमें भर
देवै जिसके भीतर इलायची, कमलनाल
अगर और रक्तचन्दनका कल्क पुत रहा
हो । इस घडेको एक महीने तक बन्द
रहने दे । जब यह उठ आवे अर्थात् आसव
बनजाय तब इसका प्रयोग करै । यह
आसव ग्रहणी को दस्त करने वाला है;
हृहणकर्ता, कफपित्त नाशक, शोष, कोद
किलास और प्रमेह को दूर करता है ॥

दूसरा मध्वासव ।

मधुकपुष्पस्वरसंशृतमर्द्धक्षयीकृतम् ।
शोद्रपादयुतंशीतपुर्वयत्सन्निधापयेत् । तं
पिवन्ग्रहणीदोपान्जयेत्सर्वान्निहिताशनः
तद्द्राक्षेक्षुर्जूरस्वरसानामुतान्पिबेत् ॥

अर्थ—महुआके फूलों के रसको औटा
कर आधा रहने पर उतार ले और ठंडा
होने पर चौथाई शहत डालकर पाहिले की
एक मास तक धरा रहने देवै । यदि

हिताहार सेवी मनुष्य इसका पान करै तो
ग्रहणी रोग से मुक्त होजाता है ।

इसीतरह दाख, ईख का रस और ख-
जूर का आसव पान करै ।

दुरालभासव ।

प्रस्थौदुरालभायाद्वीप्रस्थमामलकस्यचा ॥
मुष्टीचित्रकदन्त्याद्वैप्रत्यग्रंचाभयाशतम्
चतुर्द्रोणेऽम्भसपक्त्वासाकद्रोणावशोपि-
तम् । सगुडाद्विशतंपूतमधुनःकुडवायुतम्
तद्दक्षिण्यगोःपिप्पल्याःविडंगानांचचूणि-
तैः । कुडवैर्वृतकुम्भस्थंपक्षाज्जातंततःपि-
बेत् ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकुष्ठबीसर्पेम
हनुत् । स्वरवर्णकरदचैपगरपित्तकफापहः

अर्थ—दो प्रस्थ जवासा, दो प्रस्थ आंवला
चीता और दंती दो दो पल, गुठली निका
ली हुई सौ हरड, इन सबको चार द्रोण
जलमें पकावे, जब आधा शेष रहजाय तब
छानकर ठंडा होनेपर दोसौपल गुड, शहत
एक कुडव, प्रियंगु, एककुडव, पीपल एक
कुडव, वायविडंग एक कुडव, इन सबको
उसमें मिलाकर घी की चिकनी हांडी में
भरकर रखदे एक पखवारे पीछे इसका पा-
न करै तो ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग, अर्श,
कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, विपदोष, पित्त और
कफदूर होजातेहैं तथा स्वर और वर्णबढ़तेहैं ।

मूलासव ।

हरिद्रापञ्चमूलेद्वयीरकपभजीवकम् ॥ ए-
पापञ्चपलान्भामांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसःपचे-
त् ॥ द्रोणशेषरसेपूतगुडस्यद्विशतंभिषक्
चूर्णितान्कुडवाद्दाशान्प्रक्षिपेच्चसमाक्षि

कान् ॥ प्रियंगुमुस्तमञ्जिष्ठाविडंगमधुक
प्लवान् । रोधंशानरकंचैवमासार्द्धस्था
पयेत्ततः॥ एपमूलासवःसिद्धोदीपनोर-
क्तापित्तजित् ॥ आनाहकफहृद्रोगपाण्डु
रोगांगसादनुत् ॥

अर्थ—हलदी, दोनों पंचमूल, धीरक,
ऋषभक, जीवक, प्रत्येक पांच पांच पल
लेकर चार द्रोण जलमें पकावे, चौथाई शेष
रहने पर उतार कर छानले और ठंडा होने
पर दो सौ पल गुड तथा एक कुडव शहत
डालदे और प्रियंगु, मोथा, मजीठ, घायवि
डंग, मुल्हटी, केवटीमोथा, पठानीलोघ, ये
सब आधे आधे कुडव पीसकर डालदे एक
महीने पश्चात् इसका गेवन करै यह मूला-
सव अनुभूत और रक्तापित्त को जितने वाला
है, इससे आनाह, कफ, हृद्रोग, पाण्डुरोग
और अंगसाद दूर होजातेहैं ।

पिण्डासव ।

मास्त्रिकंपिप्पलीपिष्ट्वागुडमध्यांघ्रिभीतका
त् । उदकप्रस्थसंयुक्तंयवपल्लेनिधापयेत् ॥
तस्मात्सुजातात्तुपलंसलिलाञ्जलिसयुतप्र
पिवेत्पिण्डासवोद्यपरोगानीकविनाशनः
स्वस्थोप्येनापिवेन्मांसनरःसिद्धंरसायनम्
इत्येद्यपामनुत्पित्तोरोगाणायैप्रकीर्तितः॥

अर्थ—एक प्रस्थ पांपल, एक प्रस्थगुड,
एक प्रस्थ बहेडे का गूदा, एक प्रस्थ जल इन
सबको घीकी चिकनी हांडीमें भर कर जौके
ढेरमें गाड़ देवै । एक महीने पीछे जब यह
तयार होजाय तब इस में एक पल आध
सेर जलमें मिलाकर पान करै । यहपिण्डासव

रोग समूहों का नाश करनेवालाहै । यदि
इस सिद्ध रसायनका प्रयोग स्वस्थ पुरुषभी
एक महीने तक करे तौ उसके रोग होने ही
नहीं पाते हैं ।

मध्वरिष्ट

नवेपिप्पलीमध्वाक्तेकलशेऽगुरुधूपिते ॥
माध्वाढकंजलसमचूर्णानीमानिदापयेत् ॥
कुडवार्द्धविडंगानांपिप्पल्याःकुडवंतथा ।
चतुर्थांशास्ववस्रीर्याःकेशरमरिचानि
च ॥ त्वगेलापत्रकशटीक्रमुकांतविपातथा
हरण्वेलुकतेजोहापिप्पलीमूलाचित्रकान् ॥
कार्पिकास्तान्स्थितंमासमतऊर्ध्वंप्रयोजयेत्
मन्दंसन्दीपयत्यग्निं करोति विपमंसमम् ॥
हृत्पाण्डुग्रहणारोगकुष्ठाशःश्वयथुज्वरान
वातश्लेष्माभयाञ्चान्यानमध्वरिष्टोऽप्यपोर्हा

अर्थ—एक नवीन मिटी के घडे में अग
रका धुआं देकर पिसीहुई पांपल शहत मेंमिला
करउसके भीतर छेप करदे उस घडे में एक
आढक जल और एक आढक शहत भर
कर नीचे लिखे हुए द्रव्यों का चूर्ण भरदेवै
यथा घायविडंग आधाकुडव, पांपल एक कु-
डव, वशटोचन एकपल, तथा केसर, कांडी
मिरच दालचीनी, छोट्टी इलायची, तेजशत
कचूर, सुपारी, अतसि, हरेणु, एलुआ
चन्य, पांपलामूल, चीता, इनको एक एक
कर्प डालकर एक महीने तक धरा रहने दे
पीछे इसका प्रयोग करै । यह मन्दाग्नि को
सन्दीपन करता है विपमग्निको समान क
रता है, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी रोग, कोड
अर्श, सूजन, ज्वर, वात श्लेष्मिकरोग तथा

अन्यरोगों को भी दूर करता है ॥

पीपलामूलादिभयोग ॥

समूलांपिप्पलीक्षारौद्वौपञ्चलवणानिचौ ॥

मातुलुंगाभयारास्नाशटोमरिचनांगरम् ॥

कृत्वासमांशतच्चूर्णोपिवेतप्रातः सुखाम्बु

ना ॥ इलैम्पिकेग्रहणीदोषैवलवर्णाग्निव

र्द्धनम् । एतैरैवौषधैःसिद्धं सर्पिःपेयंसमा

स्तुते ॥ गौलिमिकेपट्पलप्रोक्तं भल्लातक

घृतञ्चयत् ॥

अर्थ—पांपलामूल, पांपल, सज्जीखार,

जवाखार, पाचौनमक, विजौरा, हरड, रास्ना

कचूर, कालामिरच, सोंठ, इन सबको समान

भाग लेकर चूर्ण बनावे, प्रतिदिन प्रातःकाल

गरमजलके साथ इसका सेवन करे तौ कफ

की ग्रहणी दूर होजाती है और बल, वर्ण

तथा आग्नि बढ़ती है । अथवा इन्ही

औषधियों से सिद्ध किया हुआ घी वातयुक्त

जलकी ग्रहणी में उत्तम होता है । गुल्म

रोग के प्रकरणमें कड़ाहुआ पट्पल घृत

और भल्लातक घृतभी इसरोग में हितहै ॥

क्षारघृत ।

स्वर्जिकाविड्कालोत्पलवर्णपवशुकजम्

समूलाकण्टकारीचचित्रकश्चेतिदाहयेत् ।

सप्तकृत्वः श्रुतस्यास्यक्षारस्यद्व्यादकेनतु

आदकंसर्पिणः पक्त्वापिवेदधिपिवर्द्धनम्

अर्थ—सज्जी, विड्मक, कालानमक,

जवाखार, सातला, फटेरी और चीता, इन

सबमें से पिछले तीनों की भस्म कर लैवे ।

इन को दो आदक जलमें घोलकर सात

बार छानले पांछे इनमें एक आदक घृत

ढालकर पकावे, यह घृत अग्निकी बढ़ाने

वाला होता है ॥

पिप्पलीमूलादिक्षार ॥

समूलांपिप्पलीपाठांचव्येन्द्रयवनागरम् ॥

चित्रकातिविपेहिगुश्वदंष्ट्रांकटुरोहिणीम् ॥

वर्चाचकार्पिकंपञ्चलवणानांपलानिचौ ॥

दध्नःप्रस्थद्वयेतैलसर्पिपोःकुडवद्रूपे ॥

चूर्णाकृतानिनिष्काध्यशनैरन्तर्गतेरसे ॥

अन्तर्धूमंततोदग्ध्राचूर्णकृत्वाघृताप्लुत-

म् । पिवेतपाणितलंतस्मिन्जीर्णैस्वान्म

धुराशनः ॥ वातश्लेष्मामपान्सर्वान्ह

न्याद्विपगरांशसः ॥

अर्थ—पीपलामूल, पांपल, पाठ, चव्य,

इन्द्रजौ, सोंठ, चीता, अर्तास, हांग, गो-

खरू, कुटकी, और वच इनमें से प्रत्येक

द्रव्य एक एक कर्प लैवे । पांचों नमक,

पांचपल, दही दो प्रस्थ, घी तेल् दो कुडव

इनको जो कुट करके काथ करे और

काथ का जल उसी में लीन होजाय । फिर

इसको एक हांडी में बन्द करके ऐसी रीति

जलावे कि धूआं बाहर न निकलने पावे ॥

इसमें से तोले भर चूर्ण घृतमें सातबार

सेवन करे ॥ औषध के पचने पर मधुर भो

जन करे ॥ यह वात हलैम्पिक रोग और

सम्पूर्ण प्रकार के विरोगों को फरताहै ॥

भल्लातकादि क्षार ।

भल्लातकांत्रिकटुकं त्रिफलालवणात्रिकम् ॥

अन्तर्धूमं द्विपलिकंगोपुरीपाग्निनादहेत्

सक्षारः सर्पिपापीतोभोज्योवाप्यचूर्णित-

तः ॥ घृत्पाण्डुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्त

शोपन्तु ॥

अर्थ—मिठाया, त्रिकुटा, त्रिफला, लवण त्रिक (सेंधा, संचर और विड) प्रत्येकदो दो पल लेकर गौंके गोबर की अग्नि में अन्तर्धूम रीतिसे जलावे ॥ इस क्षार को घृत में मिलाकर वा भोजन के साथ सेवन करे तो हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी दोष, गुल्म, उदावर्त और शोष दूर होजाते हैं ।

दुरालभादि क्षार ॥

दुरालभाकरञ्जौद्वौसप्तपर्णसवत्सकम् ॥
पद्मग्रन्थामदनंमूर्धापाठामारग्वयंतथा ॥
गोमूत्रेणसमांशानिच्छत्वाचूर्णानिदाहये
त् ॥ दग्ध्वाचर्तंपिवेत्क्षारंग्रहणीबलव
र्द्धनम् ॥

अर्थ—जवासा, दोनोंकंजा, सप्तपर्ण, इन्द्रजौ, वच, मेनफल, मरोडफली, पाठा और अमलतास इनको समान भाग लेकर खरल करे और फिर अन्तर्धूम रीति से जलाकर गोमूत्रके साथ इस क्षार को सेवन करे तो ग्रहणी के बलकी वृद्धि होती है ॥

भूनिम्ब्वदिक्षार ॥

भूनिम्बरोहिणीतिक्तापटोलनिम्बपर्पट
म् ॥ दहेन्माहिपमूत्रेणक्षारण्योऽग्निव
र्द्धनम् ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, पर्वल, नीम और पित्तपापडा इनको अन्तर्धूम रीतिसे जलाकर भैंसके मूत्रके साथ सेवन करे तो अग्नि बढती है ॥

हरिद्रादिक्षार ॥

द्वेहारिद्रेवचाकुष्ठांचित्रकः कटुरोहिणी ॥
सुस्तंचवस्तमूत्रेणासिद्धःक्षारोऽग्निवर्द्धनः

अर्थ—दोनों हल्दी, वच, कूट, चीता, कुटकी, मोथा, इनको अन्तर्धूम रीतिसे दग्ध करके बकरे के मूत्र के साथ सेवन करे तो अग्नि बढती है ॥

क्षार वाटिका ॥

चतुष्पलंमुधाकाण्डं त्रिपलं लवणत्रयात् ॥
वार्ताकीकुडंबचार्कादष्टौद्वेचित्रकात्पले ।
दग्धानि वार्ताकुरसेगुलिकाभोजनोत्तराः ॥
शुक्तंशुक्तंपचत्याशुकासंभ्रासार्शसांदि
ताः । विसृचिकामतिश्यायहृद्रोगशम
नाश्रताः ।

अर्थ....सेंहुड की टहनी चार पल, तीनों नमक तीन पल, वार्ताक एक कुडंब, आक की जड़ आठ पल, चीता दो पल, इनको अन्तर्धूम रीतिसे दग्ध करके वार्ताकुर रस में गोष्ठियां बनावे । भोजन करने से पीछे इनका सेवन करे तो कियाहुआ भोजन शीघ्र पचजाताहै तथा खांसी, ज्वासा, अर्श विसृचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग शान्त होजातेहैं ।

वत्सकादि क्षार ।

वत्सकातिविपेपाठांदुःस्पर्शीहिंशुचिप्रकम्
चूर्णकृत्यपलाशानांसारंमूत्रक्षुतेपचेत् ॥
आयसेभाजनेसान्द्रात्तस्मात्कोलेमुखाः
म्बुना । मयैर्वाग्रहणीदोपेशोथार्शःपाण्डु
मान्पिवेत् ॥

अर्थ—कुडाकी छाल, अतीस, पाठा, जवासा, हींग और चीता इनका चूर्ण करके गोमूत्र में छाने हुए ढाक के क्षार में लोहे की कटाई में पकावे गाढ़ा होनेपर उतार ले । इस में से एक तोले भर गरम जल वा-

हितम् । परीक्ष्यामंशररिस्यदीपनंस्नेहसं
युतम् ॥ दीपनं बहुपित्तस्य तिक्तं मधुरसंयु
तम् । बहुवातस्य सस्नेहलवणाम्लयुतां हि
तम् ॥ सन्धुक्षतियथावन्दिहरेपांविधि
वदिन्धनेः ॥

अर्थ—प्रहणीरोगियोंको जो जो आवास्थ
की क्रिया कर्तव्य हैं अब उनको सुनो ।
कफाधिक्य ग्रहणी में रुक्ष, संदीपन और
तिक्त औषधियों का काथ पान करके छार
टपकावै । जो कफाधिक्य में रोगी कृशहो तो
कभी रूक्षण और कभी स्नेह न कर्म करे । कफ
के क्षीणहोने पर स्नेहयुक्त दीपन औषधियों
का प्रयोग करे । पित्ताधिक्य में मधुरयुक्त
तिक्त औषधियों का प्रयोग करे । वाताधिक्य
में स्नेह, लवण और अम्लसंयुक्त दीपन औ
षधी देवै ॥ दीपनकर्त्ता औषधियों के सेवन
से जठराग्नि इस तरह प्रबल होजातीहै जैसे
ईंधन जलने से अग्नि ॥

स्नेहमेवपरंविद्याद्दुर्बलानलदीपनम् ।
नालंस्नेहसीमद्धस्यशमायान्नंसुगुर्वपि ॥
मंदाग्निरापिपक्कतपुरीषयोऽतिसार्यते ॥
दीपनपौषधैर्युक्तं शृतमात्रां पिवेत्तु सः ।
तयासमानः पवनः प्रसन्नो मार्गमास्थि
तः ॥ अग्नेः सर्वापचारित्वादाशुप्रक्रमते
बलम् । काठिन्याद्यः पुरीषन्तुकृच्छान्मु-
ष्चातिमानवः ॥ सशृतं लवणैर्युक्तं नरोऽन्ना-
वम्रहंपिबेत् ।

अर्थ—दुर्बल अग्निको बढ़ानेके निमित्त
शृत उच्यते होता है, जो अग्नि शृत से प्रदाप्त

होतीहै उसे भारी अन्न भी नहीं युष्मांसकता
है ॥ जो मन्दाग्निव्यक्ति पक्व पुरीषको
अत्यन्त निकालता है उसको उचित है कि
दीपनीय औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ घृत
मात्राके अनुसार पानकरे ॥ इसके पानकरने
से समान वायु प्रफुल्लित होकर अपने मार्ग
में स्थित रहती है तथा अग्निके पास रहने
से यह बल को शीघ्र बढ़ातीहै ॥ जिस रोगी
का मल फटा होकर कठिनता से निकलता
है उसे नमक मिलाकर अन्नके साथ घृत देवै ॥
रौक्ष्यानमन्देपिवेत्सर्पिस्तैलंवादीपनैर्युत
म् ॥ अतिस्नेहाद्युग्नेऽन्नौचूर्णारिष्टास
वाहिताः । भिन्नेगुदोपलेपात्तुमलेतैलसु-
रासवाः ॥ उदावाचात्तुमन्देऽन्नौचूर्णाः
स्नेहवस्तयः ॥ दोषवृद्ध्यात्तुमन्देऽन्नौचूर्णौ
दोषविधिंचरेत् ॥ व्याधिसुक्तस्यमन्देतु
सर्पिरेवाग्निदीपनम् । उपवासाच्चमन्दे
ऽन्नौयवागूभिःपिवेत्घृतम् । अन्नावप्रीडि
तेवालं दीपनं वृंहणंचतत् । दीर्घकालमसा
दात्तुत्तक्षीणकृशान्नरान् ॥ प्रसहानां
रसैः साम्लैः भोजयेत्पिशिताशिनाम् ।
लघुतीक्ष्णोष्णशोथित्वादीपयन्त्याशुतेऽ-
नलम् ॥ मांसोपचितमांसत्वात्तथाशुतर
वृहणाः ॥

अर्थ—रूक्षतासे अग्निके मन्द होने पर
दीपनीय औषधियोंसे युक्त घृत वा तैल का
पान करावै । जो अत्यन्त स्नेहपानसे मन्दाग्नि
बढ़े हो तो चूर्ण, अग्नि और आसवाका
सेवन करावै । गुदोपलेप से जो मल भिन्न
रोग्याहो तो तैल, सुरा और आसव देवै

येन्नरम् । भुक्तेऽनेलभतेशान्तिर्जीर्णमात्रे
प्रताम्यति । तृद्दयासदाहमूर्च्छाद्याव्या
धयोऽत्यग्निसम्भवाः ।

अर्थ—कफके क्षाण होनेपर पित्तत्रापुका
अनुगमन करके अत्यन्त कुपित होजाता है
और अपनी गरमासे अग्निस्थानमें जाकर
आग्निको अत्यन्त बलवान् करदेता है ॥
इसतरह रूक्ष देह में वायुसहित अग्नि बल
को पाकर अन्नको पराभव कर देतीहै और
अग्नी तीक्ष्णताके कारण अन्नको शीघ्रही
बार बार पचातीहै । इसतरह अन्न का
पाक करके रक्तादिधातुओं कामी पाक कर
देती है ॥ तदनन्तर रोगीको दुर्बलता, रोग
तथा मृत्यु पकड लेतीहै ॥ भोजन करतेही
कुछ शान्ति होजाती है और उसके पचते
ही फिर ताप होने लगताहै । इस अत्यग्नि
के कारण तृषा, श्वास, दाह, मूर्च्छा आदि
अनेक रोग होजातेहैं ॥

अत्यग्निर्ज्ञान्ति का उपाय ।

तमत्यग्निं गुरुस्निग्धस्वादुसान्द्रहिमस्थि
रैः ॥ अन्नपानैर्जयेच्छान्तिदीप्तमग्निमिवा
मृत्भिः ॥ मुहुर्मुहुर्जीर्णोऽपि भोज्यान्धस्यो
पहारयेत् । निरिन्धनोऽन्तरं लब्धापथैर्न
नविपादयेत् ॥

अर्थ—जैसे जलतीहुई अग्निको पानी
से बुझाते हैं वैसेही गुरु, स्निग्ध, मधुर, गाढ़
शीतल और कठोर पदार्थों का भोजन करा
के उस अत्यग्निको शान्त करै । बार बार
अजीर्ण होनेपर भी भोजन करताही, रहै,
क्योंकि इन्धनरूप भोजनके न मिलनेसे ऐसा

न होके अग्नि मनुष्यको मारदाले ॥

अत्यग्नि में भोजनादिक्रम ।

पायसंकुशरीरस्रग्धंपौष्टिकंगुडवैकृतम् ॥
अद्याधयौदकानूपपिपिशितानिभृतानिच ।
मत्स्यान्विशेषतः श्लक्ष्णान्स्थिरतोयचरां
स्तथा । आविकंसघृतं मांसमद्यादत्यग्नि
नाशनम् । यवाग्नसमधूच्छिष्टांघृतं वाधु
धितःपिवेत् । पयोवाशर्करासर्पिजीवनी
यौर्पधःमृतम् । फलानां तैलयोनिनामु
त्कुञ्चाश्चशर्कराः ॥ मार्दवंजनयत्यग्नेः
स्निग्धान्मांसरसांस्तथा । पिचेत्शान्तिाम्बु
नासर्पिर्मधूच्छिष्टेनयायुतम् ।

अर्थ—खीर, खिचडी, स्नेहयुक्त पेट्टिक
पदार्थ, गुडके पदार्थ, आँदकमांस, आनूप-
मांस, घृतके पदार्थ, विशेष करके बंधे हुए
जलकी मंछली, घृतघट भेडका मांस, अ-
त्यग्नि के दूर करने के लिये सेवन करै ।
अत्यन्त भूख लगनेपर मोम डालकर यथागू
अथवा घृतका पान करै अथवा दूधका पान
करै अथवा मिश्री घोलकर पीवे । अथवा
जीवनीय गणोक्त औषधियों के साथ सिद्ध
किया हुआ घृत पान करै । अथवा जिनसे
तेल बनताहै उन उत्कुंच फलोंको शर्करा
मिलाकर भक्षण करै । स्निग्ध मांसरसोंका
सेवन करनेसे अग्नि मृदु पडजातीहै । पिच-
ला हुआ मोम घृतमें मिलाकर पंचे ऊपर-
से ठंडा जल पीवे ॥

आनूपरससिद्धान्वात्रीन्रुनेर्हास्तैलवाजि
तान् । गोधूमचूर्णमथंवाव्यधायित्वाग्नि
रांपिवेत् ॥ पयसासम्भितञ्चापिपनाग्निः

स्नेहसंयुतम् । नारीस्तन्येनसंयुक्तांपित्रे
दौदुम्बरीत्वचम् ॥ आभ्यावापायसंसि
द्धमद्यादत्यग्निशान्तये । श्यामात्रिवृद्धि
पक्वापयोदद्याद्विरेचनम् ॥ असकृत्पि
त्तशान्त्यर्थपायसमातिभोजनम् । यत्कि
ञ्चित्मधुरमिधुंश्लेष्मलंगुरुभोजनम् । त
दत्यग्निहितसर्वशुक्त्वाप्रस्वपनंदिवा ॥
मेध्याभ्यन्नानियोत्यग्नावप्रशान्तःसमश्नु
ते । नर्तशिमित्तमाप्नोतिव्यसनंपुष्टिमति
सः ॥ कफेद्वेद्वेजितेपित्तमारुतेचानलः
समः । समधातोःपचत्यन्नंपुष्ट्यायुर्बलवृ
द्धये ॥

अर्थ—आनूप मांसरस में सिद्ध करके
तेल को छोड़कर तीन प्रकार के स्नेह
(घां, चर्बी, मज्जा) सेवन करे । अथवा
शिरा मोक्षण करके गेहूँ के चूनका मन्थ
देवे । दूधके साथ गेहूँके चूनका पाक कर
के गाढा करले और इसमें घी, चर्बी और
मज्जा डालकर सेवन करे, अथवा खी के
दूधके साथ गूलरकी छाल औटाकर पान
करे । अथवा खीका दूध या गूलर की छाल
के साथ खीर पकाकर सेवन करे इससे
अत्यग्नि शान्त होजाती है । अथवा श्यामा
निसोथ के साथ दुग्धकाकर विरेचन देवे।
पित्तकी शान्ति के निमित्त रोगी को खीर
का भोजन करावे । मिष्ट, मेध्य, और कफ-
कारी भोजन करके दिनमें सोना भी हित
है । जो निसप्रति मेध्य अन्नोका सेवन
करता रहता है उसके अत्यग्नि नहीं होने
पाती किन्तु पुष्टि होती है । कफके बढने

पर और वातपित्त के दूर होनेपर अग्नि
समान होजाती है और वह घातुओं को
समानता प्रतिपादन करके पुष्टि, आयु और
बलको बढ़ाती है ।

समश्न के लक्षण ॥

पथ्यापथ्यमिहैकत्रभुक्तंसमश्नंमतम् ।

अर्थ—पथ्य और अपथ्य भोजन को मि
लाकर करने का नाम समश्न है ॥

विपम भोजन के लक्षण ॥

विपमं बहुवालंपवाप्यमाप्नोति कालयोः ॥

अर्थ—न्यून वा अधिक, विना समय वा
समयके बीतनेपर जो भोजन कियाजाताहै
उसे विपम भोजन कहते हैं ॥

अध्यश्न के लक्षण ॥

भुक्तं पूर्वान्नशेषेतु पुनरध्ययनं मतम् । ग्रीष्य
प्येतानिमृत्युं वाधोरान्व्याधीन्सृजतिन्वा

अर्थ—पहिले भोजनके विना पचही जो
भोजन कियाजाताहै उसे अध्यश्न कहतेहैं
ये तीनों प्रकारके भोजन मृत्यु अथवा घोर
व्याधियों को उत्पन्न करते हैं ।

दिनके भोजनका वर्णन ॥

प्रातराशेत्यजीर्णेऽपिसायमाशोदुप्यति ॥

दिवाप्रबुध्यतोऽंकेणदृश्यंपुण्डरीकवत् ॥

तस्मिन्विबुद्धेस्रोतांसिःफुटत्वंयान्ति सर्व-

शः । व्यायामाश्चविचाराश्चविश्रित्वा

च्चचेतसः ॥ उत्क्रेदमपगच्छन्तिदिवाते

नास्यधावतः । अह्निनेष्वन्नमासिकम

न्यत्तेपुनदुप्यति ॥ अविदग्धश्चक्षीरेक्षी

रमन्प्रद्विमिश्रितम् ।

अर्थ—प्रातःकालके भोजनके विना पचे

भी जो सारकालमें भोजन किया जाताहै वह कुछ अवगुण नहीं करताहै क्योंकि दिन में मनुष्यका हृदय इसतरह विकसित रहता है जैसे सूर्यकी किरणों से कमल । उसके विकसित रहने से सम्पूर्ण स्रोतभी विकसित रहते हैं, तथा दिनमें मनुष्य कुछ न कुछ परिश्रम करता रहताहै, विचारताहै और चित्त भी इधर विधर चलता रहताहै इससे धातुओं में क्लेश नहीं होने पाताहै । अक्लिन्न धातुओं में दूसरा भोजन इसतरह अवगुण नहीं करताहै जैसे अविदग्ध दूधमें अन्य िलाया हुआ दूध विकृत नहीं होता है ।

रात्रिके भोजनका वर्णन ।

रात्रौतुहृदयेम्लानेसंवृत्तेष्वयनेषुच ॥

यान्तिफोपेचचिक्लेशंसंघृत्तेदहधातवः ।

क्लिष्वेव्यन्यदपकेपुतेष्व्यासिक्तमदुप्यति ॥

विदग्धेषुपयःस्वयत्पयस्तप्तेष्विवापितम्

नैशेष्वआहारजातेषुनापिपकेषुषुद्धिमान् ॥

तस्माद्व्यस्तसमश्रीयात्पालयिष्यन्वला

युपी ।

अर्थ—रात्रिमें हृदय मलिन रहता है, स्रोतः समूह अस्फुट रहते हैं, इसी तरह फोष्ट भी सम्भृत रहताहै और देहकी सम्पूर्ण धातु क्षिन्न रहती है, किन्तु धातुओंमें प्रथम भोजन के परिपक्व हुए बिना दूसरी बार भोजन करना ऐसा अवगुण कर्त्ता है जैसे जलें हुए तप्त दूधमें और दूधका मेल विशुद्ध होजाता है । अतएव रात्रिमें किये हुए आहारके बिना पचे पुनर्बार आहार करना निषिद्ध है । इसनियमसे भोजन करनेसे अग्नि और वायु का वृद्धि होती है ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

अन्तरग्निगुणादेह्यथाधारयतेचसः ॥

ययान्नपच्यतेर्याश्चयथाहारःकरोत्यपि ॥

येऽनयोर्वायुपुप्यन्तियावन्तोयेपन्नन्तिया

न् । रसादीनांक्रमोत्पत्तिर्मलानांतेभ्यश्च

वच ॥ तृष्णानामाशुकृद्धेतुर्धातुकालोद्भव

चक्रमः । रोगैकदेशकृद्धेतुरन्तराग्निर्यथा

धिकः । सन्दुप्यन्तिपथादुष्टोयानरोगा

नृजनयत्यपि । ग्रहणीयायथावच्चग्रहणीदो

पलक्षणम् । पूर्वरूपं पृथक्चैवव्यञ्जनस

चिकित्सितम् । चतुर्विधस्यनिर्दिष्टतथा

चावस्थिकीक्रिया ॥ जायतेचयथात्य-

ग्निर्यच्चतस्यचिकित्सितम् । उक्तयानि

इतस्सर्वग्रहणीदोषकेमुनिः ॥

अर्थ—इस ग्रहणी दोष चिकित्सित अध्यायमें भगवान् पुनर्वसुने अन्तर अग्नि के गुण, अन्तराग्नि द्वारा देह धारण की रीति, अन्न के परिपाक की विधि, आहार विधि, अग्निके भेद, अग्निसे पुष्ट होनेवाले द्रव्य, जिनको अग्नि पकाती है, रसादि धातुओंकी क्रमसे उत्पात्ति, धातुओं से मलकी उत्पात्त, तृष्णके शीघ्रकारी हेतु, धातुका कालोद्भव क्रम, अन्तराग्नि द्वारा रोगैक देश कारक हेतु, दुष्ट अन्तराग्नि के दूषित होने की विधि, दूषित अग्निसे उत्पन्न रोगों का वर्णन, ग्रहणी शब्दका अर्थ, ग्रहणीदोष के यथावत् लक्षण, चार प्रकार की ग्रहणी के पूर्वरूप, दोष भेदसे ग्रहणी के पृथक् २ लक्षण, चिकित्सा, आवास्थिकी क्रिया, अत्याग्नि का लक्षण, और उसकी शान्ति

के उपाय ये सब इस अध्याय में वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने गृहणी चिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

—*—

विंशोऽध्यायः ॥

अथातः पाण्डुरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः । इतिहस्माद्भगवान् आश्रयः ॥

अर्थ.... तदन्तर भगवान् आश्रय बोलेके अब हम यहां से पाण्डुरोग चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

पाण्डुरोग के भेद ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्चवातपित्तकफैस्त्रयः चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणान्मृदः ॥
अर्थ.... पाण्डुरोग पांच प्रकारका होता है, यथा वातिक, पैत्तिक, क्लौम्बिक, सन्निपातिक, और पांचवां मृद्वक्षणाद्भव ।

पाण्डुरोग की उत्पत्ति ।

दोषाः पित्तप्रधानास्तु यस्य कुप्यन्ति धातुषु शैथिल्यं तस्य धातूनां गौरवञ्चोपजायते ॥
ततो वर्णबलस्नेहाये चान्येऽप्योजसो गुणाः ब्रजन्ति क्षयमत्यर्थं दोषदूष्यप्रदूषणात् ।
सोऽल्पपरक्तोऽल्पमेदस्को निःसारः शैथिलेन्द्रियः । चैव पर्यमजते तस्य हेतुं शृणु सलक्षणम् ॥

अर्थ.... जब मनुष्यके पित्तप्रधान दोष धातुओं में कुपित होजाते हैं और उन के कोषके कारण धातुओं में शैथिलता और भार-

पन होता, तब दोषों से दूष्योंके दूषित होने से देह के वर्ण, बल, स्नेह तथा ओजधातु के अन्यगुण अत्यन्त क्षीण होजाते हैं और उस रोगी के रुधिर और मेदा कम रहजाते हैं तथा शरीर निःसार और इन्द्रियों शिथिल पडजाती है । उसकी देह का वर्ण भी विगड जाता है । अब उसरोग के हेतु और लक्षणों का वर्णन करते हैं ।

पाण्डुरोग के हेतु ।

साराश्ललवणात्सुष्णविरुद्धासात्म्यभोजनात् । निष्पावमापापिण्याकतिलतैलनिपेयणात् ॥ विदग्धेऽग्ने दिवास्वप्नाद्दद्यायामान्मैथुनाचथा । प्रतिकर्मात्तु वैपम्याद्देगानाञ्च विधारणात् ॥ कामाचिन्ताभयक्रोधशोकोपहतचेतसः । समुदर्णियथापि च हृदये समवस्थितम् ॥ वायुनाबलिनासितं स्रोतोभिर्दशभिः सृतम् । प्रपञ्चं केवलं देहं त्वद्मांसांस्तरमाश्रितम् ॥ प्रदूप्य कफवातासृक्त्वं द्मांसानि करोति तत् । वर्णान्हरितहारिद्रान्पाण्डून्वहुविधास्त्वचि ॥ सपाण्डुरोगइत्युक्तस्तस्यार्त्तमभविष्यतः ।

अर्थ.... खारे, खट्टेनमकीन, अत्यन्त उष्ण, विरुद्ध और असात्म्य भोजन के करने से; चोलाई, उरदं, खल, तिल और तेल के अत्यन्त सेवन से अन्नके विदग्ध होने से दिन में सोने से, अत्यन्त शारीरिक परिश्रमसे अत्यन्त मैथुन से; स्नेहनादि पंचकर्मों की विषमता से, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकने से; काम, चिन्ता, भय, क्रोध शो-

कादि से चितका परामत्र होने से, हृदय-स्थ पित्त, उदगीर्ण होजाता है तब वायु उसे अत्यन्त वेग से फेंकती है और यह दसों ध-मनियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलकर त्व-चा और मांस के बीच में स्थित होजाता-है तब कफ, वात, रुधिर, त्वचा और मांस को दूषित कर देता है तथा त्वचा में हरा, हलदीके समान पाण्डु तथा अनेक प्रकार के वर्णों को उत्पन्न करता है । इसी को पाण्डुरोग कहते हैं । अब इस रोग के पूर्-वर्णरूपका वर्णन करते हैं ।

पाण्डुरोग का पूर्वरूप ।

हृदयस्पन्दनरौक्ष्यस्वेदाभावःश्रमस्तथा ॥

अर्थ....हृदयका फडकना, रुक्षता, पसीने का अभाव तथा श्रम से पाण्डुरोग के पूर्व रूप हैं ॥

पाण्डुरोग के साधारण लक्षण ।

सम्भूतेऽस्मिन्भवेत्सर्वःकर्णक्ष्वेदोहतान-
लः । दुर्बलःसदनोन्निद्रश्रमभ्रमनिपीडितः-
गात्रशूलज्वरभ्यासगौरवाशुचिमान्तरः ।
मृदितैरिवगात्रैश्चपीडितोन्मथितैरिव ॥
शूनासिकूटोहरितःशीर्णलोमाहतप्रभः ।
कोपनःशिशिरद्वेषीनिद्रालुष्टीवनोऽल्पवा-
क्त्वापिण्डिकोद्वेष्टकट्यूरुपादरुक्सदनानिच-
भवन्त्यारोहणायासैर्विषेपश्चात्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—इस रोग के उत्पन्न होने पर कर्ण नाद, मन्दासि, दुर्बलता, अंगसाद, गतनि-द्रता, श्रम, भ्रम, गात्रशूल, ज्वर, श्वास, भा-रापन और अरुचि, होती है । सम्पूर्ण देह मृदित, पीडित और उन्माथित होजाता है

अक्षिकूट में सूजन, हरावर्ण, लोमों में शी-र्णता, कांति का नष्ट होना, स्वभावमें क्रुद्धता शरीर से द्वेष, निद्रालुता, लालसाय, वाक्-निग्रह, पिण्डियों में बाँघटे तथा चलने फि-रने से कसर. उरु और पतियों में वेदना औ-र शिथिलता उत्पन्न होती है । अब इस-रोग के विशेष लक्षणों को कहते हैं ॥

वातज पाण्डुरोग के लक्षण ।

आहारैरुपचारैश्चवातलैःकुपितोऽनिलः ।
जनयेत्कुष्णपाण्डुत्वतंधारुक्षारुणाङ्गताम्
अङ्गमदेरुजन्तोदङ्गम्पार्श्वशिरोरुजम् ।
शकुच्छोषास्यवैरस्यशोफानाह्वलक्षयान्
अर्थ—वातकर्त्ता आहार विहार के सेव-न से वायु कुपित होकर शरीर के वर्ण को काला, पीला, रुक्ष या लाल कर देती है तथा अंगमर्द, वेदना, तोद, कम्प, पार्श्व-वेदना, शिरोवेदना मलशोष, विरसता, शो-ष, आनाह तथा बलक्षयको उत्पन्न करती है ॥

पित्तजपाण्डुरोग के लक्षण ॥

पित्तलस्याचित्तपित्तपथोक्तैःस्वैःमकोपनैः
दूपयित्वाशुरक्तादीन्पाण्डुरोगायकल्पते ।
सपीतोहरिताभोवाञ्ज्वरदाहसमान्वितः ।
वृष्णामूर्च्छांपरीतस्तुपीतमूत्रशकृन्नरः ॥
स्वेदनःशीतकामश्चनचान्नमाभिनन्दति ॥
कटुकास्पोनचास्योष्णमुपशेतेऽम्लमेववा-
उद्गारोऽम्लोचिदाहश्चविदग्धेऽन्नेऽस्यजा-
यते ॥ दौर्गन्ध्यभिन्नवर्चस्वर्द्धौर्विलयंतम-
एवच ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका अपने कुपितकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से पित्त बढ़-

कर रक्तादि धातुओं को दूषित करके पाण्डुरोग को उत्पन्न करता है। पित्त जनित पाण्डुरोग में देहका वर्ण पीला अथवा हरा होजाता है। ज्वर, दाह, तृषा और मूर्च्छा इन से रोगी मूस्त होजाता है, उस के विष्टा और मूत्रका रंग पीला पड़जाता है, पसीना आता है, ठंडी वस्तु प्यारी लगती है, अन्नसे राचि हटजाती है, मुख में कड़वापन, उष्ण और खड़े पदार्थका अच्छा न लगना, खट्टी डकार, विदाह, अन्न की अपरिपक्वता, दुर्गन्धि, विष्टाका फटना और दुर्बलता ये बातें होती हैं तथा आंखोंके साम्हने अन्धकार छाजाता है ॥

कफजपाण्डुरोग के लक्षण ॥

बिद्वद्वैःश्लेष्मलैःश्लेष्मापाण्डुरोगंसपूर्ववत् करोतिगौरवंतन्द्राच्छर्दिश्वेतावभासताम् प्रसेकंलोमहर्षञ्चसादंमूर्च्छाभ्रमंक्लमम् ॥ श्वासकासौतथालस्यंअरुचिंवाक्स्वरग्रहम् ॥ शुक्लमूत्राक्षिवर्चस्त्वंकटुरक्षोष्णकासता ॥ श्वयधुंमधुरास्यत्वमितिपाण्ड्वा मयः कफात् ।

अर्थ—कफकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से कफ कुपित होकर कफज पाण्डुरोग उत्पन्न करता है, इससे देह में भारापन, तन्द्रा, वमन, शरीरमें सफेदाईकी शक, प्रसेक, लोमहर्षण, अंगसाद, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम, श्वास, खांसी, आलस्य, अराचि, वाक्ग्रह, स्वर भंग, मूत्र, नेत्र और विष्टामें सफेदाई तथा कड़वे, रूक्ष और उष्ण पदार्थोंपर मन चलना, ये सब कफज पाण्डु के लक्षण है.

सान्निपातिक पाण्डुरोग के लक्षण ॥
सर्वान्नसेविनःसर्वेदुष्टादोपस्त्रिदोपजम् ॥
त्रिलिङ्गसम्भ्रकुर्वन्तिपाण्डुरोगंसुदुः सहम्
अर्थ—त्रिदोपकर्त्ता अन्नोंके सेवन करने से तीनों दोष कुपित होकर सान्निपातिक पाण्डुरोग उत्पन्न करते हैं इस में तीनों दोषों के कुछ २ लक्षण पाये जाते हैं यह रोग बड़ा भयंकर होता है ॥

मृद्भक्षणजन्य पाण्डुरोग ॥

मृत्तिकादनशीलस्यक्लृप्तत्यन्यतमोमलः ॥
कपायामारुत्पित्तंमूत्रमधुराकफम् ।
कोपयेन्मृद्रसादींश्चरौक्ष्यात्भक्तं विरुज्येत् ॥ पूरयत्ययिपकैवस्रोतांसिनिरुणादि-
चाइन्द्रियाणां बलैतजओजोवीर्यनिहत्यच
पाण्डुरोगं करोत्याशुबलवर्णाग्निनाशनम् ॥
शून्यगण्डाक्षिकूटमूनाभिपादाग्रमेहनः ॥
क्रिमिकोष्ठोऽतिसार्येतमलंसासृक्फान्वितम्
अर्थ—मिट्टी खानेकी आदतसे तानों दोषोंमें से कोई सा दोष कुपित होजाता है। कसीली, मिट्टी वायुको, ऊपरा पित्त को और मधुर कफको विगाडदेती है ॥ मृत्तिका रूखी होनेके कारण रसरक्तादि धातुओंको कुपित करती है और भोजन को रूखा कर देती है। और पारिपाक को प्राप्त होनेके कारण स्रोतोंको पूरित करके रोक देती है तथा इन्द्रियोंके बल, तेज, ओज, और वीर्यको नष्ट करके बल, वर्ण, और अग्निके नाश करने वाले पाण्डुरोगको उत्पन्न करती है। इस रोगमें गडस्थल, आंखके कोये, मृकुटी नाभि, पावोंके अग्रभाग और

महेंद्रिय में सूजन उत्पन्न होजातीहै । रोगीके कोष्ठमें कीड़े पडजातेहैं, उसे दस्त बहुत आतेहैं तथा मलके साथ रुधिर और कफ निकलताहै ॥

असाध्य पाण्डुरोग के लक्षण॥

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नःखरीभूतोनसिध्यति
कालप्रकर्षाच्छूनानांयश्चपीतानिपश्याति।
घटाल्पविट्कंसकफंहरितयोऽतिसार्यते।
दीनःश्वेतास्तुदिग्धान्द्रच्छर्दिमूर्च्छातृपादितः
सनास्पमृक्षपाद्यश्चपाण्डुश्वेतस्वमाप्नु
यात् ॥ इतिपञ्चविधस्योक्तपाण्डुरोगस्य
लक्षणम् ॥

अर्थ—बहुत दिनका पुराना पाण्डुरोग जिससे देहमें खरदरापन होजाताहै वह असाध्य होताहै । जिसमें बहुत दिनका होनेके कारण सूजन होजाताहै और हरिद्वर्ण होताहै, जो रोगी दीन होजाता है, सब शरीर सफेद पडजाताहै, जो वमन, मूर्च्छा और तृपा से पीडित होताहै और जो पाण्डुरोगी रुधिर की क्षीणतासे सफेद होजाताहै । वह भी असाध्य होता है। इसतरह पांचों प्रकारके पाण्डुरोगीके लक्षण वर्णन कियेगयेहैं ॥

कामलारोग के लक्षण ॥

पाण्डुरोगीतृपोऽत्यर्थपित्तलानिनिपेवते
तस्पपित्तमसृक्पांसदग्ध्वारोगायकल्पते ।
हारिद्रेनेत्रःसभृशंहारिद्रत्वङ्गनखाननः।
रक्तपीतसङ्गमृत्रोभेकवर्णोहतेन्द्रियः।दाहा
विपाकदोषैल्यसदनाखचिकार्यतः।कामला
बहृपितैपाकोष्ठशासाश्रयामता ॥

अर्थ—जो पाण्डुरोगी पित्तकर्ता पदार्थों

का अत्यन्त सेवन करताहै, उसका पित्त रक्त और मांसको दूषित करके रोगको उत्पन्न करताहै । इसमें रोगीके नेत्र हलदी के समान पीले होजाते हैं तथा त्वचा नख और मुख हलदी के समान होजाते हैं। उसका विष्टा और मूत्र लाल और पीला पडजाताहै, उसके देह का वर्ण वर्षा के मेडक का सा होजाता है, इन्द्रियां हतशक्ति होजाती हैं, रोगी दाह, अग्निपाक, दुर्बलता अंगसाद और अरुचिसे कृश होजाता है, इसी को कामला रोग कहते हैं, इसमें पित्तकी अधिकता होती है, कोष्ठ और शाला इसके आश्रय स्थान होते हैं ।

कुम्भकामलाके लक्षण ।

कालान्तरात्खरीभूतात्कुच्छास्यात्कुम्भ
कामला ॥कृष्णपीतशकुन्मूत्रोभृशंशूनश्च
मानवः॥मंरक्ताक्षिमुखच्छर्दिर्विष्मूत्रोयश्च
ताम्यति । दाहारुचितृपानाहतन्द्रामोह
समन्वितः प्रणष्टाग्निविसंशथनिर्यात्याशु
कामली ॥ साध्यानाग्निमेरेपांतुभेपजंसं
प्रवक्ष्यते ॥

अर्थ....यही कामला रोग कालान्तर में खरता को प्राप्त करके कष्टसाध्य कुम्भकामला को उत्पन्न करताहै । इसमें विष्टा और मूत्र काले पीले पडजातेहैं, सूजन बहुत होजातीहै, इसमें आंख, मुख, वमन विष्टा और मूत्रका रंग लाल होजाता है, दाह, अरुचि, तृपा, आनाह, तन्द्रा और मोह उत्पन्न होते हैं, अग्निमंद पडजाती है, संश नष्ट होजाती है, यह कामलारोगी

शीघ्र मरजाता है । अब इनसे अतिरिक्त
साध्य रोगों की चिकित्सा का वर्णन करते हैं
पांडुरोग में चिकित्सा विधान ।

तत्र पाण्डवामयी स्निग्धस्तीक्ष्णरूध्वाजुलो
मिकैः ॥ संशोध्यो मृदाभिस्तिकैः कामली
तु विरेचनैः । ताभ्यां संशुद्धकायाभ्यां पथ्या
न्यन्नानि दापयेत् । शालयो यववगो धूमपुरा
णाः मूपसंस्कृताः । मुद्गाटकमसूरैश्च जात्र
लैश्च रसैर्हिताः ॥ यथादोषं विशिष्टञ्च तयो
भैषज्यमाचरेत् ।

अर्थ—इनमें से पाण्डुरोगी को स्निग्ध
और तिक्ष्ण यमन, विरेचन द्वारा संशोधन
देवै । कामलारोगी को मृदु और तिक्तविरे
चन देवै । जब इनसे देह शुद्ध होजाय
तब पथ्य अन्नोंका सेवन करावै, यथा पुरा
ने शालीचांबल, जौ, गेहूँ, मूँग, अडहर,
मसूर तथा जांगल मांसरसका सेवन हितहै ।
इम रोगमें जिस दोषकी अधिकता हो उसी
के अनुसार औषधियोंका प्रयोग हितकरहै ।

स्नेहनघृत ।

पञ्चगव्यं महातिक्तं कल्याणकमथापिवा ॥
स्नेहनार्थं घृतं दद्यात् कामलापाण्डुरोगिणे ॥
अर्थ—कामलारोगी तथा पाण्डुरोगियोंको
पंचगव्य, महातिक्तक और कल्याणकघृत
स्नेहन करने के लिये देवै ॥

दाडिमाघघृत ।

दाडिमात्कुडवोधान्यात्कुडवार्द्धपलंपलम्
चित्रकात्भृङ्गेवैराचचीपपल्याष्टमिकात्त
था । तैः कल्कैर्विंशतिपलंघृतस्यसलिला
दके ॥ सिद्धं घृतं पाण्डुरोगार्शः प्लीहवातक

फार्तिनुत् । दीपनंश्वासकासघ्नं मूढवा-
ते च शस्यते ॥ दुःखप्रसाविनीनां च वन्ध्या
नां चैव गर्भदम् ।

अर्थ—अनारकी छाल एक कुडव, धनिगं
आधा कुडव, चीता एकपल, अदरख एक
पल, पीपल, आधा पल, इनका कल्क बीस
पल घृत और एक आठक जलमें सिद्ध करै
यह हृद्रोग, पांडुरोग, अर्श, प्लीहा, वात
कफको दूर करताहै, यह दीपनहै, श्वास, का-
सको दूर करनेवालाहै । और मूढवात में
हितकारिहै ॥ जिन स्त्रियोंके बालक कष्ट
से होता है उनको सुखदाई है वन्ध्यास्त्रियों
को गर्भ देनेवालाहै ।

कटुकाद्यघृत ।

कटुकारोहिणीमुस्तं हार्द्रिवत्सकात्फलम् ॥
पटोलचन्दनं दूर्वात्रायमाणादुरालभा ।
कृष्णापर्पटको निम्बो भूनिम्बो देवदारुच ॥
तैः कार्ष्णिकं घृतमस्थः सिद्धः क्षीरचर्तुगुणः ।
रक्तपित्तज्वरं दाहश्वयं धुंस भगन्दरम् ॥
अर्शास्यसूक्ष्मं चैव हन्ति विस्फोटकास्तथा

अर्थ—कुटकी, मोथा, दोनों हलदी, इ-
द्रजौ, परबल, रक्तचन्दन, दूर्वा, त्रायमाणा
जवासा, पीपल, पित्तपापडा, नांभ, चिरायता
देवदारु, प्रत्येक एक २ कर्प, घी एक प्रस्थ,
दूध चार प्रस्थ इनको मिलाकर सिद्ध किया
हुआ घृत रक्तपित्त, ज्वर दाह, सूजन
भगन्दर, अर्श, रक्तप्रदर तथा विस्फोटक
रोगोंको दूर करता है ॥

पथ्याघृत ।

पथ्याशतरसेपथ्यावृत्तार्द्धतकल्कवान् ॥

द्रव्यों के साथ दूध को औटाकरपीये । इस से भी दोषोंका अनुलोमन होता है ।

अन्यप्रयोग ।

हरीतकीप्रयोगेणगोमूत्रेणाथवापिवत् ॥

जीर्णक्षीरेणभुञ्जीतरसेनमधुरेणवा ।

सप्तरात्रंमवांमूत्रभाविंत्वाप्ययोरजः ॥

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थपयसापांयत्तत्तच ।

अर्थ—गोमूत्र में भिगोई हुई हरड का गोमूत्रके साथ पानकरै, औषधके पचने पर दूधके साथ अथवा मधुर मांसरस के साथ भोजन करै, अथवा लोहचूर्णको सात दिन तक गोमूत्रकी भावना देकर दूध के साथ पान करै इससे पाण्डुरोग शान्त होजाताहै ॥

नवायस चूर्ण ।

द्रूपणात्रिफलामुस्तंविडङ्गचित्रकंसमा ॥

नवायोरजसोभागास्तच्चूर्णक्षौद्रसर्पिणा ।

भक्षयेत्पाण्डुद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम् ॥

नवायसमिदंचूर्णकृष्णात्रयेनभापितम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, वायविडंग और चीता ये सब समान भाग लेकर कूट ले तथा इन सबके समाण भाग लोह चूर्ण मिलाकर शहत और धीके साथ सेवन करै । इससे पाण्डुरोग, द्रोग, कुष्ठ, अर्श और कामला दूर होजाते हैं । यह नवायस नामक चूर्ण कृष्णात्रयेन कहा है ॥

गुडनागरमण्डूरतिलांशान्मानतःसमान् ।

पिप्पलीद्विगुणांकुर्यात्गुटिकांपाण्डुरो-

गिणे ॥

अर्थ—गुड, सोंठ, मंडूर और तिल चारों समान भाग, तथा पीपल ८ भाग इनकी

गोली बनाकर पाण्डुरोगी को देवे ।

मंडूरघटिका ।

त्रिफलाद्रूपणमुस्तांविडंगचव्यचित्रको ।

दावींत्वह्माक्षिकोधातुर्ग्रन्थिकोदेवदारु

च ॥ एतान्द्रिपलिकान्भागांश्चूर्णान्कु-

र्यात्पृथक्तथा । मण्डूरंद्रिगुणंचूर्णात्

शुद्धमज्जनसंभ्रम् ॥ मूत्रमष्टगुणंपक्त्वा

तस्मिस्तत्प्रक्षिपत्ततः । उदुम्बरसमान

कृत्वाघटकांस्तान्यथाग्निच ॥ उपयुञ्जी

तत्तक्रेणसात्स्यंजीर्णैश्चभोजनम् । मण्डूर

घटकाद्येतेप्राणदाःपाण्डुरोगिणाम् ॥ कु-

ष्टाण्यनीरकंशोधमूरुस्तम्भकफामयान्

अर्जासिकामलामेहंघृहीहानंशमयन्ति च ॥

अर्थ—त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, मोथा,

चव्य, चीता, दारुहलदी की छाल, सोना-

माखी, पीपलामूल और देवदारु इन में से

प्रत्येक द्रव्य दो दो पल लेकर जुदे जुदे

कूट डालै और इन सब से द्वादशगुना शुद्धअं-

जनके समानकाला मंडूर और मंडूरसे अठगुना

गोमूत्रलेकर प्रथम गोमूत्र और मंडूरको पकावै

जब पकने पर आजाय तब त्रिफलादि पूर्वो-

क्त चूर्ण डालकर गूलर के समान गोल्यां

बनावै। इनमें से अग्निबलके अनुसार प्रति दि-

न एक गोली मठे में घोलकर पान करै ।

तथा औषध के पचने पर सात्स्य भोजन

तत्र के साथ करै । इन मंडूर घटिकाओं का

सेवन करना पाण्डुरोगियों को प्राणदायक

है । कुष्ठ, अर्जा, शोध, ऊरुस्तम्भ, कफ

रोग, अर्श, कामला, मेह और घृहीहाभी इस

के सेवन से शान्त होजाते हैं ।

ताप्यादि चूर्ण ।

ताप्याद्रिजतुरूप्यायोमलाःपञ्चपलाःपृथक् । चित्रकत्रिफलाव्योपविदङ्गैःपालिकैःसह ॥ शर्कराष्टपलोन्मिश्राःचूर्णिता मधुनप्लुताः । अभ्यस्यास्त्वक्षमात्राहिजीर्णेनियमिताशिना ॥ कुलत्थकाकमाच्यादिकपोतपरिहारिणा ॥

अर्थ—सौनामाखी, शिलाजीत, रूपामखली, लोहमल, प्रत्येक पांच २ पल, चीता त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, प्रत्येक एक २ पल, शर्करा आठपल इन सबका चूर्ण कर के प्रतिदिन इस में से एक तोले लेकर श. हत के साथ चाटै । औषध के पचने पर नियमित भोजन करै तथा कुलथी मकोय और कपोतादिका परित्याग करदेवै ।

योगराज वटिका ॥

त्रिफलायास्त्रयोभागास्त्रयस्त्रिकदुकस्यच ॥ भागश्चित्रकमूलस्यविदङ्गानांतथैवच । पञ्चाशमजतुनाभागास्तथारूप्यमलस्यच । माक्षिकस्यचशुद्धस्यलोहस्थरजतस्यच । अष्टौभागाःसितायाश्चतत्सर्वसूक्ष्मचूर्णितम् ॥ माक्षिकेणाप्लुतंस्थाप्यमायसेभाजनशुभे । उदुम्बरसमांभात्राततःखादे. घथाग्निना ॥ दिनेदिनेप्रयुञ्जीतजीर्णेभोज्यंपदीपिसतम् । बर्जयित्वाकुलस्थानिकाकमाचीकपोतकम् ॥ योगराजइतिरूपातोयोगोऽयममृतोपमः । रसायनमिदंश्रेष्ठं सर्वरोगहरंशिवम् ॥ पाण्डुरोगांविपङ्कासंयक्ष्माणांविपमज्वरम् । कुष्ठान्यजीरकंमेहंशोषंश्वासमरोचकम् ॥ विशेषाद्दन्त्यपस्मारं कामलां गुदं जानिच ।

अर्थ—त्रिफला तीनभाग, त्रिकुटा तीन भाग, चीतेकी जड एक भाग, वायविडंग एक भाग, शिलाजीत पांचभाग, रौप्यमल पांच भाग, शुद्धकी हुई सौनामाखी पांच भाग, शुद्ध कियाहुआ लोहचूर्ण पांचभाग, मिश्री आठ भाग, इन सबको महीन पीसकर शहतमें मिलाकर लोहे के स्वच्छ पात्रमें भरदे । तत्पश्चात् अग्निबलके अनुसार तोलेभर प्रतिदिन सेवन करै । औषधके जीर्ण होनेपर प्रतिदिन इच्छानुसार भोजन करै । केवल कुलथी, मकोय और कपोत को परित्याग करदेवे । यह अमृतके समान योगराजयोग है । यह रसायन बहुतश्रेष्ठ सम्पूर्ण रोगोंका नाश करने वाला है, इस से पाण्डुरोग, विपरोग, खांसी, यक्ष्मा, विपमज्वर, कौढ, अजीर्ण, प्रमेह, शोष, श्वास अरुचि, दूर होजाते हैं, यह योग विशेष करके अपस्मार, कामला और अर्श रोग को दूर करताहै ॥

शिलाजतु वटिका ।

कौटजत्रिफलानिम्बपटोलघननागरः ॥ भावितानिदशाहानिरसैर्द्वित्रिगुणानिच । शिलाजतुपलान्यष्टौतावर्तानिसितशर्कराम् । त्वक्क्षीरीपिप्पलीघात्रीकर्कटाख्यापलोन्मिता । निदिग्ध्याःफलमूलाभ्यांपलंयुक्त्यात्रिगान्धिकम् ॥ चूर्णितंमधुरंकुर्यात्त्रिपलेनासिकान्गुडान् । दाडेभाम्बुपयःपक्षिरसतोपसुरासवान् ॥ भक्षयित्वापिबेच्चानुतान्निरेन्नोशुद्धस्रवा । पाण्डुकुष्ठज्वरप्रहीनमकाशोभमन्दरम् ।

पूतिवृच्छुक्रमूत्राग्निदोषशोषगरोदरम् ।
कासासृग्दरपित्तासृक्शोधगुल्मगरामया-
न् ॥ तैसर्वैविभ्रमानहन्त्युःसर्वरोगहराः-
शिवाः ॥

अर्थ....इन्द्रजौ, त्रिफला, नीम, परबल, मोथा, सोंठ, इन के क्याय में आठपल शिलाजीत को दश, बीस या तीस दिनतक भावना देवै । फिर यह शिलाजीत, इतनी ही मिश्री, तथा एक एक पल यंशलोचन, पीपल भांवल और काफडासींगी, फटेरी कौजड और उसके फल एक पल, त्रिगंध (इलायची तेजपात और दालचीनी) एक पल, इन सबका चूर्ण करके तीनपल शहत में सान-तोले २ भरकी गोली बनाये । भोजन कर के वा बिना भोजन कियेही इन गोलियोंका सेवन करै और ऊपर से अनारका रस, दूध पक्षियों का मांस रस, जल, सुरा और आसय का पान करै । इसके सेवन करने से पांडुरोग, कुष्ठ, ज्वर, प्रीहा, तमक, अर्श, भगन्दर, शूतिरोग, हृद्रोग, शुक्ररोग, मूत्ररोग, अग्निदोष, शोषरोग, गरदोष, उदररोग, खांसी, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, शोथ, गुल्म तथा विपरोग दूर होजाते हैं । ये गोलियां सब प्रकारकी भ्रांति और सवप्रकारके रोगोंकी हरनेवाली बडी कल्याणकर्त्ता हैं

पुनर्नवादि प्रयोग ।

पुनर्नवात्रिवृद्धोपविटंगदारुचित्रकम् ।
कुष्ठहरिद्रेत्रिफलादन्तीचन्यकालिमकाः ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलंमुस्तश्चेतिपलोन्मितम्-
मण्डूरंदिगुणं चूर्णात्तगोमूत्रेद्युडकेपचत्रे ।

कोलवद्गुडिकाःकृत्वातकेणालोच्यताः
पिवेत् । ताःपाण्डुरोगान्प्रीहानमर्शासिबि-
पमज्वरम् । श्वयंशुग्रहणीदोषहन्त्युःकुष्ठं
क्रमोस्तथा ॥

अर्थ—सांठ, निसोथ, त्रिकुटा, वायविडंग, देवदारु, चीता, कूठ, दोनों हलदी, त्रिफला, दन्ती, चन्य, इन्द्रजौ, पीपल, पीपलामूल, मोथा ये सब एक एक पल लें, इन सब से दूना मंडूर मिलाकर चूर्ण बनालेवै और दो आडक गोमूत्रमें पकाकर घेरके बराबर गोली बनाकर तक्रमें घोलकर सेवन करै । इससे पांडुरोग, प्लीहा, अर्श, विपमज्वर, सूजन, प्रक्षेणादोष, कोठ और त्रिमिरोग नष्ट होजातेहैं ।

अबलेह प्रयोग ।

दार्वात्वकृत्रिफलाव्योपविटङ्गमयसोरजः
मधुसर्पियुतंलिङ्गाकामलापाण्डुरांगवान
तुल्याअयोरजःपथ्याहरिद्राःसौद्रसर्पिपा
चूर्णिताःकामलीलिङ्गातुगुडसौद्रेणवाभयम्
त्रिफलाद्वेहरिद्रेचकदुरोहिण्ययोरजः ॥
चूर्णितसौद्रसर्पिभ्यांसलेहःकामलापहः ।

अर्थ—कामला रोगी और पाण्डुरोगी दारुहलदीकीछाल, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, लोहचूर्ण इनको शहत और घांके साथ चाटै। लोहचूर्ण हरड और, हल्दी इनको समान भाग अथवा केवल हरड को गुड और शहत के साथ चाटनेसे कामला रोग नष्ट होताहै । त्रिफला, दोनों हलदी, कुटकी और लोहचूर्ण इनको घी और शहतके साथ चाटै तो कामलारोग जातारहताहै ॥

धात्र्यावलह ।

द्विपलाशन्तुगाक्षीरिनांगरंमधुघण्टिकाम्
मास्थिकीपिप्पलीद्राक्षांशकरार्द्धतुलांशु
माम् । धात्रीफलरसद्रोणसुपिण्डलेहवत्प
चेत् ॥ शीतांमधुमस्थयुतांलिह्यात्पाणि
तलंततः । हन्त्येपकामलापित्तपाण्डुका
संहलीमकम् ॥

अर्थ—वशलोचन दो पल, सोंठ, मुलहठी,
पीपल और दाख एक एक प्रस्थ, सफेद-
चीनी आधा तुला, इन सबको पीसकर एक
द्रोण आंवलेके रसमें पकावे, जब हेंहीसी
होजाय तब उतार ले और ठंड्मधीन्ने पर
एक प्रस्थ शहत मिलाकर संयोगी इसमें
से प्रतिदिन दोतोले सेवन करे । नामला,
पित्तोग, पांडुरोग, खांसी और यमभीमक
दूर होजातेहैं ॥

मंडूस्फुटिका ॥

व्यूषणंत्रिफलाचव्यंचित्रकोदेवदारुच ।
विडङ्गान्यथमुस्ताश्वत्सकंचेतिचूर्णयेत् ॥
मण्डूरतुल्यंतच्चूर्णंगोमूत्रेऽष्टगुणेपचेत् ॥श
नैःसिद्धास्तथाशीताःकार्याःकर्पसमागुडाः
यथाभिभक्षणीयास्तेऽप्लीहपाण्ड्वामयाप-
हाः । ब्रह्मपशोनुदःजीर्णतक्रवाथ्यशिनः
स्मृताः ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, चीता, देव
दारु, वायविडंग, मोथा और इन्द्रजौ इनसबका
चूर्ण बनावे इन सब के बराबर मंडूर लेकर
उत्तम अठगुने गोमूत्र में प्रथम मंडूर को
पकावे और फिर उसमें उक्त चूर्ण डाल
देवे फिर धीरे २ सेक कर उतारले और

ठंडा होनेपर एक एक कर्पकी गोळियां बनावे
और अग्निबलके अनुसार सेवन करे तो
प्लीहा, पांडुरोग प्रहणी और अर्शरोग दूर
होजते हैं । औषधके पचने पर तक्र और
यवमंड का सेवन करे ।

गुडारिष्ट ।

मञ्जिष्ठारजनीद्राक्षावलामूलान्ययोरजः
रोधूचैतेपुगोडःस्यादरिष्टःपाण्डुरोगिणांम्
अर्थ—मजीठ, हलदी, दाख, खरैटी की
जड़, लोहचूर्ण और लोध ये सब समान-
भाग लेकर चूर्ण करे तथा इस सबसे
चौगुना गुड़ और, गुड़ेसे चौगुना जल
मिलाकर सबको एक घीकी हाडीमें भर देवे।
यह गुडारिष्ट पांडुरोगियोंको हितहै ।

अन्य अरिष्ट ।

बीजकात्पोडशपलंलिफलायाश्चविंशतिः
द्राक्षायाःपञ्चलाक्षायाःसप्तद्रोणेजलस्यतत्
साध्यंपादावशेषेतुपूतशेषसमावपेत । श-
र्करायास्तुलांप्रस्थमाक्षिकस्यचकारापिकम् ।
व्योषंव्याघ्रनखोशीरंक्रमुफंसैलवालुकम् ।
मधुककुष्ठमित्येतच्चूर्णितंघृतभाजने॥य-
वेपुदशरात्रंतदप्रीप्मेद्भिःशिशिरेस्तितम् ।
पिवेत्तद्ब्रह्मणीपाण्डुरोगार्शकामलारु-
चीः ॥ मूत्रकृच्छ्रान्मरीकुठसन्निपातांश्च
नाशयेत् ।

अर्थ—विजौरा सोलहपल, त्रिफला, बीस
पत्र, दाख पांचपल, लाल सातपल, इनसब
को एक द्रोण जलमें पकावे, चौथाई शेष
रहनेपर उतारकर छानले । टंडा होने-
पर इसमें एक तुल्य अनेदचीनी, शहत
एक प्रस्थ, तथा त्रिकुटा, व्याघ्रनखी उशीर,

मुपारी, एलुआ, मुटहटा और कूट, प्रत्येक एक एक कर्प लेकर इनका चूर्ण बनाकर ऊपर कहद्वय काथमें मिलाकर एक चिकनी हांडी में भरदेवै । इसको श्रीपम्कतु में दस दिवस तक जोके ढेरमें गाढ़ देवै और सर्दी में बीस दिनतक दया रहने दे, फिर निकाल कर इसका सेवन करै । इससे प्रदणारोग, पांडुरोग, अर्श, कामला, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र अरुमरी, कोढ़ और सन्निपात दूर होजातेहै ।

घात्र्यारिष्ट ।

घात्रीफलसहस्रेद्वेपीडापित्वारसन्तुतम् ।
क्षौद्राष्टांशिनसंयुक्तकृष्णाद्भुङ्क्तेनच ॥
शर्करार्द्धतुलोन्मिश्रंपक्वस्निग्धघटोस्थितं ।
प्रपिचेत्प्रमात्रयाप्रातर्जौणमितहिताशनः ॥
कामलापाण्डुद्द्वोगयातासृग्बिषमज्वरा
नाकासहिक्कांशचैश्वासार्शेषोऽरिष्टः प्रणा
शयेत् ॥

अर्थ—दो सहस्र आंवलोंका मर्दनकर के रस निकाल लेंवै । इस रसका आठवां भाग शहत, आधा कुडव पीपल, शर्कराआधा तुला, इन को मिलाकर पकावै और एक चिकने घट्टेमें भरकर रखदे । इसमें से प्रति-दिन प्रातःकाल मात्रा के अनुसार सेवन करै और औषधके पचनेपर धोडा और पथ्य भोजन करै, इसके सेवन से कामला, पाण्डुरोग, इद्रोग, यातरक्त, विषम ज्वर, खांसी, श्वास हिचकी और अरुचि दूर होजातेहैं ।

स्थिरादिभिः शृतंतोयंपानाहारैर्मंशस्यते ।

पाण्डूनां कामलातानां मूढीकामलकरिसः ॥

अर्थ—पांडुरोगमें स्थिरादि औषधियों

से सिद्ध कियाहुआ जल वा आहार हित है तथा कामलारोगमें दाख और आंवले का रस भी हितहै ।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थामितिप्रोक्तमहर्षिणा
विकल्पमेतद्विप्रजापृथग्दोषवलंप्रतिवा
तिकेस्नेहभूयिष्यंषत्तिकेतिक्तशीतलं ॥ श्ले
षिकेकटुतिक्तोष्णविमिश्रंसांनिपातिके ॥

अर्थ—महर्षि आत्रेयने पांडुरोगकी शा-

न्तिके लिये जो जो औषधें यहां तक वर्णन की हैं वेही पृथक् पृथक् दोषवल के अनु-

सार विकल्पपूर्वक अर्थात् कर्मावेशी करके प्रयोग ^{प्रहै}ना ठीकहै । जैसे वातिक रोगमेंये औषधि ^{गतेहै}के एक सिग्ध द्रव्योंसे संस्कार करके, ^{कटु, तिक्त और उष्ण तथा} रोगमें तिक्त शीतल और साम्नि ^{तीनों प्रकारकी मिलाई हुई} औषधियां देनी चाहिये ।

मृत्तिका भक्षण में उपाय ।

निर्घातयेत्शरीरास्तुमृत्तिकांभाक्षिताभिपक्व
युक्तिज्ञःशोधनैस्तीक्ष्णैःप्रसमीक्ष्यंवल्लव-
लम् ॥ शुद्धकायस्यसर्पापिपलापानानि
योजयेत् ।

अर्थ—मृत्तिका भक्षणसे उत्पन्न हुए पांडुरोगमें रोगी का बलावल देखकर तीक्ष्ण संशोधनों द्वारा रोगीके शरीरसे मृत्तिका निकाल देवै । इसंतरह देहकेशुद्ध होने पर निम्नालिखत बलकारक घृत्तोंका प्रयोग करै ।

मृत्तिकादोष पर घृत ।

व्योषंधिल्वंहरिद्रेहत्रिफलाद्भुनर्नये ॥

मुस्तान्वयोरजःपाठाविद्धदेवदारुच ।

दृष्टिकालीचभागींचसक्षीरस्तैःसर्मघृतम् ।
माधयित्वापिवेद्युक्त्यानरोमृद्दोपपीडितः ।
तद्वृत्केशरयष्ट्याहपिप्पलीमूलशाद्वलैः ।
नर्थ—त्रिकुटा, येलगिरी, दोनों हल्दी,
त्रिफला, दोनों प्रकारकी साठ, मोथा, लोह
चूर्ण, पाठा, देवदारु, वायत्रिडंग, विछवन
भांडंगी सब समान भाग लेकर चूर्ण करके
इनेसे चौगुना घृत और घृतसे चौगुना
दूध डालकर पकावै । इस घृतका युक्ति
पूर्वक सेवन करनेसे मृद्भक्षणजन्य पांडु-
रोग दूर होजाताहै । इसीतरहसे केशर, मु-
हहटी, पीपलामूल और शाद्वल (नवीन छो
टी घास)से सिद्ध किया घृत उपयोगी होताहै

अन्यउपाय ।

मृदोनिवर्तमानायलौल्यान्मर्स्यावभक्षणा
त् । द्वेष्यार्थंभावितां कामंदद्यात्तदोपनाश
नैः ॥ शुक्लातिविषयानिर्म्यैर्विडंगैःकुट
जेनच । वार्त्ताकैःकटुरोहिण्यापाठयाम्
वैयापिवा ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको मिट्टी खानेकी
बड़ी टेवहै उसको मिट्टीसे अराचि बढाने
के निमित्त दोप नाशक द्रव्यों से भावना
की हुई मृत्तिका यथेष्ट खवावै, वे द्रव्य यहहै,
यथा अतीस, नीम, वायत्रिडंग, इन्द्र जौ,
वार्त्ताक, कुटकी, पाठा और मूर्वा ।

यथादोपञ्चकुर्वीतमैपज्यंपांडुरोगिणाम्
क्रियाविशेषपपोऽस्थमतोहेतुविशेषतः ॥

तिलीपिष्टनिर्भयस्तुवर्चःसृजतिकामली ।
श्लेष्मणारुद्धमार्गितपित्तकफहरैजेयत् ॥

अर्थ—पांडुरोगमें दोपके अनुसार चिक

त्सा करनी चाहिये, हेतु विशेषसे क्रिया में
भी भन्तर होताहै । जिसकामला रोगीका
विष्टा तिलकी द्रुगदी सा होताहै उसरोग में
पित्तका स्रोत कफसे बन्द होजाताहै, इसमें
कफनाशक चिकित्सा करना चाहिये ॥

शाखाश्रित कामलाके लक्षण ।

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामवैगनिग्रहैः ।
कफसंमूर्च्छितोवायुःस्थानात्पित्तक्षिंपद्भिः
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्चास्तदानरः ।
भवेत्साटोपाविष्टम्भोगुरुणाहृदयेनच ॥
दौर्बल्याल्पाग्निपाश्वातिहिकाश्वासासीच
ज्वरैः । क्रमेणाल्पेऽनुपज्येतापित्तेशाखा
समाश्रिते ॥

अर्थ—रूक्ष, शीत, भारी, मिष्ट, व्यायाम
और वेगनिग्रहसे वायु कफसे मिलकर पित्त
को उसके स्थानसे बाहर निबाहती है तब
नेत्र, मूत्र और त्वचा हल्दीके समान होजाते
है और विष्टा सफेद होजाताहै । अफरा,
गुडगुडाहट हृदयमें भारापन; दुर्बलता, मन्दा-
ग्नि, पार्श्वशूल, हिचकी, स्वास, अराचि और
ज्वर ये उपद्रव होते हैं । यह पित्त क्रमक्रमसे
शाखाओं पर आक्रमण करताहै ।

पांडुरोगमेंअन्यउपचार ।

वर्हित्तिरदक्षाणारूक्षाम्लैःकटुकैःरसैः ।
शुष्कमूलककौलत्यैर्यूपैश्चान्निभोजयेत्
मातुल्लगरसंसौद्रंपिप्पलीमरिचान्वितम् ।
सनागरंपिपेत्पित्ततथास्योत्तिस्वमाशयम् ॥
तृषाम्लैःकटुरूक्षोष्णैर्लघुपैश्चाप्युपक्रमः ।

आपित्तरोगाच्चकृतोवायोश्चाप्रशमाद्भ
वेत्स्वस्थानमागतोपित्तपुरीषोपित्तरिज्जते

निवृत्तोपद्रवस्यास्यपूर्वकामलिकीविधिः॥

अर्थ—मोर, तीतर और मुर्गाके मांसरस को रुक्ष, अम्ल, और कटु द्रव्योंसे संस्कार करके दैव्य अथवा सूखीमूली और कुलथी के यूपके साथ भोजन करवै । त्रिजौरे के रसमें शहत, पीपल, कालीगिरच और सोंठ डालकर पानसे पित्त अपने स्थान में चला जाता है । मलके पित्त रंजित न होने और वायु की अशान्ति से जो तृपादि रोग होतेहैं उन में कटु, उष्ण, रुक्ष और लवणाम्बित औषधियों द्वारा चिकित्सा कीजातीहै, जब पित्त अपने स्थानमें आजाताहै और मल पित्तसे रंगजाताहै तब उसके सब उपद्रव निवृत्त हो जातेहैं उस समय कामलारोग की विधि कर्त्तव्यहै।

हलीमकके लक्षण ॥

यदातुपाण्डोर्वर्णःस्याद्भरितश्यावपतिकः
बलोत्साहशयस्तन्दामन्दाग्निवृद्धुर्ज्वरः
स्त्रीपृहर्षोऽङ्गमर्दश्चसादस्तृष्णारुचिर्भ्रमः
हलीमकंतदातस्यापिथादनलिपित्ततः ॥

अर्थ—जब पाण्डुरोगीका वर्ण हरा, काला व पीला पड़जाय, घट और उत्साह क्षीण होजाय, तन्द्रा, मन्दाग्नि, मृदुज्वर स्त्रियोंमें अनिच्छा, अंगमर्द, अंगसाद, तृष्णा, अहन्ति, और भ्रम ये उपद्रव उत्पन्नहों तब वात पित्तकेकोपसे हलीमक नाम पाण्डुरोग रोगहोताहै।

हलीमकमें चिकित्सा ।

गृह्णीस्वरसर्षारसाधितगाहिपधृतम् ॥
सपिवेत्त्रिवृतास्निग्धोरसेनामलकस्यतु॥
गिरिकामधुरमायसेवितोऽनिलपित्तजुत्
द्राक्षालेहंसपूर्वोक्तंरूपीविमधुराणिच ॥

यापनान्क्षीरचर्स्तीक्ष्णशालयेत्सानुवासनान् ।
मार्द्धाकारिष्टयोगांश्चपिवेद्युक्त्याग्निवृद्धयेः॥
कासिकञ्चभयालेहंपिप्पलीमधुकम्वलाम् ।
पयसावाप्रयुञ्जीतयथादोषयथावलम् ॥

अर्थ—गिलोयका रस और दूध इनमें भेंसका घी सिद्ध करके स्नेहन कर्मके लिये पानकरै, स्निग्ध होने के पीछे आंवले के रसके साथ निसोथ पीवै जब इससे दस्त होजाय तब वात पित्तको दूरकरनेवाली मधुर औषधियों का सेवन करै । पूर्वोक्त द्राक्षावलेह, मधुर औषधियों से संस्कृत घृत, यापन क्षीरवस्ति और अनुवासन वस्तिपों का प्रयोग करै । जठराग्नि को बढाने के लिये मृद्वीकारिष्ट आदियोगों का पानकरै । कासोक्त अध्यायमें कहाहुआ अमयावलेह अथवा पीपल, मुलहठी और खैरटीको दोंप और बलके अनुसार दूध के साथ सेवनकरै अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

पाण्डोःपञ्चविधस्योक्तहेतुलक्षणभेदजम् ।
कामलाद्विधिषाचैवसाध्यासाध्यत्वमेवच
तेषां विकल्पोयथान्यामहाव्याधिर्हलीमकः ॥
तस्यचोक्तंसमासेनव्यञ्जनंसचिकित्सितम् ।

अर्थ—इस अध्यायमें पाण्डुरोगके पांच भेद, उनके हेतु, लक्षण, चिकित्सा, दो प्रकार का कामलारोग, इन रोगों के साध्यासाध्य लक्षण, औषधियों का वैकल्पिक प्रयोग, हलीमक नाम महाव्याधि, तथा संक्षिप्त से हलीमक के लक्षण और चिकित्सा

वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विराचि-
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां

चिकित्सितस्थाने पांडुरोगचिकित्सितं

नामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः॥

अथातोहिकाश्वासाचिकित्सितंव्याख्या
स्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अबहम यहांसे हिकाश्वास चिकित्सित
नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

वेदलोकार्थतत्त्वज्ञमात्रेयमृषिभिःस्तुतम् ॥

अपृच्छत्संशयंधीमानग्निवेशःकृताञ्जलिः
यश्मेद्विविधाःभोक्ताःत्रिदोषास्त्रिमकोप

नाः ॥ रोगानानात्मकास्तेपांकःकोभव-
तिदुर्जयः

अर्थ—बुद्धिमान् अग्निवेश ने हाथ जो-
डकर वैदिक और लौकिक विषयों के तत्वों
को जाननेवाले और ऋषिगणोंसे स्तुति किये
हुये भगवान् आत्रेयसे पूछा कि हे भगवन् !
आपने द्विविधात्मक दोषोंका वर्णन किया
तथा तीन दोष और तीनों दोषोंके प्रकुपित
करनेवाले हेतु भी वर्णन किये । अब मेरी
यह जानने की इच्छा है कि इन अनेक प्र-
कार के रोगों में कौन २ रोग दुर्जय हैं

आत्रेय का उत्तर ।

अग्निवेशस्यतद्वाक्यंश्रुत्वामतिमताम्बरः
उवाचपरमप्रीतःपरमार्थविनिश्चयः॥का-

मंप्राणहरारोगावह्वानतुतंतथा ॥ यथा
श्वासश्चहिकाचप्राणानाशुनिरस्यतः।अ-
न्यैरप्युपसृष्टस्यरोगैर्जन्तोःपृथग्भिर्धैः।अ-
न्तेसजायतेहिकाश्वासोवातीप्रवेदनः।

अर्थ—अग्निवेशके इस प्रश्नको सुनकर
मति मताम्बर, परोपकार परायण आत्रेय
अत्यन्त प्रसन्न होकर बोलेकि यद्यपि प्राण
नाशक रोग बहुत हैं परन्तु वे ऐसे नहींहैं
जैसे हिका और श्वास शीघ्र प्राणनाशक
होते हैं । प्राणी के अनेक प्रकारके अन्य २
बहुत से रोगों से पीडित होनेपर भी अन्त
में तीव्र वेदनावाले हिका और श्वासरोग
उत्पन्न होते हैं अर्थात् मरते समय हिचकी
आती है या श्वास बढ़ता है ॥

हिकाश्वासका स्थानादि विवरण ।
कफवातात्मकावेतौपित्तस्थानसमुद्भवौ॥
हृदयस्यरसादीनांधातूनांचोपशोषणौ ।
तस्मात्साधारणावेतौमममुदुर्जयौ ॥

अर्थ—ये दोनों रोग कफवातसे होतेहैं,
इनकी उत्पत्तिका स्थान पित्ताशय है ये दो-
नोंही रोग हृदयस्थ रसादिक धातुओं का
शोषण करतेहैं अतएव ये दोनों सद्य तरह
से सप्तान हैं और दोनों ही दुर्जय हैं ॥

हिकाश्वासके भेद ।

मिथ्योपचरितौकुद्दौइतावाशीविपावित्रं
पृथक्पञ्चविधावेतौनिर्दिष्टौरोगसंग्रहे ॥
तयोःशृणुसमुत्थानंलिङ्गान्यैकैकशस्तथा

अर्थ—उक्त दोनों रोग मिथ्या आहार
विहारसे उत्पन्न होकर कुद्द आशी विपकी
तरह मनुष्य को मार डालतेहैं । सूत्रस्थानमें

अर्थ—कफसंसृष्टनात प्राणवाही उदकवाही और अन्नवाही स्रोतोंको रोककर हिचकी उत्पन्न करती है । इन हिचकियोंके पृथक्कर लक्षणोंका वर्णन कियाजाताहै ।

महाहिका के लक्षण ॥

क्षीणमांसवलप्राणतेजसःसकफोऽनिलः॥
 गृहीत्वासहसाकण्ठमुच्चैर्घोषवतीभृशम् ।
 करोतिसततांहिकापेकद्वित्रिगुणांतया ॥
 प्राणःस्रोतांसिमर्माणिसंरुद्धघोष्माणमेव
 चासंज्ञामुष्णातिगात्राणिस्तम्भसञ्जनय-
 त्यपि।मार्गचैवान्नपानानांरुणक्ष्यपहतस्मृतेः
 साधुविप्लुतेनेत्रस्यस्तब्धशंखच्युतध्रुवः
 सक्तजल्पप्रलापस्पानिर्द्वृतिनाधिगच्छतः।
 महामूलामहावेगामहाशब्दामहाबला॥ म
 हाहिकेतिसान्दृष्टांसद्यःप्राणहरामता ॥

अर्थ— जिस मनुष्य के मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण होगये हैं उसके कंठको कफयुक्त वायु पकडकर अत्यन्त शब्दवाली ऊपरकी हिचकी कों उत्पन्न करती है, यह हिचकी निरन्तर एक दो तीन बार आती है । उससमय रोगी के प्राण घाही स्रोत, मर्मस्थान, ऊष्मा और संज्ञा नष्ट होजाती है । देह में उष्णता और स्तम्भता उत्पन्न होतीहै । उसके अन्न पानके मार्ग रुकजातेहैं, स्मृति नष्ट होजातीहै, नेत्रोंमें जल डबडबाताहै, कनपटी स्तब्ध और भृकुटी गिरीसां पडती हैं मुंहसे बोल नहीं निकलताहै, किसी तरह चैननहीं पडताहै, यह हिका महामूल, महावेगा, महाशब्दा और महाबला होतीहै, इसीसे इसका नाम महाहिका

है, यह मनुष्यों का तत्काल प्राणनाश करनेवाली होतीहै ॥

गंभीरा हिकाके लक्षण ।

हिकतेयःप्रवृद्धस्तुकुशोदीनमनानरः ।
 जर्जरणोरसासर्वगम्भीरमनुनादयन् ॥
 संजृम्भन्संक्षिपंश्चैवतथाङ्गानिप्रसारयन्॥
 पाश्वेचोभेसमायस्यकूजनस्तम्भरुगर्दितः
 नाभेःपक्काशयाद्वापिहिवकाचास्योपजा
 यते ॥ क्षोभयन्तीभृशंदेहनामयन्तीचता
 म्यतः । रुणद्ध्युच्छासमार्गन्तुप्रणष्टव
 लचेतसः।गम्भीरनामासातस्पहिकाप्राणा
 न्तिकीमता ॥

अर्थ—जो मनुष्य कुश और दीन मन होकर अत्यन्त हिचकी लेताहै, हृदयमें जर्जरता दिखाई देवे, हिचकी का शब्द गभीरहो, यदि रोगी हाथ पांशोंको फैलाकर जम्हाई लेने लगे और इधर विधर पटकनेलगे, दोनों पसवाडोंको लम्बा करदेवे कंठ में कूजन और शरीर में स्तम्भ और शूल होवे । नाभि वा पक्काशयसे हिचकी निकलती मालूमहो जिससे सम्पूर्ण देह में क्षोभहो, देह झुकजाय, बेदना होनेलगे श्वास आनेजाने का मार्ग रुकजाय और बल तथा संज्ञा नष्ट होजाय, यह प्राणोंका नाश करनेवाली गंभीरा हिका होतीहै ।

व्यपेताहिवका ।

व्यपेतेजायतेहिवकायान्नपानेचतुर्विधे ।
 आहारपरिणामान्तेभूयश्चलभतेवलम् ॥
 प्रलापवम्यतीसारवृष्णार्तस्यविचेतसः॥
 संजृम्भस्यप्लुताक्षस्यभृष्कास्यस्पविना-

मिनः । पर्याध्मातस्य हिककाया जत्रुमूलाद
सन्तता ॥ साव्यपेतेति विज्ञेया हिककाया
पोपरोधिनी ।

अर्थ—जो हिककी मक्ष्य भोज्यादि चार
प्रकारके अन्नपान से उठती है और भोजन
के पचनेके समय जिसका बल अधिक बढ़
जाता है जिसके होनेसे प्रलाप, वमन, अतीसार
तृषा और संज्ञा नाश होजाय, जिससे, जम्हाई
नेत्रोंमें आंसू, मुखमें शुष्कता, शरीरका शु-
कना, पेटमें अफरा होवै, और जो जत्रु के
मूलसे उत्पन्न हो उसे व्यपेता हिकका कहते
हैं। यह हिककी प्राणवाही स्रोतोंको रोक देती है।

क्षुद्राहिकका ।

क्षुद्रवातोयदाकोष्ठाह्वयायामपरिघटितः ॥
कण्ठप्रपच्यते हिककांतदाक्षुद्रां करोति सः ॥
अतिदुःखानसाचोरः शिरोमर्मप्रवाधिनी ॥
नचोच्छासान्नपानानामार्गमावृत्यतिष्ठ
ति। वृद्धिमायासतोयातिभुक्तमात्रे चमार्द
वम् ॥ यतः प्रवर्तते पूर्वत एव निवर्तते ॥
हृदयं क्लोमकण्ठश्चतालुकश्च समाश्रिता ॥
मूर्धासाक्षुद्रहिककोतिनृणां साध्यामर्कातिता

अर्थ—क्षुद्रवात अत्यन्त परिश्रमके कारण
उदघटित होकर जब कंठमें स्थित होजाती
है तब यह क्षुद्रा हिकका को उत्पन्न करती
है, यह हिककी अत्यन्त कष्टदायक नहीं
होती और न यह वक्षस्थल, शिर वा मर्मा
में पीडा पहुंचाती है, न यह श्वास वाही
तथा अन्नपान वाही मार्गोंको रोकती है,
परिश्रम से बढ़ती है और भोजन करते ही मृदु
पड़ जाती है यह जिस कारण से उत्पन्न

होती है उसही से निवृत्त होजाती है।
इसका आश्रयस्थान हृदय, क्लोम, कंठ और
तालुक है यह मृदु होती है, इसका नाम
क्षुद्राहिकका है। यह हिककी साध्य होती है।

अन्नजाहिकका लक्षण ।

सहसात्य भ्यवहृतः पानान्नैः पीडितोऽनि
लः । उर्ध्वप्रपद्यते कोष्ठा न्मधैर्वाति मद्म
दैः । तथातिरोपभाप्याध्वभारातिपरि
घर्तनैः । वायुः कोष्ठगतो धाघन्नपानमो
ज्यप्रपीडितः । चरः स्रोतः समाविश्य कु-
र्याद्विककांततोऽन्ननाम् ॥ तथाशनैरसम्ब
द्धं धुयन्चापिसहिककते । नर्ममवाधाजन्
नी चेन्द्रियाणां मवाधिनी ॥ हिककापीतेत
था भुक्ते शमयाति च साक्षजा ।

अर्थ—सहसा अन्नपान के अत्यन्त सेवन
से वा अत्यन्त नशीले मद्यके सेवनसे वायु
बढ़कर ऊपरको कोष्ठोंमें जाती है, तथा
अत्यन्त रोप, भाषण, मार्गभ्रमण, भारबहन
वा अत्यन्त परिवर्तनसे अन्नपान के द्वारा
उत्पादित होकर कोष्ठगत वायु हृदयस्थ स्रोतोंका
अवलंबन करके अन्नजा हिककी उत्पन्न
करती है। कभी २ यह हिककी भोजनसे
नहीं होती है तथा वैसेही हिकक्रिया आने
लगती है इनसे मर्मस्थान वा इन्द्रियों में कुछ
धाधा नहीं पहुंचती है और अन्नपान के
सेवनसे ये शान्त होजाती हैं।

हिककाका साध्यासाध्यवर्णन ।

आतिसञ्चितदोषस्य भक्तच्छेदक्षतस्य च ॥
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य च रजस्यातिव्यवा-
यिनः । आमाश्यात्समुत्पन्ना हिकका हन्त्या-

शुजीवितम् ॥ यमिकाचमलापार्तितृष्णा
मोहसमन्विता । अक्षीणश्चाप्यदीनश्च
स्थिरघात्विन्द्रियश्चयः ॥ तस्यसाधयि
तुंशक्यायमिकाहन्त्यतोऽन्यथा ॥

अर्थ—जिसमनुष्यके दोष अत्यन्त इकट्ठे
होगये हैं जिसको भोजनमें अरुचिहै, जो
क्षतपीडितहै, व्याधियोंसे जिसका देह क्षीणहै,
जो वृद्ध और अति व्याधी है, उसके हिच-
की आमाशय से उत्पन्न होताहै जिस यमिका
हिचकी में प्रलाप, वेदना, तृष्णा और मोह
होताहै वह भी असाध्य होतीहै, यदि वह
ऐसे पुरुषके होतीहै, जो अक्षीण, अदीन,
स्थिर घातु और स्थिरेन्द्रिय होताहै वह साध्य
होतीहै जो इस से भिन्नहै वह असाध्य होतीहै

श्वास की उत्पत्ति ।

यदास्रोतांसिसंरुद्ध्यमारुतःकफपूर्वकः।वि
ष्वग्प्रजतिसंरुद्धःतदाश्वासान्करोतिसः

अर्थ—जब कफसे मिली हुई वायु प्राण
धाही स्रोतों को रोक देती है, इसतरह रुकी
हुई वायु सम्पूर्ण देहमें गमन करतीहै तब
श्वास उत्पन्न होता है ।

महाश्वासका लक्षण ।

उद्ध्युयमानवातोयःशब्दवद्दुःखितोनरः
उच्चैःश्वसितिसंरन्धोमत्तर्षभइवानिशम्॥
प्रणष्टज्ञानविज्ञानस्तथाविभ्रान्तलोचनः
विकृताज्ञाननोवद्धमूत्रवर्चीविशीर्णवाक्॥
दीनःप्रश्वसितंचास्पद्राट्टिज्ञायतेभृशम्
महाश्वासोपृमृष्टःसक्षिप्रमेवमपद्यते ॥

अर्थ—वायुके ऊपरको जानेसे संरन्ध
होकर जो मनुष्य मत्त बैल की तरह अत्यन्त

कष्टसे शब्दयुक्त ऊंचा श्वास लेताहै, तब
उसके ज्ञान विज्ञान नष्ट होजातेहैं, नेत्र
भ्रान्तियुक्त होतेहैं, आंख और मुख विकृत
होजातेहैं, मूत्र विष्टा बन्द होजातेहै, वा-
णी रुक जातीहै, दीनता होजातीहै, उसका
श्वास लैना दूरहीसे दिखाई देने लगता है ।
इसका नाम महाश्वास है, इस के होनेसे
रोगी शीघ्र मरजाताहै ।

उर्ध्वश्वास का लक्षण ।

दीर्घःश्वसितियस्तूर्ध्वनचमत्याहरत्यधः।
श्लेष्मावृतमुखस्रोताःकुद्गन्धवहादितः।
ऊर्ध्वदृष्टिर्विषयश्चविभ्रान्ताक्षस्ततस्ततः
प्रमुद्गन्वेदनात्तश्चभृष्कास्योऽतिनिपीडि
तः। ऊर्ध्वश्वासेमयृत्तेचयश्वाधःश्वासरोधभा
क् । ताम्यतोभ्राम्यतधोर्ध्वश्वासस्तस्य
पहन्त्यसूनु ।

अर्थ—जो ऊपरको मुख करके दीर्घ
श्वास लेताहै और नीचा मुखकरके भीत-
रको नहीं खींच सकताहै, जिसके मुख
स्रोत कफसे आच्छन्न हैं, जिसके मुखसे
कुद्ग दुर्गन्धितवायु निकलताहै जो ऊपर
को दृष्टि करके भ्रान्तियुक्त नेत्रोंसे
देखता है, वेदनासे व्याकुल होकर मुग्ध
होजाता है, मुख सूख जाता है वेदना
अत्यन्त होती है, ऊर्ध्व श्वासके प्रवृत्त होने
पर जिसका अधःश्वास रुकजाता है, इसमें
श्लेश बहुत होता है, यह उर्ध्वश्वास शीघ्र
ही प्राणों का नाश कर देताहै ।

छिन्नश्वास के लक्षण ।

यस्तुद्विशीतीचीच्छन्नंसर्वभाणेनपीडि

तः । नवाश्वसितिदुःखार्तोर्मर्भच्छेदरुग्
दितः । आनाहस्वेदमूर्च्छार्तोदक्षमानेन
वस्तिना । विप्लुताक्षःपरिस्त्रीणःश्वसनूर
कैकलोचनः ॥ विचेताःपरिशुष्कास्योवि
वर्णःप्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेनसाच्छिन्नः
सशीघ्रमजहात्यसून् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके टूटा हुआ श्वास
निकलता है और सम्पूर्ण देह में इससे
कष्ट होता है अथवा कष्टके कारण श्वास
कम निकलताहै तथा मर्मस्थान में वेदना
होने लगतीहै वेदनाके कारण आनाह,
स्वेद और मूर्च्छा होजातीहै, वस्ति में दाह
होने लगताहै, नेत्रोंमें पानी भर आताहै,
क्षीणता होतीहै, नेत्र लाल पड़जाते हैं,
संज्ञानाश होजातीहै, मुख सूख जाता है,
देह का वर्ण विगड़ जाता है, प्रलाप होता
है, ये छिन्न श्वास के लक्षण हैं । इस रोग
से पीडित मनुष्य शीघ्रही प्राणों को त्याग
देता है ।

तमकश्वासकेलक्षण ।

प्रातिलोम्यदावायुःओतासिमतिपद्यते ।
श्रीर्वाशिरश्चसंग्रह्यश्लेष्माणसमुदीर्यच ॥
करोतिपीनसंतेनरुद्धोपुर्धुरकंतथा । अतीव
तीव्रवेगञ्जश्वासंमाणप्रपीडकम्प्रताम्य
त्यतिवेगाच्चकासतेसन्निरुच्यते । प्रमोहं
कासमानश्चसगच्छतिमुहुर्मुहुः ॥ श्लेष्माण्य
मुच्यमानेचभृशंभवतिदुःखितः । तस्यैव
चयिमोक्षान्तेमुहूर्त्तंविन्दतेमुखम् । अयास्यो
दंसतेकण्ठःकृच्छ्रात्श्वनोतिवाधितुं ।
नचापिनिद्रालभतेश्वानःश्वासपीडितः ॥

पार्श्वतस्यावगृह्णातिश्वानस्यसमीरणः
आसीनोलभतेसौख्यमुष्णं चवाभिनन्दति
उच्छ्रिताश्रोललाटेनस्विद्यतांभृशमर्तिमान्
विशुष्कास्योमुहुश्वासोमुहुर्दुःश्वाधमत्य-
पि । मेघाम्भुशतिप्राग्वातःश्लेष्मलश्वा
भिवर्धते । सयाप्यस्तमकःश्वासःसाध्योवा
स्यान्नवोद्विधतः ॥

अर्थ—जब वायु प्रतिलोम अर्थात् उलटी
होकर प्राणवाही सूतोंमें स्थित होजाती है,
तब, यह प्रीवा और शिरको जकड़कर तथा
कफको उद्गर्ण करके पीनस उत्पन्न क
देतीहै और स्वयंरुद्ध होकर कंठ में घुरघुरा
हट पैदा करतीहै तब उस समय प्राणों
को कष्ट देनेवाला और बड़े ताव्र वेगवाला
श्वास उत्पन्न होताहै इसके उत्पन्न होने
पर रोगी अत्यन्त वेगसे खांसने लगता है
तथा खांसते २ कंठ रुकासा हो जाता
है, खांसते २ रोगी बार-बार मूर्च्छित हो
जाता है । और कफके न निकलने के
कारण रोगी अत्यन्तही क्लेशित होता है,
कफके निकलने पर थोड़ी देर को चैनसा
पड़जाताहै । गलेमें धूआं सा घुमडता रहता
है इससे वातभी कठिनता से कर सकताहै ।
सौनेमें श्वासका वेग अधिक बढ़ताहै, इससे
वह सोनेभी नहीं पाता है, करबट भी लेने
में कष्ट होताहै क्योंकि करबट लेनेमें श्वास
का वेग अधिक बढ़ता है, बैठे होने पर
कुछ सुख मिलताहै, उष्ण द्रव्योंमें इच्छा
बढ़तीहै, आंख फटीसी होजातीहै, माथे पर
पर्साना आजाता है, वेदना अधिक होने
लगतीहै, मुख सूख जाताहै, बार-बार श्वास

बढ़ता है, बार बार देह में झोटेसे लंगते हैं वादलों के होनेपर, शीतल जलके स्पर्श पर पूर्व की वायु के चलने पर और कफकारी द्रव्यों के सेवन से श्वासकी वृद्धि होती है। यह तमकश्वास वाप्य होता है, यदि नया होता है तो साम्य भी होता है ॥

प्रतमकश्वासका लक्षण ।

ज्वरमूर्च्छापरितस्यविद्यात्प्रतमकन्तुतम् ।

अर्थ—यदि तमकश्वास में रोगीको ज्वर और मूर्च्छा होती इसे प्रतमकश्वास कहते हैं ।

सन्तमकश्वासका लक्षण ।

उदावर्त्तजोर्जोर्णविलम्बकायनिरोधजः ।
तमसावर्द्धतेऽस्यर्थशीतैश्चाशुप्रशाम्यति-
मज्जतस्तमसीवास्यविद्यात्संतमकन्तुतम् ।

अर्थ—उदावर्त्त, रज, तथा अर्जोर्ण से देहके विलम्ब होनेसे वा जठराग्निके निरोध से जो श्वास होता है, तथा जो अंधकार से अत्यन्त बढ़ता है, शीतोपचारसे शान्त होता है तथा रोगीको श्वास में अंधरासा छाया हुआ दाखै तो इस श्वास को सन्तमक-श्वास कहते हैं ।

धुद्रश्वासकालक्षण ।

रूक्षायामसोद्भवःकोष्ठेधुद्रवातउदीरयेत् ॥
धुद्रश्वासो नसोऽस्यर्थदुःखेनाह्रप्रवाधकः ॥
हिनस्ति नसगात्राणि नचदुःखीययेतरः ॥
नचभोजनपानानानि रूणद्ध्युचितांगति
म् ॥ नेन्द्रियाणां व्यथानां पिकाञ्चिदुत्पा
दयेद्भुजम् । ससाध्यउक्तोवालिनः सर्वेषां
व्यक्तलक्षणाः ॥

अर्थ—रूक्ष पदार्थोंके सेवन और परिश्रम से अल्पनिदान और अल्पलक्षणों से युक्त वायु उदीर्ण होकर धुद्रश्वास को उत्पन्न करता है यह देहको अत्यन्त कष्ट नहीं देता है, वह अंगावयवोंको और श्वासांक्षी तरह पीड़ित नहीं करता है, न अन्न पानों की उचित गतिको रोकता है इन्द्रियों को व्यथित नहीं करता है न किसी प्रकार की वेदना वा अन्य उपद्रवोंको उत्पन्न करता है यह श्वास साम्य होता है, तथा, बलवान् पुरुष के सबही श्वास जिनके पूर्ण लक्षण नहीं होते है साम्य होते हैं ।

इतिश्वासाःसमुद्दिष्टाहिकाश्चैत्रस्वलक्षणैः
एषांप्राणहरावर्ज्याघोरास्तेद्याशुकारिणः ॥
भयजैःसाध्ययाप्यास्तुक्षिप्रभिपगुपाचरेः
त् ॥ उपेक्षितादेहयुर्हिथुष्कंक्षामिवान-
लाः ॥ कारणस्थानमूलक्यादेकमेवचि
कित्सितम् । द्वयोरपियथावृष्टमृपिभिस्त
न्निनबोधत ॥

अर्थ—इसतरह श्वास और हिचकियों के पृथक् पृथक् लक्षण वर्णन किये गये हैं इनमें से जो जो प्राणनाशक, भयंकर और शीघ्रकारी हैं वे त्याग के योग्य होते हैं साम्य और वाप्यरोगोंकी चिकित्सा औषधियों द्वारा शीघही करनी चाहिये । जैसे अग्नि सूखे तृणोंके ढेरको शीघही जला देती है उसीतरह उपेक्षा कियेहुए उत्तरोग देहको शीघ्रही दम्भ करदेते हैं । हिचकी रोग के कारण, स्थान और मूल एकही हैं इससे कृपियों ने दोनोंको चिकित्सा भी एकही कही

हे, अत्र उसीका वर्णन किया जाताहै ॥

ह्रिकका और श्वास में चिकित्सा
ह्रिककाश्वासादितस्निग्धरादौस्वेदरूपाच
रेत् । युक्तलवणतैलेननाडीप्रस्तरशङ्करैः ॥
तैरस्यग्रथितःश्लेष्मास्रोतःश्वभिदिलीय
ते । खानिपार्दवमायान्तिततोवातानुलो
मता ॥ यथाद्रिकुञ्जेप्यकांशुतप्तंविष्य
न्दतेहिमम् ॥ स्थिरःश्लेष्माशरीरस्थाः
स्वेदैविष्यन्दतेतथा ॥

अर्थ— ह्रिककी या श्वास से पाण्डित
मनुष्यको प्रथम स्निग्ध करके स्वेदन देवे,
अर्थात् प्रथम लवणयुक्त तैल से स्निग्ध कर
के नाडी, प्रस्तर वा संकर स्वेद द्वारा पसीने
द्वै, ऐसा करने से रोगी के स्रोतः समूह
में जमाहुआ कफ गलजाता है, तब सम्पूर्ण
स्रोत नरम पडजायगे और वायु अनुलोम
गामी होगी । जैसे पहाडकी गुहाओं में ज-
माहुआ बर्फ सूर्य की तप्तकिरणोंसे पिघल
जाता है उसीतरह शरीर के स्रोतोंमें जमा-
हुआ कफ भी स्वेदन कर्मसे पिघलजाताहै ॥

स्वेदनोत्तर भोजनादिक्रम ।

स्विन्नंज्ञान्वाततस्तूर्णभोजयेत्स्निग्धमोद
नम् । मत्स्यानांशुकराणांवारसैर्दध्युत्तरेण
वा ॥ ततःश्लेष्माणिसंष्टेवमनंपाययेत्तु
तम् ॥ पिप्पलीसैन्धवसौद्रैर्युक्तंवातावि
रोधियत् ॥ निर्दृतेमुखमाप्तिसकफेदु
ष्टिग्रहे । स्रोतःसुचविशुद्धेषुचरत्यानिह
तोऽनिलः ॥ लीनश्वेदोपशेषःस्याचंधूपै
र्निहरेद्बुधः । हरिद्रापत्रमैरण्डमूलंलासां
मनःशिलाम् ॥ सदेवदार्वेलंसांतीपिष्ट्वा

वात्तिप्रकल्प्यचा तांघृताकांपिवेद्भूमैर्यवै-
र्वाघृतसंयुतैः ॥ मधुच्छिद्रंसर्जरसंघृतम-
ल्लकसंयुटे । कृत्वाधूमंपिवेत्छागंवालंवा
स्नायुवागवाम् ॥

अर्थ.... स्वेदनकर्म के पदचात शीघ्रहीरोगी
को स्निग्ध भोजन करावे अथवा दही डाल,
कर मछली और सूअर का मांसरस देवे ।
ऐसा करनेसे कफकी वृद्धि होगी, कफके व-
ढनेपर यमनकारक औषधियोंका पान करा-
वे । इस वमन कारक औषध में पीपल, सै-
धानमक, शहत और वातविरोधी अन्यद्रव्य
डालदेवे । वमन होनेसे विगडेहुये कफ
निकलने पर रोगीको सुख प्रतीत होगा और
वायु भी शुद्ध स्रोतों में बिना रुकावट के धू-
मने लगेगा । यदि वमन करने पर भी दोष
रहें तो निम्नलिखित धूमपान करावे । हल-
दी, तेजपात, अरंडकी जड, लाख, मनसि-
ल, देवदारु, इलायची, इन सबको पीस ब-
ची बनाकर घीमें भिजोकर धूमपान करे अ-
थवा जौ पीसकर बची बनाकर घीमें भिजो
कर धूमपान करे । अथवा मोम, रांल औः
घी इनको पीसकर चिलम में धरकर पीः
अथवा बकरे वा गौके बाल और स्नायुफ
धूमपान करे ।

अन्यधूमपान ।

श्वोनाकवर्द्धमानानानाडीशुष्कांकुशर
वा । पत्रकंगुगुलुंलोहंशुल्कीवाघृताप्
ताम् ।

अर्थ— श्वोनाक, अरंड अथवा कसाक
सूखी नली को घी में भिजोकर धूमपान क-

रै अथवा पद्माक्ष, गुग्गुलु, लोह, और शङ्ख-
की को पीस बत्ती बना घी में भिगोकर घूम-
पान करे ।

स्वरक्षीणातिसारासृक्पित्तदाहानुबन्ध-
जान् । मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिकाश्वास
नुपाचरेत् ॥

अर्थ....जिस श्वास और हिचकी में स्वर
क्षीणता, अतिसार, रक्त पित्त और दाहका
अनुबन्ध हो उसमें मधुर, शीत और स्निग्ध
क्रियाओं द्वारा चिकित्सा करे ।

अस्वेद्यरोगी ।

नस्वेद्याःपित्तदाहार्तारकस्वेदातिवर्ति-
नः । क्षीणधातुबलारुक्ष्णागर्भिण्यश्चाप्य
पित्तलाः ॥

अर्थ—पित्तरोगी, दाहरोगी, रक्तरोगी,
स्वेदरोगी, क्षीणधातुरोगी, क्षीणबल, रुक्ष,
गर्भिणी स्त्रियाँ और पित्तलधातुवाले ये सब
स्वेदन कर्म के योग्य नहीं हैं ॥

कोष्णैः फाममुरः कण्ठस्नेहसकैः सशर्करैः
उत्कारिकोपनाहैश्चस्वेदेयते मृदुभिक्षण-
म् ॥ तिलोमामापगोधूमचूर्णैर्वातहरैः सह ।
स्नेहैश्चोत्कारिकासाम्लैः सक्षीरैर्वाकृतादि
ता ॥ नवज्वरामदोपेपुरुक्षस्वेदं विलब्ध
नम् । समीक्ष्योत्सेखनंवापिकारयेत्त्वय
षाम्बुना ॥

अर्थ—यदि ऊपर कहे हुए रोगियों को
स्वेदन देने की आवश्यकता हो तो उस के
हृदय और कंठ पर चीनी मिलेहुये कुण्डगु-
नगुने स्नेह सचन द्वारा वां मृदु उत्कारिका
वा उपनाह द्वारा क्षणमात्र स्वेदनदेवै । अ-

थवा तिल, अलसी, उरद, और गेहूँका चून
पिसवाकर इसमें वातनाशक द्रव्य मिलाये
और कांजी एवं स्नेह डालकर अथवा दूध
डालकर उत्कारिका बनाकर स्वेदन देवै ।
नवीन ज्वर और आमदोष में रुक्ष स्वेदन
वा लंघन करावै । अथवा इस के साथही
नमक और जल पान कराके वमन करादेवै ।
अतियोगोद्धतंवापिदृष्ट्यावातहरैर्भिषक् ।
रसाद्यैर्नातिशीतोष्णैरभ्यङ्गैश्चशर्मनयेत् ॥
उदावर्ततथाध्मानेमातुलुक्ष्णाम्लवेतसैः ।
हिंयुपीलुविडैश्चात्रयुक्तंस्यादनुलोमनम् ॥

अर्थ—वमन का अतियोग होनेसे जो वां
युकी प्रबलता हो तो वातनाशक मांसादि र-
स और न अत्यन्त उष्ण और न अत्यन्त
ठंडे अम्यगों द्वारा उसे शांत करे । उदा-
वर्त और आध्मान के होने पर विजौरा, अ-
म्लवेत, हींग, पीछू, विडनमक के साथ भो
जन कराने से अनुलोमन होता है ॥

भिन्न २ अवस्थाओंमें चिकित्सा-
हिकाश्वासामपीकोबलवान् दुर्बलोऽपरः
कफाधिकस्तथैवैकोरुक्षवह्निलोऽपरः ।
कफाधिकेवलस्थे च वमनं सविरेचनम् ॥
कुर्यात्पथ्याशनेन धूमलेहादिशमनंततः ।
वातिकान् दुर्बलान् वृद्धान् वृद्धांश्चानिलसू
दनैः ॥ तर्पयेदेवशमनैः स्नेहयुपरसादिभिः

अर्थ—हिकका और श्वास से पीडित को
ई मनुष्य तो बलवान् और कोई दुर्बल हो-
ता है, कोई कफाधिक कोई रुक्ष और को-
ई अत्यन्त वात से पीडित होता है । कफ
की अधिकता में बलवान् रोगी को वमन

जल पीये तौहिचकी और श्वास दूर होजाते हैं । अथवा भाङ्गी और सोंठ का फल्क अथवा कालीमिरच और जवाखारका फल्क अथवा सरलकाष्ठ, चीता, आस्फोता, मूर्वा, इनका फल्क गरमजल के साथ पीने से उक्त रोग दूर होजाते हैं ॥

उत्तरोर्गोमैअन्यप्रयोग ।

मधूलिकातुगाक्षीरीशर्करापिप्पलीतया ।
उत्कारिकाघृतेसिद्धाश्वासेपित्तानुबन्धजे
श्वाधिपःशशमांसश्चशशकस्यचशोणितम्
पिप्पलीघृतसिद्धानिश्वासेवातानुबन्ध
जे॥मुवर्चलारसोदुग्धघृतंत्रिकडुकायुतम् ।
शाल्योदनस्यानुपानवातपित्तानुगेपरम्
शिरापुष्पस्वरसःसप्तपर्णस्यवापुनः॥पिप्प
लीमधुसंयुक्तःकफपित्तानुगेमतः॥ मधुकं
पिप्पलीमूलगुडोऽश्वशकृद्रसः॥घृतंक्षौद्रञ्चत
च्छासेरौक्ष्याभिष्यन्दजेथुभम् ॥

अर्थ—श्वास में पित्त का अनुबन्ध होने पर गेहूँकी मैदा, बंशलोचन, चीनी और पीपल इनकी उत्कारिका बनाकर घी में सिद्ध करके देवे । वातानुबन्धी श्वासमें सेह का मांस, सस्से का मांस अथवा छोटी सेह का रुधिर पीपल डालकर घी में सिद्ध करके देवे । वातपित्त का अनुबन्ध होनेपर श्वास में सांचौली का रस अथवा घी, दूध और त्रिकुटा डालकर शालीचावलका भातदेवे । कफपित्त का अनुबन्ध होनेपर श्वास में सि-रस के फूलों का स्वरस पीपल और शहत मिलाकर देवे । रूक्षता और अभिष्यन्दज श्वास में मुल्हट्टी पीपलामूल, गुड, गोबरकारस

घोडेफालीद का रस इनको घी और शहत के साथ सेवन करे ॥

अन्यप्रयोग ।

खराश्वोप्सूवराहाणामिपस्यचगजस्यच ।
शकृद्रसंवहुकफेचैकैकमधुनापिवेतु॥क्षार-
श्वाप्यश्वगन्धापालेहयेत्क्षौद्रसर्पिपा ।

अर्थ—गधा, घोडा, ऊँट, सूअर, मैदा

हाथीइनमें से किसी एक के बिष्टाका रस शहत डालकर कफकी अधिकतामें पानकरे अथवा असगंधके चारको शहत और घीके साथचाटे कफकी अधिकता में अन्यप्रयोग मयूरपादनालंवाशकलंशल्लकस्यवा ॥ श्वाविज्जाण्डकचापाणारौमाणिकुररस्य वा । शृङ्गयेकद्विशफानांवाचर्मास्थीनि सुरांस्तथा ॥ सर्वाण्येकैकशोवापिदग्ध्वाक्षौद्रश्रुतान्वितान् । चूर्णलीह्वाजचेत्कासंहिकांश्वासञ्चदारुणम् ॥ एतोहिकफसरुद्रगीतप्राणप्रकोपजाः । तस्मात्तन्मार्गशुद्ध्यर्थेलेहायोज्याननिष्कपै

अर्थ—मोरके पंजे वा नली वा सेहके चाटे अथवा सेह, जाण्डक, नीलकंठ वा कुरर के रोम अथवा सींग वाले एक या दो खुर के पशुओंके चर्म, हड्डी इनको एक एक वा सब को एक साथ जलाकर इन की भस्मको शहत और घीके साथ चाटे तौ खांसी, हिचकी और दारुण श्वास दूरहो जाते हैं । कफसे प्राण वायुका मार्ग रुक-जाने पर जब वह कुपित होताहै तब ये प्रयोग हितकारी होतेहैं, प्राणवायु के मार्ग की शुद्धिके लिये इनका सेवन हित है, यदि

कफनहो तो इनका सेवन कदापिन करे ।
सुतरांमार्गसंरोधाद्वाहिर्जलमुदीर्यते ।
यथातथानिलस्तस्यमार्गशुद्धीयतेतना ॥

अर्थ—जैसे नदियों का बाहर का मार्ग रुकजाने से बीच में रुकाहुआ जल बढ़ता चला जाता है, उसी तरह वायुका मार्ग रुकने पर वह भी बढ़ती चली जाती है इस लिये उसके मार्गकी शुद्धि यत्नपूर्वक करना चाहिये तमक श्वास में प्रयोग ।

शटीचौरकजीवन्तीत्वङ्मुस्तंपुष्कराहयम्
सरसंतामलवलेलापिप्लयगुरुनागरम् ।
वालकञ्चसमचूर्णकृत्वाष्टगुणशर्करम् ।
सर्वधातमकेश्वासेहिकायाञ्चमयोजेयत् ॥

अर्थ—कचूर, चोरक, जीवन्ती, दालचीनी, मांथा, पुहकरमूल, या कूठ, तुलसी भूयआंवला, छोटीइलायची, अगर, पांपल, नेत्रवाला इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे और अठगुनी चीनी मिलाकर तमकश्वास और हिक्का में प्रयोग करे ॥

छर्दनंकासमानस्यस्वरभेदेप्रताम्यतः ।
घातश्लेष्महर्षर्योज्यतमकेतुविरचनम् ॥

अर्थ—खांसी, स्वरभेद की अधिकता में घातकफ नाशक द्रव्यों के द्वारा धमन करावै और तमकश्वास में उन्ही औषधियों से सिद्ध विरेचन देवै ।

मुक्तादि चूर्ण ।

मुक्तामवालवैदूर्यशंखस्फटिकमञ्जनम् ।
ससारगन्धकार्कशूष्पलालवणद्वयम् ॥
तामायोरजसीरूप्यसौगन्धिकमेववा ।
जातीफलशुणाद्वीजमशामार्गश्चतण्डुलाः

एपांपाणितलाच्चूर्णात्तुल्यानांत्तौद्रसर्पि
पा । हिक्कांश्वासञ्चकासञ्चलीढमाशुाने
यच्छति । अञ्जनात्तिमिरंकाचनीलिकं
पुष्पकंतमः ॥ पैल्लंकण्डूमाभिष्यन्दमन्द
ञ्चतत्प्रणाशयेत् ॥

अर्थ—मोती, मूंगा, वैदूर्यमणि, शंख स्फटिक [विल्वौर], रसौत, काचमणि, गन्धक भाकफाजड, छोटी इलायची, दोनों नमक ताप्रभस्म, लोहभस्म, रौप्यभस्म, जायफल, सन के बीज, आंगा के बीज, ॥ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनावै ॥ फिर दोतोले चूर्ण को घी और शहत के साथ चाटै इसके सेवन करने से हिचकी, श्वास, खांसी शीघ्रही दूर होजाते हैं तथा इसी चूर्ण को आंखोंमें आंजने से तिमिर, काच, नीलक, पुळीतम, पैल्ल, कंडू, अभिष्यन्द, और मन्दता दूर होजाती है

अन्यप्रयोग ।

शटीपुष्करमूलानांचूर्णामामलकस्यच ।
मधुनासंयुतंलक्ष्मिचूर्णवायोरजोमयम् ॥
सशर्करांतामलकाद्रासांगोऽथसकृद्रसम् ।
तुल्यंगुहंनगरश्चमाशयेत्नाययेत्तया ॥
लघुनस्यपलाण्डोर्वासरसगृह्णनकस्यवा ।
नाययेच्चन्दनवापिनारीक्षीरेणसंयुतम् ॥
सुस्तोष्णघृतमण्डंवासैन्धवेनावचूर्णितम् ।
नाययेन्मासिकाविष्टामलक्तकरसेन्वा ॥
स्त्रियाःस्तन्येनसिद्धंवासार्पर्मधुरकैरपि ।
पतिंनस्तोनिषिक्तंवासथोहिक्कानियच्छति

अर्थ—कचूर, पुहकरमूल, आंवला, इनका चूर्ण अथवा लोहभस्म को शहत के साथ चाटै । अथवा चीनी, भूयांवला,

दाख, गौ और घोड़े के बिछा का रस तथा गुड और सोंठ समान भाग लेकर खानेको देवै वा सुंघाये । अथवा लहसन, प्याज वा गृञ्जनका रस नस्य में देवै । अथवा चन्दन और स्त्राके दूधकी नस्य देवै । अथवा इर्षदुष्ण घृत मंड में सेंधा नमक मिलाकर नस्यदेवै । अथवा मक्खी का मूठ और महाभरके रसकी नस्यदेवै, अथवा मक्खी के बिछाको स्त्राके दूधमें मिलाकर नस्य देवै । अथवा मधुरगण से सिद्ध घृत को पान कराने, वा नस्य देने से शीघ्रही हिच की दूर होजातीहै ।

अन्य प्रयोग ।

पिप्पलीमधुयुक्तौवारसौधात्रीकपित्थयोः
लाजालाक्षामधुद्राक्षापिप्पल्यश्चशकृद्रसा
न् ॥ लिप्तात्कोलमधुद्राक्षापिप्पलीनाग
राणिवा । शीताम्बुसकःसहस्रात्रासो
स्मापनंभयम् ॥ क्रोधहर्षाप्रियोद्देगाह्विका
प्रच्यवनामताः । ह्विकाश्वासविकाराणां
निदानंयत्प्रकीर्तितम् ॥ वर्ज्यमारोग्य
कामस्तद्विकाश्यासाविकारीभिः ।

अर्थ—आमलेके रस वा कथके रस में पीपल और शहत मिलाकर पान करे ॥ अथवा खील, लाख, शहत और घोड़े की छीदके रसका सेवन करे । अथवा वेर, शहत, दाख, पीपल और सोंठका सेवनकरे । शीतल जलका तराडा, सहस्रात्रास दिखाना मूलेमें डालना, भय दिखाना, क्रोध करना, हर्षकराना, प्यारों का उद्देग कराना इनसब से हिचकादूर होदीहै ॥ ह्विका और श्वास ये

दोनोरोग जिनरकारणोंसे होतेहैं उनका त्यागदेना उन ह्विका और श्वासविकारियोंके लिये हित है जो आरोग्यकी इच्छा करतेहैं ।

उत्तरोगोंमें घृतविधान ।

ह्विकाश्वासानुबन्धायेथुष्कोरःकण्ठता
लुकाः ॥मकृत्यारुक्षदेहाश्वसर्पिर्भिस्तानु
पाचरेत् ।

अर्थ—जिन मनुष्यों के हिचकी और श्वास के अनुबन्धमें वक्षःस्थल, कंठ और ताड़ सूखगयेहैं और जिनकी देह स्वाभाविक रूक्ष है उनको घृतदेवै ।

दशमूलादिघृत ।

दशमूलरसेसर्पिर्दधिमण्डेचसाधयेत् ॥कृ
ष्णासौवर्चलक्षारवयःस्थाहिंगुचोरकैः॥का
यस्थयाचसंसिद्धकासश्वासौप्रणाशयेत् ॥

अर्थ—दशमूलके काथ और दधिमंड में पीपल, संचलनमक, जवाखार, हरड़, हींग और चोरक डालकर घृत पाक करे । अथवा दशमूलके काथमें छोटी इलायची डालकर घृत सिद्ध करे । इसके पानसे ह्विका और श्वास नष्ट होजातेहैं ।

तेजोवत्यादिघृत ।

तेजोवत्यभयाकुण्डपिप्पलीकदुरोहिणी ।
भूतकिंपौष्करमूलपलाशाश्चित्रकःशठी ॥
सौवर्चलतामलकीसैन्धवंविल्वपेशिका ।
तालीसपत्रंजीवन्तीवचातिरक्षसम्मितैः ॥
हिंगुपादैर्घृतप्रस्थंपचेत्तोयेचतुर्गुणे ॥एतद्य-
थावलंपीत्वाह्विकाश्वासौजयेन्नरः ॥ शा
स्वानिलाशौग्रहणीघृतपार्श्वरुजएववा ।

अर्थ—तेजोवती, हरड़, कूठ, पीपल, कु-

टकी, अजवायन, पुष्करमूल, टाक, चीतेकी जड़, कचूर, संचलनमक, भूयआंवला, सेंधानमक, नेलगिरी, तालीसपत्र, जीवन्ती, वच ये सब दो २ तोले लेवै फिर इनका काथ करके चौगुने काथमें एक प्रस्थघी पकावै इसमें भुनी हुई हींग आधा तोला डालदेवै । इस घृतको बलानुसार पीनेसे हिका और श्वास दूर होजातेहैं । शाखावात, अर्श, प्रहणीरोग, इद्रोग और पार्श्वेदना ये भी सब दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

मनःशिलासर्जरसलाक्षारजनिपदाकैः॥
मस्त्रिपुलैश्चकर्पाशैःप्रस्थःसिद्धोघृताद्धितः
जीवनीयोपसिद्धवासक्षौद्रंलेहयेद्घृतम्॥
द्रुपुष्पं चाभिकंवापिबेदुपघृतंतथा ॥
यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णवातानुलोम-
नम्।भेषजं पाप्तमक्षंवाताद्धतश्वासदिक्किने
वातकृद्वाकफहरं कफकृद्धानिलापहम्॥
कार्यनैकान्तिकंताभ्यांमायःश्रेयोऽनिला
पहम्॥

अर्थ—मनसिल, राख, लाख, हल्दी, पन्नाख, मजीठ और छोटी इलायची ये सब एक १ कर्प लेकर इनके चतुर्गुण काथ में घृत पाक करके सेवन करे । यह घृत अनुभव, कियाहुआहो।अथवा जीवनीय गणमें सिद्धकिया हुआ घृत सहत मिलाकर सेवन करे अथवा वासाघृतमें त्रिकुटा डालकर सेवन करे जो जो द्रव्य कफ वातनाशक, उष्ण और वातानुलोमाहैं वे सब खाने वा पीनेमें श्वास वा हिचकी रोगबाले को देवै ।

जो द्रव्य वातकर्ता और कफनाशकहैं अथवा जो कफकर्ता और वातनाशकहैं।।ऐसे द्रव्यों का सेवन ठीक नहींहै इनसे तो केवल वात नाशक द्रव्यहो उक्तरोगों में हितहै ॥

उक्तरोगोंमेंसंशमनद्रव्योंकोवेधान ।
सर्वोपांगुहृणाह्वल्पःशक्यश्चप्रायशोभवेत्॥
नास्पर्यशमनोपायोभृशःशक्यश्चकर्पणे ।
तस्मात्शुद्धान्धुद्धाश्चशर्मैर्नैवृहणरपिहि
क्काश्वासादितान्जन्तून्प्रायशःसमुपाच
रेदति ॥

अर्थ— इन संपूर्ण रोगोंमें वृहणकर्ता द्रव्य प्रायःअल्पशक्य होतेहैं, संशमनकर्ता द्रव्य अत्यन्त शक्य नहीं होते और कर्पण अत्यन्त शक्य होते हैं, अतएव हिक्काश्वास रोगी संशोधन द्रव्योंसे शुद्ध हुये हों वा न हुयेहों उनको शमनकर्ता और वृहणकर्ता औषधियोंका सेवन प्रायः करावै ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन
दुर्जयत्वेसमुत्पत्तौक्रियैकत्वेचकारणम् ॥
लिंगपथ्यञ्चाहिकानांश्वासानांचहृद्-

क्षितम् ॥

अर्थ— इस अध्याय में हिका और श्वासकी दुर्जयता, समानोत्पत्ति, समान चिकित्सा, समान कारण, लक्षण और पथ्य वर्णन किये गये हैं ।

इति श्री भाषाटीकचित्तायां अभिनवेदाधिराचि-
त्तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां-
त्रिक्रित्सितस्थाने हिक्काश्वासीचिकि-
त्सितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः॥

अथातःकासचिकित्सितं व्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तरं भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम कासचिकित्सितनामक अध्याय
की व्याख्या करेंगे ।

तपसायज्ञाशक्त्याश्रियाचपरयान्वितः॥
आत्रेयःकासशान्त्यर्थसिद्धं प्राहचिकित्सि
तम् ।

अर्थ—तप, यज्ञ, वृत्ति, और श्रौ के
कारण सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हुए आत्रेय
ऋषि खांसी की निवृत्ति के लिये अनुभूत
चिकित्सा का वर्णन करने लगे ।

कास के भेद ।

वातादिभ्यस्त्रयोवैचक्षतजःक्षयजस्तथा॥
पञ्चैतेस्युर्गुणांकासांबर्द्धमानाःक्षयप्रदाः ।

अर्थ—वातज, पित्तज, कफज, क्षतज
और क्षयज इन पांच प्रकारकी खांसी होती
है, क्रम २ से बढ़कर ये खांसी शरीर को
क्षीण करदेती है ।

खांसी के पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं भवेत्तेपांशूकपूर्णमलास्यता ॥ क-
ण्ठेकण्ठश्चभाज्यानामवरोधश्चजायते ।

अर्थ—गले और मुखमें शूक भराहुआ
मादम होना, कंठमें खुजली, तथा मुक्त प-
दार्थका अवरोध ये सब कास के पूर्वरूप हैं

कासका लक्षण ।

अथःप्रनिहतोवायुरुद्धंसांतःसमाश्रितः ॥
उदानभाद्रमापन्नःकण्ठेसरुस्तथीरासि ।

आचिपन्नान्निरसःस्वानिसर्वाणिप्रतिपूर-

यन् ॥ आभञ्जन्नाक्षिपन्द्दहं हनुमः यतथा
क्षिणी । नेत्रेपृष्ठमुरः पाश्वानिर्भज्यस्तव
यंस्ततः ॥ शुष्कोवासकफोवापिकसना
तूकामउच्यते ॥

अर्थ—नाचेसे रूकीहुई वायु ऊपर की
उठकर ऊपरवाले स्रोतों का आश्रय लेकर
उदानवायु से मिलकर जत्र कंठ और वक्षः
स्थल में प्रवृत्त होजाती है, तब सिर के
सम्पूर्ण स्रोतों को भरकर सम्पूर्ण देह को
विकल करदेती है, तथा हनु, मन्या और
आंखोंको विचलित करदेती है । तदनन्तर
वही वायु दोनों नेत्र, पीठ, वक्षस्थल और
पसलियों को तोड़कर स्तम्भित करदेती है।
सूखी वा कफके साथ खुल २ शब्द करने
से खांसी कहलाती है ।

कासमें विषमशब्दका हेतु ।

प्रतिघातविशेषणतस्यवायोःसरंहसः ॥
वेदनाशब्दवैषम्यंकासानामुपजायते ॥

अर्थ—नाचेसे रुकने के कारण वायु के
ऊपर जानेमें अनेक प्रकारकी वेदना होतीहै
उसी के अनुसार खांसीमें विषम शब्दहोतेहैं।

वातज कास का निदान ॥

रूक्षशीतकृपायाल्पप्रमितानशनस्त्रियः ॥
वेगधारणमायासोवातकासप्रवर्तकाः ॥

अर्थ—रूखे, कसाले और शीतल
पदार्थों के सेवनसे, अल्पाहार करनेसे, प्रमित
भोजनसे वा बिल्कुल न खाने से, खांसिसर्ग
से, वेग धारणसे, परिश्रम से वातज खांसी
की प्रवृत्ति होती है ।

वातजखांसी के लक्षण ।

हृत्पाश्वोरःशिरःशूलस्वरभेदकरोभृशम् ॥

शुष्कोरः कण्ठवक्त्रास्यहृष्टलोम्नःप्रताम्य
तः । निर्घोपीस्तनतोदन्यदौर्वल्यक्षयमो
हकृत् ॥ शुष्ककासःकफशुष्कंरुच्छ्रान्मु-
क्त्वाल्पतांजरेत् । स्निग्धाम्ललवणो
प्यौश्वशुक्तमात्रेप्रशाम्यति ॥ ऊर्द्धवातस्य
जीर्णोऽन्नेवैगवान्मास्तोभवेत् ।

अर्थ—हृदय, पसली, वक्षःस्थल और
शिरमें शुष्क होताहै, स्वरभंग होजाता है,
वक्षःस्थल, कंठ और मुखमें शुष्कता होती
है, लोम खड़े होजाते हैं, आंखों के साम्हने
अंधेरा छाजाता है शब्द बन्द होजाता है,
दीनता होती है, दुर्बलता, क्षीणता और
मोह होते हैं । सूखी, खांसी सुखा कफ बड़ी
कठिनतासे थोडासा निकलता है । चिकना
खट्टा, नमकीन और उष्ण भोजन करनेही
से शान्ति होजाती है । अन्नके पचनेपर
शायु फिर बलवान् होजाती है ॥

पित्तजकास का निदान ।

कडुकौष्णविदाह्यम्लक्षाराणामतिसेवन-
म् ॥ पित्तकासकरंक्रोधःसन्तापश्चाग्नि
सूर्यजः ॥

अर्थ—कडेव, ईपदुष्ण, विदाहो, खड़े
और क्षारादिके अत्यन्त सेवन से, क्रोधसे,
अग्नि वा सूर्य के सन्तापसे पित्तजकास उ-
त्पन्न होताहै ।

पित्तजकासके लक्षण ॥

पीतनिष्ठीवनासत्वंतिकास्यत्वं स्वराम
यः । उरोधूमायनंतृष्णादाहोमोहोरुचि
भ्रमः ॥ प्रततंकासमानश्चय्योर्त्तीपीवचप
श्यति । श्लेष्माणंपित्तसंसृष्टंनिष्ठीवातिच
पैत्तिके ॥

अर्थ—कफका पीलापन, नेत्रों में पीला-
पन, मुखमें कडवापन, स्वरभंग, हृदय में
धूआसा घुमडना, तृष्णा, दाह, मोह, अरुचि
भ्रम, अत्यन्त खांसने के समय आंखों के
सामने तारोकीसी चमक, दिखाई देना तथा
पित्त मिलाहुआ कफ निकलना येसब पित्त-
जकास के लक्षण हैं ।

कफजकासके हेतु ।

शुर्वभिष्यन्दिमधुरस्निग्धस्वप्नाविचेष्टनैः
वृद्धःश्लेष्मानिलंरुद्धाकफकासंकरोतिहि

अर्थ—भारी, अभिष्यन्दी, मधुर और
स्निग्ध द्रव्यों के सेवन से, निद्रा और वि-
चेष्टासे, बढाहुआ कफ वायुको रोककर क-
फकी खांसी उत्पन्न करता है ।

कफजकास के लक्षण ।

मन्दाग्नित्वारुचिच्छर्दिपीनसोबलेशगौरवैः
लोमहर्पास्यमाधुर्य्यबलेदसंसदनैर्युतम् ।
वहलंमधुरांस्निग्धनिष्ठीवातिघनंकफम् ।
कासमानोऽतिरुक्वक्षःसम्पूर्णोभिवमन्यते ॥

अर्थ—मन्दाग्नि, अरुचि, घमन, पीनस,
केश, भारापन, लोमहर्ष, मुखमें मटापन,
क्रेद, अंगग्लानि, अत्यन्त मधुर, स्निग्ध
और गाढा कफ निकलना तथा खांसते
समय अत्यन्त वेदना होना और वक्षःस्थल
कफ से भराहुआ मालूम होना ये कफजका
स के लक्षण हैं ।

क्षतजकास का हेतु ।

आतिव्यवायुभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः।
रुसस्पोरक्षतंवायुःगृहीत्वाकासमायहेत् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्त्रीगमन करने से; वीर

होने से, मार्ग चलने से, युद्ध करने से घोड़े हाथियों को रोकने से रूक्ष व्यक्ति के वक्षःस्थल में घाव होजाता है इस से वायु का संसर्ग होने से क्षतजकास उत्पन्न होता है क्षयजकासके लक्षण ।

सपूर्वकामतेशुष्कततःप्रीयेत्सशोणित्तम् ।
रुज्यमानेनकण्ठेनविरुग्नेनैवचोरसा ॥ मू
चीभिरिवतीक्षणाभिस्तुद्यमानेनशूलिना
दुःखस्पर्शेनशूलेनभेदपीडाभितापिना ॥
पर्वभेदंज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ॥

पारावतश्चाकूजनकासवेगात्क्षतोद्भवात्
अर्थ—इस रोग में प्रथम सूखी खांसी
उठती है फिर थूक के साथ में रुधिरआने
लगता है, कंठ और वक्षःस्थल में अत्यन्त
वेदना होने लगती है, पैनी सुई के चुभने
कासा शूल होने लगता है, वक्ष स्थल के
हाथ लगाने में दर्द होता है, फटने कीसी
पीडा तथा ताप होता है । जोड़ों में दर्द
ज्वर, श्वास, तृष्णा, और स्वरभंगता ये
उपद्रव भी होते हैं । इस क्षतजकास में
कंठ के भीतर क्यूतरके कूजनेके समान
शब्द होता है ।

क्षयजकासका हेतु ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्गमनि
प्रहात् । घृणिनांशोचतानृणांन्यापन्नेशौ
त्रयोमलाः । कुपिताःक्षयजकासंक्षुर्युर्देहक्ष-
यमदम्

अर्थ....विषम भोजन, असात्म्य भोजन
अति स्त्री संसर्ग मद्यग्राहि वेगनिग्रहादि
कारणों से, तृष्णा से, शोचसे, अग्नि के मन्द

होने से तीनों दोष कुपित होकर देह को
क्षीण करने वाली क्षयज खांसी को उत्पन्न
करते हैं ।

क्षयजकासके लक्षण ॥

दुर्गन्धहरितरक्तंष्ठीवित्पूयोमपंकफम् । स्था
नादुत्कासमानश्चहृदयंमन्यतेच्युतम् । अ
कस्मादुष्णशीतात्तोविहाशीदुर्वलःकृशः ॥
स्निग्धाच्छुस्ववर्णन्यक्श्रमिदृशनलोचनै
पाणिपादतलैःश्लक्ष्णैःसततासूयकोघृणी
ज्वरामिश्राकृतिस्तस्यपार्श्वरूक्षपीनसोऽ
रुचिः । स्वरभेदोनिमित्तञ्चभिन्नवृत्तपुरी
पता ॥ इत्येपक्षयजःकासःक्षीणानादिहेतु
शानः ॥

अर्थ—इस खांसीमें दुर्गन्धयुक्त हरा वा
लाल राधके समान कफ निकलता है, खांस-
नेमें ऐसा माछम होने लगता है कि हृदय
अपने स्थानसे जुदा हुआ जाता है । रोगीको
अकस्मात् कभी जाड़ा और कभी गर्मी ल-
गने लगती है, भोजन बहुत करता है इस
पर भी दुर्वल और कृश रहता है । मुखके
वर्ण और त्वचामें स्निग्धता और स्वच्छता
होता है, दांत और नेत्रोंमें चमक होती है ।
हथेली और पगंतली में चिकनापन होता है।
असूयकता और घृणा उत्पन्न होती है, ज्वर,
मिश्राकृति, पार्श्व वेदना, पीनस और अरुचि
होती है । मूत्र फटजाता है विनाही निमित्त
स्वरभंग होजाता है, यह क्षीण पुरुषोंकी देह
को नाश करनेवाली क्षयजकास होती है।
कासकासाध्यासाध्यवर्णनं ।
याप्योवलवतांवास्याद्याप्यस्त्वेवक्षतो

स्थितः॥कदाचिदपिसिद्धोतामेतौपादगु
णान्वितौ । स्थविराणांजराकासःसर्वो
याप्यःप्रकीर्तितः । त्रीन्माध्यान्साधयेत्
पूर्वान्पथ्यैर्याप्यांश्रयापयेत् । चिकित्
सापतऊर्ध्वन्तुगृणुकासनिवर्हिणीम् ॥

अर्थ—बलवान् रोगाके क्षतज और
क्षयज कास याप्य होजातीहै और यदि
चिकित्साके चारों पाद ठीक हों तौ ये दोनों
साप्य भी हो जाताहै, बृद्ध मनुष्योंकी
जरा कालीन खांसी याप्यही होती है । प-
हिली तीन प्रकार की साध्य खांसियों को
दूर करने का उपाय करै दूसरी दो याप्य
हैं इन को पथ्यद्वारा याप्य करै । अब कास
नाशक चिकित्साका वर्णन करते हैं उसे
श्रवण करो ।

वातकास में चिकित्साक्रम ।
रूक्षस्यानिलजंकासमादौस्नेहैरुपाचरेत् ।
सर्पिर्भिवस्तिभिःपेयायूपक्षीररसादिभिः ।
वातघ्नसिद्धैःस्नेहाद्यधूमैर्लेहैश्चयुक्तितः ।
अभ्यङ्गैःपरिपेकैश्चस्निग्धैःस्वेदैश्चयुद्धि
मान् । वस्तिभिर्वैद्विद्वातंशुष्कोर्ध्वञ्चो
र्ध्वभक्तिकैः।धृतैःसपित्तसकफजयेत्स्नेह-
विरेचनः ॥

अर्थ—रूक्ष व्यक्ति की वातज खांसीमें
प्रथम स्नेहन करै, पीछे घृत, वस्ति, पेया
यूप, क्षीर, मांसरसादि द्वारा चिकित्सा करै ।
वातनाशक द्रव्यों से संस्कार किये हुए स्ने
हयुक्त धूमपान और अत्रलेहों का प्रयोग क-
रै, तथा अभ्यंग, परिपेक और स्निग्ध स्वे-
दन भी करै । विष्टा और अधोवायु के व-

न्द होने पर वस्ति देवै और ऊर्ध्वभाग के
शुष्क होने पर भोजनोत्तर घृतपान करावै
तथा इस खांसी में कफ वा पित्तका संसर्ग
भी हो तौ स्नेह विरेचन देवै ।

कण्टकारी घृत ।
कण्टकारीगुद्चीभ्यांपृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे
प्रस्थःसिद्धोघृताद्वातकासनुद्धिहृदीपनः
अर्थ....कटेरी और गिलोय तीस तीस
पल लेकर इनका अठगुने जल में काथ करै
चौथाई शेष रहने पर इस को छानकर इस
में एक प्रस्थ घृत पकावै, इस के सेवन से
वातज कास नष्ट होजातीहै और अग्नि
बढ़जाती है ।

पिप्पल्यादि घृत ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलेचव्यचित्रकनांगरैः॥
धान्यपाठावचारास्नापष्ट्याहक्षारहिंशु-
भिः । कोलमात्रैर्घृतमस्थादशमूलैरसाढके
सिद्धांचतुर्थिकांपीत्वापेयामण्डापिबेदनु ॥
तच्छासकामहृत्पाद्वर्षप्रहणीदोपगुल्मनुत् ।
अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता
सोंठ धनियां, पाठा, वच, रास्ना, मुलहठी,
जयाखार और हींग इनका चूर्ण करले फिर
दशमूलके एक आढक काथमें एक प्रस्थ
घी और उक्त चूर्ण डालकर सिद्ध करे इस-
घृत में से प्रतिदिन एक पल सेवन करके
ऊपरसे पेया वा मंड पीवै, यह घृत श्वास,
खांसी, हृच्छूल, पार्श्वशूल, प्रहणीदोप और
गुल्मरोगोंको दूर कर देताहै ॥

त्र्युषणाद्यघृत ।
त्र्युषणंत्रिफलांद्राक्षांकाश्मर्याणिपरूपकम्

को पांच आदक जलमें पकावै, जव जो साज जाय और काथ भी चौथाई रहजाय तव उतार कर छानले, फिर इस काथमें एक तुला गुड, एक कुडव घी, एक कुडव तेल, एक कुडव पीपलीका चूर्ण डाले और पूर्वोक्त हरडों की गुठली निकालकर उसमें डाले जव ये पक जाय तव उतारले ठंडा होने पर इस में एक कुडव शहत डालकर रख छोडै । इसमें से थोडा सा अयलेह और दो हरड प्रति दिन सेवन करै । इसके सेवन करने से हुरीं और बालों का गिरना बन्द होजाता है वर्ण, आयु और बल बढताहै, पांचों प्रकारकी खांसी, क्षयी, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, अर्श, प्रहणी रोग, हृद्रोग, अरुचि और पीनस दूर होजातेहैं । यह उत्तम रसायन अगस्तजीने वर्णनकी है । (इसी में से कुछ परिवर्तन करके यूनानी हकीम गुरब्ये की हरड बनातेहैं) ।

अन्यप्रयोग ।

सैन्धवपिप्पलीभार्गीशृङ्गवेरंदुरालभाम्
दाडिमाम्लेनकोष्णेनभार्गीनांगरमम्बुना
पिबेत्स्वीदिरसारंघामदिरादधिमस्तुभिः ।
अथवापिप्पलीकल्कपृतभृष्टसैन्धवम् ॥
अर्थ—सैधानमक, पीपल, भाडंगी, अदरख जवासा, इनके चूर्णको अनारके रसके साथ पीवै अथवा भाडंगी और सोंटके चूर्ण को गरमजलके साथ फांके अथवा खैर-सार को मदिरा या दहीके तोडके साथ पीवै अथवा पीसी हुई पीपल को घीमें भून कर सैधानमक डालकर सेवन करै ।

धूमपान विधि ।

शिरसःसदनेसावेनासायाहृदिताम्यनि
कांसप्रतिश्यायरसेधूमवैद्यःप्रयोजयेत् ॥
दशांगुलान्मितानाडीअथवाष्टांगुलान्मि
ताम् । शरावसंपुटच्छिद्रकृत्वाजिह्वावि
चक्षणः ॥ वैरेचनमुखेनैवकासवान्धूम
मापिवेत् । तमुरःकेवलंप्राप्तमुखेनैवोद्गमेत्
पुनः ॥ सद्यस्यतैक्षण्याद्विक्षिप्यश्रेष्ठा
णामुरसिस्थितम् ॥ निष्कृप्यशमयेत्कांस
वातश्लेष्मोभयोद्भवम् ॥

अर्थ—खांसी और जुकाममें जो शिरमें वेदना, नासास्त्राव और हृदय में वेदना होतीहो तो धूमपान करावै । भाठ वा दसे अंगुलकी एक नली लेकर एक शराव सम्पुट के छिद्र में लगा देवै यह नली टेढी होनी चाहिये (जैसा बहुधा हुकों में देखने में आता है) इस शराव सम्पुट अर्थात् चिलम में वातनाशक द्रव्योंको धरकर ऊपर से आग्नि रखदे और पूर्वोक्त नली को मुंह में लगाकर धूँआं खींचै । जव यह धूँआं वक्षःस्थल के भीतर पहुंच जाय तब इसे मुख के रस्ते सेही बाहर निकाल देवै । इस धूँए की तेजी से छाती में जमाहुआ कफ खिचकर बाहर निकलजाता है । इस रीति से वातकफजन्य खांसी दूर होजाती है ॥

धूमपान का प्रयोग और गुण ।

मनःशिलालयपृथाहमांसीमुस्तेगुदैःपि
वेत् । धूमंतस्यानुचक्षीरंमुखोष्णंसगुहं
पिबेत् ॥ एषकासानुपृथग्दोषसन्निपातो
द्भवान्जयेत् । प्रसद्यपर्यंतसिद्धानन्यैर्यो
गशतैरपि ॥

अर्थ—मनसिल, हरिताल, मुलहटी, जटामोसी, मोथा और गोंदी इन को पूर्वोक्त रीति से पीवै ऊपर से गुनगुने दूध में गुड डालकर पीवै । यह घूमपान पृथक् २ दोष तथा सन्निपात से उत्पन्न हुई खांसी को दूर कर देता है तथा जो अन्य सैंकड़ों प्रयोगों से भी खांसी दूर नहीं हुई है वह इससे दूर होजाती है ।

घूमपानके अन्यप्रयोग ।

प्रपुण्डरीकमधुकंशाङ्गणालमनःशिलाम् ।
मरिचंपिप्पलीद्राक्षामेलांशुरसमञ्जरीम् ॥
कृत्वावर्त्तिपिबेद्घूमंक्षौमञ्जैलानुवर्त्तिताम् ॥
घृताक्तामनुचक्षीरंगुडादेकमथापिवा ॥
मनःशिलैलामरिचक्षाराञ्जनकुटन्नटैः ।
वंशलोचनशैवालक्षौमलक्तकरोहिषैः ॥
पूर्वकल्पेनधूमोऽयंसानुपानोविधीयते ।
आलमनःशिलातद्वत्पिप्पलीनागरैःसह
त्वर्गुण्डीवृहस्पौद्वैतालमूलमनःशिला ।
कार्पासास्थयश्वगन्धाचधूमःकासविना
शनः ॥

अर्थ—पुण्डरिया, मुलहटी, शार्ङ्ग (घंटाखा), हरिताल, मनसिल, कालीमिरच, पीपल, दाख, इलायची, तुलसीकी मंजरी, इन सबको पीसकर बत्तीसीबना एक रेशमी कपड़ेमें लपेटे फिर इसे घीमें भिगोकर घूम पानकरे । पीछे दूध वा गुड का शरवत पीवै ॥ अथवा मनसिल, इलायची, कालीमिरच, जवाखार, अंजन, केवटीमोथा, वंशलोचन, शैवाल, अलसी, लाख, रोहिपतृण इनसबकी पूर्वोक्त रीतिसेबत्ती बनाकर घूमपान करे । तथा पूर्वोक्त अनुपानका सेवनभी करे ।

अथवा हरिताल, मनसिल, पीपल और सोंठकी बत्ती बनाकर पूर्वोक्त रीतिसे घूमपान करे । अथवा गोदाकी छाछ, दोनोकटेरी, तालमूली, मनसिल, विनौल्य और असगंध का भी पूर्वोक्त रीति से घूमपान करने पर खांसी दूर होजाती है ॥

यूपादिप्रयोग ।

ग्राम्यान्पूर्वादकैःशालियवगोधूमपाण्डिकान्
रसैर्मांसात्मगुप्तानांयूपैर्वादापयोद्धतान् ॥
यवानीपिप्पलीबिल्वमध्यनागरचित्रकैः ।
रास्नाजाजीपृथक्पर्णापलाशशटिपौष्करैः
स्निग्धाम्ललवणांसिद्धाप्रेयामनिलजेपि-
वेत् । कटीहृत्पार्श्वकोष्ठार्तिश्वासहिक्का
मणाशनीम् ॥ दशमूलरसेतद्वत्पञ्चको-
लगुडान्विताम् । पिबेत्समतिलापेयांक्षी-
रेवापिससैन्धवाम् ॥ मत्स्यकौक्कुटवा-
राहैरामिपैर्वाघृत्तान्वितैः । सिद्धांससैन्ध-
वापेयांवातकासीपिबेन्नरः ॥ वास्तुकवा-
यसीशाकंमूलकंमुनिपण्णकम् । स्नेहांस्त-
लादयोभक्ष्याःक्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥
दध्धारनालाम्लफलप्रसन्नापानगेवच ।
शस्यतेवातकासेतुस्वादाम्ललवणानिच ॥

अर्थ—ग्राम्य, आनूप, और औदक मांस रसोंके साथ अथवा फेंच के धीजके यूप के साथ शालीचांवल, जौ, गेहूं, और साठी चांवल देवै । अजवायन, पीपल, बेलगिरी सोंठ, चीता, रास्ना, जीरा, पृष्णपर्णी, पलास, कचूर, पौष्कर । इन सबको समान भाग लेकर इनका क्वाथ करे इस क्वाथमें चिकनाई, खटाई और नमक डालकर पेया

सेवन करावै । दोनों काकोली दोनों कटेरी, मेदा, महा मेदा, अहसा और सोंठ इनके साथ पित्त कास में मांसरस, यूप वा दूध बनाकर देवै । शरादि पंचमूल, पीपल और दाख इनके कषाय के साथ औटाय्या हुआ दूध शहत और चीनी डालकर पान करावै ॥

स्थिरादि दूध वा घृत

स्थिरामितापृश्निपर्णाश्रावणावृहतीयुगैः।
जीवकर्पभकाकोलीतामलक्यदिंजीरकैः॥
घृतपयःपिवेत्कासीज्वरीदाहीक्षतक्षयी।
तज्जंवामापयेत्सर्पिःसक्षीरेक्षुरसंभिपक्॥

अर्थ—शालिपर्णी, चीनी, पृष्णिपर्णी, श्रावणी, महाश्रावणी, कटेरी, बडी कटेरी, जीवक, ऋपभक, काकोली, भून्यांबला, अद्रि जीरा इन के साथ औटाय्या हुआ दूध पीने से खांसी, ज्वर, दाह, क्षत और क्षय दूर होजाते हैं अथवा इन्ही द्रव्यों के साथ दूध और ईश्वकारस डालकर सिद्ध किया हुआ घी हितकारी होता है ।

जीवकाशैर्मधुरकैःफलैश्चाभिषुकादिभिः।
फलकैस्त्रिकार्षिकैःसिद्धेपूतशोषेचसर्पिषि॥
शर्करापिप्पलीचूर्णस्त्ररुक्षीर्यामरिच
स्यच । शृङ्गाटकस्यचावाप्यसौद्रगभान्
पलांभितान् ॥ गुडान्गोधूमचूर्णेनकृत्वा
खादेदिनाशनः । शृङ्गादोपशोपेपुका
सक्षीणक्षतेपुच ॥ शर्करानांगरोदीच्यं
कण्टररीशठसिमाम् । पिष्ट्वारसंपिवे
त्पूतचस्त्रेणघृतमूर्च्छिनम् ॥ माहिष्यजा
विगोक्षीरपात्रीफलरसैःसपैः ॥ सर्पिः

सिद्धपिवेद्युक्त्यापित्तकासनिवर्हणम्॥

अर्थ—जीवकादि मधुरगणोक्त दस द्रव्य, मधुरफल तथा पिस्तादि फल ये तीन तीन कर्प लेकर इनका काथ करै और चौथाई शोष रहनेपर घृत सिद्ध करै और इसमें शर्करा, पीपल, वंशलोचन, कालीमिरच, सिंचाडा, इन सब को समानभाग लेकर उक्त घीमें डालदे और इस घीमें गेहूँका चून सेककर एक एक पलके ऐसे मोदक बनावै जिनके वांच में शहत भराहो । इसके सेवनसे शुक्रदोष रक्तदोष, शोष, खांसी, और क्षीण क्षतरोग शान्त होजाते हैं ।

सोंठ, नेत्रवाला कटेरी और कचूर समान भाग लेके पीसकर रस निकालले इसमें चीनी और घृत डालकर सेवन करै। भैंस का दूध, बकरीका दूध, भेडका दूध, गौका दूध, आंवलेका रस, इन सबको समानभाग लेकर इनमें सिद्ध किया हुआ घी युक्तिपूर्वक सेवन करनेसे पित्तकी खांसी दूर होजातीहै।

कफजकासमेंचिकित्साक्रम ।

वलिनंबमनैरदादौशोषयेत्कफकासिनम्।
यवाक्षैःकटुह्रस्त्रोष्णैःकफघ्नैश्चाप्युपाच
रेत् ॥ पिप्पलीचारिकैर्यूपैःकौलत्थंमूलक
स्यचालघून्यजानिंभुञ्जीतरसैर्वाकटुंका
न्वितैःधान्वैवलयरसैःसैर्हैःतिलसर्पप
विल्वजैःमध्वस्त्रोष्णांश्चुतक्रंवामर्धवा
निगदंपिवेत्॥

अर्थ—कफकी खांसी वाला रोगी जो बलवान् हो तो प्रथम वमन देकर संशोधन करै फिर कफनाशक कटु, रुक्ष और उष्ण प-

द्राघोसे संस्कार कियाहुआ यवान्न देवे । पी-
पल और जवाखार डालकर कुठरीं वा मूली
के यूपके साथ हलके अन्नका भोजन करावे
अथवा कटुरसोंसे तयार कियाहुआ धान्वदे-
शज अथवा विलेश्यों का मांसरस देवे,
अथवा तिल, सरसों और विल्वके तेलके सा-
थ भोजन करावे ऊपर से मधु, कांजी, गर-
मजल, छाछ मद्य या निगद सेवन करावे ॥

कफजकास में पेयद्रव्य ।

पीपकराग्वधंमूलंपटोलान्तंनिशांस्थित-
म् । जलमधुयुतंपेयंकालेष्वन्नस्यवात्रिषु ॥
कट्फलंकृत्तृणंभार्गाम्बुस्तंधान्यंबचाभया
म् । शुण्ठीपर्वटकःशृङ्गीसुराह्वयञ्चशृत्तंज
ले ॥ मधुहिंशुयुतंपेयंकासेवातकफात्मके
कण्ठरोगेमुखेशूलेश्वासहिकाज्वरेपुच ॥

अर्थ—पीपकरमूल, अमलतासका जड
परबल इनको रात्रि में भिगोदेवे, दूसरेदिन
भोजन के समय इस जल में शहत डालकर
पीवे । अथवा कायरुल गंधतृण, भाडंगी,
मोथा, धनिपां, वच, हरड, सोंठ, पित्तपा-
पडा, काकडासीगी इनका क्वाथ करके शहत
और सुनीहुई हींग डालकर पीवे, इस से
वातकफ की खांसी, कंठरोग, मुखरोग, शूल
श्वास, हिचकी और उबर दूर होजाते हैं ।
पाठांशुण्ठीशटीमूर्वागवाक्षीमुस्तपिप्पलीम्
पिष्ट्वाघर्माभ्युनाहिंशुसैन्धवाभ्यांयुतांपि-
वेत् ॥ नागरातिविपांमुस्तंशृङ्गीकर्कटक
स्यच । हरीतकीशटीचैवतनेवाविधिना
पिवेत् ॥ तैलभृष्टंचपिप्पल्याःकल्काक्षंस
सितोत्पलम् । पिवेद्वाश्लेष्मकासघ्नकु

(१२८)

लत्थरससंयुतम् ॥ कासमर्दाश्वविट्भृङ्गर-
जोवार्ताकजारसाः । संक्षौद्राःकफकास
घ्नाःसुरसस्यासितस्यच ॥ देवदारुश
टीरास्नाकर्कटाख्यादुरालभा । पिप्पली
नागरंमुस्तंपथ्याधात्रीसितोपलाः ॥ म
धुतैलयुतावेतौलेहैवातानुगेकफे ॥

अर्थ—पाठा, सोंठ, कचूर, मरोडफली
इन्द्रायण, मोथा, पीपल इनको पीसकर
हींग और सेंधानमक मिलाकर गरमजलके
साथ पान करे । अथवा सोंठ, अतीस, मो
था, काकडासीगी, हरड और कचूरको पी
स हींग और सेंधानमक डालकर गरमजल
के साथ पीवे । अथवा पीपलके तौलेभर
कल्कको तेलमें भूनकर मिश्री डालकर कुल-
धी के रसमें मिलाकर पीवे इससे कफकी
खांसी दूर होजातीहै । अथवा कसौंदी के
पत्तोंका रस, घोड़ेकी लीद का रस,
भांगरेका रस, बेंगनका रस, शहतके साथ
मिलाकर पीवे, अथवा काली तुलसीके प-
त्तों का रस शहत डालकर पीवे । अथवा
(१) देवदारु, कचूर, रास्ना, काकडासी-
गी, जवासा, अथवा (२) पीपल, सोंठ,
मोथा, हरड, आंबला और मिश्री इनदोनों
प्रयोगों को शहत और तेलमें मिलाकर चा
ठनेसे वातानुबंधी कफकीखांसी दूर होजातीहै
कफजकासनाशक चार प्रयोग ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली
पथ्यातामलकीधात्रीभद्रमुस्तानिपिप्पली
देवदार्वभ्यामुस्तंपिप्पलीविश्वभेषजम् ।
विशालापिप्पलीमुस्तांत्रित्वाचेतिलेहयेत्

उनको पित्तकास में कहा हुआ पथ्य देना चाहिये । तथा इस पथ्य में दूध, घी और मधु का अधिक भाग होना चाहिये । परन्तु उन खांसियों में जो दो-दो दोषों के मेल से उत्पन्न हुई हैं उन में कुछ विशेषता होती है, यथा—वातपित्त की खांसी में शरीर में भेदनवत् पांडा होनेपर घृत से अभ्यंग करावै । वायुकी अधिकता होनेपर वातनाशक तैलों को काम में लावै, जो हृदय और पसली में वेदना की अधिकता होती जीवनीय द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घृत हितकर होता है । ऐसे खांसीवालोंको जिनके दाह हो, कफके साथ रुधिर आता हो, जठराग्नि प्रबल हो और उनको मांस भक्षण अनुकूल हो तो लावादिक पक्षियोंका मांसरस पान करावै । जो तृपाकी प्रबलता हो तो शरमूलादि द्रव्यों को डालकर औटा या हुआ बकरी का दूधदेवै । जिसके नाक का मुख के रस्ते से रुधिर जारी हो । उसे दूध से निकला हुआ घी पानकरावै वा उसकी नस्य देना हितकर होता है, जो रोगी थकाया हो, क्षीण होगया हो वा उसकी आग्नि मन्द पडगई हो तो उसे यवागू पान करावै । देह की स्तम्भता वा आयाम के होने पर घीकी उत्तम अर्थात् बड़ी मात्राका पान करावै । इस में पित्तरक्त से अविशेषी वात नाशक क्रिया भी हितकर होती है ।

धूमपान के द्रव्य ।

निवृत्तेक्षतदापेतुकफेवृद्धरःशिरः ।
दाहपित्तकासिनोपस्पसधूमान्नापिवेदिमान् ।

दूधेदेमधुकंदेचवलेतःक्षामलक्तकैः । वार्तितधूममापीयजीवनीयवृत्तंपिवेत् ॥ मनःशिलापलाशाजगन्धात्वयक्षीरिनार्गरः । भावयित्वापिवेत्धूमशर्करक्षुगुडोदकम् ॥ पिष्ट्वापानःशिलातुल्यामाद्रियावटशृंगयाससर्पिष्कापिवेदधूमंतित्तिरितिभोजनम् । भावितंजीवनीयैर्वाकुलिङ्गाण्डरसायुतैः । सौमधूमांपिवेत्क्षीरंशृतंचाग्रोगुडैःपिवेत् ॥ अर्थ—जो छाती का क्षत मिटजाम और उसके उत्तेजक वातपित्त दोषभी शान्त हो जाय । परन्तु कफ बढजाय और उस कफ के बढने से शिर में दलने कीसीपीडा हो, तो निम्न लिखित धूमपान हितकर होते हैं। मेदा, महामेदा, मुलहटी, बला, नागबला, इनको पीसकर रेशमा वस्त्र में और चिधडे में लपेटकर घी में भिगोकर धूमपान करै । धूमपान करने के पीछे जीवनीय घृत का सेवन करै । मनसिल, पलाश, अजगन्ध, वंशलोचन और सोंठ इनको पीसकर धूर्वोक्त रीति से बत्ती तयार कर के धूमपान करै ॥ तदनन्तर गुडका शरवत वा शर्करेक्षु (चीनी का शरवत—ईखकारस) पानकरै ॥ बडकी हरी कोपल और मनसिल ये दोनों समानभाग लेकर पीसले और घीमें सानकरै पूर्ववत् धूमपान करै, पीछे, तीतर के मांसरसके साथ पथ्य लेवै । अथवा जीवनीय गणोक्त द्रव्य और चिर्रोटे के अण्डे इन के रसकी रेशमीवस्त्रमें भावना देकर सुखाले और इसकी बत्ती बनाकर धूमपान करै और ऊपरसे गरम गरम झोहे के गोले डालकर गरम किया हुआ दूध पान करावै ।

क्षयज कास में चिकित्साक्रम ।
सम्पूर्णरूपेक्षयजदुर्बलस्यविवर्जयेत् ।
नवोत्थितंवलघतःप्रत्यारूयायाचरेत्क्रि-
याम् ॥ तस्मैवृंहणमेवादौकुर्यादग्नेश्चव-
र्द्धनम् । बहुदोषायसस्नेहंपृदुदद्याच्चशो-
धनम् ॥

अर्थ—यदि क्षयकी खांसी अपने पूर्ण रूप पर पहुंच गई हो और रोगी दुर्बल हो तो उसकी चिकित्सा न करै । और जो रोग नया हो और रोगी भी वलघान् हो तो यह कहकर चिकित्सा करै कि “आराम होगा तो होजायगा और न होगा तो खैर,, ऐसे रोगी को प्रथमही वृंहणकर्त्ता और अग्निवर्द्धक औषध देनी चाहिये और जो बहुत दोषों से रोगी युक्त हो तो मृदु स्निग्ध विरेचन देवै ।

क्षयजकास में विरेचन ।

शम्पाकेनत्रिवृत्तयामृद्धीकारसयुक्तया ।
विल्वकस्यकपायेणविदारीस्वरसेनच ॥
सर्पिःसिद्धंपिवेद्युक्तयाक्षीणदेहोविशोधन-
म् । हितंतेदेहवलयोस्स्यसंवरणंमतम् ॥

अर्थ—अमलतासका गूदा और निसोथ इसमें दाखका रस डालकर घी सिद्ध कर के पान करावै अथवा निसोथ और विदारी कन्द के कपाय में घृत सिद्ध करके देवै । यह क्षीण देहवालोंके लिये उत्तम विरेचन है । इस रोग में देह के बलकी रक्षाकरना आवश्यकीय है ॥

पित्तकफचसंक्षीणेपरिक्षीणेपुत्रात्तु ॥
घृतककटकीक्षीरंद्विवलासाधितंपित्ते ॥

विदारीभिःकदम्बैर्वातालशस्यैस्तयाशृत-
म् ॥ घृतंपयश्चमूत्रस्यवैवर्ण्येकृच्छ्रएवच-
शूलसवेदनेमेद्रेपायौसश्रोणिबंधने ॥
अनुवास्यांघृतमण्डनमधुनामिश्रकेणवा ।

अर्थ—पित्त और कफके क्षीण होने पर तथा धातुओंके क्षीण होने पर काकडा सींगी, खरैटी, नागबला इनको पीसकर इनमें इनसे चौगुना दूध और चौथाई घी डालकर सिद्ध करै । अथवा मूत्रकी विवर्णता और मूत्रकृच्छ्र में विदारीकन्द अथवा कदंब अथवा ताड़ के अंकुरोंके साथ पाक कियाहुआ घी दूध देवै । मेढ, गुदा, श्रोणी और बंधन में शूल तथा वेदना होनेपर शहत मिलेहुए घृतमंड की अनुवासन वस्ति देवै अथवा घी और तेल मिलाकर अनुवासन देवै ।

जाङ्गलैःप्रतिशुक्तस्यवर्तकाथाविलेशयाः॥
क्रमशःप्रसहाधैवप्रयोज्याःपिशिताशिनः
औष्ण्यात्प्रमाथिभावाच्चस्रोतोभ्यः च्या-
वयान्ततोःकफैःशुद्धैश्चतैःपुष्टिकुर्यात्सम्य-
ग्वहनरसः ॥

अर्थ—जांगल, वर्तकादिक विलेशय तथा मांसाहारी प्रसहोंका मांस क्रमसे देवै, इनका मांस उष्ण और प्रमाथी होने से स्रोतों से कफको निकाल देताहै । जब सब स्रोत शुद्ध होजाते हैं तब उनमें अच्छीतरह बहता हुआ रुधिर शरीरको पुष्ट करदेता है ॥

दशमूलादि घृत ।

चविकात्रिफलाभार्गीदशमूलैःसचित्रकैः
कुलत्थपिप्पलीमूलपाटाकोलयवैर्जले ॥

शृतैर्नगिरर्दुःस्पर्शापिप्पलीशठिपौष्करैः।
कलकैः कर्कटशृङ्गाचसमैःसर्पिविपाचये
त् ॥ सिद्धेऽस्मिन्चूर्णितौशारोद्दोषञ्चलव
णानिच । दत्त्वापुवत्यापिचेन्मात्रांक्षय
कासनिपीडितः ॥

अर्थ—चव्य, त्रिफला, भाङ्गी, दशमूल
चीता, कुलथी, पीपलामूल, पाठा, बेर और
जौ इनके काथ में सोंठ, जवासा, पीपल,
फचूर, पौहकारमूल और काकडासींगी इन
सबका समान समान कलक डालकर घृत
पकावै घृत पकनेपर दोनों क्षार और पांचों
नमक डाल युक्तिपूर्वक मात्राके अनुसारपीवै
इससे क्षयकी खांसी दूर होजाती है ।

गुहृच्यादि घृत ।

गुहृचीपिप्पलीमूर्वाहरिद्रांश्रेयसीवचाम्
निदिग्धिकांकासमर्दपाठांचित्रकनागरम्
जलेचतुर्गुणेषयत्वापादश्रेपेणतत्समम् ।
सिद्धंसर्पिःपिबेद्गुल्मश्वासातिक्षयकास
जुव ॥

अर्थ—गिलोय, पीपल, मरोडफली, ह
लदी, गजपीपल, वच कटेरी, कसौदी,
पाठा, चीता, सोंठ, इनसबका चौगुने जल
में काथकरै, चौथाई शेष रहनेपर घृत पका
कर सेवन करै । इस घृतसे गुल्म, श्वास,
और क्षयजकास दूर होजाती है ॥

कासमर्दादि घृत ।

कासमर्दाभयामुस्तपाठाकटुकलनागरैः ।

उरीः ॥ १०२२ ॥ १०२२ ॥ १०२२ ॥ १०२२ ॥
चेद्गोपज्वरप्लीहसर्वकासहरंशिवम् ॥

अर्थ—कसौदी, हरड, मोथा, पाठा, का
यफल, सोंठ, पीपल, कुटकी, खमारी और
तुलसी इनसबको एक २पल लेकर इन का
काथ करै । इसमें दूध और दाखका रस
एक आढक डालकर एक प्रस्थ घी पका
कर सेवन करै तो शोष, ज्वर, ग्रीहा और
सम्पूर्ण प्रकारकी खांसी दूर होजाती है ॥

धात्री फलादि घृत ।

धात्रीफलैः क्षीरसिद्धः सर्पिवाप्यवचूर्णि
तम् । द्विगुणेदाडिमरसेविपक्षंघोपसं
युतम् ॥ पिबेद्दुपरिभक्तस्ययवक्षारघृतं
नरः । पिप्पलीगुडसिद्धंवाछागक्षीरयुतं
घृतम् ॥ एतान्यग्निविचृद्ध्यर्थसर्पिपिक्षय
कासिनाम् । स्युर्दोषवद्धकोष्टोरःस्रोत-
सांचविशुद्धये ॥

अर्थ—दूधमें आंवलोंको पकाकर उन
की गुठलीनिकाळ डाले फिर इनकी लुगदी
बना घृतमें पकावै अथवा घी से दुगुना
अनारका रस इसमें त्रिकुटा डालकरपकावै ।
तथा भोजन करनेके पीछे जवाखारके साथ
सिद्ध किये हुए घृतका पान करै अथवा
पीपल, गुड, वकरीका दूध और घृत इन
को सिद्ध करके देवै । ये घृत क्षयकासवाले
रोगी की अग्नि बढ़ाने में उपयोगी होते हैं
तथा इनके सेवन करने से दोषों की विव-
द्धता, कोष्ठ और उरःस्रोत शुद्ध होजातेहैं।
हरीतक्यावलेह ।

हरीतकीयवकायद्वाढकेविंशतिपचेत् ।
स्विन्नाम्नादित्वातास्तास्मिन्पुराणं गुडपद्म
लम् ॥ दधान्मनःशिलाकर्षकर्पाद्विचर-

साधनात् । कुट्टयाञ्चिन्वपिप्लव्याःमले
रःश्वासकासनुत् ॥

अर्थ—हृदय नग कीम लेकर जो के दो
आयुक्त तथापि पकौ सीजनकर गुट्टियां
निकाशकर दीमशांते उनमें सा. पत्र पुराना
गुट्ट डालकर साथ एक कर्ष मनसिद्ध, भाषा
कार्य रसौत, तथा कुट्टय पांचउ ये साथ
पीसकर डाटेंये । इग ठेहका रोपन करने
से श्वास और गानी दूर होजाते है ॥

अथ भ्रंशलेह ।

श्राविषःशूनयोदग्धाःसपृत्तसौद्रगकराः।
श्वासकामहरावर्दितादोषाभाद्रसर्पिषा ।
परण्टपप्रक्षारंगान्योपतल्लगुट्टान्विनम् ।
सुरसंरण्टपप्रार्णाविधिनानेनलेहयेत् ।
द्राक्षापप्रकवानांविप्लवली भाद्रमापिषा ।
लिगान्भ्रूपणचूर्णवापुराणगुट्टमापिषा ॥
विप्रकीर्षकलाजानाकिकंटाग्न्यकटुत्रिक
म् । द्राक्षाञ्चसौद्रात्तविध्यालिगादद्यात्
गुटेनवा ।

अर्थ—मेहके काटों की भस्मको घी,
शहद और चीनी मिठाकर चाटे अथवा मौर
के पंगोंकी मग्न को घी और शहद के
साथ चाटने से श्वास और काम दूर होजाते
है, अथवा शरदी के पत्तों का क्षार त्रिकुटा
मिठाकर गुट्ट और सेठ के साथ चाटे
अथवा इनी शीतसे गुट्टसी और अरदी के
पत्तोंका क्षार चाटे । दाम, पत्राण, यंगन,
पीपल इनके चूर्ण को घी और शहद के
साथ चाटे अथवा उम में त्रिकुटा का चूर्ण,
पुगना गुट्ट और घी मिठा कर चाटे । ची-

सा, नितला, जीरा, काकडासोमी, त्रिकुटा
और दाम इनको घी, शहद और गुट्ट के
साथ चाटे ।

पञ्चकाशयलेह ।

पञ्चकंप्रिफलान्योपविट्टसुरदाग्न्य ॥
पलारास्नांचतुन्यानिमूर्ध्मचूर्णानिकार-
येत् ॥ सर्वरोभिःसमं चूर्णःपृथक्साद्रष्टे-
सिताम् । विमध्यलेहयेद्वैर्गमर्षसागदरं
शिवम् ॥

अर्थ—पत्राण, त्रिकुटा, त्रिकुटा वाय-
विट्टग, देवदाक, रसौती, शाना, इनमरको
समन भाग लेकर गहीन पीसते और इनमें
चीनी, शहद और घी प्रत्येक चूर्ण के वा-
मिश्रकर चाटे । इतसे सम्पूर्णप्रकारकी ग्या-
सी दूर होजाती है ।

जीवन्त्यायलेह ।

जीवन्तीमधुकंथाटांत्वर्क्षारंविप्लवलीश-
ठीम् । सुरसेलेपसकंद्राक्षाद्वैरुत्प्यावितुन्न
कम् ॥ क्षारिवापौष्करंमूलककंटाग्न्यांर
साञ्जनम् । पुनर्नर्षारजोलोदंवायमाणां
यथानिकाम् ॥ भार्गीतामलकीन्दुद्विचि
ट्कण्ठन्वयासकम् । क्षारचिप्रकचव्याम्ल
येतमन्यापदार्थ ॥ चूर्णाकृत्यसमांशा
निलेहयेत्साद्रसर्पिषा । चूर्णात्पाणितलं
पञ्चकासानेपच्यपोहंति ॥

अर्थ....जीवन्ती, गुट्टहटी, पाठा, वंश-
लोचन, त्रिकुटा, कचूर, मोथा, छोटी इत्या-
यची, पत्राण, द्राक्षा, दोनों कीटरी धनियां
क्षारिवा, पुष्करमूल, काकडासोमी, रसौत,
साठ, लोहचूर्ण, प्रायमाणा, अजयायन,

भोजनमें अरुचि ये तीन घमनके पूर्वरूपहैं

वातजघमनका निदान ।

व्यायामतीक्ष्णौपधशोकरोगभयोपवासा
द्यतिकर्पितस्याक्रुद्धोमहास्रोतसिमातरिश्वा
दोपानसमुत्किलइयतदृद्धमस्यन्।आमा

शयोद्रेककृतश्चर्मप्रपीडयेच्छर्दिरुदीरयेच्च
अर्थ—व्यायाम, तीक्ष्ण औपध, शोक
रोग, भय और उपवास से अत्यन्त कृश
हूप मनुष्य के महास्रोतों में वायु कुपित हो
कर दोषोंको उत्कृष्ट करके ऊपर को फेंकती
है तथा हृदयादि मर्मस्थानोंको पीडित करके
घमनको करताहै । यह घमन आमाशयके
उद्रेकसे भी होती है ॥

वातजघमन के लक्षण ॥

हृत्पार्श्वपीडामुखशोपमूर्द्धनाभ्यतिक्रास
स्वरभेदतौदैः।उद्गारशब्दप्रवलंसफेनविच्छ
न्नकृष्टतनुकंपायम्॥कृच्छ्रणचाल्पमह

ताचवेगेनार्त्तोऽनिलाच्छर्दयतहिदुःखम्॥

अर्थ—हृदय और पसली में वेदना, मुख-
शोष, नाभिके ऊपर पीडा, खांसी, स्वरभेद
तोद, और डकारमें अत्यन्त शब्द होताहै ।
तथा क्षागदार, फटी हुई कष्टकर पतली कसी-
ली, अत्यन्त फट से, थोड़ी, और अत्यन्त
पेगव्रती घमन होतीहै । वातज घमन बड़ी
दुखदाई होतीहै ।

पित्तजघमनका निदान ॥

अजीर्णकट्वम्लविदास्रशीतैरामाशयेपि
क्षुदीर्णवेगम्॥रसायनीभिर्विसृतमपीड्य
मर्पोद्धमागम्यवमिकरोति ॥

अर्थ—अजीर्णमें कटवे, खट्टे, विदाही

और उष्ण पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे आम-
शयमें पित्त अत्यन्त उर्दारण होकर रसवाही
स्रोतोंके द्वारा फैलकर मर्मस्थान को पीडित
करके ऊपरको उठकर घमन करताहै ॥

पित्तजघमनके लक्षण ॥

मूर्च्छापिपासामुखमूर्द्धकण्ठताल्वक्षिरुन्ता
पतमोभ्रमार्त्तः।पित्तभृशोर्ष्णहरितसतिक्तं
धूम्रञ्चपित्तनवमेत्सदाहम् ॥

अर्थ—पित्तज घमन में मूर्च्छा पिपासा,
मुख, मूर्द्धा, कठ, तालु, अक्षि, इनमें संताप
अंधकार, छाना; चकर आना, ये लक्षण होते
हैं । तथा इसमें अत्यन्त उष्ण, तांखे, घूँआं
और दाहयुक्त पित्त निकलते हैं ॥

कफज घमनका निदान ।

स्निग्धातिगुर्वाभिवदाहिभोज्यैः।स्वप्ना
दिभिश्चैवकफोऽतिवृद्धः॥उरःशिरोमर्मर
सायनीश्चासर्वाःसमावृत्यवमिकरोति ॥

अर्थ—स्निग्ध, भारी, आम और विदाही
भोजनों के करने से अथवा बहुत सोने से
कफ अत्यन्त वृद्धि पाकर, हृदय, शिर, मर्म
स्थान, और रसवाही स्रोतों को घेरकर घ-
मन उत्पन्न करता है ॥

कफजघमनका लक्षण ॥

तन्द्रास्यमाधुर्यकफमसेकसन्तोपानिद्रारु
चिगौरवार्त्तः।स्निग्धघनंस्वादुकफविथुद्धं
सलोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥

अर्थ....कफज घमनमें तन्द्रा मुख में मी-
ठापन कफ प्रसेक, सन्तोप तथा नि-
द्रा, अरुचि, भारापन, और वेदना होती है
तथा घमन में चिकनाई, गाढापन, मिष्टता

भवतस्मात् । प्राकारयेन्मारुतजंविष्टञ्च
संशोधनंवाक्फपिचहारि ॥

अर्थ—सर्व प्रकारकी वमन आमाशय के उत्केश से उत्पन्न होती है इससे वमन में प्रथम लघन कराना हित है । तत्पश्चात् कफपित्तनाशक संशोधन देवै । परन्तु वातज वमन में ऐसा नहीं किया जाता है ॥

कफपित्तनाशक वमन विरेचन ।
चूर्णानिलिखानमधुनाभयानाहृद्यानि-
वायानिविरेचनानि । मयैःपयोभिश्चयुता
नियुक्तानयत्यधोदोषमुदीर्णपूर्वम् ॥
बलीफलाद्यैर्वमनंनिपेद्यद्वयोदुर्वलस्तंशम
नैश्चिकित्सेत् । रसैर्मनोर्लघुभिर्विशुष्कै
र्भक्ष्यैःसभोज्यैर्विधैःसपानैः ॥

अर्थ—हरडका चूर्ण शहतके संग चाटे अथवा अन्य द्रव्य भी जो हृदयप्रिय और विरेचन कर्ताहो उन्हीं मद्य वा दूध के संग सेवन करै, ऐसा करने से ऊपरको उठे हुए दौष फिर नीचेको चले जाते हैं । अथवा बलीफलादि द्वारा वमन करावै । दुर्वल मनुष्यको संशोधन न देवै उसकी संशमन क्रिया करना उचित है । दुर्वल मनुष्य को मनके अनुकूल लघु मांसरस शुष्क भोजन तथा अनेक प्रकार के पेय द्रव्य देवै ।

सुसंस्कृतास्तिचिरिर्वहिलायारसान्यपो
हन्त्यानिलमृत्त्वम् । छंदिस्तथाकोलकुल
त्यमापविल्वादिमूलाभ्युयवैश्वयूपाः ॥

अर्थ—अच्छी तरह संस्कार किये हुए तीतर, मोर, लाम इनके मांसरस बढीहुई वातज वमनको शान्त करदेते हैं इसी तरह

वेर, कुलथी, उरद, विल्वादि पंचमूल का स्वाध और जौ का यूप भी वातजवमन को दूर करता है ।

वातज वमनकी चिकित्सा ।
घातात्मकेद्दृष्टवकासयुक्तोनरःपिवेत्सैन्ध
ववद्घृतन्तु । सिद्धंतथाधान्यकनागरा-
भ्यादध्नाचतोयेनचदाडिमस्य ॥ व्योषे
णयुक्तांलयणैस्त्रिभिक्षघृतस्यमात्रामथवा
विदध्यात् । स्निग्धानिहृद्यानिचभोजना
निरसैःसयूपैर्दधिदाडिमाम्लैः ॥

अर्थ—वातज वमनमें जो हृदय में फट फडाहट हो तथा खांसी हो तो उसे सेंधानमक मिलाकर घृतपान करावै अथवा सोंठ और धनिये को पीसकर दहीके साथ सिद्ध किये घृत में डालकर पानकरै, अथवा अनार के रस में घृतको सिद्ध करलें अथवा उक्त घृत में त्रिकुटा और तीनों नमक डालकर मात्राके अनुसार पान करै और दही तथा अनारकी खटाई डालकर मांस रस और यूपके साथ स्निग्ध और हृद्य भोजन देवै ॥

पित्तजवमनमेंचिकित्सा ।
पित्तात्मिकायामनुलोमनार्थद्राक्षाविदारी
क्षुरसैस्त्रिघृतस्यात् । कफाशयस्थन्त्वति
मात्रवृद्धं । पित्तंहेतुस्वादुभिरूर्ध्वमेव ॥
शुद्धायकालेमधुसर्कराभ्यां ॥ लाजैश्चम
न्यंयादिवापिपेयाम् ॥ मदापयेन्मुद्गरसे
नवापि । शाल्योदनंजांगलजैरसैवो ॥
सितोपलामासिकपिप्पलीभिःकुल्मापला
जायवसावतुशृजान् ॥ खर्जूरमांरान्यथ-

नारिकेलं द्राक्षामथोवावदराणिलिङ्घात्
स्रोतो जलाजोत्पलकोलमज्ज ॥ चूर्णानि
लिङ्घान्मधुनाभयाञ्च ॥ कोलास्थिमज्जा
घ्ननमाक्षिकाविद् लाजासितामागधिकां
कणान्वा ॥

अर्थ—पित्तज्वमन में अनुलोमन के लिये दाखरस, बिदारी रस वा ईखरस के साथ निसोथ देवै और जो अत्यन्त बड़ा हुआ पित्त कफाशय में स्थित हो तो स्वादु औषधियों द्वारा वमन करावै । इस तरह शुद्ध होने पर खीलोंके मन्थ में शहत और शर्करा डालकर पान करावै अथवा शहत और शर्करा डालकर पेयादेवै अथवा मूंग के मूष के साथ वा जांगल मांसरस के साथ शाली चांवलों का भात देवै । अथवा कुल्माप, खील और जौ का सत्तू गृजनचूर्ण, खजूर का गूदा, नारियल, दाख, अथवा बेर में शहत, पीपल और मिश्री मिला कर सेवन करै । अथवा रसोत, खील, नीलकमल और बेर इनके चूर्णको शहत और हरडके साथ चाटै अथवा बेरकी गुठली का गूदा, रसोत, मक्खीका विष्टा, खील, मिश्री और पीपलके बीज लेकर शहत के साथ चाटै ॥ द्राक्षारसवापिपिवेत्सुशीतंमृद्भृष्टलोष्मभंजलंवा । जम्बाम्रयोःपल्लवजंकपायंपिपेत्सुशीतंमधुसंयुतंवा ॥ नित्रिस्थितं चारिसमुद्रकृष्णसोशीरधान्यञ्चणकोदकं वा । गवेधुकामूलजलगुहूच्याजलंपिवेदिधुरसंपयोवा ॥ सेव्यपिवेत्काञ्चनगैरिकेनासवालकंतण्डुलधावनेन । चावी

रसेनोत्तमचन्दनंवातृष्णावमिध्नानिस
माक्षिकाणि ॥ कल्कं तथा चन्दनचव्यमांसी
द्राक्षोत्तमावालकगैरिकाणाम् । शीता
म्बुनागैरिकशालिचूर्णमूर्वातथातण्डुल
धावनेन ॥

अर्थ—दाख के काथको ठंडा करके पान करै अथवा मिट्टी के डेलेको भाग में तप्त करके जलमें गुंजावै और उस जलको ठंडा होनेपर पीवै और जामन और आमके पत्तों का काथ ठंडा करके शहत मिलाकर पीवै । अथवा मूंग और पीपल रात्रिमें-जल में भिजो देवै । और प्रातःकाल छान कर पीवै अथवा रात्रिमेंचना खस, और धानियां जल में भिजोवे प्रातः काल उस जल का छानकर पीवै अथवा गवेधुकाकी जड़ और गिलोय भिजोकर प्रातःकाल पीवै अथवा ईखका रस और दूध पीवै । अथवा खस, कांचनगेरू और नेत्रवाला का निजोकर चांवलके जलके साथ पीवै अथवा चांवलके रसमें सफेद चन्दन चित्रर पीवै अथवा तृपानाशक और वमननाशक और शयने में शहत डालकर पीवै । अथवा रसचन्दन, चव्य, दण्डान्दी, निपंगु, नेत्रवाला, मेन्दु इनके कल्कको संतुष्ट जल के साथ पीवै । अथवा मेन्दु, शालीचूर्ण दोनों को नित्रर टंडे जलके साथ पीवै अथवा नगेश्वरचूर्णके चांदके जलके साथ पीवै ।

काञ्ची वमन में चिकित्सा
कफात्मिकायां वमनं शस्तं सापिप्लवामर्ष
पनिम्बत्रोयैः । पिप्पलीवर्कैः सन्धवसम्भ-

युक्तेर्वम्यांकफामाशयशोधनार्थम् ॥ गो
धूमशालीन्सयवानपुराणान्गूपैःपटोला
मृताचित्रकाणाम् । व्योपस्पनिम्बस्पचत
क्रासद्रव्यूपैःफलांम्लैःकटुभिस्तुवाघात् ।
रसांश्शूलयानिचजाङ्गलानांमांसानिजी
र्णान्मधुशिश्वरिष्ठान् । रागांस्तथाखाड
वपानकानिद्राक्षाकपित्थैःफलपूरकैश्च ॥
अर्थ—कफात्मक वमनमें कफाशय और
आमाशयका शोधन करनेके निमित्त पीपल
सरसों, नीमका काथ, मेनफल और
सेधानमक मिलाकर वमन देवै । पुराने गेहूं
शालीधान्य और जौको परवल, गिलोय और
चीतेके यूपके साथ देवै अथवा त्रिकुटा डाल
कर मठाके साथ वा नीमके काथ के साथ
सिद्ध किये हुए मठे के साथ अथवा फलांम्ल
और कटुद्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए
यूप के साथ देवै । जांगल मांसरस वा
जांगल मांस शूलपर भुना हुआ पुराना श-
हत शीधु, अरिष्ट, रागपाडव और दाख,
कैथ वा विजौरे के रस के साथ सिद्ध किये
हुए पानक सेवन करावै ।

इहान्सगोधूमयवान्कलायान्मृष्टान्यु
तान्नागरमाक्षिकाभ्याम् ॥ अद्यात्तयैवात्रि
फलाविडङ्ग । चूर्णविडङ्गप्लवयोरयोवा ॥
सजाम्बतंवावदरस्यचूर्णमुस्तायुतांककटुक
स्यशृंगीम् ॥ दुरालभांवामधुसम्प्रयुक्तालि
प्ताकफजर्दिविनिग्रहार्थम् ॥ मनःशिला
याःफलपूरकस्यरसैःकपित्थस्यचपिप्पली
नाम् ॥ शोद्रेणचूर्णमरिचश्चयुक्तलिहन्
जयेत्छर्दिस्तीर्णवेगम् ॥

अर्थ—गूंग, गेहूं जौ और मटर इनको
घोंमे तलकर सोंठ और शहत मिलाकर
सेवन करै अथवा त्रिफला और वायाविडंग
का चूर्ण शहत के साथ चाटे अथवा वाय-
विडंग और केवटी मोथा को शहतके साथ
चाटे अथवा जामनकी मर्गी और बरकी
मर्गी का चूर्ण बना कर शहत के साथ
सेवन करै अथवा मोथा और फांकडासींगी
वा जवासा इनके चूर्णको शहतके साथ से-
वन करै । इनसे कफकी वमन शान्त होजा-
ता है ॥ विजौरे वा कैथके रसके साथ मनसि-
ल का चूर्ण सेवन करनेसे वा पीपल और
फालीमिरच का चूर्ण शहतमें मिलाकर सेवन
करनेसे उर्दीर्ण वेगवाली वमन दूर होजाती है ।

साक्षिपातिक वमन में चिकित्सा ।
वैपापृथक्तेनतयाक्रियोक्तातांसाक्षिपातेऽ-
पिसमीक्ष्यबुद्ध्यादोपतुदेहाग्निबलान्यवे
क्ष्यप्रयोजयेत्शास्त्रविदममत्तः ॥

अर्थ—जुदे २ दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन
की जो जो जुदी जुदी क्रिया वर्णन की गई
हैं वे सम्पूर्ण क्रिया दोष प्रकृत, देह अग्नि और
बलकी परीक्षा करके अत्यन्त सावधानीसे स-
न्निपातज वमन के दूर करनेके लिये प्रयुक्त करै

दुष्टसंयोगजवमन में उपाय
मनोभिघातेतुमनोनुकूलावाचःसमाश्वा
सनहर्षणानिलोकमसादःश्रुतयोवयस्याः
शृङ्गारिकाथैवहिताविहाराः ॥ गन्धाविचि
त्रामनसोऽनुकूलामृतपुष्पशुक्लाम्लफ
लादिकानाम् ॥ शाकानि भोज्यान्यथपा
नकानिसुसंस्कृताःखाडचरागलेहाः ॥ यु-

पारसाकाम्बालिकाःखट्वाश्चर्मांसानिधानावित्रिधाश्चभक्ष्याः ॥ फलानिमूलानिचमन्धवर्णै रसरूपेतानिवमिञ्जयन्ति॥ गन्धरसस्पर्शमथापिशब्दरूपञ्चयद्यत्पिमिषमप्यसात्स्यम् ॥ तदेचकुर्यात्प्रशमायतस्यास्तज्जोहिदोपःसुखपवजेतुम् ॥

अर्थ—जो यमन मनमें किसी प्रकार की घृणा उत्पन्न होनेसे होती है उसमें मन के अनुकूल वाणी, संतोपदायक वचन, प्रसन्न करनेवाली कहानियाँ समानवयवाली स्त्री से संगमन, तथा दृंगारादि हितकर विहार उत्तम होते हैं। मनके अनुकूल अनेकप्रकार के सुगन्धित द्रव्य, खिले हुए फूलोंकी सुगन्धि, शाक, भोजनके पदार्थ, पानक अच्छी तरह से संस्कार किये हुए पाडव, मुरब्बे, अथलेह अनेक प्रकार के यूप, रस, काबालिक यूप खड्कयूप, मांस, धान, अनेक प्रकारके मत्स्य पदार्थ, अनेक प्रकार के गंध, वर्ण और रसों से युक्त फल मूल का सेवन यमनको दूर करता है। जो जो गंध, रस, स्पर्श, शब्द और रूप रोगीको प्रियहों वद्यपि ये गंधादि असात्म्य भी होती भी रोगकी निवृत्तिके लिये इनका प्रयोग करे क्योंकि मन की घृणासे उत्पन्न हुए रोग मनोऽनुकूल पदार्थोंके सेवनसेही सुखपूर्वक दूर करनेमें आने हैं वम्युत्थितानांचिकित्सितस्तस्यांचिक्रिमि तंकार्यमुपद्रवाणाम्। अतिप्रवृत्तासुर्विरेचनस्यकर्पातियोगेविहितंविशेषम् ॥ वमि प्रसङ्गात्पवनोऽप्यवदयं धातुक्षयादृद्धिमुपै तितस्मात् ॥ चिरप्रवृत्तास्वनिलापहानि

कार्याण्युपस्तम्भनवृंहणानि ॥ सर्पिर्गुडा क्षीरविधिर्घृतानिकल्याणकःयूपणजीव नानि ॥ वृष्यास्तथासांसरसःसल्लहाःचि रमसक्ताश्चवमिञ्जयन्ति ॥

अर्थ—जो चिकित्सा यमन के दूर करने की होती है वही चिकित्सा यमन से उत्पन्न हुए उपद्रवों में भी की जाती है तथा विरेचन के अतियोग होने में जो जो चिकित्सा निरूपण की गई है वही वही चिकित्सा यमन के अतियोग में भी होती है। यमनके प्रमंग से धातुओं के क्षीण हो जानेपर बापु भक्ष्य हीयद्वजाती है अतएव पुराने यमन रोग में यातनाशक, स्तम्भन और वृंहण क्रियाकर। सर्पिर्गुड, क्षीरविधि, कल्याण घृत, स्मृत्तघृत जांबर्नाय घृत, वृष्यप्रयोग मानस और अवलेह इनमें बहुत दिन की पुरानी यमि दूर हो जाती है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

संख्याहेतुलक्षणमुपद्रवान् । माध्यर्तान् योगाश्चलक्ष्णानाम्प्रथमादृष्टिनिगमि तमुमुनिवर्ष ॥

अर्थ—इस यमन चिकित्सिताख्यायामें पुनर्वसुन यमन रोगोंकी संख्या, हेतु, लक्षण उपद्रव, साध्यामाष्य विचार और धीयव वर्णन की है ।

इति श्रीभाषाटीकान्विनयायांभ्रप्रियेशादिनि-

तायां चरकप्रतिस्मृत्यायामितिशाया

चिकित्सितस्थानेच्छीर्षीचिकित्साभिर्नाम

प्रयोगैस्तोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः॥

अथातस्तृष्णाचिकित्सितं व्याख्यास्याम
इति हस्माह भगवान् आत्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर, भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम तृष्णाचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

ज्ञानप्रशमनपोभिः ख्यातोऽत्रिसृतोजग
द्वितेऽभिरतः । तृष्णानां प्रशमार्थं चिकि
त्सितं प्राह पञ्चानाम् ॥

अर्थ—जो भगवान् आत्रेय अपने ज्ञान शान्ति और तपोगुणसे जगत् में विख्यात हैं और संसारके हितमें दत्तचित्त हैं वे पांच-प्रकार के तृष्णारोगोंकी शान्तिका उपाय वर्णन करने लगे ।

तृष्णा रोग का हेतु ।

शोभाद्भयाच्छ्रमादपिशोकात्क्रोधाद्विलं
घनान्मद्यात् ॥ क्षाराम्ललघणकटुकोष्ण
रूक्षशुष्काग्नेसेवाभिः ॥ धातुत्रयगदक
र्षणवमनाद्यतियोगसूर्यसन्तापैः ॥ पित्ता
निलौघद्विज्जौसौम्यान्धातुंशोपयत ॥
रसवाहिनीश्च नालीर्जिह्वामूलगलतालु
होमनः । संशोप्यतृष्णां देहे कृत्तः तृष्णाम्
दाबलावेतौ ॥ पतिंपतिं हि जलं शोपयतस्त
भतो न याति शमम् । घोरव्याधिकृशानां प्र
भवत्युपसर्गभूतासा ॥

अर्थ—शोभ, भय, श्रम, शोक, क्रोध, लघन, और मद्यपान के करने से, खारे, खट्टे, नमकीन, कड़वे, गरम, रुखे और सूखे क्षय के सेवन से, धातुकी क्षीणता, रोग के कारण कृशता, वमनातियोग और सूर्य

सन्ताप से पित्त और वात बढकर ये दोनों महाबली सौम्यधातुओं को मुग्धते हुए रमवाहिनी नादी, जिह्वामूल, गला, तालु और पिपासास्थान इन को मुखाकर मनुष्य की देह में तृष्णा को उत्पन्न करते हैं, जल पीते पीते सूखता चला जाता है और किसी तरह से तृष्णाकी शान्ति नहीं होती । जो मनुष्य घोर व्याधि के कारण कृश होगये हैं उन के उपद्रव सहित तृष्णा उत्पन्न होती है ।

तृष्णाका प्रामूप । ।

प्रामूपं मुखशोपं स्वलक्षणं सर्वदाम्बुक्कामि
त्त्वम् ॥

अर्थ....मुखशोप, तृष्णाका लक्षण और सदैव जलपान की इच्छा ये तृष्णा के प्रारूप हैं ।

तृष्णानां सर्वासां लिङ्गानां लाघवमपायः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार की लक्षणवाली तृष्णाओं का लाघवही अपाय है ।

तृष्णा के लक्षण ।

मुखशोपस्वरभेदभ्रमसन्तापप्रलापसंस्तम्भान् । ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाकर्कशतां चित्तनाशञ्च ॥ जिह्वा निर्गममरुचिं वा धिर्यमर्षाणान्दवंसादम् । तृष्णोद्धृतान् जयत्पञ्चाविधां लिङ्गतः शृणुताम् ॥

अर्थ—मुखशोप, स्वरभंग, भ्रम, संताप, प्रलाप, संस्तम्भ, तालु शोप, कंठ और जिह्वा में कर्कशता, चित्तनाश, जिह्वा का बाहर निकलना, अरुचि, च्छिन्नता, मर्मों में ताप और शिथिलता ये लक्षण तृष्णा रोग में होते हैं । तृष्णापांच प्रकार की होती है अ-

य इनके पृथक् पृथक् लक्षणों का वर्णन किया जाता है ॥

वातजतृपाकाहेतु ॥

अवधातुदेहस्थंकुपितःपवनोपदाविशोप
यंति। तस्मिन्शुष्केशुष्यत्यवलस्तृप्यंथ-
विशुष्यन् ॥

अर्थ—पवन कुपित होकर जब देहस्थ जठधातु को सुखा देती है तब उस के सूखने पर दुर्बल मनुष्य शुष्क होजाता है और शुष्क होने से उसे तृपा उत्पन्न होती है ।

वातज तृपाका लक्षण ।

निद्रानाशःशिरसोभ्रमस्तथाशुष्कविरस
स्रवता । श्रोत्रोपरोधइतिचस्याल्लिङ्गवा-
ततृष्णायाः ॥

अर्थ—निद्रानाश, शिरका घूटना, मुखमें सूखापन और विरसता, कानों में सुननाये लक्षण वात की तृष्णा में होते हैं ।

पित्तज तृपाका हेतु ।

पिचंमत्तंकुपितमाग्नेयंकुपितचेत्तापयस्य
पांथातुम् । सन्तप्तःसाहिजनयेतृष्णांदा
होत्वर्णानृणाम् ॥

अर्थ—प्रथमकहचुके हैं कि पित्त आग्नेय होता है और जब यह कुपित होजाता है तब जठ धातु को रात करता है और जठ धातु तप्त होकर मनुष्योंके दाहाधिक्य तृपा को उत्पन्न करती है ।

पित्तजतृपा के लक्षण ।

तिक्तास्पत्वांशिरसोदाहाःशीताभिनन्दि
वामूर्च्छा । पीताक्षिभ्रवर्चस्त्वमाकृतिः
पित्ततृष्णायाः ॥

अर्थ—मुख में कड़वापन, शिर में दाह, शीतलवस्तु में स्पृहा, मूर्च्छा, नेत्र, मूत्र औ-
र विष्टामें पीलापन ये पित्तजतृपाके लक्षण हैं ।

कफज तृपा ।

तृष्णायामप्रभवासाप्याग्नेव्यामापिचज
नितत्वम् । लिङ्गं तस्याश्चारुचिराध्मानक
फमसेकाच ॥

अर्थ—जो तृपा आमसे उत्पन्न होती है वह आम्रय होताहै, क्योंकि यह आमाश्रित पित्तसे उत्पन्न होती है । अरुचि, आप्मान् और कफप्रसेक इसके लक्षण हैं । देहोरसजोऽम्बुभवारसावचतस्यशयाश्च-
तृप्येतु । दीनस्वरःप्रताम्यन्दीनःसंशु-
ष्कहृदयगलतालुः ॥ भवतिखलुसोपस-
र्गान्तृष्णासाभवतिशोषणीफष्टाज्वरमेह
क्षयशोषश्वासापुसृष्टदेहानाम् ॥ सर्वा
स्त्वतिप्रसक्तारोगकृशानां वामिसक्ताना-
म् । घोरौपद्रवयुक्तास्तृष्णामरणाय-
विज्ञेया ॥॥

अर्थ—रससे देह उत्पन्न होताहै और रस जलसे होताहै, इससे रसधातुके क्षीण होनेसे तृपा उत्पन्न होतीहै । इस तृपामें स्वर क्षीण होजाताहै, दीनता होजाती है हृदय, गला और तालु शुष्क होजाताहै ।

ज्वर, प्रमेह, क्षयी, शोष और श्वासादि उपद्रवों से युक्त मनुष्य के जो तृपा उत्पन्न होती है वह सोपद्रव होती है, इसे शोषणी कहते हैं, यह कष्टसाध्य होताहै । सब प्रकार की अन्यन्त प्रसक्त तृपा, तथा रोग से कृश पुरुषोंकी तृपा, कमन रोगियों की

तृपा तथा घोर उपद्रवों से युक्त पुरुषों की तृपा मनुष्य की मृत्युकारक होती है ।

अग्नि और पवनको तृपाकाकारणत्व । नाग्निविनाहितर्पःपवनान्नादातौहिभोपणेहेतू अन्धातोरतिवृद्धावपांक्षयेतृप्यतिनरोहि

अर्थ—अग्नि और पवन के बिना तृपा उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि येही जलधातु को सुखानेवाली है इसतरहजल धातु के अत्यन्त क्षीण होने ही से तृपारोगउत्पन्न होता है ॥

तृपा के अन्यकारण ।

शुर्बलपयःस्नेहैःसंमूर्च्छंश्चि विदाहकालेच । यस्तृप्येद्दधृतमार्गौतत्राप्यानिष्ठानलौहेतू ॥ तीक्ष्णोष्णरूक्षभावान्मर्द्यपित्तानिलौप्रकोपयति । शोपयतोऽपांघातुंतावाशुमद्यशीलानाम् ॥ तप्तस्त्रिवसिकतासुहितदाशुमद्यतोयंविशुष्यति । क्षिप्रतेपांसन्तप्तानां हिमजलपानाद्भवतिमर्म । शिशिरस्नातस्योष्मारूढःकोष्ठमपघतर्पयति । तस्मात्प्रोष्णः बलान्तोभजेतसहसाजलंक्षीतम् । लिङ्गसर्वास्वेतास्वनिलक्षयात्पित्तजंभवत्ययतु । पृथगागमाधिकित्सितमतःप्रवक्ष्यामिनृष्णानां ॥

अर्थ—परिपेक होते हुए भारीअन्न, दूध औरघृतादि पदार्थोंके विदाहकालमें तृपा उत्पन्न होताहै । इसमें भी रुकेहुए मार्ग वाले जल और अग्निही हेतुहैं । तीक्ष्ण और रूक्ष भावोंके कारण मद्य पित्त और वायुको कुपित करता है । येही पित्त और वायु मद्यप मनुष्यकी जलधातु को शुष्क कर देतेहैं ।

गरमवाद्धमें जल डालनेसे जल शुष्कहोजाता है उसी तरह मद्यसे संतप्त मनुष्योंके टंडा जलपान शुष्कहोकर मर्म को सुखादेताहै । सहसा ठंढे जल के स्नानसे ऊष्मा रुककर कोष्ठमें पहुँचकर तृपा उत्पन्न करतीहै इसलिये गरमीका माराहुआ मनुष्य शीघ्रही शीतल जलसे स्नान न करे । इन ऊपर वर्णन कियेहुए सम्पूर्ण कारणों में वायु के क्षीण होनेसे पित्तज तृपाके लक्षण होतेहैं । अब हम सब प्रकारकी तृपाओंकी पृथक्चिकित्सा वर्णन करतेहैं ॥

तृपारोगमें चिकित्सा ।

अपांक्षयादितृष्णासंशोष्यनर्मणाशयेदाशु । तस्मादैन्द्रतोयंसमधुपिवेत्तद्गुणवान्यत् ॥ किञ्चित्तुरानुरसंतत्रालघुंशीतसंगुण्णिसुरसम् । अनभिष्यन्दिचयत्तक्षितिगतमप्यैन्द्रवज्जोयम् ॥ शृतंशीतंससितोपलमधवाशरपूर्वपञ्चमूलेन । लाजासक्तुसिताक्तान्मधुयुतमैन्द्रेणवामन्थं ॥ वात्स्यावासुयवानांशीतमधुशर्करायुतंदद्यात् । पेयांवाशालीनांदद्याद्वाकोरदूपाणाम्पयसाश्रुतेनभोजनमधवामधुशर्करायुतंभोज्यम् । पारावतादिकरसैर्घृतभृष्टैर्वाप्यलवणाम्लैः ॥ तृणपञ्चमूलमुज्जातकैःपियालैश्चजांगलाःसुकृताः । शस्ताःरसांपयोवार्तैःसिद्धंशर्करामधुमत् ॥

अर्थ—जलधातु के क्षीण होनेसेही तृष्णा मनुष्यको सुखाकर शीघ्र मारडालतीहै । इसलिये तृपाोगमें आन्तरीक्षजल शहत मिलाकर वा तद्गुण, विशिष्ट अन्य जल

पीना चाहिये । पृथ्वीमें गिराहुआ जल भी जिसमें कुछ कसीलापन और हलकापन, ठंडापन, सुगन्धि, सुरसता और अनभिष्यन्दता होती है वह आन्तरीक्ष जलके समानही होता है । जलको औटाकर वा शरादि पंचमूल का काथ करके मिश्री डालकर पीये । खील का सत्तू मिश्री मिलाकर वा शहत और मन्थको आन्तरीक्ष जलमें घोलकर देवै ॥ अथवा जौकी चात्र में ठंडा होनेपर शहत और चीनी मिलाकर देवै अथवा शालिचांवल वा कोदों की पेया देवै अथवा औटेहुए दूध में शहत और चीनी डालकर उसके साथ भोजन करै अथवा पारावतादि पक्षियोंके मांसरसको घी में भूनकर बिना नमक और खटाईके सेवन करै अथवा तृण पंचमूल, मूज और पियालके काथके साथ जांगल मांसरस अच्छीतरह पक्व करके सेवन करै । अथवा सन्ही तृणपंचमूलादि में दूध औटाकर शहत और चीनी डालकर पीये ॥

शतधीतघृतनाक्तःपयःपिवेत्शतितोयमवगाहामुद्गमगूरुचणकजारसास्तृष्टाघृते देयाः॥मधुरैःसजीवनीयैःशीतैश्चसत्तिकैः शृतंक्षीरं । पानाभ्यञ्जनसेकेण्विष्टंमधुशर्करायुक्तंतज्जं॥ वाघृतमिष्टपानाभ्यङ्गेपुनस्यमपिचस्यात् । नारीपयःसर्षकरमुष्ट्या अपिनस्यमिधुरसः ॥

अर्थ—संत्रार धुले हुए घीकी देह पर मालिश करके ठंडे जलसे स्नान करके दूध पीये । मूज, मसूर और चनेके यूप को घी

में भूनकर देवै । अथवा मधुरगण, जीवनीय गण और शीतल तिक्तद्रव्योंके साथमें औटयाहुआ दूध शहत और चीनी मिलाहुआ पान, अभ्यंग और सेक में हितहै अथवा इसी दूधसे निकाला हुआ घी पान, अभ्यंग और नस्यमें हित होता है । चीनी मिलाकर स्त्रीका दूध, ऊटनी का दूध; अथवा ईखका रस नस्य में हित है ॥

शरीरेशुरसगुडोदकसितोपलाघैःसौद्रसीधुमाध्वीकैः । वृक्षाम्लमातुलङ्गैर्गण्डूपास्तालशोपघ्नाः ॥ जम्वाघ्रातकचद्रीनडवेतसपञ्चपल्लवैश्चाम्बलाः । हन्युखशिरःप्रलेपाःसघृतामूर्च्छाभ्रमतृपणाः ॥ दाडिमदधित्थलोध्रैःसाविदारीवीजपूरकैः । शिरसःप्रलेपोगौरामलकैर्घृतारनालायुतैश्चहितः ॥

अर्थ—दूध, ईखका रस, गुडोदक, (गुड़ का शरवत), मिश्री का शर्बत, शहत, शीघु, माध्वीक, वृक्षाम्ल, विजौरा, इनके रसके कुले तालशोपको दूर करते हैं । जामन, अंबाडा, वेर, बेल फल और पंचपल्लव इनके कल्कका घृत मिलाकर हृदय, मुख और सिर पर लेप करने से मूर्च्छा, भ्रम और तृषा नष्ट होजातीहै । अनार, खैर लोध, विदारी और विजौरा इनके कल्क का सिर पर लेप करनेसे अथवा कपूर और आंवलेको घी और कांजी में मिलाकर लेप करने से तृषा शान्त होजातीहै ।

शैवालपङ्कजलजैःसाम्लैःसघृतैश्चसक्तुभिल्लैः । मस्त्वारनालकमलार्द्रवसनम-

पिहारसंस्पर्शाः ॥ शिशिराम्बुचन्दनार्द्रा
स्तनतटपाणितलसंस्पर्शाः । क्षौमाद्रिवसना
नांवरान्नानांप्रियाणाञ्च ॥ हिमवहरी
पनसरित्सरोराम्बुजपवनन्दुपादशिशिरा
णाम् । रम्यशिरोदकानांस्मरणञ्चक
थाश्चतृष्णाघ्न्यः ॥

अर्थ—शैवाल, फाँचड़ और कमलका
लेप अथवा घी और खटाई मिलाकर सत्तू
फालेप तृणाको शान्त करताहै । अथवा
दही का तोउं, फाँजी, गीलावस्त्र, मणियों
के हारका स्पर्श करने से भी तृषाशान्त होजा
है । शीतल जलसे आर्द्र वा चन्दन लगी
हुई नषवालाओंके स्तनों का और हाथोंका
स्पर्श करने से तृषा शान्त होजातीहै । रेशमी
गले वस्त्रोंको धारण करनेवाली मनोहारिणी
स्त्रियों का स्पर्श करने से भी तृषा शान्त
होती है । हिमालयकी शीतल गुहा, वन,
नदी, सरोवर, कमल, पवन, चन्द्रमाकी शी-
तल किरण, शिशिर ऋतु और रमणीय शी-
तल जलों के स्मरण करने से भी तृषा
शान्त होतीहै ।

घातघ्नमन्नपानंमृदुलघुशतिञ्चवाततृष्णा
याः । क्षतकासनुत्तृप्तक्षीरभूर्धवातक्षय
तृषास्यात् । स्याज्जीवनीयसिद्धक्षीरघृत
वातपित्तोजतपे । पैचद्रासाचन्दनखजूरो
शीरमधुसुतंतोयम् ॥ लोहितकशाहित
पद्मलखजूरपरूपकात्पलद्रासाः । मधुपयक
लोप्ठमेवचजलेवृत्तशीतलेपयम् । लोहितशा
लितन्दुलमस्यः सलोधमधुकाञ्जनीतृपलः
पद्माम्लोष्णमधुजलसमायुतोमृन्मयेपयः

अर्थ—वातनाशक, मृदु, लघु और शी
तल अन्नपान वातजतृष्णाका नाश करने
वाला होता है । क्षत कासको नाश करने
वाले घी को पीकर ऊपरसे दूध पी लेने से
वातजतृषा क्षय होजातीहै। वातापित्तकी तृषा
में जीवनीयगणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत और
दूध हितकारकहै । पित्तकी तृषा में दाख,
चन्दन, खजूर, खस इनके शीतल क्वाथ
में शहत मिलाकर पीना चाहिये । डालशाली
चाँवल, खजूर, फालसा, नील कमल
दाल इनको पिस कर जल में छान
ले और एक मिट्टी के डेले जो अग्नि में
अच्छी तरह गरम कर के उस में बुझादे
फिर ठंडा होने पर शहत मिलाकर पीवै ।
डालशाली चाँवल एक प्रस्थ, लोध, मुलहटी
रसीत और नीलकमल इनको पीसकर एक
मिट्टी के पात्र में छान ले और गरम मिट्टी
का डेला उस में बुझा कर ठंडा होने पर
शहत मिलाकर पीवै ।

वटमातुलुङ्गवेतसपल्लवकुशकाशमूलपट्ट
याइवैः ॥ सिद्धेऽम्भस्याग्निनिर्भाःकृष्ण
मृदःकृष्णासिफतावा । तप्तानिनवकपां
लान्यथवानिर्वाप्यपाययेताच्छम् । सपा
कश्चकंरंवामृतवल्क्युदकतृपहन्ति । क्षीर
वतांमधुराणांशीतानांशकरामधुविमिश्राः
शीतकपायामृदभृष्टसंयुताःपित्ततृष्णाघ्नाः
अर्थ—वड, विजौरा, वेतके पत्ते, कुश,
कांसकी जड़, मुलहटी, इनको डालकर सिद्ध
किये हुए जल में काली मिट्टी या काली
बादल वा नवीन खाँपड़ोंको अग्नि के समान

पञ्चवांस्तृतालशोपेपिवेद्युतवृष्यमनुमद्यम्
सर्पिर्भृष्टक्षरिमांसरसाञ्चावलःस्निग्धा
न् । अतिरूक्षदुर्बलानांतर्पणमयेन्नृणामि
हाधुपयः ॥ छागोवाघृतभृष्टःशीतोमधु
रोरसोदृद्यः । स्निग्धेऽन्नेभुक्तयानृष्णा
स्यात्तांगुडाम्बुनाशमयेत् ॥ तर्पमूर्च्छाभि
हतस्यरक्तापिचापैर्हन्त्यात् ।

अर्थ—तालशोप में तृपायुक्त रोगी जो बलवान् हो तो वृष्य घृतपान करै ऊपरसे मद्य का अनुपान करै । तथा जो रोगी निर्वल हो तो दूध और घी में तले हुए स्निग्ध मांसरस देवै । अत्यन्त रूक्ष और दुर्बलमनुष्यों की तृपा दूध से शीघ्रही शान्त होजाती है अथवा बकरे का मांसरस सेवन करने से भी तृपा शान्त होजाती है । स्निग्ध अन्नके भोजन करनेसे जो तृपा उत्पन्न होतीहै वह गुडका शर्बत पीने से मिटतीहै । मूर्छारोगीकी तृपा रक्त पित्तनाशक औषधियोंसे दूर होतीहै ।

शीतोष्णजलकीविधि ।

छर्द्याम्लदाहमूर्च्छातमःकृममदात्यया
स्रविपपिचे ॥ शस्तंस्वभावशीतशृतशी
तंसन्निपातेऽम्भः । हिकाशवासनबज्वर-
पीनसघृतपीतपाश्वर्गलरोगे ॥ कफवो
तकृतेस्त्यानेसद्यःशुद्धेचहितमुष्णम् । पा
एद्दरपीनसमेहगुल्ममन्दानिलातिसारे
षु ॥ श्लीहनिचयेतोयमशुभकाममश्वये
पिवेदल्पम् ॥

अर्थ—वमन, आम्लपित्त, दाह, मूर्छा, तम, हान्ति, मरान्यय, रक्तपित्त और विपरो-

गों में स्वभावशीतल जल द्रितकर होताहै और सन्निपातमें आटाकर टंडाकियां हुआ जल हितावह है ॥ हिचकी, श्वास, नदीनज्वर, पीनस, घृतपानजरोग, पार्श्ववेदना, कफवातरोग, कफका गाढापन और संशोधन के पीछे तत्कालही उष्णजल हित होता है ॥ पांडुरोग, उदर रोग, पीनस, प्रमेह गुल्मरोग, मन्दानि, अतिसार और श्लीहा इन में जल पीना अच्छा नहीं है । जो जल पिये बिना काम न चलसके तो बहुत थोडा पीना चाहिये ।

पूर्वामयातुरःसंदीनस्तृष्णादितोजलकां
क्षन् ॥ नलभेतसचेन्मरणमाश्वत्थानुया
दीर्घरोगंवा । तस्माद्दान्याम्बुपिवेतृष्य
नुरोगीसशर्कराक्षौद्रम् ॥ यद्वातस्यान्य
त्स्यात्सात्स्यंरोगस्यतच्चेष्टम् । तस्यांवि
निष्टत्तायांतज्जन्योपद्रवःसुखञ्जेतुम् ॥
तस्मात्तृष्णापूर्वजयेद्वहुभ्योऽपिरोगेभ्यः

अर्थ—रोग से पीडित तृपाचमनुष्य यदि पानी चाहे और उसे न मिलै तो वह शीघ्रही मरजाता है वा उस के कोई बडारोग होजाता है, इसलिये उसे धनिये का जल शहत और चीनी डालकर पान करावै अथवा रोग के अनुसार और कोई साम्य द्रव्य हो तो उसे देवै । तृपा के शान्त होने पर उस से उत्पन्न हुए अन्य उपद्रव भी सुखपूर्वक दूर होजाते हैं । इसलिये सब रोगों से पहिले तृपा का उपाय करना उचित है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

हेतूयथाग्निपवनौकुरुतःसोपद्रवांचपञ्चानां । तृष्णानांपृथगाकृतिरसाध्यतासाध्यतासाधनचोक्तम् ॥

अर्थ—इस तृपा चिकित्सित अध्याय में पांचों प्रकार की तृपा के हेतु अग्नि और वायु हैं और येही तृपाके साथ उपद्रवों को भी उत्पन्न करते हैं । इस अध्याय में तृपाकी पृथक् २ आकृति, साध्यता, असाध्यता तथा साधन के उपाय वर्णन कियेगये हैं ।

इतिश्रीभाषाटीकात्त्रितयाअग्निवेशविराचितयाचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेतृपाचिकित्सितनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

—:~*~:—

पंचविंशोऽध्यायः

अथातोविपचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम विप चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

विप की उत्पत्ति ।

प्रागुत्पत्तिगुणान्पोनिवेशानलिङ्गान्युपक्रमान् ॥ विपस्यप्रवतःसम्पगाप्रिवेशानिबोधये ॥ अमृतार्थसमुद्रेतुमध्यमानेसुरासुरैः । जग्नेप्रागमृतोत्पत्तेःपुरुषोपोरदर्शनः ॥ दौप्तनेजाधतुर्दष्टोदरित्केनोऽनलेक्षणः । जगद्दृष्ट्वाविषण्णन्तांविपंसतुविपादनात् ॥

अर्थ—आत्रेय बोले कि हे अग्निवेश !

मैं तेरे साम्हने विपकी उत्पत्ति, गुण, योनि, वेग, लक्षण और चिकित्सा को वर्णन करता हूँ तू सावधानी से सुन । जब देवता और राक्षसों ने मिलकर अमृत के डिपें समुद्र को मथा था तब अमृत के उत्पन्न होने से पहिले एक ऐसा पुरुष निकला जिसका बड़ा भयंकर रूप था, उसमें बड़ा तेजधा, चार हाड थीं, हरे केश थे और उसकी आँखें अग्निके समान थीं, उस पुरुष को देखकर सम्पूर्ण जगत् विषण्ण अर्थात् विपाद युक्त होगया, इस विपाद के कारणही से उसको विप कहने लग गये ॥

विपकी योन्यादि संख्या ।

जग्ममस्थावरायांतयोनां ब्रह्मान्ययोजयत् तदम्युसम्भवंतस्माद्ब्रह्मिधंधपावकोपमम् अष्टवेगं दशगुणं चतुर्विंशत्युपक्रमम् ।

अर्थ—ब्रह्माने इस विप को स्थावर और जगम दो योनियों में स्थापित कर दिया इसी हेतु से अग्निके समान तक्षिण यह जलसे उत्पन्न हुआ विपको प्रकारका होताहै । विप में आठ वेग, दस गुण और चौबीस प्रकारकी चिकित्सा होती है ॥

तद्र्पास्वम्युयोनित्वात्संलदं गुडयद्गतम् सर्पत्यग्नुधरापायेतद्गस्त्योऽहनास्तिच । प्रयातिगन्दर्पित्वांविपंतस्माद्जनात्यये ।

अर्थ—विपकी योनि जल है इससे यह वर्षावर्षु में जेदताको प्राप्त होकर गुडकी तरह पतला पड़जाता है और पृथ्वी में वह ने लगता है तथा वर्षा के अन्त में जब अगस्त्य का उदय होता है तब विप नष्ट हो-

जाता है और इसी हेतु में वर्षा के पीछे वि-
प मन्दवर्षि पडजाता है ।

जंगम विपकी योनि ।

सर्पाः कीटोन्दुरालतावृधिकाशृहगोधिकाः
जलौकामत्स्यमण्डूकाःशलभाःसकृकण्ट
काः । श्वसिंहप्याग्रगोमायुतरक्षुनकुलां
द्वयः ॥ दंष्ट्रिणोर्भविपतेपादंष्ट्रोत्थंजङ्ग
ममनम् ।

अर्थ—सर्प, कीट, चूहा, मकड़ी, चींड़,
छपकली, जोक, मछली, मेंढक, चींटी, किर
कैंटा, कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, सिरकटा, तरक्षु,
और नकुल आदि ये दंष्टी अर्थात् दांत
वाले होते हैं इनकी डाढ़ लगने से जो विप
उत्पन्न होता है उसे जंगम विप कहते हैं ।

स्थायर विपका वर्णन ।

मुस्तकंपौष्करक्रौंशंवत्सनाभंघलाहकम् ।
कर्कटकालकूटन्द्रकरवीरकसङ्गकम् ॥ गा
लवेन्द्रायुधतैलमेघकंकुशपुष्पकम् ॥ रो-
हिपपुण्डरीकाक्षलाङ्गलव्यञ्जनाभकम् ।
संक्षौचमर्कटशृगिषिपहालाहलंतथा । एव
मादीनिचान्यानिमूलजानिस्थिराणिच
अर्थ—मुस्तक, पौष्कर, क्रौंच, वत्सनाभ
घलाहक, कर्कट, कालकूटन्द्र, करवीरक,
गालव, इन्द्रायुध, तैल, मेघक, कुशपुष्पक,
रोहिष, पुण्डरीकाक्ष, लांगलवी, अंजनाभक
संकोच, मर्कट, शृगांविप, हालाहल तथा ऐसे
ही और भी मूलज और घातुज विपहोते हैं

गरविप का वर्णन ।

गरगंयोगजंचान्यद्गरसंज्ञभृगुदमदम् ॥
फालान्तरविपाकित्वान्नतदाधुहरत्यमून्

अर्थ—विपके संयोगसे उत्पन्न हुआ
संयोगी विप होताहै इसे गरविप कहते हैं
यह रोगोंको उत्पन्न करताहै इसका विपाक
बहुत दिनके पीछे होताहै इससे वह प्राणों
को शीघ्र नष्ट नहीं करता है ।

जंगम विप के कार्य ।

निद्रांतन्द्रांक्लमंदाहंसपाकंलोमहर्षणम् ॥
शोफंचैवातिसारश्चजनयेजंगमंविपम् ॥

अर्थ—निद्रा, तन्द्रा, क्लान्ति, दाह, पाक
रोमहर्षण, सूजन और अतिसार ये सब
जंगम विपके कर्म हैं ॥

स्थायर विपके कर्म ।

स्थावरंतुज्वरंहिक्कादन्तहर्षगलग्रहम् ॥
फेनवम्यरुचिश्वासमूर्च्छाश्चजनयेद्विपम् ।

अर्थ—ज्वर, हिक्का, दन्तहर्ष, गलग्रह,
हाग, वमन, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा,
इनको स्थावरविप उत्पन्न करताहै ॥

दोनोंविपोंका परस्पर विरोध ।

जंगमस्यादधोभागमूर्द्धभागंतुमूलजम् ॥
तस्मादांष्ट्रिपिमौलंहन्तिमौलंचदांष्ट्रिजम् ।

अर्थ—जंगमविप अधोगामी होताहै और
स्थायर, विप ऊर्ध्वगामी होताहै, इससे जंग
म विप स्थावरविपको और स्थावर विप जं-
गमविपको मारता है ।

सातोंवेगोंके कर्म ।

तृणोहदन्तहर्षप्रसेकचमथुरुमाभवन्त्या-
दौवेगेरसप्रदोपादसृक्प्रदोपात्क्रितीयेच
वैवर्ण्यभ्रमवेपथुमूर्च्छाजृम्भांगचिमिचिमा
तमकाः ॥ दुष्टपिषितातृतीयगण्डलकण्डू-
श्वयथुकोठाः । बातादिजाश्चतुर्येछर्दि

विष को त्रिदोषानुगामित्व ।

दोषस्थानप्रकृतीः प्राप्यान्यतमह्युदीरय
ति ॥ स्याद्वातिकस्य वातस्थाने कफपित्त
लिंगमीपत्तु । तृष्णार्शुरचिमोहगलग्र
हृच्छर्दिफेनादिपित्ताशयिस्थितपैतिकस्य
कफवातयोर्विपतद्गत् । तृट्कासज्वरवम
धुक्लमदाहतमोजतिसारादि ॥ कफदेश
गतञ्चकफस्यदर्शयेद्वातपित्तयोश्चैतत् ॥
लिंगंश्वासगलग्रहकण्डूलालावमथ्वादि ॥
दूर्पाविपंतुशोणितदुष्टकिटिभकोठादिरक्त
लिंगञ्च ॥ विषमेकैकदोषंसन्दूष्यहरस्यसू
नेवम् ।

अर्थ—विष दोष के स्थान और प्रकृति
को प्राप्त करके एक दोषको उदीर्ण कर
देताहै अर्थात् जौनसा दोष अधिक होता
है उस की स्थान और प्रकृति को प्राप्तकर
के उसी दोषको घटाताहै जैसे वात प्रकृति
वाले मनुष्यके वातस्थानमें जाकर वातज
तृष्णा, मूर्च्छा, अरुचि, मोह, गलग्रह, छर्दि
और फेनादि उत्पन्न करताहै और उस सम-
य कफापित्तके लक्षण कम पाये जाते हैं ।
पित्त प्रकृति वालेके पित्ताशय में जाकर
पित्तज तृप्ता, खांसी, ज्वर, वमन क्लान्ति,
दाह, अन्धकार और अतिसारादि उत्पन्न
करता है तथा कफ वात के लक्षण कम
पाये जाते हैं । इसी तरह विषके कफ स्थान
में जाने से कफजन्य श्वास, गलग्रह, कण्डू
लालालाव और वमधु आदि होते हैं तथा
वातपित्तके लक्षण कम पाये जाते हैं ॥
तथा दूर्पाविष रक्तको दूषित करके किटिभ,

पित्ती आदि रक्तज उपद्रवोंको करताहै ।
इसतरह विष एक एक दोष को दूषित
करके प्राणों को नष्ट करदेताहै ॥

विष से मरने के हेतु ॥

क्षरतिविपतेजसासृजत्स्वानिनिरुद्धयमा
रयतिजन्तून् । पीतंमृतस्पहृदिपिप्रतिदष्ट
विद्यदयोर्दशदेशेस्यात् ॥

अर्थ—विषके तेजसे रक्त क्षरित होकर
अर्थात् शडकर रोमके छिद्रोंको रोककर
मनुष्योंको मार डालताहै । पान किया हु-
आ विष मृतकके हृदय में स्थित होजाताहै
और काटे हुए वा विषसे बुझे तीर आदि
से घायल हुए मनुष्य के विष दश स्थान
में स्थित होताहै ॥

विषद्वारा मृत्युलक्षण ।

नीलोष्टदन्तशैथिल्यकंशपतनांगभंगविक्षे-
पाः । शिशिरैर्नलोमहर्षोनाभिहेतदण्ड
राजीच ॥ क्षतजंक्षताच्चनायास्त्युक्तान्ये
तानि मरणलिंगानि ॥

अर्थ—ओष्ठोपर नीलापन दातोंमें शिथि-
लता, बालोंका गिरना, अंग भंग, अंगविक्षे-
प, शीतल वस्तु से रोमाञ्च न होना, लक-
डी से चोट मारनेपर शरीर पर दाग न प-
डना, तथा घाव से रुधिर न निकलना ये
सब विष द्वारा मरने के लक्षण हैं ॥

विष में चिकित्सा भेद ।

एभ्योऽन्यथाचिकित्स्यास्तेपांश्चोपक्रमा
न्मृशुमे ॥ मन्त्रारिष्टोत्कर्त्तनानिष्पीडन
चूपणाग्निपरिपेकाः । अवगाहनरक्तमो-
क्षणवमनधरेकोषधानानिःशुद्धयावरणा-

धजननस्यधूमलेहौपथमशमनानिप्रतिसार
रणंप्रतिविपसज्ञासंस्थापनलेपः ॥ मृतस
धजीवनमेवचविंशतिरेतेचतुर्भिरभ्यधिकाः
स्युरूपक्रमायथायत्रयोज्याःशृणुतयातान्
अर्थ—ऊपर कहे हुए लक्षणों से विपरीत
लक्षण वाला चिकित्साके योग्य होता है
अथ हम उनकी चिकित्सा का वर्णन करते
हैं ॥ मन्त्र, अरिष्ट [दृष्ट स्थानका बांधना]
उत्कर्तन (दृष्टका किसी पैनी छुरी आदि
से कतरना वा खुरचना), निष्पीडन
(भींचकर मवाद निकालना), चूषण
[दंश स्थान का चूमकर थूकदेना] अग्नि
कर्म [जलादेना], पपिकेक, अवगाहन,
रक्तमोक्षण, घमन, विरेचन, उपधान, हृदया-
घरण, अंजन, नस्य, धूम, अवलेह, औषध
प्रशमन, प्रतिसारण, प्रतिविप, संज्ञा स्था-
पन, लेप और मृत संजीवन । ये चौबी
प्रकारकी चिकित्सा हैं । जहां जहां ऊपर
कही हुई चिकित्साओं का प्रयोग किया
जाताहै उसका वर्णन करतेहैं ॥

विप में बन्धनादि विधि ।

दंशास्तुविपदष्टस्यानिसृतंवेणिकाभिभपक्र
वद्धा । निष्पीडयेद्वशंशमुदरेन्मर्मवर्जं ॥
वातदंशवाचूपेन्मुखेनयत्रचूर्णपांशूपूर्णेन
मच्छन्नेवधजलौकःशृंगैःस्नान्वंततोरक्तम्

अर्थ—काठे हुये मनुष्य के दंश स्थान
से जो विप न निकलाहो और यदि वह
दंश हाथ वा पांव ऐसी जगह में हो जो
बंधने के योग्य होती जहां तक विप
फैल गयाहो वहांतक ऊपर और नीचे वेणि

का नामक बंधन से बांधकर चारों ओर से
खून भींचे और फिर दंशस्थानको किसी पै-
नी छुरीसेखुरच डाले परन्तु मर्मस्थान परऐसा
न करे । जो वह दंशस्थान बांधने वा काटने
योग्य नहो तौ मुखमें जौ का चून वा धूल
भरकर दंशस्थान को चूसै, फिर उसे चौरकर
पछना लगाकर वा बेधकर वा सींगियाजोक
वा सींगो लगाकर रुधिर को निकालडाले ।

विपदूपितरक्तका परिणाम ।

रक्तेविपप्रदुष्टेदुष्येत्प्रकृतिःततस्त्यजेत्प्रा
णान् ॥ तस्मात्मधर्षणैरसृग्वर्तमानं
भवत्यस्यात् ।

अर्थ—विपसे रक्तके दूषित होनेपर प्रकृ-
ति दूषित होजाताहै और प्रकृतिके दूषित
होनेपर प्राण जाते रहतेहैं, अतएव जो ऊपर
कहीहुई रीतोंसे भी रक्त न निकला होतौ
निम्नलिखित घर्षणों का प्रयोग करने से रक्त
प्रवृत्त होजाताहै अर्थात् निकलने लगताहै ॥

घर्षणप्रयोग ॥

त्रिकटुगृहधूमरजनीपञ्चलवणाःसवार्ता-
काः ॥ घर्षणमातिप्रवृत्तेवटादिभिःशीत-
ल्लेपः ॥

अर्थ—त्रिकुटा, धरकाधूमसा, हलदी,
पांचों नमक और बेंगन इनसबको पीसकर
काटने की जगहपर धीरे २ रिगडनेसे बन्द
हुआ रुधिर बहने लगताहै, जो रुधिर अत्यं-
न्त बहने लगे तौ वटादि शीतल घृश्योंकी
छालको पीसकर लेप करदेवै ॥

विपके फैलने में रक्तको प्रधानता ॥
रक्तं हि विपाधानं वायुरिवाग्नेः प्रदं हमकैः

स्तत् ॥ शीतैःस्कन्दतितस्मिन्स्कन्नेव्ययं
यातिविषवेगः॥

अर्थ—रक्तही विपका आघान हे जैसे पवनके लगनेसे अग्नि बढतीहै इसीतरह रुधिरके संसर्ग से विप बढताहै । शीतल लेप से रक्तके जमजानेपर विप फैल नहीं सकताहै। कारण यहहै कि रुधिर दिन रात सब देहमें घूमताहै तौ विप भी उसके साथमें फैलता चलाजाता है और जब रुधिरही बहनेसे बन्द होगया तौ विप कैसे फैलसक्ताहै ॥

विपवेगफलक्षण ॥

विपवेगाःमदमूर्च्छाविपादहृदयद्रवाःमव-
र्तन्ते ॥ शीतैर्निर्वर्तयेचान्त्रीज्यैश्चलोम
हर्षःस्यात् ॥

अर्थ—विपके वेगसे मद, मूर्च्छा, विपाद और हृदयमें कम्पन होती हैं, शीतल उपचार से ये उपद्रव शान्त होजाते हैं तथा पंखकी हवा फरनेसे रोमाञ्चभी खडे होजातेहैं ॥ तद्विषमूलच्छेदाहंघच्छेदाभष्टादिप्रुपया तिविषम् ॥ अचूपुणमानयननञ्जलस्यसे तुर्यधारिष्ठा । त्वम्मांसगतोदाहोदहति विपर्रावणंहरतिरक्तात् ॥

अर्थ—जडके काटनेसे जैसे वृक्ष नहीं बढता है, उसीतरह दंशस्थान के छेदन करनेसे विप नहीं बढने पाताहै । दंशस्थानके चूसनेसे विप निकलजाताहै और जैसे जलपर पुल बांधनेसे जल का वेग रुकजाता है उसीतरह दंशस्थान पर रुपर नीचे जोर से बांधे देनेपर विपका वेग रुकजाता है ॥ जब विप त्वचा और मांस

में पहुंच जाताहै उस समय अग्नि से दंश स्थानको दग्ध करनाहितहै जब विप रुधिर में पहुंच जाताहै उस समयरुधिरको निकाल देनेसे विप क्षीण होता है

प्रथमद्वितीयवेगमेंचिकित्सा
पीतंबमनैःसद्योहराद्वरेकैद्वितीयत् ॥ आ
दौहृदयंरक्ष्यंतस्यावरणंपिवेद्यथालाभम्
मज्जानंमधुघृतगैरिकमथगोमयरसंबा ॥
तद्वंसपक्षमथवाकाकनिष्पीड्यतद्रसंबमनं
छागादीनांवासृक्भरममृदंवापिवेदाशु ॥

अर्थ—पिया हुआ विप बमन कराने से तत्काल निकलजाताहै ॥ द्वितीय वेग में पहुंचनेपर विरेचन कराना उत्तमहै ॥ पीत विपमें सबसे पहिले हृदयकी रक्षा करना उचित है ॥ विप द्वारा हृदयका आवरण होनेपर मज्जा, शहत, घी, गेरू, गोबरका रस, हंस वा कौए का मांसरस पान कराके बमन करावै ॥ अथवा बकरेका रुधिर अथवा मिट्टी वा भस्म इनमें से जो जो मिले सके शीघ्रपान करावै किसी २ पुस्तक में तद्वंसपक्षादि, की जगह ' इक्षुसुपकनथ वाकाकनिष्पीड्यतद्रसंबलदम्, पाठ भी है)

तृतीयादि वेगों में चिकित्सा
सारोगदस्तृवीशोफहरैलखनंसमध्वम्बु ॥
गोमयरसश्चतुर्यवेगेसकापित्थमधुसर्पिः ।
काकाण्डाश्रीपाभ्यांस्वरसेनाश्च्योतन
मज्जनेनस्यम् ॥ स्यात्पञ्चमेऽथषष्ठेसं-
ज्ञायाःस्थापनंकार्यम् ॥ गोपित्तयुतारज
नीमज्जिष्ठागीरचपिप्पलीपानम् ॥

अर्थ—विपके तीसरे वेग में क्षार गद,

तकटमीकरञ्जौरसोघ्नीसिन्धुकारिकार-
जनी ॥ सुरसरसाजनगरिकमञ्जिष्ठानि
मृनिर्यासाः । वंशत्यगम्बगन्धाहिंष्टुदधि
त्याम्लचेतसंलाक्षा ॥ मधुमधुकुसुमराजी
वचारुहारोचनाचमवाम् । अगदोऽयं वै
श्रवणायाख्यातः त्र्यम्बकेण पृथक् ॥
अप्रतिहतप्रभावः ख्यातो महागन्धहस्तीति ।
पित्तेन गवांपोष्ये गुलिकाः कार्यास्तु पुष्पयो-
गेन । पानाञ्जनमलेपैः प्रसाधयेत्सर्वकर्मा-
णि । पैल्यं कण्टंतिमिरंरात्र्यन्धंकाचमर्बुदं
पटलम् ॥ हन्ति सततं प्रयोगाद्विभियपथ्या
शिर्नापुंसाम् । विषमज्जरानजीर्णदंष्ट्रं
विम्विषकांपामाम् ॥ कृष्टं किटिभंश्चित्रं वि-
चर्चिकांचोपहन्ति नृणाम् । विषं मूषिकल-
तानां सर्वेषां पक्ष्मगानाञ्च ॥ आशुविषं ना-
शयति समूलमथ कन्दजं सर्वम् । एतेन लि-
प्तगात्रः सर्पाद्यृहणीतभक्षयेच्च विषम् ॥
कालातीतोऽपिनरो जीवति किञ्चिन्निरा-
तः ॥ आरुद्धे गुदलेपो यो निलेषश्च मूढग-
र्भाणाम् । मूर्द्धार्तिपुचललाटे मलेपमाहुः
मधानतमम् ॥ भेरीमूदं पटहाशुत्राप्य-
गुनातथा ध्वजपताकाः ॥ लिप्तानि विष-
निस्त्वैमध्वनयेदृश्ये न प्रतिमान् । यत्र च
सन्निहितोऽयं न तत्र बालग्रहानखास्वोटाः
न च कार्मणवेतालावहन्ति नार्ध्वणामन्त्राः
सर्वग्रहानतत्र भयन्ति न चाग्निशस्त्रपुचौ-
राः ॥ लक्ष्मीश्च तत्र भजते तत्र महागन्धह-
स्त्यस्ति । पिण्यमाण्डमञ्जात्रसिद्धं मन्त्र-
हृदीरथेत् ॥ मम माता जनयानामा विजयो ना-
मपे पिता । शोऽहं योजयापुत्रो विजयो

ऽथ जयामि च ॥ नमः पुरुषसिंहाय विष्णवे
त्रिभुक्कर्मणे । सनातनाय कृष्णाय भवाय
विभवाय च ॥ तेजोऽष्टपाकपेः साक्षात्तेजो
ब्रह्मेन्द्रयो र्यमे । ययाद्नाभिजानामि त्रामु-
देच पराजयम् ॥ मातुश्च पाणिग्रहणं समुद्र-
स्य च शोषणम् । अनेन सत्यवाक्येन सिद्धय-
तामगदो ह्ययम् ॥ हिलिमिलिसंस्पृष्टेरस-
सर्वभेषजे तु मे स्वाहा ॥

अर्थ—तेजपात, अमर, मोथा, इलायची
पांच प्रकारके निर्यास [राठ, गूगळ, अ-
फीम सिलहक और खोवान] चन्दन, अस-
वरग, दालचीनी, जटामांसी, नालकमल,
नेत्रवाला, हरेणुजा, खस, व्याघ्रनखी, देवदारु
नागकेसर, कुकुम, गंधतृण, कूठ, प्रियंगु,
तगर, सिरस के फल, फूल, पत्ते जड और
छाल, त्रिकुटा, हरिताल, मनसिख, फालाजीरा,
सफेद कोयल, कटमी, दोप्रकार के कंज,
सरसों, सम्हाळ, हलदी, गुळसी, रसौत,
गेरू, मजीठ, नीमका निर्यास, यांसफांछाल,
असगंध, हांग, केथ अमलवेत, छाल, म-
हुशा, मुळहटी, सांगराजी, पच, दूब, गोरो-
चन । यह पष्ट्यंग औषध त्र्यम्बक ने
वैश्रवण से कही थी । इसका प्रभाव अ-
निर्याय है । इसे महागंधहस्ती कहते हैं ।
इन साठ औषधियोंको इकाट्टी करके गौ-
के पित्तके साथ पुष्प नक्षत्र में गोलियां
बनावें । इन गोलियोंका पान, अंजन और
लेप द्वारा प्रयोग करने से सम्पूर्ण कार्योंकी
सिद्धि होती है हितकारी अल्प और पध्य
भोजन करनेवाले मनुष्य को निरन्तर सेवन

करने से इस औषधसे पैल, खुजली, तिमिर, रतौंध, काच, अर्बुद और पटलरोग दूर हो जाते हैं । तथा विषमज्वर, अजीर्ण, दाद, विसृचिका, पामा, कोढ़, किटिभ, शिवत्रकुष्ठ और विचर्चिका जाते रहते हैं । मूषकविष, मफडी का विष, सब प्रकारके सर्पों का विष, मूलजविष और कन्दजविष सब शी- प्रही दूर होजातेहैं । इस औषध का शरीर पर लेप करके मनुष्य सर्व को पकडसक्ता है, विष खा सक्ताहै । कालातीत मनुष्य भी इस औषधके धारण करने से निरातंक रहसक्ता है । इस औषध का आनाहोरोग गुदरोग, मूढगर्भा स्त्रीकी योनि, मूर्धा, तथा अर्तिरोगमें ललाट इन स्थानोंपर लेप करना अत्यन्त उत्तमहै । जो रोगी विष से मुर्च्छित होगया हो उस के कानपर भेरी, मुद्ग, और ढोलक पर इस औषध का लेप करके बंधावे । तथा इसी औषध का लेप कर्क, छत्र, ध्वजा, और पताका विपयोगी को दिखावे । जहां यह औषध होती है वहां पालप्रह, राक्षस, कार्मण, वेताल, और अ- श्वर्षणोक्त मंत्र नहीं चल सकते हैं । सम्पूर्ण प्रह, अग्नि शस्त्र, राजा और घोर अपनी दुश्चेष्टा नहीं करसकते हैं । जहां यह औ- षध होती है वहां लक्ष्मी निवास करती है । इस औषध को पीसते समय इस मंत्रका पाठ करना चाहिये, यथा—“मम माता जया नाम विजयो नाम मे पिता । सोऽहं जयो जयापुत्रो विजयोऽथ जयामिच । नमः मुख्य सिंहाय विष्णवे विश्वकर्मणे । सनात-

नाय कृष्णाय भवाय विभवायच । तेजो वृ-
पाकपेः साक्षात् तेजो ब्रह्मेन्द्रयोर्यमे । यथाहं
नाभि जानामि वामुदेव पराजयम् । मातुश्च
पाणिग्रहणं समुद्रस्यच शोपणम् । अनेन
सत्यवाक्येन सिद्धतामगदोऽध्ययम् । हिल
मिलि संस्पृष्टेरक्ष सर्वभेषजेतुमे स्वाहा, ॥
यह सिद्ध मंत्र है ॥

विपरोगनाशक अन्यप्रयोग ।

ऋषभकजीवकभार्गोमधुकोत्पलधान्यके
सगजाज्यः ॥ ससितगिरिकोलमध्याः
पेयाःश्वासज्वरादिहराः । हिंशुचकृष्णा
युक्तंकापित्थरसमग्नूलवणंच । तमधुसि-
तेपातव्योज्वरहिक्काश्वासकासघ्नैः ॥
लेहःकोलास्थपञ्जनलाजोत्पलमधुघृतैर्व-
म्याम् । घृहतीद्वयाढकीपत्रधूमवर्चिस्तु
द्विकाष्ठी ॥ शिखिर्बर्हयलाकास्थीनिस
र्पपाश्वन्दनेचघृतयुक्तः । धूमोऽगृहशयना
सनवस्त्रादिपुशस्यतेविपनुत् ॥ घृतयुक्ते
नतकुण्डेभुजगपतिशिरःशिरिपपुष्पंच ।
धूमागदःस्मृतोऽयंसर्वविपघ्नःश्वपधुहृष
जतुसेव्यपत्रगुग्गुलुभल्लातकफकुभपुष्पस-
र्जरसाः । श्वताएवधूमउरगाखुकीटवस्त्र
कृगिनुदग्ग्यः ।

अर्थ—ऋषभक, जीवक, भाडंगी, मुलहटी,
नीलकमल, धनिया, फेसर, फालाजीरा, चीनी
गेरू, और वेरकी गुठली की मांगी इनको
पान करने से श्वास और ज्वरादिक दूर हो-
जाते हैं । हांग, पीपल, कैथका रस, संचल
नमक इनका शहत और चीनी मिलाकर
टान करनेसे ज्वर, दिचकी, श्वास और खां-

भेद होता है । इसको मुख में धारण करने से मुख तालु और ओष्ठों में चिमचिमाहट, जिहा में शूल, जडता और विवर्णता, दन्त-दर्प, हनुस्तम्भ, मुखदाह लालसाव और कंठ विकार होजाते हैं । विषयुक्त अन्नपान के आमाशयमें पहुँचने पर विवर्णता, पसीने धंगसाद और लज्जेद होता है, दृष्टिनाश तथा हृदयविरोध भी होता है और देह पर सैकड़ों विन्दुके समान फुत्सियां होजाती हैं । विषयुक्त अन्न के पकाशयमें पहुँचने पर मूर्च्छा, मद, मोह, दाह और बलनाश होता है । विषके उदरमें स्थित होजाने से तन्द्रा, कृशता और पांडुरोग होते हैं ।

दन्तपवनस्यकृचः विशीर्यतेहिदन्तोष्ठ्यां सशोथश्च ॥ केशच्युतिःशिरोगन्धयश्च सविषेशिरोऽभ्यङ्गे । दुष्टेऽञ्जनेऽक्षिदाहः स्नात्वाद्युपदेहशोधोरागाश्च ।

अर्थ—विषयुक्त दन्तधावन की कृची को दांतोंपर फेरनेसे मसूडे और होठों पर सूजन होजाती है, दांतनकी कृची विशीर्ण होजाती है । विषयुक्त द्रव्यका शिर पर अभ्यंग करनेसे घाल गिर पडते है और शिर पर फुत्सियां होजाती है । अंजन में विष हानेसे आंखों में दाह, स्राव, उपदेह, सोथ और ललाई होती है ।

आधिरादौकोष्ठःस्पृश्यैस्त्वग्दुप्यतेदुष्टैः ॥ स्नानाभ्यङ्गेत्सादनवस्त्रालङ्कारकैर्दुष्टैः ॥ कंच्चात्तिलोमहर्षाःकोठपिडकाचिमिचि माशोधाः । एतेकरघरणदाहतोदकलम विकाराश्च ॥ भूप्रादुकाश्वगजकेतुचर्पश

यनासनैर्दुष्टैः । माल्यमगन्धम्लायतिश्चिरसोःस्फोचलोमहर्षकरम् ॥ स्तम्भयति खानिदर्शनमुपहान्तिचनासिकांधुमः ॥ कृपतडागादिजलदुर्गन्धसकल्पंविवर्णञ्च ॥ पीतंश्वयथुकोठान्पिडकांश्चकरोतिमरणं चआदावामाशयगवमनंत्वक्स्थेमदेहसेकादि ॥ कुर्याद्भिपकृचिकित्सांदोषबलञ्चैवहितमीक्ष्या इतिमूलविषविशेषाःप्रोक्ताःशृणुजङ्गमस्यातः ॥

अर्थ—विषयुक्त भोजनके करनेसे प्रथम ही कोष्ठ में दाह होता है । विषयुक्त छूने के द्रव्यसे प्रथमही त्वचा में दाह होता है । इसीतरह विषयुक्त स्नान, अभ्यंग, उरसादन, वस्त्र, और अलंकार धारण करने से खुजली, अर्ति, रोमोद्गम, पित्ती, पिडका, चिमचिमाहट और सूजन होती है । पृथ्वी खडाम, हाथी घोंडों के जीन, शय्या और आसनोके विषसे दूषित होने पर हाथ और पांव में दाह, तोद, क्लान्ति और अभ्यंग विकार उत्पन्न होजाते हैं । विषयुक्त पुष्प गंधहीन, मलान, शिर पीडाकारक और रोमोद्गमकारक होते हैं विषयुक्त घूआं के नासिका में प्रवेश होने से नासिका के छिद्र रुकजाते हैं और नेत्रोंमें पीडा होती है ॥ कूप वा तालव आदि का जल विषके संसर्ग से दुर्गन्धित, कल्पित और विवर्ण होजाता है इस जलके पीनेसे सूजन पित्ती, फुत्सी तथा मृत्यु भी होजाती है ॥ विषके आमाशय में प्रवेश करतेही प्रथम वमन करावे तथा त्वचामें स्थित होने पर प्रदेह और परिपेक

कराये ॥ इसमें वैद्यको उचितहै कि रोगीके दोष और बलकी परीक्षा करके चिकित्सा करे इसनहै मूलजघियोंके भेद वर्णन किये गयेहै अब हम जगमघियोंका वर्णन करते हैं ॥

सर्पों के भेदादि वर्णन ॥

इहर्द्वीकरःसर्पोंमण्डलीराजिमानिति ॥

त्रयोपथाक्रमंघातपित्तदलेप्पप्रकोपणाः

अर्थ—यहां र्द्वीकर, मण्डली और राजिमान् तीन तरह के सर्प होतेहैं इन में से र्द्वीकर घातको, मण्डली पित्तको और राजमान् कफ को कुपित करनेवाले होते हैं ।

सर्पों की परीक्षा ।

र्द्वीकरःफणीज्ञेयोमण्डलीमण्डलाफणः॥

विन्दुलेखोविचित्रांगःपन्नगःस्यासुराजिमान्॥

अर्थ—जिस सर्प का फण करछी के सदृश होता है उसे र्द्वीकर कहते हैं । जिसका फण गोल होताहै वह मण्डली होताहै और जिसके देह पर अनेक प्रकार के विन्दु और रेखा होतीहै वह राजिमान् कहाता है ।

उक्तसर्पों के विष के गुण ।

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णंस्वादुशीतलम्
विषंयथाक्रमंतेपातस्माद्घातादिकोपनम् ।

अर्थ—र्द्वीकर सर्पका विष विशेष करके रूक्ष और कटु है, मण्डलीका विष अम्ल और उष्ण है तथा राजिमान् का विष स्वादु और शीतल है और इसी हेतु से ये क्रम से घात, पित्त और कफके प्रकोपकर्त्ता हैं ॥

र्द्वीकरके दंशका लक्षण ।

र्द्वीकरकृतोदंशःमूक्षमदंष्ट्रपदोपितः॥

निरुद्धरक्तःकूर्माभोघातव्याधिकरोमनः

अर्थ—र्द्वीकर सर्पका दंशस्थान अर्थात् काटने की जगह मूक्षम और काली होती है, उसमें से रुधिर नहीं बहता है, देखने में कछुएमी दिखाई होताहै तथा उग्न मनुष्यमें घातव्याधिके लक्षण दृष्टिगत होने लगतेहैं ॥

मण्डली के दंश का लक्षण ।

पृथ्वर्पितःसशोफश्चदंशोमण्डलिनाकृतः।

पीताभःपीतरक्तश्चसर्वपित्तविकारकृत् ॥

अर्थ—मण्डली सर्पका दंशस्थान बड़ा मूजनयुक्त, पीतवर्ण और पीतरक्त से युक्त होता है इसमें सब तरहके पित्तविकार दिखाई देतेहैं ॥

राजिमान के दंशका लक्षण ।

कृतोराजिपतादंशःपिच्छिलःस्थिरशोफ

कृत् । सिग्धःपाण्डुश्चसान्द्रासृक्श्लेष्म

व्याधिसमरिणः ॥

अर्थ—राजिमान् का दंश पिच्छिल, स्थिर, शोफकृत्, सिग्ध, पीतवर्ण होता है इस के घातका रुधिर जमजाता है और विशेष करके कफ लक्षण दिखाई देते हैं तथा कुष्ठर घात के भी होत हैं ॥

सर्पोंकेलिंगभेद ।

वृत्तभोगोमहाकायःफणऊर्द्धक्षणःपुगान् ।

स्थूलमूर्धासमांगश्चस्त्रीतितःस्याद्द्विपथ्य

यात्।नलीविःसूस्तस्त्वधोदष्टिःरवरहीनः

प्रकम्पते । स्त्रियादष्टोविषयस्तरंतःपुंसा

वृद्धावालास्त्वचोमुक्ताः सर्पाग्नन्दविपाः
स्मृताः ॥

अर्थ—पानी का मारा हुआ, क्षीण, भीत
न्यौले से पराजय किया हुआ, वृद्ध, बालक
जिसने अभी काचली छोड़ीहो ऐसे सर्प
मन्द विप होतेहैं ॥

विपको सर्व देहाश्रितत्व ।

सर्वदेहाश्रितकोधाद्विपसर्पाविमुञ्चति ।

सदेवाहारहेतोर्वाभयाद्दानममुञ्चति ॥

अर्थ—सर्प क्रोधावेश में अपने सम्पूर्ण
देह से विप को निकालता है परन्तु आहार
हेतु या भय से नहीं निकाल सकता है ।

अन्य विपाक्त फाँटोंकी प्रकृति ।

वातोत्वणविपाः प्रायः उच्चिचिटिग्नाः सबृश्चि
काः । वातपित्तोत्वणाः कीटाः श्लैष्मिकाः
कणभादयः ॥ यस्यस्यहिदोपस्यालिंगा
धिक्यानिलक्षयेत् । तस्यतस्यौपधः कुर्या
द्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥

अर्थ—उच्चिचिटिग और पीछू इन दोनों
के विप प्रायः वातपित्ताधिक्य और कणम
का विप कफाधिक्य होताहै । जिस जिस
दोष के विशेष लक्षण दिखाई पड़ें उसी
दोष के विपरीत गुणवाली औषधों द्वारा
चिकित्सा करना उचित है ॥

वातिकविपकेलक्षण ॥

दृत्पीडोर्ध्वानिलस्तम्भः शिरायासोऽस्थि
पर्वकृक् ॥ घूर्णनोद्दृष्टनंगात्रश्यावतावाति
केविपे ॥

अर्थ—वातिक विपमें दृत्पीडा, ऊर्ध्ववात
स्तम्भ, शिरायास, अस्थि और पर्व में

वेदना, घूर्णन, उद्दृष्टन [अंगडाई] और
शरीर में कालापन ये लक्षण होते हैं ।

पैतिकविप के लक्षण ॥

संज्ञानाशोष्णनिश्वासोद्दृहाहः कडुकास्य-
ता ॥ मांसावदारणशोफोरुक्पीतश्चपैतिकै

अर्थ—पैतिक विपमें वेहोशी, उष्णस्वास,
हृदयमें दाह, मुखमें फडवापन, मांसका
विदीर्ण होना और लाल पीली सृजन ये
लक्षण होते हैं ॥

श्लैष्मिक विप के लक्षण ॥

वम्यरोचकदृक्लासमसेकोत्केशगौरवैः ॥
सशैत्यमुखमाधुर्यैर्विद्यात्श्लेष्माधिकं
विपम् ॥

अर्थ—वमन, अरुचि, दृक्लास, प्रसेक,
उत्केश, भारापन, शीतलता, मुखमें गीठा-
पन ये श्लैष्मिक विपके लक्षण हैं ।

वातिकविपमें चिकित्सा ।

खण्डेनचन्नणालेपस्तैलाभ्यंगश्चवातिके
स्वेदोनाडीपुलाकाधैर्बृहणश्चविधिर्हितः ॥

अर्थ—वातिकविप में खंडकालेप, तैल
मर्दन, नाडीस्वेद, पुलाकादिस्वेद और
बृहणविधि हितहैं ॥

पैतिकविपमें चिकित्सा ।

मुशीवैः स्तम्भयत्सेकैः प्रदेहैश्चापिपैतिकम्

अर्थ—पैतिक विप में शीतल परिपेक
और प्रदेहादि द्वारा स्तम्भन करे ॥

श्लैष्मिकविप में चिकित्सा ॥

लेखनच्छेदनस्वेदचमनैः श्लैष्मिकं जयेत् ॥

अर्थ—श्लैष्मिक विपको लेखन, छेदन,
स्वेदन और वमनद्वारा दूरकरना चाहिये ॥

शीतक्रियोपयोगीविष ।

विषेज्वरपिचसर्वेषुसर्वस्थानगतेषुच । अहृ
श्विकोद्यतिद्वेपुमायःशीतोविधिर्हितः ॥

अर्थ—बीछू और उच्चिटिंगको छेडकर
सब प्रकारके सर्वस्थानगत विषोंमें शीत-
क्रिया हितहै ॥

बीछूके विष में चिकित्सा॥

घृदिचकेस्वेदमभ्यंगघृतेनलवणेनच॥से-
कांश्रोष्णान्मयुञ्जीतभोज्यपानञ्चसर्पिषः

अर्थ—बीछू के विषमें घृत और नमक
से पसीनादेवै, मालिश करावै, उष्णपारिपेक
घृतमिश्रित भोजन और घृतपान हितहैं॥

उच्चिटिंगके विषमें चिकित्सा।

एतदेवोच्चिटिंगेऽपिप्रतिलोमञ्चपांशुभिः ।
उद्वर्त्तनसुखाम्बूप्णैस्तथावच्छादनंघनैः॥

अर्थ—उच्चिटिंगके काटनेपर बीछूके
समानही चिकित्सा करनी चाहिये । जहां
डंक लगाहो वहां घूळि लगाकर प्रतिलोमन
करै, उद्वर्त्तन करै और सुहाते हुए गरमज-
लमें भीगेहुए कपडे की कई तह करके
दंशस्थान पर रखदेवै ॥

त्रिदोषजविषकेलक्षण ॥

स्यात्त्रिदोषप्रकोपात्तथाधातुविपर्य-
यात्।शिरोऽभितार्पीलालास्राव्यधोवक्त्र-
स्तथाभवेत्॥

अर्थ—त्रिदोष के प्रकोप और धातुओं
के विपर्ययसे काटेहुए मनुष्यके सिर में
ताप, लारका गिरना और मुख का नीचा
होजाना ये लक्षण होते हैं ।

अन्यसर्षों के लक्षण ।

अन्येऽप्येवंविधाव्यालाःकफवातप्रकोप
नाः । दृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भतृपामूर्च्छा
करामताः॥

अर्थ—इनसे अतिरिक्त और भी अनेक
प्रकार के व्याल हैं जो कफवातको प्रकुपित
करतेहैं इनके काटनेसे हृदय में वेदना, शि-
रःशूल, ज्वर, स्तम्भ, तृपा, और मूर्च्छा होतीहै।
सविपशरीरकेलक्षण ॥

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिदोषशोषणम्
विदाहरागरूपाकाःशोफोऽग्रन्धिर्निकुञ्च
नम् ॥ दंशावदरणस्फोटाःकाणिका
मण्डलानिच ॥ ज्वरश्चसविपेलिगंविप
रीतन्तुनिर्विपे ॥

अर्थ—खुजली, निस्तोद, विवर्णता, सू-
न्यता, छेद, उपशोषण, विदाह, राग, वेद-
ना, पाक, शोफ, ग्रन्धि, निकुञ्चन, दाडिस्था-
नका फटना, फोडे, काणिका, चकत्ते, और
ज्वर ये सविप शरीरके लक्षण हैं।इनसे विप
रीत निर्विप शरीरके लक्षण होतेहैं ।

तत्रसर्वेयथायस्थप्रयोज्याःस्युरूपक्रमाः
पूर्वोक्तविधिमन्यञ्चयथावद्भुवतःशृणु॥

अर्थ—सविप शरीरमें अवस्थाके अनुसा-
र चिकित्सा करनी चाहिये इन चिकित्सा-
ओंमें से थोडीसी पहिले कहचुके हैं और
कुछ अब कहतेहैं ।

विषरोग में चिकित्सा ।

हृदिदाहेप्रसेकेवाविरैकवमनंभृशम् । य
थावस्थंप्रयोक्तव्यंशुद्धेसंसर्जनंक्रमः॥शि-
रोगतेविपेनस्तःकुर्यान्मूलानिमुद्धिमान् ।

बन्धुजीवश्चभार्याश्चसुरसस्यासितस्यच
दक्षकाकमपूराणांमांसासृक्मस्तकेक्षते ।
मूर्ध्निदेयमधोदृष्टस्योर्द्धदृष्टस्यपादयोः
पिप्पलीमारिचक्षारवचासैन्धवशिष्टिकाः ॥
पिप्परारोहितपित्तेनघ्नन्त्यक्षिगतमजनात् ॥

अर्थ—विपके कारण जो हृदयमें विदाह
और लालास्राव होताहो तो अवस्था के
अनुसार तीक्ष्ण वमन विरेचनदेवै और शुद्ध
होनेके पीछे संसर्जनक्रम का प्रयोग करे ।
जो विष शिरोगतहो तो बन्धूक, भाङ्गी
और कालीतुलसी इन तीनोंकी जड़ों को
पीसकर नस्य देवै । जो मस्तकमें काटा हो
तो उस जगह मुर्गा, मोर और कौए का
मांस और रुधिर लगावै और जो पांशु के
ऊपर काटाहो तो भी यही चिकित्सा करे ।
जो विष नेत्रोंमें पहुंचगया हो तो पीपल,
कालीमिरच, जवाखार, वच, सैधानमक और
संहजने के धीज इन सबको पीसकर रोहू-
मछली के पित्ते में मिलाकर आजे ॥

विपेकण्ठगतेमांसकपिस्थससितामधु ।
आमाशयगतेलिहात्ताभ्यांचूर्णपलंनतात्
विपेककाशयप्राप्तेपिप्पलीरजनीद्वयम् ॥
मञ्जिष्ठाचसम्पिप्पलीरजनीरजनीरजनीरजनी ॥
मांसरक्तश्चगोधायाःशुष्कंचूर्णाकृतंहित-
म् ॥ विपेरसगतेपानंकापित्थरससंयुतम् ॥
शैलमूलत्वग्ग्राणिवादारौदुम्बराणिच ॥
फट्भ्याश्चपिबेद्रक्तगतेमांसगतेपिबेत् ॥
सक्षारंक्षारिरीरिष्टकीटजमूलमम्भसा ।
सर्वेषुचवलेद्रेहमधुकंमधुकंनतम् ॥ पिप्प

भिगण्डीणेतुविदध्यात्प्रतिसारणम् ॥

अर्थ—जो विप कंठमें पहुंचा हो तो
कैथ का गूदा, मिर्चा और शहत मिलाकर
देवै । आमाशयगत विषमें तगर का एक
पल चूर्ण चीनी और शहत मिलाकर सेवन
करे विपके पकाशयमें पहुंचनेपर पीपल
दोनों हल्दी और मंजीठ ये सब समान
भाग लेकर गौके पिते के साथ पान करे ।
विपके रसमें पहुंचनेपर गोहके मांस और
रक्तको सुखाकर पीसकर कैथ के रस के
साथ पान करे । विपके रक्तमें पहुंचनेपर
शैल की जड़ छाल तथा बेर, गूगल और
फट्भी की डालियों का ध्रुवभाग पीसकर
जल के साथ पीवै । विप के मांसगत
होनेपर खैर के अरिष्टमें शहत डालकर पीवै
अथवा कुटकीकी जड़को पानीके साथ
पीसकर पीवै । विपके सर्व धातुगत होने-
पर बला, अतिबला, मुलहठी, महुआ
और तगर इनको जलमें पीसकर देवै
विषमें कफका प्रकोप होनेपर पीपल, सोंठ,
जवाखार, इन सबको मक्खनमें सानकर
प्रतिसारण करावै ॥

सर्वशोधनाशकयोग ॥

मांसीकुंकुमपत्रत्वरजनीनतचन्दनैः ।
मनःशिलाव्याघ्रनखसुरसैरम्बुपेपितैः ॥
पाननस्याञ्जनोलेपाःसर्वशोधविषापहा-
अर्थ—जटामांसी, कुंकुम, तेजपात, दाल-
चीनी, हल्दी, तगर, चन्दन, मनसिल, व्याघ्र-
नख और तुलसी इनको जलके साथमें
पीसकर पान, नस्य, अंजन और लेपन में

प्रयोग करें। इससे सब प्रकार की सूजन और विष नष्ट होजातेहैं।

अन्यप्रयोग

चन्दनंतगरकुण्डहरिद्रेद्वेत्वगेवच । मनः-
शिलातमालश्वरसःकेसरपवच ॥ शार्दू-
लस्यनखश्वैवसुपिष्टंतण्डुलाम्बुना। हन्ति
सर्वविषापण्येवज्विबज्ज्मिवासुरान् ॥

अर्थ—चन्दन, तगर, कूठ, दोनों हलदी, दालचीनी, मनसिल, तमाल, रस, केसर, व्याघ्रनख इन सबको चावलके जलके साथ अच्छी तरह पीस लें। इसका पान करनेसे सम्पूर्ण विष ऐसे नष्ट होजातेहैं जैसे इन्द्रका वज्र असुरों को नष्ट करताहै।

रसेसिरीपपुष्पस्यसप्ताहंमरिचंसितम् ।
भायितसर्पदष्टानानस्यपानाञ्जनेहितम् ॥

गृहधूमहरिद्रेद्वेसमूलंतण्डुलीयकम् । अपि
वासुकिनादष्टःपिबेदाधिघृतायुतम् ॥ द्वि
पलंनतकुट्टाभ्यांघृतक्षौद्रिचतुप्पलम् । अ-
पितक्षकदष्टानांपानमेतत्सुखपदम् ॥

सिन्धुवारस्यमूलश्चश्वेताचगिरिकर्णिका
पानंदर्वाकरैर्दष्टेनस्यमधुसपाकलम् ॥ म
ञ्जिष्ठामधुयष्ट्याहाजीयकर्पभकौसिता
काशमर्यवटशृङ्गानिपानंमण्डलिनांविषे ॥

व्योपंप्रतिविषांकुण्डं गृहधुमेहरणुकां । त
गरकटुकाक्षौद्रं हन्तिराजिमताविषम् ॥
क्षीरिवृक्षत्वगालेपःशुद्धेकीटाविषापहः ।
मुक्तालेपोवरःशोफदाहतोदज्वरापहः ॥

अर्थ—सहजने के घाँसोंको सात दिवस तक सिरसके फूटोंके रसकी भावना देवै। इसका नस्य, पान और अंजनमें प्रयोग

करने से सर्पके काटने में गुणकारक है। गृहधूम दोनों हलदी, चौलाई जब समेत इन सबको पीसकर दही और घीमें सान कर पीवै तो वासुकी का काटा हुआ भी अच्छा होजाता है। तगर और कूठ दो पल घृत दो पल, शहत दो पल, इन सबको मिलाकर पीनेसे तक्षकका काटा हुआ भी अच्छा होजाताहै। सभाद्रकी जड़, सफेद कोयलकी जड़ और गिरिकर्णिका की जड़का काथ करके पीवै तथा शहत और पाकलाकी नस्य लेवै। ये दर्वाकर सर्प के काटने में हित है। मंडली सर्प के विष में मर्जाठ, शहत मुलहठी, जीवक, ऋषभक, चीनी, खंभारी और बडकी कौपल को घोट कर पीना हित है। राजिमान् सर्प के विष में त्रिकुटा, अतीस, कूट, गृहधूम, हरेणु, तगर, कुटकी इनको जल में पीसकर शहत के साथ पान करें। वमन विरचन कराके वड आदि दूध वाले वृक्षकी छाल का लेप करने से कीट विष दूर होजाता है। तथा इन्हींके दंश पर जलमें पीसकर रास्ना का लेप करने से शोफ, दाह तोद और ज्वर दूर होजाते हैं।

लूताविष की चिकित्सा ।

चन्दनंपद्रकोशीरंपाटलिःसिन्धुवारिका।
क्षीरशुक्लानतंकुण्डंशिरिपीदीच्यशारिवाः
शेखस्वरसापेष्टोऽथलूतानांसारिकार्मिकः ॥

अर्थ—चन्दन, पद्मास, उसीर, पाटला सभाद्र, विदारीकन्द का दूध, तगर कूठ, सिरस, नेत्रवाला और शारिवा इन सबको शंशुके रसमें पीसकर पीने और लेप करने

(१०६२)

प्रयुक्त कौ तो मकड़ीका विप दूर
जाता है ।

मकटीकीअन्य चिकित्सा ॥

मधुकंमधुकंभृशरीरेवादि।च्यपाटलैः ।

सनिम्बशारिवाक्षौद्रपानंलूताविपापहम् ।

अर्थ—मुलहठी, महुआ, कूट, शाखि
नेत्रवाला, पाटला, नांम, और शाखि, इनको
जलमें पीसकर शहत मिला कर पीने से
लूताविप दूर होजाता है ।

कुसुम्भपुष्पगोदंतःस्वर्णक्षीरीकपोतविद
दन्तीतृवृत्सैन्धवैलाफणिकापातनंतयोः ॥

कटभ्यार्जुनकुण्डानिशेलुक्षीगीद्रुमत्वचम्।
कपायकल्कचूर्णास्युःकीटलूताप्रलापहाः।त्व-

चञ्चनागरञ्चैवसमांशंइलक्षणपेपितं।पेय
मुष्णाम्बुनासर्वमूपिकाणांविपापहम् ॥

अर्थ—कसुम के फूल, गोदन्ती हरिताल,
स्वर्णक्षीरी, कबूतरकी बीट, दन्ती, नितोथ,
संधानमक और बडी इलायची पीसकर
लेप करने से छताविप और कीटविप नष्ट
होजाते हैं । कटमी, अर्जुन, कूट, शेलु,
बटादिदुग्ध वृक्षोंकी छाल इनका कपाय,
कल्क और चूर्ण द्वारा प्रयोग करनेसे कीट
विप का और छताविप का प्रलाप नष्ट
होजाता है । अथवा दालचीनी और सोंठ
समानभाग लेकर महीन पीस डाले और
फिर इसको गरम जल के साथ पानकरै तो
मूपकविप दूर होजाता है ।

फुटजस्यफलंपिष्टंमगरंजालमालिनी ॥

तिक्तेश्वाकुकयोगोयंपानंमधमनादिभिः॥

वृश्चिकोन्दुरलूतानांसर्पाणाञ्चविपापहम्

समानममृतेनेदगराजीर्णञ्चनाशयेत् ॥

अर्थ—इन्द्रजौ, तगर, घोयातोरई, कटु
तुम्बी इनको पीसकर पान और प्रथमनादि
द्वारा प्रयोग करै तो बीछू, चूहा मकड़ी और
सर्पोंका विप दूर होजाता है यह योग अमृत
के समान है इसके सेवन से विपदोष और
अजीर्ण दूर होजाते हैं ।

किरकटविपचिकित्सा ।

सर्वागदाययादोपंप्रयोज्याःस्युकृकण्ठके

अर्थ—रोगीकी अवस्थाके अनुसार सब
प्रकारकी औषधियों के करने से किरकटेका
विप दूर होजाता है ।

वृश्चिकाविपचिकित्सा ॥

कपोतविदमातुलुंगंशिरीपकुसुमाद्रसः ॥
शंखिन्याकम्पयःशुण्ठीकरञ्जमधुवादिचके

अर्थ—कबूतरकी बीट, विजौरा, सिरस
के फूलका रस, शंखिनी, आककादूध, सोंठ
कंजा, शहत इन सबको समान भाग ले
पीसकर लेपकरै तो विच्छूका विपदूरहोजाताहै

मैंडकविपचिकित्सा ।

शिरीपस्यफलंपिष्टंस्नुहीक्षीरेणदादुरै ॥

अर्थ—सिरसके बजोंका सेंडुड के दूध
में पीस कर लेप करने से मैंडक का
विप दूर होजाता है ।

मत्स्यविपचिकित्सा ॥

मूलानिशैतभिण्डायाव्योपसर्पिश्चमत्स्येने

अर्थ—सफेद अपराजिताकी जड़ और
त्रिकुटाको पीसकर लेप करने से मछलीका
विप दूर होजाता है ।

जोकविपचिकित्सा ।

कीटदष्टक्रियासर्वासमानास्याञ्जलौक
साम् ।

अर्थ—कीटदष्टकी जोर चिकित्साकही
गई है उनहके समान जोककी चिकित्साहै ॥

वातपित्तहरीप्रायःक्रियाप्रायःप्रशस्यते ।

वाचिचकस्तूचिचिटिंगश्चकणभस्योन्दुरोगदः

अर्थ—बीछू, उच्चिटिंग, कणभ और
उन्दुर के विषमें प्रायःवातनाशनी क्रियाहितहै
विश्वम्भरादि विष चिकित्सा ।

वचोवंशत्वचंपाठानंतमुरसमञ्जरीम् ॥

द्वेचलेनाकुलंकुण्डशिरापरजनीद्वयम्गुहाय

तिगुहांश्वेतामजगन्धांशिलाजतु । कचृणं

कटभीक्षांगृहधूममनःशिलाम् ॥ रोही

तकस्यपित्तनपिण्डनातुपरमोगदः ॥ नस्या

ञ्जनाद्यलेपुहितोविश्वम्भरादिषु ॥

अर्थ—वच, वांसकी छाल, पाठा, तगर,
तुलसीकी मंजरी, दोनों बला, रासना, कूठ,
सिरस, दोनों हलदी, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी,
श्वेत अपराजिता, अजगंध, शिलाजीत,
कचृण, कटभी, जयाखार, गृहधूम, मनसिल
इन सबको पीसकर रोहू मछली के पित्तेमें
सानकर नक्ष, अंजन और प्रलेपादि द्वारा
प्रयोग करने से विश्वम्भरादि कीड़े का
विष दूर होजाता है ।

कांतर की चिकित्सा ।

स्वर्जिकाजशकुनुक्षारःमुरसाथासर्पाडकः

मदिरामण्डसंयुक्तोहितःशतपदीविषे ॥

अर्थ—सर्जाखार, बकरीकी मँगनी का
खार इनको तुलसी के पत्ते के रसमें मिलाकर

आंखों पर लगावै और इन्हीं द्रव्यों को
सुरामण्डमें मिलाकर शतपदीके दंश पर लेप
करै तौ आराम होता है ।

छप्कली विपकी चिकित्सा ।

कपित्यमक्षिपीडोऽर्कवीजंत्रिकदुकंतथा ।

करञ्जोद्वेहरिद्रेचगलगोड्याविपंजेयत् ॥

अर्थ—कैथ का रस, आक के लीज और
त्रिकुटा इनको पीसकर रस निकालकर
आंखों पर लगावै अथवा कंजा और दोनों
हलदी इनका रस भी आंखपर लगाने से
छप्कली का विष दूर होजाता है ।

काकाण्डरससंयुक्तोविपाणांतण्डुलीयकः

सर्वेपांवाहोपत्तेनसद्व्यायसपील्लकः ॥ शि

रीपफलमूलस्वक्पुष्पपत्रैःसमैर्घृतैः ॥ श्रेष्ठः

पञ्चशिरीपोऽयंविपाणांमवरोवधे ॥

अर्थ—कृष्णशिव्नी और चौलाई इन
दोनों का रस सब विषों में हितकर है ।
मकोय और पीछ भी मोरके पित्ते के साथ
में तद्वत् गुणकारक है ॥

सिरस के फल, मूठ, छाल, फूल और
पत्ते इनको समान भाग लेकर घी में पीस
कर लगावै यह शोषध विपनाशक प्रयोगों
में हितकारी है । इसे पंचशिरीप कहते हैं ।

दंत और नखमें चिकित्सा ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वानखदन्तक्षतंतुयत् ॥

शूयतेपच्यतेवापिस्रवात्तिज्वरयत्यपि ॥

सोपचल्कोऽश्वकर्णाचगोजिह्वाहंसपथपि

रजन्यागैरिकलेपोनखदन्तविपापटः ॥

अर्थ—चौपाये वा द्विपाये जीवोंके दांत
वा नख लगाने से जो घाव होजाते हैं उन

में सूजन, पाक, स्राव और ज्वर होआता है । इसमें सफेद खैर, अश्वकर्ण, गोभी, हंसपादी, दोनों हलदी और गेरू इनका लेप करने से नख और दांतों का विप दूर होजाता है ।

शंकाविप में उपाय ।

दुर्गान्धकारोविद्धस्यकेनचिदृष्टशङ्कया ॥
त्रिपेद्गेगाज्ज्वरर्छादिमूर्च्छादाहोऽपिवाभ
येत् । ग्लानिर्मोहोऽतिसारोवाप्येतच्छ
ङ्काविपमत्तम् ॥ चिकित्सितमिदंतस्यकु-
र्यादाश्वासयन्बुधः । सितावैगन्धिकां
द्राक्षांपयस्यामधुकंमधु ॥ पानंसमन्त्रपू-
ताम्बुमोक्षणंसान्त्वहर्षणम् ॥

अर्थ—दुर्गम अन्धकार में चींटी आदि क्षुद्र जन्तुके काटने से सर्पकी शंका होकर विपके बंगसे ज्वर, घमन, मूर्च्छा और दाह भी होता है तथा ग्लानि, मोह और अतिसार ये भी विपकी शंकासे होआते हैं । इनमें शान्तिप्रदायक वचनों द्वारा रोगीको आश्वासन देवें और चीनी, गोंदी, दाख, क्षारकाकोली, मुलहठी, शहत, इनका पान करावे । मंत्र पढ़े हुए जल से प्रोक्षण करे और शान्ति प्रदायक वचनों से प्रसन्न करता रहे ।

विपरोग में पथ्यविधान ।

शालयःपाष्ठिकाश्चैवकोरुपाःप्रियङ्गवः॥
भोजनार्थेप्रशस्यन्तेलवणार्थंचसैन्धवम् ।
तण्डुलीयकजीवन्तीवार्ताकुसुनिपण्णका
चुरुचुर्षणहकपर्णाचशाकञ्जकुलकंहितम् ।
पार्श्वीदाडिममम्लार्थेयूपामुद्गहरेणुभिः ॥

रसाश्चैणशिशिवाविलावतात्तारिपार्षताः
विपत्रापथसंयुक्तारसायूपाश्चसंस्कृताः॥
अविदाहीनिचान्नानिविपार्षतानांभिपग्नि-
तम् ॥

अर्थ—शालाचांबल, साठाचांबल, कौदाँ, प्रियंगु, ये भोजन के लिये देवें, जगक में संधानमक देवें । शाक में चौलाई, जीवन्ती बेंगन, चौपतिया, चुचू, तंदूकपर्णी, और परबल का साग हितहै । खटाई में आंबला और अनार, यूपमें मूंग और हरेणु, मांसरस में मोर, मेंढा लवा, तीतर और पृपत हिरण, इन मांस और यूयो को विपनाशक औषधियों में सिद्ध करके देवें तथा अविदाही अन्नका सेवन भी विपरोगियों के लिये हित है ।

विपमें वर्जितकर्म ।

विरुद्धायशनक्रोधक्षुब्धभायायासमैधुनम् ।
वर्जयेद्विपमुक्तोऽपिदिवास्वर्मावेशपतः॥

अर्थ—विरुद्धादि भोजन, क्रोध, क्षुधाके वेगको सहन करना, भय, परिश्रम, मैधुन और दिन में सोना इन बातों को विप दूर होनेपर भी त्यागदेवें ॥

चतुष्पददण्डके लक्षण ।

मुहुर्मुहुःशिरोन्यासःशोकःसस्तौष्ठकर्णता
ज्वरस्तब्धासिगात्रत्वंहनुकम्पोऽङ्गमर्दन-
म् । रोमार्पणमंग्लानिररतिर्वेपथुर्ग्रहः॥

चतुष्पदांभवत्येतदृष्टानामिहलक्षणम् ।

अर्थ—चौपाये जीपके काटने से ये लक्षण होते हैं कि दृष्ट व्यक्ति बार बार सिर को फेंकता है, सूजन, ओष्ठों में शुष्कता,

कानों में स्तब्धता, ज्वर, आंखोंका पथराना गात्रमें स्तब्धता, हनुकम्प, अंगमर्द, रोमोद्गम, ग्लानि, अरति, कम्पन और जफडन ये लक्षण भी होते हैं ।

चतुष्पददष्टमें उपाय ।

देवदारुहरिद्रेद्वैसरलंचन्दनागुरु ॥ रास्ना
गोरोचनाजाजीगुगुल्विकुरकोनताम् ।
चूर्णससैन्धवानन्तंगोपित्तमधुसंयुतम् ॥

चतुष्पदाहिदष्टानामगदःसार्वकार्मिकः
अर्थ—देवदारु, दोनोहस्ती, सरलकाष्ठ,

चन्दन, अगर, रास्ना, गोरोचन, कालाजीरा, गूगल, तालमखाना, तगरु, सेंधानमक और अनन्तमूल इन सबका चूर्ण बनाकर शहत और गौ के पित्त के साथ खाने, पाने, लगाने आदि सब कार्यों में देवै इससे औषधों का विष दूर होजाता है ।

गरविषके लक्षण ।

सौभाग्यार्थस्त्रियःस्वेदरजोनानाङ्गजान्म-
लान्शत्रुप्रमुक्ताश्चगरान्प्रयच्छन्त्यन्न
मिश्रितान् ॥ तैःस्यात्पाण्डुःकृशोऽल्पा
मिज्वरश्चास्योपजायते । मर्मप्रमथना
ध्मानहस्तपाच्छोफलक्षणाः ॥ जठरं
प्रहणीदोर्पयक्ष्माणंश्वययुंक्षयम् ॥ एवं
विषस्यचान्यस्यव्यापेर्लिङ्गानिदर्शयेत् ॥

अर्थ—वशीकरणादि प्रयोगों के लिये स्त्री अपने मित्त २ धंगोंके स्वेद, रजआदि मलों को खाने पाने की वस्तु में देदेती है इसीतरह शत्रु भी गरविष मिलाकर अन्न वा पानी दे देते हैं । इन से पांडुरोग, कृशता, मन्दाग्नि, अवर, मर्मप्रपीडन, आ-

ध्मान्, हाथ पांव में सूजन, उदररोग प्रहर्णादीष, यक्ष्मा, श्वयथु और क्षयरोग तथा ऐसेही और उपद्रव भी होते हैं ॥

गरविष के अन्यलक्षण ॥

स्वप्नेमार्जारगोमायुष्यालान्सनकुलान्
कपीन् ॥ प्रायःपश्यातिनघादीन्शुष्कांश्च
सवनस्पतीन् ॥ कालश्चगौरमात्मानंस्व-
प्नेगौरश्चकालकृष्णविकर्णनासिकंवापि
पश्येत्तद्विहतेन्द्रियः ॥

अर्थ—गरविष से पीडित स्वप्न में बिहड़ी, सिरकटा, सर्प, नकुल, बन्दर, नदी और सूखी वनस्पतियों को देखता है । उसे अपना कालाशरीर गौरा और गौरा शरीर काला दिखाई देता है । उस के कान और नाक विरूप दिखाई देते हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियों में विकलता होती है ।

गरविष में वैद्यकाकर्त्तव्य ।

तमवेक्ष्यभिषक्प्राज्ञःपृच्छेत्किङ्कैःकदासह
जग्धमित्यवगम्याशुप्रदद्यात्प्रमनंमिषक् ।
सूक्ष्मताभ्ररजस्तस्मैसक्षौद्रंहृत्त्रिशोधनम् ॥
शुद्धेहृदि ततःशाणंहेमचूर्णस्यदापयेत् ।
हेमसर्वाविषाण्याशुगरांश्चविनियच्छति ।
हेमपस्यसजत्यङ्गेनाहिषत्रेऽम्बुवादिषम् ।

अर्थ—ऊपर कहे लक्षणों से युक्त देख कर बुद्धिमान् वैद्य को पूछना चाहिये कि तुमने किस के साथ कब क्या खाया है । यह पूछकर शीघ्रही तांबेकी भस्म में शहत मिलाकर वमन करावे । ऐसा करने से हृदय शुद्ध होजायगा । हृदय के शुद्धहोने पर एक शाणशुद्ध हेमचूर्ण देवे । सुवर्ण सम्पूर्ण

मैथुन करने से बढी हुई अपानवायु अधोगा-
मी स्त्रोतों को यद्द करके ऊपरको लौटती-
है और वस्ति में पहुंचकर घोर विडम्व्रह, मू-
त्रमह और अधोवातमह रोगोंको उत्पन्न क-
रती है ('वायुर्विद्वद्भः' से 'करोत्यपानः' त-
क पाठान्तर भी है यथा "पकाशयेकुम्भ्य-
तिचेदपानः स्त्रोतस्यधोगानिवलीसरुद्धा ।
करोतिक्लिप्मास्तमूत्रसंगं क्रमादुदावर्चमतःसु-
घोरम्,) ॥

उदावर्चजन्यरोग ।

रुग्वस्तिहृत्कुक्ष्युदरेष्वभाक्ष्णं सपृष्ठा-
श्व्वतिदारुणास्यात् ॥ आध्मानहृत्तास
विकार्त्तिकाश्च । तोदोविपाकश्चसवस्ति-
शोथः ॥ दोषाःमबृद्धाजठरेचगण्डान् ।
ऊर्ध्वश्चवायुर्विहितोद्युदेस्यात् ॥ कृच्छ्रे
णगुष्कस्यचिरात्प्रवृत्तिः । स्यादातनुः
स्यात्खररुल्लशीताः ॥ ततश्चरोगाज्व
रमूत्रकृच्छ्रं मयाहिकाहृद्ग्रहणीमदोषाः॥
बन्धान्धवाधिर्यशिरोऽभिताप वातो
दराष्टीलमनोविकाराः ॥ तृष्णास्रापित्तारु
चिगुल्मकास श्वासमतिश्यादितपाश्व
रोगाः ॥ अन्येचरोगायहवोऽनिलोत्था ।
भवन्त्युदावर्चकृताःसुघोराः ॥

अर्थ....उपर कहेहुए व्यतिक्रमसे उदावर्च
रोग के होनेपर वस्ति, हृदय, कुक्ष, और
उदर में निरन्तर बेदना होती है । पीठ और
पसलियों में दारुणशूल होने लगता है ।
तथा आध्मान, हृत्तास, विकार्त्तिका (ऐंठ)
तोद, विपाक, और वस्तिशोथ उपस्थित हो
ते हैं और घटेहुए दोष, जठर में गण्ड और

र ऊर्ध्ववात को प्रवृत्त करते हैं जो दस्त
होता भी है तो पतला, सूखा, शीतल, क-
टिन्तासे, देरमें सूखाहुआ थोडा थोडा हो-
ता है । तदनन्तर ज्वर, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका
हृददोष, ग्रहणादोष, यमन, अन्धता, बहरा-
पन शिर में जलन, वातोदर, वातष्टीला, म.
नोविकार' तृष्णा, रक्तपित्त, अराचि, गुल्म,
खांसी, श्यास,, प्रतिश्याय, अर्दित, पाश्वरां-
ग तथा और और भी बहुत से वातजरोग
उत्पन्न होते हैं ॥

वातजरोगोंमें चिकित्सा ।

ततैलशीतज्वरनाशनोक्तं स्वदैर्यथोक्तैः
प्रविलीनदोषम् ॥ उपचारेद्वास्तिनिरूहव
स्ति स्नेहैर्विरैकैरनुलोमनाम्नैः ॥

अर्थ—ऐसे रोगी को प्रथमही शीतज्वर
नाशक तैल का अभ्यंग और यथोक्त पसी-
ने देकर दोषों को दूरकर देवै और फिर
वर्ति, निरूहणवस्ति, स्निग्धविरैचन और
अनुलोमनकर्त्ता औषधियों द्वारा उपचारकरे ।

उदावर्च में वर्ति विधि ॥

श्यामाभिष्टम्भागधिकाभिचूर्णगोमूत्रपीतं
दशभागमापमूसनीलिकाद्विल्वपण्डुडेन
घर्त्तिकरांशुप्रनिभांविदध्यात् ॥

अर्थ—कालीनिसोध, पीपल, चीता और
नीलका ये सब दस दस माशे लैवै और इ
न से दूना नमक मिलाकर गौकेमूत्र में घोट
टाले फिर गुट मिलाकर अंगूठे के बराबर
वत्ती बनाकर गुदा में प्रवेश करके बांधदेवै
और थोडीदेर पीछे वत्ती निकालकर फेंक
देवै ऐसा करने से उदावर्च दूर होजाताहै ।

और अधोवायु के निकालने वाले अन्य द्रव्यों के साथ भी यवान्न भक्षण करे । उपर से प्रसन्ना, और गौरीय शीघुका अनुपान करे ॥ यदि इन उपायों के करने पर मल मूत्रादि की विवन्धता एक बार दूर होकर फिर उत्पन्न होती गौमूत्र, प्रसन्ना और दधिमंड के संयोग से फिर विरेचनद्वै ॥ गुल्मोदरग्रन्नाशः प्लीहोदावर्तयोनिशुक्र गदे । मेदःकफसंसृष्टेमासुररक्तेऽवगाढे च । शुभ्रसिपक्षवधादिपुविरेचनाहैषु वातरोगेषु ॥ वातेनिबद्धमार्गमेदःकफपि चरक्तेन । पयसामांसरसैर्वात्रेफलारस यूपमूत्रमदिराभिः।दोपानुबन्धयोगात्प्रशस्तमेरुण्डजतैलम् । दद्यात्तनुत्स्वभावात् संयोगवशाद्विरेचनाच्चजयेत् ॥ मेदोऽष्टफुपित्तफान्निमश्रानिलवरांगजित्स्यात्

अर्थ—गुल्मरोग, उदररोग, अन्न, अर्श रोग, घ्राहा, उदावर्त, योनिरोग, शुक्ररोग मेदा से संसृष्ट वा कफसे संसृष्ट अवगाढ वातरक्त, शुभ्रसी, पक्षाघात, तथा अन्य विरेचन के योग्य वातरोग, मेद वा कफ वा पित्तरक्त द्वारा निबद्ध मार्गवाला वातरोग इन सब रोगों में दोष के अनुबन्ध के अनुसार दूध, मांसरस, त्रिफला का काथ, यूप, गोमूत्र वा मदिरा के साथ अंडीके तेल का विरेचन दै ॥ यह अंडी का तेल खभाव से वातनाशक है और औषधियों के संयोग वश से विरेचन कर्ता भी है इससे यहमेदरोग रक्तीपत्त और कफवातरोगोंको नष्टकर देताहै

अप्ली के तैलकी मात्राकाप्रमाण ।
मलकोष्ठन्धाधिबशादापञ्चपलाभवंमा

श्रा । मृदुकोष्ठावलानांसहभोज्यतंप्रयोज्यंस्यात् ।

अर्थ—शरीर के मल, कोष्ठ और व्याधि के प्रसंगसे अंडी के तैलकी मात्रा पांचपल पर्यन्त है मृदुकोष्ठवाले और दुर्बलों के लिये यह भोजन में मिलाकर देना चाहिये ॥

विरेचनकापश्चात् कर्म ॥

स्वस्पन्तुपश्चादनुवासेत्तमुरौक्ष्यादिसद्गो निलवर्षसोश्चेत् ॥

अर्थ—स्वस्थ होने पर विरेचन के पीछे रुक्षताके कारण यदि वातप्रकोपसेविद्यका विवन्ध होता अनुयासन वस्ति दै ॥

उदावर्तमेंचिकित्साकेप्रमाण

द्विरुत्तरंहिगुणवासकुष्ठामुवाचिकाचैवविडङ्गचूर्णम् । सुखाम्पुनानानाहविपूचिकातिहृद्रोगगुल्मोर्द्धसमीरणघ्नम् ॥ वचाभयाचित्रकयावशुकान्सपिप्लीकातिविपानसकुष्ठान् । उष्णाम्पुनानाहविमूढवातानुपीत्वाजयेदाधुरसौदनाशी ॥

अर्थ—हींग, वच, कूट, संचलनमक, और वायविडंग इनको उत्तरोत्तर द्विगुणले कर चूर्ण करले और गरम जल के साथ फाँके तौ इससे आनाह, विशचिका, आर्श हृद्रोग, गुल्म और ऊर्ध्वावात दूर होजाते है वच, हरद, चीता, जपाखार, पीपल, अतिस और कूट इन के चूर्ण को गरम जल के साथ फाँके तौ आनाह और मूत्र वात दूर होजाते हैं । इसपर मांसरस और चावल का पथ्य होता है ।

स्तिरादिवर्गस्यपुनर्नवायाःशम्पाकपूती-

ककरञ्जयोश्च ॥ सिद्धःकपायेद्विपलां-
शिकानांप्रस्थो घृतात्स्यात्प्रतिरुद्धवातो

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल, सांठ, स्या-
माक, पूतिकंजा इनको दो दो पल लेकर
काथ करै, चौथाई शेष रहनेपर उतारकर
छानलेवै और इसमें एक प्रस्थ घृत डाल-
कर पकावै यह घृत रुद्धवात में हित है ॥

फलञ्चमूलञ्चविरेचनोक्तांहिंगुवर्कमूलदंश
मूलमग्न्यम् । स्तुविचित्रकौचैवपुनर्नवाच
तुल्यानिसर्वैर्लवणानिपञ्च ॥ स्नेहैःस-
भूमैःसहजर्जराणिशरावसन्धौविपचेत्सु-
लिप्ते ॥ पक्कंमुपिष्टंलवणंतदभैःपानैस्त-
थानाहरुजप्रमग्न्यम् ॥

अर्थ—विरेचनोक्त फलमूल, हींग, आक
की जड़, दशमूल, सेंहुड, चीता, सांठ ये
सब समानभाग लेवै और इन सब के
बराबर पांचों नमक मिलाकर कूटडाठे इस
में स्नेह और गोमूत्रादिक मिलाकर शराव
संपुट में रखकर कपडमिठी करके फूंकलेवै
पक होनेपर पीसकर इस नमक को अन्न-
पान के साथ सेवन करै । यह आनाह के
दूर करने में सर्वोत्कृष्ट है ॥

हृत्स्तम्भमूर्धाशयगौरवार्त्याचोद्गारसङ्के-
नसपीनसेन् । आनाहमाममवन्नञ्जयचं
प्रच्छर्दनैर्लघनपाचनञ्च ॥

अर्थ—हृत्स्तम्भ, शिरोरोग, भारापन, ड-
कार का बन्द, होना, पीनस इन रोगों से
युक्त आमसे उत्पन्न हुए आनाह रोगमें, व-
मन, लघन और पाचन प्रयोग करै ॥

हिंगुप्रगन्धाविद्वृण्यजाजीहरातकीपु-

क्करमूलकुट्टम् । यथोत्तरंभागविवृद्धमेत-
मृष्टीहोदरानीर्णविसृचिकासु ॥

अर्थ—हींग, वच, पिदनमक, सांठ, का-
लाजीरा, हरड, पौहकरमूल, कूठ, इनसब
औपधोंको उचरोत्तर एक एक भाग बढ़ा-
कर चूर्ण बनाकर सेवन करै तौ मूत्राह,
उंदररोग, अर्जाण, और विसृचिका नष्ट
होजाते हैं ॥

मूत्रकृच्छ्रका निदान ।

व्यायामतीक्ष्णोपधरुक्षमद्यमसङ्गनित्यः
दृप्तपृष्टयानात् ॥ आनूपमत्स्याध्ययना
दर्जीर्णात्स्वुमूत्रकृच्छ्राणिवृणामिहाष्टौ ॥

अर्थ—शारीरिक परिश्रम, तीक्ष्ण भीषध
रुक्षसेवन, मद्यप्रसंग, स्त्री ससर्ग, शाप्रगगन
उच्छल उच्छलकर चलने घाटे उष्ट्रादि की
पीठ पर सवारी, आनूप और मत्स्यमांस
का अतिशय सेवन, अध्ययन, अर्जाण में
भोजन इत्यादि हेतुओं से मनुष्यों के भाठ
प्रकारके मूत्रकृच्छ्र होते हैं ॥

कृच्छ्रतासे प्रस्ताव का कारण ।

पृथक्मलाःस्वैःकुपितानिदानांसर्वेऽथवा
कोपमुपेत्यवस्ता । मूत्रस्यमार्गपरिपीड
यन्तियदातदापूत्रयतीहकृच्छ्रात् ॥

अर्थ—अपने अपने कारणोंसे एक एक
दोष अथवा सब एक साथ कुपित होकर
वस्तिमें पहुँचकर मूत्रमार्गको पीडित करतो
हैं तब बहुत थोडा थोडा पढी फाटिनतासे
प्रस्ताव होताहै ॥

यातजमूत्र कृच्छ्र के लक्षण ।

तीव्राहिरुग्वंसणवस्तिमेदे ।

स्वल्पंमुहुर्भयतीहवातात् ॥

अर्थ—वातज मूत्रकृच्छ्रमें प्रस्राव करने के समय बंधन, वस्ति और मेदमें बड़ी तीव्र वेदना होती है और प्रस्राव थोड़ा २ बड़ी कठिनता से उतरता है ॥

पित्तजमूत्र कृच्छ्रके लक्षण ।

पीताम्रकृष्णहिसरुवसदाहं ।

कृच्छ्रान्मुहुर्मूत्रयतीहपित्तात् ॥

अर्थ—पित्तजमूत्रकृच्छ्र में पीला, लाल या काला प्रस्राव बड़ी वेदना और दाहके साथ बार बार होता है ॥

कफजमूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

वस्तेःसलिंगस्यगुरुत्वशोफौ ।

मूत्रंसपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥

अर्थ—कफजमूत्रकृच्छ्र में वस्ति और लिंग में भारापन और सूजन होती है और मूत्र गिलगिला उतरता है ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुरान्निपातात् ।

भवान्तितत्कृच्छ्रतमन्तुकृच्छ्रम् ॥

अर्थ—सन्निपातजमूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं यह बहुतही कृच्छ्रसाध्य होता है ॥

अश्मरीनिदान ।

विशोपयेद्वस्तिगतन्तुशुक्रंमूत्रंसपिच्छं पवनः कफवा । यदातदाश्मर्युपजायतेतुक्रमेण पिपेप्विचरोचनागौः ॥

अर्थ—जब वायु किसी कारणसे वस्ति में पहुँचे हुए शुक्रको सुखादेती है वा पित्त सहित कफको सुखा देती है तब क्रम २ से बद्धमान अश्मरी [पथरी] उत्पन्न

होती है जैसे गौके पित्त में गोरोचन उत्पन्न होता है ॥

अश्मरी की आकृति ॥

कदम्बपुष्पाकृतिरश्मतुल्या ॥

श्लक्ष्णात्रिपुत्र्याप्यथवापिमृद्री ॥

अर्थ—अश्मरी कदम्ब के फूल के सदृश वा पत्थर के तुल्य चिकनी, तिगुटी वा फोमल भी होती है ॥

अश्मरी के कर्म ।

मूत्रस्यचेन्मार्गमुपैतिरुधामूत्रंरुजांतस्यकरोतिवस्तौ । ससीयनीमेहनवस्तिशूलं त्रिशीर्णधारश्चकरोतिमूत्रम् ॥ मृद्रातिमेदंस तुवेदनार्तोमुहुःशकृन्मुञ्चतिमेहतेच । सोभात्सतेमूत्रयतीहसामृकृतस्याःसुखमेहितचव्यवापात् ॥

अर्थ—जब अश्मरी मूत्रमार्ग में पहुँच जाती है तब मूत्रमार्ग को रोकदेती है ॥

और वस्ति में अत्यन्त वेदना उत्पन्न करती है । सीयनी से लेकर मेद पर्यन्त वस्ति में बड़ा शूल होता है उस समय मूत्र की धार फटजाती है और वेदना के कारण रोगी मेद को पकड़कर मसल डालता है और बार २ रोगी पुरीपोत्सर्ग और मूत्र करता है ॥ मसलते २ मेदके भीतर घाव होजाता है तब उसमें से श्थिर आनेलगता है, तथा उसके व्यवाय से सुख पूर्वक प्रस्राव होने लगता है ।

शर्करा के लक्षण ।

एपाश्मरीमाफताभिन्नमूर्तिः ।

स्याच्छर्करामूत्रपयात्सरन्ती ॥

अर्थ—जब यह अमरी वायु के कारण छिन्न भिन्न होकर मूत्रमार्ग के द्वारा निकलती है तब इसे शर्करा कहते हैं । ÷ ॥ शुक्रमलाद्वेदपृथक्पृथक्वाम्नायनस्याः प्रतिचारयन्ति । तद्व्याहतंमेहनवस्तिशूलंमूत्रंसशुक्रंदिफरोतिवदम् ॥ स्तब्धश्च शूनोभृशवेदनश्चतुद्येतवस्तिर्हृषणौ च तस्य ॥

अर्थ—जब दोष पृथक् २ वा सब मिल कर मूत्रमार्ग का अवलम्बन करके शुक्रको निकालने से रोक देते हैं और धीर्यके कारण मूत्र भी रुक जाता है उस समय मूत्र और वस्ति में अत्यन्त शूल होता है । तथा वस्ति और मूत्र में स्तब्धता, सूजन और अत्यन्त वेदना होती है और वस्ति तथा अंडकोशों में सुई छिद्रनेकीसी पीड़ा होती है ॥

÷ किमी २ पुस्तक में यह पाठ अधिक है यथा — रेतोऽभिघाताभिहतस्य पुंसः प्रवर्त्तयेत्सप्तमूत्रकृच्छ्रम् । स्यात्वेदनायक्षणवस्ति मेदं तस्यासिशूले वृषणातिवृत्ते ॥ शुक्रणसंरुद्ध गतिः प्रवाहो मूत्रं स्रुच्छ्रेण विमुञ्चतीह । समाण्डयोः स्तब्धमिति भ्रुयन्ति रेतोऽभिघाते प्रवदन्ति कृच्छ्रम् ॥ अर्थात् मूत्रके अभिघात से जो अमरी होती है वह पुरुषों केही होती है और धीर्य के अभाव से स्त्री और बालकों के नहीं होती ॥ इस में वंश्रण, वस्ति और मूत्रमें अत्यन्त वेदना होती है ॥ धीर्य से मूत्रका मार्ग रुक जाने के कारण मूत्र काठिनता से होता है । इस रेतोऽभिघात मूत्रकृच्छ्र को अण्डस्तब्ध कहते हैं ॥

अन्य अमरीका कारण ।

क्षतादिघातात्क्षतजंक्षयाद्वाप्रकोपितेवस्ति गतंचिवदम् । तीन्नातिमूत्रेणमहाल्पमल्पमायातितस्मिन्नतिसञ्चिते च ॥ आध्मात्ताविन्दतिगौरवश्चवस्तेर्लघुत्वञ्चविनिःसृतेऽस्मिन् ॥

अर्थ—मूत्र के भीतर घाव होने से वस्ति में चोट लगने से, अथवा रसादि धातुओं के क्षीण होने से रक्तगदि द्रव्योंको कुपित करके वस्ति में लेजाकर रोक देते है और तब अत्यन्त वेदना से युक्त होकर मूत्र के साथ धीरे धीरे बाहर निकलती है, और जो यह भीतर बहुत संचित होजाय तो वस्ति में आत्मान और भारापन होता है और जो निकलजाय तो हलकापन रहता है (गंगाधर शास्त्री ने 'महाल्पमल्पमायाति, की जगह "महास्मरीन्वनायाति' ऐसा पाठ किया है परन्तु प्रसंग विरुद्ध मान्य पढ़ता है ॥

वातजमूत्रकृच्छ्रं मे चिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्निहानिरुहवान् स्नेहोपना होवरवस्तिसेकान् । स्त्रियादिभिर्वाहैरैन्दसिद्धान् युञ्ज्यात्सञ्चानिष्ठ मूत्रकृच्छ्रे ॥ पुनर्नैवैरुद्रग्रन्थिभिः पत्तूरुच्चैरवश्याम्पिष्टिः । द्विपञ्चलेनकुलस्यकोले चर्वच्चर्वाधान्दक्षि तेकपाये ॥ तैलेवाराहमवमाष्टुनञ्च दे रेवककैलेवर्षश्चमाव्यम् । दन्नात्रपायु मातिहन्तिपीवं शूलान्दन्नादन्मूत्र-

अर्थ—वातजमूत्रकृच्छ्रमें अभ्यंजन, स्नेह, निरूहणवस्ति, स्नेहोपनाह, उत्तरवस्ति, परिपेक तथा शालिपर्णीसे आदि लेकर वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए मांसरसों का प्रयोग करै ॥ पुनर्नवा, ऐरण्ड, शतावरी, पत्तूर, वृश्चोद, खरैटी, पाखानभेद, ददामूल, कुलथी, घेर, जौ इन सब के क्वाथ में इन्हीं का कल्क और पाचों नमक डालकर तेल, यराह की चर्बी, रीछकी चर्बी और घीको सिद्ध करै इसका मात्रावत् सेवन करने से शूलान्वित वातज मूत्रकृच्छ्र शीघ्रही दूर होजाता है ॥ यहाँ गंगाधर शास्त्री यह लिखतेहैं कि पुनर्नवादि पहिले तीन द्रव्यों में उनही का कल्क और पाचोंनमक डालकर घी, यसाभादि सिद्ध करै ॥ दूसरा घृत पत्तूरादि चार द्रव्यों से करै ॥ तीसरा दशमूल में सिद्ध करै और चौथा कुलथादि शेष द्रव्योंमें करै ॥

एतानिचान्यानिवरीपधानि । सर्वाणि शस्तान्यापिचोपनाहे ॥ स्थुर्लाभतस्तैलफलानिचैवस्नेहाम्लयुक्तानिसुखोष्णवन्ति ॥

अर्थ—उपर कही हुई औषधें तथा अन्य उत्तम उत्तम औषधों को तैलफल (तिल वा अलसी) स्नेह और अम्लद्रव्योंके साथ पीसकर गरम २ उपनाहमें प्रयोग करै ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ॥

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा प्रैप्पोविधिर्वस्तिपयोविरैकाः ॥ द्राक्षाविदारीधुरसर्पूतेशच कृच्छ्रेपुपित्तमभवेपुकार्याः ॥ शतावरीकाशकुशाश्वदंश्च विदारिशा-

लीधुकशेरुकाणाम् ॥ काथसुशीतमधुशर्कराभ्यां युक्तंपिवेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्री ॥ भिवेत्कपायंकमलोत्पलानां शृंगाटका नामयवाचिदार्याः ॥ दण्डोत्पलानामथवापिमूलं पूर्वेणकल्केनतथासुशीतम् ॥ एर्वास्वीजंत्रपुपात्कुसुम्भानसकुंडुर्मस्या हृपकश्चपेयः ॥ द्राक्षारसेनाश्मरिशर्करासर्वेषुकृच्छ्रेपुप्रशस्तएषः ॥ एर्वास्वीजमधुकंसदार्वं पैत्तिपिवेत्तण्डुलधावनेन ॥ दार्वोतथैवामलकीरसेन समाक्षि-

कांपित्तकृतेतुकृच्छ्रे ॥

अर्थ—पित्तजमूत्रकृच्छ्र में सेक, अवगाह, शीतल प्रदेह, प्रैप्पिक क्रिया, तथा दाख, विदारीकन्द का रस, ईखकारस और घृत द्वारा वस्ति प्रयोग, दूध और विरेचन देवै ॥

सितावर, कांस, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द, ईख और कसरू इन के क्वाथ को ठंडा करके शहत और शर्करा मिलाकर पीने से पैत्तिकमूत्रकृच्छ्र अच्छा होजाता है ।

कमल और नीलकमल का काथ अथवा सिंघाडे का क्वाथ अथवा विदारीकन्द का काथ अथवा दंडोत्पलकी जड़का कपाय ठंडा होने पर शहत और चीनी डालकर पान करै । ककड़ी के बीज, खीराके बीज कसूम के बीज, कुंकुम और अडूसा इनको पीसकर दाख के रस के साथ सेवन करै तौ अश्मरी शर्करा तथा सद्य प्रकार के मूत्रकृच्छ्र दूर होजाते हैं । ककड़ी के बीज, मुलहटी और दारुहलदी इनको पीसकर तण्डुल जड़ के साथ पान करै । दारुहलदीको

पीसकर आंवले के रस के साथ शहत मिलाकर पीवै तौ पित्तज मूत्रकृच्छ्र दूर होजाताहै ।

कफजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ।

सारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानस्वेदोयवान्नवमननिरूहः । तक्रसतिक्तौषधसिद्ध तैलमभ्यङ्गपानकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ व्योपंश्व दंष्ट्राञ्जुटिसारसास्थिकोलप्रमाणोमधुमूत्रयुक्तम् । पिबेत्तुटिंशौद्रयुतांकदल्यारसेन कंठर्यरसेनवापि ॥ तकेणयुक्तंसितमारकस्यबीजंपिबेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः । पिबेत्तथातण्डुलधावनेनप्रवालचूर्णकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ समच्छदारग्वधकेभ्युकैलाधवं करञ्जकुटजंगूडचीम् । पक्त्वाजलेतेनपि घेद्यवागूसिद्धंकपायमधुसंयुतंवा ॥

अर्थ—कफज मूत्रकृच्छ्र में क्षार उष्ण और तीक्ष्ण औषध, उष्ण और तीक्ष्ण अन्नपान, स्वेदन, जौ का अन्न, वमन, निरूहण, तक्र तथा तिक्त औषधियों से सिद्ध किये हुए तेल का अभ्यंग और पान हित है । त्रिकुटा गोखरू, छोटी इलायची, कमलगट्टाकी मिर्गी इनको एक एक ताँले लेकर शहत और गोमूत्र के साथ पान करे । अथवा छोटी इलायची और शहत को केला के रस के साथ अथवा केयटी मोथा के रस के साथ पान करे । कथवा शालिचक्रेवाजों को तक्र के साथ पान करे अथवा तंडुल जल के साथ मूंगाकी भस्म को पान करे । सप्तपर्ण, वमलतास का गूदा, केवुक, छोटी इलायची, धव, कंजा, कुड़ाकी छाल और गिलोय इन सबके काथमें यवागू सि-

द्ध कर के सेवन करे अथवा इन के कपाय में शहत डालकर पीवै ।

सान्निपातिकमूत्रकृच्छ्रमेंचिकित्सा । सर्वत्रिदोषप्रभवेतुवायोःस्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्यकार्यम् । त्रिभ्योऽधिकेप्राग् वमनंकफेतुपित्तेविरेकःपवनेतुवस्ति ॥

अर्थ—सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्रमें जो तीनों दोष समान हों तौ वायु को प्रधान समझकर चिकित्सा करे । यदि तीनों दोषोंमें कफकी अधिकता हो तौ प्रथम वमन करावे । पित्त की अधिकतामें विरेचन और धातकी अधिकता में वास्ति देवै ॥

क्रियाहिवात्वश्मरिशर्कराभ्यांकृच्छ्रेयथैवेहकफानिलाभ्याम् । कफांमनाभेदानि

पातनायविशेषयुक्तंशृणुकर्मसिद्धम् ॥

अर्थ—कफवात के मूत्रकृच्छ्र में जो जो चिकित्सा कही गई है वेही अशमरी और शर्करा में हित होती है अथ कफजन्य अशमरी के टुकड़े करके निकालने के लिये जो विशेष युक्तियाँ हैं उनको वर्णन करतेहैं ।

अशमरी में चिकित्सा ।

पापाणभेदं वृषकंश्वदंष्ट्रापाठाभयाव्योपशटीनिकुम्भाः । हिंस्त्रीखराश्वासितिमारकाभ्यामेर्वास्काणांत्रपुपस्यर्वाजम् ॥ उत्कुञ्चिकाङ्गिगुसवंतसाम्लं स्यादद्देहृदत्पाहपुपावचाच । चूर्णपिबेदश्मभिदा विपकं सर्पिश्चमोमूत्रचतुर्गुणन्तैः ॥

अर्थ—पाखान भेद, अइसा, गोखरू, पाठा, हरड, त्रिकुटा, कचूर, दन्ती, हिंस्त्री हुरासानी अजवायन, शालिचकांज, ककड़ी

के तैलकी वस्ति देवे । जो जो चिकित्सा
पित्तजमूत्रकृच्छ्र में वर्णन की गई है वेही सब
रक्तज मूत्रकृच्छ्र में भी हित हैं ॥

मूत्रकृच्छ्रमैवार्जितकर्म ।

व्यायामसन्धारणशुष्करूक्ष पिष्टान्नवां
तार्ककरव्यवायान् ॥ खर्जूरशाल्कक
पित्तजम्बु विपंकपायं च रसं भजेन्ना ॥

अर्थ—व्यायाम, मलमूत्रादि वेगधारण,
शुष्क, रूक्ष, पिष्टान्न, वातसेवन, घूप, व्य-
वाय, खिजूर, शाल्कक, वैथ, जामन, विप
और कपाय रस ये सब उक्तोगों में निपेध
किये गये हैं ॥

हृद्रोगकी उत्पत्तिकारण ।

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकवरितछर्द्यामसं-
धारणकर्षणानि । हृद्रोगकारीणितथा
भिघातः चिन्ताभयत्रासमदाभिचाराः ॥

अर्थ—व्यायाम, तीक्ष्णविरेचन, तीक्ष्ण-
वस्ति, घमन, मलवेग का रोकना, उपवा-
सादि कर्षण, अभिघात, चिन्ता, भय, त्रास,
मत्तता और अभिचार ये सब हृद्रोगों की
उत्पत्ति के कारण हैं ॥

हृद्रोगके उपद्रव ।

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकासहिक्काश्वासास्यवैर-
स्पृत्पाः प्रमोहाः ॥ छर्दिः कफोत्केशरुजो
श्चिश्च हृद्रोगजाः स्युर्विविधास्तयान्ये ॥

अर्थ—हृद्रोग से विवर्णता, मूर्च्छा, ज्वर,
खांसी, हिचंकी, श्वास, मुखका जायका
भिगडना, घृषा, प्रमोह, घमन, कफोत्केश
वेदना, अर्शच तथा और भी ऐसेही बहुत
से अन्य उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

वातज हृद्रोगके विशेष लक्षण ॥

दृच्छ्रन्यभावद्रवशोपभेद ।

स्तम्भःसमोहःपवनाद्विशेषः ॥

अर्थ—वातजहृद्रोगमें हृदयमें शून्यता
धक धक, शोप, भेद, स्तम्भता और मोह
ये विशेष लक्षण होते हैं ॥

पित्तज हृद्रोग के लक्षण ॥

पित्तात्तमोद्यनदाहमोह ।

सन्त्रासतापज्वरपीतभावाः ॥

अर्थ—पित्तज हृद्रोगमें अन्धकार दिखाई
देना, ग्लानि, दाह, मोह, त्रास, सन्ताप,
ज्वर और वस्तुओंका पीछा दिखाई देना
ये लक्षण होते हैं ॥

कफज हृद्रोगके लक्षण ।

स्तब्धगुरुस्यात्स्तिमितश्चर्म ।

कफात्प्रसेकज्वरकासतन्द्राः ॥

अर्थ—कफज हृद्रोगमें स्तब्धता, भारा-
पन, मर्ममें स्तिमिता, छालास्राव, ज्वर, खांसी
और तन्द्रा ये लक्षण होते हैं ॥

सान्निपातिक हृद्रोग के लक्षण ।

विद्यात्त्रिदोषत्वपिसर्वैलिङ्गं ।

तीव्रार्तिभेदं कृमिजंसफण्डम् ॥

अर्थ—सान्निपातिक हृद्रोगमें तीनों दोषों
के लक्षण होते हैं तथा कृमिज हृद्रोग में
तीव्र वेदना, भेद और खुजली होती है ।

वातज हृद्रोग में चिकित्सा ।

तैलससौवीरकमस्तुतक्रंवातेमपेयं लवणं-
सुखोष्णम् । मूत्राम्बुसिद्धं लवणैश्च तैल-
मानाहगुल्मार्तिहृदा मयघ्नम् ॥ पुनर्नर्वा-
दारुसपश्चमूर्त्तारान्नायवान्बिल्वकुलत्थ

कोलम् ॥ पक्त्वा जले तेनाविपाच्य तैलमभ्य
 ऋपानेऽनिलदृद्धदघ्नम् ॥

अर्थ—सौवीर, दही का तोड़ और मठा
 इनके साथ तेल पीवै अथवा गोमूत्र और
 जल के साथ नमकको सिद्ध करके सुहाता
 हुआ गरम पानै अथवा पांचों नमकके साथ
 सिद्ध किया हुआ तेल पीवै । इसके पीने से
 वातज हृद्रोग, आनाह और गुल्म दूर हो-
 जाते हैं । सांठ, देवदारु, पंचमूल, रास्ना,
 जौ, बेल की छाल, कुलधी और बेर इनका
 कांथ करै, चौथाई शेष रहनेपर उतारकर
 छान लें और इसमें तेल को पकाकर अ-
 भ्यंग और पानमें प्रयुक्त करै तौ वातज हृ-
 द्रोग जाता रहता है ॥

हरीतकीनागरपुष्कराह्वैर्वयःकयस्थालव
 पैश्चककल्कः । सर्दिगुभिःसाधितमग्यस-
 र्पिर्गुल्मेसदृत्पार्श्वगदेऽनिलोत्थे ॥ सपु-
 ष्कराह्वफलपूरमूलंमहीपधंअव्यभयाच
 कल्काः । क्षाराभ्युसर्पिःलवणैर्विमिश्राः
 स्युर्वातहृद्रोगविकृतिकाग्नाः ॥

अर्थ—हरड, सांठ, पौहकरमूल, काकोली,
 छोटी इलायची, सेधानमक और हींग इन
 के कल्कके साथ चौगुना जल चढाकर घृत
 पकावै, इस घृतके सेवन करनेसे वातज गुल्म
 हृद्रोग और पसलीका दर्द दूर होजाता है ।
 पौहकरमूल, विजौरे की जड़, सांठ, कचूर,
 हरड, इन सब का कल्क, जवाखार का
 जल, घी और सेधानमक इन सबको पका-
 कर सेवन करने से वातज हृद्रोग और वि-
 कृति का नाश होजाता है ॥

काथःकृतःपौष्करमातलुङ्गपलाशभृतीक-
 शटीमुराह्वैः । सभुण्ध्याजाजीद्विचयाय
 मानिःसक्षारलण्णोलवणश्रपेयः ॥ पथ्या
 शटीपुष्करपञ्चकोलान्समातुलुङ्गायमके
 नकल्कः ॥ गुडप्रसन्नालवणैश्चभृष्टोदृत्-
 पार्श्वगुल्मोदरयोनिशूले ॥

अर्थ—पुष्करमूल, विजौरा, पलास, अ-
 जवायन, कचूर, देवदारु इनका क्याथ कर
 के इसमें सांठ, कालाजीरा, दोप्रकार की
 बच, अजवायन, जवाखार और नमक डाल
 कर गरम गरम पीने से वातज हृद्रोग दूर
 होजाते हैं ॥ हरड, कचूर, पौहकरमूल,
 पंचकोल और विजौरा इनका कल्क इसमें
 गुड, प्रसन्ना और नमक डालकर घी और
 तेलमें भूनकर सेवन करने से हृत्शूल, पार्-
 श्वशूल, गुल्म, उदररोग और योनिशूल दूर
 होजाते हैं ॥

त्र्यूपणादि घृत ।

स्थात्त्र्यूपणं द्वे त्रिफले सपाठे निदिधिफा
 गोक्षुरकावलेदे । ऋद्धिश्चुटिस्तामलकी
 स्वगुतापेदे गधुकं मधुकं स्थिराच ॥ शता-
 वरीजीवकपृश्निपुष्पौ द्रव्यैरिमेरक्षसमैः
 सुपिष्टैः ॥ प्रस्थंघृतस्येहपचेद्विधिज्ञः प्रस्थे
 नदध्रस्त्वथमाहिपस्य ॥ मात्रांपलं चार्द्धं
 पलंपिचुम्बाप्रयोजेयन्माक्षिकसंयुक्तम्-
 श्वासेसकासेत्वयपाण्डुरोरोगेहलीमकेहृद्घ्र
 हणीप्रदापे ॥

अर्थ—त्रिकुटा, दोनों प्रकारकी त्रिफला
 (एकहरड बहेडा, आंवला) दूसरी (दाख
 गमारी और फालसा) पाठ, कटेरी, गोखरू
 बला, प्रतिगला, ऋद्धि, छोटी इलायची,

भूय आंवला, केंच, मेदा, महामेदा, मुलहटी शालिपर्णी, सितावर, जीवक और पृष्णिपर्णी इन सब द्रव्योंको दो दो तोले लेकर महीन पांसले इस में भेंस का घी एक प्रस्थ और दही एक प्रस्थ डालकर पाक करें । इस घृतकी मात्रा बलके अनुसार एकपल आधा पल वा एक तोला प्रतिदिन सेवन करने से श्वास, खांसी, पांडुरोग, हर्लामक, हृद्रोग और ग्रहणादोष दूर होजाते हैं ।

पित्तजहृद्रोगमेंचिकित्सा ।

शीताःप्रदेहाःपारिपेचनञ्च । तथाविरे
कोहृदिपित्तदुष्टे ॥ द्राक्षासिताक्षौद्रपरूप
कैः स्यात्शुद्धेतुपिचापहमन्नपानम् ॥
यत्प्याह्विककित्तकरोहिणीभ्यां । क-
ल्कंपिबेच्चापिसिताजलेन ॥ क्षतपुसर्पी
पिषतद्गुडाश्च ॥ येतेचशस्ताहृदिपित्त
दुष्टे ॥ दद्यात्भिषग्धन्वरसाश्चगव्य
क्षीराशिनाञ्चप्रसमीक्ष्यसम्यक् ॥

अर्थ—पित्तज हृद्रोग में शीतल प्रदेह पारिपेचन और विरेचन देना हित है । इस तरह शुद्ध होनेपर दाख, मिश्री, शहत और फालसे के साथ अन्नपान देवै । मुलहटी और कुटकी को घोटकर मिश्री के जल में छानकर पीने से भी पित्तज हृद्रोग दूर होजाते हैं । क्षतरोग में जो जो घृत और गुड़ वर्णन किये हैं वे सब रोगकी परीक्षा करके पित्तज हृद्रोगमें भी हित हैं परन्तु इनके साथमें रोगी को पन्नम मांसरस और गौके दूध का सेवन कराता रहे ॥

द्राक्षाबलाश्रेयसिशर्कराभिःखजूरवीरर्षभ
कोत्पलैश्च । काकोलिमेदोयुगजीवकै
श्चक्षीरेचसिद्धमहिपीघृतस्यात् ॥ कश्च
रुकाशैवलभृद्गवेरप्रपुण्डरीकमधुकविस-
स्य । ग्रान्यिश्चसर्पिःपयसापचेत्तैःक्षौद्रा
न्वितपित्तहृदामयघ्नम् ॥ स्थिरादिक
ल्कैःपयसाचसिद्धद्राक्षारसेनेक्षुरसेनवापि
सर्पिर्हितंस्वादुफलेभुजाश्वरसाःसुशीताः
हृदिपित्तदुष्टे ॥

अर्थ—दाख, खरीटी, गजपीपल और शर्करा । अथवा खिजूर, क्षीरकाफोली, ऋषभक और नीलकमल अथवा काकोली, मेदा, महामेदा और जीवक इन तीन प्रयोगों में से किसी एकके कल्कके साथ गौके दूध में भेंस का घी सिद्ध करकेदेवें । कसेरु, शैवल, अदरस, पुंडरिया, मुलहटी, कमलनाल की गांठ इन के कल्कको चोगुने दूध में चढ़ाकर इसके साथ घृतपाफकर के शहत मिलाकर सेवन करनेसे पित्तज हृदयरोग शान्त होजातेहैं शालिपर्ण्यादि के कल्क के साथ दूध में घृतको पकाकर अथवा दाख के रस वा इसके रसके साथ पकाकर सेवन करना पित्तज हृदयरोग में हित है अथवा द्राक्षादि मिष्टफलों का क्वाथ भी शीतल करने पर हित होता है ।

कफजहृद्रोग में चिकित्सा ।

स्विन्नस्यवान्नस्यविलिंघितस्यक्रियाकफ
घ्नीकफमर्मरोगे । कौलत्थधान्यैश्चरसै
र्यवाशैःपानानितीक्ष्णानिचशर्कराणि ॥
मूत्रश्रिताःकट्फलभृद्गवेरपीतदुग्धयाति-

विपाःभदेयाः। कृष्णाशर्टीपुष्करमूलरा-
स्नावचाभयानागरचूर्णकञ्चउदुम्बराश्व
त्थवटार्जुनाख्ये ॥ पलाशरोहीतकखा
दिरचाकाथेत्रिवृत्त्र्युपणचूर्णसिद्धोलेहः

कफघ्नोऽशिशिराम्बुयुक्तः॥

अर्थ—कफजहृदय के रोगमें स्वेदन, वम-
न, और लंघन क्रिया हित होती हैं । कु-
लधी और धनियेके क्वाथ के साथ जौ की
रोटियां वा शर्कराके साथ तीक्ष्ण अन्नपान
सेवन कराना हित है । कायफल, अदरक, स-
रलकाष्ठ, हरड़, और अतीस इनको गौमूत्रमें
काथ करके छानकर पीये अथवा पीपल, कचूर
पुहकरमूल, रास्ना, वच, हरड और सोंठ इन सब
का चूर्ण बनाकर सेवन करें । गूलर, पीपल,
पड़, अर्जुन, पलास, रोहेडा और खैरकी
लकड़ी इनका काथ कर के उसमें निसोथ
और त्रिकुट्टा का चूर्ण डालकर पकावे ।
इस लेहको गरमजल के साथ सेवन करने
से कफज हृद्रोग जाता रहता है ॥

सान्निपातिकहृद्रोगमें चिकित्सा ।

त्रिशोपजेलंघनमादितः स्यादन्नञ्चस
र्वत्रहितंविधेयम् । हीनातिमध्यत्वमेवक्ष्य
चैव कार्यत्रयाणामपिकर्मशस्तम् ॥ भु
क्तऽधिकऽर्जीर्यतिगूलमल्पं जीर्णोस्थि
तंचेतसुरदारुदृष्टम् ॥ सतिल्वङ्गद्वेलवणेवि
टंमं उष्णाम्बुनासातिविर्षिवत्सः ॥
जत्वश्मंजंवाभिपगप्रमत्तः ॥ प्रयोजयेत्
कल्पविधानदृष्टम् ॥ माद्वयंतथागस्त्यम-
यापिलेहंरसापनं ब्राह्ममथामलक्याः ॥

अर्थ—सान्निपातिक हृद्रोग में प्रथमही

लंघन कराके तीनों दोषों में कहे द्वये हित
पदार्थों का सेवन करावे । दोषोंकी हीनता
अधिकता और मध्यता देखकर ऐसी चि-
कित्सा करै जो तीनों दोषों में हित हों ।
जो हृद्रोग भोजन करतेही अधिक और
पचने के समय कम होतौ देवदारु कूठ,
लोघ, सैधानमक, संचरनमक, पाय-
विटंग और अतीस इनके चूर्ण को गरम
जल के साथ पीये । अथवा बहुत सावधानी
से कल्पविधानोक्त शिलाजतु रसायन, अ-
गस्त्यावलेह, ब्राह्मरसायन वा आमलकी रसा-
यन का प्रयोग करना चाहिये ॥

जीर्णोऽधिकेस्नेहविरचनंस्यात् फलैर्वि
रेच्योयदिजीर्यमाणे। त्रिप्लेवकालेप्यधि
फेतुगूले तीक्ष्णंहितंमूलविरचनंस्यात् ॥

अर्थ.... जो भोजन के पचने पर हृदय में
गूल अधिक हो तौ स्नेह विरेचन देवे ।
भोजन के पचने के फाल में जो शूलहो तौ
फल विरेचन देवे और जो तीनों समय में
ही अर्थात् भोजनके करते ही, वा भोजन
पचने पर वा पाचनकाल में शूल अधिक
हो तौ तीक्ष्ण मूलविरेचन हित है ॥

क्रिमिजन्य हृद्रोग में चिकित्सा ।

मायोऽनिलोरुद्गतिःमकृप्यत्यागा-
शयेशोधनमेवतस्मात् ॥ कार्यतथालंघन
पाचनञ्च सर्वक्रिमिघ्नं कृमिहृद्गद्रेच ॥

अर्थ—प्रायः वायुका मार्ग रुकने पर वह
आमाशय में जाकर रुकित होजाती है इत्
लिये प्रथम शोधन कर्म करै पीछे क्रिमिना-
शक लंघन पाचन क्रिया करै । यह क्रिमि-
जन्य हृदयरोग की चिकित्सा है ।

पीनसरोग का निदान ।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोध
तुवैपम्यशिरोऽभितापैः ॥ प्रजागराति
स्वपनाम्बुशीतैरवश्यमैथुनवाप्यधूमैः ॥
संस्त्यानदोपेशिरसिमृद्दोवायुःप्रतिश्या
यमुदीरयेत्तु ॥

अर्थ—मलमूत्रादि वेग संधारण, अजी-
र्ण, रज, अतिभाषण, क्रोध, शत्रुवैपम्य,
शिरोऽभिताप, जागरण, अतिनिद्रा, शीतल
जलविहार, ओस, मैथुन, वाप्य और धूआं
इन सब कारणोंसे शिरमें अत्यन्त आर्द्रता
होतीहै और इसी कारणसे वायु वृद्धि पा-
कर प्रतिश्याय उत्पन्न करतीहै ।

घातज पीनस के लक्षण ।

घ्राणार्तितोदौश्वयधुर्जलाभः ।

स्त्रायोऽनिलात्सस्वरमूर्द्धरोगः ॥

अर्थ—घातज प्रतिश्यायमें नासिकामें अ-
ति और सुई भेदन के समान पीड़ा, सूजन,
जलके समान नाक टपकना, स्वरभंग और
शिरमें दर्द ये लक्षण होते हैं ।

पित्तजपीनसके लक्षण ॥

नासाग्रपाकज्वरघनशोष ।

तृष्णोष्णपीतस्रवणानिपित्तात् ॥

अर्थ—पित्तज प्रतिश्याय में नासिका के
अग्रभाग का पाक, ज्वर, मुखमें सूखापन,
तृषा, गरम और पीलेरंग का क्षाव होताहै ।

कफज पीनस के लक्षण ।

कामारुचिस्रावघनप्रसेकात् ।

कफाद्गुरुःस्रोतसिचापिकण्ठः ॥

अर्थ—कफज प्रतिश्यायमें खांसी अरु-

चि, क्षात्र, गात्रमवाद निकलना, स्रोतोंमें
भारापन और खुजली होतीहै ।

साग्निपातिकर्पानस के लक्षण

सर्वाणिरूपाणितुसान्निपातात्

स्युःपीनसेतीव्ररुजोऽतिदुःखे ॥

अर्थ—सान्निपातिक प्रतिश्याय में तीनों
दोषों के लक्षण पाये जातेहैं, इसमें तीव्रवेद-
ना और कष्ट होता है ॥

प्रतिश्याय के दूषितहोने का कारण ।

सर्वोऽतिवृद्धाऽहितभोजनात्तु ।

दुष्टप्रतिश्यायउपेक्षितःस्यात् ॥

अर्थ—तीनों दोषों के अत्यन्त बढ़जाने
से, अहित भोजन करने से या उपेक्षा कर
ने से प्रतिश्याय विगड़जाता है ।

दूषितप्रतिश्याय के लक्षण ।

ततश्चरोगाःक्षयधुःमनासाशोपःप्रतीना-
हपरिस्रवौच । घ्राणास्यपूतित्वमपीनस
श्चसपाकशोधाद्युदपूपरक्ताः ॥ अर्हंपि
मूत्रश्वणाक्षिरोगखालित्यहर्षकुनलोम-
भावाः ॥ तृद्भासकासज्वररक्तपित्तत्रैस्व
र्यशोपाश्चततोभवन्ति । रोधाभिघात
स्रवशोपपाकैर्याण्युतंयदचनवेत्तिगन्धम्
दुर्गन्धिचास्यं बहुशःप्रकोपिदुष्टप्रतिश्याय
मुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—प्रतिश्याय (जुकाम) के विगड़
ने पर छींक, नाक का सूखना, प्रतीनाह
[नाकका रुकजाना] परिल्लाव, नाक
और मुख में दुर्गन्धि, अपीनस, नासापाक,
सूजन, अर्बुद, पीव, रक्त, फुन्तियां, मूत्रत्वा-
व, कर्णरोग, नेत्ररोग, खालित्य, रोमोंका पीला

वा सफेदहोना, तृषा, श्वास, खांसी, ज्वर, रक्तापित्त, स्वरभंग और शोष ये उपद्रव होते हैं । जिस रोग में नाक रुकजाती है, जिसमें अभिघात, स्राव, शोष और पाक होता है जिसमें गंध का ज्ञान नहीं होता है और मुख में दुर्गंध होजाती है, यह वार वा र कुपित होनेवाला दुष्ट प्रतिश्याय होता है ।

छींककाकारण ।

संस्पृश्यमर्माण्यनिलस्तुमूर्ध्नि ।

विश्वक्पथस्थःक्षवधुं करोति ॥

अर्थ—संपूर्णमर्मा का स्पर्श करके मस्तक के समस्त मार्गों में स्थितवायु क्षवधुनामक रोग को उत्पन्न करती है ।

शोषकाकारण ।

बलीतुसंशोष्यकफन्तुनासा ।

गृह्णाटकघ्राणविशोषणं च ।

अर्थ—प्रबलहुई वायु कफ को सुखाकर नासिका के पुट और घ्राणमार्ग में शोष उत्पन्न करती है ॥

प्रतीनाहलक्षण ।

उच्छासामार्गन्तुकफःसवातो ।

रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—कफवायु से मिलकर जब श्वास के मार्ग को रोकलैताहै तब उसे प्रतीनाह कहते हैं ॥

स्त्रावकालक्षण ।

घ्राणाद्धनःपीतसितस्तनुर्वा ।

दोषःस्रवत्स्त्रावमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—नासिकासे जो गाढा, पीला, सफेद, अथवा पतला विगडाहुआ मल निकलताहै उसे स्त्राव कहते हैं ।

अपीनसकालक्षण ।

योमस्तुलुङ्गाद्धनपीतपकः कफःस्रवेद्गा
दमपीनसःसः ॥

अर्थ—मस्तक से जो घना, पीला पंक और गाढा कफ निकलता है उसे अपीनस कहते हैं ।

पूतिनासाके लक्षण ।

वैवर्ण्यदौर्गन्ध्यमुपेक्षयात्तु ।

स्यात्पूतिनासंश्वयधुर्धमश्च ॥

अर्थ—इस रोगकी उपेक्षा करने से जो विवर्णता, दुर्गन्धि, सूजन और भ्रम होता है उसे पूतिनासा कहते हैं ।

घ्राणपाकका लक्षण ।

सदाहरागःश्वयधुःसपाकः ।

स्याद्घ्राणपाकोऽपिचरक्तपिसात् ।

अर्थ—जिसमें दाह, राग, सूजन और पाक होता है उसे घ्राणपाक कहते हैं यह रक्तपित्त से भी होता है ।

नासाशोथ का हेतु ।

घ्राणाश्रितासृक्प्रभृतीन्प्रदूष्य ।

कुर्वन्तिनस्तःश्वयधुंमलाश्च ॥

अर्थ—जववातादि दोष नासिकामें स्थित रक्तादि को दूषित करते हैं तब नासिका में मूजन होती है ।

अर्बुदका कारण ।

घ्राणेतयोच्छ्वासमार्तिनिरुद्ध्य ।

मांसास्रदोषादपिचार्बुदानि ॥

अर्थ—श्वास के रुक जाने से मांस और रक्त के दूषित होने से नासिका में अर्बुदरोग होता है ॥

पूरक्त का कारण ।

घ्राणात्स्रवेद्वाश्रवणान्मुखाद्वा ।

पित्ताक्तमस्रन्त्यपिपूरक्तम् ॥

अर्थ—जो नाक, कान वा मुखसे पित्तयुक्त रक्तका स्राव होता है उसे पूरक्त कहते हैं ।

अरुःका कारण ।

कुर्यात्सपित्तःपवनस्त्वमादीन् ।

मन्दूप्यचारुपिसपाकवन्ति ॥

अर्थ—पित्त से मिली हुई वायु त्वचा आदि को दूषित करके जो फुन्सियों को उत्पन्न करती है उसे अरुः कहते हैं ।

शिरोरोग का निदान ।

भृशार्तिशूलंस्फुरतीहवातात् । पित्तात्स-
दाहार्तिकफाद्गुरुःस्यात् ॥ सर्वांश्चिदोष-
क्रिमिभिस्तुकण्ठ दूर्गन्ध्यतोदात्तियु-
तंशिरःस्यात् ॥

अर्थ—थातज सिरके रोग में अत्यन्त वेदना, शूल और फडफटाहट होती है । पित्तज सिरके रोग में दाह और अस्ति होती है । कफके सिररोग में भारापन होता है । सान्निपातिक शिरोरोग में तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण होते हैं और क्रिमिजन्य शिरोरोग में खुजली, दुर्गन्धि, तोद और अस्ति होती है ।

घातज मुखरोग का लक्षण ।

सुखामयेमारुतजेतुशोष कार्कश्यरौह्या
णिचलारुजश्च ॥ कृष्णारुगंनिष्पन्नंसु
शीतंप्रसंसनस्पन्दनतोदभेदाः ॥

अर्थ—घातज मुखरोग में शोष, कार्कशता रूक्षता चलायमान वेदना, फाला, लाल और

शीतल स्राव, प्रस्रमन, स्पन्दन, तोद और भेद ये उपद्रव होते हैं ॥

पित्तजमुख रोग का लक्षण :

तृष्णाज्वरस्फोटकताल्लशाहा धूमायनं-
चाप्यवदीर्णताच ॥ पित्तात्समूर्च्छावि-
विघारुजश्च वर्णश्चशुक्रारुणवर्णवर्ज्याः
अर्थ—पित्तज मुखरोग में तृष्णा, ज्वर, स्फोटक, ताल्लदाह, धूमांसां घुनडना, फटना, मूर्च्छा, अनेक प्रकार की वेदना, तथा सफेद और लाल के अतिरिक्त और रंग होजाना । ये उपद्रव होते हैं ॥

कफज मुख रोग का लक्षण ।

कण्ठगुरुत्वंसितविज्जलत्वं स्नेहोरुचिर्जा
क्यकफप्रसेकौ । उत्केशमन्दानिलताथ
तन्द्रा रुजश्चमन्दाःकफयक्त्रोगे ॥
अर्थ—कफज मुखरोग में खुजली, भारापन, सफेदाई, गिलगिलापन, चिकनाई, अरुचि, जडता, कफप्रसेक, उत्केश, मन्दा-
मिता, तन्द्रा और मन्दवेदना होती है ॥

सान्निपातिक मुखरोगके लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुषवत्तरोगे ।

भवन्तियस्मिन्सतसर्वजःस्यात् ॥

अर्थ—जिसमें तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं उसे त्रिदोषज मुखरोग कहते हैं ॥

मुखरोग के अन्य भेद ॥

संस्थानदृष्याकृतिनामभेदा चैतेचतुः
षष्टिविधमवन्ति ॥ शालाक्यतन्त्रेविहि
तानितेषां निमित्तरूपाकृतिभेदजानि ॥
अनून्यतार्थतुचतुर्विधस्य ॥

क्रियांभवक्ष्यामिमुखामयस्य ॥

अर्थ—संस्थाव, दूष्य, आकृति और नामभेद से मुखरोग चौंसठ प्रकार के होते हैं। इनके विशेष २ हेतुरूप, आकृति और चिकित्सा शालाक्यतंत्र में सविस्तर वर्णन की गई हैं। कुछ वर्णन किये जाने के निमित्त इस जगह वातजादि चार प्रकार के मुखरोगों की चिकित्सा वर्णन कीजायगी (इस ग्रन्थ में शालाक्यतंत्र नहीं है हमारे छोपे हुए सुश्रुतग्रन्थ में इन रोगों का वर्णन है)।

अरुचि के भेदः

वातादिभिःशोकभयातिलोभः।

क्रोधाद्यदृद्याशनगन्धरूपैः ॥

अर्थ—अरुचि रोग वात, पित्त, कफ और सान्निपात के कारण उत्पन्न होने से चार प्रकार का है तथा इसका एक प्रकार और भी है कि वह शोक, भय अत्यन्त लोभ, क्रोध, तथा अह्य भोजन, गंध और रूपादि दर्शन से होता है।

वातजरुचिके लक्षणः।

अरोचकःकर्कशशीतदन्तः।

कपायवक्रस्यमतांऽनिलेन ॥

अर्थ—वातज अरुचि में कर्कशता, दांतों में शीतलता और मुखमें कसालापन होता है।

पित्तज अरुचि के लक्षणः।

कट्वम्लमुष्णं त्रिसंचपूति ॥

पित्तनविद्याल्लवणञ्चबक्रम् ॥

अर्थ—पित्तज अरुचि में मुख कड़वा, बटा, उष्ण, धिरस, दुर्गन्धयुक्त और अम्लीन होजाता है।

कफजरुचिके लक्षणः।

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्ये।

विवन्धसंस्तम्भयुतं कफेन ॥

अर्थ—कफजरुचि में मुख मीठा, गिला-गिला, मारी और शीतल होता है तथा विवन्धता और स्तम्भता भी होती है।

शोकादिजन्य अरुचिके लक्षण

अरोचकेशोकभयातिलोभः क्रोधाद्यदृद्याशनगन्धजे स्यात् ॥ स्वाभाविकञ्चास्य

रसोरुचिश्च त्रिदोषजनैकरसम्भवेत् ॥

अर्थ—शोक, भय, लोभ, क्रोध, अह्य भोजन और गंध आदि से जो अरुचि होती है उसमें मुखका रस स्वाभाविक होता है और त्रिदोषज अरुचि में मुख का रस एक प्रकार का नहीं रहता है।

वातजरुचिरोगके लक्षणः।

नादोऽतिरुर्कर्णमलस्यशोषः।

श्रावस्तनुश्चास्त्रवणञ्चवातात् ॥

अर्थ—वातजरुचिरोग में कानों में नाद श्रवण, मूत्र का सूखजाना, पतला स्त्राव वा स्त्राव न होना ये लक्षण होते हैं ॥

पित्तजरुचिरोगके लक्षणः।

शोफः सरागोदरपंचिदाहः।

सर्पातपूतिसूचणञ्चपिचात् ॥

अर्थ—पित्तजरुचिरोग में लालवर्ण की सूजन, दरण, दाह और पीले रंगकी दुर्गन्धित पीव निकलती है ॥

कफजरुचिरोगके लक्षणः।

वैश्रत्यकण्डूस्थिरशोफशुक्लः।

१ अश्रवणमिति गंगाधरः।

स्निग्धाश्रुतिःश्लेष्मभवेऽल्परुच ॥

अर्थ—कफजकर्णरोग में सुनाई न देना खुजली, कड़ी सूजन सफेद और चिकना घ्राव तथा अल्पवेदना होती है ।

साक्षिपातिकर्णरोगकेलक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात् ।

घ्रावश्चतत्राधिकदोषवर्णः ।

अर्थ—त्रिदोषज कर्णरोग में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं तथा इस में सूत्र दोष और वर्णकी अधिकता होती है ।

वातजनेत्ररोगकालक्षण ॥

अल्पांसुरागानुपदेहताच ।

प्रस्पन्दतोदातिरुजश्चवातात् ।

अर्थ—वातजनेत्ररोग के हाने से आंखों में आंसुओं का न आना, लड़ाई का कम होना, कम ल्हिसावट होना, फडकन, चक्का और तीव्र वेदना होती है ।

पित्तजनेत्ररोगकेलक्षण ॥

पित्तात्तुदाहातिरुजोऽतिरागाः ।

पीतोपदेहःसुभ्रूषोष्णमन्नु ॥

अर्थ—पित्तज नेत्र रोग में दाह, यातना वेदना, अत्यन्त लड़ाई पीतोपलिप्तता, बहुत और गरम आंसू ये लक्षण होते हैं ।

कफजनेत्ररोगकेलक्षण ।

शुक्लोपदेहोवहुपिच्छिलासु ।

नेत्रस्यखेटाद्गुरुतासकण्डूः ॥

अर्थ—कफज नेत्ररोग में शुक्लांपलिप्ता बहुत और मिलगिळे आंसू, गुरुता और खुजली होती है ।

सान्निपातिकनेत्ररोगकेलक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसान्निपातान्ने-

त्रामयापणवतिस्तुभेदात् ॥

अर्थ—त्रिदोषज नेत्ररोग में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं । नेत्ररोग सब मिलकर छियानवें प्रकार के होते हैं ।

तेषामभिव्यक्तिरभिप्रदिष्टाशालाक्यत-

न्नेपुचिकित्सितश्च । पराधिकारेतुनत्रि-

स्तरोक्तिःशस्तेतितेनात्रननःप्रयासः ॥

अर्थ—इन रोगोंका विस्तार पूर्वक वर्णन शालाक्यतंत्र में है और चिकित्सा पराधिकार में विस्तारपूर्वक ठीक नहीं कही गई है, इससे हमारा यहां प्रयास नहीं है ।

खालित्यनिदान ॥

तेजोऽनिलाद्यैःसहकेशभूमिदग्ध्वाशुकुप्य-

त्स्वर्गतिनरस्य । किञ्चित्तुदग्ध्वापलिता-

निकुर्याद्धरिप्रभत्वंचशिरोरुहाणाम् ॥

इत्यूर्द्धजन्त्यगदैकदेशःप्रोक्तश्चिकित्सा-

न्तुपरान्निशोध । विस्तारतःसंग्रहतश्चस-

भ्यग्यथाक्रमंसांभ्योमयोच्यमानाम् ॥

अर्थ—वातादिक दोषों से मिलित होकर

तेज केशभूमिकोजलाकर खालित्य (बालों

का गिरना) रोगको उत्पन्न करता है

और जो पूर्णरिति से केशभूमि दग्ध नहीं

होती है तो सफेद वा हरे होजाते हैं ॥

जत्रुसे ऊपर होने वाले रोगों का वर्णन

इस प्रकार से किया गया है अब हम

संक्षेप और विस्तार से उनकी चिकित्सा

का वर्णन करते हैं ॥

वातजपीनसमें चिकित्सा ।

वातात्मकासवैस्वर्येसक्षारपीनसेघृतम् ॥

पिवेद्रसंपयोवोष्णः स्नेहिकंधूममेववा ॥

शताहात्वग्बलामूलंशयोनाकैरण्डत्रिल्वजम्
 सारग्वधांपिथेद्वात्तमधूच्छिष्टवसाघृतैः ॥
 अथवासघृतान्सवतूनकृत्वामल्लकसंपुटे।
 नवप्रतिश्यायवतांधूमवैद्यः प्रकल्पयेत् ॥
 शंखमूर्धूललाटातैपाणिस्वेदोपनाहनम् ॥
 स्वभ्यंक्तक्षवधुस्त्रावरोधादांसङ्करादयः ॥
 घ्रेयाश्चरोहिपाजाजीवचातकारिचोरकाः
 स्वस्वपत्रमरिचैलानांचूर्णावासोपकुञ्चिकाः

अर्थ—घातज पानसमें खांसी और स्व-
 रमंग होनेपर जवाखार मिलाहुआघी, मांस
 रस, गरमदूध वा स्निग्ध धूमपान हित है।
 अथवा सोंफ, दाळचीनी खरैटीकी जड,
 श्यानाक, अरंडीकी जड और बेलकी छान
 और अमलतास इनको पीस कर मोम
 चर्बी और घी में सान कर बती घना कर
 धूमपान करै ॥ अथवा नवीन प्रतिश्याय में
 घी और जौका सत्तू इनको चिलम में धर
 कर पीवै । फनपटी, मूर्झा और ललाट में
 वेदनी होनेपर हाथोंको गरम करै और ग-
 रम उपनाह अर्थात् पुलसट बाधै । जो
 छींक वा नाकका बहना बन्द होजाय तौ
 शरीर पर अच्छी तरह से तैलादि मर्दन
 करके शंकरश्वेद देवै । अथवा रोहिपतृण,
 कालाजीरा, वच, तर्कारी और चोरक इन
 को पीसकर सूधै अथवा दाळचीनी, तेज-
 पात, कालीमिरच, छोटी इलायची और
 जीरा इनके चूर्णको सूधै ।

तैलप्रयोग ।

स्रोतःशृङ्गाटनासाक्षिशोषेतैलंसनावनम् ॥
 प्रभाव्याजेतिलानुक्षीरतेन पिष्टांस्तदूप-

णा । मन्दास्विन्नान्सयप्याहचूर्णास्ते
 नैवपीडयेत् ॥ दशमूलस्यनिष्काधेरास्ना
 मधुककल्कवत् । सिद्धंससैन्धवंतैलं दशकृ
 त्याणुतत्स्मृतम् ॥ स्निग्धस्यास्थापनैर्दो-
 पंनिर्हरेद्वातपीनसे ।

अर्थ—स्रोत, नासापुट, नामिका और
 आंखों में शोष होनेपर नाचे लिखेहुए तेल
 की नस्य देवै । यथा—तिलों को बकरी के
 दूधकी भावना देकर बकरीके दूधमें ही
 तिलोंको पीसलेवै और एक हांडी में दूध
 भरकर उसपर एक कपडा ढककर उसपर
 उस पिन्हीहुई लुगदीको रखदेवै और हांटों
 के नाचे आग जलावै जिससे दूधकी गरमाई
 से तिल साज जायंगे । फिर उसमें मुल्ह-
 टी का चूर्ण मिलाकर ऊपरवाले दूध मेंही
 उसे निचोड लेवै । इसको दशमूल के
 काथमें पकावै और इसमें रास्ना, मुलहटी
 और संधानमक डालकर पकावै । इसतरह
 दशवार सिद्ध करने से अणुतैल सिद्ध हो-
 ताहै रोगी को प्रथम आस्थापन देकर स्निग्ध
 करै फिर वातज पानस में उक्त तैल की
 नस्य देवै ॥

स्निग्धाम्लोष्णैश्चलघ्वन्नग्राम्यादीनां
 सैर्हितम् ॥ उष्णाम्बुनास्नानपानश्चानिवा
 तोष्णप्रतिश्रयः । चिन्ताव्यायामवाक्चे
 प्राण्यवायविरतो भवेत् ॥ वातजेपीनसेधी
 मानिच्छन्नेवात्मनोहितम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, अम्ल और उष्ण प्राण्य
 जीवोंके मांसरस के साथ लघु अन्न देवै ।
 स्नान करने में और पीने में उष्ण जलना

मायूर घृत ।

दशमूलवलारास्नात्रिफलामधुकैःसह ।
मयूरपक्षापिचान्त्रशकृत्तुण्डाधिर्वजितम् ॥
जलेपक्त्याघृतप्रस्थतस्मिन्सीरसमंपचेत् ॥
मधुरैःकार्षिकैःकल्काशिरोरोगार्दितःपिबेत् ॥
कर्णाक्षिनासिकाजिह्वाताल्वास्पगलरोगनु
त् । मायूरामिति विख्यातमूर्ध्वजन्तुगदापहम् ॥

अर्थ—दशमूल, खरौटी, रास्ना, त्रिफला
और मुलहठी तथा मोर के (पंच, पित्ता,
भात, वीट, चोंच और उंगलियों को छोड़
कर) मांस, रक्तादि इन सबका काथ कर
के एक प्रस्थ घी और उतनाही दूध तथा
जीवनीय औषधियों का कल्क एक एक
कर्प डालकर पकावै । इस घृतके पानेसे सिर
के रोग, कानके रोग, आँखके रोग नाक के
रोग, जिह्वा के रोग, तालु के रोग, मुख के
रोग और गले के रोग दूर होजातेहैं । यह
ऊर्ध्वजन्तुगदनाशक मायूरनामक घृत है ।

महामायूर घृत ।

एतेनैयकपायेणघृतप्रस्थंविपाचयेत् । च-
तुर्गुणेनदुग्धेनकल्कैरेभिश्चकार्षिकैः ॥ जी-
वन्तीत्रिफलामेदामधुकाक्षिपरूपकैः । स-
मंगाचविकाभार्गीकाश्मरीसुरदारुभिः ।
आत्मगुप्तामहामेदातालखजूरमस्तकैः ।
मृणालविसशालुकशृङ्गीजीवकपद्मकैः ॥
शातावरीविदारीधुवृहतीशारिवायुगैः ॥
मूर्वाश्वदंष्ट्रपभकशृङ्गाटककशेरुकैः ॥ रा-
स्नास्थिरातामलकीमूस्मैलायटीपुष्करैः
पुनर्नवातुगीक्षीरीफाकोलीधन्वयासकैः
मधुकाक्षोत्वाताममुञ्जाताभिपुष्करैपि ।

द्रव्यैरेभिर्भयथाश्लामपूर्वकल्केनसाधितम् ॥
तत्पक्वनावनेऽभ्यंगेपानेवस्तौप्रयोजयेत् ॥
शिरोरोगपुसर्वेषुकासेद्रासचदारुणे ॥
मन्यापृष्टग्रहेशोपेस्वरभेदेतथादिते ॥ यो-
न्यस्रवशुक्रदोषेषुशस्तं वन्ध्यासृतमदम् ॥
ऋतुस्नातातथानारीपीत्वापुत्रंमजायते ॥
महामायूरमित्येतद्घृतमात्रेयपूजितम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त कपाय के साथ एक प्रस्थ
घी चारप्रस्थ दूध और नीचे लिखे हुए द्रव्यों
का कल्क एक एक कर्प डाल कर पकावै,
यथा जीवन्ती, त्रिफला, मेदा, शृङ्गि, फा-
लसा, समंगा, चव्य, भाडंगी, खमारी, दे-
यदारु, केंचकेवीज, महामेदा, ताल, खजूर, मृणा
ल, कमलकीगाँठ, शालुक, काकाडासींगी, जी-
वक, पद्माल, सितावर, विदारीकन्द, ईख,
बढी कटेरी, दोनों सारिवा, मरोडकली, गोखरू,
ऋपभक, सिंचाडा, कसेरू, रास्ना, शालिप-
र्णी, भूय आवला, छोटी इलायची, शठी, पु-
ष्कर मूल, साँट बेशलोचन, फाकोली ज-
वासा, मुलहठी, अखरोट, बादाम, मुंजात,
पिस्ता इन द्रव्योंमें से जितने मिलसकें उ-
नको पूर्वोक्त कल्कके साथ पकावै । इसघृतको
नस्य, अभ्यंग, पान और वस्तिद्वारा प्रयोग
करे इसके प्रयोग से सम्पूर्ण प्रकारके शिरोरो-
ग-दारुण खांसी और श्वास, मन्यग्रह, पृ-
ष्टग्रह, शोष, स्वरभेद, अर्दितरोग, योनिरोग,
रक्तदोष शुक्रदोष, दूर होजातेहैं । इसके से-
वन से वन्ध्या स्त्री के पुत्र होता है । ऋतु-
स्नान करके जो स्त्री इसे पीतीहै उसके
पुत्र होता है । इसकी भगवान् आत्रेय ने

महामायूरघृत नामसे प्रशंसा की है ।

आखुभिःकुक्कुटैर्हंसैःशशैश्चापिहिब्रुद्धिमान
कल्केनानेनविपचेत्सर्पिरुध्वगदापहम् ॥

अर्थ....पूर्वोक्त रीति के अनुसारही मयूर
मांस की जगह चूहे, हंस मुर्गे वा खगोश
का मांस इस कल्क के साथ घृत पकाकर
सेवन करना ऊर्ध्वजत्रुरोगों को दूर करताहै

पित्तजशिरोरोगमेंचिकित्सा ।

पैत्तेघृतंपयःसेकाःशीतालेपाःसनावनाः।
जीवनीयानिसर्पांपिपानान्नंचापिपित्तनु

त् ॥ चन्दनोशीरयष्ट्याहवलाव्याघ्रन
खोत्पलैः । क्षीरपिष्टैःप्रदेहःस्यात्शृतैर्वा

परिपेचनम् ॥ त्वक्पत्रशर्कराकल्कःस्रुपि
ष्टस्तंडुलाम्बुना । कायोंऽत्रपीडःसर्पिश्च

नस्यंतस्पात्तुपैत्तिके ॥ यष्ट्याहचन्द
नानन्नाक्षीरसिद्धंघृतंशुभम् । नाचनंशर्क

राद्राक्षामधुकैर्वापिपित्तजे ॥

अर्थ—पित्तज शिरोरोगमें घृत, दूध, शी-
तल परिपेक, शीतल लेप, नस्य, जीवनीय

गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत तथा पित्तना-
शक अन्नपान को सेवन करना चाहिये ।

रक्त चन्दन, खस, मुलहठी, खैरटी, बघन-
रवा, नीलकमल इन सबको दूधके साथ पी-

सकर सिरपर लेपकरे अथवा इनका क्वाथ
करके सिरपर परिपेक करे । अथवा दालची-

नी, तेजपात और शर्करा इनको तडुलज-
ल के साथ पीसकर नाकमें निचोड़ें ऊपर

से घृतकी नस्य लेवे । अथवा मुलहठी,
चन्दन, अनन्तमूल इनके कल्कको दूध और
धी में पाक करके इस घृत का नस्य देवे ।

इसी तरह से शर्करा, मुलहठी और दाल इन
में दूध के साथ घृत पकाकर नस्य देवे ।

इससे पित्तज शिरोरोग शान्त होजाते हैं ।
कफजशिरोरोगकीचिकित्सा ।

कफजेस्वेदितंधूमनस्यप्रधमनादिभिः ।
शुद्धंमलेपपानान्नैःकफघ्नैःसमुपाचरेत् ॥

पुराणसर्पिपःपानस्तीक्ष्णैर्वस्तिभिरंबचा
कफानिलोत्थितेदाहःशेषयोरक्तमोक्षणम्

अर्थ—कफज शिरोरोगमें स्वेदन करके
धूम, नस्य और प्रधमन आदिक प्रयोगों

से शुद्ध हुए मनुष्यको कफनाशक प्रलेप
तथा अन्नपानका सेवन करावे, कफवातज

शिर के रोगमें पुराने घृतका पान कराना
और तीक्ष्ण वस्तियोंका प्रयोग श्रेष्ठ है शेष-

दोनों अर्थात् सान्निपातिक और क्रिमिज हृ-
द्रोगों में फस्त खोलना हित है ।

उत्तरोगोंकीचिकित्सा ।

एरण्ढनलदक्षौमगुगुल्वधुरुचन्दनैः ।
धूमवर्तिःपिवेद्दन्धैःसकुष्ठतगरैस्तथा ॥

सन्निपातभवेकार्यासन्निपातहिताक्रिया ।
क्रिमिजेचैवकर्त्तव्यंतीक्ष्णमूर्द्धाविरेचनम् ।

त्वद्मधुकोनखोदन्तीविडङ्गनवमालिका
अपामार्गफलंवीजंनक्तमालशिरापयोः ।

श्वयोश्मन्तकोविल्यंहरिद्राहिंगुपृथिका
फणिज्झकयुतैस्तैलमाविमूत्रेचतुर्गुणे ।

सिद्धंस्यान्नावनंचूर्णंचैपांमधमनंभवेत् ॥
फलंशिशुकरज्ञाभ्यांसच्योपंचावपीडक-

म् । कपायारुग्धराःक्षारचूर्णोकल्कोऽत्र
पीडकः ॥
अर्थ—भरंडकी जड़, खस, गुंगल, अगर,

होनेपर भोजन के पीछे घृतपान करै । इस में नस्य तथा मधुर स्निग्ध और शीतल मांसरस भी हितहै । मुखपाक में शिराकर्म शिरोविरेचन और काय विरेचन देवै तथा गोमूत्र, तेल, घी, शहत और दूध के साथ कवलग्रह भी उत्तमहै । मुखपाक में त्रिफला पाटा, दाख, चमेली के पत्ते इनके क्याथ में शहत डालकर अथवा कपाय और तिक्त शीतल काथ भी मुखके धोने में उत्तम है ॥

खदिरादिबटिका ।

तुलांखदिरसारस्यद्विगुणामरिमेदसः ॥
प्रक्षाल्यजर्जरीकृत्यचतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत्
द्रोणशेषकपायन्तंपृत्वाभूयःपचेच्छनैः ॥
ततस्तस्मिन्घनीभूतेचूर्णीकृत्याक्षभागि-
कम् । चन्दनंपत्रकोशीरंमञ्जिष्ठाधातकी
घनम् ॥ प्रपुण्डरीकंप्याहृत्वगेलापत्रके-
शरमूलाक्षारसाञ्जनमांसीत्रिफलालोध्र
पालकम् ॥ रज्ज्याफलनीमेलान्समर्द्धाकटफ
लंबचाम् । यवासागरुपत्तङ्गैरिकाञ्जना
वपेत् । लवंगनखककोलजातिकोशान्पलो
न्मितान् । कर्पूरकुडवंचापिपुनःशीतेऽवता
रिते ॥ ततस्तुगुलिकाःकार्याः शुष्काश्वा-
स्येनधारयेत् । तैलंचानेनकल्केनकपाये
णचसाधयेत् ॥ दन्तानांचलनंभ्रंशंशौपि
र्यक्रिमिरोगनुत् । मुखपाकास्यदौर्गन्ध्य
जाड्यारोचकनाशनम् ॥ स्रावोपलेप
पैच्छिल्यैस्वर्यगलरोगनुत् ॥ दन्तास्य
गलरोगेषुसर्वेषां तत्परायणम् ।

अर्थ—सफेद खैरसार एक तुला, बिट
खैर दो तुला इनको अच्छी तरह धोकर

कूट लेवै और फिर इस सबको चार द्रोण
जल में चढाकर पकावै जब एक द्रोण जल
रहजाय तब इसे छानकर छने हुए को
फिर धारै २ पकावै । इसतरह पकते पक-
ते जब गाढा पडजाय तब इसमें निम्न लि-
खित द्रव्यों को दो दो तोले लेकर चूर्ण
करके मिलादेवै । द्रव्य यथा—रक्तचन्दन,
पद्माख, खस, मजीठ, धायके फूल, मोथा,
पुंडरिया, मुलहठी, दालचीनी, इलायची,
तेजपात, केसर, लाख, रसात, जटामांसी,
त्रिफला, लोध, नेत्रवाला, दोनों हलदी,
प्रियंगु, बड़ी इलायची, लज्जालू, कायफल,
वच, जवासा, अगर, पतंग, गेरू, और अं-
जन ये द्रव्य डाले फिर शीतल होनेपर
अग्नि के ऊपर से उतारकर लोंग, नखी,
कक्कोल और जावित्री एक एक पल डाले
और एक कुडव कपूर गरै । फिर इसकी
गोलियां बनाकर सुखालेवै । एक एक गोली
मुख में डालता रहे । अथवा इन्हीं द्रव्यों
के कल्क और कपाय में तेल को पकाकर
मुख में धारण करै । इन प्रयोगों से दांतों
का हिलना, टूटना, छिद्र होजाना, कीड़े
लगना, मुखपाक, मुखदुर्गन्ध, जड़ता, अ-
रुचि, छाव, उपलेप, पिच्छिलता, विस्वरता
और गलरोग दूर होजाते हैं । दांत और
गले के जितने रोग हैं वे सब इस से दूर
होजाते हैं ।

अरोचकचिकित्सा ।

अरुचौकवलग्राहाधूमाःसमुखधावनाः ॥
मनोश्मन्नपानञ्चहर्षणाश्वासनानिच ॥

अर्थ—अरुचिरोगमें कवलग्रह, धूमपान, मुखधावन, मनोज्ञ अन्नपान, हर्षण और आश्वासन कर्त्तव्य हैं ।

कवलग्रहके चारप्रयोग ।

कुट्सौवर्चलाजाजीशर्करामरिचंविडम् ॥
धात्र्येलापन्नकोशीरपिप्पल्युत्पलचन्दनम्
लोध्रेतजोवतीपथ्यायूपपंसयवाग्रजम् ॥
आर्द्रादाडिमनिर्वासाश्वाजाजीशर्करायुतः
सतैलमाक्षिकास्त्वेतेचत्वारःकवलग्रहाः ॥
चतुरोरोचकामूहन्पुर्वात्ताद्येकजसर्वजान् ॥

अर्थ—(१) कूठ, संचरनमक, कालाजीरा, शर्करा, कालीमिरच, विडनमक । [२] भावला, छोटी इलायची, पद्माख, खस, पीपल, नीलकमल और चन्दन [३] लोध, चव्य, हरड, त्रिकुटा और जवाखार [४] अदरख और अनारका रस, कालाजीरा और शर्करा ये चार प्रकार के कवलग्रह तेल और शहत मिलाकर सेवन करने से वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज अरुचिको क्रमसे दूर करते हैं । कारवीमरिचाजाजीद्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम् । सौवर्चलंगुडंशौद्रं सवारीचकनाशनम् । वस्तिंसमीरणेपित्तेविरेकं वमनं कफे ॥

कुर्याद्दृष्टानुकूलानि हर्षणं च मनोघ्नजे ।

अर्थ—कालाजीरा, कालीमिरच, दूसरा जीरा, दाख, वृक्षाम्ल दाडिम, संचलनमक गुड और शहत इन सब को समान समान भाग मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार की अरुचि दूर होजाती है । वातज अरुचि में वस्तिप्रयोग, पित्तज में विरेचन और कफज में वमन करावे । एवं मन के विकार

से उत्पन्न हुई अरुचि में हृदय प्रिय और मनोनुकूलहर्षणादि किया करे ।

वातज स्वर भेदकी चिकित्सा ।

सर्पिप्युपरिभक्तानिस्वरभेदेऽनिलात्मके ॥
तैलैश्चतुष्प्रयोगश्चवलारास्नामृताह्वयैः ॥
वर्हिततरिदज्ञाणांपञ्चमूलशृतान् रसान् ॥
मायूरक्षीरसर्पिर्वापिवेश्युपणमेववा ॥

अर्थ—वातात्मक स्वर भेदमें भोजन के पीछे घृतपान करना चाहिये । इस में घला तैल, रास्ना तैल, गुरुचातैल, तथा क्वाथ, दूर्ण, लेह और कवल ये चार प्रकार के प्रयोग करना उचित है । पंचमूल के क्याथ के साथ सिद्ध किये हुए मोर, तीतर और मुर्गे का मांसरस पान करे अथवा मायूर क्षीर, मायूर सर्पि वा त्रिकुटादि घृत का सेवन हित है ।

पित्तजस्वर भेद की चिकित्सा ।

पैत्तिकैतुविरेकः स्यात्पयस्तुमधुरैः शृतम् ॥
सर्पिर्गुडावृतांतिकंजीवनीयं घृतपस्य च ।

अर्थ—पित्तात्मक स्वरभेद में विरेचन, मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध सर्पिर्गुड, तिक्तक घृत, जीवनीय घृत, और वासाघृत हित है ॥

कफज स्वर भेद में चिकित्सा ।

कफजस्वरभेदे तु तीक्ष्णमूर्द्धविरेचनम् ॥ विरेको वमनं धूमोयवान्नकटुसेवनम् । चव्य भार्ग्यभयान्वोपक्षारमाक्षिकचित्रकान् ॥
लिह्याद्वापिप्पलीपथ्येतीक्ष्णमद्यं पिवेच्चसः ।

अर्थ—कफात्मक स्वरभेद में तीक्ष्णशिरो-विरेचन, वमन, धूमपान, यवान्न, कटुद्रव्य

सेवन उचित है। चण्य भाङ्गी, हरड, त्रिकु-
टा, जवाखार शहत और चांता इनको ले-
हन करे अथवा दीपल और हरड को शह-
त के साथ चांटे अथवा तांदूण मद्यपानकरे।

रक्तजस्वरभेदकीचिकित्सा ।

रक्तजस्वरभेदेतुसघृताजांगलारसाः ॥

द्राक्षाविदारीशुरसाःसपृतसौद्रशकराः ॥

यद्योक्तज्ञयकासघ्नन्तच्चसर्वाचिकित्सित-
म् ॥ पित्तजस्वरभेदग्रंशिरानेधश्चरक्तजे।

अर्थ—रक्तजस्वर भेद में घृत सहित

जांगलमांसरस देवे । दाखिविदारीकन्द और
ईल का रस घी, शहत और चीनी गिठा-
कर दवे तथा क्षयकास में जो जो चिकित्सा
कही गई है वह भी सब हित है । इसरोग
में पित्तजस्वर भेद नाशक चिकित्सा और
त्रिरावेध कराना भी हित है ॥

सन्निपातजस्वरभेदकीचिकित्सा ॥

सन्निपातेहिताःसर्वाःक्रियाननुशिरोविधिः

अर्थ....सिराबन्धन, को छोड़कर और

सब चिकित्सा सन्निपातज स्वरभेद में उप-
योगी होती है ॥

कर्णरोग में चिकित्साविधि।

कर्णशूलेतुयातध्नीहितापीनसवत्क्रिया॥

प्रदेहःपूरणंनस्यपाकसावेग्रणक्रियाःभोज्या

निचयथादोषंक्रुयान्निहेहश्चपूरणान् ॥

अर्थ—कर्णशूल में पीनस के सदृश वात

नाशिनो क्रिया हित होती है । इसमें प्रदेह

तेल से पूरण और नस्य भी देना उचित है

कर्णपाक अथवा कर्णज्वर में व्रण के सं-

मान क्रिया कीजाती है ॥ दोष के अनुसार

कर्णरोग में भोजन तथा कर्णपूरण और
स्नेह हितकर होते हैं ।

कर्णपूरणप्रयोग ।

हिंशुतुम्युकशुण्ठीभिस्तेस्तलंसापंपपचेत् ॥

एतद्धिपूरणश्रेष्ठंकर्णशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—होंग, धनियां और सोंठ डालकर

सरसोंका तेल पकाकर कान में डाले । यह

कर्णशूल के दूर करने में उत्तम है ।

देवदारुचचाशुण्ठीशताहकृष्टसैन्धवः ॥

तैलसिद्धवस्तमूत्रकर्णशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—देवदारु, वच, सोंठ, सोंफ, कूट

संबानमक और बकरे का मूत्र इन में सिद्ध

किया हुआ तेल कर्णशूलको दूर करताहै ।

चराटकानसमावृत्यदहेतपृञ्जाजनेनवे ।

तद्भस्मच्योतयेचेनगन्धतैलविपाचयेत् ॥

रसाञ्जनस्यशुण्ठवाश्चकल्काभ्यांकर्ण-

शूलनुत् ॥

अर्थ—पीली कौड़ी लाकर उन्हें मिट्टी के

एक नये पात्र में जला डेवे । इस भस्म को

शौगुने जल में स्थापित करे । इस जल में

सुगंधित तेल पकावे और इसमें रसोत और

सोंठ पीसकर डाल देवे । इस तेल को कान

में डालने से कर्णशूल जाता रहता है ॥

क्षार तैल ।

शुष्कमूलकशुण्ठीनांसारोहिंशुमहौपधम् ।

शतपुष्पावचाकुण्डासुशिमुस्ताञ्जनम् ।

सौवर्चलयवसारस्वर्णिकोद्भिदसैन्धवम् ।

भूर्जग्रन्थिविडम्बुस्तंभधुशुक्तचतुर्गुणम् ।

रसश्चमातुलुङ्गस्यकदल्यारसएवच ।

वैरेतैर्यथोद्दिष्टैःक्षारस्त्रैलविपाचयेत् ॥ वा

धियकर्णनादश्चपूयत्वावश्चदारुणः॥ क्रि
मयःकर्णशूलश्चपूरणादस्यनश्यति ॥ मु-
खकर्णाक्षिरोगेषुयथोक्तपीनसेविधिम् ॥
कुर्याद्भिषक्समीक्ष्यादौदोषकालवलाव-
लम् ॥

अर्थ—सूखी मूली और सोंठ का खार,
हींग, सोंठ, सोंफ, बच, कूठ, दारुहलदी, स-
हजनेकी छाल, रसौत, संचल नमक, जया-
खार सजीखार, उज्ज्विद नमक, संधानमक,
भूर्जमन्थि, विडनमक और मोथा, इन सब
का समान भाग कल्क और उससे चौगुना
शहतका शुक्त*इतनाही विजौरे का रस,इत-
नाही कदली का रस और चौथाई तैल डा-
लकर पकावै । इस तैल को कान में डाल-
ने से बहरापन, कर्णनाद, दारुण पूयत्वाव,
क्रिमि, कर्णशूल दूर होजाते है । वैद्यकी
उचित है कि रोगी के दोष काल और व-
लावल को देखकर मुखरोग, कर्णरोग और
नेत्र रोगों में भी इसका प्रयोग करै ॥

नेत्ररोग में चिकित्सा क्रम ।

नेत्ररोगेसमुत्पन्नेतरुणेतुविडालकः । का-
र्यादाहोपदेहास्तुशोफरागानेवारणः ॥

अर्थ—नेत्ररोग के उत्पन्न होने परही
विडालक नाम लेप करनेसे जलन उपलित

*:—शहत का शुक्त अर्थात् सिर का
पनाने की यह रीति है कि विजौरे का रस
एक प्रस्थ, शहत एक कुडव, पीपल पिप्पी-
हुई एक पल इन सबको मिलाकर शहत के
वर्तन में भरकर एक महीने तक धान के
टेर में गाड़देवै ॥

ता, सूजन और लड़ाई दूर होजाती है ॥

दोपानुसारनेत्रचिकित्सा ॥

नागरसैन्धवंसार्पिर्मण्डेनचरसक्रिया । नि-
घृष्टंवातिकेतद्दन्मुस्तसैन्धवगैरिकम् ॥ त-
थाशावरकरांधृत्पुक्तंविडालकः । का-
र्याहरितीकतीतद्दत्तुधृतभृष्टारुजापहा । पै-
त्तिकेचन्दनानन्तामञ्जिष्ठाभिविडालकः
कार्यःपद्मकयष्ट्याहर्मासीकालीयकैस्त-
या गैरिकसैन्धवंमुस्तरोचनासारसक्रि-
या । कफेकार्यस्तथाक्षौद्रप्रियंगुसमनःशि-
लम् ॥ सन्निपातेनुसर्वैःस्याद्द्विहरिक्षिमले
पनम्पक्ष्मण्यस्पृश्यताकार्यसम्पकेत्पञ्ज-
नंयथात् ॥

अर्थ—सोंठ और संधानमक समानभाग
लेकर घी में सानले । और इसी तरह से
मोथा, संधानमक और गेरू इनको घी में
सानले । इन दोनों प्रयोगोंको घातज नेत्र
रोग में रसक्रिया के अनुसार उपयोग में
लावै । इसीतरह पठानी लोध को घी में
सानकर अथवा हरड के कल्क को घी में
तप्त करके विडालक देवै । पित्तज नेत्ररोग
में रक्तचन्दन, अनन्तमूल और मजीठ का
विडालक देवै अथवा पचारख, मुलहठी, ज-
टामांसी और पीतचन्दन का विडालक दे-
वै । और गेरू, संधानमक, मोथा और गो-
रोचन इनकी रसक्रिया करै । कफजनेत्र रो-
ग में शहत, प्रियंगु और मनसिल का वि-
डालक देवै । सान्निपातिक नेत्ररोग में ती-
नों दोगों की कर्हाहुई औषधियों का आँखों
के बाहर बाहर लेप करै । रोग के पक हो-

मोजन इन सबको पीसकर आंखों में लगाने में नेत्रों को हित होता है । अथवा सेंधानमक, सूअरका दांत और निर्मली इनको पीसकर अंजन बनावे वा बत्ती बनाकर आंखों में आजै तौ तिमिरादिरोग दूर होजाते हैं । अथवा निर्मलीफल, शंख, सेंधानमक, त्रिकुटा, मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, शहत, चायविडंग, मनसिल और मुर्गे के अंडे के छिलके इन सबको पीसकर अंजन वा बत्ती बनाकर प्रयुक्त करै तौ तिमिर पटल, कांच और मल दूर होजाते है । इस का नाम सुखावती है ॥

दृष्टिमदावर्ती ।

त्रिफलाकुवकुटाण्डत्वक्कासीसमयसोरजः ।
नीलोत्पलंविडंगानिफेनञ्चसरितापतेः ।
आजेनपयसापिष्ट्वाभावयेत्तान्नभाजने ॥
सप्तरात्रंस्थितंभूपःपिष्ट्वाक्षीरेणवर्तयेत् ।
एपादृष्टिमदावर्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ।

अर्थ....त्रिकुटा, मुर्गे के अंडों के छिलके कर्सास, लोहभस्म, नाटकमल, चायविडंग, समुद्रफेन, इन सबको बकरी के दूध में पीसकर ताँबे के बरतन में बकरी का दूध भरकर सात दिवस तक भावना देवे फिर बत्ती बना बनाकर नेत्रों में लगावे तौ वह आंख जो फूटी न होगी उसका अंधापन दूर होजायगा ॥

अन्यअंजन ।

वदेनकृष्णसर्पस्यनिहितंमासमञ्जनम् ॥
चनस्तस्मात्समुद्रधृत्यसशृष्कंचूर्णयेत्सह ।
सुमनःसारकैःशृष्करद्धीर्नैःसैन्धवेनच ॥

एतन्नित्याञ्जनंकार्यंतिचिरघ्नमनुत्तमम् ।

अर्थ—कालेसांपके सिरको काटकर उस के मुख में रसांजन भरकर एक महीनेतक धरा रहने देवे । एक महीने पीछे उसे निकालकर सुखाकर पीसलेवे । इसमें मालती का खार और सेंधानमक आधा आधा मिलाकर नेत्रों में आजै यह अंजन तिमिर रोग के दूर करने में बहुत उत्तम है ॥

सुरसःकिंशुकस्याहर्वसाकृष्णस्यसैन्धवम् ।
जीर्णघृतञ्चसर्वाक्षिरोगघ्नीस्यादुपाक्रिया ।
कृष्णसर्पवसाक्षौद्रंरसौधाञ्ज्यारसक्रिया ॥
शस्तावाताक्षिरोगेषुकाचारुर्बुदमलेपुच ।

धात्रीरसाञ्जनसौद्रसर्पिर्भिस्तुरसक्रिया ॥
पित्तरक्ताक्षिरोगघ्नीतैर्भिर्यपटलापहा ।
धात्रीसैन्धवपिप्पल्यःस्युरल्पमरिचाःस-
माः ॥ क्षौद्रयुक्तानिहन्त्यन्धंपटलञ्चर-
सक्रिया ॥

अर्थ—पलासकी जड़ का रस, कालेसर्प की चर्बी, सेंधानमक और पुरानाघी इन सबको मिलाकर पीसकर नेत्रों में लगावे । इस से सम्पूर्ण प्रकार के नेत्ररोग शान्त होजाते हैं । कालेसर्प की चर्बी, शहत, और आंवले का रस इनको घोटकर आंखों में डालने से वज्र वातजनेत्ररोग तथा काच अर्बुद और मल दूर होजाते हैं । आंवले का रस, रसौत, शहत और घी इसका रस क्रिया द्वारा प्रयोग करने से पित्तरक्तज नेत्ररोग, तिमिर और पटल दूर होजाते हैं आंवला, सेंधानमक, पीपल, और काटी-सिरच ये सब समान भाग लेकर शहत के

साथ घोटकर रसक्रिया द्वारा प्रयुक्त करै तौ
बन्धता और पटलरोग दूर होजाते हैं ॥

खालित्यचिकित्सा ।

खालित्येपलितेवल्ल्यांहारिलौम्निच-
साधितम् ॥ नस्पैस्तैलैःशिरोग्रन्थप्रलेपै
इचाप्युपाचेरत् । सिद्धविदारिगन्थाद्यैर्जाव
नीयैरथापिच ॥ नस्पंस्यादणुतैलवाखा
लित्यपलितापहम् । क्षीरात्सहचराद्भृ
गरजसःसौरसाद्रसात् ॥ प्रस्थैस्तुकुडवस्तै
लाद्यप्याहुपलकलिकतः । सिद्धःशैलास-
नेभाण्डेमेपशुगेचसंस्थितः ॥ नस्पंस्यात्
क्षीरयुक्तवाद्गुग्गुलुकाकरवरिकौ । उत्पाद्य
पलितं देयातामुभौपलितापहौ ॥ मार्कवस्व
रसात्क्षीराद्द्विप्रस्थंमधुकात्पलम् । तैःप-
चेत्कुडवंतैलात्तन्नस्पंपलितापहम् ॥

अर्थ—खालित्य [खल्याट] पालित्य
[श्वेतकेश होना] वली [झुरी पडना]
और रोमोंका हरा होना इन में नस्प, तैल,
शिरःप्रलेप, मुख प्रलेपादि द्वारा चिकित्सा
करै । विदारिगन्थादि गण वा जीवनीयादि
गण से सिद्ध किया हुआ तैल वा पूर्वोक्त
अणुतैल की नस्पका प्रयोग करने से खा-
लित्य और पालित्य दोनों रोग दूर होजाते
हैं । दूध, सहचरीका रस, भांगरे का रस,
तुलसी का रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ ले
कर, तैल एक कुडव और मुलहठी एक पल
इन सबको एक साथ पका कर पत्थर वा
काच के बर्तन वा मेढा के सींग में रखलै
इसकी नस्प देखै ।

सिद्ध भागों को उगड़ कर दूध में टूटी

पीसकर वा कनेर पिस कर सिर पर डेप
करै तौ पालित्य दूर होजाता है । भांगरे
का रस दो प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ, मुलहठी
एक पल, एक कुडव तैल । इन सब को
एक साथ पका कर नस्प देने से पलितरोग
दूर होजाता है ।

महानीलारूपघृत ।

आदित्यवल्ल्यामूलानिकृष्णशैरेयकस्यच
सुरसस्यचपत्राणिफलंकृष्णशणस्यच ॥
मार्कवः काकमाचीचमधुकंदेवदारुच ॥
पृथग्दशपलांशानिपिप्पल्यत्त्रिफलाञ्जनम्
प्रपुण्डरीकंमज्जिष्ठालोभ्रंकृष्णागुरुत्पलम्
आम्रासिचर्दमःकृष्णोमृणालीरक्तचन्दन
म् ॥ नीलंभल्लातकास्थीनिकासीसमद्
यन्तिका । सोमराज्यसनःशरंभ्रंकृष्णौपि
ण्डीतचित्रकौ ॥ पुष्पाण्यर्जुनकाश्मर्याग्या
म्रजम्बूफलानिच । पृथक्पञ्चपलांशा
नितैःपिटैराढकंपचेत् ॥ वैभीतकस्यतैल
स्यधात्रीरसचतुर्गुणम् । कुर्यादादित्यपा-
कंवायावच्छुष्कोभवेद्रसःलोहपात्रेततःपू
तंसंशुद्धमुपयोजयेत् । पानेनस्तः क्रिया
याञ्चशिशोऽभ्यङ्गेचसंपतः एतच्चक्षुष्य
मायुष्यशिरसःसर्वरोगनुत् । महानीलमि-
तिरुयांतपलितधनमनुत्तमम् ॥

अर्थ—आदित्यवर्त्य की जड़, कृष्ण शै
रेयक, तुलसी के पत्ते, कालेसन के फल,
भांगरा, मकोय, मुलहठी, देवदारु, पृथक्
पृथक् दस पल । पीपल, त्रिफला, रसौत
पुण्डरियाकाठ, मजीठ लोह, कृष्णागुरु,
नीलकमल, आमकीगुठनी, चर्दम, मृणा,

रक्तचंदन, नील, भिल्लोयकी गुटली, हारा-
कसीस, मल्लिका, सोमराजी, अशान, लोह-
भस्म, पीपल, मेनफल, चीता, अर्जुनकेफूल
[किसी २ में पुहकरमूल अर्जुन] खंभारी
के फल, आम, जामन, इन मेंसे प्रत्येक पांच
पांच पल लेकर इन सबको पीस लेंवे इन
के साथ एक आठक बहंडे का तेल, आं-
वले का रस चार आठक इनको अंगि पर
चढा कर धा सूर्यकी धूप में पका कर गाढे
होनेपर छानकर लोहे के पात्र में रखदेवै इस
तेलको पान नस्य और सिरपर मालिश करने
में प्रयुक्तकरै ॥ यह तेल नेत्रोंको हितकारी
आयुवर्द्धक, और सिरके सम्पूर्ण रोगोंकानाश
करनेवाला महानील नामक है ॥ यह तेल
पलित दूर करने में बहुत उत्तम है ॥

प्रपुण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।
कर्पिकैस्तैलकुडवःद्विगुणामलकारिसः ॥
सिद्धःसपारिमर्शःस्यात्सर्वमूर्द्धगदापहः ।
क्षीरंपियालयप्त्र्याहर्जावकाशोगणस्तिलाः
कृष्णावबत्रप्रलेपःस्याद्दरिल्लोमनिवारणः
यप्याहृतिलाकिञ्जल्कसौद्रमामलकानिच
वृष्येद्रञ्जयेच्चैतत्केशान्मूर्द्धप्रलेपनम् ॥
पचेत्सैन्धवशुक्ताम्लैरयध्वृणोसतण्डुलम् ॥
तेनालिप्तशिरःशुद्धस्निग्धमुपितानिशि ॥
तस्मात्स्त्रिफलाद्यौतस्यात्कृष्णमृदुमूर्द्धजम्
अयश्चूर्णोऽम्लपिष्टश्चरागःसत्रिफलोवरः

अर्थ—पुण्डरियाकाठ, मुलहटी, पीपल,
चन्दन, नीलकमल, प्रत्येक एक एक कर्प,
तेल एक कुडव, आंवले का रस दो कुडव
इन सबको सिद्ध कर के प्रयोग करने से

सिर के सम्पूर्ण रोग दूर होजाते हैं । दूध
पियाल, मुलहटी, जीवनीय गणोक्त द्रव्य
और काले तिल इनको पीसकर लेपकरनेसे
रोमों का हरापन दूर होजाता है ।

मुलहटी, तिल, पद्मकेसर, शहत और आं-
वला इनका मस्तकपर लेप करने से केशदृढ
तथा काले होजाते हैं । संधानमक, शुक्त,
काजी, लोहचूर्ण, तंडुल, इन सबको पीसकर
बिना चिकनाई डाले सिरको शुद्ध कर के
पहिले दिन रात में लेप करै । दूसरे दिन
प्रातःकाल त्रिफला के जल से धोडाँटै तौ
वालकोमल और काले पडजाते हैं । लोहचूर्ण
और त्रिफला इनको काजी के साथ पीसकर
लेप करने से बाल काले पडजाते हैं ॥

कुर्याच्छेषपुरोगपुक्रियांस्वांस्वाच्चिकि
त्सिताम् ॥ शेषेप्यादौचीनिदिष्टासिद्धा
चान्याप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—जब से उपर होने वाले रोगों में
जो रोग है उसकी वैसीही चिकित्सा करै ॥
उन में से बहुत से रोगोंकी चिकित्सा पहिले
वर्णन करचुके है और शेषरोगोंकी चिकित्सा
सिद्धिस्थान में वर्णन कीजायगी ।

अध्यायकाउपसंहार ।

वातपित्तकफान्दण्वांवास्तिहृन्मूर्द्धसंश्रयाः ॥
तस्मात्तुस्थानसामीप्याद्धृतव्यावमनादि
भिः । अध्यात्मलोकोवाताद्यलोकोवातर
वीन्दुभिः । पीडयतेधार्थतैचैवविकृताविकृतै
सच । विरुद्धैरपिगतैवेतैर्गुणैर्धनन्तिपरस्पर
म् ॥ दोषाःसहजसात्म्यत्वाद्द्विपंगोरम
हीनिव ।

अर्थ—वात, पित्त और कफ के प्रवान स्थान मनुष्यके वस्ति, हृदय और मूर्द्धा हैं इसलिये स्थानकी समीपताके कारण वमनादि द्वारा उनका संशोधन करै । जैसे विकृत वायु, सूर्य और चन्द्रमा संसार को पीडित करते हैं और अविकृत संसार को धारण करते हैं उसीतरह विकृत वात, पित्त, कफ, देहको पीडित करते हैं और अविकृत देहको धारण करते हैं ॥

वात पित्त और कफ ये तीनों दोष यद्यपि गुणों में परस्पर विरुद्ध हैं तथापि एक दूसरे को नष्ट नहीं करते हैं, क्योंकि ये साथ उत्पन्न हुए हैं और साम्य भी हैं । जैसे सर्पका विष सर्पको नष्ट नहीं करसक्ता है ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।
त्रिमर्षजानारोगाणां निदानाकृतिभेदजम्
विस्तरेण पृथग्निर्दिष्टं त्रिमर्षीयचिकित्सिते ।

अर्थ—इस त्रिमर्षीय चिकित्सित नामक अध्याय में रोगों के निदान आकृति और चिकित्सा पृथक् २ विस्तारपूर्वक वर्णन की गई हैं ॥

इति श्रीभाषाटीकात्रिंशत्तयां अग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने त्रिमर्षीयचिकित्सितं नाम पट्ट-

विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथात ऊरुस्तम्भचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले

कि अब हम ऊरुस्तम्भ चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

श्रिया परमया ब्राह्म्या परया च तपः श्रिया
अहीनं चन्द्रसूर्याभ्यां सुमेरुमिव पर्वतम् ॥
धीधृतिस्मृतिविज्ञानज्ञानकीर्तिक्षमालयम्
अग्निवेशो गुरुं काले संशयं परिपृष्टवान् ॥
भगवन् ! पञ्चकर्माणिसमस्तानि पृथक्त्वा-
था । निर्दिष्टान्यामयानान्तु सर्वेषामेव भेष-
जम् ॥ दोषत्रोऽस्त्यामयः कश्चिद्यस्यैता-
नि भिषग्वर ! । नस्युः शक्तानि शमने सा-
ध्यस्य क्रियया ततः ॥

अर्थ—जैसे सुमेरु पर्वत चन्द्रमा और सूर्य दोनों से सुशोभित है उसी तरह जो परा ब्राह्मी श्री और परा तपः श्री इन दोनों से युक्त है और जो धी धृति, स्मृति, विज्ञान ज्ञान, कीर्ति और क्षमा का स्थान है ऐसे गुरु आत्रेयसे अग्निवेशने उचित समय पर अपने संशयको दूर करने के हेतु प्रश्न किया कि हे भगवन् ! आपने वमन विरेचनादि पाँचों कर्मोंका पृथक् २ वर्णन किया है और सम्पूर्ण रोगोंकी औषधियाँ भी कही हैं । परन्तु हे वैद्यवर ! क्या कोई ऐसा भी दोषज रोग है जो साध्य होने पर भी उक्त सम्पूर्ण क्रियाओं द्वारा दूर करने में न आ सकता हो ।

अस्त्युरुस्तम्भइत्युक्ते गुरुणा तस्य कारणम्
सलिंगभेषजं भूयः पृष्टस्तेनाश्र्वरीन्द्रगुरुः ॥

अर्थ—यह सुनकर आत्रेय बोले कि ऊरुस्तम्भ एक ऐसा रोग है जो वमन विरेचनादि पञ्चकर्मों से अच्छा नहीं होसकता

है तब अग्निवेदा के फिर पृश्न करने पर
आत्रेयेन ऊरुस्तंभ का निदान, लक्षण और
चिकित्सा वर्णन की ॥

ऊरुस्तम्भका हेतु ।

स्निग्धोष्णलघुशीतानिजीर्णाजीर्णसम-
श्रतः । द्रवशुष्कदधिसीरग्राभ्यान्पौद-
कामिषैः ॥ पिष्टव्यापन्नमथातिदिवास्व-
प्नप्रजागरैः । लघनप्रयनाद्यैश्चमशवेगवि-
धारणैः ॥ स्नेहाश्यामश्चिन्तकोष्ठेवातादी-
न्मेदसासह । रुद्धाशुगौरवादूरुस्रोतोभि-
र्यात्यधोगतैः ॥ पूरयन्सकृथिजंघोरुदो-
षोमेदोवलोत्कटः । अविधेयपरिस्पन्दं
जनयत्यल्पविभ्रमम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, उष्ण, लघु और शीतल
अन्न के अत्यन्त सेवन से, विषम भोजन
अजीर्ण में भोजन वा संशमनसे, पतले वा
सूते दही, दूध, ग्राम्यमांस, आनूपमांस
और औदक मांसके अत्यन्त सेवनसे पिष्टी
के पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, दूषित मद्य
से, दिनमें सौने से वा रात्रि में अत्यन्त
जागने से, लघने से, कुंदने से, भयसे, वेग
संधारण से, और अत्यन्त स्नेह के सेवन
करने से कौष्ठ में संचित हुआ आम मेदा
के साथ वातादिक दोषोंको रोककर भारापन
के कारण शीघ्रही अशोगामी स्त्रियों द्वारा
ऊरुमें जाताहै तब दोष मेदके साथ मिलने
से वलोत्कट होकर सक्थि, जंघा और ऊरु
को गर देताहै और ये चलने फिरने से र-
हित रोगर अल्प वलयुक्त होजाती हैं ॥

ऊरुस्तम्भकी उत्पत्ति ।

महासरसिगम्भीरेपूर्णेऽभ्युस्तिमितेतथा ।
तिष्ठतिस्थिरमसोभ्यंतद्वदूरुगतःकफः ॥
गौरवायाससङ्कोचदाहरुशुष्किकम्पनैः ।
भेदस्फुरणतोदैश्वयुक्तोदंद्निहन्त्यमृन् ॥
ऊरुश्रेष्ठासमेदस्कोदोषाद्वावाभिभूयतु ।
स्तम्भयेत्सैर्यशैत्याभ्यामूरुस्तम्भस्ततस्तु
सः ॥ वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्यस्यात्
स्नेहनात्पुनः । पादयोःसदनंसुप्तिःकृच्छ्रा
दुद्धरणंतथा ॥

अर्थ—जैसे बड़े सरोवर के पूर्ण भरजाने
पर उसमें जल ठहरजाता है उसी तरह से
कफ ऊरु में जाकर स्थिर और अभुभित
होकर ठहरजाता है । जिस ऊरुस्तम्भ में
भारापन, आयास, संकोच, दाह, वेदना, सुन्नता,
कम्पन, भेद, कडकन और तोद होता है
उसमें प्राण शीघ्रही निकलजाते हैं । मेद
से संयुक्तकफ वात और पित्तका पराभव
करके स्थिरता और शीतलता के कारण
ऊरुओंको स्ताम्भित करदेता है । तब यह
रोग ऊरुस्तम्भ कहाता है । इस रोग में
वात विकारकी शंका करके अज्ञानसे मनुष्य
वातनाशक तैलादि का मर्दन करते हैं, इस
से पांवों में शिथिलता और न्यूनता होती
है तथा पांव बड़ी कठिनता से उठता है ।

ऊरुस्तम्भ के लक्षण ।

जंघोरुलानिरत्यर्थशश्वच्चादाहवेदना।
पदञ्चन्यथतेन्यस्तंशीतस्पर्शनवेत्तिच ॥
संस्थानेपीडनेगत्यांचलनेचाप्यनीश्वरः।
अन्यप्रणयःसम्भ्रग्नावूरुपादौचमन्यते ॥

अर्थ—जंघा और ऊरु में अत्यन्त ग्लानि निरन्तर दाह और वेदना, पांव के घरने में व्यथा, शीतस्पर्श का मध्यम न होना तथा पांव के एक जगह रखे रहने में, चलने में पीडा होती है तथा यह मादम होता है कि ऊरु और पांव दोनों दूटेजातेहैं

ऊरुस्तम्भका पूर्वरूप ।

माधूपंध्याननिद्रातिस्तेमित्यारोचकज्वराः
लोमहर्षश्चछर्दिश्चजंघोर्वाःसदनंतथा ॥

अर्थ—ध्यान, निद्रा, भायन्त स्तिमिता, भक्षिच, ज्वर, लोमहर्ष, बमन, जंघाका सदन वा ऊरुसदन ये ऊरुस्तम्भ के पूर्वरूप है ॥

साध्यासाध्यऊरुस्तम्भका लक्षण ।
यदादाहार्तितादातीवेषनःपुरुषोभवेत् ।
ऊरुस्तम्भस्तदाहन्यात्साधयेदन्यथा
नवम् ॥

अर्थ—जब ऊरुस्तम्भके पुराने पडनेपर रोगी दाह, यातना और तोद से पीडित हो और उसे कम्पन भी होता हो तो ऊरुस्तम्भ असाध्य और प्राणनाशक होताहै । ऊपर कोहड़ए लक्षणों से विपरीत और नवीन ऊरुस्तम्भ साम्य होता है ।

ऊरुस्तम्भमें अकर्तव्यकर्म ।

तस्यनस्नेहनंकार्यनवस्तिर्नधिरेचनम् ॥
नचैवमनंयस्मात्तन्निवोधतकारणम् ॥

अर्थ—ऊरुस्तम्भ में स्नेहन, वस्ति, विरेचन वा बमन नहीं कराना चाहिये । जिन हेतुओं से ये कर्म नहीं कियेजाते हैं उसका कारण यह है कि—

अकर्तव्यकर्मोंकाहेतु ।

वृद्धयेदलेष्मणोनिर्त्यस्नेहनवस्तिकर्मच ।
तत्स्यस्योद्धरणेचैवनसमर्थविशोधनम् ।
कफकफस्यानगतपित्तवाग्बमनात्सुरवम् ॥
हन्तुमामाशयस्यौचसंसनाचायुभाविपि ।
पक्वाशयस्थाःसर्वेचवस्तिभिर्गूलनिर्जयात्
शक्यानत्वाममेदोभ्यांस्तब्धजघोरुसं-

स्थिताः ॥

अर्थ....स्नेहनकर्म और वस्तिकर्म कफ को सदा बढ़ातेहैं हैं । तथा बमन विरेचनादि संशोधन भी ऊरुमें स्थित कफको निकालने मेंसमर्थ नहीं होते हैं कारण यह है कि बमन विरेचनका ऊरुसे कोई साक्षात् संबंध नहीं है ।

कफस्थानगत कफ और पित्तस्थानगत पित्त बमन द्वारा सुखपूर्वक दूर हो सकता है और आमशयस्थ पित्त और कफ दोनों संसन द्वारा दूर होसके है । पक्वाशय में स्थित वातपित्त कफ ये तीनों दोष वस्तिकर्म से सुखपूर्वक दूर होजाते हैं परन्तुबाम और मेदा से स्तब्ध जंघा और ऊरु में स्थित दोष वस्तिकर्म से दूर नहीं होसकेहैं। वातस्थानेहितेशेत्याद्भयोःस्तम्भाश्चतद्गताः ॥ नशक्याःसुखमुद्धर्तुंजलंनिम्ना दिवस्थलात् ॥

अर्थ....ऊरु और जंघा वात के स्थान हैं और वायुकी शीतलता के कारणही ऊरुस्तम्भ और जंघास्तम्भ उत्पन्न होते हैं इस से इनको दूर करदेना सहजयात नहीं है । जैसे नाचे स्थलों से जल निकालने में कठिन-

ता पडती है उसीतरह शरीरके नाचिके भाग में स्थित जंघा और ऊरु से दोषों के दूर करने में कठिनता होती है ॥

ऊरुस्तम्भमेंचिकित्साविधि ।

सस्यसंशमनंनित्यंक्षपणंशोषणंतथा ॥

युक्त्येपक्षीभिपक्कुर्यादीधिकत्वात्कफामयोः । सदारुक्षोपचाराययवदयामाकफोद्भ्रान् ॥ शकैरलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितैः । मुनिपण्णकनिम्बार्कवेत्रारग्वधपल्लवैः ॥ घायसीघास्तुकैरन्यैस्त्रिक्त्वाकुलकादिभिः । क्षारारिष्टप्रयोगाच्च हरीतक्यास्तथैवच ॥ मधूदकस्यपिप्पल्याऊरुस्तम्भाविनाशनाः ॥

अर्थ....कफ और आमकी आधिकता का विचार करके युक्तिपूर्वक ऊरुस्तम्भमें संशमन किया करना उचित है जिससे इस रोग का नाश और शोषहोवे । तथा सदा रुक्ष उपचार के निमित्त जौ, सोंखिया, कोदों का सेवन करना हित है और विना नमकके जल और तेल के साथ पकायेहुए श्लैषितिया, नीम के पत्ते, आक के पत्ते, बैत के पत्ते, अमलतास के पत्ते, मकोय वधुआ और परवलआदि अन्य तिक्तशाकों का सेवन करे । इसीतरह क्षार, अरिष्ट, हरड़, मधूदक और पीपल ऊरुस्तम्भ को दूर करते हैं ।

ऊरुस्तम्भमें अन्य औषध ।

समक्षांशाल्मलीविल्वमधुनासहनापिवेत् । तथाश्रीवेष्टकोदीच्यदेवदारुनतान्यपि । चन्दनंघातकीकुण्डंतालीशंनलदंतया ॥

अर्थ—ऊजालू, सेंमरकी छाल और वेडकी छाल इन के क्वाथ में शहत डालकर पान करे । तथा श्री घेष्टक, नेत्रवाटा, देवदारु और तगर का क्वाथ मधु के साथ पान करे अथवा रक्तचन्दन, धाय के फूल, कूठ, तालीसपत्र और खस इनके क्वाथको मधु के साथ पान करे ।

ऊरुस्तम्भ पर पांच प्रयोग ।

मुस्तंहरतीर्करोध्रंपन्नकंतित्तरोहिणीम् । देवदारुहरिद्रेखचांकडुकरोहिणीम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंसरलंदेवदारुच ॥ चव्यचित्रकमूलानिदेवदारुहरीतकीम् । भल्लातकंसमूलाश्चपिप्पलीपञ्चतानपिवेत् । सक्षांद्रानर्द्धश्लोकोक्तान्कल्कान्कुरग्रहापहान् ॥

अर्थ—[१) मोथा, हरड़, लोध.पद्माख और कुठकी । देवदारु, दोनों हलदी, वच और कुठकी । (३) पीपल, पीपलामूल सरलकाष्ठ, देवदारु (४) । चव्य, चीते की जड़, देवदारु और हरड़ [५) । भिलाया, पीपल, पीपलामूल । अधेर श्लोको में कहे हुए ये पांच प्रयोग हैं इन में से किसी एक का कल्क शहत डालकर पानि से ऊरुस्तम्भ का नाश होता है ।

शार्ङ्गंमदनंदन्तीचित्सकस्यफलवचाम् । मूर्वामारग्वधांपाठांकरंजकुलकंतथा ॥ पिबेन्मधुयुतंतल्पंचूर्णवावारिणाप्लुतम् । सक्षांद्रंदिधिपण्डंचाप्यूरुस्तम्भाविनाशनम् ॥

अर्थ—शार्ङ्ग, मेनफल, दन्ती, इन्द्रजौ, वच, मूर्वा, अमलतास, पाटा, कंजा, परवल,

इनके काथ में शहत डालकर पीवै अथवा इनके चूर्ण को जल में घोलकर शहत वा दाधिमंडके साथ पीवै । इससे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ।

मूर्वाभतिविपांकुप्रांचित्रकंकडुरोहिणीम् ।
 पूर्वचद्रापिवेतोयेरात्रिस्थितमथापिवा ॥
 स्वर्णक्षीरीमतिविपांमुस्ततेजोवर्तविचाम् ।
 सुराहंचित्रकंकुप्रांठकडुरोहिणीम् ॥
 लेहपेन्मधुनाचूर्णसत्तौद्रंवाजलान्वितम् ।
 फलीव्याघ्रनखंहमपिवेदामधुसंयुतम् ॥
 त्रिफलांपिप्पलींमुस्तंचव्यंकडुरोहिणी-
 म् । लिह्यादामधुनाचूर्णमुरुस्तम्भादितो
 नरः ॥

अर्थ—मूर्वा, अतीस, कूठ, चीता, कुटकी इनके काथ वा चूर्ण को पहिले की तरह पीवै अथवा इन सब द्रव्यों को रात्रि के समय जल में भिगो देवै और प्रातःकाल इस जल को पीवै । अथवा स्वर्णक्षीरी, अतीस, मोथा, चव्य, यच, देवदारु, चीता, कूठ, पाठा और कुटकी, इनके चूर्ण को शहत के साथ अथवा शहत मिळे हुए जल के साथ सेवन करै । अथवा प्रियंगु, व्याघ्रनख और नागकेशर इनके चूर्ण को शहत के साथ पीवै । अथवा त्रिफला, पीपल, मोथा चव्य, और कुटकी इनके चूर्ण को शहत के साथ चाँटे ।

ऊरुस्तम्भके उपद्रवोंकी चिकित्सा ।
 अपतर्पणश्चेत्स्याद्दोषःसन्तर्पयेद्धितम् ।
 युक्त्याजांगलजैर्मांसैःपुराणैश्चवशालिभिः
 रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशातिपूर्वकः॥

स्नेहस्वेदक्रमस्तत्रकायैवातामयापहः ॥
 पीलुपर्णांपयस्याचरास्नागोक्षुरकोवचा ।
 सरलंगुरुपाठादचतैलमेभिर्विपाचयेत् ॥
 ससौद्रात्प्रसृतंस्मादञ्जलिंवापिनापिवेत्
 कुष्ठंश्रीवेष्टकोदीच्यंसरलंदारुकेसरम् ।
 अजगन्धाश्चगन्धाचतैलन्तैःसार्पपंचेत्स-
 क्षौद्रंमात्रयातच्चाप्युरुस्तम्भादितःपिवेत्

अर्थ—जो ऊरुस्तम्भ अपतर्पण से उत्पन्न हुआहो तो उस में सन्तर्पण हित है । इस में जांगल मांस और पुराने शालिचांबल देना उचितहै । रूक्ष व्याक्तिके यदि निद्रानाश और यातना पूर्वक वातका कोप होवै तो वातरोग नाशक स्नेहन और स्वेदन क्रिया का अवलंबन करै । मरोडफली, क्षीरकाकोळी रास्ना, गोखरू, यच, सरल, अगर और पाठ इतको डालकर तेल पकावै । इस तेल में से एक प्रसृत वा एक अंजली शहत डाल कर पीना चाहिये । अथवा कूठ, श्रीवेष्टक, नेत्रवाला, सरलकाष्ठ, देवदारु, नागकेशर, अजगंध, असगंध इनको डालकर सरसोंका तेल पकावै । इस तेल में मात्रा के अनुसार शहत डालकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ दूरहो जाताहै ।
 द्वेपलेसैन्धवात्पञ्चशुष्याग्रन्थिकचित्रका-
 त्॥द्वेभल्लातकास्थीनिविंशतिद्वैतथादके॥
 आरनालात्पचेत्प्रस्थंतैलस्यैतैरपत्यदम्॥
 गृध्रस्यूरुग्रहार्शांतिं सर्ववातविकारनुत् ।
 पलाभ्यांपिप्पलीमूलनागरादष्टकद्वरः॥
 तैलप्रस्थःसमोदघ्नागृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥
 इत्याभ्यन्तरमुष्टिमुरुस्तम्भस्यभेषजम्॥श्ले-
 ष्मणःक्षपणत्वन्यद्वाह्यंशुशुचिकित्सितम् ॥

अर्थ—सैधानमक दो पल, सौंठ पांचपल वच और चींता दो दो पल, मिठायेकी गुठली बीस, कांजी दो आढक, इन सब के साथ एक प्रस्थ तेल पकावे । यह तेल सैतानकारक होता है ॥ इसके सेवन करनेसे गृध्रसी ऊरुग्रह, अर्शयातना, तथा सब प्रकार के वातरोग दूर होजाते हैं ॥ पीपलामूल एकपल सौंठ एक पल, भाठ प्रस्थकद्वार एक प्रस्थ तेल और एक प्रस्थ दही इन सबको पकाकर सेवन करने से गृध्रसी और ऊरुग्रह दूरहो जाते हैं ॥ इस तरह ऊरुस्तम्भकी आम्यन्तर चिकित्सा वर्णनकी गई है, अब हम यहां से इलेभक्षपण वाद्य चिकित्साका वर्णनकरते हैं ।

ऊरुस्तम्भ पर लेप ।

वल्मीकमृत्तिका मूलं करञ्जस्य फलं स्वचम्
पिष्ट्वा स सर्पपमूत्रेऽधुपितं स्यात्प्रलेपनम्
इष्टफानांततश्चूर्णैः कुर्यादुत्सादनं शुभम् ॥

अर्थ—वांवी की मिट्टी, कंजाकी जड़, फल और छाल और रात भर गोमूत्र में भिगोई हुई सरसों इन सबको पीस कर लेप करे अथवा ऊपर से ईटका चूर्ण धीरे-धीरे मसले ॥

अन्यलेप ।

मूलैर्वाप्यश्वगन्धायामूलैर्रुस्यवाभिपक्
पिचुमर्दस्ययामूलैर्यवादेवदारुणः ।
हौंस्रसपेपवल्मीकमृत्तिकाहयुताभिपक् ॥
गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तंभे प्रलेपनम् ॥
द्रवन्त्यासुरसैर्दन्त्यासर्पपैश्चापि बुद्धिमान् ।
तर्कारीविश्वशिशुमुरसवत्सकनिम्बजैः ॥
पत्रमूलफलैस्तोयं मृतमुष्णञ्च सेवनम् ।

वत्सकः सुरसंकुण्डलं गन्धास्तु न्बुरुशिशुमूकौ ॥
हिंज्वार्कमूलवल्मीकमृत्तिकाः सकुठेरकाः ।
दधिसेन्धवसंयुक्तं काय्यमेतैः प्रलेपनम् ॥

अर्थ—असगंध की जड़, अथवा आक की जड़, वां नागकी जड़, अथवा देवदारु की जड़, इनके चूर्ण में शहत, सरसों, वांवांकी मिट्टी मिठाकर ऊरुस्तम्भ पर गाढ़ा उत्सादन करे । अथवा द्रवन्ती, सुरसा, तुलसी, दन्ती और सफेद सरसोंका लेप करे अथवा जयन्ती, सौंठ, सहजना, कालीतुलसी, इन्द्रजौ इनके पत्ते, जड़ और फलों को आँटाकर उष्णजल का ऊरुस्तम्भ पर तरे-डा देवे । अथवा इन्द्रजौ, तुलसी, कूठ, असगंध, धनियां सहजना, हींसकी जड़, आककी जड़, वांवांकी मिट्टी और कुठेरक तुलसी इनमें दही और सैधानमक मिठाकर लेप करे ।

श्योनांकं खदिरं विल्वं वृहत्स्यौ सरलासनी ।
अभिमन्यादकीशिशुश्च दंष्ट्रासुरसार्जकान्
तर्कारीनक्तमालञ्च जलेनोत्काथ्यसेचयेत्
प्रलेपो मूत्रपिष्टैर्वाप्यूरुस्तम्भनिवारणः ।
कफक्षयार्थं सद्योपुन्यायामेष्वनुयोजयेत् ॥
स्थलान्याक्रामयेत्कालशर्कराः सिकतास्तथा ॥
प्रतारयेत्प्रतिस्तोतां नदीशीतजलां शिवाम् ।
सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोयं पुन पुनः ॥
तथा कफे विशुक्के स्थशान्तिमूरुग्रहोत्रजेत् ॥
इलेष्मणः क्षपणं यत्स्यात्तत्र च मारुतमावहेत् ।
तत्सर्वं सर्वदा काय्यं मूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥
शरीरं बलमग्निञ्च काय्यं पारक्षताक्रिया ॥

अर्थ—श्वीनाक, खैर, वेल्ड्याल, दोनों फोटेरी सरल, असन, अरनी, सहजना, गोखरू, तुलसी, अर्जक, तर्कारी, और कंजा इनका काथ फांके गरम २ काः तरडा देवै अथवा इनसब औषधियों को मोमूत्र में पीसकर लेप करै तौ भी ऊरुस्तम्भ दूर होजाता है। कफके क्षीण करने के लिये रोगी जितना परिश्रम सहन करसकै उतना उससे शारीरिक परिश्रम करावै। रोगीको बालू वा कंफरों के ढेरपर वा ऊंचे स्थान पर चढ़ावै। शीतलजलवाली, उपद्रव रहित नदियों के स्रोतकी तरफ तैराकर चढ़ावै। तथा निर्मल, शीतल और ठहरेहुए जलों के सरोवरों में तैरावै। इसतरह कफके सूखने पर ऊरुस्तम्भ शान्त होजाता है। जो जो औषध कफको दूर करे और वायुको प्रकुपित न करे वे सब ऊरुस्तम्भ के दूर करने में उपयोगी होती हैं। परन्तु इस चिकित्सामें शारीरिक बल और अग्निकी रक्षा का पूर्ण विचार रखवै।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

हेतुः प्राणुपलिंगानिकर्मायोग्यत्वमेव च ।
द्विविधं भेषजं चोक्तं ऊरुस्तम्भचिकित्सिते ॥

अर्थ—इस ऊरुस्तम्भ चिकित्सित अध्यायमें ऊरुस्तम्भ के हेतु, पूर्वरूप, लक्षण और वमनादि पाँचों कर्मों की अयोग्यता और दो प्रकारकी चिकित्सा वर्णन का है। इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकित्सितस्थाने ऊरुस्तम्भचिकित्सितनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथवातव्याधिचिकित्सितं व्याख्या-
स्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अबहम वातव्याधि चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

वायु की उत्कृष्टता ।

वायुरायुर्वलं वायुर्वायुर्धाताशरीरिणाम् ।
वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्चकीर्तितः ॥
अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः ।
वायुर्हि सोऽधिकं जीवित्परीरोगः शरदांशतम् ॥

अर्थ—वायुही देहधारियोंकी आयु है, वायुही उनका बल है, वायुही उनका विधाता है, वायुही सम्पूर्ण विश्व है और वायुही प्रभु वर्णन किया गया है ॥

जिस मनुष्यके देह में वायुकी अव्याहत (अदूषित) गति है और अपने स्थान में स्थित और प्रकृतिस्थ है वह मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त निरोग रहकर जीतै है।

वायुके भेद ॥

प्राणोदानसमानाख्यव्यातापानैः सपञ्च-
धा । देहं मन्त्रयते सम्यक्स्थानेष्वव्याहत-
श्चरन् ॥

अर्थ—प्राणवायु, उदानवायु, समानवायु, व्यानवायु, और अपानवायु, ये वायुके पाँच भेद हैं। ये पाँचों वायु अपने अपने स्थान में अव्याहत गतिसे विचरण करती हुई शरीर को सम्यक् रूप से नियमित रखती हैं ॥

प्रायवायुके स्थान और कर्म।

स्थानं प्राणस्य शीर्षोः कर्णो जिह्वाक्षिणा-
सिकाः ॥ पृथिवनक्षत्रधृद्ग्रासहारा
दिकर्म च ॥

अर्थ—प्राणवायु के स्थान सिर, वक्षः-
स्थल, दोनों कान, जिह्वा, आंख और ना-
सिका हैं। धृक्ना, छीकलेना, डकार, श्वास
और आहारादि ग्रहण इसके कर्म हैं ॥

उदानवायुके स्थान और कर्म ॥

उदानस्य पुनः स्थानं नाभ्युरः कण्ठपृष्वच ।
वाक्मृत्तिः प्रयत्नोर्जावलवर्णादिकर्म च ॥

अर्थ—उदानवायुके स्थान नाभि, हृदय
और कण्ठ हैं। धोखना, शरीरसंचालन, ऊर्जा
बल और वर्णादि इसके कर्म हैं ॥

समानवायुके स्थान और कर्म ॥

स्वेददोषाम्बुवाहानिस्रोतांसिसमधिष्ठि-
तः । अन्तरप्रदेशपार्श्वस्थः समानोऽग्नि
चलप्रदः ॥

अर्थ—समानवायुके स्थान स्वेदवाही,
दोषवाही और अम्बुवाही स्रोत हैं। यह ज-
ठराग्नि के पसवाडे में स्थित रहकर अग्निके
बलको बढ़ाती है ॥

व्यान वायुके स्थान और कर्म ॥

देहं व्यामोत्ति सर्वतु व्यानः शीघ्रगतिवृणा
म् । गतिप्रसरणाक्षेपनिमेषादिक्रिया
सदा ॥

अर्थ—व्यान वायु मनुष्यके सम्पूर्ण देह
में रहती है, इसकी गति बड़ी शीघ्र है।
गति, प्रसारण, आक्षेपण और निमेषादि
इसके कर्म हैं ॥

अपानवायुके स्थान और कर्म ॥

वृषणो वस्तिमेदूश्च श्रोण्युख्वक्षणागुदम् ॥
अपानस्थानयन्त्रस्थः शुक्रमूत्रशकृन्तिसः
सृजत्यार्तवगर्भोच्युक्ताः स्थानस्थिताश्च
ते । स्वकर्मकुर्वते देहो धार्यते तैरनामयः ॥

अर्थ—अपानवायु के स्थान अंडकोश,
वस्ति, मेदू, श्रोणी, ऊरू, वंक्षण और गुदा
हैं। इसका मुख्य स्थान आंत हैं। आंत
में स्थित होकर वीर्य, मूत्र, विष्टा, रजःस-
म्वधी रुधिर और गर्भका परित्याग करती है
ये पांचों प्रकारकी वायु अपने २ स्थानों
में स्थित और नियुक्त रहकर अपना २
कर्म करती है और देह को स्वस्थान्वास्था
में रखती है।

विमार्गस्थ पंचवायुके कर्म ॥

विमार्गस्थास्त्रयुक्तावारोगः स्वस्थानकमे
जः । शरीरं पीडयन्त्येते प्राणानाशुहर
न्ति च ॥

अर्थ—जब ये वायु कुमार्गगामी होजाती
हैं और यथावत् नियुक्त नहीं रहती है
तब अपने २ स्थान और कर्मोंसे उत्पन्न
होने वाले रोगों द्वारा शरीरको पीडित क-
रती है और प्राणोंको भी शीघ्र ही न-
ष्ट कर देती है ॥

संख्यामप्यतिवृचानांतज्जानां हिमधानतः
अशीतिर्नखभेदाद्यारोगाः सूत्रे निदर्शिताः
तानुच्यमानान्पर्यायैः सहेतूपक्रमान्शृणु ॥
केवलं वायुमुद्दिश्य स्वानभेदात्तथावृत्तम् ।

अर्थ—सूत्रस्थान में असंख्य वायुरोगों
में मुख्यकरके अस्ती प्रकार के नखादिरोग

वर्णन क्रियेगये है ॥ अत्र हम पर्यायक्रम से उनके हेतु और चिकित्साका वर्णन करते हैं उसे सुनो ॥ स्थान भेदसे केवल वायु का तथा आवृत वायुको उद्देश्य करके उनको वर्णन किया जाता है ॥

सर्वाङ्गारिव्याधियों का हेतु ।

रूक्षशीतल्पलघ्वन्नव्यथायातिप्रजागरैः ॥
विषमादुपचाराच्चदोषासृक्स्रवणादति
लंघनपुत्रनात्यध्वन्यायामातिविषोट्टैः ॥
धातूनांसंक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्ष-
णात् । दुःखशय्यासनात्क्रोधादियास्व
प्नाद्भयादपि ॥ वेगसन्धारणादामाभी
घातादभोजनात् । मर्मावाधाद्द्रोष्टाश्च
शीघ्रयानावतंसनात् ॥ मेहेस्रोतांसिरिक्ता
निपूरयित्वाऽनिलोवली । करोतिविवि-
धान्ब्याधीन्सर्वाङ्गैर्कांगसंश्रितान् ॥

अर्थ—रूक्ष, शीतल, अल्प और लघु अन्नके सेवन से, स्त्रीसंगम से, अत्यन्त जगनेसे, विषम उपचारोंसे, दोष और रक्तके अत्यन्त स्रावसे, कूपादि गर्तोंके लंघन से, छलांग मारनेसे, मार्ग चलने से, शारीरिक परिश्रम के करने से, अत्यन्त चेष्टा करने से धातुओंके क्षीण होने से, चिन्ता, शोक और रोग द्वारा अत्यन्त कर्षण से, दुःख देने वाली शय्या वा आसन पर बैठनेसे, क्रोधसे, दिन में सौने से, मगसे, मलमूत्रादि घेगों के रोकने से आम से, चोट खाने से, भोजन न करने से, मगमें आघात होनेसे, हाथी, ऊंट और घोड़े पर चढ़कर शीघ्र गमन करने से वा हाथी घोडा आदि के ऊ-

पर से गिर पडने से देह के स्रोत खाली होजाते हैं और इस अवकाश को पाकर वायु प्रबल होकर उनमें भरजाती है और सर्वांग संश्रित वा एकांत संश्रित अनेक प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न करदेती है ॥

वायु के रूपादि ।

अन्यक्तलक्षणंतेपांपूर्वरूपमितिस्मृतम् ॥
आत्मरूपंतुतद्रचक्तमपायोलघुतापुनः ।

अर्थ—वायुका अप्रकट लक्षण उसका पूर्वरूप है व्यक्त लक्षण उसकारूप है और वायुका लघु होजाना उसका नाश है (क्योंकि वायु सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती है, प्रकुपित का लघु होजानाही अपाय है)

व्यक्त वायु के लक्षण ।

सङ्कोचःपर्वणांस्तम्भोभंगोऽस्थनांपर्वणाम-
पि ॥ लोमहर्षःप्रलापश्चपाणिपृष्ठशिरो-
ग्रहः । स्वाब्ज्यपांगुल्यकुञ्जत्वंशोपोऽङ्ग-
नामनिद्रता ॥ गर्भशुक्ररजोनाशःस्पन्दनं
गात्रस्रुप्तता । शिरोनासाक्षिजत्रूणांघ्रीवा
याश्चावहुंडनम् ॥ भेदस्तोदातिराक्षेपमो
हक्षायसएवचा एचंविधानिरूपाणिकरो-
त्तिकुपितोऽनिलः ॥ हेतुस्थानविशेषाच्च
भवेद्रोगविशेषकृत् ।

अर्थ—जोड़ों का सुकडना और जकड जाना, हड्डी और पोरुओं में भंग होना, रो-
मोद्गम, प्रलाप, पाणिग्रह, पृष्ठग्रह, और शि-
रोग्रह, खंजता, पांगलापन, कुञ्जपन, अ-
गशोप, निद्रानाश, गर्भनाश, वीर्यनाश, मा-
र्चवनाश, अंगों का फडकना, देह का शून्य पडजना, सिर नासिका आंख और घ्रीवा

का विकृत होजाना, भेद, तोद, यातना आ-
क्षेपण, मोह और आयास तथा ऐसेही अ-
न्यरूप वायु के कुपित होने से होते हैं ।
तथा हेतु भेद और स्थान भेद से इन रोगों
में विशेषता होती है ॥

कोष्ठाश्रित वायु के कर्म ।

तत्रकोष्ठाश्रितेदुष्टेनिग्रहेमूत्रवर्चसोः ॥

ग्रह्महृद्रोगगल्मार्शःपार्श्वशूलंचमारुते ।

अर्थ—कोष्ठाश्रित वायुके कुपित होने पर
मलमूत्रका निग्रह, व्रज, हृद्रोग, गुल्म, अर्श
और पार्श्वशूल होताहै ॥

सर्वाङ्गत वायु के कर्म ॥

सर्वाङ्गकुपितेवातेगात्रस्फुरणभञ्जनम् ॥

वेदनाभिःपरीतस्यस्फुटन्तीवास्यसन्धयः ।

अर्थ—वायुके सर्वाङ्ग में कुपित होनेपर
शरीर में वेदना और स्फुरण होता है वेदना
के कारण देह के जोड़ फटतेस मलूम होने
लगते हैं ॥

गुदस्थ वायु के कर्म ॥

विण्मूत्रवातग्रहणशूलाध्मानाश्मशर्कराः ।

जंघोरुत्रिकपातृपृष्ठरोगशोपागुदस्थिते ।

अर्थ—वायुके गुदामें स्थित होने पर
मलमूत्र और अधोवायु रुकजाते हैं, शूल,
अफरा, पथरी और शर्करा ये उपद्रव उत्प-
न्न हो आतेहैं जंघा, ऊरु, त्रिक, पांव और
पांठमें वेदना और शोष्ये भी उत्पन्न होतेहैं

आमाशयस्थवायुकेकर्म ।

दृशाभिपाद्वेदरुक्कृष्णोद्गारविमूचि
काः ॥ कासःकण्ठास्पशोपश्चश्वासश्चा
माशयस्थिते ।

अर्थ—वायुके अमाशयमें स्थित होने
पर हृदय, नाभि, पसली और उदरमें वे-
दना होताहै, तृषा, डकार विमूचिका,
खांसी, कंठशोष, मुखशोष और श्वास ये
उपद्रव भी होतेहैं ।

पकाशयस्थवायु के कर्म ।

पकाशयस्थोऽन्त्रकृजंशूलाटोपीकरोतिचा
कृच्छ्रमूत्रपुरीपत्वमानाहंत्रिकवेदनम् ॥

श्रोत्रादिष्विन्द्रियबंधकृट्यादुष्टसमीरणः ।

अर्थ—वायु के पकाशय में स्थित होने
पर आंतोंका कृजना, शूल, आटोप, मलमूत्र
का कठिनता से होना, आनाह, त्रिकस्थान
में वेदना श्रोत्रादि इन्द्रियोंकी शक्ति का नष्ट
होना ये लक्षण होते हैं ।

त्वमूक्षास्फुटितासुप्ताकृशाकुष्णाचतुद्यते ।

आतन्यतेसदाहश्चपयैरुक्त्वकास्थितेऽनिले

अर्थ—वायु के त्वचामें स्थित होने पर
त्वचा में रुखापन, फटना, मुत्ति, कृशता,
कालापन तथा मूर्चाबेध के समान पीडा ये
लक्षण होतेहैं । त्वचा फैलीसी होजाताहै उस
में दाह होताहै और पोरों में वेदनाभीहोताहै

रक्तगतवायु के कर्म ।

रुजस्तीवाःससन्तापवैवर्ण्यकृशताऽरुचिः

गात्रेचारुपिभुक्तस्यस्तम्भश्चासृगतेऽनिले

अर्थ—वायु के रधिरं में कुपित होने से
तीव्रवेदना, संताप, विवर्णता, कृशता, अरु-
चि, देहमें फुन्तियां और भोजन करने के
पीछे शरीर में स्तब्धता ये लक्षण होते हैं ॥

मांसमेदोगतवायुकेकर्म ।

गुर्वद्रंतुद्यतेस्तब्धदण्डमुष्टिहंतयथा ॥ सरु-
क्षसितमत्यर्थमांसमेदोगतेऽनिले ।

अर्थ—मांस और मेद में वायु के कुपित होने से शरीर में भारापन, तोद, स्तब्धता, लाठी वा मुक्कोंकी चोट के समान वेदना तथा अत्यन्त वेदना और श्रम मालूम होता है।

मज्जास्थिगतवायुके कर्म ॥

भेदोऽस्थिपर्यणांसन्धिशूलमांसबलक्षयः।
अस्वप्नःसन्ततारूचमज्जास्थिकुपितेनिले

अर्थ—मज्जा और अस्थि में वायुके कुपित होने पर अस्थि और संधियों में भेद संधिशूल, मांस और बलकी क्षीणता, निद्रा नाश और निरन्तर वेदना ये लक्षण होते हैं

शुक्रस्थवायु के लक्षण ॥

क्षिप्रमुञ्चतिवध्नातिशुक्रगर्भमथापिवा ॥
विकृतिजनयेच्चापिशुक्रस्थःकुपितोऽनिलः

अर्थ—शुक्रस्थ कुपितवायु धीर्य या गर्भ का शीघ्रही मोक्षण कर देती है वा उन्हें बद्ध कर देती है अथवा धीर्य और गर्भ दोनों में विकृति उत्पन्न करती है ॥

स्नायुगत वायुके कर्म ॥

बाह्याभ्यन्तरमायामखल्लिकुञ्जत्वमेवच॥
सर्वाङ्गैकांगरोगाश्चकुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः

अर्थ—स्नायुगतवायु बाह्यायाम, अभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुवडापन उत्पन्न करती है और इसी से सर्वाङ्गघात वा पक्षाघात उत्पन्न होते हैं ।

शिरागतवायुके कर्म ॥

शरीरमन्दरूक्षशोफंशुष्यतिस्पन्दतेऽपिवा॥
सुप्तास्तन्योमहत्योवाशिरावातेशिरागते

अर्थ—शिरागत वायु के कुपित होने पर शरीर में मन्द वेदना सूजन शोष,

स्पन्दन होता है तथा सम्पूर्ण शिराओं में सुप्तता, पतलापन वा दीर्घता होती है ॥

सांघिगत वायु के कर्म ॥

वातपूर्णवृत्तिस्पर्शःशोफःसन्धिगतेऽनिले॥
प्रसारणाकुञ्चनयोस्प्रवृत्तिःसवेदना ।

अर्थ—सांघिगत वायु के कुपित होनेपर हवा से भरी हुई मशकके समान स्पर्शवाली सूजन होती है, सन्धियों का प्रसारना वा सकोडना बन्द होजाता है और वेदना भी होने लगती है ।

अर्दागगत वायु के कर्म ।

अतिवृद्धःशरीरार्धमेकंवायुःप्रपद्यते॥यदा
तदोपशोप्यासृग्वाहुपादं चजानुच । त-
स्मिन्सङ्कोचयत्यर्देमुखंजिह्वं करोतिच ॥
बर्त्नीकरोतिनासाग्रंललाटासिहनुन्तथा ।
ततोवक्त्रंग्रजत्यस्यभोजनं वक्रदर्शिनः ॥
स्तब्धेनैत्रं कथयतःक्षबधुश्चनिशृण्वते । दी-
नाजिह्वासमुत्क्षिप्ताजिह्वासञ्जतिचास्य
धाक् ॥ दन्ताश्चलन्तिचाध्येतेश्रवणौभि-
द्यतेस्वरः । पार्श्वहस्ताक्षिजंघोरुंशंखश्रव
णगण्डरूक् ॥ अर्धेतस्मिन्मुखाधंवाकेवा
लेस्यात्तदार्दितम् ।

अर्थ—जब वायु अस्यन्त कुपित होकर शरीर के दक्षिण वा वाम अर्द्धभाग का आश्रय करती है तब उसी ओरके रुधिर, वाह्य, पांव और जानु को शुष्क कर देती है और फिर वही भाग संकुचित होजाता है तथा उसी ओर का आधामुख टेढा पड़ जाताहै । तथा नासिका का अग्रभाग, ललाट, आंख और ठोड़ी भी टेढी पड़जाती

है । और इस रोगी के मुख में भोजन भी टूटा कर के प्रवेश करता है । घात कहने के समय नेत्र पधरा जाते हैं । छींक रुक जाती है, जिह्वा दीन, टेढ़ी होकर बाहर निकल आती है, घाणी रुकजाती है, दांत चालित होजाते हैं, कान बहरे होजाते हैं, स्वर क्षीण पड़जाता है, पसली, हाथ, आंख जंघा, ऊरू, कनपटी, कान और गंडस्थल में वेदना होती है । यह रोग आधे अंग में होता है वा केवल आधे मुखहीमें होता है । इसे अर्धितरोग कहते हैं ।

मन्याश्रित वायु के लक्षण ।

मन्येसंश्रित्यवातोऽन्तर्यदानाडीःप्रपद्यते ॥
मन्यास्तम्भतदाकुर्यादन्तरायामसंज्ञितम् ॥

अर्थ—जब वायु मन्या अर्थात् गले के भीतरकी नसों पर आक्रमण करती है तब अन्तरायाम नामक मन्यास्तम्भ उत्पन्नहोता है

अन्तरायामके लक्षण ।

अन्तरायस्पतेग्रीवामन्याचस्तभ्यतेभृशम् ॥
दन्तानादशनंलालापृष्ठाक्षेपःशिरोग्रहः ॥
जृम्भावदनरांगाश्चाप्यन्तरायामलक्षणम् ॥

अर्थ—जब ग्रीवाके भीतर अन्तरायाम होता है तब मन्या अत्यन्त स्तब्ध होजाती है । दंतदशन, लालालाव, पृष्ठाक्षेप और शिरोग्रह होता है तथा जंभाई और मुख में स्तब्धता गा होती है ये अन्तरायाम के लक्षण हैं ॥

पृष्ठमन्याश्रित वायु के लक्षण ।

पृष्ठमन्याश्रितावाह्लाःशोषयित्वाशिरावलीः
श्रिताःकुर्याद्विनुस्तम्भंवाहिरायामसंज्ञकम् ।

अर्थ...वायु पीठ और मन्याका आश्रय लेकर बाहरकी नसों को मुखाकर धनुस्तम्भ नामक बहिरायाम रोगको उत्पन्न करती है ॥

बहिरायाम के लक्षण ।

चापवन्नाम्यमानस्यपृष्ठतोद्गीयतेशिरः ।
उरुत्क्षिप्यतेमन्यास्तब्धाग्रीवाचमृद्यते ॥
दन्तानादशनंजृम्भालालाथावचवाग्रहः
जातवेगोनिहन्त्येपैककल्यंवाप्रयच्छति ॥

अर्थ—इस रोगमें शरीर पीठकी ओर से धनुषकी तरह झुक जाता है । सिरटेढ़ा पड़जाता है । वक्षःस्थल ऊंचा होजाता है, मन्यास्तब्ध होजाती है, ग्रीवा मृदित होती है, दांत एक दूसरे से लगजाते हैं, जंभाई छालाखाव; वाग्रह होता है । यह रोग अत्यन्त उग्र होने पर मारडालता है वा अत्यन्त विकलता उत्पन्न करता है ।

हनुग्रहके लक्षण ।

हन्वायासोस्थितोवायुर्वन्धात्संसयतेहन्
म् ॥ विवृतास्यत्वमधवाकुर्यात्स्तब्धमवे-
पनम् ॥ हनुग्रहञ्चसंस्तम्भ्यहन्संबृतव-
वन्नताम् । हनुमूलेस्थितोवायुःकरोतिवहु

कष्टदम् ॥

अर्थ—ठोड़ी के आयाससे उठीहुई वायु कुपित होकर हनुवन्धों को ढीलाकर देती है, इससे मुंह खुला रहजाता है वा कम्पन रहित स्तब्ध होजाता है । हनुके मूलमें स्थितवायु हनुको स्ताम्भित करके अत्यन्त कष्ट कारक हनुग्रह वा संबृतवन्नता (जिसमें मुखबन्द रहजाता है) उत्पन्न करती है ।

आक्षेपक के लक्षण ।

गृहुराक्षिपतिकुदोगात्राण्याक्षेपकोऽनिलः।

पाणिपादश्चसंशोष्यशिराःसस्नायुक-
ण्डराः ॥

अर्थ—जिसमें रोगी कुद्व होकर अंगोंको धारम्भार फेंकता है और हाथ, पांव, शिरा, स्नायु और कण्डरा झुक्कहो जाती हैं उसे आक्षेपक वायु कहते हैं ॥

दण्डापतानक के लक्षण ॥

पाणिपादाशिरःपृष्ठश्रोणीःस्तम्भान्तिमारु-
तः ॥ दण्डवत्स्तब्धगात्रस्यदण्डकःसोऽ
नुपक्रमः ।

अर्थ—जिस रोग में लकड़ी के समान हाथ, पांव सिर, पीठ और श्रोणी अकड जाती हैं उसे दण्डक कहते हैं । यह रोग दुर्धकित्स्य होता है ॥

अर्दितरोग के लक्षण ॥

स्वस्थःस्यादर्दिताद्यानांमुहुर्वेगगतेगते ॥
पीड्यतेपीडनैस्तैर्भिपगेतान्निवर्जयेत् ।

अर्थ—अर्दितादि वातरोगों के वेगके शान्त होनेपर रोगी स्वस्थ होजाय और वेगके आने पर वेदना होने लगे ऐसा रोगी त्याज्य होता है ।

पक्षाघातके लक्षण ॥

हृत्वेकमारुतःपक्षदक्षिणंचाममेवच । कु-
र्याच्चेष्टानिर्घृत्तिहिरुजंवाग्भङ्गमेवच ॥
गृहीत्वावाशरीरार्द्धशिराःस्नायुंविशोष्य-
च । पादंसङ्कोचयत्येकहस्तंवातोदशूल-
नुत् ॥ एकाङ्गरोगंतविद्यात्सर्वाङ्गसर्वदेह
जम् ।

अर्थ—वायु कुपित होकर दाहिने वां बायें किसी अंग को मारकर क्रियाहीन कर देती है इससे देह में बड़ी वेदना होती है और बाणी रुकजाती है । अथवा शरीर के अर्द्ध भागपर आक्रमण करके शिरा और स्नायुको सुखा देती है यदि ऊपरके भाग पर आक्रमण करती है तो हाथको संकुचित करती है और यदि नीचेके भागपर आक्रमण करती है तो एक पांवको मार देती है । इसमें सूचीवेध के समान अत्यन्त वेदना और शूल होता है । इसे एकांगरोग वा पक्षाघात कहते हैं और सम्पूर्ण देह में व्याप्त रोग को सर्वांगघात कहते हैं ॥

गृध्रसीके लक्षण ॥

स्फिङ्गुर्दाकटिपृष्ठोरुजानुगंधापदंक्रमात्
गृध्रसीःस्तम्भरुक्तोदैर्गृहणातिस्तम्भतेमुहुः
वाताद्वातकफाचन्द्रागौरचारोचकान्वितः

अर्थ—गृध्रसी रोगमें वायु प्रथम नितम्ब स्थान पर आक्रमण करके क्रम से कटि, पीठ ऊरु जानु, जंघा और पांव पर आक्रमण करती है इन स्थानों में स्तम्भता, वेदना और तोद होता है । यह रोग केवल वातसे वा वातकफसे उत्पन्न होता है । इस में तन्द्रागौरव और अरुचि होती है ॥

खल्लीकालक्षण ।

खल्लीतुपादजंघोरुकरमूलावमोटनी ।

अर्थ—जिसरोग से पांव, जंघा, ऊरु, और करमूल में अवमोटन होता है उसे खल्लीरोग कहते हैं ॥

स्यानानामनुरूपश्चलिङ्गैःशेषान्विनिर्दि-

शेत ॥ सर्वेष्वेतेषुसंसर्गपित्ताद्यैरुपलक्ष
येत् । वायुधातुक्षयात्कफोपोगस्यावर
णेनच ॥

अर्थ—दोष वात रोगोंके नाम उनके
स्थान और लक्षणों के अनुसार जाने जाते
हैं । इन सब वातरोगों में कफपित्त का
संसर्ग होता है ॥

धातु के क्षीण होने से अथवा मार्गों के
आवरणसे वायु कुपित्त होती है ॥

वातपित्तकफादेहेसर्वस्रोतोऽनुसारिणः ।
वायुरेवाहिसूक्ष्मत्वाद्वायोस्तत्राप्युदीरणः ॥
कुपितस्तौसमुज्ज्वयतत्रत्राक्षिपन्नगदान् ।
करोत्यावृतमार्गत्वाद्द्रसादींश्चोपशोप-
यन् ॥

अर्थ....वात, पित्त और कफ ये तीनों
दोष देह के सम्पूर्ण स्रोतों में जाते हैं ।

परन्तु वायु अत्यन्त सूक्ष्मताके कारण दि-
खाई नहीं पड़ती है और वह कफ और
पित्तको उदारण करदेतीहै । कुपित हुई वायु
कफपित्तको उत्तेजित करके श्रोत मार्गों में
लेजाकर मार्गोंको रोक देतीहै और रसों
को सुखादेती है ॥

पित्तावृत वायुमार्ग के लक्षण ॥

लिंगंपित्तावृतेदाहस्त्वृणाशूलभ्रमस्तमः ॥
कट्वम्ललवणोष्णैश्चविदाहःशीतका-
मिता ॥

अर्थ—पित्तद्वारा वायुका अवरोध होने
से दाह, शूल, भ्रम और क्लान्ति होती
है । तथा कटु, अम्ल, लवण और उष्ण
पदार्थों के सेवन से विदाह होताहै और शी-
त वस्तुओं पर इच्छा होती है ॥

कफावृत वायुमार्ग के लक्षण ॥

शीतगौरवशूलानिकटावपुपशयोऽधिकम् ।
लघनायासरूक्षोष्णकामिताचकफावृते ॥

अर्थ—कफवाही स्रोतों में वायु कफ से
अवरुद्ध होकर शीत, भारापन, शूल कट्वा-
दि द्रव्यों के सेवनसे अत्यन्त उपशय उ-
त्पन्न करती है लघन, परिश्रम तथा उष्ण
द्रव्योंपर इच्छा भी उत्पन्न होती है ॥

रक्तावृत वायुके लक्षण ॥

रक्तावृतेसदाहार्तिस्वर्ध्वासान्तरजोभृशम्
भवेत्सरागःश्वयधुःजायन्तेमण्डलानिच ॥

अर्थ—रक्तवाही स्रोतों में रक्तद्वारा वायु
के रुकनेपर दाह, यातना, त्वचा और मांस
के बीच में अत्यन्त दारुण रक्तवर्ण युक्त सू-
जन और चकत्ते उत्पन्न होते हैं ॥

मांसावृतवायुके लक्षण ।

कठिनाश्चविवर्णाश्चपिडकाःश्वयधुस्तथा ।
हर्षःपिपीलिकानांचसञ्चारइवमांसगे ॥

अर्थ—मांसवाही स्रोतोंमें मांसद्वारा वायु
के रुद्ध होनेपर कठोर विवर्ण कुन्तियाँ और
सूजन उत्पन्न होतीहै तथा चींटी चलने
के समान देहमें सुरसुराहट होती है ॥

मेदसावृत वायुके लक्षण ।

चलःस्निग्धोमृदुःशीतःशोफोऽङ्गेष्वरुचि-
स्तथा । आढ्यवातइतिशेषःसकृच्छ्रोमे-
दसावृतः ॥

अर्थ—मेदोवाही स्रोतोंमें मेदके द्वारा
वायुके रुद्धहोने पर चंचलता, स्निग्धता,
मृदुता, शीतलता, अंगोंमें सूजन और अरु-
चि होती है । इसे आढ्यवात कहते हैं यह

गतवायु, अस्थिगतवायु, ये सब रोग अपने होने के स्थानकी गंभीरता से बहुत प्रयत्न करनेपर साध्य भी होजाते हैं और नहीं भी होते हैं। जो ये रोग बलवान् मनुष्य के नवीन उत्पन्न हुएहों और उपद्रव रहित भी हों तौ उनकी चिकित्सा करना उचितहै

अब हम वातरोगों के नाश करने वाली अत्यन्त अनुभव की हुई चिकित्सा लिखते हैं। उसे सुने ॥

वातरोगमें चिकित्साक्रम ॥

केवलनिरुपस्तम्भमादौस्नेहैरुपाचरेत् ॥
 पायुंसर्पिषसातैलमज्जपानैर्नरंततः । स्ने
 हेकान्तसमाश्वास्यपयोभिःस्नेहयेत्पुनः॥
 यूषैर्प्राग्पाम्बुजानूषैःसैर्वास्त्रेहसंयुतैः ।
 पायसैःकृशैरैरुल्लवणैःसानुवासनैः ॥
 नाबैस्तर्पणैश्चासैःसुस्तिग्धस्वेदयेत्ततः॥
 स्वभ्यक्तस्नेहसंयुक्तैर्नाडीप्रस्तरसंकरैः ॥
 तयान्यैर्विचर्यैःस्वेदैर्यथायोगमुपाचरेत् ।

अर्थ—निरुपस्तंभ अर्थात् पिच्छादि द्रव्य अनाहत वातरोग में प्रथम स्नेहन देवे फिर उसे घृत, घसा, तेल और मज्जाका पान करावे। स्नेहके अत्यन्त सेवन से रोगी के क्लान्त होने पर उसे आश्यासन देकर दुग्ध द्वारा स्नेहन देवे। अथवा स्नेहयुक्त ग्राम्य, जलज और आनूप पशुओं के मांस रस वा स्नेहयुक्त यूष वा पायस, या अम्बु-
 लक्षण युक्त छदारा द्वारा अनुवासन और नस्य देवे तथा अन्नद्वारा तर्पित करे। इस तरह अच्छी रीति से स्निग्ध होने पर शरीर पर स्नेहमर्दन करके स्नेहयुक्त नाडी स्वेद,

प्रस्तरस्वेद, वा संकर स्वेद देवे अथवा जैसा योग हो उसी के अनुसार अन्य स्वेदों द्वारा स्वेदित करे ॥

स्नेहार्द्रैःस्विन्नमद्गन्तुवक्रंस्तब्धमथापिवा
 यथेष्टमानामयितुंगक्यतेशुष्कदारुवत् ॥

हर्षतोदरुगायासशोपस्तम्भोग्रहादयः ॥

स्विन्नस्याशुप्रशाम्यन्तिमार्दवचोपजायते
 स्नेहश्चयातूनसंशुष्कान्पुष्णात्याशुप्रयो

जितः।बलमग्निबलं पुष्टिप्राणचाप्यभिवर्धते
 असकृत्तपुनःस्नेहैःस्वेदैश्चाप्युपपादेयत् ॥

तथास्नेहमृदादेहेनतिष्ठन्त्यनिलामयाः॥

यद्यनेनसदोपत्वात्कर्मणानप्रशाम्याति ॥

मृदाभिःस्नेहसंयुक्तेरोपथेस्तंविशोधयेत् ॥

घृतंतिस्वकसिद्धंवासातलासिद्धमेववा ॥

पायसैरण्डतैलंवापिवेदोपहरंशिवम् ॥

अर्थ—जैसे सूखी लकड़ी पर तेल चुपड़ कर सेकने से इच्छानुकूल उसे नवा सकते हैं, इसी तरह स्नेहार्द्र मनुष्य को स्वेदन करनेके पश्चात् वह चाहे जैसा ध्रुव वा

स्तवध क्यों न हो सीधा कर लिया जा सकता है। स्नेहन करने से वातरोगी के हर्ष, तोद, वेदना, आयास, शोष, स्तम्भ और ग्रहादिरोग शीघ्र शान्त होजातेहैं और देह भी मृदु पड़जाती है। स्नेह का प्रयो-

ग करने से सूखी हुई धातु शीघ्रही पुष्ट हो जाती है वल, अग्निबल, पुष्टि तथा प्राण भी बढ़ते हैं। इन्हीं हेतुओं से स्नेह और स्वेद का प्रयोग बार बार करना चाहिये क्योंकि स्नेह से मृदु हुई देह में वातरोग नहीं ठहर सकते हैं। दोषों की अधिकता

के कारण यदि इस कर्म से वातरोग शान्त न हो तो स्नेह संयुक्त मृदु औषधियों द्वारा विरेचन देवै । छोध वा सातला में सिद्ध किया हुआ घी देकर विरेचन करावै अथवा दूध में अंडी का तेल मिलाकर विरेचन देवै यह दोष नाशक और उत्तम होता है ।
स्निग्धाम्ललवणोष्णाश्चैराहारैर्हिमलश्चित्तः । स्रोतोवृद्धानिलंश्न्योत्तस्मात्तप्तमुल्लोमयेत् ॥ दुर्बलोपोविरेच्यःस्यात्तनिरुहैरुपाचरेत् । पाचनैर्दीपनीयैर्वाभौज्यैर्वातयुतंनरम् । शुद्धस्यचोत्थितेचाग्नी स्नहंस्वदौपुनर्हितौ । स्वाद्मल्लवणस्निग्धैराहारैःसततंपुनः । नाचनैर्धूमपानश्च सर्वानेवोपपादयेत् ॥

अर्थ—स्निग्ध, अम्ल, लवण और उष्णादि पदार्थों के अत्यन्त सेवन से दोष बढकर स्रोतों में बद्ध वात को रोकदेते हैं इस लिये वायु का अनुलोमन करावै । जो विरेचन देने पर दुर्बल होजाय उसे निरुहण यस्तिदेवै । अथवा पाचनकर्त्ता वा दीपनकर्त्ता औषध देवै । संशोधन देनेके पश्चात् यदि अग्नि उटखडी होवै तो फिर स्नेहन स्वेदन देवै । सम्पूर्ण प्रकार के वातरोगों में स्वाद् अम्ल, लवण और स्निग्ध आहार निरन्तर देवै तथा नस्यकर्म और धूमपान का भी प्रयोग करे ॥

विशेषतस्तुकोष्ठस्यवातेक्षारंपिबेज्रः ॥
पाचनैर्दीपनीयैस्तैश्चैर्वापाचयेन्मलान् ॥
शुद्धपकाशयस्येतुकर्पोदावर्तनुद्धितम् ॥
माशयस्येशुद्धस्ययथादोषहराः क्रियाः ॥

सर्वाङ्कुपितेऽभ्यङ्गोवसनयःसानुवासनाः ।
स्विदाभ्यंगानिवातानिहृद्यंचाक्षत्वगाग्नि-
तेः ॥ शीतालेपस्तुरक्तस्येविरैकोरक्तमाक्षण-
म् ॥ विरेकोपासंभेदःस्थेनिरुहाः वमनानिच-
वाह्याभ्यन्तरतःस्नेहरैस्थिमज्जगतंजयेत्-
हृषोऽन्पानंशुक्रस्येवशुक्रकरंरहितम् ॥
त्रिवृद्धमार्गदृष्ट्वावाशुक्रदद्याद्विरेचनम् ॥
विरिक्तपतिभुक्तस्यपूर्वोक्तांकारयेत्क्रियाम्-
गर्भेशुष्केतुवातेनवालानांचापिशुष्यताम् ॥
सिताकाश्मर्यमधुकैर्हितमुत्पापनंपयः ॥

अर्थ—अब विशेष चिकित्सा का वर्णन करते हैं । कोष्ठस्थ वात में विशेष कर के क्षार का पान हित है तथा पाचक और अग्निसंदीपन अन्न का प्रयोग कर के मूत्र को पचावै । गुदस्थ वा पक्वाशयस्थ वात में उदावर्त्तनाशिनो क्रिया हित है । आमाशयस्थ वात में संशोधन देने के पश्चात् यथा दोष चिकित्सा करना उचित है । सर्वांग कुपित वायु में अभ्यंग और अनुवासन अस्तियों का प्रयोग करे स्वगात्रित वायु में स्वेद, अभ्यंग, निद्रास्थान सेवन और हृदय त्रिय अन्न हित है ॥ रक्तस्थवात में शीतल प्रलेप, विरेचन और रक्तमाक्षण करना उचित है । मांसस्थ और मेदःस्थवात में विरेचन, निरुहणयस्ति और वमन का प्रयोग करे । अश्विगत और गजगात वायुमें वाह्य और आम्प्यतर स्नेह का प्रयोग करे । शुक्रस्थ वातमें हृष तथा वृद्ध और कीर्त यथायोग्य अन्न हित है । यदि शुक्र वात मार्ग शुक्रगया होतो प्रथम विरेचन देवै और विरेचन के

क्षिराम्बुनाततःसिक्तं पुनश्चैवोपनाहितम् ॥ मुञ्चेद्रात्रौ दिवा वद्ध चर्मभिश्च सुलोमभिः ।

अर्थ—...उत्कारिका, वेशवार, दूध, उरद, चांवल, अंडीके बीज, गेहूं, जौ, बेर, शालिपर्ण्यादि पंचमूल इन सब को पीसकर स्नेह मिलाकर शरीर पर गाढ़ा गाढ़ा लेप करे । रात्रिके समय इस लेप पर अंडीके पत्ते बांध देवें और दूसरे दिन प्रातःकाल खोल डालें और दूध तथा जल से उसे धोकर फिर लेप करें इस दिन के लेप पर रोमयुक्त चमड़ा बांध देवें । इस लेपको सायंकाल के समय दूर कर देवें ॥

फालनात्तैलयोनीनामम्लापिष्टानशीतलान् ॥ मदेहानुपनाहांश्चगन्धैर्वातहरैरपि । पायसैः कृशरैश्चैव कारयेत्स्नेहसंयुतैः रुक्षशुद्धानिलार्तानामतः स्नेहान्प्रवक्ष्यते । विविधान्विविध्व्याधिप्रशमायामृतोपमान् ॥

अर्थ—सरसों से आदि लेकर द्रव्यों को जिनसे तेल निकलता है पीसकर गरम करके लेप और उपनाह बनावें। तथा घात नाशक गंधद्रव्य, पायस और कृशरा इन को घृत के साथ सिद्ध करके लेप और उपनाहन करे ।

अब हम रुक्ष और शुद्ध घातरोगियों के निमित्त अनेक प्रकारकी व्याधियों को शांत करने वाले अनेक प्रकार के अमृत के समान गुणकारक स्नेहों का वर्णन करते हैं। द्रोणेऽम्भसःपचेद्भागान्दशमूलांश्चतुष्प

लान् । यवकोलकुलत्थानां भागैः प्रस्थोन्मितैः सह ॥ पादशेपेरसेपिष्टैर्जीवनीयैः सशर्करैः । तथा खर्जूरकाशमर्यद्राक्षावदेर फल्गुभिः ॥ सक्षीरः सर्पिषः प्रस्थः सिद्धः केवलवातनुत् । निरत्ययः प्रयोक्तव्यः पानाम्भ्यञ्जनवस्तिषु ॥

अर्थ—दशमूलके प्रत्येक द्रव्य चारचार पल, जौ एक प्रस्थ, कुलधी एक प्रस्थ, बेर एक प्रस्थ इन सबको एकद्रोण जलमें पकावै चौथाई शेष रहने पर उत्तार कर छानलेवें फिर जीवनीय गणके दश द्रव्य, शर्करा, खर्जूर, खंभारी, दाख, बंर और गूलर सब मिलाकर एकसेर, दूध एक प्रस्थ, घी एक प्रस्थ इन सबको उस काथ में डालकर पकावै । यह घृत पान, अभ्यंग और वस्तिद्वारा प्रयोग किया जाता है और वातरोगको जड़ से दूर कर देता है ।

चित्रकादि घृत ।

चित्रकनागरं रास्नां पीप्परं पिप्पलीं शटींश्च पिष्ट्वा विपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरं परम् ॥

अर्थ—चीता, सोंठ, रास्ना, पुहकरमूल पीपल, कषूर इन सबको पीसकर घृत पकावै यह घृत वातरोगको नाश करनेवाला है बलाबिल्वशृतेक्षीरे घृतपण्डविपाचयेत् । तस्य शक्तिः प्रकुञ्चोर्वा नस्य मूर्ध्वगतेऽनिले

अर्थ—खोटी और बेलछाल डाल कर अठगुने दूध और चौगुने जलमें पकावै जब दूध शेष रहजाय तब उत्तार कर छानले और उस दूधमें घृतमंड पकावै । इस घृत में चार या आठ तोलेको नस्यद्वारा प्रयोग करने पर शिरोगत वात दूर होजाता है ॥

प्राम्यान्पौदकानान्तुभित्वास्थीनिपचेज्ज
 लांतस्नेहं दशमूलस्य कपायेण पुनः पचेत् ॥
 जीवकपर्पभास्फोताविदारीकापिकच्छुना
 वातघ्नैदीपनीयैश्च कल्कैर्द्विक्षीरभागिकम्
 तत्सिद्धं नावनाभ्यङ्गाचयापानानुवासनात्
 शिरापर्थास्थिकोष्ठस्थं प्रशुदत्याशुमारुतम्
 येस्युः प्रक्षीणमज्जानः क्षीणशुक्रौजसश्च ये
 बलपुष्टिंकरंतेपामेतस्स्यादमृतोपमम् ॥

अर्थ—प्राम्य, आनूप और औदक जीवों
 की हड्डियां कुटकर जल में पकावै - पक-
 ने पर इसे उतार ले और धरा रहने देवै
 इस जलके ऊपर धिकनी २ मलाई सी
 जमजाती है उसे उतार कर उसमें दुगुना
 दूध चौगुना दसमूल का काथ तथा चौथाई
 घातनाशक और जीवनीय द्रव्य यथा जीवक
 ऋषभक, आस्फोता, विदारी और केंच
 इनका कल्क । इन सबको मिला कर पका-
 वै । इस घृतका नस्य, अम्यंग, पान और
 अनुवासन द्वारा प्रयोग करै । जिन मनुष्यों
 की मज्जा, शुक्र और ओज क्षीण होगये
 हैं उनकी पुष्टाई तथा बल बढ़ानेके निमित्त
 यह घृत अमृतके समान गुण कारक है ॥

तद्वत्सिद्धावसानक्रमस्य कर्मचुल्लूकजाः।
 प्रत्यगाविधिनानेन नस्यपानेषु शस्यते ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिसेही मगर,
 मछली, कलुआ और सूसकी चर्बी को प-
 काकर नस्य और पीनेमें प्रयोग करने से
 तद्वत् गुणकारक होता है ।
 प्रस्यः स्यात्त्रिफलायास्तुकुलत्थकुडवद्वयम्
 कृष्णागन्धात्स्वादादकयोः पृथक्पञ्चपलं भवे

त् । रास्नाचित्रकयोर्द्वेदशमूलं पलोम्मितम्
 जलद्रोणेपचेत्पादशेषेप्रस्थोन्मितं पृथक् ॥
 सुरारनालदध्यम्लसौवीरकतुषोदकम् ॥
 कोलदाडिमृक्षाम्लरसांस्तैलं वसांघृतम् ॥
 मज्जानञ्चपयश्चैवजीवनीयपलानिषट् ॥
 कल्कीकृत्यमहास्नेहं सम्यगेन विपाचयेत् ॥
 शिरामज्जास्थिगेवाते सर्वाङ्गैकांगरोगिषु ॥
 वेपनाक्षेपशूलेपुतद्भ्यङ्गेभयोजयेत् ॥

अर्थ—त्रिफला एक प्रस्थ, कुलधी दो
 कुडव, संहजनेकी छाल पांच पल, अड़हर
 की छाल पांच पल, रास्ना दोपल, चीतादो
 पल, दशमूलके प्रत्येक द्रव्य एक एक पल
 इन सबको जो कुटकरके एक द्रोण जलमें
 पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर
 छानले, उस काथमें सुरा, फांजी, दही,
 खटाई, सौवीरक. तुषोदक, धेरंकारस, अ-
 नारकारस, वृक्षाम्लकारस, तेल, चर्बी, घी,
 मज्जा और दूध पृथक् पृथक् एक एक
 प्रस्थ जीवनीय गणका कल्क छः पल ।
 इनसबको पकावै । यह महास्नेह शिरोगत,
 मज्जागत, अस्थिगत, सर्वांगगत, एकांगगत,
 कम्पन, आक्षेपण और शूल इन रोगों में
 अम्यंग द्वारा प्रयोग किया जाता है ।

निर्गुंडी तैल ॥

निर्गुण्ड्यामूलपत्राभ्यां गृहीत्यास्वरसंततः ॥
 तेन सिद्धं समं तैलं नादीकुष्ठानिलाक्षिपु ।
 हितंपामापचीनांचपानाभ्यञ्जनपूरणम् ॥
 अर्थ—निर्गुंडीकी जड़ और पत्रोंका रस
 निकालकर, उसके समान तेल निकालकर
 पकावै । इस तेल का अम्यंग और पान

अमृतादि तैल ॥

तुलाःपञ्चगुह्युच्यन्तेस्तुद्रोणेष्वष्टास्वपांपचे
त् । पादशोषेसमंक्षीरतैलस्यद्वयाढकंपचे
त् । एलाभांसीनतोशीरशारिवाकुष्ठचन्द
नैः । बलातामलकीमेदाशतपुष्पादिजी
वकैः ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीश्रावण्य
तिबलानखैः । महाश्रावणिजीवन्तीवि
दारीकपिकच्छभिः ॥ शतावरीमहामेदा
फर्कटाख्याहरेणुभिः । वचागोक्षुरकैर
ण्डरास्नाकालासहाचरैः ॥ बीराश्लुकि
मुस्तत्वकूपप्रर्षभकवालकैः । महैलाकुंठु
मस्पृकात्रिदशाह्वैचकार्पिकैः ॥ मञ्जिष्ठा
यात्रिकपेणमधुकाष्टपलेनच । कल्कैस्त
स्त्रीणवीर्याग्निबलसंमूढचेतसः ॥ उन्मा
दारत्यपस्मारैरार्तश्चकृत्तिनयेत् । वात
व्याधिहरंश्रेष्ठतैलाग्न्यमृताहयम् ॥
अर्थ—गिलोय पांच तुलाको आठद्रोण
जलमें पकावै, चौथाई शेष रहने पर उ-
तारकर छानले । तब उस शेष क्वाथ के
समान दूध, दो आढक तेल और नीचे
लिखे हुए द्रव्योंका कल्क डालदेवै । यथा
छोटी इलायची, जटामांसी, तगर, खस,
शारिवा, कूट, चन्दन, खैरटी, भूआंवला,
मेद, सोंफ, श्रद्धि, जीवक, काकोली, क्षी-
र काकोली, श्रावणी, अतिवला, नखी, महाश्रा-
वणी, जीवन्ती, विदारीकन्द, केच, सिता-
धर, महामेदा, काकडासीगी, हरेणु, वच,
गोखरू, अरण्ड, रास्ना, असगन्ध, सहचर,
वीरा, शल्लकी, मोथा, दाडचीनी, तेजपात
प्रपभक, नेत्रवाला, वटी इलायची, कुंजुम

स्पृष्टा, देवदारु ये सद्य द्रव्य एक एक कर्ष
लेवै । मजीठ तनिकर्ष, मुलहठी आठपल
इम सबका कल्क डाल देवै । इस तेल के
सेवन करने से र्थीय की क्षीणता, अग्नि-
बल, मूढचित्तता, उन्माद, अरति, अपस्मार
ये दूर होकर मनुष्य अपनी प्रकृति पर आ-
जाता है यह तेल वात व्याधियोंको दूर करने
में अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥

रास्नातैल ॥

रास्नासहस्रानिगुहैतलद्रोणाविपाचयेत् ।

गन्धैर्हैमवर्तःपिष्टैरैलान्तैश्चानिलार्तिजुत् ॥

अर्थ.... एक सहस्र पल रास्ना को अठ-
गुने जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर
उतारकर छानले इसमें पूर्वोक्त एलादि चूर्ण
और एकद्रोण तेल डालकर पकावै । पकने
पर उतारकर शफेद बचका चूरा घुसके दे ।
यह तैल वातरोग को दूर करने वाला है ॥
कल्पोऽयमष्टगन्धार्यामसारण्यां बलाह्वये ।
क्वाथकल्कपयोभिर्वा बलादीनांपचेत्पृ-
पक् ।

अर्थ—असगन्ध, प्रसारिणी, दोनोंबला
इनका तेल भी ऊपर कही हुई रीति से त-
यार कियाजाया है । अथवा बलादि के पृ-
थक् २ क्वाथ, कल्क, और दूध के साथ
तेल पकाकर प्रयुक्तकरे ॥

मूलकादितैल ॥

मूलकस्वरसंक्षीरतैलं दध्यम्लकाञ्जिकम् ।

तुल्यां विपाचयेत्कल्कैर्वलाचित्रकसैन्धवैः ॥

पिप्पल्यतिविषाारास्नाचविकागुरुशिशुमूकैः

भल्लातकवचाङ्गुश्वदंष्ट्राविश्वभोजैः ॥

पुष्कराद्दशटीविल्वशताद्द्वानतेदारुभिः ।
 तस्मिन् द्रं पीतमत्पुग्रान्दन्तिवातात्मकान्-
 गदान् ॥

अर्थ—मूलीकारस, दूध, तेल, दही, और कांजी इन सबको समान भाग तथा तेल से चौथाई खरौटी चीता, सेंधानमक, पीपल, अर्तिस, रास्ना, चव्य, अगर, सं-हजना, भिलाया, वच, कूठ, गोखरू, सोंठ, पुहकरमूल, कचूर, बेलछाल, सोंफ, तगर और देवदारु इनका कलक डालकर सबको एक साथ पकावै । इस तेल के पान करने से अत्यन्त उग्र वातरोग भी दूर होजातेहैं ॥

दृपमूलादि तैल ।

दृपमूलगृह्योश्चद्विशतस्यशतस्यच । अ-
 श्वगन्धाचित्रफयोर्वाथेतैलाढकंपचेत् ॥
 सक्षीरंवायुनाभप्रेदद्याज्जर्जरितेतथा ॥
 माक्तंश्राचापसिद्धञ्चस्यादेतद्द्विगुणो-
 चरम् ॥

अर्थ—अडुसाफी जड सौपल, गिलोय-सौपल, असगन्ध सौपल, चीता सौपल इन का बराबरा करके चौथाई शेष रहने पर उसे उतारकर उसमें एक आढक तेल पकावै, इसमें क्वाथके समानही दूधभी मिललिये यह तेल पायु से भग्न अथवा जर्जरित देह में प्रयोग किया जाता है । पूर्वोक्त बलादि कल्क डालकर सिद्ध किया हुआ यह तेल दुगुना गुणदायक होता है ॥

राम्नातैल ।

राम्नाश्रीरीपमप्य्याद्दशुष्ठीसहचरामृताः
 श्योनाकदारुसम्पाकाहयगन्धात्रिकण्ट-

काः ॥ एषां दशपलान्भागान्कृपायमु-
 पकल्पयेत् । ततस्तेनकपायेणसर्वगन्धै-
 श्चकार्षिकैः ॥ दध्यारनालमापाम्बुमूल-
 केशुरसैःशुभैः । पृथक्प्रस्थोन्मितैःसाद्दे-
 तैलप्रस्थविपाचयेत् ॥ छीहमूत्रग्रहश्वास-
 कासमारुतरोगनुत् । एतन्मूलकतैलाग्यं
 वर्णासुर्वलवर्द्धनम् ।

अर्थ—रास्ना, सिरस, मुलहटी, सोंठ, सहचर, गिलोय, श्योनाक, देवदारु, अम-लतास, असगंध, गोखरू इन में से प्रत्येक दस दस पल लेकर क्वाथ करले । और इस क्वाथ में एकर कर्ष सर्व गंधका कल्क तथा दही, कांजी, उदका क्वाथ, मूलीकाक्वाथ, ईखका रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ तथा तेल एक प्रस्थ डालकर पकावै । इस तेल के सेवन करने से छीहा, मूत्रग्रह, श्वास, खांसी, घात रोग दूर होजाते हैं, यह मूलक तेल से भी उत्तम है, इस के सेवन से वर्ण बल और आयु बढ़ती है ॥

यवकोलकुल्लथानामत्स्थानांशिमुविल्व-
 योः ॥ रसेनमूलकानांचर्तलंदधिपयोऽ-
 न्वितम् ॥ साधयित्वाभिपग्दद्यात्सर्व-
 वाताभयापदम् । लथुनस्वरसोसिद्धतैल-
 येभिश्चवातनुत् ॥ तैलानेतादृत्स्नाताम-
 उन्नांपाययेतच ॥ पित्तान्यतममेपांहिय-
 न्ध्यापिजनयेत्सुतम् ॥

अर्थ—जी, बेर, कुटर्था, मछली, सहजना बेल छाल और मूली, इनका क्वाथ तथा दही दूध और तेल इन को एकर सिद्ध करके दें तो सम्पूर्ण प्रकार के वातरोग-

दूर होजाते हैं । अथवा ऊपर कहे हुए द्रव्यों के साथ लहसन के रसमें सिद्ध किया हुआ तेल भी वात नाशक है ।

इन ऊपर कहे हुए तेलों में से कोई सा तेल ऋतु का स्नान करने के पीछे स्त्रियों को पान कराये तौ धन्या के भी सन्तान की उत्पत्ति होती है ।

यच्चशीतज्वरैतैलमगुर्वाद्यमुदाहृतम् । अ-
नेकशतशस्तच्चसिद्धंस्याद्वातरोगनुत् ॥ व-
क्ष्यन्तेयानितैलानिवातशोणितकेऽपिच ।
तानिचानिलशान्त्यर्थसिद्धिकामप्रयोज-
येत् ॥

अर्थ—जो अगुर्वादि तैल से आदि लेकर शीत ज्वर में वर्णन किये गये हैं, वह अनेक बार सिद्ध किये जाने पर वातरोग को दूर करता है अथवा अनेक बार इस तैल का अनुभव किया गया है । इस से अतिरिक्त वातरक्त में जो तेल कहे जायेंगे वे भी आरोग्यता के निमित्त वातरोग के दूरकरने के लिये दिये जा सकते हैं ।

तैलक्री उत्कृष्टता ।

नास्ति तैलात्परं किञ्चिदौषधं मारुतापहम्
व्यवाद्युष्णगुरुस्नेहात्संस्काराद्दलवत्तरम्
गुणैर्वातहरैस्तस्मात्शतशोऽयसहस्रशःसि-
द्धं क्षिप्रतरं हन्ति सूक्ष्ममार्गस्थितानगदान् ॥

अर्थ—तेल से अधिक वातनाशक और कोई औषध नहीं है क्योंकि यह व्यवायो, उष्ण, गुरु और स्निग्ध है । तथा वातनाशक द्रव्यों के संस्कार से यह अत्यन्त मलान होजाता है । तथा वातनाशक द्रव्यों

के साथ शत सहस्र बार सिद्ध करने पर यह सूक्ष्म स्रोतों में स्थित रोगों को शीघ्र ही दूर करदेता है ।

क्रियासाधारणी सर्वासंस्पृष्टेषां पिशस्यते ।
वातपित्तादिभिः स्रोतः स्वावृतेषु विशेषतः ॥

अर्थ—केवल वायु में जो साधारणी क्रिया कही गई है वह संस्पृष्ट दोषों में भी हितकारी होता है और विशेष करके जय स्रोतों का मार्ग वातपित्त, वा वातकफ वा पित्तकफसे रुका होता है तब वातनाशिनी क्रिया बहुत उपयोगी होती है ॥

पित्तावृते वायुमार्ग में चिकित्सा ।

पित्तावृते विशेषेण शीतामुष्णांतथा क्रिया-
म् । व्यत्यासात्कारयेत्सर्पिर्जीवनीयञ्च
शस्यते ॥ धन्वमार्गं यवाशालिर्वापनाः
क्षीरवस्तयः । विरेकः क्षीरपानञ्च पञ्च-
मूलवलाश्रितम् ॥ मधुपट्टिर्वलातैलं घृता-
क्षीरैश्च सेचनम् । पञ्चमूलकपापेण कुर्या-
द्वाशीतवारिणा ॥

अर्थ—जब वायुका मार्ग पित्तसे आवृत होता है तब व्यत्यास क्रम से शीत क्रिया और उष्णक्रिया करना हित है । इस में जीवनीय गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घृत भी उपयोगी है । धन्वजमांस, जौ, शालीचांबल, यापनकर्त्ता क्षीर घरित, विरेचन तथा पंचमूल वा बला डालकर औटाया हुआ दूध हित है । मुलहठी का क्वाथ, बलातैल घी, दूध, पंचमूल का क्वाथ वा ठंडा जल इन से सेचन करना भी हित है ॥

कफावृतवायु मार्ग में चिकित्सा ।

कफावृतेयवान्नानिजाङ्गलामृगपाक्षिणः

स्वेदास्तीक्ष्णानिरूहाश्वमनंसविरेचनम्
जीर्णसर्पिस्तथातैलतिष्ठसर्पजंशुभम् ।

अर्थ—कफसे वायुके रुकने पर जौ, जां-
गल पशुपक्षियों का मांस, स्वेद, तीक्ष्ण नि-
रूहण, श्वमन, विरेचन, पुराना घी, तिल
का तेल और सरसों का तेल हित होता है ।

कफपित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा ॥

संसृष्टेकफपित्ताभ्यांपित्तमादौचिनिर्जयेत्

आमाशयगतंहृद्वाकफं वमनमाचरेत् ॥

पक्वाशयेविरेकन्तुपित्तसर्वत्रगेतथा ॥

अर्थ—कफपित्त मिलहुए दोनों से वायु
का मार्ग रुकने पर प्रथम पित्तको जीतने
का उपाय करे, जो कफ आमाशयमें स्थित
दिखाई दे तो वमन देवे, पक्वाशयस्थ कफ
में विरेचन देवे । तथा जो पित्त सर्व देह
गत दिखाईदे तोभी विरेचनही देवे ।

स्वैदैर्विष्यन्दिदःश्लेष्मापदापक्वाशया
चक्षुतः । पित्तंवादर्शयेल्लिङ्गं वस्तिभिस्तं

विनिर्हरेत् ॥

अर्थ—स्वेदनकर्म से श्लेष्मा यदि पिघल
कर पक्वाशय को छोडदे और यदि पित्तके
चिन्ह भी दिखाई दें तो दस्तद्वारा उसके
दूर करने का उपाय करे ॥

में क्षीरसंयुक्त निरूहण देवे तथा मधुर
औषधियों से सिद्ध किये हुए तैल की
अनुवासन वास्त देवे ॥

शिरोगतवात में चिकित्सा ।

शिरोगतेतुसकफेधूमनस्यादिकारयेत् ॥

अर्थ—कफयुक्त वात के सिर में प्रवेश
करने पर घूमपान और नस्यादि कर्म करे ॥

उरःस्थवात में चिकित्सा ॥

हृतेपित्तेकफेयःस्याद्दुरःस्रोतोऽनुगोऽनि-
लः । सशेषःस्यात्क्रियातत्रफार्याकेवल-
यातिकी ॥

अर्थ—पित्त और कफ के दूर होने पर
जो वक्षःस्थल के स्रोतों में वात गमन करे
तौ इस में केवल वात के नाश करनेवाली
चिकित्सा करे ॥

रक्तावृतवातमें चिकित्सा ।

शोणितेनावृतेकुर्याद्वातशोणितकीक्रियाम्

अर्थ—रक्तावृत वात में वातरक्तनाशक
क्रिया करनी चाहिये ॥

आढ्यवात में चिकित्सा ॥

प्रमेहवातमेदोघ्नीमाढ्यवातेप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—आढ्यवात में प्रमेह, वायु और देह
को दूर करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥

मांसावृत वात में चिकित्सा

अर्थ—अस्थि और मज्जा में स्थितवात में महास्नेह का प्रयोग करे और शुक्रावृत वात में भी पूर्वोक्त शुक्रस्थ वातकर्त्ता चिकित्सा करे ॥

अन्नावृतवातमें चिकित्सा ।

अन्नावृततेतदुल्लेखःपाचनदीपनंलघु ॥

अर्थ—अन्नावृत वात में वमन, पाचन, दीपनकर्त्ता और लघु भन्न देना चाहिये ॥

मूत्रस्थवातमें चिकित्सा ।

मूत्रलानितुमूत्रेणस्वेदाःसोत्तरवस्तयः ॥

अर्थ—मूत्रस्थ वात में मूत्रकारक औषध स्वेदन और उत्तरप्रसक्ति का प्रयोग करे ।

पुरीपस्थ वातकी चिकित्सा ।

शकृतातैलमैरुण्डवस्तिस्नेहाश्चभेदिनः ।

अर्थ—पुरीपावृत वात में भंडी का तेल और स्नेहन वस्ति तथा भेदकर्त्ता औषध श्रेष्ठ हैं ॥

स्वस्थानस्पदोप की चिकित्सा ।

स्वस्थानस्थोवलीदोपःप्राक्तंस्वैरौपधैर्जयेत्पामनैर्वाधिरैर्वावस्तिभिःशमनेनवा ॥

अर्थ—यदि दोष अपने ही स्थान में स्थित हो परन्तु कुपित होजाय तब उसी दोष के शमन करने वाली औषध का प्रयोग करे । अर्थात् अपने स्थान में स्थित कफ को वमन से, पित्त को विरेचन से और वातको वस्ति से शमन करे ॥

मारुतानां हि पञ्चानामन्योन्यावरणेशृणु ॥

अर्थ—पूर्वोक्त पांच प्रकार की वायु जब परस्पर एक दूसरे के मार्ग को आच्छादित

कर लेती हैं तब जो लक्षण उत्पन्न होते हैं उनका संक्षेपसे तथा सभिस्तर वर्णन करते हैं

पंचवायु का परस्पर आवरण ॥

प्राणोत्पत्त्यपानादीन्प्राणंवृष्वन्त्यथापिते उदानाद्यास्तथान्योऽन्यंसर्वेष्वयथाक्रमम् विशतिर्वरणान्येतान्युल्वणानांपरस्परम् ॥ मारुतानां हि पञ्चानां तानिसम्यक्प्रतर्कयेत् ॥

अर्थ—प्राणवायु अपानादि वायुओं का आवरण करती हैं और ये अपानादिक भी प्राणवायु का आवरण करती हैं, इसी तरह सम्पूर्ण उदानादिक वायु भी आपस में एक दूसरे का आवरण करती हैं । इसी तरह इन पांचों वायुओं के परस्पर आवरण करने के बीस आवरण हैं अब उनका सम्यक् वर्णन करते हैं ।

प्राणावृतव्यान वायु के लक्षण ।

सर्वेन्द्रियाणां शून्यत्वं ज्ञात्वा रमृतिव लक्षयम् व्यानेप्राणावृते लिङ्गं कर्म तत्रोर्ध्वजनुकम् ॥

अर्थ—जब प्राणवायु व्यानवायुका आवरण करलेती है तब सम्पूर्ण इन्द्रियां शून्यहोजाती हैं, स्मरण शक्ति और बल घट जाता है, इस में उर्ध्वजनु क्रिया करना हित है ।

व्यानावृतप्राण वायु के लक्षण ।

स्वेदोऽत्यर्थलोमहर्षस्त्वग्दोषःसुप्तगात्रता प्राणेन्यानावृते तत्र स्नेहयुक्तं विरेचनम् ॥

अर्थ—जब व्यानवायुप्राणवायुका आवरण करलेती है तब पसीने बहुत आते हैं, रोमाञ्च लठे होजाते हैं, त्वचा विगड जाती है और देह सुन्न पड जाती है, इस में स्नेह युक्त विरेचन देवे ॥

प्राणावृत समानवायुके लक्षण ॥

प्राणावृतेसमानेस्याज्जडगद्गदमूकताः॥
चतुष्पयोगाःशस्यन्तेस्नेहास्तत्रस्यापनाः॥

अर्थ—जब प्राणवायु समान वायु का आवरण करलेती है तब जडता, गदगदता और मूकता होती है, इस में चार प्रकार के पान, अभ्यंग, अनुवासन और नस्य कर्म हितहैं तथा क्षीरवस्ति भी उपयोगीहोतीहै।

समानावृत प्राणवायु के लक्षण ॥

समानेनाऽवृतेप्राणेग्रहणीपार्श्ववेदना ॥
शूलेचामाशयेतत्रदीपनसर्पिरिच्यते ॥

अर्थ—जब समानवायु प्राणवायु का आवरण कर लेती है तब ग्रहणी दोष और पार्श्ववेदना होती है, तथा आमाशय में शूल होने लगता है, इस में संदीपन घृत उपयोगी होता है।

प्राणावृतउदानवायु के लक्षण ॥

शिरोग्रहःप्रतिश्यायोनिःश्वासोच्छाससं
ग्रहः ॥ हृद्रोगोमुखशोषश्चाप्युदानेप्राण
संवृते । तत्रैर्ध्वभागिकंकर्मकार्यमाश्वास
नंतथा ॥

अर्थ—जब प्राणवायु उदानवायु का आवरण करलेती है तब सिर में जकड़न, प्रतिश्याय, निःश्वास का रोध, उच्छ्वासका रोध, हृद्रोग और मुखशोष ये उपद्रव होते हैं, इस में वमनादि ऊर्ध्वदेहिक चिकित्सा तथा आश्वासन हितहै।

उदानावृत प्राणवायुके लक्षण ।

कर्माजोवक्ष्यर्णानानाशोमृत्युस्यापिवा ।
उदानेनावृतेप्राणेतंशनैःश्रीतवारिणा ॥

सिञ्चेदाश्वासयेच्चैवमुखंचैवोपपादेयत् ।

अर्थ—जब उदानवायु प्राण वायु का आवरण कर लेतीहै तब कर्म, ओज, बल और वर्ण का नाश होकर मृत्युभी होजाती है, इसमें धीरे २ शीतलजलके छोटे मारै, आश्वासन करै और सुलदायक कर्मों का उपयोग करै।

प्राणावृत अपान वायुके लक्षण ।

ऊर्ध्वगेनावृतप्राणेच्छर्दिश्वासादयोगदाः॥
स्युर्वातेतत्रवस्स्यादिभोज्यंचैवानुलोमनम्

अर्थ—जब प्राण वायु अपान वायु का आवरण करलेतीहै तब धमन और श्वासादिक रोग उत्पन्न होतेहैं। इसमें वस्तिकर्म और अनुलोमन कर्त्ता भोजन हितहैं ॥

अपानावृत प्राणवायुके लक्षण ॥

मोहाल्पोग्निरतीसारऊर्ध्वगेऽपानसंवृते ॥
वातेस्युर्यमनंतत्रदीपनग्राहिचाशनम् ॥

अर्थ—जब अपानवायु प्राणवायु का आवरण करलेती है तब मोह, मन्दाग्निऔर अतीसार होते है। इस में वमन तथा दीपन संप्राही भोजन हित हैं।

व्यानावृत अपान वायु के लक्षण।

वम्याध्मानमुदावर्तगुल्मातीपरिकार्त्तिकाः॥
लिंगव्यानावृतेपानेतंस्निग्धंरनुलोमयेत् ॥

अर्थ जब व्यान वायु अपान वायुका आवरण कर लेती है तब वमन, आध्मान, उदावर्त गुल्म अर्त्ति और परिकार्त्तिकादि उपद्रव होतेहैं, इसमें स्निग्ध अनुलोमन करना चाहिये।

अपानावृतव्यान के लक्षण ।

अपानेनावृतेव्यानेभवोद्विष्णुचरेतसाम् ॥

अतिप्रवृत्तिस्तत्रापिसर्वसंग्रहणंमतम् ।

अर्थ—अपान वायु जब व्यान वायु का आवरण कर लेती है तब विद्य, मूत्र और वीर्य की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है, इस में सब तरह की संप्राही औषध हित होती हैं ॥

समानावृत व्यान वायु के लक्षण ।

मूर्च्छातन्द्रामलापोऽङ्गसादोऽन्योजोवलक्षयः ॥ समानेनावृतेव्यानेव्यायायो-

लघुदीपनम् ।

अर्थ—जब समान वायु व्यानवायु का आवरण करलेती है तब मूर्च्छा, तन्द्रा, मलाप, अंगसाद, अमिक्षय, तेजक्षय, और बलक्षय होता है इसमें शारीरिक परिश्रम तथा लघु और दीपन भोजन हित है ॥

उदानावृत व्यान वायु के लक्षण ।

स्तब्धताल्पामितास्वेदश्चेष्टाहानिर्निमीलनम् ॥ उदानेनावृतेव्यानेतत्रपथ्यमित-

लघु ।

अर्थ—जब उदानवायु व्यान वायु का आवरण कर लेती है तब स्तब्धता, मन्दाग्नि पसीनों का बन्द होजाना, चेष्टा का नाश और निमीलन होता है, इस में थोडा और हलका भोजन हित होता है ॥

पञ्चान्योन्यावृतानेवंवातांल्लिङ्गैर्निशामयेत् । एषांस्त्रकर्मणांहानिर्दृष्टिर्वावरणं-मतम् । यथास्थूलसमुद्दिष्टमेतदावरणा-प्टकम् ॥ सल्लिङ्गभेजसुम्यगुधानावु-द्विद्वये । स्थानान्यवेक्ष्यवातानांवृद्धि-हानिश्चकर्मणाम् ॥ द्वादशावरणान्यन्या-न्यभिलक्ष्याभिपग्निमतम् । कुर्यादभ्यञ्ज-

नस्नेहपानिवस्त्यादिसर्वशः ॥ क्रममुष्ण-

मनुष्णवाग्व्यत्यासादवधारयेत् ।

अर्थ—प्राणादिक पंचवायु जब आपस में एक दूसरे का आवरण करलेती है तब उनके ऊपर कहेहुए लक्षण हंते हैं, इन पंच वायु के मित्र २ कर्मों की वृद्धि वा हानि का नाम आवरण है अथवा यों कहे कि आरवणही से इनके मित्र कर्मों की घटती बढती होती है स्थूल रतिसे इन आठ प्रकार के आवरणों का वर्णन कियागया है तथा, पंडितों की बुद्धि की वृद्धि के लिये उनके लक्षण और चिकित्सा भी कही गई हैं ।

इनके अतिरिक्त बारह आवरण और भी हैं उन में वायु के पृथक् ३ स्थान और उनके कर्मों की वृद्धि वा हानि का अच्छी तरह विचार करके अभ्यंजन, स्नेहपान और वास्तिकर्म आदि सब प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये, तथा इसकी शान्ति के लिये व्यत्यासक्रम से उष्ण और शीतल क्रिया भी करनी चाहिये ॥

उदानादि वायु में चिकित्साक्रम ।

उदानंयोजयेत्क्षमपानेचानुलोमयेत् ॥

समानंशमयेच्चैवत्रिषाव्यानन्तुयोजयेत् ।

अर्थ—उदान वायुके आवृत होने पर वमन और नस्यादि ऊर्ध्व क्रिया कर्त्तव्य हैं अपान वायुके आवृत होने पर विरेचनादि अनुलोमन क्रिया करनी चाहिये । समान वायुकी संशमन चिकित्सा करे तथा व्यान वायुके आवृत होने पर उक्त तीनों प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये ॥

प्राणवायु में कर्त्तव्य ।

माणोरक्ष्यश्चतुर्भ्योपिस्थानेष्वस्यस्थिति
धुर्वा ॥ स्वस्थानंगमयेदेवंवृत्तानेतान्वि
मार्गान् ।

अर्थ—चारों प्रकारकी वायुसे प्राणवायु
की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यकीय पहिला
काम है । इसकी निज स्थान में स्थिति हो-
ना भी अत्यन्तही आवश्यकीय है । प्राण
वायुकी इस तरह रक्षाकरके आवृत्त और
विमार्गगामी शेष चारों प्रकारकी वायु को
अपने-अपने स्थान में लेजाने का यत्न क-
रना चाहिये ॥

पित्तावृत प्राणवायु के लक्षण ।

मूर्च्छादाहोतमःशूलविदाहःशीतकामिता॥
छर्दनश्चविदग्धस्यप्राणेपित्तसमावृते ।

अर्थ—जब पित्त प्राणवायु को आवृत्त
कर लेता है तब मूर्च्छा, दाह, अधकार द-
र्शन, शूल, विदाह और शीतल वस्तुओं पर
इच्छा होती है तथा विदग्ध भोजन की वम-
न भी होती है ॥

कफावृत प्राण के लक्षण ॥

धृतिवन्क्षवधुद्गारनिःश्वासोच्छ्वाससंग्रहः
माणेकफावृतेरूपाण्यरुचिश्छर्दिरेवच ।

अर्थ—कफावृत प्राणवायु में थुकथुकी,
छींक, डकार, निःश्वासरोध, उच्छ्वासरोध,
अरुचि और वमन होते हैं ॥

पित्तावृत उदान के लक्षण ॥

मूर्च्छाद्यानिचरूपाग्निदाहोनाभ्युरसोर्भ्र-
मः ॥ ऊर्जाभ्रंशश्चासादध्याप्युदानोपित्त
संवृते ।

अर्थ—पित्तावृत उदानवायु में मूर्च्छा-
दिक उक्त लक्षण तथा नाभि और वक्षः-
स्थल में दाह भ्रम,, उर्जाभ्रंश और अंग-
साद होता है ॥

कफावृत उदान के लक्षण ॥

आवृतेश्लेष्मणोदानेवैवर्ण्यंवायस्वरग्रहः॥
दौर्बल्यंगुहगात्रत्वपरुचिश्चोपजायते ।

अर्थ—कफावृत उदानवायु में विवर्णता
धाक्कुनिग्रह, स्वरभंग, दुर्बलता, गुहगात्रता
और अरुचि होती है ॥

पित्तावृत समान वायु के लक्षण ॥

अतिस्वेदस्तृपादाहोमूर्च्छाचारुचिरेवच॥
पित्तावृतेसमानेस्युरूपघातस्तथोष्मणः ।

अर्थ—पित्तावृत समानवायु में पसीनोंका
अत्यन्त आना, तृपा, दाह, मूर्च्छा, अरुचि
और ऊष्माका उपघात होता है ॥

कफावृत समान वायु के लक्षण ॥

अस्वेदोवह्निमान्द्यश्चलोमहर्षस्तथैवच ॥
कफावृतेसमानेस्युर्गान्नाणांचातिशीतता ।

अर्थ—कफावृत समानवायु में पसीनों
का बन्दहोना, मन्दाग्नि, रोमीद्रम तथा श-
रीरका अत्यन्त ठंडा होना ये लक्षण होतेहैं ॥

पित्तावृतव्यान के लक्षण ॥

व्यानेपित्तावृतेतुस्यादाहःसर्वांगःक्लमः
गात्रविक्षेपसंगश्चसन्तापःसवेदनः ॥

अर्थ—पित्तावृत व्यान वायु में सम्पूर्ण
देहमें दाह, क्लान्ति, गात्रविक्षेप, संग, सं-
ताप और वेदना होती हैं ॥

कफावृत व्यानके लक्षण ॥

घुस्तासर्वगात्राणांपर्वसन्त्यस्थयग्रहः ॥

व्यानेकफावृतेलिंगगतिसङ्गस्तथाधिकः।

अर्थ—कफावृत व्यान वायु में सम्पूर्ण अंगावयवों में गुहता, पर्वावरोध, संप्यवरोध, अस्थ्यवरोध तथा अत्यन्त गतिरोध होता है।

पित्तावृत अपानके लक्षण ।

हारिद्रमूत्रनचस्त्वन्तापश्वगुदमेदयोः॥ लि-
गंपित्तावृतेऽपानेरजसःसंमवर्त्तनम् ॥

अर्थ—पितावृत अपान वायुमें मूत्र और विषा हल्दी के से रंगका होजाता है, गुदा और मेदू में ताप होता है, और रज की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है।

कफापित्तावृत के लक्षण ।

भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रयवर्त्तनम् ।

श्लेष्मणासंवृतेऽपानेकफमेहस्यचागमः ॥

अर्थ—कफावृत अपान वायु में कफा हुआ और आम कफसे मिला हुआ भारी विषा निकलता है तथा कफमेह का आगम होता है।

कफपित्तावृत के लक्षण ।

लक्षणानांतुमिश्रत्वंपित्तस्यचकफस्यच ।

उपलभ्यभिपग्निवद्गन्मिश्रमावरणंवदेत् ॥

यद्यस्यवायोर्निर्दिष्टस्थानंतत्रैतौस्मृतौ ।

दोर्पावहुविधान्ब्याधीनदर्शयेतांयथा-

निजान् ॥

अर्थ—जब वायु पित्त और कफ दोनों से आवृत होती है तब दोनों के मिले हुए लक्षण होते हैं। जब वायु कफ और पित्त से आवृत होकर जिस जिस स्थानमें विचरण करती है उसी उसी स्थान में कफ और पित्त अपने अपने लक्षणों वाली व्याधि उत्पन्न करते हैं।

प्राणोदान वायुको गुरुता ॥

आवृतंश्लेष्मपित्ताभ्यांप्राणंचोदानमेवच।
गरीयस्त्वेनपश्यन्तिभिपजःशास्त्रचक्षुषः॥

विशेषाज्जीवितंप्राणेऽदानेसंश्रितंवलय-
म् । स्यात्तयोःपीडनाद्दानिरायुपश्चव
लस्यच ॥

अर्थ—पित्त और कफसे आवृत प्राण और उदान वायु को शास्त्रज्ञ वैद्य बहुत भारी समझते हैं, कारण ये हैं कि जीवनप्राण वायुके आधीन है और बल उदानवायु के आधीन है। इसलिये इनके पीडित होने से आयु और बल दोनोंकी हानि होजाती है। सर्वेऽप्येतेपारिज्ञेयाःपरिसंयत्सरास्तथा ।
उपेक्षणादसाध्याःस्युरथवादुरुपक्रमाः ॥

अर्थ—इन सब को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, क्योंकि इनकी उपेक्षा करने से ये एक वरस पीछे असाध्य वा दुश्चिकित्स्य होजाती हैं।

उपेक्षित वायुके उपद्रव ॥

हृद्रोगोविद्रधिःश्रीहागुल्ममातीसारएवच ।

भयन्त्युपद्रवास्तेपामावृतानामुपेक्षणात् ॥

अर्थ—इन आवृत वायुकी उपेक्षा करने से हृद्रोग, विद्रधि, श्रीहा, गुल्मरोग, अतीसार आदि उपद्रव होते हैं ॥

वैद्यको उपदेश ॥

तस्मादावरणंवैद्यःपवनस्योपलक्षयेत् ।

पश्चात्पित्तस्यवातेनपित्तेनश्लेष्मणापिवा।

भिपग्जितैरतःसम्यगुपलक्ष्यसमाचरेत् ।

अनभिप्यन्दिभिःस्निग्धैस्त्रोतसांशुद्धि-

कारिभिः ॥

अर्थ—इसलिये वैद्यको उचित है कि वायु के आवरणों पर दृष्टि रखै कि ये पांचों प्रकार की वायु वात, पित्त अथवा कफ से आवृत हैं, इसका अच्छी तरह विचार करके अनभिष्यन्दी, स्निग्ध और स्रोतों के शुद्ध करनेवाली औषधियोंसे चिकित्सा करे ॥

आवृत वायुमें चिकित्सा ॥

कफपित्ताधिरुद्धयश्चवातानुलोमनम् ॥
सर्वस्थानावृतेष्याशुतत्कार्यमारुतेशुभम् ॥
यापनावस्तपःप्रायोमधुराःसानुवासनाः
प्रसमीक्ष्यबलाधिक्यमृदुवासंसंनहितम् ॥
रसायनानांसर्वेषामुपयोगः प्रशस्यते ।
शैलसंपजतुनोऽत्यर्थपयसागुग्गुलोस्तथा ।
लहंवाभार्गवप्रोक्तमभ्यस्येत्क्षीरभुग्धुवम्
अभयामलकीयोक्तमेकादशसिताशतम् ॥

अर्थ—सर्वस्थानावृत वायु में वह चिकित्सा करनी चाहिये जो कफपित्त के अविच्छिन्न हो और वात के अनुलोमन करने वाली हो । इसमें क्षीरवस्ति (यापनवस्ति) मधुरवस्ति और अनुवासन हित है तथा बल के अनुसार मृदुधिरेचन देवै । इस में सम्पूर्ण रसायनिक प्रयोग भी उपयोगी होते हैं, ब्रह्म दूध के साथ शिलाजीत और गुग्गुलु का सेवन भी हित है । केवल दुग्ध का आहार करके प्रथमाध्याय में कहे हुए च्यवनप्राशका सेवन करै अथवा ग्यारह प्रकारकी अभयामलकीयोक्त रसायन भी हित हैं

अपानावृत प्राणवायुमें चिकित्सा ॥
अपानेनावृतेसर्वदीपनंप्राहिभेपजम् । वा

तानुलोमनंयच्चपक्वाशयविशोधनम् ॥
इतिसंक्षेपतःप्रोक्तमावृतानांचिकित्सितम्
प्राणादीनांभिपक्कुर्याद्वित्कर्व्यस्वयमेवतत्

अर्थ—अपानावृत प्राणवायु में दीपन, संप्रादी वातानुलोमनकर्ता और पक्वाशय को शुद्ध करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥

इस तरह आवृतवायुकी चिकित्सा संक्षेप रीति से वर्णन की गई है, इनमें वैद्य अपनी बुद्धि से भी अन्य औषधों का प्रयोग करे। पित्त और कफावृतवायुकी चिकित्सा ॥
पित्तावृतेतुपित्तघ्नैर्मांरुतस्याविरोधिभिः
कफावृतेकफघ्नैस्तुमारुतस्यानुलोमनैः ॥

अर्थ—पित्तावृतवायु में पित्तनाशक और वायुके अविरोधी चिकित्सा करे । कफावृत वायु में कफनाशक और वायुका अनुलोमन करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये ॥

लोकेशास्वर्कसोमानांदुर्विज्ञेयायथागतिः
तथाशरीरेवायस्पापित्तस्यचकफस्पच ॥
क्षयंश्रुद्धिसमत्वंवागधैवातरणंभिपक् ॥

विज्ञायपवनादीनामृद्धातिस्यकर्मसु ॥

अर्थ....संसार में जिस तरह पथन, सूर्य और चन्द्रमा की गति समझ में नहीं आती है उसी तरह देह में वात, पित्त और कफ की गति समझ में नहीं आती है । जो वैद्य वातादिककी क्षय, वृद्धि, समता और आवरण को जानकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होता है वह घबडाता नहीं है ॥

अध्यायकासंक्षिप्त वर्णन ।

पश्चात्पथनःस्थानवशाच्छरीरेस्थाना-

निकर्माणिचदेहधातोः ॥ प्रकोपेहतुः कुपित
इचरोगान् ॥ स्थानेषुवान्येषुवृत्तश्च
प्राणेश्वरः प्राणभृतां करोति ॥ क्रियाचते
पामखिलानिरुक्ता ॥ तान्देशसात्म्यवर्तुव
लान्यवेक्ष्य प्रयोजयेच्छास्त्रमतानुसारि ॥

अर्थ—इस वातव्याधि चिकित्सित अ-
ध्याय में पंचात्मक वायु के शरीर में भिन्न
भिन्न स्थानादि, देह धातु के कर्म, प्रकोप
के हेतु, कुपित होकर अपने स्थान में वा
अभ्य स्थानों में जिन २ रोगों को करती
हैं, पृथक् पृथक् वायु के आवरणों के लक्षण
और उनकी सब क्रिया वर्णन की गई हैं
वैद्यको उचित है कि इन सब धातुओं को देख
कर तथा देश, सात्म्य ऋतु, और बलको
देखकर औषध करने में प्रवृत्त होवै ॥

इति श्रीभाषाटीकावितायां अग्निवेश विरचि-
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-
त्सितस्थानेषात्तव्यगिचिकित्सितं ना
माष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

—॥—

एकोनविंशोऽध्यायः

अथातो वातशोणितचिकित्सितं व्याख्या
स्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले
किं अब हम वातरक्त नामक चिकित्सित
अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

हुताग्निहोत्रमासीनमृपिमध्ये पुनर्वसुम् ॥
पृथ्वानुरूपेकाग्र्यमग्निवेशोऽग्निवर्चसम् ॥
अग्निमारुततुल्यस्यसंसर्गस्थानिलासृजोः
हेतुलक्षणभैषज्यान्वयास्मैगुरुरवतीत् ॥

अर्थ—अब गुरु पुनर्वसुजी अग्निहोत्र-
कर्म से निश्चित होकर एकप्रचित्त से
ऋषियों के बीच में अग्निकी शिखा के स-
मान विराजित हो रहे थे तबही अग्निवेश
ने पूछा कि हे गुरुदेवा! अग्नि और वायुके
समान मिले हुए वातरक्त के हेतु, लक्षण
और चिकित्सा का उपदेश कीजिये, यह
सुनकर गुरुजीने उस से कहा ॥

वातरक्त के हेतु ।

लवणाम्लकडुसारास्त्रिग्वोष्णाजीर्णभोज
नैः । क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्या
कम्लकैः ॥ कुलत्थमापनिष्पावशाका
दिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरशु
क्रतक्रसुरासवैः ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोध
दिवास्वप्नमजागरैः ॥ मायशः सुकुमाराण
पिष्टान्नरसमोजिनाम् ॥ अचक्रमणशी
लानांकुप्यते वातशोणितम् ॥ अभिघाता
दशुद्ध्यांचमदुष्टशोणिते नृणाम् ॥ कपाय
कडुतिक्ताल्परूक्षाहारादभोजनात् । इ-
योऽप्रयानयानाम्बुकीडाप्लवनलघनात् । उ-
ष्णेचात्यध्ववैपम्याद्दधवापाद्देगानिग्रहात्
वार्याध्ववृद्धोवृद्धेनरक्तेनाचारितः पाथि ।
क्रुद्धस्तद्वृष्येद्रक्तं तज्ज्ञेयं वातशोणितम् ।
सुडंवातघलासारुयमादधरोगंचनामभिः

अर्थ.... नमकीन, खट्टे, कड़वे, खारे, स्नि-
ग्ध, उष्ण और दुष्पाच्य द्रव्यों के अत्यन्त
सेवन से गाँले वा सूखे भौदकमांस और
आनूपमांस के अत्यन्त सेवन से, पिण्याक
वा मूली के अत्यन्त सेवन से, कुलर्था,
उरद, चौलाआदि शाक तथा पल्ल और

ईश के अत्यन्त सेवन से; दही, कांजी, सौंधीर, गुक्त, तक्र, सुरा और आसव के अत्यन्त सेवन से; विरुद्धमोजन, अभ्यशन, क्रोध, दिवास्वप्न और अत्यन्त जागरण से; प्रायःसुकुमार और पिष्टान्न रस भोजन करनेवालों के (प्रायशःसुकुमाराणामिध्याहारविहारिणाम्), तथा जो डोलते फिरते नहीं है एकही जगह बैठे रहते हैं उन के वातरक्त कुपित होता है तथा चोट लगने से इकट्ठे हुए मल को न निकालने से रक्त दूषित होजाता है । कपाय, कटु, तिक्त, अल्प और रूखा आहार करने से वा विना भोजन करने से, अधवा घोड़े वा ऊंटकी सवारीपर चढ़कर जाने से, वा जलक्रीड़ा, प्लवन और लंघन करने से वा गरमी के समय अत्यन्त विषम मार्ग पर चलने से, व्यवाय से, वेगनिग्रह से बढी हुई वायुमार्ग में बढेहुए रक्त से रुककर कुपित होजाती है और रक्तको दूषित करदेती है इसेही वातरक्त कहते हैं । इसके पर्ष्यावाची नाम खुडवात, वातवडास और आख्यवात भी हैं ॥

वातरक्त के स्थान ॥

स्थानं करौपादावंगुल्यःपर्वसन्धयः॥
कृत्वादौहस्तपोदतुमूलं देहोविधात्रति ॥

अर्थ—वातरक्त के स्थान दोनों हाथ दोनोंपांव, अंगुलियां और पर्वसंधियां हैं ॥ यह प्रथम हाथ और पांव में उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण देह में फैलजाता है ॥

सौक्ष्म्यात्सर्वसरत्वाच्चदेहंगच्छन्शिरायनैः । पर्वस्वभिहतंक्षुब्धं वक्रत्वादवतिष्ठते ॥

स्थितं पिचादिसंस्पृतास्ताःसृजतिवेदनाः
करोतिदुःखंतेप्वेवतम्मात्रायेणसन्धिषु॥

अर्थ—वायुकी सूक्ष्मता और रक्तकी सर्वत्र गमन करनेवाली शक्ति से कुपित हुए वातरक्त सम्पूर्ण देह में गमन करते हैं, पन्तु जत्र पोरुओं में जाते हैं तब उनकी टेढाई के कारण वहीं रुक कर ठहर जाते हैं, तब पिचादि दोषों से मिलकर बैसी र ही वेदना उत्पन्न करते हैं और इसीलिये उनही संधियों में अत्यन्त पीडा होती है ।

वातरक्त के पूर्वरूप ।

स्वेदोऽन्यथनवाकाश्र्यस्पर्शाङ्गत्वंक्षतेऽतिरूक् । सन्धिशैथिल्यमालस्यंसदनांपिडकोद्भयः ॥ जानुजंघोरुकरत्र्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु ॥ निस्तोदःस्फुरणभेदोऽगुस्तंभुसिरेवच ॥ कण्ठःसंधिषुःसंभूत्वाभूत्वानश्यतिचासकृत् । वैयर्थेणण्डलोत्पत्तिर्वात्तासृक्पूर्वलक्षणम् ॥

अर्थ—अत्यन्त पसिने आना वा सर्वथा न आना, कृशता, स्पर्श का ज्ञान, न होना क्षत में अत्यन्त वेदना होना, संधियों में शिथिलता, आलस्य, अंगसाद, पुन्सियोंका होना, जानु, जंघा, ऊरु, कटि, कंधा, हाथ, पांव तथा देहकी संधियों में सूचंभेदन के समान पीडा होना, स्फुरण, भेद, भारापन, सुप्ति, खुजली संधियों में वेदना हो होकर मिटजाना विवर्णता चकत्तों का होना । ये सब वातरक्त के पूर्वरूप हैं ॥

वातरक्त के भेद ॥

उत्तानमथगम्भीरं द्विविधं तत्प्रचक्षते ॥

त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वन्तराश्रयम् ।
 अर्थ—वातरक्त दो प्रकार का होता है,
 यथा—उत्तान और गंभीर । जो त्वचा और
 मांस में आश्रित होता है वह उत्तान है
 और जो मांससे भी भीतर का आश्रय ले-
 कर उत्पन्न होता है, वह गंभीर है ॥

उत्तान वातरक्तके लक्षण ।

कण्डूदाहर्गुगायासतोदस्फुरणधूपनैः ॥
 अन्विताश्यावरक्तात्स्वग्वाहोताभ्रातयेप्यते ।
 अर्थ—जिसमें खुजली, दाह, वेदना, तोद
 स्फुरण और जलनहो और चमड़ा श्याव-
 वर्ण वातामूर्ण होजाय उसे उत्तान वात-
 रक्त कहते हैं ।

गम्भीर वातरक्तके लक्षण ।

गम्भीरः श्वयथुः स्तब्धः कठिनोऽन्तर्भ्रंशा
 तिमान् । श्यामस्ताम्रोऽथवादाहतोदस्फु
 रणपाकवान् ॥

अर्थ—जिसमें सूजन, स्तब्धता, कठोरता
 हो, जिसमें भीतर अत्यन्त वेदना हो, जिस
 में त्वचा श्यामवर्ण या ताम्बूवर्ण होजाय,
 जिसमें दाह तोद, स्फुरण होता हो और
 जो पाकाभि मुख हो वह गंभीरवातरक्त है ।
 रुग्निद्राहान्वितोऽभीक्ष्णं वायुः सन्ध्यस्थि
 मज्जमु । छिन्दन्निचरत्यन्तर्वक्कीकुर्व
 श्वेगवान् ॥ करोतिस्वन्नर्पणं वाशरीरेस
 र्वतश्चरन् ।

अर्थ—वेदना और दाहसे मिली हुई वा-
 यु संधि, अस्थि और मज्जा में छेदनवत्
 पीडा करती हुई निचरती है और अपने
 नेत्र से लंगली आदि अंगोंको टेढ़ा करदेती

है और सम्पूर्ण शरीर में विचरती हुई
 खञ्जता और पांगलापन भी करदेती है ।

उभयाश्रित वातरक्तके लक्षण ।

सर्वैर्लिङ्गैश्च विज्ञेयं वातासृगुभयाश्रयम् ॥
 तत्रवातेऽधिके वास्याद्रक्तेपित्तकफेऽपि वा
 संसृष्टेषु ससतेषु यच्च तच्छृणुलक्षणम् ॥

अर्थ—जिसमें उक्त दोनों प्रकार के वात
 रक्त के मिले हुए लक्षण देख पड़ते हैं वह
 उभयाश्रित वातरक्त है । इनमें से दोनों
 प्रकार का वातरक्त याताधिक, रक्ताधिक,
 पित्ताधिक वा कफाधिक होता है । अथवा
 दो दो दोषों से मिला हुआ वा सय दोषोंसे
 मिला हुआ भी होता है अब इसके पृथक्
 पृथक् लक्षण सुनो ।

वाताधिक वातरक्तके लक्षण ।

विशेषतः शिरायासशूलस्फुरणतोदनम् ।
 शोथस्य कार्ष्ण्यरूपत्वश्यावताष्टिहानयः
 धमन्यंगुलिसन्धीनांसङ्कोचोऽग्रहोऽतिरु-
 क्कुञ्चनस्तम्भनेशीतप्रद्वेषचानिलेऽधिके ॥

अर्थ—वाताधिक्य वातरक्त में विशेष
 करके शिरा में यातना, शूल, स्फुरण, तोद,
 शोथ में कालापन, रूक्षता, श्यावता, कभी
 घटाव, कभी घटाव, धमनी, उंगली और
 संधियों में संकोच, अंगग्रह, अत्यन्त वेदना,
 कुंचन, स्तम्भन और शीतल वस्तु में अनि-
 च्छा ये लक्षण होते हैं ।

रक्ताधिक वातरक्तके लक्षण ॥

श्वयथुर्भ्रंशरुकोदस्ताभ्रश्चिमिचिमायते ।
 श्लिग्धरुद्वैः शर्मनैतिकण्डूवलेदान्विताऽ

सृजि ॥

अर्थ....रक्ताधिक वातरक्त में सूजना, अत्यन्त वेदना, त्वचा का तामूर्वण और त्रिमिचिमापन होता है । किसी प्रकार की स्निग्ध वा रूक्ष औषधियों से शान्ति नहीं होती, इस में खुजली और छेदभी होताहै।

पित्ताधिक वातरक्त के लक्षण ।

विदाहोवेदनामूर्च्छास्वेदस्त्रुणामदोन्नमः । रागः पाकश्चभेदश्चशोफश्चोक्तानपैत्तिके ॥

अर्थ....पित्ताधिक वातरक्त में दाह, वेदना, मूर्च्छा स्वेद, तृणा, मद और भ्रम होता है इस में राग, पाक, शोफ और भेद भी होता है ।

कफाधिकवातरक्तके लक्षण ।

स्तैमित्यगौरयंस्नेहःसुप्तिमन्दाचरुकफे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में स्तिमिता, भारापन, स्निग्धता, सुन्नता, अरीच और मन्द वेदना होती है ॥

संष्ट्रवातरक्तके लक्षण ॥

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वन्द्वत्रिदोपजम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त हेतु और लक्षणों के संसर्ग से द्विदोपज वा त्रिदोपज वातरक्त होता है अर्थात् जिस में दो दोषों के हेतु और लक्षण मिलेहुए पाये जाते है उसे द्वंद्वज क हते हैं और जिसमें सब दोषों के मिलित लक्षण होते हैं वह सर्व दोपज होता है ॥

वातरक्तकोसाध्यासाध्यत्व ।

एकदोपानुगंसाध्यनवंप्याप्यद्विदोपजम् ॥

त्रिदोपजमसाध्यवायस्यचस्युरुपद्रवः ॥

अर्थ—जो वातरक्त एकदोपसं युक्त और

नवीन होता है वह साध्य है, जो दो दोषों से उत्पन्न है वह याप्य है जो तीन दोषों से उत्पन्न है अथवा उपद्रवों से युक्त है वह असाध्य होता है ॥

सोपद्रववातरक्त के लक्षण ॥

अस्त्रुणारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहः

मूर्च्छाचमदरूक्षर्दिज्वरमोहमवेपकाः ॥

हिकापांडुत्ववीसर्पपाकतोदभ्रमवलमाः ।

अंगुलीवक्रतास्फोटादाहर्मग्रहावुदाः ॥

एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यमोहेनैकेनवापिगत् । सं-

प्रस्राविविवर्णञ्चस्तब्धमर्बुदकश्चयत् ॥

वर्जयेद्यःसंसंकोचकरमिन्द्रियतापनम् ।

अर्थ—नांद न आना, अरुचि, श्वास, मांस में गलावट, शिरोग्रह, मूर्च्छा, मद, वेदना, घमन, ज्वर, मोह, कम्पन, हिचकी पाण्डुरोग (पांगुल्यमपिपाठः), विस्र्प, पाक, तोद भ्रम, क्लान्ति अंगुलियों में टेढापन, फोडे, दाह, मर्मग्रह, अर्बुद, इनसब उपद्रवों के होने पर वातरक्त वर्जनीय होता है अथवा इन में से कोई उपद्रव न हो और केवल एक मोहही हो तो भी वर्जनीय है । जिस वातरक्त में स्त्राव होता हो, विवर्णता हो, स्तब्धता हो, जिस में अर्बुद संकोचता और इन्द्रियताप हो वह भी वर्जनीय है ॥

सुचिकित्स्य वातरक्त के लक्षण ।

अकृत्सनोपद्रवंप्याप्यंसाध्यंस्यानिरुपद्रवम् ॥

अर्थ....जिस में उक्त सम्पूर्ण उपद्रव एक साथ नहीं होते हैं वह याप्य है और जिस

में एक भी उपद्रव नहीं होता वह साध्य होता है ॥

वायुप्रकोप में चिकित्सा ।

रक्तमार्गनिहेत्याशुशाखासन्धिपुमारुतः
निवेश्यान्योन्यभावायवेदनाभिर्हरेदस्-
न् ॥ तत्रमुञ्चेदसृक्मृद्भ्रजलौकःमूच्यला-
घुभिः । प्रच्छन्नैर्वाशिराभिर्वायथादोपं-
यथावलम् ॥ रुदाहशूलतोदात्तदसृक्-
स्ताव्यंजलौकसा । शूद्रैःस्तम्भैर्हरेत्सृष्टि-
कण्डूचिमिचिमायनात् ॥ देशदेशेप्रज-
न्स्ताव्यंशिराभिःप्रच्छनेनवा । अङ्गेम्ला
नेनतुस्ताव्यंरुक्षेवातोत्तरञ्चयत् ॥

अर्थ—वायु हाथ पावों की संधियों में प्रवेश करके रक्तवाही मार्गों को रोक देती है, तब रक्त और वायु परस्पर एक दूसरे को रोकते हुए प्राणों को शीघ्र हरलेंते हैं, ऐसे स्थल में सींग, जोक, सूची, अलाबू, पछना वा शिराव्यध (फस्त) का मथावल प्रयोग कर के रुधिरको निकलवा डाले । वातरक्त में जो वेदना, दाह, शूल और तोद हो तो जोक लगाकर रुधिर निकाल डाले । जो सुति, कण्डूपन और चिमिमाहट हो तो सींगी लगाकर रुधिर निकाले । जो वातरक्त एकस्थान से दूसरे स्थान पर सरकजाता हो तो शिराव्यध वा पछना द्वारा रुधिर निकाले परन्तु जो देह में किसी प्रकार का क्रेश और म्थानता हो वां रूक्ष पुरुष के वाताधिक्य वातरक्त में रुधिर निकालने का निषेध है ॥

गम्भीरंश्चयथुंस्तम्भंक्रम्पंस्नायुशिरामया-
न् । ग्लानिवास्पत्तसंज्ञोचांकुर्याद्वायुर-

सृक्क्षयात् ॥ स्वजादीनवातरोगांश्च-
मृत्युंवात्यपसेचितम् । कुर्यात्तस्मात्प्रमा-

णेनस्निग्धाद्रक्तंविनिर्हरेत् ॥

अर्थ—रक्तके अत्यन्त क्षीण होजाने से गंभीर सूजन, स्तम्भता, कम्पन, स्नायुरोग शिरारोग, ग्लानि और संकोच उत्पन्न होते हैं तथा अत्यन्त रक्तमोक्षण से खजादिक वातरोग उत्पन्न होकर मृत्यु भी होजाती है इसी हेतु से प्रथम स्नेहन करके प्रमाण से रक्तमोक्षण करे ॥

वातरक्त में चिकित्साक्रम ।

विरेच्यःस्नेहयित्वादौस्नेहयुक्तैर्विरेचनैः।
रुक्षैर्वामृदुभिःशस्तंअसकृद्वास्तिकर्मच ॥
सेकाभ्यङ्गप्रदेहान्नस्नेहाःप्रायोऽविदाहि-
नः।वातरक्तेप्रशस्यन्तेविशेषंतुनिबोधये ॥

अर्थ....वातरक्त में प्रथम स्नेहन कराके स्नेहयुक्त विरेचन देवे अथवा रूक्ष वा मृदु विरेचन देवे और वास्तिकर्म भी बार बार करता रहे। वातरक्त में प्रथम प्रायःअविदाही परिपेक, अभ्यंग प्रलेप, अन्न और स्नेहका प्रयोग करना चाहिये । अब जो विशेषता है उसका वर्णन किया जाता है ।

वाह्यवात रक्त में कर्म ।

वाह्यपालेपनाभ्यङ्गपरिपेकोपनाहनैः ॥

अर्थ—वाह्यवात रक्तमें आलेपन, अभ्यंग परिपेक और उपनाहन करना चाहिये ।

गंभीर वातरक्त में कर्त्तव्यकर्म ।

विरेकास्यापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥

अर्थ—गंभीर वातरक्त में विरेचन, आस्थापन और स्नेहपान करना चाहिये ।

वातोत्तर वातरक्त की चिकित्सा ।
सर्पिस्तैलत्रसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्ति-
भिः । सुखोष्णरूपनाहंश्चवातोत्तरमु-

पाचरेत् ॥

अर्थ....वातोत्तर वातरक्त में घृत, तैल,
घसा, मज्जा, पान, अभ्यञ्जन, वस्ति और सु-
खोष्ण उपनाह का प्रयोग करना चाहिये ।

रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।
विरेचनैर्घृतक्षीरपानैःसैकैःसवास्तिभिः ।
शीतैर्निर्वापनैश्चापिरक्तपित्तोत्तरंजयेत् ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में विरेचन
घृतपान, क्षीरपान परिपेक, वस्तिकर्म और
शीतल निर्वापण करना उचित है ॥

कफोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।
वमनमृदुनात्यर्थस्नेहमेकादिलंघनम् । को-
पणलेपाश्चशस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ—कफोत्तर वातरक्त में अत्यन्त मृदु
वमन, स्नेहतेक, लंघन और मुहाता दुआ
गरम लेप हित है ।

कफवातोत्तर वातरक्तमें चिकित्सा ।
कफवातोत्तरेशीतैःप्रलिप्तेवातशोणिते ।
विदाहशोफरुक्कण्डूविष्टादिःस्तम्भनाद्भ-
वेत् ॥

अर्थ—कफवातोत्तर वातरक्त में शीतल
लेप करनेसे स्तम्भन होने के कारण विदाह,
सूजन, वेदना और खुजली की वृद्धि होती है ।

रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में कर्म ।
पित्तोत्तरेदाहःक्लेदोऽवदरणंभवेत् ।
उष्णैस्तस्माद्भिपग्दोषवल्बुद्ध्वाचरेत्कि-

याम् ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में उष्ण
उपचार करने से दाह, क्लेद और अवदरण
होता है इस से इस में दोष का बल देख
कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥

वातरक्त में वर्जितकर्म ।

दिवास्वप्नससन्तापव्यायाममैथुनतथा ।
कटुष्णगुर्वाभिष्यन्दिखणाम्लचवर्जयेत् ॥

अर्थ—दिवानिद्रा, संताप, व्यायाम, मैथुन
तथा कटु, उष्ण, भारी, अभिष्यन्दी, नमकीन
और खटे पदार्थों का सेवन उचित नहीं है ॥

वातरक्तमें सेवनीयद्रव्य ।

पुराणयवगोधूमनीवाराःशालिपाटिकाः ।
भोजनार्थैरसार्थैवाविष्किरमतुदाहिताः ।

आढक्याश्चणकामुद्गामसूराःसमकुष्ठकाः
पूषार्थैर्वहुसर्पिष्काःप्रशस्तौघातशोणिते ॥

अर्थ—पुराने जौ, गेहूँ, नीवार, शाही-
चावल, साठीचावल भोजन में हित हैं ।
विष्किर और प्रतुद पक्षियोंका मांसरस हि-
त है । अड़हर, चना, मूँग, मसूर, मोठ

इनका बहुत धी डालाहुआ मूय वातरक्त
में हित है ।

सुनिपण्णकवेद्याप्रकाकमाचीशतावरीः ।
वास्तुकोपोदकाशाकंशाकंसौवर्चलंतया

घृतमांसरसैर्भृशंशाकसारम्यायदापयेत् ॥
व्यञ्जनार्थतथागव्यमादिपाजंययोद्दिनम्

अर्थ—जो वातरक्तवाला शाकको अ-
धिक चाहता हो और वह उसके अनुकूल
मी हो तो चौरतिया, बेंकड़ी कोंपड़, मसोद,
सितावर, बथुआ, पोई, हृत्तुल इनके मांस

को धी में भूनकर मांसरस के साथ लेवन

करै तथा इस रोगमें गौ, भैंस और बकरी का दूध हित है ।

इतिसंक्षेपतःभोक्तृवातरक्तचिकित्सितम् ।
एतदेवपुनःसर्वव्यासतःसंप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—यह वातरक्त की संक्षेपसे चिकित्सा कहोगई है, अब फिर इस सबको विस्तारपूर्वक कहते हैं ।

श्रावण्यादि घृत ।

श्रावणीक्षीरकाकोलीक्षीरिकाजीवकैःसमैः
सिद्धंसर्पभकैःसर्पिःसक्षीरंवातरक्तनुत् ।

अर्थ—श्रावणी, क्षीरकाकोली, क्षीरिका, जीवक और ऋषभक इन सब को समान भाग लेकर कल्क बनावे, इस से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पाक करै यह घृत वातरक्त नाशक है ।

बलादि घृत ।

बलामतिबलामेदांआत्मगुह्मांशतावरीम् ॥
फाकोलींक्षीरकाकोलींरास्नामृद्धिञ्च-
पेपयेत् । घृतञ्चतुर्गुणंक्षीरतैःसिद्धंवात
रक्तनुत् ॥ हृत्पाण्डुरोगविसर्पकामलादा
हनाशनम् ।

अर्थ—बला, अतिबला, मेदा, केंच के बीज, सितावर, फाकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना और ऋद्धि इनके समान भाग कल्क में पूर्वोक्त क्रम से घां दूध डालकर पकावे । यह घृत वातरक्त, हृद्दोग, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और दाह इन रोगों को दूर करदेता है ।

तामलव्यादि घृत ।

तामलव्यादिक्वाकोल्याःपिप्पलीत्रायमा

णयोः । कशेरुकाकपायेणकल्कैरेभिःप-
चेदघृतम् ।

अर्थ—मूय्यांवला, काकोली, क्षीरकाकोली, पीपल, त्रायमाण और कसेरु इन सब के कपाय और कल्क में घृत पाक करके सेवन करने से वातरक्त दूर होजाता है ।

पारूपकघृत ।

दत्त्वापरूपकद्राक्षाकाशमर्येशुरसान्समान्
न् ॥ पृथग्विदार्याश्चरसंतथाक्षीरञ्चतु-
र्गुणम् । एतत्प्रायोगिकंसर्पिःपरूपकमि-
तिस्मृतम् ॥ वातरक्तेक्षतेक्षीणेयीसर्पेपैत्ति-
केज्वरे ।

अर्थ—फालसा, दाख, खंभारी, और ईख इन चारों का रस समान भाग विदारी का रस इन चारों के समान, इनसे चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध इन सब को पकाने से पारूपक नाम घृत बनता है इसके सेवन करने से वातरक्त, क्षतरोग, क्षीणरोग, विसर्प और पैतिक ज्वर दूर होजाते हैं ।

द्विपञ्चमूलादिघृत ।

द्विपञ्चमूलैर्यर्पाजमैरण्डंरतपुनर्नवम् ॥ सु-
दृगपर्णामहामेदांमापपर्णांशतावरीं । शं-
खपुष्पीमवाकपुष्पींरास्नामतिबलांवलाम्
पृथग्विद्वपलिकंकृत्वाजलद्रोणेचिपाचयेत् ।
पादशेषसमक्षीरंधात्रीक्षुछागलान्रसान् ॥
घृताढकेनसंयोज्यशैनेर्मद्विनिनापचेत् ।
कल्कानावाप्यमेदेद्रेकाशमर्यफलमुत्पलम् ॥
त्वक्क्षीरंपिप्पलींद्राक्षांपन्नवीजंपुनर्नवाम्
नागरंक्षीरकाकोलींपन्नकंष्टहतीद्वयम् ॥

वीरांशृङ्गाटकं भव्यमुरुमाणं निकोचकम् ।
 वदरोक्षोटवाताममुञ्जाताभिपुकांस्तथा ॥
 एतैर्वृताढकेसिद्धेत्तौद्रंशीतेमदापयेत् । स-
 म्यक्सिद्धश्चित्रापस्वनुगुप्तत्रिधापयेत् ॥
 रक्षाकर्मकृतयोक्षःसेवेताक्षमतःसदा । पा-
 ष्ढुरोगंज्वरं ह्रिक्कांस्वरभेदं भगन्दरम् ॥
 पार्श्वशूलक्षयंकासप्रीहानंवातशोणितम् ।
 क्षतशोषमपस्मारमश्मरींशर्करान्तथा ॥
 सर्वाङ्गैर्कांगरोगांश्चमूत्रसङ्गांश्चनाशयेत् ।
 घलवर्णकरं धन्यं घलीपलितनाशनम् ॥
 जीवनीपमिदं सर्पिर्वृष्यं बन्ध्यासुतप्रदम् ।

अर्थ—दशमूल, सफेद सांठ, अरंडकी जड़, डालसांठ, मुद्गपर्णी, महामेदा, मापपर्णी, शतमूली, शंखपुष्पी, सोंफ, रास्ना, अतिवला और वला इन सबको दो दो पल लेकर कूट डाले और एक द्रोण जल में भरकर पकावै, जब जलते २ चौथाई रह जाय तब उतारकर छान लैवै । फिर उस काथ के समानही दूध, आंवले का रस, ईखका रस और बकरे का मांसरस तथा एक आठक घृत इन सबको मिलाकर मन्दी मन्दी आग से पकावै । पकते समय इसमें नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क डाल देवै, यथा—मेदा, महामेदा, गम्भारीफल, नीलोफर, वंशलोचन, पीपल, दाख कमलगद्दा की मिर्गी, सांठ, सोंठ, क्षीरकाकोली, पन्नाख दोनों कोटगी, काकोली, सिंघाड़ा, भव्य, उरुमाण, निकोचक, बेर, अखरोट, वादाम, मुजात और पिस्ता, इन सबका कल्क डाल द्रव्यै, जब पकजाय तब घृत के टंडा होने

पर उस में शहत डालकर किसी घड़े में भरकर छिपाकर रखदेवै । रक्षाकर्म करने के पश्चात् इस घृत में से प्रतिदिन दो तोले सेवन करै तौ पांडुरोग, ज्वर, हिचकी, स्वरभंग, भगन्दर, पार्श्वशूल, क्षयी, खांसी प्रीहा, वातरक्त, क्षतशोष, अपस्मार, अदमरी, शर्करा, सर्वांगरोग, एकांगरोग और मूत्रसंग दूर होजाते हैं । इसके सेवनसे घल और वर्ण बढ़ता है । बली और पलित दूर होजाते हैं । यह जीवनीप, वृष्य और धन्य है, इसके सेवन करने से बन्ध्या स्त्री के भी पुत्रोत्पत्ति होजाती है ॥

द्राक्षादिघृत ।

द्राक्षामधुकतोयान्यांसिद्धं वाससितोप-
 लम् ॥

अर्थ—दाख और मुलहटी के काथ में सिद्ध किया हुआ घृत मिश्री मिलाकर सेवन करने से वातरक्त को दूर करता है ।

गुह्युच्यदिघृत ॥

पिवेत्तृघृतं तथाक्षीरं गुह्युचीस्वरसेशृतम् ॥

अर्थ—गिलोयकेरसमें दूध और घी पकाकर के सेवन करने से वातरक्त दूर होजाताहै ॥

जीवकादिघृत ।

जीवकर्मभकौमेदामृष्यमोकांशतावरीम् ॥
 मधुकंमधुपर्णीञ्चकाकोलीद्वयमेवच । मुद्ग
 मापाख्यपर्णिन्यौदशमूलंपुनर्नवे ॥ बली
 मृताविदार्यांश्चसाश्चमन्धाश्चभेदकाः ।
 एपांकापायकल्काभ्यांसर्पिस्तैलञ्चसाध-
 येत् ॥

अर्थ—जीवक, ऋषपन्न, मेदा, बेंच के

भीरानुपानं त्रिवृताचूर्णद्राक्षारसेनवा ।
 काशमर्ष्यत्रिवृतांद्राक्षांचूर्णद्राक्षारसेनवा ।
 काशमर्ष्यत्रिवृतांद्राक्षां त्रिफलासपरूपकाम्
 शृणां पिबेद्विरेकायलवणक्षौद्रसंयुताम् ॥
 त्रिफलायाः कपायं वापिवेत्स्रात्रेण संयुतम्
 धात्रीहरिद्रामुस्तानां कपायं वा कफाधिके ॥

अर्थ—हरड़ के काथको घी में छोंककर
 विरेचन के लिये पीये, ऊपर से दुग्धपान
 करे अथवा दाख के रस के साथ निसोथ
 का चूर्ण पान करे। अथवा खंभारी, निसोथ
 और दाख के चूर्ण को दाख के रसके साथ
 पीये अथवा खंभारी, निसोथ, दाख, त्रिफला
 और फाटसा इन के काथ में संधानमक
 और शहत मिलाकर विरेचन के लिये पीये।
 अथवा त्रिफलाके क्वाथ में शहत मिलाकर
 पीये । तथा कफाधिक वातरक्त में आंवला,
 हलदी और मोधा इनका क्वाथ पीये ।

योगैश्च कल्पाविहितैरसकृत्तं विशोपयेत् ।
 मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैर्ज्ञात्वा वातं मलाहृतम् ॥
 निहरेद्दामलंतस्य सघृतैः क्षीरवस्तिभिः ।
 नहि वस्ति समं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥

अर्थ—जो वात मूत्र से आवृत हो तो
 कल्पस्थानोक्त मृदु योगों में स्नेह मिलाकर
 देवे अथवा घृत मिलाकर क्षीर वस्ति द्वारा
 मूत्र को निकाले । वातरक्त में वस्तिके समान
 और कोई चिकित्सा नहीं है ।

वस्तिवक्षणापाश्वोर्पर्यास्थिजठरादिषु ।
 उदावर्ते च शस्यन्तो निरुशाः सानुवासानाः ॥
 दद्यात्तैलानि चेमानि वस्तिकम्पाणि बुद्धि-
 षान् । नस्याभ्यञ्जनसंकेचदाहशूलोप-
 शान्तय ॥

अर्थ—वातरक्त में रोगी की वस्ति,
 वक्षणा, पसली, ऊरु, पर्व, अस्थि और जठर
 के शूलोंमें वा उदावर्त में निरुहण वस्ति
 देकर अनुवासन वस्ति देवे ।

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि वातरक्त
 के दाह और शूल की शांति के निमित्त
 वस्तिकर्म, नस्य, अभ्यंजन और परिवेक में
 नीचे लिखे हुए तेल देवे ॥

यष्ट्यादि तैल ।

मधुयष्ट्यास्तुलायास्तुकपायेपादशेषिते ।
 तैलाढकंसमक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ।
 शतपुष्पावरामूर्वापयस्याशुरुचन्दनैः ॥
 स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः ॥
 काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्युद्धिपत्र-
 कैः । जीवन्तीजीवकर्पभस्वकूपत्रनखवा-
 लकैः ॥ मपुण्डरीकमञ्जिष्ठाशारिबेन्द्रीवि-
 तुन्नकैः । चतुःप्रयोगाचान्दन्तितैलमारुत-
 शोणितम् । सोपद्रवंसाशुशूलंसर्वगात्रा-
 नुगतंथा ॥ वातासृक्पित्तदाहार्तिज्वर-
 घ्नं यलवर्द्धनम् ॥

अर्थ—एक तुला मुलहठी को अठगुने
 जलमें चटाकर क्वाथ करे, जब चौथाई शेष
 रहजाय तब उतारकर छान लेवे, फिर उ-
 स में एक आड़क तेल और उतना दूध
 मिलावे और एक एक पल नीचे लिखे हुए
 द्रव्यों का कल्क मिलाकर पाककरे । द्रव्य,
 यथा—सौंफ, सितार, मरोड़फली, विदारी-
 कन्द, अमर, चन्दन, शालिपर्णी, हंसपदी,
 जटामांसी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली-
 क्षीरकाकोली, भूआंवला, ऋद्धि, पत्राख,

जीवन्ती, जीवक, ऋषभक, दालचीनी, तेजपात, नखी, नेत्रवाला, पुंडरिया, मजीठ, सारिवा, इन्द्रायण की जड़ और धनियां । ये द्रव्य डालै । इस तेल का नस्य, अभ्यंग, वस्ति और पान इन चार रीति से प्रयोग करने पर सर्ष देहानुमागी सोपद्रव वातरक्त अंगशूल, पित्त, दाह, और यातना दूर होजाती है, ज्वर भी जाता रहता है । यह बल को बढ़ानेवाला है ॥

सुकुमारकतैल ॥

मधुकस्यशतंद्राक्षारखर्जूरान्पिपरूपकम् ॥
 मधुकौदनपाकयौचप्रस्थंशुश्रातकस्यच ॥
 काश्मर्याहकमित्येतच्चतुर्द्रोणैःपचेदयम्
 शेषेऽष्टभागेपूतेचतस्मिन्तैलाहकंपचेत् ॥
 तथामलकाश्मर्याविदारीक्षुरसैःसमैः ।
 चतुर्द्रोणैर्नपयसाककंदत्यापलोन्मितम् ॥
 कदम्ब्यामलकाक्षौटापक्षवीजकशेरुकम् ॥
 शृङ्गाटकंशृङ्गेवरलवर्णपिप्पलींसिताम् ॥
 जीवनीयैश्चसंसिद्धंक्षौद्रप्रस्थेनसंसृजेत् ॥
 नस्याभ्यञ्जनपानेषुवस्तौचापिनियोजयेत् ॥
 वातव्याधिपुसर्वेषुमन्यास्तम्बेहनुग्रहे
 सर्वाङ्गकांगवातेचक्षतक्षीणेषुतज्वरं ॥
 सुकुमारकमित्येतत्वातास्वामयनाशनम् ॥
 स्थिरवर्णकरंतैलमारोग्यबलपुष्टिदम् ॥
 अर्थ—मुहलटी सौ पल, दाख एक प्रस्थ
 खजूर एक प्रस्थ, फालसे एक प्रस्थ, महुआ
 एक प्रस्थ, खरैटी एक प्रस्थ, मूज एक
 प्रस्थ और खंभारी एक आठक इन सबको
 चार द्रोण जल में पकावै, जब जलते जलते
 आठवां भाग रह जाय तब उतार कर छान

ते फिर उस घाथ में आंवलेका रस, खंभारी
 का रस विदारीकन्द का रस, ईख का रस
 समान भाग मिलावै और चार द्रोण दूध
 मिलाकर एक आठक तेल को इन सब के
 साथ पकावै और गाँचे लिखे हुए द्रव्यों का
 एक एक पल कल्क भी इस में डाल देवै,
 यथा कदंबकी छाल, आंशला, अखरोट,
 कमलगद्य के बीज, फसेरू, सिंघाडा, अदरक,
 नमक, पीपल और चीनी तथा जीवनीय
 गणकी औषध इन सबका कल्क उस में
 डाल देवै और पकने पर उतारकर रखलेवै
 जब ठंडा होजाय तब उस में एक प्रस्थ
 शहत मिलावै । इसका नस्य अभ्यंजन पान
 और वस्ति चार प्रकार से प्रयोग करे ॥
 इसके सेवन से सब प्रकारकी वातव्याधि
 मन्यास्तम्भ, हनुग्रह, सर्वांगवात, एकांग-
 वात, क्षतक्षाण, क्षतज्वर, तथा वातरक्त सं-
 बंधी अन्य उपद्रव दूर होजाते हैं । इसका
 नाम सुकुमारक तैल है ॥ यह तैल स्थिर-
 कर्त्ता, वर्णोत्तेजक, आरोग्यदायक, बलवर्द्धक
 और पुष्टिकारक होता है ।

अमृताख्य तैल ॥

गुडूचीमधुकंश्रुस्वपञ्चमूलंपुनर्नवाम् । रा
 स्नाभैरण्डमूलश्चजीवनीयानिलाभतः ॥
 पलानांशतकंभूमिर्वलापञ्चशतंतथा ॥
 कोलंबिल्वंयवान्मांपानकुलत्थांश्चाहको
 न्मितान् ॥ काश्मर्याणांसुशुष्काणांद्रोणं
 द्रोणशतेऽम्भसः । साधयेज्जर्जरंधौतंच
 तुर्द्रोणञ्चशेषयेत् ॥ तैलद्रोणंपचेत्तेनद
 त्वापञ्चगुणंपयः ॥ पिष्ट्वात्रिपलिकञ्चै-

बन्धनोशीरकेसरम् ॥ पत्रैलागुरुकुष्ठा
नितगरंमधुयाष्टिकाम् । मञ्जिष्ठाष्टपलञ्चै
वत्सिद्धं सार्धयोगिकम् ॥ वातरक्तेश
तेक्ष्णीभारतक्षीणरसि । वेदनाश्चि
सभग्नानां सर्वाङ्गीकांगरोगिणाम् । योनि
दोषमपस्मारमुन्मादं खञ्जपंगुताम् । हन्या
त्पुंसवनं चैतच्चैलाग्न्यममृताह्वयम् ॥

अर्थ—गिलोय, मुलहठी, लघुपंचमूल, साठ, रास्ता, एरंडकी जड़ और जीवनीय गणकी जो जो औषध मिलसके उनको पृथक् पृथक् सौ पल लैवै खैरेटी पांच सौ पल, सूखा बेर, कच्चा विल्व, जौ, उरद और कुलथी प्रत्येक एक एक आठक, खंभारी के फल सूखे हुए एक द्रोण, इन सब को अच्छी तरह से कूटकर धोकर सौ द्रोण जल में पकावै जब चार द्रोण शेष रहजाय तब उतारकर छान ले । इस क्वाथ में एक द्रोण तेल और पंचगुना दूध डालकर पकावै और नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क तीन तीन पल उस में डाल देवै, द्रव्य, यथाः—चन्दन, खस, केसर तेजपात, इलायची, अगार, कूठ, तगर, मुलहठी ये सब तीन तीन पल, मजीठ आठ पल । इस तरह इस तेल को सिद्ध करके सेवन करने से वातरक्त क्षत, क्षीण, अत्यन्त वोझ ढोने से उत्पन्न हुए रोग, क्षीणवीर्यता, वेदना, आक्षेपक, भग्नता, सर्वांग रोग, एकांगरोग, योनिदोष अपस्मार, उन्माद, खंजता और पंगुता दूर होजाते हैं । यह अमृताह्वय तैल, पुंसवन उत्कृष्ट और अमृतके समान गुणकर्त्ता है ॥

महापद्म तैल ।

पद्मवेतसयष्ट्याहफेनिलापद्मकोत्पलैः ।
पृथक्पञ्चपलैर्दंभवलाचन्दनार्किशुकैः ॥
जलेभृतैः पचेत्तैलमस्थं सौवीरसम्मितम् ।
लोध्रपद्मोचरोशीरजीवकपर्पभकेसरैः ॥
मदयन्तीलतापत्रपद्मकेसरपत्रकैः । मपु-
ण्डरीककालीयमांसीमेदाप्रियंगुभिः ॥
कुंकुमद्विगुणैः कर्पूरमञ्जिष्ठायाः पलेन च ॥
महापद्ममिदं तैलं वातासृग्ज्वरनाशनम् ।

अर्थ—पद्म, के फूल, वेत, मुलहठी, फेनिला (बेर) पद्माख, नीलोफर, दाम, खैरेटी, चन्दन और टाकके फूल प्रत्येक पांचपल लेकर अठगुने जल में चढादे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले फिर इस क्वाथ में एक प्रस्थ तैल, एक प्रस्थ सौवीर तथा नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क डालकर पाक करले । द्रव्य, यथा—लोध, पद्माख, उत्तीर, जीवक, ऋषभक, केसर, मल्लिका की छाल और पत्ते, कमल केसर, तेजपात, पुंडरिया काठ, कालीयक, जटामांसी, मेदा और प्रियंगु ये सब एक एक कर्प, कुंकुम दो कर्प और मजीठ एक पल डालकर तैल पकावै । इस तेल का नाम महापद्म तैल है इसके सेवन से वातरक्त और ज्वर दूर होजाता है ॥

खुड्ढाकपद्म तैल ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीकाथसाधितम् ।
स्यात्पिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिच-
न्दनैः । खुड्ढाकपद्ममिदं तैलं रुग्दाह-
नाशनम् ॥

अर्थ—पन्नाख, उसीर, मुलहटी और हलदी के काथ में राख, मजीठ, काकोली, क्षीर फाकोली और चन्दन का कल्क ढाल कर तैल को पकावै यह तैल खुद्वाकपथ कहाता है । इसका प्रयोग करने से वातरक्त में वेदना और दाह शान्त होजाती है ।

बलादि तैल ।

बलाकपायकल्काभ्यांतैलक्षीरसमन्तथा ।

अर्थ—खरैटी के काथ में उसीका कल्क और समान भाग तेल और दूध चढाकर पाक करै यह पूर्ववत् गुणकर्ता है ॥

• सहस्रपाक तैल ।

सहस्रशतपाकंवावातासृग्वातरोगनुत् ॥

रसायनश्रेष्ठतमिन्द्रियाणांमसादनम् ।

जीवनंवृहणंस्वयंशक्रासृग्दोषनाशनम् ॥

अर्थ—इस ऊपरकहे हुए तेलको सहस्र बार वा सौ बार पाककरै यह वातरक्त और वातरोगों को दूर करने वाला है । यह उत्तम रसायन और इन्द्रियों को प्रफुल्लित करने वाला है । यह जीवन, वृहण, स्वरवर्द्धक, धीर्मदोषनाशक और रक्तदोषनाशक है ॥

आरनालादि तैल ।

आरनालाढकेतैलंपादसर्जरसाशृतम् ।

प्रभूतेमथितंतोयेज्वरदाहार्तिनुत्परम् ॥

अर्थ—एक आढक कांजी, कांजी से चौपाई तेल, तेल से चौथाई राख इन में बहुत सा पानी ढालकर पकावै फिर रई से मथकर शरीर पर लगावै तौ ज्वर, यातना और दाह दूर होजाता है ॥

पिंड तैल ।

समधूच्छिष्टमाञ्जिष्टसर्जरसशारिवम् ॥

पिण्डतैलतदभ्यंगाद्वातरक्तरुजापहम् ॥

अर्थ—मोम, मजीठ, राख और शारिषा इनसे चौगुना तेल और सोलह गुना जल मिलाकर पाककरै । इस पिंड तैल के लगाने में वातरक्त की वेदना दूर होजाती है ॥

शतपाकमधुपर्णी तैल ॥

शतेनयष्टिमधुकांसाध्यंदशगुणंपयः । तैलेचतुर्द्रेणेतस्मिन्मधुकस्यपलेनतु ॥ सिद्धंमधुरकांश्मर्यरसैर्वावातरक्तनुत् । मधुपर्ण्यांपलंपिष्ट्वातैलप्रस्थंचतुर्गुणे ॥ क्षीरेसाध्यंशतकृत्वस्तदेवमधुकाच्छृतः । सिद्धं देयंत्रिदोषेस्याद्वातास्रश्वासफासनुत् । हत्पाण्डुरोगयीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥

अर्थ—सौ पल मुलहटी को अठगुने जल में काथ करके चौथाई शेष रहनेपर छान ले फिर इसमें दसगुना दूध ढालकर एक प्रस्थ तेलके साथ पकावै अथवा मुलहटी और खभारी के रसके साथ पकावै यह वातरक्त नाशक है ।

एकपल गिलोयको एक प्रस्थ तैल और चौगुने दूधके साथ सिद्ध करै फिर उस तेलको सौबार मुलहटी के क्याथ में सिद्ध करै । यह तेल त्रिदोष, वातरक्त, श्वास, खांसी, हृद्रोग, पांडुरोग, विसर्प, कामला, और दाहको दूर करता है ॥

शुद्धच्यादि तैल ॥

शुद्धचीरसदुग्धाभ्यांतैलद्राक्षारसेनवा ।

सिद्धंमधुककांश्मर्यरसैर्वावातरक्तनुत् ॥

अर्थ—गिलोय के काथ और दूध के साथ, अथवा दाख के रसके साथ अथवा

मुलहठी और खंभारी के रस के साथ सिद्ध किया हुआ तेल वातरक्त को दूरकरता है ।
 दशमूलशृतंक्षीरंसद्यःशूलनिवारणम् ।
 परिपेकोऽनिलमायेतद्रक्तोष्णेनसर्पिणा ।
 स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वाचतुभिःपरिपेचयेत् ।
 स्तम्भाक्षेपकशूलार्तकोष्णैर्दाहेतुशीतलैः ॥
 तद्द्रव्याविकच्छागैःक्षीरैस्तेलविमिश्रितैः ।
 निष्कवाथैर्जीवनीयानांपञ्चमूलस्य वाभिपक् ॥
 द्राक्षेक्षुरसमद्यानिदधिमस्त्वम्लकाञ्जकम् ।
 सेकार्थेतण्डुलक्षार्द्रशर्कराम्बुचनस्पते ॥

अर्थ—दशमूलके साथ औटयाहुआ दूध तत्काल शूल नाश करनेवाला है, इसी तरह सुहाते हुए गरम घृतसे वाताधिक वानरक्त में परिपेक हित है । मधुर द्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए ईपदुष्ण घृत तैल, बमा और मजा इन चार प्रकार के रोगों में परिपेक करने पर स्तम्भ, आक्षेपक, और शूलार्तता दूर होजाती है और दाह हो तो शीतल परिपेक हित है । इसी तरह से गौ भेद और बकरी के दूध के साथ सिद्ध किया हुआ तेल अथवा जीवनीय औषधियों के साथ अथवा पंचमूल के क्वाथ के साथ औटयाहुआ तेल हित है । वातरक्त में परिपेक के लिये दाख का रस, ईख का रस, मय, दहीका तोड़, कांजी, तड़ुलजल शहनका जल और खांडका जल हित है ॥

कुमुदोत्पलपञ्चार्घमणिहारैःसचन्दनैः ॥
 शीततोयानुगैर्दिग्भोग्णस्पर्शानंहितम् ॥

चन्द्रपादाम्बुसंसिक्तैःशामपद्मदलच्छदे ।
 शयनेपुलिनस्पर्शशीतमाह्वययोजिते ॥
 चन्द्रनाद्रकराद्रग्न्यभियानार्यःमियंवदाः ।
 स्पर्शानुशीतमुखस्पर्शाघ्नन्तिदाहंजंक्रमम् ॥

अर्थ—दाहकी शान्तिके लिये कमंडनी, नांलकमड, पत्र से आदि लेकर अन्यकमड मणियों के हार, चन्दन इनको शीतल जल में भिगोकर दाहवाले के छांटे मारता रहे वा इनका उसे स्पर्श करावे ।

चन्द्रमाकी किरण और शीतल जल से संसिक्त, रेशमीपत्र और कमंडपत्र में धाच्छादित पुत्रियों के बीच में ठंड़ी ठंड़ी दवा चली आती है, शय्यातलपर चंदनी भीगी हुई देहवाली प्रियभाषिणी स्त्रियोंके शीतल मुग्गटावक स्पर्श से वाग्रांत की दाह वेदना और शान्ति दूर होजाते हैं ॥

सरागमरुजदाहरक्तमृक्त्वामलेपयेत् ।
 मधुकाष्ठवत्समासीवीरोदुम्बरशाक्यैः ॥
 जलजग्वेवंतूर्णवीर्युयष्ट्याहपयोधृतैः ।
 सर्पिणानीयनीयैर्वापिष्टलोपांऽनिदाहजुम्बुतिलाः ।
 पियालंमधुकंठिसमूलेचयेत्तमाम् ।
 सधृतःपयसापिष्टमदेहेत्दाहरामजुम्बु ॥
 प्रपुण्डरीकमलिष्ठादावीमधुकचन्दनैः ।
 सितोत्पलरकासचतुष्पूरुशीरपर्शकैः ॥
 संपांगदाहवीमर्षरागशोफनियहर्षः ।
 पित्तरक्तोत्तरेत्तन्तेऽपावानोपारेष्टुण्ण ॥

अर्थ—वातरक्त में जो छलाई, दाह और वेदना हो तो रक्त निकाल कर मुग्गहठी, पीपल की छाल, जटामासी, क्षीरकाकोठी

गूलरकी छाठ, और हरी दूब का लेप करें अथवा कमल और जौकाचून अथवा मुल्हटी, दूध और घी का लेपकरना चाहिये । अथवा-जीवनी गणकी औषधियों को घीके साथ पीसकर लेप करनेसे भी दाह दूर हो जाता है । तिल, पियान, मुल्हटी, कमलनाल और वेतकी जड़ इनको दूध और घी के साथ पीसकर लेप करें तो दाह और लड़ाई दूर हो जाती है । पुण्डरिया काठ, मजीठ, दाहहलदी, मुल्हटी और चन्दन तथा चीनी नीलकमल, सरकंडे की जड़ सक्तू, मसूर, उशीर, और पन्नाख इनका लेप करने से दाह विसर्प, लड़ाई और शोक दूर हो जाते हैं ।

अब उन लेपोंका वर्णन किया जाता है जो यातप्रधान पित्तरक्त में हित हैं ।

वातघ्नैःसाधितःस्निग्धःकृसरामुद्गपायसः
तिलसर्पपिष्टाश्चाप्युपनाहारुजापहाः ॥

औदकप्रसहानूपवेपवाराःसुसंस्कृताः ।
जीवनीयौषधस्नेहपुवताःस्युरुपनाहनैः ।

स्तम्भतांदरुगायासशोथाङ्गग्रहनाशनाः ।
जीवनीयौषधैःसिद्धाःसपयस्कावसापि-

चा ॥ घृतंसहचरान्मूलंजीवन्तीछाग
लंपयः । लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्रष्टाः प

यसिनिवृताः ॥ सीरपिष्टमुगालेपमण्ड-
स्यफलानिवा । बुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं

तावहापनिउडेधिके ॥

अर्थ—यातनाशक औषधियों के साथ सिद्ध किया हुआ कृसर, मुद्ग, पायस अथवा तिल और सरसोंके पिष्टकका उपनाह वेदना को दूर करता है अथवा, जलज, प्रसह और

आनूप इन के मांस का वेशवार अच्छीतरह मसाले डालकर तयार किया हुआ तथा जीवनीय गणोक्त औषध और स्नेह से संस्कार किया हुआ उपनाह स्तम्भ, तोद वेदना, यातना, शोथ और अंगप्रह को दूरकरता है अथवा जीवनीय औषधों के साथ सिद्ध की हुई दूध और चर्बी भी हित है । घृत, सहचरी की जड़ जीवन्ती और बकरी का दूध इनका लेप भी हितकारी है । इसीतरह घी में मुनेहुए तिलों को दूध के साथ पीसकर लेप करने पर दाह शान्त होता है । इसी तरह याताधिक यातरक्त में शूलकी शान्ति के लिये दूध में पिसीहुई अलसी, दूध में पिसेहुए अंडी के बीज अथवा दूध में पिसीहुई सोंफका लेप हितकर है ॥

दसमूलाग्रच्छदैरण्डकाथेद्विप्रस्थिकंमधकू ।
घृततैलंगसामज्जासानूपंमृगपाक्षिणाम् ॥

कल्काथेजीवनीयानिगव्यंक्षीरमथाजकम्
हरिद्रोत्पलकुष्ठैलाशताव्हावरुणच्छदान्-

विल्वमात्रामथरूपुष्पंकाकुम्भंचापिसाध-
येत् । मधूच्छिष्टपलान्यष्टौदद्यात्सिद्धे-

श्वतारिते ॥ शूलेनैपोऽर्दिताहानालेपः
सन्धिगतोऽनिले । वातरकेक्षुतेभग्नेखञ्जे

कुञ्जेचशस्यते ॥

अर्थ—अरंड की जड़, डाली और पत्तों का क्वाथ दो प्रस्थ, घृत, तेल और आनूप पशुपक्षियों की बस और मज्जा, गौ और बकरी का दूध तथा कल्क के लिये जीव-

नीयगणकी औषध और हलदी, नीलोत्तर

कूठ, इलायची, सोंफ, बरनाके पत्ते, और

अर्जुनके फूल पृथक् पृथक् एक एक पल डालकर पकावै, जब पकजाय तब उतार कर उसमें आठ पल मोम डाल देवै । यह शूलार्द्रित अंग, संधिगत वायु, स्रावयुक्त वातरक्त, भग्न, खंज और कुन्जरोगमें हित होता है कफप्रधान वातरक्त में चिकित्सा ।

शोफगौरवकण्डचार्ययुक्तेत्वस्मिन्कफोत्तरे । मूत्रक्षारसुरापकृतमभ्यञ्जनेहितम् सिद्धंसमधुशुकंस्यात्सेकाभ्यङ्गःकफोत्तरे क्षीरस्तैलङ्गवामूत्रंजलञ्चकडुकैःशृतम् । परिपेकाःमशस्पन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में जिसमें सूजन, मारापन और खुजली आदि उपद्रव भी हों उसमें गोमूत्र क्षार और सुराके साथ सिद्ध किये हुए घृतका परिपेक और अभ्यंग हित है । इसरोगमें पन्नाख, दालचीनी मुलहठी, और शारिषा तथा मधुशुकके साथ सिद्ध किया हुआ घृत परिपेक और अभ्यंगमें हित है । दूध, तेल, गोमूत्र, और त्रिकुटा इन से औटायी हुआ जल कफप्रधान वातरक्त में परिपेक के लिये हित है ॥

लेपःसर्पपनिम्बार्कहिंसाक्षीरतिलैर्हितः । श्रेष्ठःसिद्धःकपित्थत्वग्घृतक्षीरैःसशक्नुभिः ॥ द्वेहरिद्वेवचागारधूमकुण्डशताग्निफाः ॥ प्रलेपःशूलनुद्वातरक्तेवातकफोत्तरे तगरत्त्वक्शतान्हेलाकुण्डमुस्तंहरेशुकाः ॥ दारुव्याघ्रनखशाम्भलापिष्टंवातकफार्तिनुत मधुशिग्रोर्हितं तद्द्विजघान्याम्लसंयुतम् मुहूर्तलिप्तमम्लैश्चसिञ्चेद्वातकफोत्तरम् ॥ त्रिफलाव्योषपत्रैलास्त्वकूक्षीरंचित्रकं

वचाम् । विदङ्गपिप्पलीमूलंलोमशंरुपक च्वघम् । ऋद्धितामलकञ्चिव्यंसमभागानिपेपयेत् ॥ कल्कंलिप्तमयस्पात्रेमध्या न्हेभक्षयेत्ततः ॥

अर्थ—सफेद सरसों, नीमकी छाल, आक, हिसि, दूध और तिल इनका लेप हित है, अथवा कैथ, दालचीनी और जौ का ससू इन के साथ में घी और दूध मिलाकर लेप करे । अथवा दोनों हलदी, वच, धूमसा, कूठ और सोंफ इन का लेप भी वातकफोत्तर वातरक्त में शूल को दूर करता है । अथवा तगर, दालचीनी, सोंफ इलायची, कूठ, मोथा, हरेणु, देवदारु, और व्याघ्रनख इन को कांजी में पीसकर लेप करनेसेवात कफकी अधिकतावाले वातरक्त का शूल दूर होता है । अथवा लाल सहजनेके बाजों को धान्याम्ल के साथ पीसकर दो घड़ी तक लेप लगा रहने देवै पीछे कांजी से धो डाले । अथवा त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात, इलायची, वंशलोचन, चीता, वच, श्यामं विडंग, पीपलामूल, जटामांसी, अद्मेकी छाल, ऋद्धि, भूयभांवला, और चव्य इस को समान भाग लेकर पीस डाले फिर इस कल्क को एक लोहेके पात्र पर लेपकर देवै और दुपहर के समय इसको खा लवै

वातरक्त में पथ्य विधि ।
वर्जयेद्दधिभृवलानिक्षारं वैरोधकानि च ॥
वातासेसर्वदोषं ऽपिमंतशूलार्दिते परम् ॥
बुद्ध्वास्थानविशेषांश्च दोषाणाञ्च बलावलम् ॥ चिकित्सितपिदंकुर्याद्दहापीह विकल्पवित् ॥

गूलरकी छाळ, और हरी दूब का लेप करे अथवा कमळ और जौकाचून अथवा मुलहटी, दूध और घी का लेपकरना चाहिये । अथवा जीवनी गणकी औषधियों को घीके साथ पीसकर लेप करनेसे भी दाह दूर हो जाता है । तिल, पियाळ, मुलहटी, कमलनाळ और वेतकी जड इनको दूध और घी के साथ पीसकर लेप करे तो दाह और लड़ाई दूर होजाती है । पुण्डरिया काठ, मजीठ, दाहहलदी, मुलहटी और चन्दन तथा चीनी नीलकमल, सरकंडे की जड सक्तू, मसूर, उशीर, और पषाख इनका लेप करने से दाह विसर्प, लड़ाई और शोफ दूर होजाते हैं ।

अथ उन लेपोंका वर्णन कियाजाता है जो वातप्रधान पित्तरक्त में हित हैं ।

वातघ्नैःसाधितःस्निग्धःकृसराशुद्गपायसः
तिलसर्पपपिष्टाश्वाप्सुपनाहारुजापहाः ॥
औदकमसहानूपवेपवाराःसुसंस्कृताः ।
जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताःस्युरूपनाहनैः ।
स्तम्भतांद्रुगायासशोथाङ्गग्रहनांशनाः ।
जीवनीयौषधैःसिद्धाःसपयस्कावसापि-
वा ॥ घृतसहचरान्मूलंजीवन्तीछाग
लंपयः । लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः प
यसिनिर्वृताः ॥ क्षीरपिष्टमुगालेपमरण्ड-
स्यफलानिवा । कुर्याच्छूलनिष्टवर्गश्च
ताह्वामनिश्रेयधिके ॥

अर्थ—वातनाशक औषधियोंके साथ सिद्ध कियाहुआ कृसरा, मूंग, पायस अथवा तिल औरसरसोंके पिष्टकका उपनाह वेदना को दूर करताहै अथवा, जलज, प्रसह और

आनूप इन के मांस कावेशवार अच्छीतरह मसाले डालकर तयार किया हुआ तथा जीवनीय गणोक्त औषध और स्नेह से संस्कार कियाहुया उपनाह स्तम्भ, तोद वेदना, यातना, शोथ और अंगप्रद को दूरकरता है अथवा जीवनीय औषधों के साथ सिद्ध की हुई दूध और चर्बी भी हित है । घृत, सहचरी की जड जीवन्ती और यकरी का दूध इनका लेप भी हितकारी है । इसीतरह घी में मुनेहुए तिलों को दूध के साथ पीसकर लेप करने पर दाह शान्त होता है । इसी तरह वाताधिक वातरक्त में शूलकी शान्ति के लिये दूध में पिंकीहुई अलसी, दूध में पिसेहुए अंडी के बीज अथवा दूध में पिसीहुई सोंफका लेप हितकर है ॥

दसमूलाग्रच्छदरैण्डवगधेक्षिप्रस्थिकंमथरु ।
घृततेलंनसामज्जासानूपंमृगपाक्षिणाम् ॥
कल्काथेजीवनीयानिगव्यंक्षीरमथाजकम्
हरिद्रोत्पलकुण्डलाशताह्वारुणच्छदान्-
विल्वमात्राप्रथरूपुष्पंकाकुम्भंचापिसाध-
येत् । मधुच्छिष्टपलान्यष्टौदद्यात्सिद्धे-
ऽवतारिते ॥ शूलनैपोऽर्दिताह्वानालेपः
सन्धिगतेश्चनिले । वातरकेचूतेभनेखञ्जे
कुञ्जेचशस्यते ॥

अर्थ—अरंड की जड, टांडी और पत्तों का क्वाथ दो प्रस्थ, घृत, तेल और आनूप पशुपक्षियों की बसा और मज्जा, गों और यकरी का दूध तथा कल्क के लिये जीवनीयगणकी औषध और हलदी, नीलोत्तर कूठ, इलायची, सोंफ, बरनाके पत्ते, और

वर्जुनेके फल पृथक् पृथक् एक एक पल डालकर पकावै, जब पकजाय तब उतार कर उसमें आठ पल भोग डाल देवै । यह शूलादित अंग, संधिगत वायु, सावयुक्त वातरक्त, भग्न, खंज और कुञ्जरोगमें हित होताहै

कफप्रधान वातरक्त में चिकित्सा । शोफगौरवकण्डूवाद्यैर्युक्तेस्विस्मिन्कफोत्तरे । मूत्रक्षारमुरापकृतमभ्यञ्जनेहितम् सिद्धंसमधुशुक्रंस्पात्सेकाभ्यङ्गःकफोत्तरे क्षीरस्तैलङ्गवांमूत्रंजलश्चकटुकैःशृतम् । परिपेकाःप्रशस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में जिसमें सूजन, भारापन और खुजली आदि उपद्रव भी हों उसमें गोमूत्र क्षार और सुराके साथ सिद्ध कियेहुए घृतका परिपेक और अभ्यंग हितहै । इसरोगमें पन्नाख, दालचीनी मुलहठी, और शारिषा तथा मधुशुक्रकेसाध सिद्ध किया हुआ घृत परिपेक और अभ्यंगमें हितहै । दूध, तेल, गोमूत्र, और त्रिकुटा इन से औटायाहुआ जल कफप्रधान वातरक्त में परिपेक के लिये हित है ॥

लेपःसर्पपनिम्बार्कहिस्राक्षीरतिलैर्हितः । श्रेष्ठःसिद्धःकपित्थत्वशृत्तक्षीरैःसशक्तुमिः ॥ द्वेहरिद्वेवचागारधूमकुण्डशतान्दिहिकाः ॥ प्रलेपःशूलनुद्वातरक्तेवातकफोत्तरे तगरत्वक्शतान्द्वेलाकुण्डमुस्तंहरणुकाः ॥ दासुन्याप्रंनखशाम्बलापिष्टंवातकफार्तिनुत् मथुशिग्रोर्हितंतद्व्रीजंधान्याम्लसंयुतम् मुहूर्तलिप्तमम्लैश्चासिञ्चेद्वातकफोत्तरम् ॥ त्रिफलाव्योपपत्रैलास्त्वक्षीरंचित्रकं

वचाम् । विडङ्गपिप्पलीमूलंलोमशंशुपकच्वचम् । ऋद्धितामलकश्चिव्यंसमभागानिपेपयेत् ॥ कल्कंलिप्तमयस्पात्रेमध्ये न्हेभक्षयेत्ततः ॥

अर्थ—सफेद सरसों, नीमकी छाल, आक, हॉस, दूध और तिल इनका लेप हित है, अथवा कैथ, दालचीनी और जौ का सत्तू इन के साथ में घी और दूध मिलाकर लेप करे । अथवा दोनों हल्दी, वच, धूमसा, कूठ और सोंफ इन का लेप भी वातकफोत्तर वातरक्त में शूल को दूर करता है । अथवा तगर, दालचीनी, सोंफ इलायची, कूठ, मोथा, हरेणु, देवदारु, और व्याघ्रनख इन को कांजी में पीसकर लेप करनेसेवात कफकी अधिकतावाले वातरक्त का शूल दूर होताहै । अथवा लाल सहजनेके बाजों को धान्याम्ल के साथ पीसकर दो घड़ी तक लेप लगा रहने देवै पीछे कांजी से धो डाले । अथवा त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात, इलायची, वशलोचन, चीता, वच, त्रायविडंग, पीपलामूल, जटामांसी, अडूमेकी छाल, ऋद्धि, भूयभावला, और चव्य इस को समान भाग लेकर पीस डाले फिर इस कल्क को एक छोहेके पात्र पर लेपकर देवै और दुपहर के समय इसको खा लेवै

वातरक्त में पथ्य विधि । वर्जयेद्दधिशुक्लानिक्षारं वैरोधकानिच ॥ वातासेसर्वदोषेऽपिमंतशूलादितेपरम् ॥ बुद्ध्वास्थानविशेषांश्चदोषाणाञ्चचलावलम् ॥ चिकित्सितमिदं कुट्याद्वापोहं विकल्पवित् ॥

अर्थ—वातरक्त में दही, शुक्र, क्षार और विरोधकर्त्ता द्रव्यों का परित्याग कर देना चाहिये । संपूर्ण दोषों से युक्त वातरक्त और शूल में स्थान और दोषों के बलाबल की अच्छी तरह परीक्षा करके उक्तगणों में प्रयोजन के अनुसार औषधियां को घटा बढ़ाकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होंवै ।

क्षुपितमार्गसंरोधान्मेदसोवाकफस्यवा ॥
अतिवृद्ध्याऽनिलेनादौशस्तंस्नेहनबृंहणम्
व्यायामशोधनारिष्टमूत्रपानैर्द्विशोधितैः ॥
तत्राभयामयोगैश्चक्षुषयेत्कफमेदसी ॥
घोधिबृक्षकपायस्तुपित्रेत्तमधुनासह । वा
तरक्तंजयत्याशुत्रिदोषमपिदारुणम् ॥
पुराणयवगोधूमशीध्वरिष्टासन्नैस्तथा ॥
शिलाजतुमयोगैश्चगुग्गुलोर्माक्षिकस्यचा
पश्चादातेक्रियांकुर्यादाचरक्तमसाधनीम् ॥

अर्थ—मेद और कफ के मार्ग के रुक-जाने से जत्र वायु अत्यन्त क्षुपित होकर अत्यन्त बढ़जाय तब स्नेहन वा बृंहणक्रिया हित होती है । व्यायाम, शोधन, अरिष्ट गोमूत्रपान, विरेचन तथा मठा और हरड के प्रयोगों से कफ और मेदा को दूर करने का उपाय करें । अत्यन्त की छालके कफ में शहत डालकर पाने से त्रिदोषजन्य दारुण वातरक्त भी दूर होजाता है ।

पुराने जौ, गेहूं, शीधु, अरिष्ट और आसव का प्रयोग करें अथवा शिलाजीत, गुग्गुलु या शहत का प्रयोग करके कफ और मेद को शान्त करै पीछे वातरक्त को दूर करने-वाली क्रिया करें ।

गम्भीरैरक्तमाक्रान्तस्याच्चेतद्वातवर्जयेत्
रक्तपिचातिवृद्ध्यातुपाकमाशुनियच्छति
भिन्नंस्त्रवातिवारक्तंविदग्धंप्रयमेववा ॥
तयोःक्रियाविधातव्याव्यधशोधनरोपणौ
कुयोदुपद्रवाणांचक्रियास्वात्स्वात्चिकि-
त्सितात् ।

अर्थ—गंभीर वातरक्त में जो रक्त वायु से आक्रान्त होती उस में चिकित्सा न करे रक्तपित्त के अधिक बढ़जाने से वातरक्त में तत्काल पाक होता है तब उस के भिन्न होने पर विदग्धरक्त और पीव निकलने उ-गता है । ऐसे समय में पके हुए को वेधन करके भिन्न में शोधन और रोपणकर्त्ता क्रिया करनी चाहिये । और इस में जो कोई उपद्रव खडे होंतो उनकी चिकित्सा रोग रोग के अनुसार करनी चाहिये ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुस्थानानिगूलञ्चयस्मात्प्रायश्चसन्धि-
पु । कुप्यतिप्राक्चयैरुपद्विधस्यचलक्ष-
णम् ॥ पृथग्भिन्नस्यलिङ्गञ्चदोषाधिक्य-
मुपद्रवाः ॥ साध्ययाप्यमसाध्यञ्चक्रियासा-
ध्यस्यचाखिला ॥ वातरक्तस्यनिर्दिष्टा-
समासव्यासतस्तथा । महर्षिणाधिवेश-
यतथैवावस्थिकीक्रिया ॥

अर्थ—इस वातरक्त चिकित्सित नामक अध्याय में वातरक्त के हेतु, उत्पत्ति के स्थान, मूल, प्रायः संधियों में उत्पत्ति होने का कारण, प्राग्भूय, गंभीर और आन्यतर दो प्रकार के मेद, भिन्न वातरक्तके लक्षण दोषों की अधिकता, उपद्रव, साध्यता,

यायता और असाध्यता के लक्षण, साध्य वातरोग की सब तरह की चिकित्सा तथा अवस्थानुसार चिकित्सा आदि सब बातें संक्षेप और विस्तार दोनों प्रकार से वर्णन की गई हैं ॥ इन सब बातों का उपदेश महर्षि आत्रेयने अग्निवेश को किया है ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशाश्रित्य-

सायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां चिकित्सितस्थानेवातरक्तचिकित्सितं नामैकौनत्रिशोऽध्यायः ॥२९॥

—:—

त्रिंशोऽध्यायः

अथातो योनिव्यापच्चिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम योनिव्यापच्चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

दिव्यौपधिजलस्वादुधातुचित्रशिलावतिपुण्येहिमवतःपाश्र्वेसुरसिद्धार्षिभेविते ॥ विहरन्ततपोयोगात्तत्त्वज्ञानार्थं दार्शनम् ।

कृष्णात्रियंजितात्मानं अग्निवेशोऽनुपृष्ठवान् भगवन् ! रत्यपत्यानां मूलनायः परं नृणां

म् । तद्विधातो गदैश्चासां क्षियते योनिमाश्रितैः ॥ तासां तेषां समुत्पत्तिमुत्पन्नानां श्रलक्षणम् । औषधं श्रोतुमिच्छामि प्रजा नुग्रहकाम्यया ॥ इति शिष्येण पृष्टस्तुभो वाचां पितरोऽत्रिजः ।

अर्थ—पुण्यवान् हिमालयके उच्चाश्रित पर जहां अनेक प्रकारकी दिव्य औषधियां उगी हुई थीं, मिष्टजल वह रहा था,

जहां अनेक प्रकारकी धातुमय शिला सुशोभित थीं और जहां अनेक देवता, सिद्ध और श्रापिभुनि निवास करते थे वहां विचरे-ते हुए तपोयोग सम्पन्न और तत्वज्ञानार्थ-दर्शी, जितेंद्रिय कृष्णात्रियसे अग्निवेशने प्रश्न किया कि हे भगवन् ! मनुष्यों के लिये स्त्रियां त्रिपयभोग और संतानोत्पत्ति का मूळ कारण हैं, परन्तु जब उनकी योनियों में रोग होजाता है, तब दोनों बातों का नाश होजाता है अतएव हे प्रभो ! मैं प्रजाकी भलाईके हेतु स्त्रियोंके योनिरोगोंकी उत्पत्तिके कारण, उत्पन्न हुए रोगोंके लक्षण और उनकी औषध श्रवण करनेकी इच्छा करता हूँ ॥

शिष्यके इस प्रश्नको सुनकर महर्षि आत्रेय ने व्याख्या करनेका प्रारम्भ किया ।

योनिरोगोंकी संख्या ।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टारोगसंग्रहे ॥ मिथ्याचारेणताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तपेन च । जायन्ते बीजदोषाश्च देवाश्च शृणुताः पृथक् ॥

अर्थ—रोगसंग्रहाध्याय में यह धात वर्णन कर चुके हैं कि योनिरोग बीस प्रकारके होते हैं । इन सब रोगोंकी उत्पत्ति स्त्रियोंके मिथ्या आहार विहार दुष्ट आर्तच, बीज दोष और देवप्रकोप इन चार कारणों से होते हैं ।

वातल योनिरोगों के लक्षण ।

वातलाहारचेष्टायावातलायासमीरणः । विदुद्धो योनिमाश्रित्य येनेस्तोदंसवेदनम् ॥ स्तम्भं पिपीलिकासृष्टिभिवर्ककं शतां तथा ॥

करोतिमुष्णिमायामंवातजांश्चापरान्गदान्
सास्यात्सशब्दस्त्फेनंतनुरूक्षार्तवानिलात्

अर्थ—यातल प्रकृतिवाली स्त्रीके वातो-
त्पादक आहार, विहार और चेष्टा करने
के कारण वायु अत्यन्त कुपित होकर यो-
निका आश्रय लेकर योनि में वेदनायुक्त मुई
छेदनेके समान पीडा उत्पन्न करती है तथा
स्तम्भता, चीटी चलने का सा अनुभव,
कर्कशता, सुति, आयाम, और अन्य वातज
रोग भी उत्पन्न होते हैं । तथा वात के
कारण उस स्त्रीकी योनिमेंसे पतला, रूखा

शब्द करता हुआ ज्ञागदार रक्तनिकलता है

पित्तल योनिरोगोंके लक्षण ।

व्यापचधाम्ललवणक्षाराद्यैःपित्तजाभवेत् ॥
दाहपाकज्वरोष्णार्तानीलपीतासितार्तवा।
भृशोष्णगुणपलावायोनिस्पात्पिचदूपिता

अर्थ—खट्टे, नमकीन और क्षारादि मि-
श्रित पदार्थों के अत्यन्त सेवन से पित्तज यो-
निरोग होते हैं, उनरोगोंके होने से योनिमें
दाह, पाक, ज्वर, उष्णता, और यातना
होती है तथा योनि में से नीला, पीला, काला
आर्चव निकलता है और अत्यन्त उष्ण
मुईकीसी गंधका स्राव होता रहता है ।

श्लैष्मिकं योनिरोगो के लक्षण ।

कफोऽभिष्यन्दिभिर्द्वोयोनिचेदूपयोस्त्रि
याः । सशीतापिच्छलां कुर्यात्कण्डूग्रस्तां
सवेदनाम् ॥ पाण्डुवर्णतथापाण्डुपिच्छि
लार्तववाहिनीम् ।

अर्थ—अभिष्यन्दी आहार के सेवन से
फक्त बढकर स्त्रीकी योनि में कफज रोगोंको

उत्पन्न करता है, इन रोगों के कारण योनि
में शीतलता, पिच्छिलता, खुजली, वेदना
और पाण्डुता होती है और योनि मेंसे पीला
पीला गिलगिला आर्चव निकलता है ॥

सान्निपातिक योनिरोगोंके लक्षण
समश्नत्यारसान्मर्वान्दूपयित्वात्रयाम-
लाः ॥ योनिगर्भाशयस्थैःस्वैर्योनियुञ्ज
न्तिलक्षणैः । साभवेद्दाहशूलार्ताश्वेतपिच्छि
लवाहिनी ॥

अर्थ—त्रिदोषकारक आहार के सेवन
से सम्पूर्ण रसों को दूषित करके योनि और
गर्भाशयका आश्रय लेकर अपने २ लक्षणों
को प्रकट करते हैं, इन रोगों के होने से
दाह, शूल और यातना अधिक होती है
तथा योनि में से सफेद और गिलगिला
आर्चव निकलता है ।

रक्तपित्तजन्य योनिरोग ।

रक्तपित्तकरैर्नार्यारक्तपित्तेनदूषितम् ।
अतिप्रवर्ततेयोन्यालब्धेबीजेऽपिसाम्रजाः ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्पादक आहारादि सेवन
करने से रक्त पित्त के कारण दूषित होकर
योनिमें से अत्यन्त रक्त निकलने लगता है
कीजके ग्रहणकरने परभी स्त्रीके संतान न-
हीं होती है ॥

अरजस्का योनिलक्षण ।

योनिगर्भाशयस्थंचेत्पित्तंसदूपयेतदसूक्रा
सारजस्कामताकार्शयैववर्णजननीभृशम् ॥

अर्थ—योनि और गर्भाशय में स्थित
पित्त जब रक्त को दूषित करदेता है तब
रजोवर्ध होना बन्द होजाता है और स्त्री

अत्यन्त दुर्बल और विवर्ण होजांती है, ऐसी योनि को अरजस्का कहते हैं ।

अचरणा योनि के लक्षण ।

योन्यामधावनात्कण्डूजाताः कुर्वन्ति जन्तवः । स्नास्यादचरणाकण्डूवातयातिनरकांक्षिणी ॥

अर्थ—योनि को न धोने से उसमें एक प्रकार के अदृश्य छोटे कीड़े पडकर खुजली उत्पन्न करते हैं, उस खुजली के कारण योनि पुरुषकी अत्यन्त इच्छा करती है, ऐसी योनि को अचरणा कहते हैं ॥

अतिचरणा योनि के लक्षण ।

पवनोऽतिव्यवायेन शोफसृष्टिरुजःस्त्रियाः फरोतिकुपितो योनौ सा चातिचरणामता

अर्थ—अत्यन्त मैथुन करनेके कारण वायु कुपित होकर योनि में सूजन, सुति और वेदना करदेती है ऐसी योनि को अतिचरणा कहते हैं ।

प्राक्चरणा योनि के लक्षण ।

मैथुनादातिवालायाः पृष्ठजंघोरुवक्षणम् । रुजपन्दूपयेद्योर्निवायुः प्राकरणातुसा ॥

अर्थ—अत्यन्त बाला स्त्री के साथ मैथुन करने से उसकी पीठ, जांघ, ऊरु और वक्षण में वेदना उत्पन्न करके वायु योनि को दूषित कर देती है, ऐसी योनि को प्राक्चरणा कहते हैं (प्राक्चरणा निग्रमित समय से पूर्व संगम की हुई) ।

उपप्लुता योनि के लक्षण ।

गर्भिण्याः श्लेष्मलाभ्यासाच्छदिः श्वासविनिग्रहात् । वायुः शुद्धः कफयोनिमुपनी

यमदूपयेत् ॥ पाण्डुसतोदतमास्त्रावंश्वेतं स्रवतिवाकफम् । कफत्रातामयव्याप्तासास्याद्योनिरुपप्लुता ॥

अर्थ—कफजन्य आहार के अत्यन्त सेवन करने से, तथा वमन, श्वास आदिवेगों के रोकने से गर्भिणी स्त्री के वायु दूषित होकर कफको योनि में लाकर योनि को दूषित करदेती है तब योनिमें से सुई छिदने के समान वेदना से युक्त पाण्डुवर्ण का स्राव होता है अथवा सफेदर कफ निकलता है । कफवात रोगों से युक्त ऐसी योनि को उपप्लुता कहते हैं ।

परिप्लुता योनि के लक्षण ।

पित्तलायानृसंवासेक्षवधूद्धारधारणात् । पित्तसंमूर्च्छितो वायुर्योनिं दूषयति स्त्रियाः शूनास्पर्शाक्षमासार्तिर्नालपीतमसृक्त्ववेत् श्रोणीवक्षणपृष्ठातिज्वरातायाः परिप्लुता

अर्थ—पित्तप्रकृतिवाली स्त्री के मैथुन के समय छींक या डकार आवै, और यदि वह उनको रोकले तो पित्तयुक्त वायु कुपित हो कर स्त्रीकी योनि को दूषित करदेती है उस समय योनि ऐसी सूजजाती है कि हाथ नहीं लगाया जासکتा है और उस में से वेदनायुक्त नीला पीला स्राव होने लगता है। तथा स्त्री की कमर, वक्षण, और पीठ में वेदना और ज्वर होता है । ऐसी योनि को परिप्लुता कहते हैं ।

उदावृता योनि के लक्षण ।

वेगोदावर्तनाद्योनिमुदावर्तयतेऽनिलः । सारुगताग्जः कच्छेणोदावृत्ताविमुञ्चति

अर्थ—अधोवेगों के रोकने से वायु के कारण योनि का वेग ऊपरको होता है, इस से बड़े फट के साथ रजःसंबंधी आर्तव निकलता है इसे उदावृता योनि कहते हैं।

उदावर्तिनी योनि के लक्षण।

आर्तवेयाविमुक्तेतुतत्क्षणंलभतेमुखम् ।
रजसोगमनाद्दृङ्गेयोदावर्तिनीवुधैः ॥

अर्थ—आर्तवके निकलने से जिसमें तत्काल चैन पड़जाता है, उस योनि को रजके ऊपर जाने के कारण उदावर्तिनी कहते हैं।

कर्णिनीयोनि के लक्षण ।

अकालेवाहमानायागर्भेणपिहितोऽनिलः
कर्णिकाञ्जनयेयोर्नाश्लेष्मरक्तेनमूर्च्छितः
रक्तमार्गावरोधिन्यासातयाकर्णिनीमता।

अर्थ—छोटी अवस्था में गर्भ धारण करने से गर्भ के कारण आच्छादित वायु कफ और रक्त से मिली हुई एक प्रकार की कर्णिका योनि के मुखमें उत्पन्न करदेती है, यह रक्त के मार्गको रोकदेती है इससे इस योनि को कर्णिनी कहते हैं ॥

पुत्रघ्नी के लक्षण ।

रौक्ष्याद्वायुर्यदागर्भजातंजातंविनाशयेत्
दुष्टशोणितजंनार्याःपुत्रघ्नीनामसामता ॥

अर्थ—जो गर्भ स्त्री के दूषित रक्त से उत्पन्न होता है उसको जब जब वह उत्पन्न होता है तब तबही वायु रूक्षता के कारण नष्ट करदेती है । ऐसी योनि को पुत्रघ्नी कहते हैं ॥

अन्तर्मुखी योनि के लक्षण ।

व्यवायमतिवृत्तायाभजन्त्यास्त्वत्रपीडितः

वायुर्मिथ्यमस्थिताद्वापायोनिस्तोतसिसं-
स्थितः । वक्रपत्याननंपोन्याःसास्थिमां
सान्निध्यार्तिभिः ॥ भृशार्तिर्मथुनासक्ता
योनिरन्तर्मुखीमता ।

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्त पेट भरकर खाने के पीछे अन्याय रीति से पुरुष संगम में प्रवृत्त होती है तब वायु उसकी योनि के स्रोत में स्थित होकर योनि के मुखको टेढ़ा करदेती है उसको हड्डी और मांस में अत्यन्त घेदना होती है, ऐसी स्त्री मैथुन में असमर्थ होजाती है, इसे अन्तर्मुखी योनि कहते हैं ॥

सूचीमुखी के लक्षण ।

गर्भस्थायाःस्त्रियारौक्ष्याद्वायुर्योनिमदूष-
यन् ॥ मातृदोषादशुद्धारात्कुर्यादसूची
मुखीतुसा ।

अर्थ—माताके दोष के कारण वायु रूक्ष होकर गर्भस्थ कन्याकी योनि को दूषित कर के उसके योनिद्वारको छोटा करदेती है । ऐसी योनि को सूचीमुखी कहते हैं ।

शुष्का योनि के लक्षण ।

व्यवायकालेरुन्धन्त्यावेगात्प्रकुपितोऽ-
निलः ॥ कुर्याद्विप्रमृत्रमद्भार्तिशोपंयोनि
मुखस्यतु ।

अर्थ—मैथुन के समय जब स्त्री मलमूत्र के वेगों को रोक लेती है तब वायु कुपित होकर विष्टा और मूत्र को रोककर योनि को शुष्क करदेती है, ऐसी योनि को शुष्का कहते हैं ॥

वामिनी के लक्षण ।

पटहात्सप्तरात्राद्वाशुक्कंगर्भाशयंगतम् ॥

सरुजनीरुजंवापियास्रवेत्साचवामिनी ।
 अर्थ—जिस स्त्री की योनिमें से गर्भाशय
 में पहुंचा हुआ वीर्य वेदना से वा बिनाही
 वेदना छः सात दिन के भीतर निकल पड़ता
 है उसे वामिनी कहते हैं ॥

पण्डी के लक्षण ।

वीजदोपात्तुगर्भस्थामारुतोपहताशया ॥
 नृद्वेपिण्यस्तनीचैवपण्डीस्यादनुपक्रमा ।
 अर्थ—बीज दोष के कारण जिस गर्भस्थ
 फन्याका गर्भाशय नष्ट होजाता है वह पुरुष
 की इच्छा नहीं करती है, न उसके कुच
 निकलतेहैं, ऐसी स्त्री पण्डी वा हीजडी क-
 हातीहै । इसकी चिकित्सा हीं नही होती है ।
 महायोनि के लक्षण ।

त्रिपमंदुःखशय्यायामैधुनात्कुपितोऽनि-
 लः ॥ गर्भाशयस्ययोन्याश्चमुखांघृष्टम्भये-
 त्स्त्रियाः । असंवृतमुखासातिरूक्षफेना-
 स्रवाहिनी ॥ मांसोत्सन्नामहायोनिःपर्व-
 वंक्षणशूलिनी । इत्येतेलक्षणैःप्रोक्ताविं-
 शतिर्योनिजागदाः ॥

अर्थ—दूटे हुए कष्टोत्पादक पलंग पर
 विपमरति से सोकर जो पुरुष संगम में प्र-
 वृत्त होती है, उसकी वायु कुपित होकर ग-
 र्भाशय और योनिमुख को स्तंभित कर दे-
 ती है, इसकारण से योनि असंवृत मुखा-
 वेदनायुक्त, रूखा और क्षागदार आर्चव नि-
 कालने वाली और मांसोपचिता होजाती है,
 इस स्त्री के संधि और वंक्षण में शूल होने
 लगता है, यह महायोनि होती है । बीस
 प्रकार के योनिरोग और उन के लक्षण इस
 प्रकार से वर्णन किये गये हैं ॥

नशुक्रंधारयत्येभिर्दोषैर्योनिरुपद्रता । त-
 स्माद्गर्भनग्रह्णीतेस्त्रीगच्छत्यामयान्व-
 हन् ॥ गुल्माश्रमःप्रवरादींश्वावातार्थैश्चाति-
 पीडनम् ।

अर्थ—इन दोषों से उपद्रुत योनि वीर्य
 धारण नहीं कर सकती है, न गर्भ को प्र-
 हण कर सकती है तथा गुल्म, अर्श और
 प्रदरादिक अनेक प्रकार के उपद्रव हो आते
 हैं और वह वातरोगों से सदाही पीडित
 रहती है ।

योनिरोगों में दोषपरत्व ।

आसांपोडशयास्तासांमध्येद्वेपित्तदोषजे ॥
 परिप्लुतावमिनीचवातपित्तात्मकेते !
 कर्णिन्पुपप्लुतेवातकफात्शेषास्तुवातजाः
 देहंवातादयस्तासांस्वैर्लिङ्गैःपीडयन्तिहि ।

अर्थ—इन बीस प्रकार के योनि दोषों
 में पहिले चार वातज, पित्तज, कफज और
 सान्निपातिक हैं । शेष सोलह में से पहिले
 दो (रक्तपित्तजा और अरजस्का) पित्तसे
 उत्पन्न हैं । परिप्लुता और वामिनी वात-
 पित्तसे उत्पन्न हैं, कर्णिनी और उपप्लुता
 वातकफ से उत्पन्न हैं और शेष आठ केवल
 वात से उत्पन्न है । इन में से वातादिक
 दोष अपने अपने लक्षणों से देह को पीडित
 करते हैं ॥

वातज रोगों में चिकित्सा ।

स्नेहनस्वेदवस्त्यादिवातलास्रानिलापहम् ।
 अर्थ—वातज योनि रोगों में स्नेहन स्वे-
 दन और वस्त्यादि उपचारों से वात शान्त
 होजाती है ।

पित्तजरोगों में क्रिया ।

कारयेद्रक्तपित्तघ्नंशीतपित्तकृतामुच ।

अर्थ—पित्तजनित योनिरोगों में रक्तपित्त नाशिनी शीतक्रिया हित है ॥

कफजयोनिरोगों में क्रिया ।

श्लेष्मलासुचरुक्षोष्णकर्मकुर्याद्विचक्षणः॥

अर्थ—कफजयोनिरोगों में रूक्ष और उष्णकर्म करना हित है ।

सन्निपातिक योनिरोग में चिकित्सा ।

सन्निपातेविमिश्रन्तुसंस्पृष्टासुचकारयेत् ।

अर्थ—त्रिदोषज और द्विदोषज योनि-रोगों में तीनों प्रकार की मिलीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ।

वायुजन्ययोनिरोग में चिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नातथायोनिंदुःस्थितांस्थाप-

येत्पुनः । पाणिनानामयेज्जिह्वांनिःसृ-

तांस्रमवेशयेत् । वर्धयेत्संस्पृष्टाञ्चैवविष्टतां

परिवर्तयेत् । योनिःस्थानापवृत्ताद्दिशस्य

भूतास्त्रियामता ॥

अर्थ—वायुजन्य योनिरोगों में योनिको स्निग्ध और स्वेदित करके जो योनि अपने टीक स्थान में न हो उसे टीक स्थान पर लाये । जो योनि टेढ़ी हो उसे हाथ से न-वाये, जो बाहर निकल आई हो उसे भीतर को फिर प्रवेश करे, सुकड़ी हुई योनिको चौड़ी करे और चौड़ी हुई को सुकड़ी करे । जो योनि अपने निज स्थान से हटजाती है वह स्त्रियों के शल्यस्वरूप है ॥

सर्वान्पापत्रयोनित्तुकर्माभिर्वगनादि-भिः । मृदुभिःपञ्चभिर्नारींस्निग्धस्विन्ना

मुपाचरेत् ॥ सर्वतःसुविशुद्धायाःशेषक-

र्माविधीयते । वातव्याधिहरंकर्मघाता-

र्तानांसदाहितम् ॥ आदकानूपजैर्मांसैः-

क्षीरैःसतिलतण्डुलैः । सवातघ्नौपधैर्नाडी

कुम्भीस्वेदैरूपाचरेत् ॥ युक्तांलवणतैलेन

साद्रमप्रस्तरशङ्करैः । स्विन्नांकोष्णांशुसि

क्तांगींवातघ्नैर्भोजयेद्द्रवैः ।

अर्थ—सब प्रकार के योनिरोगों में स्त्री

को प्रथम स्नेहन और स्वेदन कर्म कराके

शुद्ध यमन विरेचनादि पांचों कर्मोंका प्रयोग

करे, इस तरह जब योनि सब तरहसे शुद्ध

होजाय तब शेष कर्मों का विधान करे ।

वायु से उत्पन्न योनि रोगों में सदैव वात

व्याधिनाशक कर्म हित होते हैं । वातज यो-

नि रोगमें औदक और आनूपमांस, दूध,

तिल, चावल और वातनाशक औषधियां

इन सब का पाक करके नाडी स्वेद कुम्भी

स्वेद द्वारा उपचार करे । अथवा लवण और

तैल का योग करके अद्रमघन प्रस्तर स्वेद

और संकर स्वेद द्वारा स्वेदित करके गरम

जल का परिषेक करे पीछे वातनाशक मांस

रसों का भोजन करावै ॥

अन्य प्रयोग ।

वलाद्रोणद्वयकाथेघृततैलादकद्वयमास्थि-

रापयस्याजीवन्तीवीर्यभक्तजीवकैः ॥

श्रावणीपिप्पलीमूलपीलुमापारुष्यपणि-

भिः । शर्कराक्षीरकाकोलिकाकनासाभि

रेवच ॥ पिष्टुश्चतुर्गुणक्षीरंतथैवचयथाव

लम् । वातापित्तकृतानुरोगानहत्वागर्भेद

धातितत् ॥

अर्थ—बलाके दो द्रोण काथ में घी और तैल प्रत्येक एक एक आठक डाले, तथा सालपर्णी, क्षीर विदारी, जीवन्ती, क्षीरकाकोली, ऋषभक, जीवक, श्रावणी पीपलामूल, पीपल, मांसपर्णी, शर्करा, क्षीरकाकोली, कौआटोटी इन सबका कल्प चार सेर, और सोलह सेर दूध इन सब को पकावै । इस घृत तैल का यथावत् सेवन करने से वात पित्तरोगों के दूर होने पर स्त्री गर्भधारण कर लेती है ॥

काश्मर्यादि घृत ॥

काश्मर्यात्रिफलाद्राक्षाकासमर्दपरूपकैः ।
पुनर्नवाहरिद्राभ्यांकाकनासासहाचरैः ॥
शतावर्यागुड्ढ्याश्रमस्थमसमैर्धृतान् ।
साधितपोनिवातघ्नगर्भदं परमापिबेत् ॥

अर्थ....खंभारी, त्रिफला, द्राक्षा, कसौदी, फालसा, सांठ, दोनों हलदी, कौआटोटी, सहचर, सितावर और गिलोय इन सब में से प्रत्येक का कल्क दो दो तोले इन सब के समान घृत मिलाकर चौगुने जल के साथ पाककरै । यह घृत सब प्रकार वात जन्य रोगोंको दूर करके गर्भधारण करानेवाला है

अन्यप्रयोग ।

पिप्पल्यःकुञ्चिकाजाजीवृषकंसैन्धवंवचाम् । यवत्ताराजमोदौचशर्करांचित्रकं तथा ॥ पिष्ट्वासर्पीपिष्टृष्टानिपाययेत्प्रसन्नया । योनिपाश्चात्तिहृद्रोगगुल्मार्शो विनिवृचये ॥

अर्थ—पीपल, कालाजीरा, सफेद जीरा, अडूसा, सेंधानमक, वच, जवाहार, अज-

मोदशर्करा, चीता, इन सब का कल्क करके घीमें भूनकर प्रसन्ना के साथ सेवन करै तो योनिशूल, पार्श्वशूल, यातना, हृद्रोग गुल्मरोग और अर्श दूर होजाते हैं ।

वृषकंमातुलुङ्गस्यमूलानिमदयान्तिकाम् ।
पिवेत्सलवणैर्मन्त्रैःपिप्पल्यौकुञ्चिकेतथा ॥
श्वदंष्ट्रांशुषकरास्नांपिवेच्छ्लेपयःशृतम् ।
गुड्चीत्रिफलादन्तीचत्रायैश्चपरिपेचयेत् ॥
सैन्धवंतगरकुण्डवृहतीदेवदारुणः ॥ समांशैःसाधितकल्कैस्तेलधार्यरुजापहम् ॥

अर्थ—अडूसे की जड़, विजैरै की जड़, मल्लिका की जड़, इनको पीसकर सेंधेनमक और मद्य के साथ पान करै, इसी तरह से पीपल और जीरा पीस कर सेंधेनमक और मद्य के साथ पीवै । जो योनि में शूल होता होतौ गोखरू, अडूसा और रास्ना पीसकर दूध के साथ पाक करके पान करै अथवा गिलोय, त्रिफला और दन्ती के काथ से योनि का प्रक्षालन करै । अथवा सेंधानमक, तगर, कूठ, फटेरी, देवदारु, इनको समान भाग लेकर इनके कल्क के साथ तैल पकावै फिर इस तैल में रुईका फोआ भिगो कर योनि में रख देवै इस से वेदना जाती रहती है ।

अन्य पित्तु ॥

गुड्चीमालतीन्याघ्राश्रयसीसुरदारुभिः ॥
बलाचित्रकयष्ट्यान्हृद्युधिकाभिश्चकार्पिकैः ॥
तैलप्रस्थंगवांमन्त्रेसीरेणाद्रिगुणंपचेत् ॥
वातातार्थायैपिचुंतस्माद्योनौचप्रणयेत्सदा ॥
अर्थ—गिलोय, मालती, फटेरी रास्ना,

देवदारु, सरैटी, चीता मुलहटी और चमेली की जड़ इनको एक एक कर्प लें। इन के कल्क के साथ एक प्रस्थ तेल, दो प्रस्थ गोमूत्र और इतनाही दूध मिलाकर पाक करे इस तेल में एक फोआ भिजो कर वातरोग से पीडित स्त्री की योनि में रख दें। इस से योनि सदा प्रणिहित रहती है।

अन्यप्रयोग ॥

हिंसाकल्कन्तुयातार्ताकोष्णमभ्यज्यधा रयेत् ॥

अर्थ—हिंसा को पीस कर घीमें सानकर उसकी लुगदी को यातार्ता योनि में थोड़ा गरम करके रख दें ॥

कफपित्तरोगों में क्रिया ॥

पञ्चवल्कस्यपित्तार्ताश्यामादीनांकफातुरा । पित्तलानान्तुयोनीनांसेकाभ्यङ्गपिचुक्रिया ॥ शीताःपित्तहराःकार्याःस्नेह नानिघृतानिच ।

अर्थ—पित्तजयोनिरोगों में पंचवल्कलका कल्क तथा कफजन्य योनिरोगों में अनंत-मूल का कल्क योनि में रखें। पित्तलायोनि वाली स्त्रियों की योनि में परिवेक, अभ्यंग पिचुक्रिया, पित्तनाशिनी शीतलंक्रिया, तथा स्नेहनकर्ता घृतों का प्रयोग हित है।

शतावरी घृत ।

शतावरीमूलतुलाःचतस्रःसंपपीडयेत् ॥

रसेनक्षीरतुल्येनपचेत्तेनघृताढकम् ॥

जीवनीयैःशतावरीमृद्धीकाभिःपरूपकैः॥

पियालैश्चाक्षकैःपिष्टैर्द्विघृष्टीमधुकैःपचेत् ॥

सिद्धेशीतेचमधुनःपिप्पल्याश्चपलाष्टकम् ॥

सितादक्षपलोन्मिश्रान्द्विघृष्टान्पाणितलंततः
योन्पसृक्शुकदोषध्नंघृत्यंघुंसवनश्चतत् ॥
संतंक्षयरक्तपित्तकांसंश्यासंहलीमकम् ।

कामलांवातरक्तञ्चवीसर्पट्टिच्छिरोग्रहम् ॥
उन्मादायामसंन्यासंवातपित्तात्मकंजयेत्

अर्थ—सितावरकी जड़ को चार तुला लेकर कूट डालें और उसे कपड़े में निचोड़ कर रस निकाल लें। फिर इस रस में इतनाही दूध और एक आठक घृत डाल कर पकायें तथा जीवनीय गणोक्त द्रव्यों का कल्क, सितावर, किसमिस, फालसा, पियाल, दोनों प्रकार की मुलहटी सब दो दो तोले डालकर पकायें। पकने को पाँछे ठंडा होने पर इस घृत में शहत आठ पल, पीपल आठ पल और मिश्री दस पल इन सबको मिलाकर प्रति दिन दो तोले सेवन करें तौ योनिदोष, रक्तदोष, वीर्यदोष, क्षत, क्षय, रक्तापित्त, खाँसी, श्वास, हलमिक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्रोग, शिरोग्रह, उन्माद, आयास, सन्यास और अन्य वातपित्तात्मक रोग दूर होजाते हैं। यह घृत पुष्टिकारक और पुंसवन है।

अन्यउपाय ॥

एवमेवक्षीरसार्पेर्जीवनीयोपसाधितम् ॥
गर्भदांपित्तलानांचयोनीनास्याद्भिपग्नि तम् ॥

अर्थ—इसीतरह से जीवनीय गणके साथ सिद्ध किया हुआ दूध का घी गर्भकारक और पित्तलयोनिरोगोंको दूर करानेवाला है।

कफजयोनिरोगों में चिकित्सा ।
योन्याःश्लेष्मदुष्टायावर्तिःसंशोधनीहि

ता ॥ वाराहेवहुशःपित्तभाविर्नक्तकैःकृ
ता ॥ भावितंपयमारस्यमापचूर्णससैन्ध
वम् ॥ वर्तिःकृतामुहुर्भार्याततःसेन्यामुखा
भुना । पिप्पल्यामारिचैर्मापैःश्रताद्वा
कृष्टसैन्धवैः ॥ वर्तिस्तुल्याप्रदोशिन्याघा
र्यायोनिविशोधनी ॥

अर्थ—कफदूषित योनियों में संशोधनी
बत्ती का प्रवेश करना हित है । पुराने
कपड़ेकी बत्ती बनाकर उसे शकर के पत्ते
की कई भावना देकर योनि में रखदेंवे ॥
उरद का चून और उस के समान संधा-
नमक पीसकर एक बत्ती बनावे इसको
आक के दूधकी भावना देकर योनिमें थोड़ी
देर रखे फिर उसे गरमजल से धोडाले ।
अथवा पीपल, काठीमिरच, उरंद, सोंफ,
कूठ, संधानमक इन सबकी तर्जनी उंगली
के समान बत्ती बनाकर योनि में रखने से
योनि शुद्ध होजाती है ।

योनिशोधक तैल ।

उदुम्बरशलाहनाद्रोणमन्द्रोणसंयुतम् ॥
सपञ्चबल्ककुलकनिम्बमालतिपल्लवम् ।
निशांस्थाप्यंजलेतरिस्तैलप्रस्थंविपाच
येत् ॥ लाक्षाधवपलाशत्वङ्निर्यासैःशा
ल्मलेनच । पिष्टैःसिद्धञ्चतत्तलंपिचुयो-
नौनिधापयेत् ॥ सशर्करैःकपायैश्चशीतैः
कुर्वीतसेचनम् । पिच्छिलाबिट्टताकाल
न्दुष्टयोन्यथदारुणा ॥ सप्ताहात्थुङ्गति
क्षिप्रमपत्यञ्चापिबिन्दति ।

अर्थ—कच्चे गूलर के एकद्रोण छिलके
तथा इतनेही पञ्चबल्क, परवलके पत्ते, नीम

के पत्ते, मालती के पत्ते इनसब को दूने
जल में रात्रिके समय भिगोदेंवे । प्रातःकाल
इसे मसलकर रस छानले, इस रसमें एक
प्रस्थ तैल पकावै, पकते समय इसमें लाख,
धौकानिर्यास, पलासका निर्यास, सेसर का
गोंद पीसकर डालदे । जब पकजाय तब
इसमें रुईका एकफोआ भिगोकर योनि में
रखदेंवे, तदनंतर, पूर्वोक्त उदुम्बरादि द्रव्यों
के शतल काथ में शर्करा मिलाकर योनि
को धोंवे । इस प्रयोग से पिच्छिला, विट्टता
दूषिता, दारुणा, कैसीही योनि क्यों न हो
सातदिन में शुद्ध होजाती है और शीघ्र उस
के सन्तान भी होती है ।

अर्न्यप्रयोग ।

उदुम्बरस्यदुग्धेनपदकृत्वोभावित्तास्ति-
लान् ॥ तैलकाथेचतस्यैवसिद्धंभार्यञ्च
पूर्ववत् ।

अर्थ—गूलरके दूधमें तिलोंको छः भाव-
ना देकर उनका तेल निकाले । इस तेल
को गूलरकी छालके काथमें पकावै, इसमें
रुईका फोआ भिगोकर योनिमें भीतर रखने
से पूर्वोक्त गुण होते हैं ।

घातक्यादि तैल ।

घातक्यामलकीपत्रस्रोतोजमधुकोत्पलैः ॥
जम्बाप्रमध्यकासीसलोधकद्रुफलतिन्दु
कैः ॥ सौराष्ट्रिकदाडिमत्वशुदुम्बरशला
हुभिः ॥ असमात्रैरजामूत्रक्षीरेचद्विगुणे
पचेत् । तैलप्रस्थंपिचुंतस्माद्योनौचमण
येत्ततः ॥ कटीपृष्ठत्रिकाभ्यङ्गस्नेहोवस्ति
चदापयेत् । पिच्छिलस्राविणीयोनिर्वि

प्लुतोपप्लुतातथा ॥ उत्तानाचोन्नता
शुनासिद्धेरत्सस्फोटशूलिनी।

अर्थ—घायके पत्ते, आंवलेके पत्ते, शंख
नाभि, मुलहठी, मौलकमल, जामनकीमिगी,
झामंकीमिगी, हीराकसांस, लोष, कायफल,
तेंदू, सौराष्ट्रमृत्तिका, अनार के छिलके क-
ष्ठागूहर ये सब दो २ तोले लेकर पीसले,
इनमें एक प्रस्थ तेल, बकरीका मूत्र दो
प्रस्थ और चार प्रस्थ दूध डालकर पकावै।
इस तेलमें एक हर्षका फोआ भिगोकर योनि
में रक्खै, तथा, कमर पीठ और त्रिक में
इस तेलकी मालिश करावै। स्नेहन वस्ति
में इसका प्रयोग करै। इस तेल से पि-
च्छिलत्वाभिणी, विच्छुता, उपप्लुता, उत्ताना
उन्नता, शोधयुक्ता, स्फोटयुक्ता, और शूल
युक्तयोनि अच्छी होजाती है।

अन्यप्रयोग।

करीरुधवनिम्बार्कवेणुकोशाश्रजाम्बवैः॥
जिन्निणीहृत्पमूलानांकाथःमार्द्धीकशीधुभिः
सशुक्तैर्धावनंभिथ्रैर्योन्यासावविनाशनम्॥
कुर्यात्सतक्रगोमूत्रशुक्तैर्वात्रिफलारसैः।

अर्थ—करील, धौकी लकडी, नीमकी
छाल, आमकी जड़, वेणु, कोशाश्र, जामन
की गुठली, मजीठ और अडूसे की जड़,
इन सब का काथ, दाखकां मद्य और शुक्त
इनको मिलाकर योनिको धोने से उस
का स्राव मिटजाता है, इसी तरह से तमक,
गोमूत्र और शुक्त मिलाकर अथवा केवल
त्रिफला के रससे योनि को धोवै।

योनिरोग में अवलेह।

पिप्पल्ययोरजःपथ्यामयोगामधुनाहिताः

अर्थ—योनिरोग में पीपल, लाहचूर्ण,
हरद इनका चूर्ण शहत के साथ चाटने से
बहुत उपयोगी होता है ॥

योनिरोग में वस्ति कर्म।

श्लेष्मलायांकटुप्रायाःसमूत्रावस्तयोहिताः
पित्तसमधुरक्षीरावातेतैलाम्लसंयुताः ॥

सन्निपातसमुत्थायाःकर्मसाधारणमतम्।

अर्थ—श्लेष्मला योनि में कटुद्रव्यों से
युक्त गोमूत्रकी वस्ति हितहै। पित्तल योनि
में मधुर क्षीर युक्त वस्ति तथा वातलायोनि
में तेल और खटाई की वस्ति उपयोगी
होती है। इसी तरह त्रिदोषज योनि रोगों
में तीनों दोषोंकी मिलाई हुई चिकित्सा हित
कर होती है ॥

रक्त प्रदर में चिकित्सा।

रक्तयोन्यामसृग्वर्णंरजुवदंसमीक्ष्यच ॥
वतःकुर्याद्यथादे।परक्तस्थापनमापधम्।

अर्थ—जिस योनि में से रक्त बहता हो
उस में रक्तका रंग देखकर दोषके अनुसार
रक्तको रोकने की औपध देवै।

वातज रक्तप्रदरमें चिकित्सा।

तिलचूर्णदधिघृतंफाणितंशौकरीवसा ॥
सौंद्रेणसंयुतंपेयंवातासृग्दरनाशनम्। चं-
राहस्थरसोमेध्यःसकौलन्थोऽनिलाधिकै
शर्करातैलयष्ट्याहनागैर्वायुतंदीधि ॥

अर्थ—तिलका चूर्ण, दही, घी, राव, और
शर्करकी चर्बी इनको शहतके साथ सेवन
करने से वातज रक्तप्रदर दूर होजाता है।
अथवा कुलधाके काथमें तिद्ध किया हुआ
शर्करका मांसरस देवै अथवा चीनी, तेल,

मुलहठी और सोंठ इनके साथमें दही देवी
पैत्तिक रक्तप्रदरमें चिकित्सा ।

पयस्योत्पलशालूकविसकालीयकाम्बु-
जान् ॥ सपयःशर्करांक्षौद्रपैत्तिकेऽमृगदरे-
पिवेत् ।

अर्थ—पैत्तिक रक्तप्रदरमें क्षीरकाकोली,
नीलकमल, शालूक, कमलनाल, कार्णायक
और पद्मकमल इनके कल्क को दूध, चीनी
और शहत के साथ सेवन करने से पैत्तिक
रक्तप्रदर दूर होजाता है ॥

पुण्यानुगचूर्ण ।

पाठाजम्बवाक्षयोर्मध्यांशिलाभेदंरसाञ्जनं
अम्बुपर्फीमोचरसंसमङ्गावत्सकत्वचम् ।
वाहीकातिविपेत्तिल्वंमुस्तांलोभ्रंसगैरिकम्
कटफलमरिचंशुण्ठीमृशीकारक्तचन्दनम् ।
कटुङ्गवत्सकानन्तांथातकीमधुकाजुनम् ।
पुपेणोद्धृत्यतुल्यानिमूक्ष्मचूर्णानिकार
येत् ॥ तानिक्षौद्रणसंयोज्यपिवन्नातण्डु-
लाम्बुना । अर्शःसुचातिसारेपुरक्तंयश्चो-
मवेश्यते ॥ दोषागन्तुकृतायेचवाला-
नांतांश्वनाशयेत् ॥ योनिदोपरजोदुष्टंश्वेतं
नीलंसपीतकम् ॥ स्त्रीणांश्यावारुणं
यच्चप्रसह्यविनियतयेत् । चूर्णपुण्यानु-
गं नामहितमात्रेषूपूजितम् ॥

अर्थ—पाठा, जामन की गुठली, आमकी
गुठली, पाखानभेद, रसांजन, पाठा, मोच-
रस लज्जाल, कुडाकी छाल, हींग, अतीस,
बेलगिरी, मोथा, लोध, गेरू, कायफल, काली
मिरच, सोंठ, दाख, रक्तचन्दन, श्यानाक,
इन्द्र जी, अनन्तमूख घायके फूल, मुलहठी

और अर्जुन इन सबको पुष्प नक्षत्रमें
इकट्ठे करके समान समान भाग मिलाकर
चूर्ण बनालेवे । चूर्ण में शहत मिलाकर
तंडुल जल के साथ सेवन करे । इसके
सेवन से अर्श, अतिसार, जमाहुआ रुधिर,
वालकोंके आगन्तुकदोष, योनिदोष, रजोदोष
सफेद नीला पीला श्याव और अरुणप्रदरतौ
अवश्यही दूर होजाते हैं । महर्षि आत्रेयसे
प्रशंसित इस चूर्ण का नाम पुण्यानुग है ।

प्रदरमें अन्यचिकित्सा ।

तण्डुलीयकमूलञ्चसक्षौद्रंतण्डुलाम्बुना ॥
सरसाञ्जनंलाक्षंबालागेनपयसापिवेत् ॥
पत्रकल्कौघृतेमृष्टौराजादनकपित्थयोः ॥
पित्तानिलहरैपित्तैसर्वैवास्त्रपित्तजित् ॥
मधुकंत्रिफलांलोभ्रंमुस्तांसौराष्ट्रिकामधु ।
मथैनिम्बगुड्च्यौतुकफजेऽमृगदरोपिवेत्
विरेचनंमहातिक्तंपित्तजऽमृगदरोपिवेत् ॥
शुभंगर्भपरित्त्वावचोक्तसर्वेषुकारयेत् ॥

अर्थ—चौलाईकी जडको घोटकर शहत
और तंडुलजलके साथ पान करे, अथवा
रसांजन और लालको बकरी के दूधके साथ
शिवे । अमलतास और कैथ के पत्तों को
पीसकर धीमें भूनकर सेवन करे तौ पैत्तिक
प्रदर में वात पित्त और सब प्रकार के रक्त
पित्त दूर होजाते हैं । कफज प्रदरमें मुलहठी
त्रिफला, लोध, मोथा, सौराष्ट्रचूत्तिका,
इनके कल्क को शहत के साथ सेवन करे
अथवा नीमकी छाल और गिलोय के फरक
को मद्य के साथ पान करे । पित्तज प्रदर
में कुप्राच्यायोक्त महातिक्तक घृतसे विरेचन

देवै तथा गर्भमात्र के रोकने के लिये जो जो औषधें वर्णनकी गई हैं वेभी इसमें हित हैं।

रक्तयोन्यादि की चिकित्सा ।

काशमर्षकृतजकाथसिद्धयुत्तरवस्तिना ।

रक्तयोन्यरजस्कानांपुत्रघ्न्याश्चाहितेषुतम्
मृगाजाविवराहासृग्दध्यम्लफलसर्पिणा।

अरजस्कापिवेत्सिद्धंजीवनीयैःपयोऽपिवा

अर्थ—कुडाकी छाल और खंभारी इनके

काथ में चौथाई घृत पकाकर उत्तर वस्ति

द्वारा प्रयोग करने से रक्तयोनि, अरजस्का

और पुत्रघ्नी के दोष दूर होजाते हैं। हिरण

वकरा, भेड और सूअर इन के रुधिर में

दही, खटाई और घी डालकर सेवन करे

अथवा जीवनीय गणकी औषधियां डालकर

सिद्ध किया हुआ दूध पान करने से अरज

स्का योनि का दोष दूर होजाता है ।

कर्णिन्यचरणाशुष्कयोनिप्रायचरणामुत्तु

कफवातेचयोक्तव्यतैलमुत्तरवस्तिना ॥

अर्थ—कर्णिनी, अचरणा, शुष्कयोनि,

प्राक्चरणा और कफवात से दूषित योनि

में यातनाशक औषधियों से सिद्ध किये हुए

तेल की उत्तर वस्ति देवे ।

गोपित्तमत्स्यपित्तवाक्षीमंत्रिःसप्तभावितम्।

मधुनाकिष्कचूर्णवाद्दद्यादचरणापहम् ॥

स्रोतसंशोधनंकण्डवलेदशोफहरञ्चतत्त्वा

अर्थ—गौका पित्ता मछरी का पित्ता इन

में रेशमीवस्त्र के टुकड़े को इक्कीस भावना

देकर योनि में रख देवे अथवा सुराबीज के

चूर्ण में शहत मिलाकर योनि में रखीइत

से अचरणा दोष दूर होजाता है, स्रोत शुद्ध

होजातेहैं तथा खुजली, कटेद और शोध दूर होजाता है ॥

वातघ्नैःशतपाकैस्तुतैलःप्रागभिचारणैः॥

आस्थाय्येचानुयास्येचस्वेद्येचानिलम्

दनैः । स्नेहद्रव्यैस्तथाहारैरुपनाहश्चयु

क्तितः ॥ शताहापवगोधूमकिष्ककुष्ठ

प्रियंगुभिः । बलासुपर्णिकाश्नाहैःसं

याशोधरणःस्मृतः ।

अर्थ—प्राक्चरणाऔर अचरणा इनदोनों

योनिों में वातनाशक शतपाक तैलों द्वारा

आस्थापन और अनुवासन बस्तिदेवे और

वात नाशक द्रव्यों द्वारा स्वेदन करावै। वायु

नाशक द्रव्यों का आहार तथा वायुनाशक

उपनाह करना चाहिये । सोंफ, जौ, गेहूं,

सुराबीज, कूठ, प्रियंगु, खैरटी, मूषिकपर्णी

और असंगंध इनका कल्क योनि में धरे ॥

वाग्निनी और आप्लुतायोनिमें चिकित्सा

वामिन्याप्लुतयोन्याश्चकर्तव्यःस्वेदनेऽ

पिवा । क्रमःकार्यस्ततःस्नेहःपिचुभिस्त

र्षणभवेत् ॥ शल्लकीजिगिनीजम्बूधवत्त्व

कूपश्चवत्कलैः । कपायैःसाधितःस्नेहः

पिचुःस्याद्विप्लुतापहः॥

अर्थ—वामिनी और आप्लुता योनि में

प्रथम स्वेदन करके पोंछे संस्कार किये हुए

स्नेह का फोआ रखकर संतर्पण करे शल्ल-

की, मजीठ, जामनकी छाल धौकी, छाल

और पंचवत्कल इन के काथ में सिद्ध किये

हुए तेल का फोआ विप्लुता योनि में रखने

से रोग की शान्ति होती है ॥

कार्णिनीयोनिमें चिकित्सा ।

कर्णिन्यां वृत्तिका कृष्टापिप्पल्याकार्णाग्रसैन्धवैः
वस्तिमूत्रकृताधार्यासर्वचश्लेष्मनुद्धितम् ॥

अर्थ—कार्णिनीयोनिमें कूठ, पीपल, आक
की डाली का अप्रभाग और सेंधानमक इन
को बकरे के मूत्र के साथ पीसकर कल्क
करलेवै, फिर इसकी बत्तीसी बनाकर योनि
में रखलै तथा इस में कफनाशक सब प्रकार
की क्रिया भी हित हैं ।

उदावृत्तायोनि की चिकित्सा ।

त्रैवृत्तस्नेहन्स्वेदो ग्राम्यान्पादकारसाः ।
दशमूलपयोवस्तिश्चोदावृत्तानिलात्तिपु ॥
त्रैवृत्तेनानुवास्याश्च वस्तिश्चोत्तरसंज्ञितः ।
तदेवमहायोनिं सस्तायाश्चाविधीयते ॥
घसाङ्गश्वराहाणां घृतञ्चमधुरैः शृणुम् ।
पूरयित्वा महायोनिं बध्नीयात्क्षामनक्तकैः ॥

अर्थ—वाताधिक्य उदावृत्तायोनि में नि
साध का विरेचन, स्नेहन, स्वेदन, ग्राम्य आ
नूप, और जलज पशुपक्षियों का मांसरस
और दशमूल के काथ में सिद्ध किये हुए
दूध की वस्ति देवै । इसमें निसोधके साथ
सिद्ध किये स्नेह की वस्ति और उत्तर वस्ति
भी हित होती है । शिथिल हुई महायोनि
में भी यही क्रिया हित होती है । रीछ और
सूअर की चर्ची और घृत मधुर गणक काथ
के साथ सिद्ध करके योनि में भरकर ऊपर
से रेशमीबस्त्रकी पट्टी बांधदेवै ।

बहिःनिष्क्रान्तयोनि की चिकित्सा ।
प्रस्थस्तांसर्पिषाभ्यज्यक्षीरास्विन्नांप्रवेक्ष्य-
चावध्नीयाद्देशवारस्यपिण्डेनामूत्रकालतः

अर्थ—जो योनिवाहर निकलआई हो उ
सपर घृत चुपडकर दूध से स्वेदित करके
भीतर को प्रवेश करदेवै । और देशवारका
पिण्डा उस के मुखपर रखकर बांधदेवै जि-
स से फिर बाहर न निकलने पावै, और
मूत्र की आशंका होने पर उसे खोलदेवै ॥
यद्यवातविकारार्णाकर्मोक्तं तच्च कारयेत् ।
सर्वव्यापत्सु मतिमान्महायोनिं वांशेषतः

अर्थ—वातविकारों में जो जो चिकित्सा
शुभ फलदायक हैं वे सब भी इस जगह
सब प्रकार के योनिरोगों में करनी चाहिये
परन्तु महायोनि में वातनाशक चिकित्साका
विशेष ध्यान उचित है ।

नहिवातादृतेयोनिर्नारीणांसंमदुप्यति ।
शमयित्वा तमन्यस्य कुटुर्याहोपस्य भेषजम् ॥

अर्थ—वातके अतिरिक्त और किसी का
रण से योनिरोग नहीं हुआ करते हैं, इस
से प्रथम वातको शमन करके और दोषोंकी
चिकित्सा करनी चाहिये ।

पांडुप्रदरमें चिकित्सा ।

मूलककंतुरोहीतात्पाण्डुरे मदरेपिवेत् ।
जलेनामलकाद्वीजकल्कं वाससितामधु ॥
मधुनामलकाच्चूर्णं रसंवालेह्येत्सिते ।
न्यग्रोधत्वक्पायेण लोभ्रकल्केन वापिवेत् ॥

अर्थ—पांडुप्रदर में रोहेडे की जड़का कल्क
करके जल के साथ पीवै, अथवा आंवले के
बीजों को पीसकर चीनी और शहत के साथ
पीवै, अथवा आंवले का चूर्ण वा रस शहत
के साथ पीवै । अथवा बड़की छाल के
क्वाथ में लोध का कल्क मिटाकर पीवै ॥

योनिस्त्राय में चिकित्सा ।

आस्त्रावेसौमपट्टंवाभावितंतेऽनुधारयेत् ।
पुस्तत्वकूर्चूर्णीपिण्डंवाधारयेन्मधुनोक्षतम् ।
योन्यास्त्रेहाक्तयालोभ्रमिष्यंशुमधुकस्यचा
धार्यामधुयुतावर्तिःकपायाणाञ्चसर्वशः॥
स्त्रावच्छेदार्थमभ्यक्तांधूपयेद्वाघृताप्लुतैः॥
सरलागुग्गुलुपर्वैःसतैलकटुमत्स्यकैः ॥

अर्थ—योनिस्त्राय में बड़की छाल के का
थ अथवा लोथ की छालके बराब में रेशमी
घस्त्र के एक टुकड़ेको भावना देकर योनि
में रखकर धाँवदेवै अथवा पाकडकी छाल
का चूर्ण वा कल्क का पिंडा शहत के साथ
बनाकर योनि में रखदेवै । अथवा योनिमें
सोह लगाकर लोथ, प्रियंगु, मुलहठी इनके
कल्क को शहत में सानकर बत्ती बना-
कर योनि में रखदेवै अथवा सब प्रकार के
कपाय रस वाले द्रव्यों के कल्क में शहत
मिलाकर योनि में रख देवै । अथवा स्त्राय
को दूर करने के लिये सरलकाष्ठ, गुग्गु,
जौ, फट्टु तेल और मछली इन के कल्क
को घी में सानकर योनि में घूप देवै ॥

पिच्छिलायोनिकी चिकित्सा ।

फासीशत्रिफलाकाच्छीसाम्रजम्बस्थि-
धातकी । पैच्छिल्येसौद्रसंयुक्तःचूर्णोवै-
शद्यकारकः ॥ पलाशसर्जजम्बूत्वकसं-
गामोचधातकीः । सपिच्छिलपरिकिञ्चा
स्तभनःकल्कइष्यते ॥

अर्थ—पिच्छिल योनिमें कसीस, त्रिफला,
अडहरकी जड़, आमकी, गुठली, जामनकी
गुठली, धायके फ़ूड इन के चूर्ण को शहत

में सानकर रखने से विशदता होती है ।
ढाककीछाल, राठ, जामनकी छाल, लज्जक
मोच और धाय के फ़ूड पासकर योनि में
रखने से गिलगिलापन और शिथला दूर
होजाती है ॥

योनिके अन्यदोषों की चिकित्सा ।
स्तब्धानां कर्कशानाञ्च पिण्डोमार्दवकार-
कः । धारयेद्देशवारंवापायसंकुन्तरं तथा ॥
दुर्गन्धानां कपायः स्यात्तलंवाकल्कएववा
चूर्णवासर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणम् ॥

अर्थ—योनि की स्तब्धता और कर्कश-
ता दूर करने के निमित्त वैशवार, पायस वा
कुशरा का गोला बनाकर योनि में रखवै
योनि की दुर्गन्धि दूर करनेके लिये सुगंधित
द्रव्यों का तेल, वा कल्क वा सर्वगंध का
चूर्ण लगाने से दुर्गन्धि जाती रहती है ॥

योनि चिकित्साका उपसंहार ।

एवंयोनिपुद्गाद्गर्भविन्दन्तियोपितः॥
अदुष्टेप्राकृतेवीजेजीवोपक्रमणेसति ॥
पञ्चकर्म्याधिगुद्दस्यपुरुषस्यापिचेन्द्रिय
म् । परीक्ष्यवर्णैर्दोषाणांदुष्टं तद्दृष्टेरुपाचरे
त् । सलिङ्गाव्यापदोयोनिःसनिदानचि-
कित्सिताः ॥ उक्ताविस्तरतःसम्यक्मुनि-

नातत्त्वदर्शिना ।

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए प्रयोगों से
योनियों के शुद्ध होने पर तथा प्राकृतकर्म
और बीज के निर्दोष होने से गर्भ में जीव
का संचार होने पर स्त्रियों के गर्भ रहजा-
ता है । इसी तरह जो पुरुषोंका धीर्य दू-
पित हो तो उसे यमन विरेचनादि पंचक-

मौसे शुद्ध करके विगडेहृण वीर्यके वर्णकी परीक्षा करके उस दोषके दूर करने वाली चिकित्सा करे ॥

तत्त्वदर्शी भगवान् पुनर्वसुने योनिके भिन्न भिन्न रोग, उनके लक्षण, निदान और चिकित्सा विस्तार पूर्वक वर्णन की हैं ।

शुक्रदोष का प्रकरण ।

पुनरेवाग्निवेशस्तुपमच्छभिपजांवरम् ॥

आत्रेयमुपसङ्गम्यशुक्रदोपास्त्वयानघ ॥

रोगाध्यायेसमुद्दिष्टास्यष्टौपुंतामश्रेपतः ॥

तेपाहेतुंभिपकृश्रेष्टदुष्टदुष्टास्यचाकृतिम् ।

चिकित्सितश्चकारस्वर्णैर्नवलैर्ब्ययश्चतु

र्विधम् ॥ उपद्रवेपुयोनीनांपदरोयश्चकी

र्तितः । तेषानिदानंलिङ्गञ्चचिकित्सां

चैवतत्त्वतः ॥ समासव्यासयोगेनप्रवृहि

भिपजांवरः । तस्मैशुभ्रूपमाणायमावा

चमुनिपुद्गवः ॥ वीजंयस्माद्यवायाचह

र्पयानिसमुत्थितम् । शुक्रंपौरुषमित्युक्तं

तस्माद्भक्ष्यामितच्छृणु ॥

अर्थ—अग्निवेश ने भिपजांवर पुनर्वसुसे

फिर पूछा कि हे भगवान्! आपने अष्टोदरीय

रोगाध्याय में पुरुषों के आठ प्रकार के

शुक्र दोष वर्णन किये थे, सो हे प्रभो! वीर्य

के दूषित होने के हेतु, दूषित और निर्दू-

षित वीर्यकी आकृति, दूषित वीर्य की

चिकित्सा, चार प्रकार के क्लेशरोग, तथा

योनिरोगों में वर्णन किये हुए प्रदररोग का

निदान, लक्षण और चिकित्सा संक्षेप और

विस्तार दोनों रीति से वर्णन कर दीजिये।

यह सुनकर मुनिपुंगव आत्रेयबोले कि पुरुष

का बीज अर्थात् शुक्र मैथुन में हर्ष और योनि के स्पर्श से उठता है यह बात प्रथम वर्णन करदी गई है, अब जिस तरह उस वीर्यमें दोष उत्पन्न होतेहैं, उसकावर्णनकरताहूँ वीजके विगडने में दृष्टान्त ।

यथागीजमकालाम्युक्कमिकीटाग्निदूषितम् नावरोहतिसन्दुष्टंथाशुक्रंशरीरिणाम् ॥

अर्थ—जैसे कुसमयकी बर्षा, कीड़े, कीट या अग्नि के कारण बिगडा हुआ बीज अंकुरित नहीं होता है इसी तरह मनुष्यों का बिगडा हुआ वीर्य भी संतान के उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहता है।

वीर्यके दूषित होनेका कारण

अतिव्यवायाद्व्यायापादसात्म्यानाश्चसेव

नात् । अकालेचाप्ययोनौवामैथुनंनद्य

च्छतःरुक्षतिककपायातिलवणाम्लोष्ण

सेवनात् । मधुरस्निग्धगुर्वन्नसेवनाज्जर

यातथा । चिन्ताशोकाद्विस्मभाच्छस्त्र

क्षाराग्निभिस्तथा ॥ भयात्क्रोधादभी

चारात्ख्याधिभिःकपितस्यच ॥ घेगाधां

तात्क्षयाच्चापिधातूनांसंमदूपणात् ॥

दोषाःपृथक्समस्तावाभाप्यरेतोयहाःशिराः

शुक्रंसंदूषयन्त्याशुतद्वक्ष्यामिबिभागशः॥

अर्थ—अत्यन्त मैथुन, अत्यन्त शारी-

रिक परिश्रम, अत्यन्त असात्म्य द्रव्यों का

सेवन, कुसमय मैथुन वा अधोनि से मैथुन

अगम्य योनि में मैथुन, रुक्ष तिक और

कपाय द्रव्यों का अत्यन्त सेवन, अत्यन्त

नमकील, खड़े और उष्ण पदार्थों का सेवन

अत्यन्त मीठे, चिकने और मारी अन्न का

सेवन (नारीणामरसज्ञानासरंणादित्यपिपाठः)
 बुडापा, चिन्ता, शोक, प्रकाश स्थान में
 स्त्रीगमन, शस्त्रकर्म, अग्नि कर्म और
 क्षार कर्मका अयोग्य प्रयोग, मय, क्रोध
 अभिचार, रोगादि द्वारा कर्षण, मलमूत्रादि
 वेगों का अवरोध, धातुकी क्षीणता, तथा
 धातुओं का दूषित होना इन कारणों से
 सम्पूर्ण दोष पृथक् २ वा मिलकर धीरेवाही
 शिराओं में पहुंचकर शुक्र को शीघ्रहीदूषित
 कर देते हैं, अब उनके पृथक् २ लक्षणकहतेहैं
 दूषित शुक्रके भेद ।

फेनिलंतनुरूपसञ्चविवर्णपूतिपिच्छिलम् ॥
 अन्यधातूपसंसृष्टव्यसादितथाष्टमम् ॥

अर्थ—दूषित धीरे आठ प्रकारका होता
 है यथा—झागदार, पतला, रूखा, विवर्ण,
 दुर्गन्धित, गिलागिला, अन्यधातु से मिला
 हुआ और अवसादी ।

वातदूषित शुक्र के लक्षण ।

पातेनफेनिलंशुष्कं कृच्छ्रेणपिच्छिलंतनुम् ॥

भवत्युपपतंतशुक्रं नतद्गर्भायकल्पते ॥

अर्थ—वातके कारण शुक्र झागदार,
 शुष्क, पिच्छिल, पतला और कठिनता से
 बाहर निकलने वाला होजाता है, वात से
 बिगडा हुआ शुक्र गर्भ उत्पन्न करने के
 योग्य नहीं होता है ।

पित्तदूषित शुक्र के लक्षण ।

सनीलमथवापीतमत्युष्णपूतिगन्धिच ॥

ददेच्छिंयिनिर्वातिशुक्रं पित्तमदूषितम् ।

अर्थ....पित्त से बिगडा हुआ शुक्र युक्त
 नीला, पीला, अत्यन्त उष्ण और दुर्गन्धित

होता है तथा बाहर निकलने के समय बडा
 दाह होता है ।

कफदूषित शुक्रके लक्षण ।

श्लेष्मणानन्दमार्गंतुभवत्यत्यर्थपिच्छिलम्

अर्थ—कफदूषित धीरे का कफके कारण
 मार्ग रुकजाता है और वह अत्यन्त गिल-
 गिला होजाता है ॥

अन्य हेतुओं से दूषित शुक्र के लक्षण
 स्त्रीणामत्यर्थगमनादभीघातात्क्षयादपि
 शुक्रं प्रवर्तते जन्तोः प्रायेण रुधिरान्वयम् ॥

अर्थ....अत्यन्त स्त्री गमनसे, अभिघात
 से वा क्षीण होने से जो शुक्र निकलता है
 उस में रुधिर मिलारहता है ॥

अवसादी शुक्रके लक्षण ।

वेगसन्धारणात्शुक्रं वायुनाविहितंपथि ।

कृच्छ्रेणयातिप्रथितमवसादितथाष्टमम्

इतिदोषाः समाख्याताः शुक्रस्याष्टौसल

क्षणाः ।

अर्थ—मल मूत्रादि के उपस्थित वेगोंके
 रोकने से शुक्र मार्ग में विहत होकर बडी
 कठिनता से गांठदार होकर निकलता है, इसे
 ही अवसादी शुक्र कहते हैं ॥

इस तरह शुक्र के सलक्षण आठों दोषों
 की व्याख्या की गई है ।

शुद्ध शुक्र के लक्षण ।

स्निग्धघनपिच्छिलश्चमधुरञ्चाविदाहिच

रेतः शुद्धं विजानीयाच्छुद्धस्फटिकसन्नि-

भम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, घन, पिच्छिल, मधुर,
 अविदाही और स्फटिकके समानश्वेत शुक्र
 शुद्ध होता है ॥

वाजीकरणयोगोक्तेरुपयोगैःसुखैर्हितैः ॥
रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापादिकैस्तथा ।
दुष्टंयथाभवेद्रेतःततस्तत्समुपाचरेत् ॥

अर्थ—वाजीकरण योगोक्त सुखदाई प्र-
योग, रक्तपित्तनाशक योग, योनिरोगनाशक
योग, इनसे जो शुक्र विगड़ जाताहै उसकी
चिकित्सा निम्नलिखित रीति से करे ।
घृतञ्चजीवनीयंयञ्चयावनःप्राशएवच ॥

गिरिजश्चप्रयोगश्चरेतोदोषानपोहति ॥

वातान्वितेहिताःशुक्रैनिरूहाःसानुवासनाः
ब्राह्ममामलकीयञ्चपित्तेशस्तरसायनम् ॥

मागध्यमृतलोहानांत्रिकलायारसायनैः ॥

कफोस्थितंशुक्रदोषंहन्याद्भल्लातकस्यच ॥

अन्यधातूपसंसृष्टंशुक्रंवीक्ष्यभिपक्तमैः ॥

यथादोषंप्रयोज्यंस्याद्दोषधातुभिपग्निम् ॥

अर्थ—जीवनीय घृत, प्यवनप्राश और
शिलाजतु-प्रयोग वीर्य दोषों का दूर करते
हैं । वातान्वित शुक्र में निरूहण और
अनुवासन वस्ति हित है । पित्तान्वित शुक्र
में ब्राह्मरसायन और अभयामलकीय रसाय-
न हित है । कफान्वित शुक्र में पिप्पली
रसायन, गुडूचीलौह, त्रिकला रसायन और
भल्लातक प्रयोग हित हैं । यदि शुक्रमें अन्य
धातुका संसर्ग हो तो उसकी परीक्षा कर-
के यथादोष उसकी चिकित्सा करने में
प्रवृत्त होना चाहिये ।

शुक्रदोष में साधारण प्रयोग ।

सर्पिःपयोरसाः शालिर्यवगोधूमपष्टिकम् ॥

प्रशस्तंशुक्रदोषेषुवस्तिकर्मविशेषतः ॥

अर्थ—शुक्र दोषों में घी, दूध, मांसरस,

शालीचांबल, जौ, गेहूँ और साठी चांबल
हित हैं और वस्तिकर्म विशेष करके उप-
योगी होता है ॥

कलीवता के अन्यकारण ।

रेतोदोषोद्भवकैव्यंयस्माच्छुद्धौवसिद्धय-
ति । अतोवक्ष्यामि ते सम्यग्ग्निवेशः । य-

थातयम् ॥ वीजञ्चजोपघाताभ्यांजरया

शुक्रसंक्षयात् । वैकृत्यसम्भवस्तस्यमृषु

सामान्यलक्षणम् ॥

अर्थ—हे अग्निवेश ! शुक्रके दोषसे जो

कलीवता होती है वह शुक्रके शुद्ध होने ही

पर मिट जाती है । अब मैं यथा रीति से

तेरे साम्हने कहता हूँ । कलीवता के चार

कारण हैं, यथा वीर्यदोष, प्यजभंग, दुद्रावस्था

और वीर्यकी क्षीणता । अब मैं इन के

सामान्य लक्षणों का वर्णन करता हूँ ।

कलीवताके साधारण लक्षण ।

सङ्कल्पप्रणवानित्यंभियां वक्ष्यामपिस्त्रय

म् । नयातिलिङ्गशैथिल्यात्कदाचिद्याति

वापुमान् । श्वासारतःस्विन्नगात्रांसोमोघ

संकल्पचेष्टितः । म्लानशिश्रुधानिर्वाजः

स्यादेतत्कैव्यलक्षणम् । सामान्यलक्षणं

हेतद्विस्तरेणप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—यदि मनुष्य इच्छा उत्पन्न होने

पर भी लिंगकी शिथिलताके कारण अपनी

प्रिया और वशीमूना स्त्रांके पास भी नहीं

जा सक्ता है और जो जाता भी है तो

श्वास चलने लगता है पसीने आजाते हैं,

उसका संकल्प व्यर्थ होजाता है, चेष्टाव्यर्थ

होजाती है, शिरनेन्द्रिय शिथिल पडजाती है

निर्विक्रम होजाती है, तब इसी को क्लीवता या नामर्दी कहते हैं, क्लीवताके ये सामान्य लक्षण हैं अब विस्तारपूर्वक वर्णन करतेहैं।

वीजोपघातज क्लीवता के लक्षण।

शीतरुक्षाल्पसंक्षिष्टविरुद्धार्जीर्णभोजनात् शोकचिन्ताभयत्रासास्त्रीणां चात्यर्थसेवनात् । अभीचारादविसम्भाद्रसादीनां च संक्षयात् ॥ घातदीनामोजसश्रतथैवानशनाच्छ्रमात् । नारीणामरसज्ञत्वात्पञ्चकर्मपचारतः । वीजोपघातोभवतिपाण्डुवर्णः सुदुर्बलः ॥ अल्पमाणोल्पहर्षश्रमदासुभेवन्नरः । हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रमपीडितः । छर्द्यतीसारशूलार्तःकासज्वरानिपीडितः । वीजोपघातजं ह्येत्थं ध्वजभग्नकृतं गृणु ॥

अर्थ—शीतल, रुखा, अल्प, गृष्ट, विरुद्ध और दुष्पाच्यभोजन, शोक, चिन्ता, भय, त्रास, रित्रयोका अत्यन्त सेवन, अभिचार, आविलंब, रसादि धातुओं की क्षीणता, वातादिक धातुओं की विषमता, भोज की क्षीणता, उपवास, श्रम, अरसज्ञस्त्रीगमन वधनादि पंचकर्मों का योगातियोग, इन कारणों से शुक्र का नाश होता है, इससे पुरुष पांडुवर्ण और अत्यन्त दुर्बल होजाता है, उसकी प्रमदा स्त्रियों में अनिच्छा और निश्चोष्टिता होती है, इससे पाँछे हृद्रोग, पांडुरोग, तमकदवास कामला और श्रम होता है । उसके वमन, आतिसार, शूल और कासज्वर की उत्पत्ति होती है । ये वीजोपघातज क्लीवता के लक्षण हैं । अब ध्वजभंग से हुई क्षीणता के लक्षण कहते हैं

ध्वजभंग के हेतु ।

अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धार्जीर्णभोजनात् । अत्यम्युपानाद्विपमिपिष्टान्नगुरुभोजनात् । दधिक्षीरानूपमांससेवनाद्व्याधिधर्षणात् । कन्यानाञ्चैवगमनादयोनिगमनादपि ॥ दीर्घरोम्नीचिरात्सृष्टांतैथवचरजस्वलाश्च दुर्गन्धांदुष्टयोनिचतथैवचपीरसुताम् ॥ ईदृशीं प्रमदां मोहादतिहर्षात्प्रगच्छतः ॥ चतुष्पदाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः ॥ अघावनाद्गोमदस्यशस्त्रदन्तनखक्षतात् । काष्ठप्रहारनिष्पेषशूकानां चातिसेवनात् ॥ रेतसश्मतीघातात् ध्वजभङ्गः प्रयत्नते ॥

अर्थ—अत्यन्तखट्टे, नमकीन, क्षारयुक्त विरुद्ध और दुष्पाच्य भोजन, अत्यन्त जलपान, विषम भोजन, पिष्टान्न भोजन, गुरु भोजन, दही दूध और मांस का अत्यन्त सेवन, व्याधिद्वारा कर्षण, कम उमरकी स्त्री से गमन, अयोनिगमन, दीर्घरोमवाली स्त्री से गमन, बहुत दिनसे जिसने पुरुषसंसर्ग त्यागदियाहो ऐसी स्त्रीसे गमन, रजस्वला से गमन, दुर्गन्धयोनि गमन, दुष्टयोनि गमन, स्त्रावयुक्त योनि गमन, ऐसी स्त्री में मोह वा हर्ष से गमन करना, गौ भेंस आदि चौपायों से गमन करना, लिंग में चोट लगना, लिंग का प्रक्षालन न करना, उस्तरा, दांत वा नख से घाव होना, लकड़ीकी चोटलगना निष्पेषण, (हस्त मैथुन) शूकप्रयोगों का अत्यन्त सेवन और धीर्यका नाश । इन सब कारणों से ध्वजभंग होता है ।

ध्वजभंगके लक्षण ।

भयशुर्वेदनामंदेरागश्चैवोपलक्ष्यते ॥ रफो

टाश्चतीव्राजायन्तेलिङ्गपाकोभवत्यपि ।
 मांसवृद्धिर्भवेच्चास्पत्रणाःक्षिप्रंभवन्त्यपि
 पुलाकोदकसङ्गाद्भ्रमःश्यावारुणप्रभः ।
 पलर्याकुरुतेचापिकठिनश्चपरिग्रहम् ॥
 ज्वरस्तृष्णाभ्रमोमूर्च्छाच्छदिश्चास्योप
 जायते ॥ रक्तं कृष्णं च वेच्चापिनीलमा-
 धिललोहितम् । अग्निनेत्रचदग्धस्यतीव्रो
 दाहःसवेदनः ॥ वस्तौष्टणयोर्वापिसी
 वन्पात्रंक्षभेषुच । कदाचित्पिच्छिलोचा
 पिपाण्डुस्त्रावश्चजायते ॥ श्वयधुश्रभत्रे
 न्मन्दस्त्रिमितोऽल्पपरिस्रवः । चिरात्स
 पार्कत्रजतिशीघ्रंवाधप्रपद्यते ॥ जायन्ते
 क्रिमयश्चापिक्लिद्यतेपूतिगन्धिच । प्रशी
 र्यतेमगिश्चास्यमेद्मुष्कावथापिच ॥ ध्व
 जमङ्गकृतंवल्लैव्यंइत्येतत्समृदाहृतम् । ए-
 वंपश्चविधंकेचित्ध्वजभंगवदन्त्यपि ॥
 अर्थ—मेदू में सूजन, वेदना और लड़ाई
 उत्पन्न होआती है । घड़े तीव्र फोड़े और
 लिगपाक भी होता है, लिगका मांस बढ़-
 जाताहै, घाय जल्दी २ होजाते हैं, पुलाक
 के जलके सदृश श्याम और अरुणरंग का
 स्त्राव होने लगता है, लिग में टेढ़ापन,
 कठिनता और स्तब्धता होती है, ज्वर,
 तृष्णा, भ्रम, मूर्च्छा, और वमन ये उपद्रव
 होभाते हैं । नाडा, लाल, काला, मैला
 और लोहितवर्ण का स्त्राव होता है, अग्नि-
 द्वारा जलने के समान तीव्र दाह और वे-
 दना वस्ति, वंक्षण, अंडकोप और सीवनी
 में होने लगती है, कभी कभी पिच्छिल
 और पांडुवर्ण का स्त्राव भी होता है, मन्द

स्तिमित और अल्पस्राववाली सूजन होती
 है, पाक देर में होताहै और कभी २ शीघ्र
 भी होजाता है, फोड़े पड़जाते हैं, सड़ी हुई
 गंध आनेलगती है, मणि, मेदू और मुष्क
 विशीर्ण होजाते हैं । यह ध्वजभंग की क्री-
 यता के लक्षण हैं । कोई कोई ध्वजभंग के
 पांचभेद कहते हैं ।

जरासंभवक्रीवताके लक्षण ।
 ह्यैव्यंजरासम्भवंहिमवक्ष्याम्यधतच्छृणु ।
 जघन्यमध्यमवरं वयस्त्रिविधमुच्यते ॥
 अथमवयसांशुक्रं प्रायशः क्षीयते नृणाम् ।
 रसादीनां संक्षयाच्च तथैवावृष्यसेवनात् ॥
 वलयणोन्द्रियाणां चक्रमणैवपरिक्षयात् ।
 परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमात्क्र-
 मात् ॥ जरासम्भवजंवल्लैव्यंइत्येतैर्हेतुभि
 र्दृणाम् । जायतेतेनसोऽत्यर्थंक्षीणधातुःसु
 दुर्बलः ॥ विवर्णोविहलोदीनःक्षिप्रं व्या
 धिमयाश्नुते । एतज्जरासम्भवंहिचतुर्थ-
 क्षयजंमृषु ॥

अर्थ—अवहम वृद्धावस्था से उत्पन्नहुई
 क्रीवता के लक्षण कहते हैं । मनुष्य की
 तीन प्रकारकी अवस्था होतीहै, यथा जघन्य
 (बालापन), मध्य (यौवन) और प्रवर
 (बुढ़ापा) । बड़ी हुई अवस्था वाले मनु-
 ष्यों का शुक्र प्रायःक्षीण होजाता है क्योंकि
 रसादि धातु क्षीण होती चलीजाती है और
 पुष्टिकारक द्रव्यों का सेवन नहीं करतेहैं इस
 से बल वर्ण और इन्द्रियों का पराक्रम क्रम
 से क्षीण होता चलाजाता है । आयु के
 क्षीण होने से, आहारकी शक्ति न रहने से

और श्रम से जरासंभव क्लीवता होती है, इससे मनुष्य की धातु अत्यन्त क्षीण पड़ जाती है और वह दुर्बल होजाताहै, वह विवर्ण, विह्वल हीन और शीघ्रही व्याधिग्रस्त होजाताहै, यह जरासंभव क्लीवता है अब चौथी क्षयज, क्षीणता को सुनो ।

क्षयज क्लीवता ।

अतिप्रचिन्तनाच्चैवशोकात्क्रोधाद्भयादपि
ईर्ष्यात्कण्ठादथोद्वेगात्समाविशतियो-
नरः ॥ कृशोवासेवतेरुभ्रमश्रपानमयौ-
पधम् । दुर्बलप्रकृतिश्चैवनिराहारोभवेद्य
दि ॥ अथाल्पभोजनाच्चापिहृदयेयोव्य
वस्थितः ॥ रसःप्रधानधातुर्हिंसीयेताशु
नरस्ततः । रक्तादयश्चक्षीयन्तेधातवस्त
स्यदेहिनः ॥ शुक्रावसानास्तेभ्योहिशु
क्रंधामपरंमत् । चेतसोवातिहर्षेणव्य
घायंसेवतेतुयः ॥ शुक्रंतुक्षीयतेतस्यततः
मामोतिसंक्षयम् । घोरांव्याधिमवामोति
मरणंवासमृच्छति ॥ शुक्रंतस्माद्विशेषेण
रक्षयमारोग्यमिच्छता । एतन्नदानलिगा

भ्यामुक्तंैवंपंचतुर्विधम् ।

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, ईर्ष्या, उत्कंठा और उद्वेग से सदा घ्नानाशयित रहताहै, जो कृश मनुष्य सदा रूक्ष अन्नपान और औषध सेवन करता रहता है, जो मनुष्य दुर्बल प्रकृति का है, उपवास बहुत करता है, वा अल्प [वा असाध्य] भोजन करता है उसका हृदयस्थ प्रधान धातुरस शीघ्रही क्षीण होजाताहै, उस मनुष्यके रक्तादिक शुक्र पर्य-

न्त सब धातु क्षीण होजाते हैं । और शुक्र ही सब धातुओंका तेजस्वरूप है अथवा जो मनुष्य चित्तकी अत्यन्त हर्षता से मैथुन में प्रवृत्त होता है, उसका शुक्र क्षीण होजाता है और क्षयरोग उपस्थित होता है, अथवा घोर व्याधियोंके होनेके कारण यह मृत्युका प्राप्त होजाता है ।

इसी हेतुसे जो मनुष्य आरोग्यता की इच्छा करता है उसे शुक्र की अत्यन्त सावधानी से रक्षा करनी चाहिये ।

इस तरह चारों प्रकारकी क्लीवता के निदान और लक्षण वर्णन किये गये हैं ।

असाध्य क्लीवता ।

केचित्कैव्येत्सवाध्यमेध्वजभङ्गक्षयोद्भवे ॥
वदन्तिशेफमश्छेदावृपणोत्पाटनेनवा ॥

अर्थ—कोई २ यह कहते हैं कि ध्वज भंगज और क्षयज क्लीवता असाध्य होती है और कोई यह कहते हैं कि शेफ में छिद्र होने वा अंडकोशों के फटने से जो क्लीवता होती है वह भी असाध्य होती है ।

अन्य क्लीवताओं को असाध्यत्व ।

मातापित्रोर्वीजदापादशुभैश्चकृतात्मनः ॥
गर्भस्थस्ययदादोपाःमाप्परेतोवहाःशिराः
शोपयन्त्याशुतन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते ।
तत्रसम्पूर्णसर्वाङ्गःसभवत्यपुमान्पुमान् ॥
एतेत्वमाध्याभ्याख्याताःसन्निपातसमु-
च्छ्रयात् ॥ चिकिरिसतमतस्त्वूर्ध्वसमास-
व्यासतःमृणु ॥

अर्थ—मातापिता के बीज दोप से, अपने पूर्व जन्म के किये हुए अशुभकर्मों से जब

गर्भस्थ दोष शुक्रवाही स्त्रियों में पहुंच कर उन्हें शुष्क कर देते हैं और उनके शुष्क होने से शुक्र भी नष्ट होजाता है । ऐसा पुरुष सम्पूर्ण अंगोपांग समेत जन्म लेने पर भी क्लीब होता है ।

यह क्लीबता सन्निपातकी उदीर्णताके कारण दुश्चिकित्स्य असाध्य होती है ।

अब यहाँ से संक्षेप और विस्तार दोनों रीतिसे क्लीबताकी चिकित्साकार्णनकरतेहैं

कलैब्य की संक्षिप्त चिकित्सा ।

शुक्रदोषपुनर्दिष्टभेजंयन्मयानघ !
कलैब्योपशान्तयेकुर्यात्सीणक्षताहितञ्चयत् ।
वस्तयःक्षीरसर्पापिष्टप्ययोगाश्चयेम-
ताः ॥ रसायनप्रयोगाश्चसर्वानेतान्प्र-
योजयेत् । सर्माक्षपद्दहदोषाग्निशुभे-
पजकालवित् ॥ व्यवायहेतुजंकलैब्यंय
त्स्याद्धेतुविपर्ययात् । देवव्यप्राश्रयश्चै
वभेपजश्चाभिचारजम् । समासैनतदुद्दि
ष्टभेजंकलैब्यशान्तये । विस्तरेणप्रवक्ष्या
मिकलैब्यानांभेपजंपुनः ॥

अर्थ—हे अनघ! शुक्रदोष के दूर करने के लिये जो जो चिकित्सा में कही हैं तथा क्षीणक्षत में जो जो चिकित्सा उपयोगी हैं वे सब क्लीबताको दूर करनेमें उपयोगी हैं । देह, दोष, अग्नि, वल, औषध और काल का विचार करके वस्ति, दूध, घृत, वृष्ययोग और रसायन के प्रयोग करने चाहिये ॥ व्यवायहेतुज विपरीतहेतुसे उ-
पन्न और अभिशापज क्लीबताको देवव्य-
प्राश्रय औषधियोंसे दूर करनेका प्रयत्न करे

क्लीबता दूर करने के ये संक्षिप्त उपाय वर्णन कियेगये हैं अब इसकी चिकित्सा का सविस्तार वर्णन कियाजाता है ॥

वीजोपघातकीचिकित्सा ।

सुस्विन्नस्निग्धगात्रस्यस्नेहयुक्तंविरेचनं
प्रदद्यान्मतिमान्वैद्यस्ततस्तमनुवासयेत् ।
पलाशरण्डमुस्तार्थःपश्चादास्थापयेत्ततः ॥
वाजीकरणयोगाश्चपूर्वयेसमुदाहृताः ।
भिपजातेप्रयोज्याः स्युः कलैब्येवीजोप-
घातजे ॥

अर्थ—क्लीबरोगी को अच्छी तरह अ-
भ्यक्त करके पसीने देवे फिर स्नेहयुक्त
विरेचन देवे, तत्पश्चात् अनुवासन करित
देवे ॥ पालिंटाक, बरंड और मोथा के काथ
आदि से आस्थापन देवे और पहिले जो
वाजीकरण प्रयोग वर्णन करदिये गये हैं
वे सब इस वीजोपघातज क्लीबता में हितहै।

ध्वजभंग में चिकित्सा ।

ध्वजभंगकृतंकलैब्यंज्ञात्वातस्याचरोत्क्रि-
याम् । प्रदेहान्परिपेकांश्चकुट्याद्वारक्त
मोक्षणम् ॥ स्नेहपानञ्चकुर्वीतस्नेहंवा
विशोधनम् । अनुवासनंततःकुट्यादथ
वास्थापनंपुनः ॥ व्रणवचक्रियाःसर्वास्त
त्रकुट्याद्विचक्षणः ॥

अर्थ—ध्वजभंगज क्लीबता में प्रदेह,
परिपेक, रक्तमोक्षण, स्नेहपान और स्नेह-
युक्त विरेचन हित है । पीछे अनुवासन
और आस्थापन करके व्रणवत् क्रियाकरे ।

जरासंभवकलैब्यकीचिकित्सा ।

जरासम्भवजेकलैब्येक्षयजेचैवकारयेत् ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्यसस्नेहशोधनंहितम् ॥
क्षीरसार्पितृष्ययोगावस्तयश्चैवयापनाः ।
रसायनप्रयोगाश्चतयोर्भेषजमुच्यते ॥
विस्तरेणैतदुद्दिष्टं बलैः स्यान्भिषजंभया ॥

अर्थ—जरासंभव और क्षयज क्लीबतामें स्नेहन स्वेदन करके स्नेहयुक्त विरेचन देवै । दूध, घी, वृष्ययोग, क्षीरवस्ति और रसायन प्रयोग इन रोगों में हित हैं ।

यह क्लीबरोगोंकी विस्तारपूर्वक चिकि-
त्सा वर्णन की गई है ।

प्रदरवर्णन ।

यःपूर्वमुक्तःप्रदरःशृणुहेत्वादिभिस्तुतम् ॥
यात्यर्थंसेवतेनारीलवणाभ्लगुरुणिच ॥
कटुन्ध्रविदाहीनिस्निग्धानिपिशितानिच
प्राप्त्यौदकानिसेव्यानि कृसरंपायसंदाधि
शुक्तमस्तुसुरादीनिभजन्त्याःकुपितोऽनिलः
रक्तप्रमाणमुत्कम्प्यगर्भाशयगताःशिराः ।
रजोवहाःसमाश्रित्यरक्तमादायतद्रजः ॥
यस्माद्विबर्द्धयस्याशुरक्तीपत्तंसमारुतम् ॥
तस्मादसृग्दरं प्राहुरेतत्तन्त्रविशारदाः ॥
रजःमदीर्यतेतस्मात्प्रदरस्तेनसस्मृतः ॥

अर्थ—जो प्रथम प्रदररोग वर्णन किया गया है अथ उसके हेतु आदिका वर्णन करते हैं जो स्त्री अत्यन्त खटे, नमकीन और भारी पदार्थों का सेवन करती हैं, जो कटु विदाही स्निग्ध तथा प्राप्य और औदक पशुओं का मांस सेवन करती हैं, जो सिचडी, खीर, दही, शुक्त और सुरा आदिका अत्यन्त सेवन करती हैं, उनकी वायु कुपित होकर रक्तको प्रमाण से अधिक निकालने लगती है

उस समय रजोवाही शिराओं में वायु रक्तके साथ पहुंचकर रजको बढा देती है । शाक-
लोग इस वायुसंसृष्ट रक्तपित्तको रक्तप्रदर कहते हैं । रजके प्रदार्ण होनेसे इसे प्रदर कहते हैं ।

प्रदरके भेद ।

सामान्यतःसमुद्दिष्टकारणलिङ्गमेव च ॥
चतुर्विधंचयासतस्तुवाताद्यैःसन्निपाततः ॥
अतःपरंप्रयक्ष्यामिहेत्वाकृतिभिर्गजितं ॥

अर्थ—प्रदर के कारण और लक्षण संक्षेप से कहेंगे हैं । यह वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातक चार प्रकार का होता है, अथ इन के हेतु, लक्षण और चिकित्साका विस्तारपूर्वक वर्णन कियाजाता है ॥

वातजप्रदर के हेतु ।

रूक्षादिभिर्मारुतस्तुरक्तमादायपूर्ववत् ।
कुपितःप्रदरंकुर्याद्विद्रुतस्यावधारयेत् ॥

अर्थ—पूर्वोक्तरूक्षादि द्रव्योंके अत्यन्त सेवन से कुपित हुई वायु रक्त को ग्रहण करके प्रदर उत्पन्न करती है अथ इसके लक्षणों को सुनो ॥

वातजप्रदर के लक्षण ।

फेनिलंतनुरूक्षञ्चक्षयावंचारुणमेव च ।
किंशुकोऽरुसङ्काशंसरुजंवाथनीरुजम् ॥
कटीबंधणदृत्तपार्श्वपृष्ठश्रोणिपुमारुतः ।
करोतिवेदनांतीघ्रामेतद्वातात्मकंविद्रुः ॥

अर्थ....वातज प्रदर में रक्त शागदार, पतला, रूखा, श्याववर्ण, अरुण और टेसूके फूलों के जल के समान होता है इसमें वेदना होती भी है और नहीं भी होती । इस रोग में वायु के कारण कमर, वक्षण हृदय

पसली, पीठ और श्रोणी में तीव्र वेदना होने लगी है ।

पित्तजप्रदर के हेतु ।

अम्लोष्णलवणक्षारैः पित्तप्रकुपितं यदा ।
पूर्ववत्प्रदरं कुर्यात्लक्षणं तत्कृतं शृणु ॥

अर्थ—खट्टे, गरम, नमकीन और क्षार पदार्थों के सेवन से पित्त प्रकुपित होकर जब पूर्ववत् प्रदररोग को उत्पन्न करता है तब उस के लक्षणोंको सुनो ॥

पित्तजप्रदर के लक्षण ।

सनीलमथवापीतमत्युष्णमासितं तथा ।
नितान्तरकंस्रवतिमुहुर्मुहुर्धुरथार्तिमत् ॥
विदाहरागदृग्मोहज्वरभ्रमसमायुतम् ।
असृग्दरपैत्तिकंतु श्लैष्मिकंतुमवक्ष्यते ॥

अर्थ—पित्तजप्रदर में नीला, पीला, अत्यन्त उष्ण काला और वेदनायुक्त धार धार बहुतसा रक्त निकलता है इसमें दाह, राग, तृषा, मोह, ज्वर और भ्रम ये उपद्रव होते हैं ये पित्तज प्रदर के लक्षण हैं अब कफज प्रदरका वर्णन किया जाता है ।

कफज प्रदरके हेतु ।

शुर्वादिभिर्हेतुभिश्च पूर्ववत्कुपितः कफः ।
प्रदरं कुरुते तस्य लक्षणं तच्च तः शृणु ॥

अर्थ—गुरु आदि पदार्थों के सेवन करने से कुपित हुआ कफ प्रदररोग को उत्पन्न करता है अब इसके लक्षणोंका वर्णन करते हैं

कफज प्रदरके लक्षण ।

पिच्छिलपाण्डुवर्णचगुहस्निग्धं च शीतलम् ।
स्रवत्यसृक्कफेनेद्भूतथा भर्गरुजाफरम् ॥
उर्ध्वरोचक्रद्भ्रूल्लासव्वासकाससमन्वितम् ।

अर्थ—कफज प्रदर में गिलगिला, पांडुवर्ण, भारी, स्निग्ध, शीतल और आसदार रक्त निकलता है, इस से मर्म स्थानों में वेदना होती है । तथा वमन, अरुचि, हृत्तास, श्वास और खांसी ये भी उस में होते हैं ।

सान्निपातिक प्रदरका हेतु ।

वक्ष्यते क्षीरदोषाणां सामान्यमिहकारणम् ।
यच्च देवत्रिदोषस्वकारणं प्रदरस्य तु ।

अर्थ—स्तन्यदोष के जो सामान्य कारण कहे जायेंगे वेही सान्निपातिक प्रदर के हेतु सान्निपातिक प्रदरके लक्षण ।

त्रिलिङ्गसंयुतं विद्वान् नैकावस्थमसृग्दरम् ॥

अर्थ—सान्निपातिक प्रदरमें तीनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं, इसकी एकसी अवस्था नहीं रहती है ॥

दुश्चिकित्स्यस्त्री ।

नारीत्वतिपरिविच्छिष्टायदाप्रसीणलोहिता ।
सर्वहेतुसमाचारादतिवृद्धस्तयानिलः ॥

रक्तमार्गेण सृजति प्रत्यनीकगुणं कफम् ।
दुर्गन्धपिच्छिलं पीतं विदग्धं पित्ततेजसा ॥

वसामेदश्च या चाद्विसमुपादाववेगवान् ॥
सृजत्यपत्यमार्गेण सर्पिमज्जावसोपमम् ।

शश्वत्स्रवत्यथास्त्रावंतृष्णादाहज्वरान्विता ।
सृणेरकां दुर्बलाश्च तामसाध्यां वि-
चर्जयेत् ॥

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्तरक्तस्त्रावके कारण परिक्रिष्ट और अत्यन्त क्षीणरक्त होजाती है तब तीनों दोष अपना प्रभाव जमाछेते हैं इन में से वायु अत्यन्त कुपित होकर उक्त मार्ग द्वारा विपरीत गुण कफकी निकालती

है, उस समय पित्त के तेजके कारण रक्त दुर्गन्धित, पिच्छिल, पीला और विदग्ध हो जाता है । तब वज्रानु वायु शरीर की सम्पूर्ण घसा और मेद को ग्रहण करके योनि द्वारा घी, मज्जा और चर्बी के सदृश निरन्तर निकालती रहती है । इस रोग में स्त्री तृषा, दाह और ज्वर से भी पीडित रहती है । ऐसीक्षीणरक्ता और दुर्बला स्त्री चिकित्साके योग्य नहीं होती है ॥

विशुद्धऋतुके लक्षण ।

मासाभिपन्नवाहातिपञ्चरात्रानुबन्धिच
नैवातिबहुनात्यल्पमार्तवशुद्धमादिशेत् ॥

अर्थ—जो स्त्री महीने के महीने ऋतु-यती होती है और ऋतुकालमें दाह वा य-तना कुछ नही होता और रजोदर्शन पा-ञ्चराततक रहता है और रुधिर भी न बहुत अधिक न बहुत थोडा निकलता है, उसे शुद्ध कहते हैं ॥

विशुद्धआर्तव के लक्षण ।

गुञ्जाफलसमानञ्चपद्मालक्तकसन्निभम्
इन्द्रगोपकसङ्काशमार्तवशुद्धमेवतत् ॥

अर्थ—जो रुधिर चिरभिठी, लालकमल, महापर या वीरभट्टीके रंगके समान लाल लाल होता है वह शुद्ध आर्तव है ॥

योनीनांवातलाघानांयदुक्तंइहभेषजम् ॥
चतुर्णांप्रदराणाञ्चतत्सर्वकारयेद्भिपङ्क ।
रक्तातिसारिणाञ्चैवतथालोहितपिचिना
म् ॥ रक्तार्शसाञ्चतत्प्रोक्तंभेषजंतचका
रयेत् ॥

अर्थ—घातलादि योनियों की जो जो

चिकित्सा कहीगई है वेही चारों प्रकार के प्रदरों में करना श्रेष्ठ है । रक्तातिसार, रक्त पित्त और गूर्ना ववासारमें जो जो चिकित्सा कहीगई है वे भी सब यहां करनी चाहिये ।
घात्रीस्तनस्तन्यसम्पदुक्ताविस्तरतःपुरा।
स्तन्यसञ्जननञ्चैवस्तन्यस्यचविशोधनम्
वातादिदृष्टन्निद्रञ्चक्षीणस्यचचिकित्स
तम् ॥ तत्सर्वमुक्तंयेत्वर्णाक्षीरद्रोपाःप्र
कीर्तिताः । वातादिष्वेवतानुविद्याच्छा
स्त्रचक्षुभिपक्तमः ॥ त्रिविधास्तुयतःशि-
ष्यास्ततोवक्ष्यामिबिस्तरम् ।

अर्थ—जातिसूत्रीय अध्याप में धात्री के स्तनसंबंधी दूध के गुण विस्तारपूर्वक वर्णन करदिये गये हैं तथा उसीस्थलमें दूध के उत्पन्न करनेवाले और शुद्ध करनेवाले उ-पायभी वर्णन कियेगये हैं । वातादिद्रोषों से दूषित स्तन्य के लक्षण और चिकित्सा भी वर्णन कीगई है । तथा अष्टोदरीय अध्याप में दूधके दोषोंका वर्णन भी किया गया है । विद्वान् वैद्य स्तन्यमें वातादि दोषों को देखकर उसके अनुसारही चिकित्सा करे । परन्तु शिष्य तीन प्रकार के हेतु हैं, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट अतएव इसका विस्तारपूर्वक वर्णन कियाजाता है जिससे प्रत्येक प्रकार के शिष्य को उपयोगी होवे ॥

अजीर्णासात्प्यविपमयिरुद्धात्यर्थभोज
नात् ॥ लवणाम्लकडुसारमक्लिन्नानाञ्च
सेवनात् । मनःशरीरसन्तापादस्वप्नाभि
शिचिन्तनात् । मासवेगप्रतीघातादमा-

स्रोदीरणेनच । परमान्नं गुडकृतं कृसरंद
धिमतस्यकम् ॥ अभिष्यन्दीनिमांसानि
ग्राम्यान्पौदकानिच । शुक्त्वाशुक्त्वा
दिवास्वप्नान्मद्यस्यातिनिषेवणात् ॥ अ-
नायासादभीघातात्क्रोधाच्चातङ्ककर्पणैः
दोषाः क्षीराशयाः प्राप्यशिराःस्तन्यप्रदप्य
तत् ॥ कुर्युरष्टविधं भूयो दोषास्तत्तान्नि
बोधत ।

अर्थ—दुष्याध्य, असात्म्य, विषम, वि-
रुद्ध और अत्यन्त भोजन करने से, नम-
कीन, खेद, खार, प्रकृिन्न अन्न के अत्यन्त
सेवन से, मानसिक ताप, शारीरिक संताप,
रात्रिजागरण, चिन्ता, मलमूत्र के उपस्थित
वेगों का अवरोध, अप्राप्तवेगों के जोर
मारकर करने का प्रयत्न, गुड़का अन्न
[धानी आदि] खिचड़ी, दही, मछली,
अभिष्यन्दी ग्राम्य, आनूप, और औदकजीवों
का मांस, भोजन करतेही दिन में सो रहना,
अत्यन्त मद्यपान, शारीरिक परिश्रम का
अवरोध, चोट, क्रोध और व्याधियोंसे कृश,
होना, इन संपूर्ण कारणों से दोष क्षीराशय
में पड्चकर, क्षीरवाहिनी शिराओंको दूषित
करके स्तन्य को दूषित करदेते हैं । इस
से आठ प्रकार के स्तन्यदोष उत्पन्न होते
हैं । अब उन सबका वर्णन करते हैं ।

स्तन्यदोष के लक्षण ।

वैरस्यफेनसंघातेरौक्ष्यंचेत्यनिलात्मकम् ॥
पित्ताद्वैषण्येदौर्गन्ध्येस्तेहृषैच्छिद्यगौरवम्
कफाद्भवतिरूक्षाद्यैरनिलैःस्वैःप्रकोपणैः ॥
कुडःक्षीराशयप्राप्यरसस्तन्यस्यदूषयेत् ।

विरसंवातसंसृष्टं कृशी भवति तत्पिबन् ॥
नचास्यस्वदेतक्षीरं कृच्छ्रेणचविवर्द्धते ।

अर्थ—वात से दूषित स्तन्य विरस,
झागदार, रूखा होता है । पित्त से दूषित
स्तन्य विवर्ण, दुर्गन्धयुक्त होता है, तथा
कफदूषित स्तन्य चिकना, गिलगिला और
भारा होता है ।

इस तरह रूक्षादि हेतुओं से वायु कुपित
होकर क्षीराशय में अपना अधिकार जमा-
कर स्तन्यरस को दूषित करदेती है । ऐसे
विरस और वात दूषित दुग्धको पीनेवाला
बालक कृश होजाता है । इस बालक को
दूध अच्छा नहीं लगता है और यह बड़ी
कठिनाता से बढ़ता है ।

वातदूषित दुग्धके अवगुण ।

तथैववायुःकुपितःस्तन्यमन्तर्विलोडयन्
करोति फेनसङ्घातं तत्तु कृच्छ्रात्प्रवर्तते ।
तेनक्षामस्वरोवालो वद्धविण्मूत्रमारुतः ॥
वातिकंशर्परोगंवापीनसंवाधिगच्छति ।
पूर्ववत्कुपितःस्तन्येस्तेहंशोपयतेऽनिलः ॥
रूक्षं तत्पिबतोरौक्ष्याद्ब्रह्मासश्चजायते ।

अर्थ—इसी तरह से वायु कुपित होकर
दूध को भीतरही भीतर विलोडित करके दूध
को झागदार करदेती है और यह दूध बहुत
थोड़ा वाहर निकलता है । इस दूध के
पीने से बालक का शब्द क्षीण पडजाता है,
विष्टा, मूत्र और अधोवायु रुकजाते हैं,
फिर वातज सिर के रोग, और पीनस रोग
उत्पन्न होते हैं ॥ पूर्ववत् कुपित ईर्ष
वायु स्तन्य की चिकनाई को सोखदेती है

इस रूक्ष दूध के पीने वाले बालकका दूध की रूक्षता के कारण बल क्षीण होजाताहै

पित्तदूषित दुग्धके अवगुण ।

पित्तमुष्णादिभिः कुद्धस्तन्याशयमभिप्लु-
तम् ॥ करोतिस्तन्यववर्णनीलपीतासि
त्तादिकम् । विवर्णगात्रः स्वन्नः स्यात्तृष्णा
हृदिभन्नचिद्विशुः ॥ नित्यमुष्णशरीरश्च
नाभिनन्दतितस्वयम् । पूर्ववत्कुपितेपि
त्तदौर्गन्ध्यक्षीरमृच्छति ॥ पांडुमयस्त
द्भवतः कामलाचभवेच्छिशोः ॥

अर्थ—उष्णादि पदार्थों के सेवन से पित्त कुपित होकर दुग्धाशय में उत्पात कर के दूध में नीलापन, पीलापन और कालापन आदि विवर्णताओंको करताहै ॥

ऐसे दूधको पीने वाले बालकका देह वि-
वर्ण, पसीनों से युक्त होताहै उसे तृप्ता बहुत
लगती है, उसका मल फटजाताहै और श-
रीर सदा गरम रहता है और उस दूध में
बालक की रुचि नहीं हैती है इसी तरह
पित्तके कुपित होने पर दूध में दुर्गन्ध आ-
ने लगती है और पीछे उस बालक के पांडु
रोग और कामला रोग होजाते है ॥

कफदूषित दुग्ध के अवगुण ।

स्निग्धगुर्वादिभिः श्लेष्माक्षीराशयगतः
स्त्रियाः ॥ स्नेहान्वितत्वात्क्षीरमति
स्निग्धं करोति तु । छर्दनः कुंथनस्तेनला
लालुर्जायते विशुः ॥ नित्योपादिग्धैः श्लो-
ताभिर्निद्रालस्यसमन्वितः ॥ श्वासकास
परीतस्तु प्रसेकतमकान्वितः ॥ अभिभूय
कफः स्तन्यपिच्छलकुंठस्तेयदा । लाला

लुः शीनवक्राक्षिर्जडः स्यात्तुपिवन् विशुः ॥
कफः क्षीराशयगतो गुरुत्वात्क्षीरगौरवम् ।
अतिस्नेहान्वितं पीत्वा बालो हृद्रोगमृच्छति
अन्यांश्च त्रिविधान् रोगान् कुर्यात्क्षीरस-
माश्रितान् । क्षीरेवातादिभिर्दुष्टैः सम्भव-
न्तितदात्मकाः ॥

अर्थ—स्निग्ध और भारी पदार्थों के से-
वन करने से कफ-दुग्धाशय में जाकर स्व-
यं स्नेहान्वित होनेके कारण दूध को अत्य-
न्त चिकना करदेता है । इस दूध के पीने
से बालक यमन करने लगता है, फिचता है
और उसकी लार टपकने लगती है । कफ
के कारण बालक के स्रोतों के अत्यन्त विह-
सजाने से निद्रा, आलस्य, श्वास, खांसी,
प्रसेक और तमककी अधिकता होती है ।
जब कफ दूध को बिगाड़ कर गिलगिला
कर देता है तब उस दूध के पीने वाले बा-
लक के लार पडती है, उस के मुखपर सू-
जन होती है और आंखें पथराईसी होजा-
ती हैं । दुग्धाशय में कफ जाकर भारी हो-
ने के कारण दूध को भारी कर देता है, उस
अति स्निग्ध दूध के पीने से बालक के हृ-
द्रोग होजाता है । तथा क्षीरसंबंधी और
भी अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते
हैं । तथा वातादि दोषों से दूषित दुग्ध में
वात से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के
उपद्रव होते हैं ॥

स्तन्यशोधनमवमन ।

तदादौ स्तन्यशुद्धयर्थं धात्रीस्नेहोपपादिता
म् । संस्वेद्य च घृताभ्यक्तां वमनेनोपपाद-

येत् ॥ वचाभिपंगुयष्ट्याहफलवत्सकस-
र्षपैः । कल्कैर्निम्बपटोलानांकाथैर्वाल्व
णैर्वमेत् ॥ सम्यग्वान्तांयथान्याय्यंकृतसं
सर्जनांपुनः ।

अर्थ—दूध के शुद्ध करने के निमित्त प्र-
थमही धात्री को स्निध करै और फिर घृत
की मालिश कराके पसीने देकर नीचे लि-
खी वमनकारक औषध देवै यथा वच, प्रियं-
गु, मुलहठी, इन्द्रजौ, संरसों, इनका कल्क
अथवा नीम और परवल के क्वाथ में नम-
क मिलाकर गरम २ देवै । जब अच्छीतर-
ह वमन होचुकै तब पेयादि क्रमका पालनकरै
विरेचनविधि ।

दोषकालबलापेक्षीस्नेहंपीत्वाविरेचयेत् ।
त्रेवृतामभयांवापित्रिफलारससंयुताम् ॥
पाययेत्प्रमथुं संयुक्तामभयाञ्चापिकेदलाम् ।
पाययेन्मूत्रसंयुक्तं विरेकञ्चापिशास्त्रवित् ॥
अथसम्यग्विरिक्तांचकृतसंसर्जनांततः ।

अर्थ—फिर दोष, काल और बल का
विचार कर के स्नेहन कराके विरेचन देवै ।
निसोथ अथवा हरड के कल्कको त्रिफला
के रस के साथ देवै अथवा केवल त्रिफला
के काथ में शहत मिलाकर पान करावै,
अथवा केवल हरड को गोमूत्र के साथ देवै
जब अच्छीतरह विरेचन होजाय तब पेयादि
क्रमका पालन करावै ।

स्तन्यदोषमें पथ्य ।

ततोदोषावशेषधनैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥
शालयःपट्टिकावास्युःश्यामाकोभोजने
हिताः । प्रियङ्गवःकोरुपायवावेणुयवा

स्तथा । वंशवेत्रकडयाशचसनेहायूपसं-
स्कृताः । मुद्गान्मसूरान्पूपायेंकुलुत्थांश्च
प्रकल्पयेत् ॥ निम्बवेत्राग्रकुलकवार्ताका
मलकैःशृतान् । सन्योपसैन्धवान्यूपान्
कारयेत्स्तन्यशोधनान् ॥ शशात्कपिञ्ज-
लानेणान्संस्कृतांश्चमकल्पयेत् । शार्ङ्ग-

प्रासप्तपर्णत्वग्श्वगन्धाशृतंजलम् ॥

अर्थ—तदनन्तर शेष दोषोंके दूर करने
के लिये दोषनाशक अन्नपान देवै । शाली-
चावल, साठी चावल, सोंखिया इनका भो-
जन हितहै। प्रियंगु कोदों, जौ, वेणुयव, वां-
सकी कोंपल, वेतकी कोंपल इनका घी में
छोंकाहुमा शाक, मूंग, मसूर और कुलुथी
का यूप देवै । नीम के पत्ते, वेत की कों-
पल, परवल, बेंगन और आंवला इन के
साथ सिद्ध किये हुए यूपोंमें सोंठ, मिरच,
पीपल, और सेंधानमक डालकर सेवन कर-
ने से स्तन्य शुद्ध होता है ॥

सर्गोश, तीतर और हिरण के अच्छीतरह
सिद्ध कियेहुए मांसरस देवै ॥

शार्ङ्गपट्टा, सप्तपर्णकी छाल और असगंध
डालकर औटया हुआ जल पानिको देवै ॥

स्तन्यशोधकअन्यभयोग ।

पाययेताथवास्तन्यशुद्धयेकदुरोहिणीम् ।
अमृतासप्तपर्णन्वक्रुक्ताथंचैवसनागरम् ॥
किराततिक्तककाथंश्लोकपादेरितान्पिबे
त् ॥ त्रिनेतान्स्तन्यशुद्धचर्चामितिसामान्य
भेषजम् ॥ कीर्तितंस्तन्यदोषाणांपृथग
न्यंनिवाधत ।

अर्थ—स्तन्य की शुद्धि के निमित्त कु-

टकी का क्वाथ भी हित है। अथवा गिलो-
य और ससपणी की छाल के क्वाथको सों-
ट डालकर पान करावै अथवा चिरायते का
क्वाथ पान करावै। इसतरह आधे २ छो-
क में लिखे हुए तीन प्रयोगों मेंसे किसीको
दूध के शुद्ध करने के निमित्त देवै। ये सं-
क्षिप्त योग कहे गये हैं अब विस्तृत योगों
को कहते हैं ॥

स्तन्यदोषमैविशेष चिकित्सा ।

प्रपिबेद्विरसक्षीराद्राक्षामधुकशारिवाः ॥

श्लक्ष्णपिष्टोपयस्याञ्चसमालोड्यमुखा-
म्युना ॥

अर्थ—जिस स्त्री का दूध विरस हो वह
दाख, मुलहठी, शारिया अथवा क्षीरकाकोली
को महीन पीसकर गरम गरम जल में सि-
खाकर पीवै ॥

स्तन्यशोधक लेप ।

पञ्चकोलकुलत्पैश्चपिष्टैरालेपयेत्स्तनौ ॥

शुष्कीमक्षालयनिर्दुह्यात्तथास्तन्यंविशुद्धयति

अर्थ—पंचकोल और कुलथी को पीस
कर स्तनों पर लेप करै, सूखने पर खूब
धोकर साफ कर देवै ॥

फेनिल स्तन्यका उपाय ।

फेनसंघातवत्क्षीरस्यस्तांफाययेत्तच्च ॥

पाठानागरशार्ङ्गामूर्वाःपिष्टासुखाम्युना

अञ्जनंत्तगरंदासुविल्वमूलंमिषंगवः ॥

स्तनयोःपूर्ववत्कार्येलेपनंक्षीरशोधनम् ।

अर्थ—झागदार दूध होवै तो पाठा, सोंठ,

शार्ङ्गमूला, मरोडकली इनको पीसकर मुहाते

हुए गरम जलके साथ पान करावै। अथवा

अंजन, तगर, देवदारु, विल्वमूल और प्रि-
यंगु इनको पीसकर स्तनों पर लेप करै।

किराततित्तकंशुंठीममृताकाथयेद्विपक्वः।
तत्काथंपाययेत्तथाश्रीस्तन्यदोषनिवर्णनम्
स्तनौचालेपयेत्पिष्टैर्वज्रोधूमसर्पपैः ।

अर्थ—चिरायता, सोंठ और, गिलोयका
काथ करके स्तन्य शोधन के निमित्त धात्री
को पान करावै, तथा जौ, गेहूँ और सरसों
को पीसकर स्तनों पर लेप करै।

रूक्षतानाशक प्रयोग ।

पद्भिविरेकाश्रितीयोक्तैरौषधैःस्तन्यशोधनैः

रूक्षक्षीरापिबेत्क्षीरतैर्वासिद्धघृतंपिबेत् ।

पूर्ववज्जीवकाथञ्चपञ्चमूलंमलेपनम् ॥

स्तनयोःसंविधातव्यंसुखोष्णंस्तन्यशो-
धनम् ।

अर्थ—जो दूध रूखा पड़जाय तो सूत्र
स्थानके पदविरेकाश्रितीय अध्याय में कही
हुई स्तन्यशोधक औषधके साथ सिद्ध किया
हुआ दूध वा घी पान करावै। तथा जी-
वकादि गणोक्त द्रव्य वा लघु पंचमूल को
पीसकर मुहाते हुए गरम जल के साथ स्तनों
पर लेप करै।

विनर्णतानाशक प्रयोग ।

यष्टीमधुकमद्विकापयस्यासिन्धुवारिका ॥

शीताम्युनापिबेत्कल्कंक्षीरवैवर्णनाशन-

म् । द्राक्षामधुककल्केनस्तनौवास्याःमले

पयेत् ॥ प्रसालपचारिणाचैवनिर्दिह्यात्

तौपुनःपुनः ।

अर्थ—मुलहठी, दाख, क्षीरकाकोली और

संमाल इनके कल्क को मुहाते हुए गरम

जलके साथ पान करे तौ दूधकी विवर्णता दूर होती है । इसमें दाख और मुलहटी के कलक का लेप स्तनों पर करे और मुखने पर खूब धो डाले ।

दुर्गंधिनाशक प्रयोग ।

त्रिपाणिकाजशृंगयौचत्रिफलांरजनीवचा
मू । पिवेत्क्षीराम्बुनापपक्षीरदौर्गन्ध्य-
नाशनम् ॥ लिङ्गाद्वाप्यभयाचूर्णसन्धो
पंमाक्षिकाप्लुतम् । क्षीरदौर्गन्धनाशा
धीधत्रीपथ्याशिनीतथा ॥ शारिवोक्षीर
मंजिष्ठाश्लेष्मन्तकसचन्दनैः । पत्राम्बु
चन्दनोक्षीरैःस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में दुर्गन्ध आती हो तो मैदासिंगी, अजशंगी, त्रिफला, हलदी, वच इनको दुग्ध और जलके साथ पीसकर पीवे अथवा हरड त्रिकुटा इनके चूर्ण को शहस में मिलाकर चाटे, इसमें छीको पथ्य से रहना उचित है । तथा शारिका, खस, म-
जीठ, ल्हिसोडे की जड और रक्त चन्दन अथवा तेजपात, नेत्रयाला, रक्तचन्दन और खस इनका लेप स्तनों पर करे ।

दूधकी स्निग्धताका उपाय ।

स्निग्धक्षीरादारुमुस्तपाठाःपिप्लामुखा
म्बुना । पीत्वाससैन्यवाग्निप्रक्षीरशुद्धि
मवाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो दूधमें चिकनाई हो तौ देव-
दारु, मोथा, पाठा, इनको सेंधे नमकके साथ पीसकर सुहाते हुए गरम जलके साथपीवै ॥

दूधकी पिच्छिलता का उपाय
प्रपिवेत्पिच्छिलक्षीरार्शङ्गामभयांच-

चाम् । मुस्तनागरपाठाश्चपीताःस्तन्यवि-
शोधनम् ॥ तक्रारिष्टात्पिवेदक्षीरसांपानि
दर्शिताः । विदारीविल्वमधुकैःस्तनौचा-
स्याःप्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में पिच्छिलता हो तौ शार्ङ्गघा, हरड, वच, मोथा, सोंठ और पाठा इनको घोटकर पीवै । अर्शरोग में कोह हुए तक्रारिष्ट भी इस रोग में हित हैं । विदारीकंद, बेल और मुलहटी का स्तनोंपर लेप करना चाहिये ।

दूधकी गुरुताका उपाय ।

त्रायमाणामृतान्मिष्वपटोलत्रिफलाशृतम्
गुरुक्षीरार्शिवेदेतत्स्तन्यदोपविशुद्धये ॥
पिवेद्वापिप्लीमूलचञ्चचित्रफनागरम् ।
बलानागरशार्ङ्गघटामूर्वाभिर्लेपयेत्स्तनौ ॥
पृष्णिपर्णीपयस्याभ्यांस्तनौचास्याः

प्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में भारापनहो तौ त्राय-
माणा, गिलोय, नीमकी छाल, परबल और त्रिफला का काथ पीवै । अथवा पीपलामूल चञ्च, चीता, सोंठका काथ पानकरे अथवा खैरटी, सोंठ, शार्ङ्गघा और मूर्वा अथवा पृष्णि पर्णी और क्षीरकाकोली का लेप करे ॥

अष्टावेतेक्षीरदोपाहेतुलक्षणभेजैः ।
निर्दिष्टाःक्षीरदोपोत्यास्तथोक्ताःकेचि-
दामयाः ॥

अर्थ—ये आठ प्रकारके क्षीर दोष हेतु,
लक्षण और चिकित्सा के साथ वर्णन किये गये हैं, यथा दूषित दूध के पीने से जो बालकों के उपद्रव होते हैं, उनका वर्णन भी किशान्या है ॥

बालकों की मात्रा का विचार ।
 दोषदूष्यमलाश्चैवमहतां व्याधयश्च ये ।
 तएवसर्वे बालानां मात्रास्त्वल्पतरामता ।
 निवृत्तिर्वमनादीनां मृदुतां परतंत्रताम् ॥
 वाक्चेष्टयोरसामर्थ्यवीक्ष्य बालेषु शास्त्र
 धित् । भेषजंचाल्पमात्रन्तु यथा व्याधिप्र-
 योजयेत् ॥ मधुराणिकपायाणिक्षीरवन्ति
 मृदूनि च । प्रयोजयेद्विषग्वालेमतिमानप्र-
 मादतः ॥

अर्थ—दोष, दूष्य, मल और बड़े मनु-
 ष्योंके होनेवाली सम्पूर्ण व्याधियां बालकों
 के भी होती हैं परन्तु बालकको औषधकी
 मात्रा बहुत कम दीजाती है, क्योंकि ये
 कोमल और परतंत्र होते हैं । और बोल-
 कर अपने मनका हाल प्रगट नहीं करसक्ते
 हैं और न किसी प्रकार की चेष्टा करसकते
 हैं इससे बुद्धिमान वैद्यको उचित है कि
 व्याधि के अनुसार अल्पमात्रा का प्रयोग
 करे । चिकित्सक को उचित है कि बालकों
 को मधुर, कपाय और मृदु औषध दूध के
 साथ में अत्यन्त सावधानी से देवे ।

शिशुपक्ष में गृहितकर्म ॥

अत्यर्थस्निग्धरुक्षोष्णमम्लं कटुविपाकि च
 गुरुचौषधपानान्नमेतद्वालेषु गृहितम् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्निग्ध, अत्यन्त रुक्ष, उष्ण,
 अम्ल, कटुविपाकी और भारी औषध
 तथा अन्नपान बालकों को देना ठीक
 नहीं है ।

भवतिचात्र ।

समासात्सर्वरोगाणामेतद्वालेषु भेषजम् ।

निर्दिष्टं शास्त्रबुद्ध्या तत्त्वविभक्त्यप्रयोजयेत्
 सलिङ्गं व्यापदोयोनेः सनिदानचिकित्सिता
 उक्ताविस्तरतः भ्रम्यकृणुनिना तत्त्वदर्शना ॥
 अर्थ—इस तरह बालकों के रोगों की
 सम्पूर्ण प्रकार की चिकित्सा वर्णन की गई
 है । इनका शास्त्र के अनुकूल विचार कर
 के प्रयोग करे ॥

इस तरह भगवान् पुनर्वसुने योनिरोगों
 के लक्षण निदान और चिकित्सा का सवि-
 स्तर वर्णन किया है ।

इति सर्वविकाराणां मृत्तमेतच्चिकित्सितम्
 स्थानमेतद्विद्वन्त्रस्य रहस्यं सारमुत्तमम् ॥

अर्थ—इस तरह सम्पूर्ण विकारों की चि-
 कित्सा वर्णन की गई है, यह चिकित्सितस्थान
 इस ग्रन्थ का सारभाग और परम रहस्य
 स्वरूप है ॥

अस्मिन्सप्तदशाध्यायाः कल्पाः सिद्धय ए
 व च । नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्य तन्त्रे चरक
 संस्कृते ॥ तानेतान्कापिलबलिः शेषान्
 दृढबलोऽकरोत् । तन्त्रस्यास्य महार्थस्य
 पूरणार्थं यथात्थम् ॥

अर्थ—चरकप्रतिः संस्कृत अग्निवेश के
 रचे हुए ग्रन्थ में शेष सत्रह अध्याय और
 कल्पस्थान तथा सिद्धिस्थान इन दोनों
 के बारह बारह अध्याय नहीं हैं । इन शेषों
 को दृढबल ने इकट्ठे कर के इस ग्रन्थकी
 पूर्ति के लिये लगादिये हैं ॥

रोगायेऽप्यत्र नो हिष्टाय हुत्वा न्नामरूपतः
 तेषामप्येतदेव स्याद्दोषादीन्वीक्ष्य भेषजम्
 दोषदूष्यनिदानानां विपरीतं हितं धुवम् ॥

उक्तानुक्तानुदानसर्वान्सम्यग्युक्तानि
यच्छति ॥

अर्थ—रोगों के नाम और रूप असंख्य हैं; इससे जिन रोगोंका यहां वर्णन नहीं कियागया है उनके भी दोषादिकों को देख कर तदनुसार उनकी चिकित्सा करनी चाहिये सम्पूर्ण प्रकार के उक्त और अनुक्तरोगों में दोष द्रव्य, और निदान के विपरीत औषध करना हित है ॥

पथ्यापथ्यकालक्षण॥

देशकालप्रमाणानांसात्म्यासात्म्यस्यचैव
हि ॥ सम्पयोगोऽन्यथान्येषांपथ्यमपथ्य-
न्यथाभवेत् ।

अर्थ—देश, काल, प्रमाण, सात्म्यऔर अ-
सात्म्य का विचार करके जो अन्नपान का सेवन किया जाता है वह पथ्य है । इस से विपरीत अपथ्य होता है ।

आस्यादामाशयस्थानहिरोगान्नस्तःशिरो
गतान् ॥ गुदात्पक्वाशयस्थांश्चहन्त्याशु
तरमौषधम्

अर्थ—मुख से आमाशय तक, नासिका से मस्तक तक और गुदा से पक्वाशय तक के रोग औषध के आम्यन्तर प्रयोगों से शीघ्र दूर होजाते हैं ।

प्रलेपादिजन्यरोग ।

शरीरावयवोत्थेषुविसर्पपिडकादिषु ॥

यथादेशंप्रदेहादिशमनंस्याद्विशेषतः ॥

अर्थ—शरीर के बाहर के अंगों में जो विसर्प और पिडकादिक उत्पन्न होते हैं उन पर उन के उत्पन्न होने के स्थान के अनु-

सार छेप आदिकां प्रयोग करने से वे शीघ्र अच्छे होजाते हैं ।

चिकित्सा विचार ।

दिनातुरौपथव्याधिजीर्णालिंगत्वपेक्षणम् ।

अर्थ—दिन, रागी, औषध, व्याधि जीर्ण लक्षण और ऋतु इन सत्रका विचार कर के चिकित्सा करना उचित है ।

दिन विचार ।

कालंविद्यादिनांपेक्षःपूर्वाह्णवसनंयथा ॥

अर्थ—काल का विचार दिनोपेक्ष है, जैसे पूर्वाह्न में बमनकारक औषधों का प्रयोग करना चाहिये ॥

रागी विचार ।

रोग्यपेक्षोयथाप्रातर्नरन्नोवलवान्पिचेत्
भैपजलघुपथ्यन्नैर्युक्तमघातुदुर्वलः ॥

अर्थ—वलवान् रोगी प्रातःकाल बिना कुछ खाये ही औषधों का सेवन करे और दुर्वल मनुष्य थोड़ा पथ्य अन्न सेवन कर के औषध का सेवन करे ।

औषध विचार ॥

भैपज्यकालान्नुक्त्वादौमध्येपथान्मुहुर्मुहुः
सामुद्रमुक्तसंयुक्तं प्रासग्रासान्तरदेश ॥

अर्थ—औषध सेवन के दस समयहैं, यथा—भोजन के पहिले, भोजन के बीच में भोजन के पीछे, चार चार थोड़ी देर ठहर के, सामुद्र, भक्तसंयुक्त [आहार के साथ मिलाकर] प्रासग्रास में, प्रासान्तर में बिना कुछ खाये वा पथ्य में मिलाकर ।

पंचवायु में औषध सेवन ।

अपानेविशुणपूर्वसमानेपथ्यभोजनम् ॥

व्यानेतुप्रातराशान्ते उदाने भोजनोत्तरम् ।
वायुभाणप्रदुष्टे त्वासे ग्रासांन्तरि प्यते ॥
श्वासकामपिपासासुत्वन्वधार्यमुहुर्मुहुः ॥
सामुद्रं हिकान् भुक्तं लघुना न्नेन संयुतम् ॥
सम्भोज्यं त्वौपधं भोज्यैर्विचित्रैररुचौ मतम्

अर्थ—अपान वायुके दूषित होने पर भोजन से पहिले, समान वायु के दूषित होने पर भोजन के बीच में, व्यानं वायु के दूषित होने पर प्रातःकाल, उदानवायु के दूषित होने पर भोजन के पीछे और प्राण वायु के दूषित होने पर प्रासप्रास में अथवा प्रासान्तर में औषध सेवन करे। श्वास खांसा और पिपासा रोग में औषध को धार वार मुख में धारण करे, हिककी रोगमें हल के भोजन के साथ सामुद्र औषध देवे। तथा अरुचि में अनेक प्रकार के भोजनों के साथ औषध मिलाकर देवे ॥

व्याधि विचार ।

ज्वरे पेयाः कृपायाश्च क्षीरसर्पिर्विरेचनम् ।
षडहपडहे देयं कालं वीक्ष्यामस्यत्यु ॥

अर्थ—ज्वरमें प्रति छठे दिन पेया, कृपाय दध, सर्पिं (घी) और विरेचन देवे। जैसे प्रथम दिन लघन करा के सातवें दिन तक पेया, आठवें दिन से चौदहवें दिन तक दूध आदिका प्रयोग करे, इसी तरह व्याधि के अनुसार चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिये

जर्ण लक्षण ।

भुद्गेगमोक्षौ लघुता विशुद्धिर्जांर्णलक्षणम् ।
तदाभेदजमादेयं स्यात्तदोपवदन्यथा ॥

अर्थ—भूय लगना, मलमूत्र का स्पष्ट

होना, शरीर में हलकापन, डकार, अधो वायु आदि का शुद्ध होना ये जर्ण के लक्षण है। ऐसे समय में औषध देना चाहिये, इससे अन्यथा दोगोत्पादक होता है ॥

ऋतु विचार ।

चयादयश्च दोषाणां वर्ज्यं सेव्यञ्च तत्र यत् ।
ऋतावपेक्ष्यं यत्कर्म पूर्वैस्सर्वमुदाहृतम् ।

अर्थ—प्रथम सूत्रस्थान में जहाँ ऋतुचर्या वर्णन की गई है वहाँ दोषों का संचय और प्रकोप तथा उनकी शांति का वर्णन हो चुका है। तथा सेवनीय और असेवनीय कर्मों का वर्णन भी हो चुका है।

उपक्रमाणां करणं प्रतिपेक्षे च कारणम् ।
व्याख्यातमवलानासविकल्पानामवसणे
मुहुर्मुहुश्च रोगाणामवस्थामातुरस्य च ।
अवेक्ष्यमाणस्तु भिषक् चिकित्सायां नुम-
ह्यति ॥

अर्थ—सुचिकित्स्य व्याधियों का कारण वर्जनीय व्याधियों का कारण, और दुर्बल रोगियों के लिये औषधों का विकल्प ये सब बातें भी प्रथम वर्णन कर दी गई हैं। जो वैद्य रोग और रोगी की अवस्था को देखकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होता है, वह मोह को प्राप्त नहीं होता है ॥

इत्येव पृथ्विर्धकालमनपेक्ष्य भिषग्जितम् ।
प्रयुक्तमहिताय स्याच्छस्यस्य कालवर्षवत् ।

अर्थ—इस तरह रोगों के विषय में इन छः कालों पर विना विचार किये जो औषध प्रयोग करता है उसकी औषध खेती में सुस्तमयकी वर्षाकी तरह हानिकारक होती है

कालविचार ।

व्याधीनामृत्वहोरात्रवयसांभोजनस्यतु ।
विशेषोभिद्यतेयस्तुकालापेक्षःसन्त्यते ॥
वसन्तेश्लेष्मजारोगाःशरत्कालेतुपित्तजाः
वर्षामुवातजाथैवप्रायःप्रादुर्भवन्तिहि ॥
निशादौदिवसान्तेचवयोऽन्तेवातजागदाः
प्रायः क्षपान्तेकफजास्तयोर्मध्येतुपित्त-
जाः ॥ जीर्णान्तेवातजारोगाजीर्यमा-
णेतुपित्तजाः ॥ श्लेष्मजांशुक्रमात्रेतुल-
-भन्तेप्रायशोचलम् ॥

अर्थ—सब व्याधियों ऋतु, दिन, रात, अवस्था और भोजन कालकी अपेक्षा भिन्न भिन्न दोषों से उत्पन्न होती है। यथा वसन्त ऋतु में कफजरोग, शरत्काल में पित्तजरोग और वर्षा में प्रायः वातजरोग होते हैं ।

रात्रिके प्रथम प्रहरं में, दिनके पिछले प्रहर में और सुहापमें वातजरोग होते हैं । रात्रि के अन्तमें और प्रातः काल कफजरोग होते हैं, तथा पित्तज रोग दुपहर और आधिरात के समय होते हैं । भोजन पचने पर वात-जरोग, पचनकाल में पित्तजरोग तथा भोजन करते ही कफजरोगों की वृद्धिहोती है।

औषधकी मात्राका प्रमाण ।

नाल्पहन्त्यौषधं व्याधियथापोऽल्पमहा-
नलम् ॥ दोषवृद्धातिमात्रं स्याच्छस्यस्या-
त्युदकं यथा । संप्रभार्यवलंतस्मादा मय-
स्यौषधस्य च । नैवातिबहुत्वात्यल्पं भैष-
ज्यमवचारयेत् ॥

अर्थ—अल्पमात्रा रोग को ऐसे दूर नहीं कर सकती है जैसे थोड़ासा जल बड़ी अग्नि

को नहीं बुझा संकता है और दर्धिमात्रा दोषोंको उद्दीर्ण करदेतीहै जैसे बहुत जल के बरसने से खेती नष्ट होजाती है । इस लिये औषध और रोगों के बलका विचार करके न बहुत धोड़ी और न बहुत अधिक औषध दैनी चाहिये ।

औचित्याद्यस्ययत्सात्म्यदेशस्य पुरुषस्य च ॥ अपध्यमपिनैकान्तात्सात्म्यज्यलभ-
तेसुरवम् ॥

अर्थ—जिस देश में औषध प्रचलित है, वा जिस देशके मनुष्यों को जो वस्तु सात्म्य है ॥ और यदि वह शास्त्रसे विरुद्ध भी है, उसको एक दमसे छोड़ देनी से सुख नहीं मिलता है किन्तु स्वास्थ्य विगड़ जाता है ।

देशानुकूलसात्म्यद्रव्य ।

पाहीकाःपल्लवाश्चीनाःसूलीकायवनाः
शकाः । मांसगोधूममाध्वीकशश्रवैश्वा-
नरोचिताः ॥ क्षीरसात्म्यास्तथाप्राच्या-
मस्त्यसात्म्याश्चसैन्धवाः । अश्मकाश्च-
न्तिकानां तु तैलाम्लंसात्म्यद्रव्यते ॥ शा-
कमूलफलंसात्म्यांश्चिधान्मलयवासिनाम्
सात्म्यंदाक्षिणतःपेषाम्पन्धश्चौत्तरपदिच-
मे ॥ मध्यदेशेभवेत्सात्म्यंयवगोधूमगौर-
साः । तेषां तत्सात्म्ययुक्तानि भैषज्यान्यव-
चारयेत् । सात्संध्याशुचलंपचनेनातिदोषं
चवद्वपि ॥ योगैरेनांचिकित्सनाद्देशाय
ज्ञोऽपराध्यति ॥

अर्थ—वाल्हीक [बलख देशवासी], पल्लव, चीनी, सूलीक, यवन, शक (तातारी)

इन लोगोंको मांस, गेहूँ, मद्य, शास्त्रकर्म और अग्निकर्म सात्म्य हैं । पूर्वदेशवासियों को दूध और सिंधियों को मत्स्य सात्म्य है (यहां पाठ में गडबड मात्रम होती है हमारी समझ में पूर्वदेश वासियों को मछली और सिंधियों को दूध सात्म्य है) पहाड़ी तथा अवान्तिका देशियों को तेल और खटाई सात्म्य है ॥ मलयवासियों को शाक फल और मूल सात्म्य है ॥ दक्षिणीयों को पेया और उत्तर पश्चिम के लोगोंकोमन्थ सात्म्य है । मध्यदेश वासियोंको जौ, गेहूँ, और दुग्धादि सात्म्य हैं ॥ इन भिन्न भिन्न देशवासियों के भिन्न २ सात्म्योंको देखकर चिकित्सा करे । सात्म्यद्रव्य शीघ्रही बल को बढ़ाते हैं और दैवात् सात्म्य द्रव्यका मात्रा से अधिक सेवन करलेना भी विशेष हानिकारक नहीं है । बिना देशके विचार के जो शास्त्रलिखित औषधों से चिकित्सा करता है वह दोषों का अपराधी है ।

चयोबलशरीरादिभेदाहिवहवोमताः ॥
तथान्तःसन्धिमार्गाणादोपाणांगूढचारिणाम् !

अर्थ—रोगियों के बय, बल और शरीर के भेद नानाप्रकार के हैं, इसी तरह भीतर सिंधियों में, स्रोतों में तथा गुप्त रहने वाले दोषों में अनेक प्रकार के रोग हैं ।

शास्त्रविरुद्धक्रियाकानिर्देश ।

भवेत्कदाचित्कार्यापिविरुद्धाभिमताक्रिया ॥ अन्तर्गतपित्तपातुंस्वेदसेकोपनाहनेः । नयन्तोवहिरुष्णैर्हितथोष्णशम-

यन्तितम् ॥ चास्यश्चशीतैःसकाद्यरुष्मान्तर्यातिपीडितः । सोऽन्तर्गूढकफंद्दन्तिशीतैःशीतंतयाजयेत् । इलक्ष्णःपिष्टघ्नोलेपश्चन्दनस्यापिदाहकृत् ॥ त्वग्गतस्योष्णोरोधाच्छीतकृच्चान्यथागुरुः ॥ छर्दिघ्नीमाक्षिकाविष्टामाक्षिकैवतुत्रामयेत् ॥ द्रव्येपुरिविन्नदग्धेपुर्वधेत्प्रेयविक्रिया । तस्माद्दोषोपधादीनिपरीक्ष्यदशतन्वतः । कुर्याच्चिकिरिसंतप्राज्ञोनयोगैरेवकवलैः ॥

अर्थ—कभी २ शाराविरुद्ध क्रिया भी हित होती है । जैसे जब पित्तकी उष्मा देह के भीतर बढजाती है तब उष्णसेक,स्वेद और उपनाह द्वारा भीतरकी ऊष्मा को बाहर लाकर शान्त करते हैं, यहां ऊष्मासे उष्मा दूर होती है । यदि यहां शीतल सेक, स्वेद और उपनाह करें तो उष्मा शरीरके भीतर घुसकर पीडा को और भी बढादेवे । दूसरी बात यह है कि ऋण के भीतर जब कफ पीव का रूप धारण कर के गुप्त रहता है तब ऊपर शीतल लेप करने से ऊष्मा भीतरको प्रवेश कर के उसे सुखादेती है यहां शीत द्वारा शीतकी शान्ति है । यदि शरीरपर चन्दन को बारीक पीसकर गाढा गाढा लेप करदे तो उस से दाह बढता है, क्योंकि वह त्वचाकी ऊष्मा को रोकलेता है । और अगर यद्यपि उष्ण है तो भी इसे बारीक पीसकर पतला लेप करने से दाह की शान्ति होजाती है । जैसे मक्खी का विष्टा वमन को रोकता है परन्तु माक्षिका के प्रयोग करने से वमन होता है ।

इसतरह सम्पूर्णद्रव्य स्थित और दग्ध होनेपर अन्यगुणों का अवलम्बन करलेते हैं । अत एव उक्त दस रीति से औषवादिककी परीक्षा करके चिकित्सा करै, केवल शास्त्रालिखितप्रयोगों परही भरोसा करना ठीक नहीं है (यहाँ चरकने 'विषयविषमौषधं, इस चिकित्सा की संक्षिप्त सूचनादी है । डाक्ट. र हैनीमान् ने इस विद्या को बहुत उन्नति दी है, यह चिकित्सा होमियोपैथी के नाम से सब भूमंडल पर अपना प्रभाव घटाती जाती है ।

निवृत्तरोगमौषधसेवन ।

निवृत्तोऽपिपुनर्व्याधिःस्वल्पेनायातिहेतुना । क्षीणमार्गोऽकृतेदेहेक्षेपःसूक्ष्मइवानलः तस्मात्तमनुबन्धीयात्प्रयोगेणानपायिना

अर्थ—निवृत्तहुई व्याधि थोड़ेही कारण से फिर उदय होआती है, दोष क्षीणहोने और अपने मार्गपर चलने पर भी अग्नि के पतंगकी तरह सूक्ष्मरूप में शेष रहजाते हैं । अतएव रोग के निवृत्त होने पर भी दोषों की शमन करने वाली औषधोंका कुछ कालतक प्रयोग करता रहै ॥

पथ्यान्तरनिधि ।

सिद्ध्यर्थं प्राक्प्रयुक्तस्यसिद्धस्याप्यौषधस्य तु । काठिन्याद्गन्धभावद्वादोषोन्तःकुपितोमहान् ॥ पथ्यैर्मृद्वल्पतानीतोमृदुदोषकरोभवेत् । पथ्यमप्यश्रततस्माद्योग्याभिरुपजायते ॥ ज्ञात्वैवंवृद्धिमभ्यासमथवान्यस्यकारयेत् ।

अर्थ—तिद्धि के लिये जो प्रथम औषध

का प्रयोग कियागया है उस के सिद्धहोने पर भी उसकी कठिनता वा स्वल्पता के कारण अन्तःकुपित महान् दोष पथ्यसेवन द्वारा मृदु और अल्प होकर मृदु दोषका रफ होता है । पथ्य सेवन करने पर भी जो व्याधि की वृद्धि ही तो धन्यपथ्य का सेवन करावै ॥

सातत्यात्स्याद्दभावाद्वापथ्यद्वैत्वमागतम् कल्पनाविधिभिस्तैस्तैःप्रियत्वंगमयेत्पुनः मनसोऽर्थानुकूल्याद्धितुष्टिरुर्जाहचिर्वलम् सुखोपभोगताचस्याद्व्याधेश्चातोबन्धयः

अर्थ—एकही वस्तु के निरन्तर सेवन करने से वा स्वादु के अभाव से जो पथ्य दोषकारक होजाय तौ विविधि प्रकारकी कल्पनाओं से पथ्यका सेवन करावैजिससे रोगी को प्रिय लगे । विषयों में मनकी अनुकूलताही से तुष्टि, ऊर्जा वृद्धि, बल, और सुखोपभोगता की वृद्धि होती है तथा व्याधि का बलक्षीण होता है ॥

अरुचिर्मेपथ्याविधि ।

लौल्याद्दोषक्षयाद्द्व्याधेर्वैधर्म्याच्चापियाहचिः । तामुपथ्योपचारःस्याद्योगेनाद्य विकल्पयेत् ॥

अर्थ—जिह्वा की लोलता से, ज्ञातादिदोषों के क्षयहोने से व्याधिके विधर्म से जो अरुचि होती है उस में पथ्य वस्तुका सेवनकरै । तथा उस पथ्य को योगान्तर से संस्कृत करलेवै ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकाःशतित्वेन्यापदोयोनेतिदानं

लिङ्गमेव च । चिकित्साचापिनिर्दिष्टाशि
 प्पाणांहितकाम्यया ॥ शुक्रदोषास्तथा
 चाष्टौनिदानाकृतिसाधनैः । क्लृप्यान्युक्ता
 निचत्वारिचत्वारःप्रदरास्तथा ॥ तेषां
 निदानलिङ्गभैषज्यञ्चवकीर्तितम् ।
 क्षीरदोषास्तथाचाष्टौहेतुलिङ्गाभिप्राजितैः ॥
 तेषांचिकित्सानिर्दिष्टासमासव्यासतोम
 या ॥ रेतसोरजसश्चैवकीर्तितंशुद्धिलक्ष-
 णम् । उक्तानुक्तचिकित्साचसम्पद्यो
 गोयथैवहि ॥ देशादिगुणशंसादकालः
 पद्दविधएव च । देशदेशेचयत्सात्म्ययथा
 वैद्योऽपराध्यति ॥ चिकित्साचापिनिर्दि
 ष्टादोषाणांगूढचारिणाम् ।

अर्थ—इस योनिव्यापचिकित्सित ना-
 मक अध्याय में बीस प्रकार के योनिरोग,
 उन के निदान, लक्षण और चिकित्सा शि-
 ष्यों के हित की इच्छा से वर्णन की हैं ।
 आठ प्रकार के शुक्रदोष, उन के निदान,
 लक्षण और चिकित्सा, चार प्रकार के
 क्लीबरोग, चार प्रकार के प्रदररोग तथा इन
 के निदान, लक्षण और चिकित्सा वर्णन की
 गई हैं । आठ प्रकार के स्तन्यदोष, इनके
 निदान, लक्षण, औषध और चिकित्सा
 संक्षेप से और विस्तार से वर्णन की गई हैं ।

धीर्य और रज की शुद्धि के लक्षण भी
 वर्णन किये गये हैं । इसीतरह उक्त अनुक्त
 रोगोंकी चिकित्सा, सम्यक्योग, देशविशेष
 के गुण, छः प्रकार का काल, भिन्न भिन्न
 देशवासियों के साम्यद्रव्य, वैद्य के अप-
 राधी होने के कारण तथा गूढचारी रोगों
 की चिकित्सा भी वर्णन की गई है ।

अध्यायकाउपसंहार ।

योहिसम्यक्नजानातिदोषंदोषार्थमेव च ।
 नक्षुर्यात्सत्क्रियांचित्रमचक्षुरिवचित्रकृत् ॥

अर्थ—जो वैद्य अच्छी रीतिसे दोष
 और दोषोंके विषयोंको (पाठान्तर "शास्त्र-
 शास्त्रार्थमेव च) अथवा शास्त्र या शास्त्र
 के विषयों को नहीं जानता है, वह अच्छी
 रीति से चिकित्सा करने में ऐसा असमर्थ
 होता है, जैसा नेत्रहीन चित्रकार अच्छे
 चित्रको नहीं खींचसक्ता है ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचि-
 तायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकि-
 त्सितस्थानेयोनिव्यापचिकित्सितना-

मत्रिशोऽध्यायः ॥३०॥

इतिचिकित्सितस्थानंपठ समाप्तम् ॥

॥ ओ१म् ॥

॥ श्रीहरिम्बन्दे ॥

॥ श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः ॥

॥ अथकल्पस्थानम् ॥

— — ○ * ○ — —

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथातोमदनकल्पंव्याख्यास्याम

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम मदनकल्पनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

अथखलुधमनविरेचनार्थमदनफलाद्रितृ-
ष्टतादीनां वमनविरेचनद्रव्याणां सुखोपभो-
ष्यतमैः सहान्यैर्द्रव्यैर्विविधैः प्रकल्पनार्थं

तद्योगानां चक्रियाविधेः सुखोपायस्य स-
म्पुपकल्पनार्थं कल्पस्थानमुपदेक्ष्यामोऽ-
ग्निवेश ! ॥

अर्थ—हे अग्निवेश ! धमन विरेचन कराने

वाले जो मेनफल और निसोध से आदि ले-
कर द्रव्य हैं उनका दिग्दर्शनमात्र वर्णन सू-
त्रस्थान में हो चुका है परन्तु अब इस क-
ल्पस्थान में उन यातों का वर्णन किया

जायगा कि जिन सुखोपसेवनीय द्रव्यों के
इन में मिलाने से अनेक भेद होजाते हैं,
और अनेक प्रकार के योग और सुखकारी

चिकित्साविधि यहाँ वर्णन की जायगी ॥
धमनादिकी निरुक्ति ।
तत्रदोषहरणमूर्ध्वभागंवमनसंज्ञमधोभागं

विरेचनसंज्ञमुभयंवाशरीरमलरेचनाद्विरे-
चनशब्दंलभते ॥

अर्थ—जो दोष मुखकी ओर से निकाले
जाते हैं उस क्रिया का नाम वमन है ।
अधोमार्ग द्वारा दोषों के निकालने का नाम

विरेचन है, अथवा शरीरस्थ मल के रेचन
अथवा निकालने के कारण धमन विरेचन
दोनों को विरेचन कहते हैं ।

तत्रोष्णतीक्ष्णसूक्ष्मव्यवायिविकाशीन्यौ
पथानिस्ववीर्येणहृदयमुपेत्यधमनीरनुस-
त्यस्थूलाणुस्रोतोभ्यःकेवलंशरीरगतदो-

पसंघातमाग्नेयत्वाद्द्विष्यन्दर्यातैर्दृष्यादि-
च्छिन्दन्ति । सविच्छन्नःपरिप्लवःस्नेहभा-
वितेकायेस्नेहाक्तभाजनस्थामिवक्षौद्रमस-

जदनुप्रवणभावादामाशयमगत्योदानप्र-
णुन्नोग्निवाय्वात्मकत्वाद्ध्वभागप्रभावा-
दौपधस्योर्द्धगुत्सिष्यते ॥ सलिलपृथिव्या

त्मकत्वादधोभाग प्रभावाच्चौपधस्याधः-
प्रवर्तते ॥ उभयतश्चोभयगुणत्वादिति
लक्षणोद्देशः ॥

अर्थ—इनमें से उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी
और विकाशी औपध अपने धीर्य के प्रभाव

से सेवन करतेही हृदय में पहुंचकर वहाँ से
धमनियों का अनुसरण करके आग्नेयत्व
होने के कारण स्थूल और सूक्ष्म स्रोतों से

शरीरगत केवल दोष समूहको विष्यन्दित
अर्थात् पतला कर देती हैं और तीक्ष्णताके
कारण उन को अपने अपने स्थानों से अ-
लग कर देती है यदि स्नेहन कर्म करने

के पश्चात् धमन विरेचन का प्रयोग किया

जाय तत्र वह औषध शरीरस्थ दोषों को विच्छिन्न और द्रवीभूत करनेके पश्चात् शरीरमें इस तरह नहीं लगती है, जैसे चिकने पात्र में शहत नहीं चिपक सकता है। फिर अनुप्रवण भावसे आमाशय में पहुंचकर वमनकारक द्रव्यों के अग्निवाय्यात्मक तथा ऊर्ध्वगामी प्रभावयुक्त होने के कारण उदाननायु से प्रेरित होकर आमाशयस्थ दोषों को ऊपरके मार्गसे वमन द्वारा निकालती है। इसी तरहसे वैरेचनिक द्रव्य जल और पृथिव्यात्मक होने के कारण अधोगामी प्रभाव रखने के कारण दोषोंको अधोमार्ग से विरेचन द्वारा निकालते हैं। इसी तरहसे उभयगुण विशिष्ट वमन विरेचन द्रव्यों के संयोगसे वमन विरेचनदोनों होते हैं। तत्रफलं जीमूतकेश्वाकृधामार्गवकुटजकृत घेधनार्ना, श्यामाग्निष्टुतुरंगुलतिल्वक महाष्टकसप्तलाशंखिनीदन्तीद्रवन्तीनाश्च नानाधिधंशकालसम्भवास्वादुरसवीर्य्य विपाकप्रभावमहणाद्देहदोषप्रकृतिवयोव लाग्निभुक्तिसात्म्यरोगावस्थादीनां नात्मकत्याश्चिषिन्नगन्धवर्णरसस्पर्शा नामुपयोगसुखार्थमसंख्येयसंयोगानाम पिसतांद्रव्याणां विकल्पमार्गदर्शनार्थपह विरेचनयोगशतानिव्याख्यास्वगमः।

अर्थ—इन में से मैनफल, जीमूत, कटु-तुंबी, धामार्गव, कुटज और कृतघेधन, तथा श्यामनिसोध, अमडतास, लोध, सेहुंड, सातला, शंखिनी, दंती और द्रवन्ती। ये औषध अनेक तरह के देशों में उत्पन्न

होती हैं और अनेक प्रकार के स्वादु, रस, वीर्य, विपाक और प्रभावको धारण करती हैं तथा मनुष्यों के देह, दोष, प्रकृति, वय, बल, अभिन, भोजन, सात्म्य रोग और अवस्था अनेक प्रकार की है, इन सब के मुख पूर्वक उपयोग में लाने के निमित्त इसी प्रकार के भिन्न भिन्न विरेचनों की कल्पना का वर्णन करेंगे, यद्यपि इनके मध, वर्ण, रस और स्पर्श तथा संयोग वे गिनती हैं तानितुद्रव्याणिदेशकालगुणभाजनसम्प द्वीर्यत्रलाधानात्क्रियासमर्थतमानिभवन्ति अर्थ—ये संपूर्ण द्रव्य देश, काल, गुण और पात्रकी उत्कर्षता और वीर्य बल के यथावत् होने से चिकित्सा में अपना प्रभाव दिखाने को समर्थ होते हैं।

देशभेद ।

त्रिविधिः खलुदेशोजांगलोऽनूपः साधारणश्चोत्ते ।

अर्थ—देश तीन प्रकारके होते हैं, यथा जांगल, आनूप और साधारण ।

जांगलदेशके लक्षण ।

तत्रजांगलः पट्याकाशभूमिपट्टः । तरुभरपिकदरखादिराशनावकर्णधवतिनिशशल्लकीसालसोमबलकयदरीतिन्दुकाश्वत्थबटामलकीवनगहनः । अनेकशमीककुभशिशपाप्रायःस्थिरशुष्कपवनबलविधुयमानमृत्पुच्छरुणचितपः । प्रततमृगतृष्णाकूपोगृहस्तनुस्वरपरुपसिकताशर्कराबहुलः लावतिचिरचकौरानुप्रचितभूमिभागोवातपित्तबहुलस्थिरकठिनमनुष्पमायोजांगलोक्षेयः।

अर्थ—इन में से जांगलदेश के चारों ओर भूमि विस्तृत और स्वच्छ आकाश से युक्त होता है। इस में कदर, खैर, अशन, पीतसाल, धव, तिनिश शल्लकी, साल, सोमबल्क घेर, तेंदू, पीपल, बड, आंवला इन के गहनवन होते हैं। जगह जगह शमी, अर्जुन और शिंशपा वृक्षों की बहुतायत होती है। वृक्षों की शाखा बड़ी दृढ़ होती हैं और पवन के बल से हिलती रहती हैं, सूर्यकी तांड़ण किरणोंसे शुष्कस्थल में जल दिखाई देता है, ऊए बडे गहरे गहरे होते हैं, पतली, खरदरी और कर्करी वाड की अधिकता होती है, लवा तीतर, चकोर आदि पक्षी बहुत होते हैं, यहां घातपित्त की अधिकता होती है और यहां के मनुष्य दृढ़ और कठोर होते हैं। ये जांगल देश के लक्षण होते हैं।

आनूपदेशकेलक्षण।

अथानूपोद्दिन्तालतमालनारिकेलकदली घनगहनः। सरिस्समुद्रपर्यन्तप्रायः॥
शिशिरपवनबहुलोवञ्जुजवानारोपशोभि ततीराभिःसरिद्रिरुपगतभूमिभागःअक्षि तिधरोनकुञ्जोपशोभितोमन्दपवनानुवी-
जितः। क्षितिरुहगहनोऽनेकवनराजीपु ष्पितवनगहनोभूमिभागः॥ स्निग्धतरुप तानोपगूढईसचक्रदाकवलाकानन्दीमुख पुण्डरीकक्रादम्बमद्गुभृङ्गराजशतपत्रमत्त कोकिलमुदिततरुगचिटपःसुकुमारपुरुपः
पवनकफमायोज्ञेयः॥

अर्थ—आनूपदेश में हिन्ताल, तमाल

नारियल और केले के गहनवन होते हैं। इसके चारों ओर समुद्र और बीच २ में बहुतसी नदियां होती हैं, शीतल पवन अधिक चलती है, बंजल और वानीर के वनों और नदियों से उपशोभित होते हैं। इस में पर्वत और कुंज नहीं होती है परंतु मन्द मन्द पवन से चलायमान वृक्षों के समूह बहुत होते हैं। अनेक प्रकार के फलों से यह देश सुशोभित होता है, तरह तरहकी सचित्रकण लताओं से यह भूमि आकीर्ण होती है, यहां चकवे, बलाका, नन्दीमुख, पुंडरीक, क्रादम्ब, मद्गु, भृंगराज और शतपत्र पक्षियोंके समूह वृक्षों की शाखाओं में बैठे हुए आनन्द से कुहकते हैं, मतवाली कायल नवीन वृक्षोंकी शाखाओं में बैठकर मुदितमन से अपने राग आलापती है। यहां के मनुष्यों के देह कोमल होते हैं। और उनकी प्रकृति घातकफप्राय होती है ॥

साधारणदेशके लक्षण।

अनयोरेयद्वयोदेशयोर्धीरुहनस्पतिवानस्प-
त्यशकुनिमृगगणयुतःस्थिरसुकुमारवर्णसं-
हननोपपन्नसाधारणगुणमुक्तपुरुपःसाधा
रणोज्ञेयः॥

अर्थ—जिस भूमि में जांगल और आनूप दोनों देशों के लक्षण मिलते हैं उसे साधारण देश कहते हैं। इस देश में दोनों देशों के लता, वनस्पति, वानस्पत्य, पशु और पक्षी होते हैं ॥ यहां के मनुष्य दृढ़, सुकुमार, वर्ण और संहननयुक्त होते हैं।

उत्कृष्ट देशजात औषध ।

तत्रदेशोजाङ्गलसाधारणवायुयाकांक्षंशि-
शिरातपपवनसलिलसेकसेधितेसमेशुचौप्र-
दक्षिणेशमशानचैत्येदेवयजनागारंश्वभ्रा-
रामवल्मीकोपरधिरहितेकुशरोहिपास्तीर्णे
स्निग्धकृष्णसुवर्णवर्णमधुरमृत्तिकेमृदावफा-
लकृष्टेऽनुपहतेऽभ्यर्च्यैवल्यत्तद्रुमैरौषधानि

जातानिप्रशस्यन्ते ।

अर्थ—इन में से नीचे लिखे हुए गणों से विशिष्ट जांगल वा साधारण देशमें उत्पन्न हुई तथा ठीक समय में लाई हुई औषधियां उत्तम होती हैं । स्थान के गुण यथा- जहां अपने अपने समय पर सर्दी गमी हवा और जल आते रहते हैं ॥ जहां की भूमि समान पवित्र और ठीक होती है जहां शमशाक, चैत्य देवालय, पञ्जशाला, खाई, बगीचा, धात्री और ऊसर भूमि नहीं होती है । जहां कुशा और गंध तृण बहुतायत से होते हैं । जहां की मृत्तिकी चिकनी काली, पीली और मिष्ट होती है । जहां बड़े बड़े जंगली वृक्ष नहीं होते हैं, जहां की भूमि कीड़ों से खाई हुई नहीं है ऐसे स्थान की औषधियां उत्तम होती हैं ।

औषध संग्रह विधि ।

तत्रयानिकालजातान्युपगन्तसम्पूर्णप्रमा-
णरसवीर्यगन्धादिकालात्तपाग्निसलि-
लपवनजन्तुभिःरुपहृतगन्धवर्णरसस्पर्श-
प्रभावाणिप्रत्यग्जाण्डदीप्यांदिशिस्थि-
तानितेगांशरापलाकृष्णचिरप्ररुद्धवर्षा-
पसन्तयोर्ग्राहंश्रीप्लेमूळानिशिशिरेवाशी

र्णप्ररुद्धपर्णानांशरदित्वरुकन्दक्षीराणि
हेमन्तेसाराणि यथर्तुपुष्पफलमितिमङ्गला-
चारःकल्याणवृत्तःशुचिःशुक्लवासाःसं-
पूज्यदेवताअश्विर्नागोब्राह्मणांश्रकृतोप-
वासःप्राङ्मुखउदङ्मुखोवागृहणीयात् ।

अर्थ—इन में से जो औषध अपने ठीक समय पर उत्पन्न हुई है, जो सम्पूर्ण प्रमाण, सम्पूर्ण रस, सम्पूर्ण, वीर्य और सम्पूर्ण गन्धादियुक्त हैं । काल, आतप, अग्नि, सलिल, वायु और कीड़ों से जिनके गंध, वर्ण, रस, स्पर्श और प्रभाव नहीं बिगड़े हैं, जो उत्तम और उत्तर दिशा में उत्पन्न हुई हैं। ऐसी थोड़े काल की उत्पन्न हुई औषधों के शाखा और पत्ते बर्षा और वसन्त ऋतु में ग्रहण किये जाते हैं, प्राप्तिऋतु वा शिशिर ऋतु में औषधियों की जड़ लावे जब उन के पत्ते पककर गिर पड़ें । शरद ऋतु में छाल, कन्द और दूध लावे तथा हेमन्त में निर्यास, पुष्प और फल इकट्ठे करने चाहिये । जिस दिन औषध लाने का विचार करे उसे दिन स्नानादि द्वारा पवित्र होकर मंगलाचार करके श्वेतवस्त्र धारण करे देवता अश्विनी कुमार और गौ ब्राह्मण का पूजन करके उस दिन उपवास करे, फिर पूर्व वा उत्तर की ओर मुत्तकरके औषधी का ग्रहण करे ।

औषधियों की रक्षाविधि ।

शुद्धीत्वाचानुरूपगुणवद्वाजनेसंस्थाप्या-
गारेषुप्रागुदम्हारेषुनिवातमवातकदेशेषु
नित्यपुष्पोपहारवलिर्कर्मवत्स्वग्निसालि

लोपस्वेदधूमरजोमूषिकचतुष्पदामनाभि
गमनीयानिस्वच्छिन्नानिशिक्येष्वास
ज्यास्त्रापयेत्तानिचयथादोषप्रयुञ्जति ।

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिसे औषधियां
लाकर उन्हें अपने अपने गुणके अनुरूप
पात्रों में रखकर ऐसे स्थानमें जिसका मुख
पूर्व वा उत्तरकी ओर हो, जिसमें वायु प्र-
वेश न करती हो और एक स्थान उसमें
ऐसा हो जहां हवा आती हो और जिसमें
नित्यप्रति पुण्य उपहार, बलि और कर्न
होता हो ऊंचे छोंकों पर लटकाने देवों और
उन पात्रों को ऐसी रीति से ढकदेवें जिसमें
अग्नि, जल, ताप, घूमां और रज, तथा
मूत्र और चोपाये आदि न पहुंच सकें ।

इन औषधियों का दोष के अनुसार प्र-
योग करना उचित है ।

दोषानुसारमयोगविधि ।

सुरासीवीरिकतुषोदकमैरेयमेदकधान्य
फलदध्यम्लोदभिर्वाते । मृष्टीकामलक
मधुमधुकपरुषकफाणितसीरादिभिःपि
चे । श्लेष्मणितुमधुमूत्रकपायेभाविता
न्यालांबितानिचैत्युद्देशस्तंविस्तारेणद्रव्य
देहदोषसात्क्यादीनिप्रविभज्यव्याख्या
स्यामः ।

अर्थ—वातरोग में इन औषधोंको सुरा
सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, धान्याम्बु,
फलाम्बु, दही और खटाई के साथ में देवें
पित्तजरोम में दाख, आवला, शहत, मुल-
हठी, फालसा, क्वाणित और दूध आदि
के साथ देवें, तथा कफ रोगों में शहत,

गोमूत्र और काथों में मिलाकर देवें । अब
इन्हीं का द्रव्य, देह, दोष और सात्क्या-
दिक के अनुसार विभाग करके विस्तार
पूर्वक वर्णन करते हैं ।

मेनफलकावर्णन ।

वमनद्रव्याणामदनफलानिश्रेष्ठानिआच
क्षतेऽनपायित्वात्तानिचसन्तग्रीष्मयोर-
न्तरेषुष्वावश्चयुग्धपांशुगशिरसावाष्ट्ली
यात्मत्रैमुहूर्तयानिपकानिप्रहरितानिपा-
ण्डून्यन्निमीष्यकुशान्यह्रस्वानिअजग्धा
नितानिममृज्यकुशपुटेवद्ध्वागोमयेनालि
प्ययवतुपमापशालिग्रीहिकुलत्थमुद्रप-
र्णानामन्यतमेनिदध्यादष्टरात्रमतजर्द्धमृ-
दुभूतानिमध्विष्टगन्धान्युद्रुष्ट्यशोपयेत् ।
सुशुष्कंतुफलपिप्पलीरुद्धरेत्तासांदिधिम
धुपललविमृदितानांपुनःशुष्काणांनवक
लशंसुप्रमृष्टवालुकपरजस्कमाकण्ठंपूरयि
त्वास्वावच्छन्नमनुसुप्तशिक्येऽवसज्यस्था
पयेत् ।

अर्थ—वमनकारक द्रव्यों में, मेनफल
सब से उत्तम होता है क्योंकि यह किसी
प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता है । इसको
वसन्त और ग्रीष्मऋतुओं के सांधिकाल में
पुष्य, अश्विनी, मृगशिरा नक्षत्र में मैत्री
मुहूर्त में लाना चाहिये । इन में से जो
जो फल पककर हरे वा पांडुवर्ण के होगये
हों, जिस में कीड़े न लगे हों, जो पिचके
डूए वा छोटे न हों वा किसी पक्षी ने न
विगाड़े हों उनको लाकर कुशा में लपेट
कर बांध देवें ऊपरसे गोबर लपेटदेवें फिर

उसे जौ का मुस, उरद का ढेर, शाली वा ग्रीहि चांबल का ढेर कुल्पी वा मूंगके पत्तोंके ढेर में से किसी एक में आठ दिवस तक गढ़ा रहने देवै । फिर यह जब मुलायम पड़जाय वा इस में मॉठीर उच्चमगंवा-धानेलगे तब निकालकर सुखांछे । अच्छी तरह सूखने पर फलों के बीज बाहर निकाल डेवै और दही, मधु वा तिल कल्क के साथ फिर मर्दन करके फिर सुखाकर यादू वा रेतसे अच्छीतरह मजेहुए स्वच्छ नवीन कलसे में कंठ तक भरदेवै और अच्छी तरह ढक दाबकर छीके पर लटका देवै ॥

वमनकरानेकीविधि ।

अयच्छर्दनीमातुरंद्रव्यहंभ्यहंवास्नेहस्वेदोप-
पन्नश्चछर्दपित्तव्यइति । ग्राम्यानुपादक-
भृतमांसरसक्षीरदधिमापतिलशकादि-
भिः समुत्कलेशितश्लेष्माण्ड्युपित्तजीर्णा-
हारंपूत्राहणेकृतबलिहोममङ्गलप्रायश्चित्त-
निरन्वमनतिस्तिग्धयवाग्वाघृतमात्रापीत-
वन्तमातासाफलपिप्पलीनामन्तर्नखमुष्टि-
यावद्वासाधुमन्यतेजर्जरीकृत्ययष्टीमधुक-
पायेणकोविदारफर्बुदारनीपविदुलविम्बी-
शणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यकूपुष्पीकपायाणा-
मन्यतमेनवारात्रिसुपित्तविमृष्टपृतमधुसै-
न्धवयुक्तंसुखोष्णकृत्वापूर्णशरावमन्त्रेणा-
नेनाभिमन्त्रयेत् ।

अर्थ—वमन कराने के योग्य रोगी कोवमन करानेसे दो तीन दिन पहिले स्नेहन स्वेदन कराके वमन करावै । वमन करानेकी विधि यह है कि प्राय, आनूप और औदक जन्तु-

ओं का मांसरस, दूध, दही, उरद तिल आदिके मक्षण से कफ को उल्लेखित करावै दूसरे दिन आहार पचने पर द्रुपहरसे पहिले बलि होम, मंगलाचार और प्रायश्चित्त कराके बिना भोजन करायही अनतिस्निग्ध पु-रुषको यवागू के साथ घृत की मात्रा का सेवन करावै । वमन करानेकी रात्रिको अन्तर्नखमुष्टि मेनकलके बीजोंको मर्दान पीसकर मुलहटी के काथ के साथ अथवा कोविदार (लालफचनार) फर्बुदार (स्वेतफचनार) कदम्ब, वेत, कंदूरी, शणपुष्पी आक, वा ओंगा में से किसी के क्वाथ में भिगोदेवै । प्रातःकाल होतेही सबको मसल कर छानलेवै फिर इसमें शहत और संधानमक मिलाकर गुनागुना कर के प्याले में भरकर नाचे लिखे हुए मंत्र से अभिमंत्रित करै ॥

वमन कराने के मंत्र ।

ब्रह्मदत्ताश्वरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः
ऋषयःसौपधिग्रामाभूतसंघ्राथपान्तुते ॥
रसायनमिवर्षाणां देवानाममृतं यथा । सु-
धेवोत्तमनागानाभैषज्यमिदमस्तुते ॥
अर्थ.... ब्रह्मदेव, दक्ष, अश्विनीकुमार वद इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य अग्नि, वायु, ऋषिगण, औषध समूह और भूत समूह तेरी रक्षाकरे । जैसे ऋषियोंको रसायन, देवताओंको अमृत और नागों को सुधा गुणकारक है इसी तरह यह औषध तुझ को फलप्रद होवै ।

इत्येवमभिमन्त्र्योद्ब्रह्मस्वमातुरंपाययेत् ।

श्लेष्मज्वरगुल्मप्रतिश्यायान्तंविशेषणेपु-
नरापिंतागमनाचेनसाधुवमति ।

अर्थ—इस तरह मंत्र पढकर रांगी का
मुख उत्तर की ओर कराके औषध पान
करावै । विशेष करके कफज्वर, गुल्मरोग
और प्रतिश्याय में यह धमन कराई जाती
है । इस में पित्तका आगमन होवै तौ सम-
झना चाहिये अच्छी होती है ।

हीनमेगंतुपिप्पल्यामलकसर्षपकल्कलव
णोष्णोदकैःपुनःपुनःप्रवर्तयेदित्येपसर्व
छर्दनयोगाविधिः । सर्वेषुतुमधुसंन्धवंक
फविलायनच्छेदार्थधमनेपुविदध्यात् ॥

नचाष्णविरोधोमधुनच्छर्दनयोगयुक्त
स्याविपक्वप्रत्यागमनाहोपहरणाच्च ।

अर्थ—जो धमन का हीनवेग हो तौ पी-
पले, आवला और सरसों इन के कल्क में
संधानमक डालकर गरम जल के साथ धार
धार पान करावै । इस से धमन का वेग बढ
जायगा । यह काम हर प्रकारकी धमन में
करना ठीक है । कफके पतले करने और
दूर करनेके निमित्त सब प्रकारकी धमनों
में शहत और संधानमक देना चाहिये ।
इस स्थल में शहत को उष्ण द्रव्य के साथ
देने में कोई दोषापत्ति नहीं है, क्योंकि
शहत पाकको प्राप्त होने से पहिलेही दोषों
को निकालता हुआ आप भी निकलजाताहै
फलपिप्पलीनांद्वौभागौकोविदारादिक
पायेणत्रिःसप्तकृत्वःभावेयेत्तेनरसेनतृती
यंभागेपिष्टामात्राहरीतकीभिर्विभक्तिकै
रामलकैर्वातुल्यांवात्तयेत्तासामेकाद्वेवापू

वोक्तानांकपायाणामन्यतमस्याञ्जलिमा
त्रेणप्रमृश्वलवत्श्लेष्मप्रसेकग्रन्थिज्वरो
दराशुचिपुपाययेतेतिसमानंपूर्वेण ।

अर्थ—मेनफल के बीज दो भाग, इनको
पीसकर कोविदारादि आठ द्रव्योंमेंसे किसी
एक के क्वाथकी इकास भावना देवै । फिर
एक भाग और लेकर उसी क्वाथमें पीसकर
उस को पूर्वोक्त चूर्ण से मिलावै । फिर इस
में से हरड वहेडे और आवले की बराबर
गोली बना कर तयार करले फिर इस में
एक वा दो गोलीयों को पूर्वोक्त कोविदारादि
के क्वाथों में से किसी एक के आध सेर
क्वाथ के साथ सेवन करै । इस के द्वारा
धमन करानेसे कफप्रसेक, ग्रन्थि, ज्वर, उद
ररोग और अरुचि ये रोग दूर होजातेहैं ।
शेष क्रिया पूर्व के समान हैं ॥

फलपिप्पलीक्षीरंतेनवाक्षीरयवागूमधोभा
गेरक्तपित्तेहृद्वाहेतज्जस्यंवाद्भजउत्तरकं
कफछर्दिस्तमकमसेकेपुतस्यैवपयसःशी
तःससन्तानिकाञ्जलिपित्तेप्रकुपितेउरः
कण्ठहृदयेतनुकफोपदिग्धइतिसमानंपूर्वेण

अर्थ—मेनफलके बीज डालकर औटाया
हुआ दूध अथवा उस दूधकी यवागू अधो
गामी रक्तपित्त और हृद्वाह में देवै । और
उसी दूध को दही पर से मलाई उतारकर
कफकी धमन, तमकदवास और कफप्रसेक
में देना चाहिये । उसी दूध को ठंडाकरके
उसकी मलाई उतार कर एक अंजली भर
प्रकुपित पित्तमें देवै । तथा जो यक्षःस्थल,
कंठ और हृदय में पतला कफ लित होरहा
हो तौ उक्त संतानिका पान कराके धमन
करावै । शेषक्रिया पूर्व के समान है ॥

मेनफल का घृत ।

फलपिप्पलीक्षीरान्नवनीतमुत्पन्नफलानि
कलकफपायसिद्धकफाभिभूताग्निविधु-
ष्कदेहश्चात्रयापाययेतेतिसमानपूर्वेण ।

अर्थ—मेनफल के बीज के साथ सिद्ध
किये हुए दूध का मक्खन निकालकर मेन
फलादिके कल्कके साथ सिद्ध करके मात्रा-
नुसार पान करावै । इस विरेचनसे कफाभि-
भूत आग्नि और विशुष्क देह शुद्ध होजाते
हैं । शेषक्रिया पूर्व के समान है ।

फलपिप्पलीनांफलादिकपायेणत्रिसप्तक
स्वःपरिभाषितेनपुष्परजःप्रकाशेनचूर्णे
नसरसिद्धसरोरुहंसायाहनेऽवचूर्णयेत्
द्रात्रिमृपितंभ्रमातेपुनरवचूर्णितमुद्धृत्य
हरिद्राकुसरक्षीरयथाग्नान्मन्यतमसैन्ध
वगुडफाणितयुक्तमाफण्टंपीतवन्तपात्रा
पयेत् । सुद्धमारमुत्क्रिष्टपित्तकफमौषध
द्विपमितिसमानपूर्वेण ॥

अर्थ—मेनफलके बीजों को मेनफलादि द्रव्यों
के काषकी इक्कीस भावना देकर फूलकी रजके
समान महीन चूर्ण करले, फिर इस चूर्णको सा
पेकालके समय तलावमें एक बडे से कमलके
फूलमें रखदेवै । प्रातःकाल इस चूर्णको लाकर
हलदी, कृशरा, दूध और यवागू इनमेंसे
किसी एक के साथ संधानमक, गुड और राव
मिलाकर कठं पर्यन्त पान करै और उस फूल
को सूँधै । इस रीतिसे वमन करना सुकुमार,
उत्क्रिष्ट कफ और पित्तवाले और औषध
सेवन से द्वेष रखनेवाले को हित है । शेष
क्रिया पूर्वके समान है ।

फलपिप्पलीनांभिलातकाविधिपरिस्तम्ब
रसंपवत्वाफाणितमावर्तलीभावाल्लेहये
दातपशुष्कवाचूर्णांकृतंजीमूतादिकपाये
णपित्तकफस्थानगतेपाययेतेतिसमानं
पूर्वेण । फलपिप्पलीचूर्णानिपूर्ववत्फला
दीनांपण्णामन्यतमकपायस्तानिचर्तित्ति
याःफलकपायोपसर्जनाःपेयाइतिसमानं
पूर्वेण ॥

अर्थ—भिलायेकी तरह मेनफल के बीजों
का रस निकालकर राव के सदृश पकाकर
चाँटे । अथवा इन बीजों को धूप में सुखाकर
जीमूतादिके काषके साथ पान कराके उस
समय वमन करावै जब पित्त कफके स्थान
में चलागया हो । अथवा मेनफलके बीजों
को मेनफलादि छः द्रव्यों में से किसीएक
के काष के साथ परिस्तुत कर के बटिका
वनावै, इन बटिकाओं को पूर्वोक्त कपायों
के साथ पानकरै ।

फलाद्यबलेह ।

फलपिप्पलीप्वारवधपृष्ठकत्वादुफण्टक
पाठापाटलीशाईप्रामूर्धासप्तपर्णनक्तमाल
पिशुमर्दपटोलसुपवीगुडूचीसोमत्रलकदी-
पिकानांपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रक
शृङ्गवेराणांवाचन्यतमकपायेणसिद्धोलेहइ-
तिसमानपूर्वेण ।

अर्थ—अमलतास, इन्द्रजौ, स्वादुकटक
पाठा, पाटला, शार्ङ्गमषा मरोडफली, सप्त-
पर्णी, कंजा, नीम, परवल, सुपवी, गिलोय
सफेदखैर, अजवायन की जड़, पीपल, पीप-
लामूल, गजपीपल, चीता और सौंठ इन

बीस द्रव्यों में से किसी एक के क्वाथ के साथ मेनफल के बीजों को सिद्ध करके लेह बनावै । शेष क्रिया पूर्वके समान है ॥

फलपिप्पली, वेलाहरेणु, काशतपुष्पाकुस्तु, म्युरुतगरकुष्ठत्वक्चोरक, मरुवका, गुरुगुग्गुलुवालक, श्रीवेष्टक, परिपेलवर्मासी, शैलेयक, स्थौण्यक, सरलपारावतपद्मशोको, हिणी, नाविंशतेरन्यतगस्यकपायेणसाधितोत्कारिका, कल्पेनयथामोदकोवामोदक, कल्पेनयथादोपरोगविभक्तिप्रयोज्यइतिसमानपूर्वेण । फलपिप्पलीस्वरसकपायपरिभाविता नितिलशालितण्डुलपिट्टानितत्कपायोपसर्जनानिपङ्कुलीकल्पेनवापूपा इतिसमानपूर्वेण ॥

अर्थ—छोटी इलायची, हरेणु, सोंफ, धनियाँ, तगर, कूठ, दालचीनी, चोरक, मरुवा, अंगर, गूगल, नेत्रवाला, श्रीवेष्टक मोथा, जटामांसी, शैलेय, धूनेर, सरलकाष्ठ, पारावतपदी, अशोक और कुटकी इन तीस द्रव्यों में से किसी एक के क्वाथके साथ मेनफल के दानों की उत्कारिका या मोदक बनावै । इनकी रोग के अनुसार वमन कराने में देवै शेष क्रिया पूर्व के समान है ।

मेनफल के रस और उस के बीजों के क्वाथ में तिल और शाली चावल के चूर्ण की भावना देकर मेनफल के क्वाथ के साथ पूरी वा पूर बनावै । शेष क्रिया पूर्व के समान है ।

एतैनवचकल्पेनसुमुखसुरसकुठेरकगण्डी रकालमालकपर्णामकसवकफणिज्जक

शुक्लवेरगुञ्जनभूस्तणककासमर्दधृक्तराजा नामिक्षुवालिकाकतक्रोशुकाण्डेशूणांचान्यतमस्यकपायेणकारयेत् । तथावदरपाडवरा गलेहमोदकोत्कारिकातर्पणपानकमांस रसयूपमद्यानांमदनफलान्यन्यतमेनोपसर्ज्यतथादोपरोगदोषभक्तिदद्यात्सैःसाधु वमतीति ।

अर्थ—इसी तरह सुमुख, सुरस, कुठेरक, गंडार, कालमालक, पर्णास, फणिज्जक [ये सब तुलसी के भेद हैं] गाजर, सोंठ, गंधतृण, कसौदी, भांगरा, इक्षुवालिका, ईख और काण्डेशु इन सत्रह द्रव्यों में से किसी एक के क्वाथ के साथ मेनफल के बीजों की पूरी वा पूर बनावै ॥

इसी तरह से पाडव, राग, लेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पण, पानक, मांसरस, यूप और मद्य मेनफल के साथ पाक करके उसीके क्वाथके साथ दोषके अनुसार पान करवै । तो अच्छी तरहसे वमन होता है ॥

मेनफल के नामान्तर ।

मदनःकरहाटश्चराठःपिण्डीतकःफलम् । वसनश्चेतिपर्यायैरुच्यतेतस्यकल्पना ॥

अर्थ—मदन, करहाट, राठ, पिण्डीतक, फल और वसन ये मेनफल के नामान्तर हैं ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

नवयोगाःकपायेपुवर्तिस्वाष्टीपयोघृतोपश्चफाणितचूर्णेर्द्वैध्रेयोवस्तिक्रियापुपट् ॥ विंशतिविंशतिलेहमोदकोत्कारिकासुचपङ्कुलीयूपयोश्चोक्तायोगाःषोडशपाडशा ॥ दशान्यपाडवान्येपुत्रयस्त्रिंशदिमंशतम् ॥

योगानां विधिवद्दृष्टं फलकल्पे महर्षिणेति ॥

अर्थ—इस अध्याय में वनाथ के नौ वर्ति आठ, दूध के पांच, फाणित का एक चूर्ण का एक, सूंघने का एक, वर्तिक्रिया के छः, लेहवीस, मोदक बीस, उत्कारिका बीस, पूरी के सोलह, पूये के सोलह, और पाडवादि में दस । इस तरह सब मिलकर मेनफल के एकसौ तेतीस कल्प हैं ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विर-

चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने मदनकल्पो नाम

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

। द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो जीमूतकल्पं व्याख्यास्याम

इति हस्मा भगवानाग्नेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आग्नेय बोले कि अब हम जीमूतकल्पकी व्याख्या करेंगे।

जीमूत के पर्याय शब्द ।

कल्पं जीमूतकल्पे मंफलपुष्पाश्रयं शृणु ॥

स्वरागरी च वैषी च तथास्याद्देवतालकः

अर्थ—जीमूतके पुष्प और फल दोनों वमन कराने में प्रयुक्त किये जाते हैं ॥ खरा, गरी, वैषी और देवतालक ये इसके पर्यायवाची नाम हैं ।

जीमूत के गुण ।

जीमूतकं त्रिदोषघ्नं यथास्वौषधकल्पितम् ।
प्रयोक्तव्यं ज्वरश्वासद्विक्राद्येष्वामयेषु च ॥

अर्थ—यथानुरूप औषधों के साथ कल्पना किया हुआ जीमूत त्रिदोषनाशक तथा ज्वर, श्वास और द्विक्राद्य रोगों में हित है।

जीमूत के प्रयोग ।

यथोक्तगुणयुक्तानां देशजानां यथाविधि
पयःपुष्पेऽस्पर्शनिर्वृत्तफलेपे वापयश्रता ॥ लो
मनेक्षीरसन्तानं दध्नुत्तरमलोमने । शृते
पयसि दध्यम्लं जाते हरितपाण्डुके ॥

अर्थ—(१) यथोक्त गुण वाले देशों में उत्पन्न हुए जीमूत के पुष्पों को दूध में औटाकर पान करें । [२] इसके फलों को दूध में औटाकर पीये । ३ । दोषों के अनुलोम में जीमूत डालकर औटोयहुए दूध की मलाई देवे (४) दोषों का प्रति-लोम होने पर जीमूत द्वारा सिद्ध दूध का दही देवे । (५) हरितपाण्डु में जीमूत डालकर औटोये हुए दूधका अम्ल दही देवे ।

अन्य प्रयोग ।

जीर्णानां च सुशुष्काणां न्यस्तानां भाजने
शुचौ । चूर्णस्य पयसा शृङ्गिणात्पित्तादि
तः पिवेत् ॥ आसृत्त्य च सुरामण्डे मृदित्वा
प्रकृतं पिवेत् । कफजेऽरोचके कासे पाण्डु
रोगे स यक्ष्मणि ॥ द्वेषापोऽध्याथवात्रीणि
शुद्ध्यामलकस्य च । कौषिदारदिका
नां वानिम्बस्य कुट्टजस्य च । कपायमा
सुतं पूत्वातेनैव विधिना पिवेत् ॥ अथवार
ग्वधादीनां सप्तानां पूर्ववत् पिवेत् ॥ एकैक
शः कपायेण पित्तश्लेष्मज्वरार्दितः ॥

अर्थ—(६) अच्छी तरह पके हुए और सूखे हुए जीमूत के फलों को एक स्वच्छ पात्र में रखे । इनका आधे पल चूर्ण दूध के साथ फांकने से वातापित्त रोग दूर होजाता है । [७] जीमूत के फलों

को सुरामण्ड में भिगोकर उन्हें सुरा में मर्दन कर के छान कर पाँले तौ इससेकफज अरुचि, खांसी, पाण्डुरोग और यक्ष्मा दूर होजाते हैं । [८] जीमूत के दो वा तीन फलों को कूटकर गिलोय, आंवला, कोविदारादिगण, नीम वा कुड़ा इन द्रव्यों में से किसी के काथ में भिगोकर मर्दन करै और फिर छानकर पीवै तो पूर्वोक्त गुण करने वाला है । [९] अथवा आरग्वघादि सात द्रव्यों में से किसी एक के काथ में पूर्ववत् फलों को भिगोकर, और छानकर पीवै इस से पित्तकफ ज्वर दूर होजाता है ।

अन्यप्रयोग ।

वर्षयःफलवच्चाटौकोलमात्रास्तुतामताः
जीमूतकस्यवाफल्कचूर्णवाशिशिराम्बुना।
ज्वरेपित्तभेववातदुष्टश्लेष्माणिचानुगे ॥
जीवकर्पभकेक्षूणांशतावर्षारसेनवा ॥
पित्तश्लेष्मज्वरेदद्याद्वातपित्तज्वरेऽथवा॥
तथाजीमूतकक्षीरासमुत्पन्नंपचेद्घृतम् ॥
फलादीनांकपायेणश्रेष्ठतद्रमनमतम् ।

अर्थ—(१०) मेनफल के सदृश कोवि-
दारादि गण के क्वाथ के साथ आठ प्रकार
की वसिष्ठा प्रस्तुत करै । (११) जीमूत
के कल्क वा चूर्ण को ठंडे जल के साथ
एक पित्त, वात मध्यम और हीन कफ के
ज्वर में पान करै । [१२] जीमूतके कल्क
को जीवक, ऋषभक, ईख वा सितारक के
रस में सेवन करने से पित्तकफज्वर वा
वात पित्तज्वर दूर होजाता है । [१३]
जीमूत डाल कर औटाये हुए दूधको जमा

कर घी निकालै । इस घीको मेनफलादि के
कपाय के साथ पान करै तौ बहुत उत्तम
वमन होती है ।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

पट्टक्षीरेमदिरायोगएकद्वादशचापरे ॥
सप्तचारग्वघादीनांकपायेऽष्टौचर्वाक्षिपु ।
जीवकादिपुचत्वारोघृतश्चैकंपकीक्षितम् ॥
कल्पेजीमूतकानांययोगास्त्रिशन्नवाधिकाः

अर्थ—जीमूत के उन्तालीस कल्प इस
तरह वर्णन किये गये हैं, यथा—दूध केछः
मदिरा का एक, आसुत के बारह, आर-
ग्वघादि के सात, बत्ती आठ जीवकादि के
चार और जीमूत का घृत एक प्रकार का ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविर-

चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता
यां कल्पस्थाने जीमूतकल्पों नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

—४—

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातइक्ष्वाकुकल्पंव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माद्भगवानात्रेयः

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम इक्ष्वाकुकल्पकी व्याख्या करेंगे ॥
सिद्धं त्रय्याभ्ययेक्ष्वाकुकल्पं येषां प्रशस्य-
ते । पञ्चचत्वारिंशदुक्तायोगा अस्मिन्म
हर्षिणा ॥

अर्थ—कटुतुम्बी के कल्प सिद्ध हैं इन
में महर्षि आत्रेय ने उत्तम उत्तम पैंतालीस
योगों का वर्णन किया है ॥

इक्ष्वाकुकेपर्यायशब्द ।

लम्बापिण्डफलातुम्बीकटुकालावुनीचतत्
इक्ष्वाकुः फलिनीचैवप्रोच्यतेतस्यकल्पना
अर्थ—इक्ष्वाकुके पर्यायवाची शब्द ये
हैं, यथा—लम्बा, पिण्डफला, तुम्बी, कटुका
अलालू, इक्ष्वाकु और फलिनी ।

इक्ष्वाकुकेगुण ॥

कासग्वासविपच्छादिज्वरार्तकफकाशिते
प्रताम्यतिनरैचैववमनार्थतदिप्यते ।
अर्थ—खांसी, द्वास. विष, वमन, अर
और कफ में तथा पित्तज मूर्च्छा में इस
की वमन हित है ।

इक्ष्वाकुकेकल्प ।

अपुष्पस्यमवालानामृष्टिमादेशसंमिताम् ।
क्षीरमस्थेभृतदद्यात्पित्तोद्विक्तेकफज्वरे ।
पुष्पादिपुचचत्वारःक्षीरेजीमूतकेयथा ॥
योगाहरितपाण्डूनामुरामण्डेनपञ्चमः ।
फलस्वरसभागश्चत्रिगुणक्षीरसाधितम् ॥
उरःस्थितेकफेदद्यात्स्वरभेदेसपीनसे ।
जीर्णेमध्योद्भृतेक्षीरंमक्षिपित्तचदादाधि ॥
जातंस्यात्कफजेकासेश्वासेवम्पाश्चत
त्पिवेत् ।

अर्थ—कटुतुम्बी की छत्ताकी जिस में फूल
न भाये हों नवीन बारह बारह अंगुल
की टहनी एक पल लेकर एक प्रस्थ दूध
में भोटावे । इस दुग्ध के पान करने से
पित्तोत्पन्न कफज्वर दूर होजाता है । जिस
तरह जीमूत के फल पुष्प संवंधी दूध
के चार प्रयोग हैं । उसी तरह इस के
भी चार प्रयोगहैं इनचार प्रयोगोंसे हरितपांडू

आदि रोग अच्छे होजातेहैं । जिस तरहसुरा-
मंडमेंजीमूत भिगोकर एककल्प वनता है इसी
तरह एक प्रयोग इसका भी है । इक्ष्वाकु
के फल का रस निकालकर तिगुने दूध के
साथ औटाकर पीने से हृदय में स्थित कफ
स्वर भेद और पीनस दूर होजाती है । एक
कटुतुम्बी के बीच का गूदा निकालकर
पोली करले और उसमें दूध भर देंवे, जब
उसका दही जमजाय तब कफजं खांसीश्वास
और वमन में इस दही के द्वारा वमन करावे।
अजाक्षीरेणत्रीजानिभावयेत्पाययेत्च ॥
विपगुल्मोदरग्रन्थिगण्डपुश्लीपदेषुच ।
दधिमण्डैःफलान्मध्यंपाण्डुकुष्ठज्वरार्दितः ॥
तेनतक्रंविपकंवासक्षौद्रलघणंपिबेत् ।
तुम्ब्याःफलरसैःगुष्कैःसपुष्पैरवचूर्णितम्
उदयेन्माल्यमाग्रायगन्धसम्पत्सुखोचित
म्।भक्षयेत्फलमध्यंपाण्डुहेनपललेनच ॥
इक्ष्वाकुफलतैलंवासिद्धंवापूर्ववद्भृष्टम् ।
अर्थ—कटुतुम्बी के बीजोंको बफरी के दूध
कीभावना देकर चूर्ण बनालेवे । इस चूर्णका
सेवन कराने से विषरोग, गुल्मरोग उदर-
रोग, ग्रन्थि, गंडमाला और श्लीपद दूर
होजाते हैं । कटुतुम्बीकी गिरिका दही के
तोडके साथ पकाकर पान करनेसे पांडुरोग,
कुष्ठ और विष दूरहोजाते हैं । अथवा उसी
के साथ तक्र को पकाकर संधानमक और
शहत डालकर पीना चाहिये । कटुतुम्बी के
पुष्पों को तूवी ही के रसकी भावना देकर
सुखाकर चूर्णकर लेवे । फिर इस चूर्ण को
सुगंधित पुष्प में लपेट कर सूघने से सुख-

पूर्वक वमन होती है । कटुतुंबी के गूदे को गुड़ अथवा तिलके कल्क के साथसेवन करै अथवा कटुतुंबी डालकर सिद्ध किया हुआ तेल अथवा जीमूत की तरह सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करने से वमन होती है ।

पञ्चाशदशष्टद्धानिफलादीनांयथोत्तरम् ॥
पिवेद्विमृशवीजानिकपायेष्वासुतंपृथक् ।
यच्छ्याहकोविदारार्थैर्मुष्टिमन्तर्नखंपिवे
त् ॥ कपायैःकोविदारार्थमात्राश्चफलव
त्स्मृताः ॥

अर्थ—मेनफलादिक वमनकारक द्रव्यों के क्वाथ में कटुतुम्बी के बीजों को मर्दन करके और छानकर नीचे लिये क्रम से पान करै, यथा—पहिले दिन दस बीज, दूसरे दिन बीस, तीसरेदिन तीस, चौथे दिन चासी और पांचवें दिन पचास बीज लेवै । कटुतुम्बी के अन्तर्नख मुष्टि [अंगूठे का नख भीतर करके भरी हुई मुठ्ठी । बीज लेकर मुलहठी और कोविदारादि आठ द्रव्यों के क्वाथ में पीसकर मेनफल के सदृश मात्रा का प्रयोग करै ॥

त्रिल्वमूलरूपायेणतुम्बीवीजाञ्जलिपचेत्
पूतस्यास्यत्रयोभागाःचतुर्थःफाणितस्यतु
सप्ततुंबीजभागश्चपिष्टमर्धाशिकास्तथा ॥
महाजालिनिजीमूतकृतवेषधनवत्सकान् ।
लेहयेत्साधयेद्दर्व्याघट्टयनमृदुनाथिना ॥
यावत्स्यात्तन्तुमत्तोयेपतितंचनशीर्यतो ॥
तंलिह्यान्मात्रपालेहंमन्थंचापिपिवेदनु ॥

अर्थ—वेलकी जड़ के क्वाथ में एक अंजली भर तुंबी के बीजों को पकावै ।

फिर इस को छानकर तीन भागलेवै, एक भाग फाणित, एक भाग घृत तथा अर्द्धभाग तोरई जीमूत, धीयातोरई और इन्द्रजौ इनके बीजों की पीसकर डालदे और मन्दी मन्दी अग्निसे पकावै और करलीसे चलाता रहै, जब इस में तार से छूटने लगे और पानी में डालने से यह शीर्णनहो तब तक पकाता रहै पीछे उतार कर मात्राके अनुसार इसका पान करै ऊपरसे मन्थ पीवै ।
कल्पएपोऽग्निमन्थादौचतुष्केपृथगुच्यते।
शक्नुभिर्वापिवेन्मधंतुम्बीस्वस्वभाषितैः
कफजेऽथज्वरेकासेकण्ठरोगेष्वरोचके ।
गुल्मेमेहमेसेकचकल्कंमांसरसैःपिवेत् ॥
नरःसाधुवमत्येवंनचदौविलपमश्नुते ।

अर्थ—इसी तरह अग्निमन्थादि अवलेह की चार कल्पना हैं । अथवा तुंबी के रस की भावना देकर जौ के सत्तू का मन्थपान करै । कफज ज्वर, खासी, कंठरोग, अरुचि, गुल्म, प्रमेह, लालास्राव आदि रोगोंमें इस के कल्क को मांसरस के साथ पान करै । इससे वमन बहुत अच्छी होती है और दुर्बलता भी नहीं होने पाती है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।
पयस्यष्टौसुरामण्डेमस्तुतक्रेचतेत्रयः ॥
त्रेयंसपललंतैलंबर्मानाःफलेपुपद् ॥
घृतमेकंकपायेपुनवान्येमधुकादिपु ।
अष्टौवर्तिक्रियालेहाःपञ्चमन्थोरसस्तथा
योगाइस्वाकुकल्पेतेचत्वारिंशच्चपञ्चच ।
उक्तामहर्षिणासम्यक्प्रजानांहितकाम्यया
अर्थ—इस अध्याय में महर्षि पुनर्वसुने

प्रजा की भलाईकेलिये इक्ष्वाकु के पेंतालीस प्रयोग वर्णन किये हैं ॥ यथा दूध के आठ सुरामंड, दही के तोड और तक्र के एक एक, सूंघने का एक, गुड, तिलकल्क, तेल और घी के एक एक, वर्द्धमान् छः मुलहटी आदि के व्वाथ के नौ, आठ प्रकार की बार्ति, पांच प्रकार के अत्रलेह, मन्धानुपान का एक और मांसरस का एक ।

इतिश्री भापाटीकाश्रितायां अग्निवेशविरचित्तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने इक्ष्वाकुकलयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३॥

—*—

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो धामार्गवकल्पव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माह भगवान्नाथेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम धामार्गव कल्पकी व्याख्या करेंगे ।

धामार्गव के पर्यायवाची शब्द ।

ककोटकीकटुकलामहाजालिनिरेवच ।

धामार्गवस्य पर्यायाराजकोशातकीतथा ॥

अर्थ—ककोटकी, कटुकला, महाजालिनी, धामार्गव और राजकोशातकी ये धामार्गव के पर्यायवाची शब्द हैं । इसे भाषामें घीयातोरई कहते हैं ।

धामार्गव के गुण ।

गरेगुल्मोदरेकासेवातेश्लेष्मापयस्थिते ।

कफेचकण्ठवक्रश्चेकफसञ्चयजेपुच ॥

रोगेश्चेत्प्रयोज्यं स्यात्शिराःस्युर्गुरुवश्चये

अर्थ—गरदोष, गुल्मरोग, उदररोग, खासी, वातरोग, कफरोग, कंठस्थ वा मुख स्थकफ तथा अन्य कफसंचय कारकरोगों में एवं वद्धमूल और गुरुरोगोंमें धामार्गव के प्रयोगों से धमन करना हित है ।

धामार्गवकीकल्पना ।

फलंपुष्पमवालञ्चविधिनातस्यसंहरेत् ॥
मवालस्वरसंशुष्कं कृताश्चगुलिकाःपृथक्
कोविदारादिभिःपेया कपायैर्मधुकस्यचा
पुष्पादिपुपयोयोगाःचत्वारःपञ्चमीसुरा
पूर्ववर्ज्जाणिशुष्काणामतःफलपःप्रवक्ष्यते ॥
मधुकस्यकपायेणबीजकण्ठोद्भृतंफलम् ॥
सगुडव्युपितंरान्निकोविदारादिभिस्तथा
दद्याद्गुल्मोदरातंभ्योयेचाऽप्यन्येकफा
मयाः ॥ दद्यादश्लेनवायुक्तोच्छिद्दृद्रोग
शान्तये ।

अर्थ—धामार्गव के फूल, फल और पत्तों को विधि पूर्वक लाने । धामार्गव के पत्तों के रस को सुखा कर गोली बना लेवै, इस गोली को विदारादि आठ द्रव्यों से पृथक् २ और मुलहटी इन के काथ के साथ पान करै । पूर्वोक्त विधि से धामार्गव के पुष्पादि कों के दूध के साथ चार प्रयोग हैं । पांचवां सुरा में भिगोकर मसलकर उसको पान करना है । इन प्रयोगों में पकेहुये फल सुखा कर काम में लाये जाते हैं । धामार्गव के बीज, छिलके आदि दूर कर के मुलहटी के काथ में अथवा कोविदारादि आठ द्रव्यों के काथ में से किसी एक में भिगो देवै । प्रातःकाल इसको छान कर धाडा सा गुड

डालकर पाँचै, इस से गुल्मरोग, उदररोग, या अन्य कफरोग दूर होजाते हैं । अथवा इस में खटाई मिलाकर दैने से वमन और हृद्रोग शान्त होजाते हैं ॥

चूर्णैर्वाप्युत्पलादीनिभायितानिप्रभृतशः
रसक्षीरियवाग्वादिद्रुमोप्रात्त्रावमेत्सुखम्
चूर्णाकृतस्यवार्तवाकृत्वावदरसाम्पिताम्
विनीयाञ्जलिमात्रेत्तुपिवद्गोशकृतोरसे ।

पृपतत्तं कुरङ्गाश्वगजोद्भृश्वतराविके ॥
श्वदंद्दीस्वरखड्गानांचैत्रं पेयाशकृद्रसे ॥
जीवकर्पभकौक्षीरात्मगुस्ताशतावरीम्
काकोलीश्रावणीमेदांमहामेदांमधूलिका
म् । एकैकशोऽभिसंचूर्ण्यसहधामार्गवेण
तु ॥ शर्करागधुसंयुक्तालद्यादृदाहकासिनाम्

अर्थ—धामार्गव के चूर्ण में नालकमल
आदि के पुष्पों को सूख धरा रहने देंवै ।
मांसरस, दूध और यथागू आदि को तृप्ति
पर्यन्त भोजन करके इन पुष्पों के सूघने
से बहुत सुख से वमन होती है । अथवा
सोले भर धामार्गव के फूल के चूर्णको गौ
के गोबर के एक अंजली रसके साथ पान
करै । इसी तरह चितकवरा हिरन, रीछ,
फालाहिरन, घोडा, हाथी, ऊँट, खिच्चर,
भेडा, श्वदंष्ट्रा, गधा और गेंडा इन में से
किसी के विष्टा के रस के साथ धामार्गव
का चूर्ण पान करै । अथवा जीवक, नपभक
क्षीरकाकोली, आत्मगुता, सितावर, काकोली
श्रावणी, मेदा, महामेदा और -मुलहर्टा इन
में से किसी एक के चूर्ण को धामार्गव के
चूर्ण के साथ मिलाकर शहत और मिश्री

के साथ चाटने पर हृदय का दाह और
खांसी दूर होजाती है ।

मुखोदकानुपानाःस्युःपित्तोष्मसहितकफे
धान्यतुम्बुरुयूपेणकल्कःसर्वत्रिपापहः ।
जात्यासौमनसायिन्यारजन्पाश्चोरकस्य
दा ॥ पुनर्नवाकासमर्दविम्बीहैमवतस्यच
महासहाभुद्रसहादृश्चीराणांपृथक्पृथक् ॥
एकंधामार्गवंदेवाकपायेपरिमृद्यतु ॥ पू-
तंमनोत्रिकारेपुपिवेदमनमुत्तमम् ॥ तच्छृ-
तंक्षीरजंसर्पिःसाधितंवाफलादिभिः ॥

अर्थ—पित्तकीऊर्णाशुक्त कफमेंधामार्गव
का चूर्ण फाँककर ऊपरसे गरम जल पाँचै ।
धनियां, तुम्बरू धनियां और यूपके साथ
पान करै तो सब प्रकार के विष दूर होजाते
हैं । मालती के फूल, हलदी, चौरफ, पुनर्नवा
कसौदी, कंदूरी, वच, महासहा, भुद्रसहा
और रक्त पुनर्नवा इन के पृथक् पृथक्
कपाय में एक वा दो धामार्गव को मसख
कग छानकर पाँचै । अथवा उस के साथ
औटाये हुए दूध के घी को मैनफलादि के
कल्कके साथ सिद्ध करके सेवन करने से
उत्तम वमन होती है ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।
पल्लवेनचचत्वारःक्षीरएकःसुरासवे ।
कपायाःविंशतिःकल्कौदशद्वौचशकृद्रसे ।
अन्नएकस्तथाप्रेयेदशलेहास्तथाघृतम् ।
कल्पधामार्गवस्योक्ताःपष्टियोगामर्हापिणा
अर्थ—इस अध्यायमें धामार्गवपत्तोकचार
प्रयोग, दूध का एक प्रयोग, सुरासवका
एक, बवाथ के बीस, गौ शादिके पुरीपरस

के वारह, अन्न का एक, सूंघने का एक
अवलेह दस तथा घृत के दस । इस तरह
धामार्गवके साठ प्रयोग वर्णन कियेगये हैं ।

इतिश्रीभायाटीकान्वितायां अग्निवेश विर-

चितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां

कल्पस्थाने धामार्गवकल्पानाम -

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

—○*○—

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथातोवत्सककल्पं व्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माद्भगवन्नात्रेयः ।

अर्थ— तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले

कि अब हम वत्सककल्प की व्याख्या करेंगे।

अथवत्सकनामानिभेदंस्त्रीपुंसयोस्तथा ।

कल्पश्चास्यमवक्ष्यामिविस्तरेणयथातथम् ।

अर्थ—अब हम वत्सक के नाम तथा

उस के स्त्रीजाति और पुरुषजाति के भेद

तथा इस के कल्पों की व्याख्या करेंगे ॥

वत्सक के नाम ।

वत्सकःकुटजश्चैववृक्षकोगिरिमल्लिका ।

वीजानीन्द्रयवास्तस्यतथाच्यन्तेकालि-

द्रकाः ॥

अर्थ—वत्सक, कुटज, वृक्षक, गिरिम-

ल्लिका इस के पर्यायवाची नाम हैं । इस

के बीजों को इन्द्रजौ और कालिंग भी

कहते हैं ॥

वत्सक के भेद ।

वृहत्फलःश्वेतपुष्पःस्निग्धपत्रःपुमान्भ-

वेत् । श्यावारुणाचपुष्पीस्त्रीफलवृन्तै-

स्तथाणुभिः ॥

अर्थ—जिस वत्सक के बड़े फल, सफेद
फूल और चिकने पत्ते होते हैं वह पुरुष
जाति है जिस के फल काले या टाल और
जिस के फल और वृन्त छोटे होते हैं वह
स्त्री जाति है ॥

वत्सककेगुण ।

रक्तपित्तकफघ्नस्तुमुकुमारोऽप्यनत्ययः ।

हृद्रोगज्वरघातासृग्धिसर्पादिपुशस्यते ॥

अर्थ—वत्सक रक्तपित्त नाशक, कफना-

शक, मुकुमारों को अनुपद्रवकर्त्ता, हृद्रोग,

ज्वर, वातरक्त शौर विसर्प आदिरोगोंमें हित

होता है ॥

वत्सक के कल्प ।

कालफलानिसंगृह्यतयोर्वैश्वानिनिक्षिपेत्

तेषामन्तर्नखंमुष्टिजर्जरीकृत्यवामयेत् ॥

मधुकस्यकपायेणकोविदारदिभिस्तथा ।

निशिस्थितं तमामृथलवणक्षौद्रसंयुतम् ॥

पिचोतद्रमनंशुष्टिपित्तश्लेष्मनिवर्हणम् ।

अष्टाहंपयसार्कणतेषांचूर्णानिभाववेत् ॥

जीवकस्यकपायेणततःपाणितल्लंपिचेत् ।

फलनीमूतकेश्वाकुजीवन्तीनांपृथक्तथा ॥

सर्पपाणांमधूकानांलवणस्याथवाम्बुना ।

कृशरेणायवायुक्तंविदध्याद्रमनंभिपक्व ॥

अर्थ—ठीक समयपर दोनों प्रकार के

वृक्षों के फल लाकर सुखाकर घर में रख

लेवै । इनमें से अन्तर्नख मुष्टि लेकर चूर्ण

करले । इस चूर्णको मुलहटी अथवा कोवि-

दारादि आठ द्रव्यों के द्वाध में से किसी

एक के साथ रात्रि में भिगो देवै, प्रातःकाल

इसे मसलकर छानले और इसमें संधानमक

और शहत मिलाकर पाँच पित्तरोग में इस की वमन बहुत अच्छी होती है और यह पित्त कफको नष्ट भी करता है । अथवा इन के चूर्ण को आठ दिनतक आकके दूध की भावनादेवै और फिर इसमेंसे दो तोले जीवक के कपाय के साथ पाँच । अथवा आक के दूध में भावना किया हुआ उक्त-चूर्ण मेनफल, जीमूत, इक्ष्वाकु वा जीवन्ती के क्वाथ के साथ पानकरै अथवा सरसोंका क्वाथ, वा मुलहठी का क्वाथ, वा लवणका जल, वा कृशरा के साथ इन्द्रजों के कल्क का पान करै तो वमन होवे ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

तत्रश्लोकः । कपायैर्नवचूर्णैश्चपञ्चोक्ताः
सलिलैस्त्रयः । कृशराष्टादशायोगवत्स
कस्यानिदर्शिताः ॥

अर्थ—इस अध्याय में क्वाथ के नौ, चूर्ण के पाँच, जल के तीन वा कृशरा का एक इस तरह वत्सक के अठारह कल्प वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकाश्रितार्याभाग्निवेशविरचि-

तार्या चरकप्रति संस्कृतार्या संहितार्या

कल्पस्थाने वत्सक कल्पो नाम

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

—:~*~:—

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातःकृतवेधनकल्पव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माद्भगवानान्त्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि
अब हम कृतवेधन कल्प की व्याख्या करेंगे ॥

कृतवेधन के पर्यायवाचीनाम ।
कृतवेधननामानिकल्पञ्चास्यनिबोधत ।
श्वेदःकोशातकीचोक्तंमृद्गफलमेवच ॥
अर्थ—अब हम कृतवेधन के नाम और उस के कल्पों की व्याख्या करते हैं । नाम यथा, श्वेद, कोशातकी और मृद्गफल ये कृतवेधन के नाम हैं, भाषा में इसे तोरई कहते हैं ॥

कृतवेधनके गुण ॥

अत्यन्तकटुतीक्ष्णोष्णगाढेऽपिष्टुद्गदेऽपुतु ।
कुष्ठपाण्ड्वामयप्रीहशोफगुल्मगरादिषु ॥

अर्थ—तोरई अत्यन्त कटु, तीक्ष्ण और उष्ण होती है, । यह मादरोगों में उप-योगी होती है, कुष्ठ, पाण्डुरोग, डीहा, शोफ, गुल्मरोग और विपरोग इस के सेवन से दूर होजाते हैं ॥

कृतवेधन के कल्प ॥

क्षीरादिकुसुमादीनिमुराचंतेपुपूर्ववत् ।
सुधुष्काणान्तुजीर्णानामेकद्वेवायथावलम्ब
कपायैर्मधुकादीनानवभिःफलवत्पिबेत् ।
काथयित्वाफलंतस्यपूत्वालेहनिधापयेत् ।
कृतवेधनकल्काक्षफलाद्यर्द्धांशसंयुतम् ॥
पृथक्चारुग्वधादीनांत्रयोदशभिरामुतम् ॥
शाल्मलीमूलवृन्तानांपिच्छाभिर्दशभिस्त
था । वर्तिक्रियापटुफलवत्फलादीनांष्ट
तंतथा ॥

अर्थ—कृतवेधन के पत्ते, फूल और फल आदि के साथ दूध पकाकर वमन के लिये दिया जाता है, इसके पुष्प फलादिकों को रात्रि में सुरा में भिगोकर प्रातःकाल

छानकर पीने से बगन होती है । कृत-
 वेधनके एकत्रा दो पकेहुए सूखेबीज मुलहठी
 और कोविदारादि आठ द्रव्यों के काथ में
 किसी के साथ मेनफल की तरह छेवें ।
 कृतवेधन का क्वाथ करके छान छेवें और
 फिर उसे छेह की तरह पकाकर सेवन करें
 कृतवेधन का कल्क दो तोले इस में मेनफल
 का कल्क एक तोले मिलाकर सेवन करें ।
 आरम्भवादि तरह द्रव्यों के भिन्न भिन्न
 क्वाथ में कृतवेधन को भिगोकर और छान
 कर सेवन करें । सेमर की जड़ और डंठल
 का पिच्छा आदि दस द्रव्यों के साथ पृथक्
 पृथक् सिद्ध करके सेवन करें । इसी तरह
 कोविदारादि भिन्न २ छः द्रव्यों के साथ
 कृतवेधन की छः प्रकार की वत्ती बनाई
 जाती है ॥ तथा मेनफल के सदृश ही कृत-
 वेधन का घृत भी तयार किया जाता है ।
 कोशातकानिपञ्चाशत्कोविदाररसेपचेत् ।
 तद्गुणायफलादीनांकल्कैर्लेहं हि साधयेत् ॥
 क्ष्वेदस्पतत्रभागः स्याच्छेषाण्यद्वांशिक-
 स्पच ॥ कपायैः कर्षुदाराद्यैरेवन्तस्कल्प-
 येत्पृथक् ॥ कपायेपुफलादीनां मानूपं पि-
 शितेपृथक् ॥ कोशातकीफलंपक्त्वातद्र-
 संलवणं पिवेत् ॥ फलादिपिप्पलीतुल्य-
 न्तद्रत्स्वेदरसं पिवेत् । क्ष्वेदं काये भवेत्सि-
 द्दं मिश्रमिश्रसेन च ॥

अर्थ—पचास कृतवेधन फलोंको को-
 विदारके रसमें पकावें । इसक्वाथमें मदन
 फलादि द्रव्यों का कल्क डालकर छेह व-
 नायें । जितनी कृतवेधन डाली जाय उस

से आधे अन्य द्रव्य डालने चाहिये । फिर
 इन सबको कोविदारादि द्रव्योंके पृथक् २
 क्वाथमें पकाकर सेवन करें । मेनफलादि
 के क्वाथमें आनूपमांस और कोशातकीको
 पकाकर उस रसको नमकके साथ पीना
 चाहिये । उक्त कोशातकी और आनूपमांस
 इनके पकेहुए रसको मेनफलादि पीपल प-
 र्प्यन्त द्रव्यों के क्वाथ में पकाकर सेवन
 करें अथवा मेनफलादि के क्वाथ में सिद्ध
 कीहुई कोशातकी को ईखके रसके साथ
 पीना चाहिये ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

क्षीरेद्वाद्वांसुराचैकाकाथाद्वाविंशतिस्तथा
 दशपिच्छाघृतचैकंपट्टचयतिंक्रियाः शुभाः
 लेहेऽष्टौ मसृपांसचयोगेश्वरसेऽपरः ॥ कृत
 वेधनकल्पेऽस्मिन्पट्टियोगाः प्रकीर्तिताः
 अर्थ—इस अध्याय में दूध के चार
 सुरा का एक, क्वाथके द्वादश, पिच्छाके दस,
 घी का एक, यति छः, छेह आठ, मांस के
 सात और ईख के रस का एक इस तरह
 कोशातकीके साठ प्रयोग वर्णन कियेगये हैं ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अश्विदेश विर-
 चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता
 यांकल्पस्थानेकृतवेधनकल्पानाम
 षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः श्यामात्रिवृत्कल्पं व्याख्यास्यामः
 इतिहामाह भगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अवहम श्यामात्रिवृतकल्पकी व्याख्या करैगे विरेचनेत्रिवृत्तगुणश्रेष्ठमाहुर्यनीपिणः ॥

तस्याःसंज्ञागुणःकर्मभेदाःकल्पश्चवक्ष्यते

अर्थ—पण्डितोंने विरेचनके लिये निसोध की जड़ बहुत उत्तम कही है इसी से अब हम उस के नाम, गुण, क्रियाभेद और कल्पों की व्याख्या करते हैं ॥

त्रिवृताकेनाम।

त्रिभाण्डीत्रिवृताश्यामासुवहाकोटारातथा त्रिवृत्सर्षानुभूतिश्चशङ्खःपर्यायवाचकैः।

अर्थ—त्रिभंडी, त्रिवृता, श्यामा, सुवहा कोटरा [कुटवणा] और सर्वानुभूति ये इस के पर्यायवाची शब्द हैं, इसे भाषामें निसोध कहते हैं ।

निसोधकेगुण ।

कपायामधुरारूक्षाधिपाकेकटुकाचसा ।

कफपित्तप्रशमनीरौक्ष्याच्चानिलकोपनी॥

सेदानीमौपैर्युक्तावातपित्तकफापहैः ॥

कल्पावशेष्यमासाद्यसर्वरोगहराभवेत् ।

अर्थ—निसोध कसीली, मिष्ट, रूक्ष और कटुपाकी होती है यह कफपित्तको दूर करतीहै, रूखी होनेके कारण वात को प्रकुपित करतीहै । परन्तु वात, पित्त तथा कफनाशक औषधियोंके योगसे अनेक कल्पनाओं के द्वारा सम्पूर्ण प्रकार के रोगोंको दूर करताहै ।

निसोधकेभेद ।

मूलन्तुद्विविधंतस्याःश्यामंचारुणमेवच ॥

तयोर्मुख्यतरंविद्विमूल्यदरुणप्रभम् ॥

अर्थ—निसोध की जड़ लाल और काळी दो तरह की होतीहै, इनमें से लालजड़ वाली निसोध बहुत उत्तम होतीहै । यह सुकुमार, बालक, वृद्ध और मृदु कोष्ठ वालोंके लिये उत्तम होती है ।

श्यामात्रिवृतकेगुण ॥

सुकुमारेशिशौवृद्धेमृदुकोष्टेचतच्छुभम् ।

मोहयेदाशुकारित्वाच्छ्यामाकण्डक्षिणो

त्यपि । तैक्ष्णयात्कर्पतिहृत्कण्डमाशुदो

पंहरत्यपि ॥ शस्पतेचहुदोषाणांक्रूरको

ष्टाश्चयेनराः॥

अर्थ—श्यामानिसोध आशुकारी होने से मोह और कंठमें क्षोणता करता है तैक्ष्ण्य होनेसे हृदय और कंठको कर्पित करती है, तथा दोषको शीघ्रही दूर करदेती है । यह निसोध बहुत दोषवाले और फेड़े फोड़े वालों के पक्ष में हित है ।

गुणवत्यन्तयोर्भूमौजातंमूलंसमुद्धरेत् ॥

उपोष्यप्रयतःशुक्लेथुलुवासाःसमाहितः।

गम्भीरानुगतंश्लक्ष्णंअतिर्यग्विसृतश्चयत्

गृहीत्वाविमृजेत्काष्ठंत्वंचंशुष्कानिधा

पयेत् ॥

अर्थ—श्रेष्ठ गुणवाली भूमिमें उत्पन्न हुई दोनों प्रकारकी निसोधकी जड़ लायें, लानेके दिन उपवास करे और पवित्रता से स्वच्छ वस्त्र धारण कर के शुरुप्रथम में लाने का प्रयत्न करे । निसोधकीजड़ जो सीधी और फैलती हुई बहुत नाँचे को चली गई हो और धिकनी हो उसे निकाल कर छालको सुखाकर रखलेवै और काटको त्याग देवै

निसोथकी मात्रा ।

स्निग्धास्विन्नोविरेच्यस्तुपेयामात्राशितः
सुखम् । अक्षमात्रन्तयोःपिण्डविनीया
म्लेननापिवेत् ॥ गोव्यजामहिपीमूत्रसौ
वीरकतुपोदकैः । प्रसन्नयात्रिफलाशृत
याचपृथक्पिवेत् ॥ एकैकसैन्धवादीनां
द्वादशानांसनागरम् । त्रिवृद्विगुणंसंयु
क्तं चूर्णमुष्णाभ्युनापिवेत् ॥

अर्थ—जिसको विरेचन देना हो उसे
स्निग्ध और स्वेदित करके दोनों प्रकारकी
निसोथ में से किसी को तोले भर कांजी में
मिलाकर पीवै विरेचन के पीछे पेया आदि
का सेवन करै । इसी तरह से तोले भर
निसोथ की जड़ को गौ, भेड, बकरी भेंस
का मूत्र, सौवीर, तुपोदक, प्रसन्ना वा त्रिफला
के काथ के साथ पीवै । अथवा चार सैधवा
दिक और आठ प्रकार के मूत्र इन में से
किसी के साथ, निसोथ से दुगुनी सोंठ
ढालकर पीवै ऊपर से गरमजल पीलेवै ॥
मरिचंपिप्पलीमूलमगधागजपिप्पली ॥
सरलःकिलिमहिद्वग्भागतिजोवतीतथा
मुस्तं हैमवतीपध्याचित्रशोरजनीवचा ॥
स्वर्णक्षीर्यजमोदाचशृङ्गेरवेरुचतैःपृथक् ॥
एकैकार्द्राशसंयुक्तंपिवेद्गोमूत्रसंयुतम् ॥
मधुकार्द्राशसंयुक्तंशर्कराम्बुयुतांपिवेत् ॥
अर्थ—कांलीमिरच, पीपलामूल, पीपल,
गजपीपल, सरलकाष्ठ, देवदारु, हांग, भा-
दंगी, चन्व्य, मोथा, बच, हरड़, चीता, हलदी,
मच, स्वर्णक्षीरी, अजमोद, और सोंठ इन
सब द्रव्यों से दूनी निसोथ मिलाकर गोमू-

त्र के साथ पान करै । अथवा एक भाग
मुल्हठी और दो भाग निसोथ मिला कर
शर्करा के जल के साथ पीवै ॥
कर्कटादश्रावणीचमेदर्पभकजीवकौ ॥
मुद्गमापाख्यपर्णीचमहतीश्रावणीतथा ॥
काकोलींक्षीरकाकोलींछत्रांछिन्नरुहांतथा
क्षीरशुक्लांपयस्याश्रयप्टचांहविधिना
पिवेत् ॥ वातपित्तहितान्येतान्यन्यानि
तुक्फानिले ।

अर्थ—काकड़ा सींगी, श्रावणी, मेदा,
ऋषभक, जीवक, मुद्गपर्णी, मांषपर्णी, म-
हाश्रावणी, काकोली, क्षीरकाकोली, छत्रा,
गिन्धेय, क्षीरशुक्ला, विदारिकन्द और मुल्ह-
ठी इन के समान निसोथ मिलाकर पीवै ।
ये प्रयोग वातपित्त में हित हैं तथा अन्य
प्रयोग वातकफ में हित हैं ।

क्षीरमांसशुक्राश्मर्याद्राक्षापीलुरसैःपृथक्
सर्पिपावातयोश्चूर्णमभयार्धाशिकंपिवेत्
लिह्याद्दामधुसार्पिभ्यांसंयुक्तंससितोपलम्
अजगन्धातुगाक्षीरीविदारीशर्करात्रिवृत्
चूर्णितं सौद्रसर्पिभ्यांलीङ्गासाधुविरिच्यते
सन्निपातञ्चरस्तम्भदाहवृष्णादितो नरः

अर्थ—दूध, मांसरस, ईश का रस, खं-
भारी, दाख, पीछ का रस वा घी के साथ
आधा भाग हरड़ का मिलाकर दोनों प्रकार
की निसोथ में से कोई सी पीवै । अथवा
निसोथ के चूर्ण में शहत, घी और चीनी
मिलाकर चाटै । अजगन्ध, वंशलोचन, वि-
दारीकन्द, चीनी और निसोथ इन के चूर्ण
को शहत और घी में सानकर चाटने से

अच्छी तरह विरेचन होता है। सन्निपातज
ज्वर, स्तम्भ, दाह और तृष्णा में यह विरे
चन हित होता है।

श्यामात्रिष्टकपापेणकल्केनचमशर्करम् ॥
साधयेद्विधिवलेहंलिखात्पाणितलंततः ।
सक्षौद्रांशर्करांपक्त्वाकुर्यान्मृद्भ्राजनेनवे ॥
क्षिपेच्छीतंत्रिवृच्चूर्णत्वक्पत्रमारिचैःसहा
मात्रयालेहयेदेतदीश्वराणांविरेचनम् ।
कुडवांशान्तरसानिषुद्रासापीलुंपरूपकात्
सितोपलापलेक्षौद्रात्कुडवाज्ज्वचसाधये-
त् । तलेहंयोजयेच्छीतंत्रिवृच्चूर्णेनशा
स्प्रवित् । एतदुत्सन्नपित्तानामीश्वराणां
विरेचनम् ॥

अर्थ—श्यामा निसोध का काथ, कल्क
धौर चीनी मिलाकर लेह की तरह पकावें
और इस में से दो तोले चाँटें। शर्करा को
पकाकर ठंडा होने पर शहत मिलाकर
मिट्टी के नये पात्र में रखदेवें इसी में
निसोधका चूर्ण, दालचीनी, तेजपात, काली
मिरच इनका चर्ण भी उस में डाल देवें
इसको मात्रायत् सेवन करें। यह विरेचन
सेठसाहूकार राजा महाराजाओंको उपयोगी
है। अथवा ईस का रस, दाख का रस,
पीछूका रस और फालसे का रस एक एक
कुडव और चीनी दो पल इन सबको प-
का कर ठंडा करले ठंडा होने पर जाधा
कुडव शहत मिलाकर धर लेवें इस लेह में
निसोध का चूर्ण मिलाकर सेवन करें। यह
बिरेचन धनवान् उदीर्ण पित्तवालों के लिये
हितकर है।

पैत्तिक प्रकृति वालों का विरेचन ॥
शर्करामोदकान्वर्तिगुलिकामांसपूपकान् ॥
अनेनविधिनाकुर्यात्पैत्तिकानांविरेचनम् ॥

अर्थ—पित्तप्रकृति वालों के लिये निसोध
के बूरे के लड्डू, वर्ति, गुलगुला, मांसके
पूआ आदि बनाकर विरेचन के लिये देवें।
कफप्रकृति के लिये विरेचन ।
पिप्पलीनागरंक्षारंश्यामात्रिष्टकपासह ।
लेहयेन्मधुनासार्द्धंश्रेष्मलानांविरेचनम् ॥
अर्थ—कफप्रकृति वालों के लिये पीपल
सोंठ, क्षार और श्यामात्रवृत्त इनको शहत
के साथ चटाने से विरेचन होता है ॥

कफाधिक्य में राजाओंके योग्य विरेचन
मातुलुङ्गाभयाधार्त्रीश्रीपर्णीकोलदाडिमा
त् ॥ सुभृष्टान्स्वरसांस्तैलेसाधयेत्त्रचा
वपेत् ॥ सहकारान्कपित्यांश्रसाध्यमम्ल
श्रयत्फलम् । पूर्ववद्गहलीभूतेत्रिवृच्चूर्णे
समावपेत् ॥ त्वक्पत्रफेतरैलानांचूर्णञ्च
मधुमात्रया । लेहोऽयंकफमूलानामीश्व
राणांविरेचनम् ॥

अर्थ—विजोरा, हरड, आमला, श्रीपर्णी,
वेर और अनार इन सबका समान भाग
रस और इतनीही शर्करा लेकर मिला देवें
और पक करे। पाँछे इसे तेलमें भूनलेवें।
और फिर इस में निसोध डाल देवें। इसी
तरह से आम, कैथ, तथा अन्य खट्टे फलों
के क्वाथ को पकाकर गाढ़ा करले और
फिर उस में निसोधका चूर्ण डाले और
दालचीनी, तेजपात, केसर और इलायची
इम में डालदेवें, फिर इस को शहत के

साथ चाटे । यह विरेचन कफप्रधान राजा
महाराजाओं के लिये बहुत हित है ।

पानकानिरसान्पूपान्मोदकान्रागपाद
वान् । अनेनविधिनाकुर्याद्विरेकार्येकफा
धिके ॥ त्वगैलाभ्यांसमंतीतैस्त्रिवृत्तै
शर्करा । चूर्णफलरससौद्रशक्नुभिस्तर्प
णंपिवेत् ॥ वातपित्तकफोत्थेपुरोगेष्वल्पा
नलेपुच । नरोपसुकुमारोपुनिरपायंविरेच
नम् ॥ शर्करात्रिफलाश्यामात्रिवृन्माग
धिकेमधु । मोदकःसन्निपातोध्वरक्तपि
त्तज्वरापहः ॥

अर्थ—इसी तरह से पानक, रस यूप
मोदक और रागपादव बनाकर कफाधिक
व्यक्तियों के लिये विरेचन के निमित्त देवै
एक भाग दालचीनी, एन भाग इलायची
दो भाग निसोथ और चार भाग चीनीको
मिलाकर अम्लफल के रस, शहत और
जौ के सत्तू के साथ तर्पण पान करे । यह
विरेचन वात, पित्तऔर कफके रोगों में,
मन्दाग्नि में और सुकुमार मनुष्यों के लिये
हित है । अथवा चीनी, त्रिफला, दोनों
प्रकार की निसोथ, पीपल और शहत इन
सबके मोदक बनावै । ये मोदक सन्निपात
ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त और ज्वर को दूर करताहै
त्रिवृच्छाणामृतास्तिस्त्रिस्तिस्रश्चात्रिफला
त्वचः ॥ विडङ्गपिप्पलीसारशाणास्तिस्त्र
श्चूर्णिताः । लिङ्गात्सर्पिमधुभ्याञ्चमो
दकंवागुडेनच ॥ भक्षयन्निपरीहारमेत
च्छोधनमुत्तमम् ॥ गुल्मंश्रीहोदरंश्वासंह
लीमफमरोचकम् ॥ कफवातकृतांश्चान्या
न्पुन्यापीनेवद्वयपोहति ॥

अर्थ—निसोथ तीन शाण, गिलोय तीन
शाण, त्रिफलाकी छाल तीन शाण, वायविडंग
एक शाण, पीपल एक शाण और जवाखार
एक शाण इनका चूर्ण करके घी और शहत
के साथ चाटे अथवा इसमें गुड मिलाकर
मोदक बनालेवै । इन मोदकोंके सेवनमें
आहारदि के त्यागने की कुछ आवश्यकता
नहीं है, यह विरेचन बहुत उत्तम है इस
से गुल्म, श्नीहा, उदररोग, श्वास, हलीमक,
अरुचि, तथा कफवातकृत अन्य व्याधियां
दूर होजाती हैं ।

कल्याणक गुटिका ।

विडङ्गपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्याचित्रकम् ॥
मरिचन्द्रयवाजानीपिप्पलीहस्तिपिप्पली ॥
लवणान्यजयोदाच्चूर्णितंकापिकंपृथक् ॥
तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौचाष्टपलोन्मितौ ॥
धार्त्रीफलरसप्रस्थांस्त्रीनृगुडाईतुलान्तथा
पक्त्वामृदाग्निनाखादेद्दरोदुश्चरोपमान् ॥
गुडानुकृत्वानचास्यस्याद्विहाराहारयन्त्रणा
कुष्ठार्शःकामलामेहगुल्मोदरभगन्दरम् ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगांश्चहन्पुंसवनाश्चते ॥
कल्याणकाइतिख्याताःसर्वेषुतुपुयौगिका

अर्थ—वायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला,
धनियां, चीता, कालीमिरच, इद्रजौ, जीरा,
पीपल, गजपीपल, सेंधानमक, अजमोद,
इन में से प्रत्येक एक एक पल लेकर चूर्ण
कर लेवै तथा तिलकातेल आठ पल, निसोथ
का चूर्ण आठ पल, आंवले का रस तीन
प्रस्थ और पुराना गुड आधीतुला, इकट्ठकरे ।
प्रथम आंवले के रस में गुडकी चासनी करे ।

फिर इस में उक्त द्रव्योंका चूर्ण और सुपक तैल डालदेवै फिर इसमें से वेर वा गूलर की बराबर गोलियां बनावै । इन गोलियों के सेवन करने में किसी प्रकार के आहार विहार का निषेध नहीं है । इसके सेवन से कुष्ठ, अर्श, कामला, प्रमेह, गुल्म, उदररोग, भगन्दर, गृहणी रोग, पाण्डुरोग दूर होजातेहैं । यह पुंसवनभी है । इसका नाम कल्याणक गुटिका है । यह सम्पूर्ण ऋतुओंमें उपयोगी होती है ।

व्योपादि विरेचन ॥

व्योपत्वकूपत्रमुस्तैलाविडङ्गामलकाभयाः
समभागाभिपद्मद्याद्विद्युणञ्चमुकूलक
म् ॥ त्रिवृतोऽष्टगुणं भागं शर्करायाश्च पद्मगु
णम् ॥ चूर्णितं गुलिकान्कृत्वा क्षौद्रेण प
लसम्मितान् । भक्षयेत्कल्पमुत्थाप्यशीतं
चानुपिवेज्जलम् ॥ मूत्रकृच्छ्रेज्वरेवर्म्या
कासेश्वासेभ्रमेक्षये । तापेपाण्ड्वामयेऽ
ल्पेऽग्नौशस्तानिर्यन्त्रिताग्निः ॥ योगः
सर्वविपाणाश्च मतः श्रेष्ठविरेचनम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, दालचीनी, तेजपात, मोधा, इलायची, वार्पाविडंग, आंबला, हरड़, इन सबकाचूर्ण समानभागलेवै, दंतीदोभाग लेवै, निसोध आठ भाग और शर्करालःभाग इनसबका चूर्णकरके शहतमें सानकर एक २ पल की गोली बनावै । इन में से प्रातःकाल एक गोली को खाकर ऊपरसे ठंडा जल पीलेवै । इसके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, वमन खांसी, श्वास, भ्रम, क्षयरोग, ताप, पाण्डुरोग और मन्दाग्नि दूर होजाते हैं, इसमें आहार

विहार की कुछ यंत्रणा नहीं है । यह सब प्रकार के विपरोग में भी श्रेष्ठ है ।

दशमोदकोंका प्रयोग ।

त्रिवृत्पलं द्विमसृतं पथ्याधान्यरूकयोः ।
दशैतान्मोदकान्कुर्यादीश्वराणां विरेचनम् ॥

अर्थ—निसोध एक पल, हरड़, धनियाँ और अरंड की जड़ दो प्रसृत इन सबका चूर्ण बनाकर शहत वा गुड के साथ दस मोदक बनावै । यह विरेचन राजा वा धनी लोगों के पक्ष में बहुत हित है ।

त्रिवृद्धैमवतीश्यामानीलिनीहस्तिपिप्पली
समूलापिप्पलीसुस्तमजमोददुरालभा ।
अर्द्धांशिकंपलंशुष्यागुडस्यपलविंशतिम्
चूर्णितंमोदकान्कुर्यादुदुम्बरफलोपमान् ।
हिगुसौवर्चलव्योपयवानीविडङ्गरकैः ॥
यचाजगन्धात्रिफलाचन्यचित्रकधान्यकैः
मोदकान्वेष्टयेच्चूर्णैस्तान्सतुम्बुरुदाडिमैः
त्रिक्वंक्षणहृद्दास्तिकोष्टाशीःश्रीहृत्क्षौलनाम् ।
हिकाकासारुचिश्वासफोदावर्तिनांशुभाः

अर्थ—लाल निसोध, सफेदवच, श्यामानिसोध, नीलिनी, गजपीपल, पीपल, पीपलामूल, मोधा, अजमोद, जवासा, ये सबआधे आधे पल लेवै । सोंठ एक पल और गुड बीस पल इन सबका चूर्ण करके गूलर के बराबर मोदक बनालेवै । पीछे हींग, संचरनमक, त्रिकुटा, अजवायन, वाय विडंग, जीरा, वच, अजगंध, त्रिफला, चन्य, चीता, धनियाँ इन सब का चूर्ण करके ऊपरके मोदकोंको इस चूर्ण में लपेट देवै, अथवा

तुम्बरू और अनार के छिलके के चूर्ण में लपेट देवे । इसके सेवन करने से त्रिक, वंक्षण, हृदय, वस्ति, कोष्ठ, अर्श और प्रीहा इनका शूल दूर होजाता है । हिचकी खांसी, अरुचि, श्वास, कफ और उदावर्त वालों के लिये भी ये हित है ।

शुण्ठीमरिचपिप्पल्यःकार्षिकाःस्युःपृथक् पृथक् ॥ द्विगुणेशर्करैलेचसातलास्याच्च सुगुणा । नीलिनीमष्टगुणितांद्विगुणितानि तथा ॥ दन्तीद्रवन्तीस्वकूष्माणमेकंचात्र प्रदापयेत् । अस्मादर्द्धपलंचूर्णाद्विद्यात्मा शिकसंयुतम् ॥ शीतोदकानुपानन्तुनिर पायंविरेचनम् ।

अर्थ—सोंठ, कालीमिरच, पीपल, ये तीनों एक २ कर्प लेवै, शर्करा दो कर्प इलायची दोकर्प, सातला चार कर्प, नीलिनी आठ कर्प, दन्ती षष्ठीसकर्प, द्रवन्ती और दालचीनी एक एक शाण लेकर सब का चूर्ण बनालेवै, इस चूर्ण में से आधापल शाहत के साथ सेवन करै, ऊपर से ठंडा पानी पीले तौ उपद्रव रहित विरेचन होताहै

भिन्न भिन्न ऋतु के विरेचन ।

त्रिवृतांकोटजंबीजंपिप्पलीविश्वभेषजम् समाद्धीकरमशौद्रंवर्यास्वेतद्विरेचनम् ॥

त्रिवृद्दुरालभासुस्ताशर्करोदीच्यचन्दनम् द्राक्षाभ्युनासयप्याहशीतलंजलदात्य

ये । त्रिवृतांचित्रकंपाठांअजाजीसरलंबचा म् ॥ स्वर्णदुग्धीचहेमन्तेपिप्लातूष्णाभ्युना

पिवेत् । शर्करात्रिवृतातुल्याप्राप्सकाले विरेचनम् । द्रुपांसप्तश्रांश्यामांद्रवन्तीक

दुरोहिणीम् । स्वर्णक्षीरीश्वसंचूर्ण्यगोम् त्रेभावयेत्यहम् ॥ एपसर्वतुकोयोगःस्त्रि ग्धानांमलदोषहृत् ॥

अर्थ—निसोथ, इन्द्रजो, पीपल, सोंठ इनके चूर्ण को दाख के रस और शाहतके साथ लेवै यह विरेचन वर्षा ऋतु में हित है निसोथ, जवासा, मोथा, शर्करा, नेत्रवाला, रक्तचन्दन, और मुलहटी इनके चूर्ण को द्राक्षा के शीतल कषाय के साथ पानकरै तौ शरदऋतु में अच्छा विरेचन होता है । हेमन्तऋतु में निसोथ, चीता, पाठा, जीरा, सरलकाष्ठ, वच और स्वर्णक्षीरी इनके चूर्ण को गरमजल के साथ पानकरै । ग्रीष्मऋतु में विरेचन के लिये निसोथ और चीनीको समानभाग मिलाकर देवै । हाउवेर, सातला, श्यामनिसोथ, द्रवन्ती, कुठकी और स्वर्णक्षीरी इन सब का चूर्ण कर के तीन दिनतक गोमूत्र में भिगो देवै । इस का सेवन सब ऋतुओं में होसक्ता है, स्निग्ध कर के इस विरेचन को देने से मलके दोष दूर होजाते हैं ॥

त्रिवृच्छ्यामेदुरालम्भावत्सकंहस्तिपिप्पली । नीलिनीत्रिफलागुस्तंकडुकाचसुचू गितम् ॥ सर्पिर्मासरसोष्णाभ्युक्तंपा गितलंततः । पिवेत्सुखतमंश्वेतद्रूक्षाणाम पिशस्यते ॥ त्र्युपणंत्रिफलांहिगुकार्षि कंत्रिवृतापलम् । सौवर्चलार्द्धकर्पश्चप लार्धचाम्लवेतसात् ॥ तच्चूर्णशर्करातु ल्यंमयेनाम्लेननापिवेत् ॥ गुल्मपाश्याति त्रुत्सिद्धंजीर्णेषांघ्रादसौदनम् ॥

अर्थ—दोनों प्रकारकी निसोथ, जवासा, इन्द्रजौ, गजपीपल, नालिनी, त्रिकुला मोथा और कुटकी इन सब का चूर्ण करके, घृत मांसरस वा उष्णजलके साथ दो ताले सेवन करें। यह विरेचन रूक्ष व्यक्तियों को भी सुखपूर्वक होता है। त्रिकुला, त्रिकुटा और हींग एक २ कर्ष निसोथ एक पल, संचल नमक आधाकर्ष, अम्लवेत आधा पल, इस सबके बराबर चीनी मिलाकर मद्य वा अम्ल के साथ पानकरे। इस के सेवन से गुल्म-रोग और पार्श्ववेदना दूर हो जाती है। औषध के पचनेपर मांसरस और भातका भोजन करे ॥

सप्तलांशिकलांदन्तीत्रिवृतांव्योपसैन्धवो
 कृत्वाचूर्णितुसप्ताहंभाव्यमामलकीरसे ॥
 तद्योज्यंतर्पणेषुपेपिशितेरागयुक्तिषु ॥
 तुल्याम्लंत्रिवृताफलकंसिद्धं गुल्महरं घृतम्
 मूल्यंशमामात्रिवृतयोःपचेदामलकैःसह ॥
 जलेतेनक्रपायेणपक्त्वासर्पिःपिवेन्नरः ।
 निर्वृहेणतयोयुक्त्वासिद्धसर्पिःपिवेत्तथा ।
 साधितवापयस्ताभ्यांमुखतेनविरिच्यते ॥

अर्थ—सातला, त्रिकुटा, दन्ती निसोथ त्रिकुटा, सैन्धवमक इनका चूर्ण करके सात दिवसतक आंवले के रस में भिगोवै। इसका तर्पण, यूप, गांस और रागपाठवादि द्वारा प्रयोग करे। कांजी और घृत समान भाग तथा चतुर्थांश निसोथ मिलाकर पाक करे यह घृत गुल्मनाशक है। दोनों प्रकार की निसोथ को आंवलों के साथ अठगुने जल में पाक करे चौथाई

शेष रहने पर छान कर उस क्वाथ में घृत पकावै। अथवा इन दोनों के निर्यूह में केवल दूध वा घी पकाकर सेवन करने से सुखपूर्वक विरेचन होता है।

जलद्रोणेपचेदष्टैत्रिवृन्मुष्टीतसन्नस्वात् ॥
 पादशेषंपकायंतंशीतंगुडतुलायुतम् ॥ स्त्रि
 गंधस्थान्यंघटैक्षौद्रापिप्पलीफलाचित्रकैः ॥
 मल्लिभैविधिनामासज्जातंतन्मात्रयापिपेत् ॥
 ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं गुल्मश्वपधुनाशनम् ॥

अर्थ—नखसहित आठ मुट्ठी निसोथ को एक द्रोण जल में पकावै, जब चौथाई शेष रह जाय तब छानले। जब यह क्वाथ ठंडा होजाय तब उस में एक तुला गुड मिलावै। फिर एक चिकने घंडे के भीतर शहत, पीपल, मेनफल और चीते का लेप करके उस में इसे भर दे एक महीने पीछे मात्राके अनुसार इसका सेवन करे तो ग्रहणी पाण्डुरोग, गुल्म और सूजन दूर होजाती है। सुरांवात्रिवृतांषादकिष्वांतत्कापसंपुनाम् यवैःश्यामात्रिवृताथेस्निग्धैःकुल्मापमन्मसा ॥ आसुतंपडहंपल्लेजातंसांभीरकंपिबेत् ॥ भृष्टान्वासतुपान्शुद्धान्वांस्तचूर्णसंपुतान् ॥ आसुतानन्मसातद्रात्पेज्जातंतुपोदकम् ॥ तयामदनकल्पोत्यान्पाडवादीन्पृथग्दश ॥ तिवृच्छूर्णेनसंछयत्रिरेकार्पप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—सुरा, त्रिवृता और चतुर्थांश सुरा धीज इनको पकाकर सेवन करे। अथवा दोनों प्रकार की निगोथके क्वाथमें जीओं को अच्छी तरह सिजाकर छानलेवे फिर

इस क्वाथमें कुल्माष मिलाकर छःराततक जौके ढेर में गाढ़ देवै । यह सौंवार विरेचन से हित होता है । अथवा छिडकों समेत जौ को मुनवाकर इतनीही निसोथ मिलाकर जल में भरकर जौ के ढेरमें गाढ़ देवै । छः दिन पाँछे ये तुपोदक तयार होता है । इसी तरह मदन कल्पोक्त दस प्रकार के पाडवादि निसोथ के चूर्ण में मिलाकर विरेचन के लिये देवै । वे ये हैं यथा पाडव राग, अवलेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पण, पानक, मांसरस, यूप और मय ।

उपसंहार ।

त्यक्सेसराभ्रातकदादिमैलासितोपलामा
क्षिकमातुलुङ्गैः । मयैस्तथान्यैश्चमनोऽनु
कूलैर्युक्तानिदेयानिविरेचनानि ॥ शीताम्बु
नापीनघतश्चतस्यसिञ्चन्मुखंछर्दिविघात
हेतोः ॥ दृचाश्चमृत्पुष्पफलमवाल्लादम्लं

चदद्यादुपजिघ्रणार्थम् ॥

अर्थ..... दालचीनी, नागकेशर, आमडा, अनार, इलायची, चीनी, शहत, विजौरा और मय अथवा अन्य मनोऽनुकूल द्रव्यों में मिलाकर विरेचन देना चाहिये । विरेचन-कारक द्रव्य के पान करने से पीछे वमन न होने पाने, इसलिये ठंडे जलसे मुख को धोता रहै । तथा सूंघनेके लिये हृदय प्रिय मिठी फूल, फल और पत्ते देता रहै ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

एकोम्लादिभिरष्टौ चदशद्वौसैन्धवादिभिः
मृत्रेऽष्टादशयष्टौ द्वौ जीवकादौ चतुर्विंश ॥
क्षीरादौ सप्तलेश्चोचत्वारः सितयापिच ।

पानकादिपुष्पैश्चैवपट्टतापंचमोदकाः ॥
चत्वारश्चघृतक्षीरेद्वौ चूर्णे तर्पणा तथा ।
द्वौ मद्येकाञ्जिकेद्वौ चदशान्यपाडवादिषु ।
श्यामायासिचृतायाश्चकल्पेऽस्मिन्समुदा
हृतम् । शतं दशोचरासिद्धयोगानां परम
पिणा ॥

अर्थ.... इस अध्याय में निसोथ के एक सौ दस कल्पवर्णन किये हैं । अम्लादि के नौ, सैधवादिके वारह, मूत्र के अठारह, मु-लहठी के दो, जीवकादि के चौदह, क्षीरादि के सात, लेह आठ, शर्करा के चार, पानकादि के पांच, ऋतुओं के छः, मोदक के पांच, घृत और दूध चार, चूर्ण और तर्पण दो, मय के दो और कांजी के दो और पाडवादि के दस ॥ इस तरह एक सौ दस प्रयोग वर्णन किये गये हैं ।

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचित-
तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां
कल्पस्थाने श्यामात्रिचृत्कल्पो नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातश्चतुरंगुलकल्पं व्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माद्भगवान्नात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम चतुरंगुल कल्पकी व्याख्या करेंगे ।

चतुरंगुलके अन्यनाम ।

आरग्वधोराजवृक्षः शम्पाकश्चतुरंगुलः

मग्रहःकृतमालश्चकर्णिकारोऽवघातकः॥

अर्थ—आरग्वध, राजवृक्ष, शम्पाक चतुरंगुल, मग्रह; कृतमाल, कर्णिकार और अविघातक ये अमलतास के संस्कृत नाम हैं

अमलतास के गुण ॥

ज्वरहृद्दोगवातासृग्गुदावर्तीदिरोगिणु ॥

राजवृक्षोऽधिकपथमोमृदुर्मधुरशीतलः ।

मालेवृद्धेक्षतेक्षीणेसुकुमारोचमानवे ॥ यो

ज्योमृद्वनपापित्वाद्दिशेषाचतुरंगुलः ।

अर्थ....ज्वर, हृदयरोग वातरक्त और उदावर्तीदि रोगों में राजवृक्ष अधिकपथ्य है, यह मृदु, मधुर और शीतल है । यह

मृदु और अनपायी (निरुपद्रव्यवृत्ता) है इस से इसका विरेचन बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण और सुकुमारों के लिये बहुत हित है ॥

अमलतासके रखनेकी विधि

फलकालेफलंतस्यग्राह्यपरिणतश्चयत्पा-

पांगुणवतांभारंसिक्तासुनिधापयेत् ।

सप्तरात्रात्समुद्भृत्यशोषयेदातपेभिपक्व ।

ततोमज्जानमुद्भृत्यशुभोभाण्डेनिधापयेत् ।

अर्थ—जिस ऋतु में इसके फल लगते

हैं उन में पके हुए फलों को लाकर बाल

में गाढ़ दें । सात दिन पीछे निकाल कर

धूपमें सुखालेवै तदनन्तर इनका गूदा निकाल

कर एक झुड़ा पात्र में भर दें ॥

अमलतासके कल्प ॥

द्राक्षारसयुतांदेयोदाहोदावर्चपीडिते ॥

चतुर्दशमुखवालपाद्द्वद्वादशवार्षिके ।

चतुरंगुलमज्जस्तुमरुतंवायवाञ्जलिम् ॥

सुरामण्डेनसंपुक्तमधवाकोलशीघुना ॥

दधिमण्डेनवायुक्तरसेनामलकस्यवा ॥

कृत्वाशीतकपायंतपिवेत्सौवीरकेणवा ।

त्रिवृन्मज्जस्तथाकलकंतकपायेणवापिवेत्

तथाविवृक्कपायेणलवणक्षौद्रसंयुतम् ॥

अर्थ—दाह और उदार्च से पीडित

चार वर्ष के बालकसे लेकर बारह वर्ष के

बालक तक द्राक्षारस के साथ सिद्ध किया

हुआ अमलतास का गूदा बहुत हित है ।

अमलतासके दो पल वा आधसेर गूदे को

सुरामण्ड, वा कोलशीघु, वा दधिमण्ड वा

आंवले के रसके साथ पान करें । अथवा

इस के शीतकपाय को सौवीरक के साथ

पान करें । अथवा अमलतास के गूदे को

घोटकर उस के काथ के साथ पीवै । अथवा

बेलके काथ के साथ संधानमक और शहत

मिलाकर पीवै ॥

कपायेणायवातस्यभिवृच्चूर्णगुंडान्वितम् ॥

साधयित्वाशर्नेलेहलेह्यग्नाप्रयानरम् ॥

चतुरंगुलसिद्धादिक्षीराद्यदुदियाद्घृतम्

मज्जःकलकेनधात्रीणारसंतत्साधितंपिवेत्

तदेवदशमूलस्यकुल्लथानांपवस्यच ॥

कपायेसाधितंककैःसर्पिःश्यामादिभिः

पिवेत् ॥ दन्तीकायोञ्जलिमज्जःशम्पाक

स्यगुलस्यच ॥ कृत्वामासाधमासस्थपरि

ष्टंपायमेतच्च ॥ यस्ययत्पानगन्नञ्चदृश्येया

द्वपिवाकडु ॥ लवणवाभवेत्तनयुक्तं दद्यात्

द्विरेचनम् ॥

अर्थ—अमलतास के काथ में निसीथ का

चूर्ण और गुड डालकर देहधत् धीरे धीरे

पाक करके चटावें । अमलतास से अठगुना दूध और चौगुना जल मिलाकर पाक करै जब पानी जलजाय तब उतरकर छान लेंवें और इस दूध को जमादेवै फिर इसका घी निकाल कर अमलतास के गूदे और आमले के रस के साथ सिद्ध कर के पान करै ॥ अथवा उसी घृतको दशमूल, कुलर्था और जौ के काथ में श्यामादि निसोध का कल्क ढालकर सिद्ध करके पान करै । अथवा दन्ती का काथ एक अजली, अमलतासका गूदा और गुड इनको मिलाकर पन्द्रह दिन तक एक पात्र में भरा रहने दे फिर इस अरिष्ट को पान करावै । जिस मनुष्य को जैसा अन्नपान मधुर, कटु या नमकीन अच्छा लगता हो, उसका उसी में मिला कर विरेचन देना चाहिये ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकाः ॥

द्राक्षारसेसुराशांघ्वादीधिनचामलकीरसे।
सौवीरकृकपायाभ्वाविल्वशम्पाकयोस्त
था ॥ लेहोऽरिष्टोघृतेद्वयोगाद्वादशकी
र्तिनाः चतुरंगुलकल्पेऽस्मिन्सुकुमाराः
मकीर्तिताः

अर्थ—इस अध्याय में अमलतास के वा-
रह कोमल प्रयोग वर्णन किये गये हैं, यथा
दास्य के रस, सुर, कोलशांघु, दही आंवले
का रस, सौवीरक, निसोध, विल्व और
शम्पाक इनके एक एक कल्प, लेह एक
अरिष्ट एक और घृत दो । इस तरह ये
चारह कल्प हैं ॥

इतिश्री भाषाटीकाश्रितायां अग्निवेशविराचि-
तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां
कल्पस्थाने चतुरंगुलकल्पो नामा
ष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

—*—
नवमोऽध्यायः ।

अथातस्तिल्वककल्पव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम तिल्वक कल्पकी व्याख्या करेंगे।
लोधके नाम ।

पिल्वकस्तुमत्तरोध्रोवृहत्प्रस्तिरीटकः ॥

अर्थ—तिल्वक लोध्र या रोध्र, वृहत्प्र
और तिरीटक ये लोध्र के संस्कृतनाम हैं।

लोध्रकल्पः ।

तस्यमूलत्वचंशुष्कामन्तर्वल्कलघर्जिताम्।

चूर्णयेच्चुत्रिधाकृत्वाद्वाभागौश्च्योतयेत्ततः

लोध्रस्यैवकपायेणतृतीयंतेनभावयेत् ।

भागंतं दशगूलस्यपुनःकाथेनभावयेत् ।

शुष्कचूर्णपुनःकृत्वाततजर्दं प्रयोजयेत् ॥

दधितकसुरामण्डमूर्ध्वदरशीधुना ॥ रसे

नामलकानांवाततःपाणितलेपिवेत् ॥

अर्थ—लोध्रकी जड़में से काठ को छोड़
कर केवल छाल निकालकर उसके तीन
भाग करै । एक भाग को सुखाकर चूर्ण
करलेवे, और शेष दो भागों का क्वाथकरै
फिर इस क्वाथ की उक्त चूर्ण में भावना
देवै । फिर दशमूल के क्वाथ की भावना
देवै । फिर इसको सुखाकर चूर्ण बनाकर
खछोड़े इसमें से दो तोले दही, मठा, सुर-

सुरामन्द, गोमूत्र, कोलशीधु वा आवले के रस के साथ पानकरै ॥

मेपशृंग्यभयाकृष्णाचित्रकैःसलिलेश्रुते॥

मरुजानसुनुपात्तचजातंसौवीरकंयदा॥

भवेदञ्जलिनातस्यलोध्रकल्कंपिबेत्तदा॥

सुरालोध्रकपायेणजातांपक्षस्थितांपिबेत्

दन्तींचित्रकयोर्द्रोणिसलिलस्याढकंपृथक्

समुत्काथयगुडस्यैकांतुलारोश्रंस्यचाञ्जलि

म्।आवपेत्तपरंपक्षान्मद्यपानाद्विरेचनम्॥

अर्थ—मेंढासिंगी, हरडं, पीपल और चीता

इन के क्वाथ मे जौ को उवाळकर टपका

ले इससे सौवीरक बनताहै । यह सौवीरक

आधसेर तथा इसमें मात्राके अनुसार लोध

मिलाकर पानकरै अथवा सुरा और लोध

का क्वाथ मिलाकर पन्द्रह दिनतक धरा

रहने देवै । पीछे इसका सेवन करै । अथवा

एक एक आढक दन्ती और चीतेको अलग

अलग एक एक द्रोण जल में क्वाथ करै,

फिर इस क्वाथ में एक तुला गुड और

आधसेर लोध मिलाकर धरारहने दे इस

मद्य के पान करने से विरेचन होता है ।

तिल्वकस्यकपायेणदशकृत्वः सुभाविताम्

मात्रांकम्पिल्लकस्यैकपायेणपुनःपिबेत्॥

चतुरंगुलकल्पेनलेहोऽन्यःकार्यएवच ।

त्रिफलायाःकपायेणससर्पिर्मधुफाणितः॥

लोध्रचूर्णयुतःसिद्धोलेहःश्रेष्ठंविरेचनम् ।

अष्टाष्टौत्रिवृतादीनांपृथङ्मुष्टांस्तुमन्नखान्

द्रोणेऽर्पासाधयेत्पादशेषमस्थंघृतात्पचेद्

पिष्टैस्तैरेवविल्वांशैःसमूत्रलवणैरथ ॥

ततोमात्रांपिबेत्कालेश्रेष्ठमतीद्विरेचनम् ।

लोध्रकल्केनमूत्राम्ललवणैश्चपचेद्घृतम्

चतुरंगुलकल्पेनसर्पिर्पीद्वैचक्ष्माथयेत् ॥

अर्थ—लोध के क्वाथ में लोध के चूर्ण

को दस भावनादेवै फिरइसी चूर्ण में कवीले

के क्वाथ की दस भावना देवै फिर इसे

पान करै । अथवा अमलतास के लेह की

तरह इस का भी लेह बनाकर चाटै । अथवा

त्रिफला के क्वाथ में घी, शहत, राव और

लोध का चूर्ण डालकर लेह बनालेवै । यह

विरेचन बहुत अच्छा है । तृट्टादि द्रव्यों

की सनख आठ आठ मुडी लेकर एक

द्रोण जल में पकावै चौथाई शेष रहने पर

इस क्वाथ में घृत पकावै । अथवा उनही

तृट्टादि द्रव्यों को एक एक तोले पी-

सकर गोमूत्र और सेंधे नमकके साथ सिद्ध

करके पान करै । अथवा चतुरंगुलकी तरह

लोधका कल्क, गोमूत्र, खटाई और नमकके

साथ दो रीति से पाक करै [अमलतास के

कल्कका पिछला प्रकरण देखो] ।

तिल्वकस्यकपायेणकल्केनचसर्करः॥

सघृतःसाधितोलेहःसचश्रेष्ठंविरेचनम् ॥

अर्थ—लोधका कल्क और क्वाथ, मिश्री

और घी इनको एकत्र पकाकर लेह बनावै

यह सर्वोत्तम विरेचन है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

पञ्चदध्यादिभिस्त्वेकःपुरासौवीरकेणच

एकोऽरिष्टस्तयायोगएकःकम्पिल्लकेनच

लेहस्त्रयोघृतेनापिचत्वारःसम्पदर्शिताः।

योगास्तेलोध्रमूलानांकल्पेपोडरासंमताः

अर्थ—इस अध्याय में लोध के सोलह

कल्प वर्णन किये गये है, यथा दही तक सुरामण्ड, गोमूत्र, कोलशीधु और आंवटेक रस का एक एक, मुराका एक सौवीर का एक, अरिष्ट का एक, कर्वाल के एक, डेह के तीन और धी के चार ।

इतिश्रीमापाटीकान्वितायांभग्नवेशविराचि

तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने लोभ्र कल्पो नाम

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

—○*○—

दशमोऽध्यायः ।

अथातोमहावृक्षकल्पव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वॉल कि-

अथ हम महावृक्ष कल्प की व्याख्या करेंगे ॥

विरचनानां सर्वेषामुधातीक्ष्णतमामता ॥

संघातंतुभिनत्याधुदोपाणांकष्टविभ्रमा ॥

तस्मान्नपामृदांकोप्टेप्रयोक्तव्याकदाचन

नदोपनिचयेचाल्पेसतिवान्यपरिभ्रमे ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार के विरेचनकर्त्ता

द्रव्योंमें सेहूड अत्यन्त तीक्ष्ण है । यह

दोषों के संघात को शीघ्रही नष्ट करदेता है

यह अत्यन्त कष्टकारक विभ्रम उत्पन्न करता

है, इस लिये इसे मृदु कोष्ठ वाले को कभी

न देना चाहिये, अल्पदोषों में भी इसका

देना ठीक नहीं है जो रोग अन्य विरेचन

श्रेय साध्य हैं उनमें भी इसका देना ठीकनहीं है

सेहूड साध्य रोग ॥

पाण्डुरोगोदरेगुल्मकुष्ठेद्वीविपार्दिते ॥

श्वयथौमधुमेहेचदोषविभ्रान्तचेतसि ॥

रोगैरेवम्बिर्धप्रस्तंज्ञात्वासमाणमातुरम् ॥

प्रयोजयेन्महावृक्षसम्पयसलघुचारितः ॥

सद्योनुदतिदोषाणामहान्तमपिसञ्चयम् ॥

अर्थ—पांडुरोग, उदररोग, गुल्म, कुष्ठ,

द्वीपविपारोग, सूजन, मधुमेह, उन्माद, तथा

ऐसेही अन्यरोगों से पीडित मनुष्य यदि

बलवान् होतौ सेहूड का प्रयोग करे ॥

सेहूड के अच्छी तरह प्रयोग किये जाने

पर दोषों का बड़ा संचय भी शीघ्रही दूर

हो जाता है ।

सेहूड के भेद ।

द्विविधःसमतोयेश्चबहुभिश्चैवकण्टकैः ॥

सुतीक्ष्णैःकण्टकरल्पैःप्रवरौबहुकण्टकैः ॥

अर्थ—सेहूड दो तरह का होता है

एक प्रकार का बहुत कांटों से युक्त होता

है, दूसरी तरह के में बहुत पौने थोड़े कांटे

होते हैं, परन्तु इन दोनों में बहुत से कांटों

से युक्त अच्छा होता है ।

सेहूडकेनाम ॥ -

सनामास्त्रुग्गुडानन्दासुधानिस्त्रिशपत्रक

अर्थ—सुक, गुडा, नन्दा, सुधा और

निस्त्रिशपत्र ये सेहूड के संस्कृत नाम हैं ॥

सेहूडकेलानेकीविधि ।

तंविपाठ्याहरेत्सीरंशस्त्रेणमतिमान्भिपक्

द्विवर्षवात्रिवर्षवाशिशिरान्तेविशेषतः

विल्वादीनांवृहत्यावाकण्टकार्यापिचकशः

कपायंतंममांशेनकृत्वाद्वाहोरपुशोपयेत् ॥

ततःकोलसमांमंत्रांपिबेत्सौवीरकेणवा

तुपोदकेनकोलानरंसेनामलकस्पवा ॥

सुरयादिभिषण्डेनमातुल्यरसेनवा ।

अर्थ—दो या तीन वर्ष के पुराने सेहंड को शस्त्र से चीरकर उसमें से दूध निकाले । दूध-निकालने का समय विशेष करके शिशिरऋतु का अन्त है । दूध को निकाल कर बेल, बृहती और कटेरी क्रम से इन के क्वाथ में उसका समानभाग मिलाकर अंगारों पर सुखावै । पीछेसे इसमें से झाड़ीवेर की बराबर सौवीरफके साथ पानकरै, अथवा तुषोदक, या वेर के रस या आंवले के रस के साथ पान करै, अथवा सुरा दधिमंड वा विजैरे के रस के साथ पान करै ।

सातलांकाञ्चनक्षीरश्यामादीनिकदुत्रिकम् ॥ यथोपपत्तिसप्ताहंसुधाक्षीरेणभावयेत् । फालमात्रघृतेनातःपिवेन्मांसरसेनवा ॥ श्यूपणांत्रिकलादन्तींचित्रकांत्रिघृतांतथा । स्तुक्रुक्षीरभाविंतसम्यग्विदद्या श्शुडपानके ॥ त्रिवृतारग्वधदन्तींशङ्खिनीसप्तलांसमाम् । गोमूत्रेरजनीकृत्वाशोपयेदातपेततः ॥ सप्ताहंभावयित्वैवंस्तु वंक्षीरेणापरंपुनः । सप्ताहंभावयेत्शुष्कं ततस्तेनापिभावितम् ॥ गन्धमाल्यंतदाद्यापभावृत्यपटमेवच । सुखमाशुविरिच्यन्तेमृदुकोष्ठानराधिपाः॥

अर्थ—सातला, स्वर्णक्षीरी, श्यामादि द्रव्य और त्रिकुटा इनको विधिपूर्वक सात दिनतक सेहंड के दूध की भावनादेवै । फिर वेर की बराबर उस में से गोली बनाकर घी वा मांसरस के साथ पानकरै । अथवा त्रिकुटा, त्रिकला, दन्ती, चीता, नि- सोध इनको सेहंड के दूध की भावना

देकर गुड़ के शरवत के साथ पान करावै। अथवा निसोध, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सबको समानभाग लेकर रात्रिके समय गोमूत्र में भिगो देवै । प्रातः काल घूप में सुखाळेवै। इस तरह सातदिन तक भावना देकर पीछे सात दिवस तक सेहंड के दूधकी भावना देवै इस चूर्ण को सुगंधित फूल में रखकर सूँधै, सूँधते समय शरीर पर मोटा वस्त्र धारण करले । इस के सेवन से कोमल कोष्ठवाले राजालोगों को भी सुखपूर्वक विरेचन होता है ।

श्यामात्रिवृत्कपायेणस्तुक्रुक्षीरघृतफाणितैः । लहंपक्त्वाविरेकार्थंलेहयेन्मात्रया नरम् ॥ पाययेत्सुधाक्षीरंयूपैर्मांसरसैर्घृतै भावितानशुष्कमत्स्यान्वामांसंवाभक्षयेन्नरः ॥ क्षीरेणामलकैःसर्पिश्चतुरंगुलवत्पचेत् । सुरांवाकारयेत्क्षीरघृतंवापूर्ववत्पचेदिति ॥

अर्थ—श्यामानिसोध के क्वाथ में सेहंड का दूध, घी और राव पकाकर मात्राके अनुसार लेहन करै तौ विरेचन होता है । सेहंड के दूध को घी, मांसरस वा यूप के साथ पान करै अथवा सेहंड के दूधकी सूखी म- छली वा मांस में भावना देकर सेवन करै । अथवा अमलतास की तरह सेहंड के साथ पकायेहुए दूध का घी निकालकर उस में चौथाई सेहंड का दूध, और चौगुना आं- वले का रस मिलाकर पकावै । अथवा सेहंडका दूध और सुरा समान भाग मिला- कर रखवै अथवा पूर्वकी तरह घृत पका कर सेवन करे ॥

कल्प वर्णन किये गये हैं, यथा दही तत्र सुरामण्ड, गोमूत्र, कोलशाधु और आंवलेके रस का एक एक, मुराका एक सौवीर का एक, अरिष्ट का एक, कबीले का एक, डेह के तीन और घी के चार ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविराचि

तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां

कल्पस्थाने लोघ कल्पो नाम

नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथातोमहावृक्षकल्पव्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माद्भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोलें कि—
भव हम महावृक्षकल्प की व्याख्या करेंगे ॥

विरचनानांसर्वेषांसुधातीक्ष्णतमामता ॥

संघातंतुभिनत्याधुदोपाणांकष्टविभ्रमा ॥

तस्मान्नपापृदांकोष्ठेप्रयोज्यक्तव्याकदाचन

नदोपनिचयेचाल्पेसतिव्यान्यपरिक्रमे ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार के विरेचनकर्त्ता

द्रव्योंमें सेहुड अत्यन्त तीक्ष्ण है । यह

दोषों के सघात को शीघ्रही नष्ट करदेता है

यह अत्यन्त कष्टकारक विभ्रम उत्पन्न करता

है, इस लिये इसे मृदु कोष्ठ वाले को कभी

न देना चाहिये, अल्पदोषों में भी इसका

देना ठीक नहीं है जो रोग अन्य विरेचन

क्षेत्र साध्य हैं उनमें भी इसका देना ठीकनहींहै

सेहुड साध्य रोग ॥

पाण्डुरोगोदरगुल्मकुष्ठद्वीविषादिते ॥

श्वयथोमधुमेहचदोषविभ्रान्तचेतसि ॥

रोगैरेवम्बिधैर्ग्रस्तंज्ञात्वासमाणमातुरम् ॥

प्रयोजयेन्महावृक्षसम्यक्सद्यवचारितः ॥

सद्योनुदतिदोषाणामहान्तमपिसञ्चयम् ॥

अर्थ—पाण्डुरोग, उदररोग, गुल्म, कुष्ठ,

द्वीविषारोग, सूजन, मधुमेह, उन्माद, तथा

ऐसेही अन्यरोगों से पांडित मनुष्य यदि

बलवान् होतौ सेहुड का प्रयोग करे ॥

सेहुड के अच्छी तरह प्रयोग किये जाने

पर दोषों का बडा संचय भी शीघ्रही दूर

हो जाता है ।

सेहुड के भेद ।

द्विविधःसमतोयेश्चबहुभिश्चैवकण्टकैः ॥

सुतीक्ष्णैःकण्टकरल्पैःप्रवरोचहुकण्टकैः ॥

अर्थ—सेहुड दो तरह का होता है

एक प्रकार का बहुत काटों से युक्त होता

है, दूसरी तरह के में बहुत पौने थोड़े काटे

होते हैं, परन्तु इन दोनों में बहुत से काटों

से युक्त अच्छा होता है ।

सेहुडकेनाम ॥

सनामास्तुगुडानन्दासुधानिस्त्रिशपत्रक

अर्थ—स्तुक, गुडा, नन्दा, सुधा और

निस्त्रिशपत्र ये सेहुड के संस्कृत नाम हैं ॥

सेहुडकेलानेकीविधि ।

तंविपाट्याहरत्सीरंशस्त्रेणमतमान्भिपक्व

द्विवर्षवात्रिवर्षवाशिशिरान्तेविशेषतः

विल्वादीनांष्टहत्यावाकण्टकार्यापिचैकशः

कपायंतंममांशेनकृत्वाद्वाोरपुशोपयेत् ॥

ततःकोलसमांमात्रांपिबेत्सौवीरकेणवा ।

तुपोदकेनकोलानारसेनामलकस्यवा ॥

सुरयादधिमण्डेनमातुल्लक्षरसेनवा ।

अर्थ—दो या तीन वर्ष के पुराने सेहंड को शस्त्र से चीरकर उसमें से दूध निकालें । दूध-निकालने का समय-विशेष करके शिशिरऋतु का अन्त है । दूध को निकाल कर बेल, वृहती और कटेरी क्रम से इन के क्वाथ में उसका समानभाग मिलाकर अंगारों पर सुखावें । पीछेसे इसमें से झाड़ोवेर की बराबर सौवीरकके साथ पानकरें, अथवा तुषोदक, या वेर के रस या आंवले के रस के साथ पान करै, अथवा सुरा दधिमंड वा त्रिजैरे के रस के साथ पान करै ।

सातलाकाञ्चनक्षीरीश्यामादीनिकटुत्रिकम् ॥ यथापचितसप्ताहसुधाक्षीरेणभावयेत् । कालमात्रं घृतेनातःपिवेन्मांसरसेनवा ॥ द्यूपणात्रिकलादन्तीचित्रकं त्रिघृतांतथा । स्तुक्षीरभावितंसम्यग्बिदद्याद्गुडपानके ॥ त्रिवृत्तारग्वधदन्तीशङ्खनीसप्तलांसमाम् । गोमूत्रेरजनीकृत्वाशोपयेदातपेततः ॥ सप्ताहंभावयित्वंस्तुवक्षीरेणापरंपुनः । सप्ताहंभावयेत्शुष्कं ततस्तेनापिभावितम् ॥ गन्धमाल्यंतदाष्ट्रायमावृत्यपटमेव च । सुखमाशुविरिच्यन्तेमृदुकोष्ठानराधिपाः ॥

अर्थ—सातला, स्वर्णक्षीरी, श्यामादि द्रव्य और त्रिकुटा इनको विधिपूर्वक सात दिनतक सेहंड के दूध की भावनादेवै । फिर घेर की बराबर उस में से गोली बनाकर घी वा मांसरस के साथ पानकरै । अथवा त्रिकुटा, त्रिकला, दन्ती, चीता, निःसोथ इनको सेहंड के दूध की भावना

देकर गुड के शरबत के साथ पान करावै । अथवा निसोथ, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सबको समानभाग लेकर रात्रिके समय गोमूत्र में भिगो देवै । प्रातः काल घूप में सुखावै । इस तरह सातदिन तक भावना देकर पीछे सात दिवस तक सेहंड के दूधकी भावना देवै इस चूर्ण को सुगंधित फूल में रखकर सूँघे, सूँघते समय शरीर पर मोटा बख धारण करले । इस के सेवन से कोमल कोष्ठवाले राजालोगों को भी सुखपूर्वक विरेचन होता है ।

श्यामात्रिवृत्कपायेणस्तुक्षीरघृतफाणितैः । लेहंपक्त्वाविरेकार्थंलेह्येन्मात्रया नरम् ॥ पाययेत्सुधाक्षीरंयूपैर्मांसरसंघृतैर्भाषितान्शुष्कमत्स्यान्वामासंवाभक्षयेन्नरः ॥ क्षीरेणामलकैःसर्पिश्चतुरंगुलवत्पचेत् । सुरांवाकारयेत्क्षीरंघृतंवापूर्ववत्पचेदिति ॥

अर्थ—श्यामानिमोथ के क्वाथ में सेहंड का दूध, घी और रात्र पकाकर मात्राके अनुसार लहन करै तौ विरेचन होता है । सेहंड के दूध को घी, मांसरस वा यूप के साथ पान करै अथवा सेहंड के दूधकी सूखी मछली वा मांस में भावना देकर सेवन करै । अथवा अमलतास की तरह सेहंड के साथ पकायेहुए दूध का घी निकालकर उस में चीथाई सेहंड का दूध, और चीगुना आंवले का रस मिलाकर पकावे । अथवा सेहंडका दूध और मुस समान भाग मिलाकर रस अथवा पूर्वकी तरह घृत पका कर सेवन करै ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ॥

सौवीरकादिभिःसप्तसर्पिपाचरसेनच ।
पानकंप्रेयलेहौचयोगायुपादिभिःस्त्रयः
द्वौशुष्कमत्स्यमांसानांमुरकौद्वचसर्पिर्पी ।
महावृक्षस्ययोगास्तेविंशतिःसमुदाहृताः॥
अर्थ—इस अध्याय में सेहंडके बीस प्र-
योग वर्णन किये गये हैं । सौवीरक के सात,
घांकाएक, मांसरका एक, गुडपानकका
एक, सूषने का एक, लेहका एक, यूप के
तीन, सूखी मछली और मांस के दो तथा
घी के दो, इस तरह सब मिलकर बीस
कल्प हैं ॥

इतिश्रीभापाटीकान्वितायांअग्निवेशविर-
चितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता
यांकल्पस्थानेमहावृक्षकल्पोनाम
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातःसप्तलाशंखिनीकल्पंव्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माहभगवानाग्नेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आग्नेय बोले
कि अब हम सप्तलाशंखनी कल्पकी व्याख्या
करेंगे ॥

सप्तलाशंखनी के नामान्तर ॥

शंखिनीतिक्ल्लाचैवयवतिक्ताक्षिपीडकः
सप्तलाचर्मसाष्टैचवहुफेनरसाचसा ॥

अर्थ—शंखनी, तिक्ल्ला, यवतिक्ता, अक्ष-
पीडिक के शंखनीके नाम हैं । तथा सप्तला
चर्मसाहवा और बहुफेनसा ये सप्तला के
नाम हैं ॥

तेगुल्मगरहृद्रोगकुष्ठशोफोदरादिषु । वि-
कासितीक्ष्णरूक्षत्वाद्योज्येश्लेष्माधिके
पुनः ।

अर्थ—सातला और शंखनी विकाशी,
तीक्ष्ण और रूक्ष होने के कारण गुल्मरोग
गरदोष, हृद्रोग, कुष्ठ, शोफ और उदर
रोगोंको नष्ट करती हैं तथा कफाधिक रोगों में
ये बहुत गुणकारी होती हैं ॥

उक्तदोनोंकीकल्पना ।

नातिशुष्कफलंघ्राहंशंखिन्यानिस्तुपीकृ
तम् ॥ सप्तलायाश्चमूत्रानिगृहीत्वाभाज
नेक्षिपेत् । अक्षमाप्रंतयोःपिण्डंप्रसन्नां
लवणायुतम् ॥ हृद्रोगेकफघातोत्थेगुल्मे
चैवप्रयोजयेत् । पियाळपील्लकफेन्धुको
लाम्रातकदाडिमैः ॥ द्राक्षापनसखजूर
वदराम्लपरूपकैः । मेरेयदाधिमण्डेऽम्ले
सौवीरकतुपोदके ॥ शीथौचाप्येपकल्पः

स्यात्सुखंशीघ्राविरिचनः ।

अर्थ....शंखनी फलोंके छिलके दूर करके
ऐसे फल लेंवें जो बहुत सूखेहुए नहों और
सातलाकी जड़ लाकर दोनों को एक पात्र
में रखदेवें । फिर इनमें छे दो तोळे प्रसन्ना
वा सेंधे नमकके साथ हृद्रोग तथा कफघात
जनित गुल्मरोगमें सेवन करें अथवा पियाळ-
पील्ल, वेरकारस, अंबाडा, खट्टाअनार, दाख,
पनस, खजूर, वेरकाकाथ, फालसा, मेरेय,
दधिमंड, कांजी, सौवीरक तुपोदक वा शी-
धूके साथ सेवन करें । इससे सुखपूर्वक शीघ्र
विरिचन होता है ।

तैलविदारिगन्धादिपयसापीडितंपचेत् ॥
सप्तलाशंखिनीकल्कत्रिट्टश्यामार्द्धभा-
गिके । दधिमण्डेनसन्नीयसिद्धन्तम्पाय-
येतच । शंखिनीचूर्णभागौद्वैनीलीचूर्णस्य
चापरः । हरितकीकपायेणतैलतत्पीडि-
तंपिचेत् ॥ अतसीसर्पैरण्डकरञ्जेष्वेपस-
न्विधिः । शंखिनीसप्तलासिद्धाक्षीरात्
यद्दुदियांप्रुतम् । कल्कभागंतयोरेवत्रिशृ-
त्श्यामार्द्धसंयुतम् । क्षीरेणालोढ्यसम्प-
क्षेपिषेत्तच्चविरेचनम् ॥

अर्थ—तेल चार सेर, शालिपर्ण्यादि पंच
मूल के साथ सिद्ध किया हुआ दूध सोलह
सेर, इसी तरह सातला, शंखिनी और
दोनों प्रकार की निसोथ का कल्क एकत्र
पाक करके, तेल तयार करे इस तेलको द-
धिमंडमें मिलाकर पान करे । अथवा शंखि-
नी का चूर्ण दो भाग, नीलिनी का चूर्ण
एक भाग इनको मिलाकर कोल्हू में पिलवा
कर तेल निकलवा लेंवै । इस तेलको हरड
के क्याधके साथ पान करे । इसी तरह से
अलसी, सरसों, अरण्ड और कजा की बीजों
मिलाकर तेल निकलवाकर हरडके क्याध
के साथ पीते हैं । शंखनी और सप्तला डा-
लकर सिद्ध किये हुए दूध में से घी निका-
रकर उन्हीं दोनों का कल्क दोनों प्रकार
की निसोथका कल्क और शौगुना दूध मि-
लाकर पाक करे यह घृत विरेचक होताहै ।
तथादन्तीद्रवन्तोःस्यादजगन्मृजगन्धयोः
क्षीरिण्यानीलिकायाश्चतर्थवचकरञ्जयोः
मसूरविदलायाश्चपत्यक्श्रेण्पास्तर्थवच ॥

विडङ्गाद्दाशकल्केनतद्वत्साध्यंघृतंपुनः ।
शंखिनीसप्तलाधात्रीकपायसाधयंघृतम् ॥
त्रिट्टकल्केनसापिथत्रयोलेहाश्चलोधवत् ॥
सुराकाम्पिलयोयोगःकार्योलोधवदेवच ॥
दन्तीद्रवन्तोःकल्केनसौवीरकतुपोदके ।
अजगन्धाजगन्मृजगन्तद्वत्स्यातांविरेचने ॥

अर्थ—इसी रीति से दन्ती द्रवन्ती के
साथ औटाये हुए दूधका घी निकाल कर
दन्ती, द्रवन्ती और दोनों प्रकार की नि-
सोथ का कल्क और दूध मिलाकर पाक
करे । इसी तरह से शंखनी और सातला
के साथ सिद्ध किये हुए दूध का घी निकाल
कर इन्हीं दोनों का कल्क दो भाग, तथा
भेडासिंगी और अजगंध का कल्क एक भाग
मिलाकर तथा दूध डालकर घी पकावै,
इसीतरह उक्त दुग्धोद्धृत घृतमें क्षीरिणी
और नीलिनी का कल्क मिलाकर अथवा
दोनों प्रकारके कंजोंका कल्क मिलाकर
घी सिद्ध करे । इसीतरहसे मसूर की दाल
प्रत्यक् श्रेणी वा वायविडंग का कल्क डाल
कर घृत सिद्ध करे। अथवा शंखनी, सातला
और आंवलेके रसमें घृत तयार करे ।
सप्तला और शंखनीके साथ तीन प्रकार
के घी निसोथ की तरह तयार करे और
लोधकी तरह लेह बनावै । तथा लोध की
ही तरह सुरा और कवाले के कल्क तयार
करे । यथा दन्ती, द्रवन्ती के कल्क की तरह
अजगंध और भेडासिंगी के सौवीर और
तुपोदक बनाकर सेवन करे ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

कपायादशपट्टचैवपट्टतैलेऽष्टौचसार्पिणि ।

पञ्चमद्यत्रयोलिहायोगःकम्पिल्लकेतया॥
सप्तलाशंखिनीभ्यातेत्रिंशदुक्तानवाधिका
योगाःसिद्धाःसप्तस्ताभ्यामेकशोऽपिच
तेहिताः ।

अर्थ—इस अध्यायमें सप्तला और
शंखनी के उन्तालीस योग वर्णन किये गये
हैं। यथा, वनाथ के सोलह, तेल के छः,
घी के आठ, मद्यके पांच, लेह तीन और
कर्त्रालेका एकाये सव योग सिद्ध किये हुए हैं।
इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विर-
चितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां
कल्पस्थाने सप्तला शंखनी कल्पो नाम
एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथातोदन्तीद्रवन्तीकल्पंव्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि 'अथ हम दन्ती, द्रवन्ती के कल्पकी
व्याख्या करेंगे ।

दन्तीद्रवन्ती के नामान्तर ।

दन्त्युदुम्बरपर्णीस्यात्रिकुम्भोऽथमुक्ल-
कः । द्रवन्तीनामतश्चित्रान्यग्रोधामूपिका
इत्या ॥

अर्थ—उदुम्बरपर्णी, निकुम्भ और मुक्ल-
क ये दन्ती के नामान्तर हैं। चित्रा न्यग्रोधा
और मूपिकाइत्या द्रवन्ती के नाम हैं ।

उक्त द्रव्यों के कल्प ।

तयोमूलानिमंशुवस्थिराणिवहलानिच ।
हस्तिदन्तप्रकाराणिश्याचताम्राणियुद्धि

मान् । पिप्पलीमधुलिप्तानिस्वेदयेत्सु-
कुशान्तरे ॥ शोषयेदातपेऽग्न्यर्काहते
ह्यपांविकापिताम् । तीक्ष्णोष्णान्याशुका
रीणिविकाशीनिगुरुणिच ॥ विलापय
न्तिदोषाद्वैमारुतंकोपयन्तिच ।

अर्थ—दन्ती द्रवन्ती की जड़ जो दृढ,
पुष्ट, हाथी के दांतके सदृश हो तथा श्याम-
वर्ण वा ताम्रवर्ण हो उसे लाकर शहत
और पापल में लपेट दै और उस के उपर
कुशा बांधकर कपडमिट्टी फरेदे इसको धूप
में सुखाकर अग्नि में स्वेदित करे। ऐसा करने
से इसकी तीव्रता दूर होजावेगी । दन्ती
और द्रवन्ती तीक्ष्ण, उष्ण, आशुकारी,
विकाशी और भारी होती हैं ये दोनों कफ
और पित्त को विलीन करती हैं और वायु
को प्रकुपित करती हैं (वायुकारक होने
से पेटमें ऐंठा उत्पन्न करती हैं इससे निम्न
लिखित द्रव्योंके साथमें इनका सेवन हित है)

दधितक्रसुरामण्डैःपिण्डमक्षसमन्तयोः ॥

पियालकोलदरपीलुशीधुभिरेवच ॥

पिवेद्गुल्मोदरीदोषैराभ्यन्दश्चयोनरः

गोमूगाजरसःपाण्डुःक्रिमिकुट्टीभगन्दरी ।

तयोःकल्केकापायेचदशमूलरसायुते ॥ क

क्ष्यालजीविसर्पेपुदाहेचविपचेद्घृतम् ॥

तैलमहेचगुल्मेचसोदावर्तेकफानिले ॥ च-

तुःरनेंशकृच्छुक्रवातसहानिलान्तिपु ॥

रसोदन्त्यजशृंग्योश्चगुडक्षौद्रघृतान्वितः ॥

लेहःसिद्धोविरेकार्थेदाहसन्तापमेहनत् ॥

वाततपेज्वरेपैचेस्यात्सएवाजगन्धया ॥

अर्थ—दन्ती द्रवन्तीका कल्क दो तोले दही, तक्र, सुरामण्ड, पियाळ, वेर, झाडी वेर, पीड, शीघ्र, इनके साथमें पीनेसे गुल्मरोग, उदररोग, अभिष्यन्दरोग दूर होजाते हैं, तथा गौ, हिरन और बकरे के मांसरस के साथ पीने से पांडुरोग, किमि-रोग, कुष्ठ और भृगन्दर जाते रहतेहैं। दन्ती द्रवन्ती का कल्क एक सेर, क्वाथ आठ सेर, दशमूलका क्वाथ आठ सेर और घृत चार सेर इनको पकाकर घृत तैयार करै। यह घृत कखराई, बिसर्प और दाहमें हित होता है। अथवा घृत की जगह तेल चार सेर पकानेसे यह तेल गु-ल्म, उदावर्त और वातकफ में हितहै अथ-वा घृत वा तेल दोनों के बदले में चार प्रकारके स्नेह पकाकर सेवन करनेसे मल-बद्धता, वीर्यबद्धता, वायुविबन्ध और वायु-रोग दूर होजाते हैं। अथवा दन्ती और में-ढासिंगी की जड़ समानभाग लेकर आठ गुने जलमें पकावे जब चौथाई शेष रहजा-य तब गुड और घृत के साथ पकाकर ले-ह करेले फिर ठंडा होनेपर शहत मिलाकर पास रखछोडै। इसके सेवनसे विरेचन द्वा-रा दाह, संताप और प्रमेह दूर होजाते हैं। इसीरीतिसे अजगंध और दन्तीकाजड़ समान भाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ करै चौथाई शेष रहनेपर छानकर चतुर्थांश घी, गुडके साथ पकाकर लेह करै। उस में श-हत मिलाकर रख छोडे, इमकासेवन करने से तृप्ता और पित्तज्वर शान्त होजाते है।

मूलदन्तीद्रवन्त्योश्चपचेदामलकीरसे । त्रिंस्तस्यचक्रपायेऽस्यभागान्द्वौफाणित स्यच ॥ तप्तसर्पिर्पितलेवाभजयेत्तत्रचाव पेत् । कल्कंदन्तीद्रवन्त्योश्चश्यामादीनाञ्चभागशः ॥ तात्सिद्धमाशयेल्लेहंमुखं तेनविरिच्यते । रसेचदशमूलस्यतथावै भीतकेरसे ॥ हरीतकीरसेचैवलेहानेव पचेत्पृथक् । तयोर्विल्वसमंचूर्णतद्रसेनैव भावितम् ॥ अष्टपृथिव्यातांत्येगुल्मेचा म्लयुतंशुभम् ॥

अर्थ—दन्ती द्रवन्तीकी जड़को आंबले के रसमें पकावे चौथाई शेष रहनेपर यह क्वाथ तीन भाग, फाणित दोभाग मिलाकर तप्त घी वा तैलमें छोक देवै। पीछे इसमें दन्ती द्रवन्ती और अपामार्ग तंडुलीय अ-ध्यायोक्त त्रिवृतादि पन्द्रह द्रव्योंका कल्क पूर्वोक्त कषाय और फाणितसे चतुर्थांश डाले। इस लेहको पान करनेसे सुखपूर्वक विरेचन होता है। अथवा इसी तरह से आंबलेके रसकी जगह दशमूल का क्वाथ, बहेडे का क्वाथ वा हरड का क्वाथ इनमें दन्ती द्रवन्तीकी जड़ को पकाकर पूर्वोक्त तृ-वृतादि द्रव्यों को डालकर लेह तयार करै। दन्ती द्रवन्तीकी जड़ का एक पल चूर्ण में इनहीके क्वाथ की भावना देकर कांजीके साथ सेवन करै तो मलका विबंध और वातजगुल्म दूर होजातेहैं।

पाठयित्वेक्षुकाण्डंवाकल्केनालिप्यचान्न रा ॥ स्वेदयित्वाततःखादेत्तुष्यतेनविरि च्यते। मूलदन्तीद्रवन्त्योश्चसहस्रद्वैविंषा

चयेत् । लावणवर्तिकाणांचतेरसाःस्युर्वि
रेचनम् । तयोर्वापिकपायेणयवागूजांग
लंरसम् ॥ मापयूपांश्चसंस्कृत्यदद्यात्ते
नविरिच्यते । तत्कपायाच्चयोभागाद्द्वौ
सितायास्तथैवच ॥ एकोगोधूमचूर्णा
नांकोथिचोत्कारिकाशुभा । मोदकोवा
स्वकल्केनकार्यस्तच्चविरेचनम् ॥ तयो
र्वापिकपायेणमद्यान्यस्यविकल्पयेत् ॥
दन्तीकवाथेनचालोड्यदन्तीतैलेनसाधि
तम् ॥ गुडलावणिकानभक्ष्यानधिविधा
न्भक्षयेन्नरः ।

अर्थ—इसकी एक पोईको बांध में से
चीर कर उसमें दन्ती द्रवन्तीके कल्क को
भरदे फिर उसका मुंह बन्द करके डोर से
बांध देवे । फिर उस पोईको आग्नि में
गरम करके चूसले तौ सुखपूर्वक विरेचन
होता है दन्ती और द्रवन्ती की जड समान
भाग गुग्गु के साथ वा घटेर के मांसरस के
साथ पाक करके पीये तौ विरेचन होता है
अथवा दन्ती द्रवन्ती की जडके क्वाथ के
साथ यवागू, वा जांगल मांसरस वा उरद
के यूप के साथ संस्कार करके दैने से वि-
रेचन होता है । अथवा दन्ती द्रवन्तीकी
जड का काथ तनि भाग चिनी दो भाग
और गेहूं का चून एक भाग मिलाकर
मोहनभोग वा मोदक बनाये । इनके सेवन
से विरेचन होता है । अथवा इनही दोनों
के काथ से मद्य बनाकर सेवन करे । दन्ती
के काथ में सानकर गुड और सेंधानमक
डालकर बनाये हुए भक्ष्य पदार्थ दन्ती के

तेलही में सेक कर सेवन करने से सुख
पूर्वक विरेचन होता है ॥

वैरेचनिकचूर्ण ।

द्रवन्तीमिरिचदन्तीयवानीमुपकृञ्चिकाम्
नागरंहेमदुग्धीचचित्रकंचोतिचूर्णितम् ।
सप्ताहंभावयेन्मूत्रगवांपाणितलंततः ॥
पिवेद्घृतेनजीर्णेतुविरिक्तश्चापितर्पणम्
सर्वरोगहरंमुख्यं सर्वेष्टुपुशोभनम् ॥
चूर्णतदनप्रायित्वाद्वालघृटेपुपूजितम् ॥
दुग्धकाजीर्णपार्श्वीतिगुल्मप्लीहारेपुच
गण्डमालासुवातेचपाण्डुरोगेचशस्यते ।

अर्थ—द्रवन्ती, कालामिरिच, दन्ती, अ-
जबायनकी जड, कालाजीरा, सोंठ, स्व-
र्णक्षीरी और चीता इनका चूर्ण करके सात
दिन तक गोमूत्रकी भावना देवे । फिर
इसका चूर्ण करके दी ताले घा में मिलाकर
चाटै, विरेचन के पीछे तर्पण सेवन करे ।
यह योग सम्पूर्ण रोगों को दूर करनेवाला
और सम्पूर्ण ऋतुओं में हित है ॥ यह चूर्ण
किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करता है इस
से दृढ और बालकों कोभी उपयोगी है इस
के सेवन से विपरीत भोजन के कारण
उत्पन्न हुआ अजीर्ण, पार्श्वशूल, गुल्मरोग
प्लीहा, उदररोग, गण्डमाला घातरोग और
पांडुरोग दूर होजाते हैं ॥
पलंचित्रकदन्त्योश्चहरीतक्याश्चविंशतिः
पिप्पलीत्रिवृतासौद्रगुडस्याप्रपलेनतत् ॥
विनीयमोदकानकुर्पादशैकभक्षयेत्ततः ॥
उष्णांबुचिपिवेच्चाजुदशमेदशमेऽन्हिच
पतेनिप्परीहाराःस्युःसर्वरोगनिवर्हणाः ।

ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकण्डूकोटानिलापहाः

अर्थ—चीता एक पल, दन्ती एक पल, हरड नग बीस, पीपल दो तोला, निसोथ दो तोला, और गुड आठ पल इन सबको पाककर दशमोदक बनावै । इन मोदकों को उष्ण जल के साथ दसवै २ दिन एक एक खाय । इन मोदकोंके सेवन करते समय आहार विहारकी विशेष यंत्रणा नहींहै । यह सर्व रोगोंका दूर करने वाला है और विशेष करके इसके सेवन से ग्रहणी, पाण्डुरोग, अर्श, खुजली, फोड और वायुरोग नष्ट होजाते है ॥

दन्तीद्विपलनिर्यूहोद्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः ॥

शोधनंपित्तकासेचपाण्डुरोगेचशस्यते ।

दन्तीफलकंसमगुडंशीतवारियुतांपिवेत् ॥

विरेचनंमुखपतमंकामलाहरमुत्तमम् ।

अर्थ—दन्तीकी जड़को अठगुने जल में काथ करके चौथाई शेष रहने पर इस मिले हुए द्रव्यको लेह की तरह पाक करके सेवन करै तौ पित्तज फास और पाण्डुरोग दूर होजातेहैं । अथवा दन्तीके कल्कमें धरावर का गुड मिलाकर शीतल जलके साथ पान करै तौ उत्तम विरेचन होताहै । इससे कामलारोग दूर होजाताहै ।

श्यामादन्तीरसेर्गाढःपिप्पलीफलाचेत्रकैः ॥ लिप्तेऽरिष्टोऽनिलकफ्युहपाण्डुरापहाः । तथादन्तीद्रवन्त्योश्चकपायेणाजगन्धया ॥ गाढःकार्योऽजशृंग्यावारसैःमुखविरेचनः । तच्चूर्णकवाधिमापाम्बुकिप्वतायतुरोद्भवा ॥ मदिराकफगुल्मास्पचन्दिपाश्वर्कटिप्रहे । अजगन्ध्याकपा

(१५४)

येणसौवीरकतुपोदके ॥ सुराकम्पिष्ठक्योगालोधवच्चतयोःस्मृताः ॥

अर्थ—एक पात्रके भीतर पीपल, मैन. फल और चीते का छेप करके कालीनिसोथ और दन्ती का क्वाथ तथा गुड भरकर रखदे । एक महीन पीछे अरिष्ट वनमें पर सेवन करने से वात कफ, प्लीहा, पाण्डुरोग, और उदररोग दूर होजाते हैं । इसी तरह से दन्ती द्रवन्तीकी जड़ और अजगन्धके काथ में गुड डालकर अरिष्ट तयार करै । इसी तरह से मेढादिगी और दन्ती द्रवन्ती के क्वाथ में गुड डालकर सुखपूर्वक विरेचन देवै । दन्ती द्रवन्ती का चूर्ण और क्वाथ, उरद का क्वाथ, सुरावाज और जल इनको एक पात्र में भरदेवै । यह मय कफज गुल्मरोग मन्दाग्नि, पार्श्वग्रह और कटि रोग दूर करता है । अजगन्ध के क्वाथके साथ दन्ती द्रवन्ती के सौवीरक और तुपोदक तथा लोष के समान सुरा और कम्पिष्ठक योग प्रस्तुत करके सेवन करै । (सौवीरक और तुपोदक बनाने की यह रीति है कि अजगन्ध का क्वाथ, विना छिलके के जौ और इतनी ही दन्ती द्रवन्ती का कल्क और कांजी एक पात्र में छः दिनतक धरे रखने से सौवीरक बनताहै । तथा छिलके समेत जौ और भुनेहुए जौ ओ को बूट कर उक्त रीति से मिश्रित करने पर तुपोदक होता है) । दन्ती द्रवन्ती के क्वाथ और समान भाग सुरा को मिलाकर पन्द्रह दिवस तक धरा रखने से सुरा वनती,

हे । दन्ती द्रवन्तीके कल्क में दन्ती द्रवन्ती के चूर्ण को दस बार भावना देकर फिर दस बार क्वथीले के क्वाथ की भावना देने से कम्पिष्टक योग बनता है ॥

दन्तीद्रवन्तीकल्पका संक्षिप्तवर्णन ।
 दध्यादिपुत्रयःपञ्चपियालाद्यैस्त्रयोरसे ।
 स्नेहेपुत्रयपोलेहाःपञ्चचूर्णत्वकएष्वच ॥
 ईक्षावेकस्तथासुदृग्मांसानाञ्चरसास्त्रयः।
 पवाग्वाद्रौत्रयश्चैषउक्तउत्कारिकाविधौ
 एकश्चमोदकेमद्यैकैकतरकाथर्तलिके । चू
 र्णमेकंपुनश्चैकोमोदकःपञ्चचासवे । ए
 कःसौवीरकेऽथैकयोगःस्यात्तुतुपोदके ॥
 एकासुराकम्पिष्टकचैकःपञ्चघृतेस्मृताः॥
 दन्तीद्रवन्तीफलसेऽस्मिन्प्रोक्ताःपोडशका
 स्त्रयः। नानाविधानांयोगानांभुक्तिदोषा
 ययान्प्रति ॥

अर्थ—इस अध्याय में दहीके तीन पि-
 याल के पांच, क्वाथके तीन, स्नेहके तीन
 लह छः, चूर्ण एक, ईल का एक, सुदृग्मांस
 रस के तीन, यवागू के तीन, उत्कारिका
 का एक, मोदक एक, मद्य का एक, क्वाथ
 और तेल का एक, चूर्ण का फिर मोदक
 एक, आसत्र पांच, सौवीरक एक, सुरा एक
 कम्पिष्टक एक, और घृत पांच । इस तरह
 सब अड़तालीस योग है । इन प्रयोगों से
 अनेक प्रकार के भोजन के दोष और रोग
 शान्त होजाते हैं ॥

त्रिशतंपञ्चपञ्चाशत्योगानां वमनेस्मृतम् ॥

द्वैसतेनवकाःपञ्चयोगानान्नुद्विरेचने ।

ऊर्दानुलोमेभागानामित्युक्तानिशतानि

पट् ॥ प्राधान्यतःसमाश्रित्यद्रव्याणिदश
 पञ्चच । यद्धियेनप्रधानेनद्रव्यंसमुप
 सृज्यते ॥ तत्संज्ञकःससंयोगोभवतीति
 विनिश्चितम् । फलादीनांप्रधानानांगु-
 णभूताःसुरादयः ॥ तेहितान्यनुवर्तन्तेम
 नुजेन्द्रमिवेतरै ॥

अर्थ—इस कल्पस्थान में तीनों पञ्च-
 पन वमनयोग और दसों पैतालीस विरेचन
 के योग वर्णितहै । इसतरह त्रिवृतादि पन्द्र-
 ह द्रव्यों का आश्रय लेकर वमन और विरे-
 चन के सब मिलकर छःसौ प्रयोग हैं ।
 जो द्रव्य जिस प्रधान द्रव्य से संयोजित
 कियाजाता है उस प्रयोगमें उसी के गुण
 प्रधान होते है जैसे मेनफलादि प्रधान द्रव्य
 के गुण से युक्त सुरादिक मेनफलादि के
 गुणोंकाही अनुवर्तन करती हैं जैसे प्रजा
 राजा की अनुगामिनी होती है ॥

विरुद्धवीर्यमप्येपांप्रधानानामवाधकम् ॥

अधिकेतुल्यवीर्येऽपिक्रियासामान्यमिष्य

ते । इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धार्थप्रतिचामय

म् ॥ अतोविरुद्धवीर्याणांप्रयोगइतिनि

श्चितम् ॥

अर्थ—अप्रधान द्रव्य वीर्य विरुद्ध होने

पर भी प्रधान द्रव्यके गुण का वाधक नहीं

होसکتाहै । तथा समान वीर्यवाला अप्रधान

द्रव्य भी प्रधान द्रव्य के वीर्यको बढ़ाताहै

क्योंकि उनकी क्रिया समान है । मनोऽनु-

कूल वर्ण, रस स्पर्श और गंध के कारणही

विरुद्ध वीर्य द्रव्यों का संयोग कियाजाताहै

तथा रोग के अनुसार भी विरुद्धवीर्य द्रव्य

मिलायेंजाते हैं ॥

स्वरससेभावितकरनेकाकारण ।

भूयश्चैपावलाधानकार्यस्वरमभावनात् ॥
सुभावितं ह्यल्पमपि द्रव्यं स्याद्द्रुकर्मकृत् ।

स्वरसैतुल्यवर्चयैर्वातस्माद्द्रव्याणि भावयेत्

अर्थ—एक द्रव्य को उसी के रस की भावना देने का कारण यह है कि उस द्रव्य का बल अधिक बढ़ जाता है । अल्पवर्च वाला वा अल्प द्रव्य भी अच्छी तरह भावना दिये जाने पर बहुत से कर्मों का करने वाला हो जाता है । इसलिये उसी द्रव्यके रस से अथवा समान वर्चवाले अन्य द्रव्यके रस से भावना देनी चाहिये ॥

अल्पस्यापिमहार्थत्वं प्रभूतस्यापिकर्मताम् ।
कुर्यात्संयोगविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः ॥

अर्थ—संयोग, वियोग, काल और संस्कार द्वारा अल्पद्रव्य का महार्थत्व और प्रभूतद्रव्य का अल्पार्थत्व हो जाता है ॥

प्रदेशमात्रमेतावद्द्रव्यमिह पट्टशतम् ।

सुशुद्धैर्यसहस्राणिकोटिर्वापिमकल्पयेत् ॥

बहुद्रव्यधिकल्पत्वाद्योगसंख्यानाविद्यते ।

तीक्ष्णमध्यमृदूनान्तुतोपांशुतलक्षणम् ॥

अर्थ—इस जगह छः सौ प्रकार के वमन विरेचनों का आंशिक वर्णन किया गया है । अच्छी सुद्धियाला वैद्य इनको सहस्र क्या करोड प्रकार से देसक्ता है । बहुत द्रव्यों से विकल्प होने के कारण इनकी संख्या नहीं हो सकती है ।

अथ हम तीक्ष्ण, मध्यम और मृदु भेद से वमन विरेचनों के लक्षण कहते हैं ।

तीक्ष्ण विरेचन के लक्षण ।

सुखं क्षिप्तं महावेगमसक्तं यत्प्रवर्तते । नातिग्लानिकरं पायी हृदयेन चरुकरम् ॥

अन्तराशयमक्षिण्वन्कृत्स्नंदोषं निरस्यति

विरेचनं निरूहो वात तीक्ष्णमिति निर्दिशेत् ॥

अर्थ—जिसके प्रयोग करने से मल असक्त होकर बड़े वेग से निकलने लगता है जो ग्लानि बहुत नहीं करता है परन्तु मल के निकलने के समय गुदा और हृदय में वेदना करने लगता है और आमाशयको क्षीण करके सम्पूर्ण दोष को दूर कर देता है उस विरेचन वा निरूहको तीक्ष्ण कहते हैं ।

औषध की तीक्ष्णता का कारण ।

जलाग्निकीटैरस्पृष्टं देसकालगुणान्वितम् ।

इपन्मात्राधिकं पुक्तं तुल्यवर्चयैः सुभावितम् ॥

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य तीक्ष्णत्वं याति भेषजम् ।

अर्थ—जो औषध जल, अग्नि या कीड़े से दूषित नहीं हुई है, जो देश और काल के गुण से युक्त है । जो समान वर्च वाली औषधों से मात्रा दी गई है और मात्रासे कुछ अधिक दी भी गई है तथा स्नेहन और स्वेदन कर्मों के परचात् प्रयुक्त हुई है वह औषध तीक्ष्ण हो जाती है

मध्य औषधके लक्षण ।

क्लिञ्चिदेभिर्गुणैर्हीनं पूर्वोक्तैर्मात्रया तथा ।

स्निग्धस्विन्नस्य वा सम्यग्मध्यं भवति भेषजम् ।

अर्थ—जो औषध ऊपर कहे हुए गुणों से कुछ कम गुणवाली होती है वा उक्त मात्रासे कम स्नेहन स्वेदन के परचात् दी जाती है वह मध्यम बली होती है ।

अथ तीक्ष्ण, मध्यम और मृदु भेद से वमन विरेचनों के लक्षण कहते हैं ।

हीन औषध का लक्षण ॥

मन्दवीर्याविरुक्षस्यहीनमात्रन्तुभेषजम् ॥

अतुल्यवीर्यैःसंयुक्तमृदुस्थान्मन्दवेगवत् ।

अकृत्स्नदोषहरणादशुभंतद्वलीयसाम् ॥

मध्यावरवलयानान्तुप्रयोज्यसिद्धिमिच्छता

अर्थ—रूक्षरोगी को मन्दवीर्यावाली औषध

अतुल्य औषधों के संयोगमें हीन मात्रासे

प्रयोग की जाती है वह मृदु और मन्द वेग

वाली होती है। ऐसी औषध दोषों को अच्छी

तरह दूर नहीं कर सकती है इस से अगर

इसका प्रयोग बलवान् मनुष्य के साथ किया

जाय तो अशुद्धि को बढ़ाती है। इस हेतु

से जो इस औषध को सिद्ध किया चाहै

उन्हें उचित है कि मध्यबल और हीनबल

वालों को यह औषधी दैवै ।

तीक्ष्णोमध्यामृदुर्व्याधिःसर्वमध्याल्पल-

क्षणः ॥ तीक्ष्णार्दानिवलापेर्षाभेषजा

न्येपुयाजयेत् ॥

अर्थ—सर्वलक्षणयुक्त व्याधि तीक्ष्ण,

मध्यलक्षणवाली मध्य और अल्पलक्षण

वाली मृदु होती है। इन सब का विचार

कर तीक्ष्णादि औषधादि का प्रयोग करै ।

देयन्त्यनिर्हृतेपूर्वपूतेपश्चात्पुनःपुनः । भे-

षजं व मनार्थाय प्राय आपि च दर्शनात् ॥

बलवैविध्यमालम्ब्यदोषाणामातुरस्थचा

पुनःप्रयोज्यभेषज्यंसर्वशोहिविबर्जयेत् ॥

अर्थ—यदि वमनकारक औषध के सेवन

करने परभी दोष न निकलें तो जब तक

रिक्त न निकलें तब तक बार बार औषध

पान कराता रहे । रोग और रोगी के तीनों

प्रकार के बलों की विवेचना करके बार बार

औषध का प्रयोग करै और जो समय न रहा

हो तो सर्वथा औषध न दैवै ।

निर्हृतेवापि जीर्णवा दोषानिर्हरेण युधः ॥

भेषजेऽन्यत्प्रयुञ्जीतत्प्रार्थयन्सिद्धिमुत्तम

म् ॥ अपकं वमनं दोषात्पच्यमानं विरेच-

नम् । निर्हरेद्वमनस्यातःपाकं नमंतिपालयेत्

पीतेमंसं सनेदोषान्निर्हरेत्यजराङ्गते । वामि-

तेचौषधेधीरःपातयेदातुरगुणः ॥

अर्थ—जो वमनकारक औषध निकल

गई हो, वा पचगई हो वा दोष को न

निकालसकी हो तो सिद्धि की इच्छा करने-

वाला वैद्य फिर औषधदेवै । वमन औषध

पचने से पहिले दोषों को निकालदेती है

और विरेचक औषध पचनावस्था तक दोषों

को निकालती है । इस से वमन औषध के

पाक की प्रतीक्षा न करै । विरेचक औषध

के पीने पर वह दोषों को बिना निकाले

हुएही पचगई हो वा उसकी वमन हांगई

हो तो फिर औषध पान करावै ॥

सुखामुखसाध्यरोगी ॥

दीप्ताग्निबहुदोषश्चदृढस्नेहगुणं नरम् ।

दुःशोध्यंतदहर्षुक्तं श्वोभूयःपाययेत्तत् ॥

दुर्बलो बहुदोषश्चदोषपाकेन यो नरः । विरि-

च्यतेसैर्भोज्यैर्भूयस्तमंनुसारयेत् ॥ वम-

नैश्चविरंकेश्चविशुद्धस्याप्रमाणतः । भो-

जनान्तरपानाभ्यां दोषशेषं शर्मनयेत्

अर्थ—दीप्ताग्निवाला, बहुत दोषों से

युक्त और आतिशय स्निग्ध मनुष्य का

शोषन कठिनता से होता है, क्योंकि दीप्ता

गिन के कारण औषध को वह शीघ्रही प-
चालेता है बहुदोष युक्त होने के कारण
अल्प औषध कुछ काम नहीं करसक्ती है
तथा वमन द्रव्य रूक्ष होनेके कारण अति-
स्निग्ध मनुष्यपर कुछ काम नहीं करसक्ती
है । इससे जो वमनकारक औषध के पान
कराने पर उसे वमन न हुई हो तो उस
दिन भोजनादि करा के दूसरे दिन फिर
वमनकारक औषधपान करावै ॥

बहुत दोषों से युक्त दुर्बल मनुष्य का
मल सहजही में नहीं निकलसक्तता है ।
किन्तु दोष के पचने पीछे मल निकलता
है । ऐसे रोग को विरेचन औषध देनेपर
भी विरेचन न हो तो फिर विरेचन न देवै
परन्तु दस्तावर आहर देकर मलको निकाल
जो रोगी वमन विरेचन द्वारा यथा प्रमाण
शुद्ध न हुआ हो तो फिर वमन विरेचन
न-देकर पान भोजन के किसी प्रकारान्तर
से शेष दोषों का निवारण करै ।

मृदु औषधकाविधान ।

दुर्बलशोधितपूर्वमल्पदोषप्रमाणवम् ।
अपरिज्ञातकोष्ठश्लेष्मापाययैतोपधमृदु ॥
धैर्यमृदुसकृत्पीतमल्पवाधविरेचनम् ।
नचातितिक्षणवत्क्षिप्रमंजनयेत्प्रमाणसंश्रयम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य दुर्बलहो, वा पूर्व में
शुद्ध कियाहुआ हो, वा अल्प दोष युक्त
हो वा जिस के कोष्ठ का हाल मालूम न
हो उसे मृदु औषध पान करावै । थोड़ी
थोड़ी औषध का बार २ पाना अच्छा है
जिससे किसी प्रकार की वाधा वा अपकार

न हो अत्यन्त तीक्ष्ण औषधका पान कराना
ठीक नहीं है जो शीघ्रही प्राणोंको हरणकरलेवै।
दुर्बलोऽपिमहादोषो विरेच्यो बहुशोऽल्प-
शः । मृदुभिर्भेजर्दोपानान्युद्धेनमनिर्ह-
ताः ॥ यस्याद्ध्वकफमंशुर्द्विपीतयात्वनु-
लोमिकम् । बभितं कवलैः शुद्धैर्लक्षितपाय-
येत्सम् ॥ निवद्धेऽल्पेचिराद्दोषसंवत्सुर्ण-
पिवज्जलम् । तेनाधमानंसत्तृच्छदिधिं व-
न्धश्चैवशाम्यति ॥ भेजर्दोपरुद्धंचेन्नो-
द्धनाधः प्रवर्तत । सोद्गारंसांगशूलवास्वे-
दंतत्रावचारयेत् ॥ सुविरिक्तस्तुसोद्गार-
माश्वेयोपधमल्लिलेखत् । अतिप्रवर्तनजी-
र्ये सुशतैस्तम्भयेद्भिषक् ॥

अर्थ....महा दोष वाले दुर्बल रोगीको
थोड़ा २ विरेचन कई बार करके पान क-
रावै । क्योंकि औषध को मृदुता के का-
रण दोष न निकल कर प्राणों को नष्ट
कर देते हैं ॥ ऊर्ध्व मार्गके कफाशृत
होनेसे वेग ऊपरको न जाय और अ-
नुलोमगती को प्राप्त हो तो कवल द्वारा
वमन की इच्छाको रोककर लघन करा के
कफके क्षीण होनेपर वमन करावै । जो दोष
थोड़ा २ विवद्धतासे वा देरमें निकलै तो
उष्ण जलका पान करावै । इससे अफरा,
तृषा, वमन और विवन्ध सब दूर होजाते हैं।
दोषों से रुकी हुई औषध जो न ऊपरको
जा सके न नीचे को जा सकै तथा डकार
और अंगशूल होने लगे तौ पसीने देवै ।
अच्छी तरह विरेचन होनेके पीछे जो
डकार में औषधकी गंध आती हो तो शीघ्र

ही आमाशयस्थ औषधको घमन द्वारा निकाले जो औषध के पचने पर अधिक दस्त आने लगे तो शीतल क्रिया से शान्त करे कदाचिदश्लेष्मणारुद्धेतिष्ठत्युरसिभेषजम् । क्षीणश्लेष्मणिमायाहनेरात्रौवातत्वमवर्तते ॥ रूक्षानाहारयोर्जीर्णविष्टभ्योऽङ्गतेऽपिवा । वायुनाभेषजेत्वन्यत्सस्नेहलवणशृतम् ॥ तृणमोहघ्नममूर्च्छाद्याःस्युर्जीर्यतिहिभेषजे । पित्तघ्नस्वादुशीतञ्च भेषजंतत्रशस्यते ॥

अर्थ—यदि औषध कफसे रुककर वक्षःस्थलमें ठहर जाय और सन्ध्या के समय वा रात्रि में कफके क्षीण होने पर निकले रूक्षता के कारण वा भोजन न करने के कारण, औषध के जीर्ण होने पर वा बिना जीर्ण हुएही गुडगुडाहट करके वायुके कारण ऊपर को जाय तो फिर उसी औषध को स्नेह और लवण के साथ पान करावे । औषध के पचने पर यदि तृण, मोह, भूम और मूर्च्छादिक हों तो स्यादु शीतल और पित्तनाशक औषध पान करावे ।

लालाहृल्लासत्रिष्टम्भशीतहर्षाःकफावृते भेषजंतत्रतीक्ष्णोष्णकट्वादिक्फनुद्धितम् सुस्निग्धंशूरकोष्ठञ्चलंघयेद्द्विरेचितम् । तेनास्यस्नेहजःश्लेष्मासंगश्चैवोपशाम्यति

अर्थ—कफावृत रोग में लालास्ताव, हृल्लास, विष्टब्धता, रोमहर्षण और शीतहोती तीक्ष्ण, उष्ण और कफनाशककट्वादि औषध देवे । अच्छी तरह से स्निग्ध हुए मनुष्य को विरेचन न देकर लघन करावे

इस से उसका स्नेहजन्य कफ और मल की विवन्धता दूर होजायगी ।

वस्तिकर्मके योग्यरोगी ॥

रूक्षवहानिलकूरकोष्णव्यायामशूलिनाम् दीप्ताग्नीनाञ्चभपज्यमविरेच्यवजीर्यात् ॥ तेष्योवस्तिपुग्दत्त्वापश्चाद्द्याद्विरेचनं वस्तिमवर्तितं दोषं हरेच्छीघ्रं विरेचनम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य रूक्ष, अत्यन्त वात प्रकृतिवाला, कूरकोष्ठ, व्यायामशील [कसरत कुस्ती करनेवाला] शूलरोगी और दीप्ताग्निवालाहो तो विरेचनकर्त्ता औषध उसको बिना विरेचन कराये ही पचजाती है इसलिये उस पहिले वस्तिकर्म करा के पाँछे विरेचन दैवे । वस्तिसे प्रवृत्त हुएदोषोंको विरेचन शीघ्रही निकाल देता है ॥

स्नेहन के योग्य रोगी ॥

रूक्षाशनाःकर्मनित्यायेनरादीप्नपावकाः तेषांदोषा क्षययान्तिकर्मवातातपाग्निभिः । विरुद्धाध्यशनाजीर्णदोषानापसहन्ति ॥ स्नेहास्तेमारुताद्रूक्ष्यानाव्याधौतान्विसोधयेत् ॥

अर्थ—रूक्षभोजी, गित्यप्रति परिश्रम करने वाले, दीप्ताग्नि वाले मनुष्यों के दोष, परिश्रम, वायु, धूप और अग्निसे क्षय होजाते हैं । तथा इन्हीं कारणों से विरुद्ध भोजन, अध्यशन और अजीर्ण भोजनादि से उत्पन्न हुए दोष भी मिटजाते हैं । ऐसे मनुष्यों को स्नेहन देना उचित है क्योंकि वायु में इनकी रक्षा कर्त्तव्य है । तथा किसी विक्षेप रोग के बिना हुए विरेचन देना भी ठीक नहीं है ॥

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम् ।

स्नेहोत्कृष्टशरीरायरूक्षदद्याद्विरेचनम् ।

अर्थ—जिसका शरीर अति स्निग्ध नहो अर्थात् रूक्षहो उसे स्नेह विरेचन देवै अथवा यों कहौ कि अति स्निग्ध देह वाले को स्नेह विरेचन न देवै । जो स्नेह से उत्कृष्ट हो उसे रूक्ष विरेचन देवै ॥

एवंज्ञात्वाविधिंभीरोदेशकालप्रमाणवित् ॥

विरेचनं विरेच्येभ्यः प्रयच्छन्नापराध्याति

विभ्रंशो विपवद्यस्य सम्यग्यागोयधामृतम्

कालेष्ववश्यं पेयश्च तस्माच्चान्नात्प्रयोजयेत्

अर्थ—इन सब ऊपर लिखी हुई बातों

को अच्छी तरह समझकर देश काल और

प्रमाण के अनुसार जो वैद्य विरेचन के योग्य

मनुष्य को विरेचन देता है वह अपराध का

भागी नहीं होता है ।

जो औषध अन्यथा प्रयुक्त किये जाने

पर विके समान और सम्यक् प्रयोग किये

जाने पर अमृत के समान फल दिखाती है

ऐसी औषध को ठीक समय पर बहुत सोच

विचार के साथ पान करना चाहिये ।

उपसंहार ।

द्रव्यप्रमाणान्तु यदुक्तमास्मिन्मध्ये पुतत्को

पुवयो वलेषु तन्मूलमालम्ब्य भवेद्विकल्प्यं

तेषां विकल्प्योऽभ्याधिको न भावः ॥

अर्थ—इस ग्रन्थ में जिस द्रव्य का जो

प्रमाण कहा गया है । कोष्ठ, वय और

वल के अनुसार उसका प्रयोग करना चाहिये

इसी कोष्ठ, वय और वल के भेद से मात्रा

में घटा बढ़ी होती है ।

मान परिभाषा ॥

पहं च इयं स्तुमंरीचिः स्यात्पण्मरीच्यस्तुस-

र्षपः ॥ अष्टौ तै सर्पपारत्तिस्तण्डुलश्चापितद्द्व-

यमूधान्यामापो भवेदेको धान्यमापदयंभवः

अण्डिकास्तेतुचत्वारस्ताश्चतस्रस्तुमापकः

हेमश्च धानकश्चोक्तो भवेच्छाणस्तुतेत्रयः ॥

शाणौर्द्वौर्द्रक्षणं विद्यात्कोलंबदरमेव च ।

विद्यात्द्वौर्द्रक्षणं कर्पसुवर्णश्चाक्षमेव च ॥

विडालपदकन्तश्चपिचुम्पाणितलन्तथा ।

तिन्दुकञ्चविजानीयात्कवलग्रहमेव च ॥

द्वेसुवर्णपलार्थस्याच्छुक्तिरष्टमिका तथा ।

द्वेपलार्थं पलमुष्टिः प्रकृञ्चैथचतुर्थिका ॥

विल्यंपोडशिकश्चाद्द्वेपलेप्रसृतम्बिदुः ।

अष्टमानन्तु विज्ञेयं कुडवाद्द्वौ तु मानिका ॥

पलञ्चतुर्गुणं विद्यात्कुडवात्कुडवन्तथा

चत्वारः कुडवाः मस्यश्चतुष्पस्थमथाडकम्

पात्रंतदेव विज्ञेयं कंसः प्रस्थाष्टकन्तथा ॥

कंसश्चतुर्गुणो द्रोणः चामर्णल्लवनश्चतत् ।

सएवकलशः ख्यातो घटश्चान्मानमेव च ॥

घटन्तु द्विगुणं सूर्पो विज्ञेयः कुरुभएव च ॥

गोणीशूर्पद्वयं विद्यात्स्वारीं भागीन्तथैव च

द्वान्निशत्विजानीयाद्वाद्दशूर्पाणिषुद्धिमान्

तुलांशतपलं विद्यात्परिमाणविशारदः ।

शुष्कद्रव्येष्विदं मानमेवमादिमकीर्तितम्

द्विगुणंतद्द्रवेष्विष्टं तथा सद्योद्धृतेषु च ॥

यद्धिमानन्तुलाप्रोक्तापलं वा तत्प्रयोजयेत्

अनुक्ते परिमाणे तु तुल्यमानं प्रकीर्तितम् ॥

अर्थ—छः वंशी की एक मारीचि होती

है (घर के जाली शरोखों में जो धूप

आती है उस धूप में जो रज के कण से

उडते दिखाई देते हैं उसे बंशी वा त्रसरेणु कहते हैं, तीस परिमाणु की एक बंशी वा त्रसरेणु होता है) छः मरीची की एक सरसों होती है । आठ सरसों की एकरत्ती वा तण्डुल । दो तण्डुल का एक धान्य मापक, दो धान्य मापक का एक जौ, चार जौ का एक अण्डका, चार अंडका का एक मामा वा हेम, वा धानक होता है ॥ तीन मापक का एक शाण, दो शाण का एक ब्रंक्षण, वा कोल वा बदर होता है । दो ब्रंक्षण का एक कर्प वा सुवर्ण, वा अक्ष, वा विडालपदक वा पिचु वा पाणितल, वा तिंदुक, वा कवलप्रह होता है ॥ दो सुवर्ण का एक पलार्द्र, वा शुक्ति वा अष्टमिका होता है । दो पलार्द्र का एक पल वा मुष्टि, वा प्रकुञ्च, वा चतुर्थिका, वा बिल्व, वा पोडशिका, वा आघ्र होता है । दो पलका एक प्रसृत, दो प्रसृत का एक अष्टमान वा कुडव, दो कुडव का एक मानिका, चार प्रलका एक अञ्जली वा कुडव, चार कुडवका एक प्रस्थ चारप्रस्थका एक आढक, वा पात्र, भाठ प्रस्थ का एक कंस चार कंस का एक द्रोण, वा अर्मण, वा टल्वन, वाघट वा कलश वा उन्मान होता है । दो घटका एक सूर्प वा कुम्भ होता है । दो सूर्प का एक गोणी, वा खारी, वा भारी होता है । दत्तीस सूर्प का एक चाह और सौपंट की एक तुला होती है ॥

यह शुष्क द्रव्यों का मान वर्णन किया गया है द्रव अथवा ताजी लिये हुए द्रव्य

इस तोल से दुगुने लिये जाते हैं । परन्तु जिनकी तोल पल से तुला पर्यन्त लिखी है वे उतनीही ली जाती है जहां द्रव्यों का परिमाण नहीं लिखा गया है वहां औषध समान भाग लेना चाहिये । [एक कुडव अर्थात् आघ्रसेर तक गीले द्रव्योंका द्विगुण ग्रहण न करे । कुडव से ऊपर गीले द्रव्य दूने लेने चाहिये । घी, खांड, गुड, शहता, दूध, तैल, और मद्य आदि के पक्षमें कुडव आठ पलका ग्रहण किया जाता है ना-रियल के सम्बन्ध में भी यह बात है)

द्रवत्रयाथेऽपिचानुक्तेमर्वत्रसलिलंस्मृतम् ।
यतश्चपादनिर्देशश्चतुर्भागस्ततश्चसः ॥

जलस्नेहौपधानान्तुप्रमाणतत्रनरितम् ॥
तत्रस्यादापधात्स्नेहः स्नेहात्तौयंचतुर्गु-

णम् ॥

अर्थ—पाचनादि स्थल में जो द्रव्य द्रव्यों का नाम न लिखा गया हो तो जल ग्रहण करना चाहिये । पादनिर्देश से चौथाई ग्रहण किया जाता है । जिस स्थान पर जल, औषध और स्नेह का प्रमाण न दिया गया हो वहां औषध से चौगुनास्नेह और स्नेह से चौगुना जल डाले ॥

स्नेहपाक के भेद ॥

स्नेहपाकस्त्रिधाज्ञेयोमृदुर्मध्वःखरस्तथा ।
तुल्येककलेननिर्यासेभेषजानामृदुःस्मृतः ॥
सम्पाकइचनिर्यासेमध्योद्वीविगुञ्चति
शीर्ष्यमाणेतुनिर्यासेयत्तमानेखरस्तथा ॥

अर्थ—स्नेह पाक तीन प्रकारका होता है, यथा—मृदु, मध्य और खर । जहां

स्नेह की गाद कलककी तरह पतली होती है, वह मृदुपाक होता है । जहां स्नेह की गाद अमलतास के गूदे के सदृश गाढी होती है वह मध्यपाक है । जो गाद कलछी से दूर होजाय परन्तु कुछ चिप चि पाहट सा रहे वह खरपाक है ।

स्नेहपाकोंकी प्रयोग विधि ।

खरोऽभ्यङ्गस्मृतः पाकोमृदुर्नस्तः क्रियासु च ॥ मध्यपाकन्तुपानार्थवस्तौचविनियो जयेत् ।

अर्थ—स्नेह का खरपाक अभ्यंगमें, मृदुपाकनस्याक्रियामें और मध्यपाक पाने और वस्तिकर्म में प्रयुक्त किया जाता है ॥

मान के भेद ।

मानञ्चद्विविधं प्राहुः कालिङ्गमागधं तथा कालिङ्गान्म गधं श्रेष्ठमेवंमानविदोविदुः ॥

अर्थ....मान दो प्रकारका होताहै । यथा-कालिङ्ग और मागध । परन्तु इन दोनों में मागध मान श्रेष्ठ है ॥

इस ग्रन्थमें कालिङ्गमान नहीं लिखाहै इसे हम भावप्रकाश से उद्घृत करते हैं ॥

कालिङ्ग मान ।

यद्योद्वादशभिर्गौरसर्पपैः प्रोच्यतेतुधैः ।
यद्यद्वयेनगुंजास्यात्त्रिगुजोवलयउच्यते ॥
मापोगुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्तुक्व-
चित् । चतुर्भिर्मापकैः शणः सनिष्कष्टं क-
एवच । गद्याणोमापकैः पद्भिः कर्पः स्या
दशमापकः ॥ चतुःकर्पपलं मोक्तं दशशानामि-
तंतुधैः ॥ चतुःपलं च कुडवः प्रस्थाद्याः पू-
र्ववन्मताः ।

अर्थ—चारह सफेद सरसों का एक जो होता है । दो जो की एक गुंजा वा रत्ती होती है । तीन रत्ती की एक बड़ी, आठरत्तीका एक मापा, तथा कोई २ सातरत्ती का भी मापा मानतेहै । चार मासेका एक शाण होता है उसी को निष्क वा टंक भी कहते हैं । छः मासेका एक गद्याणक होता है । दस मासे का एक कर्प, चार कर्प का एक पल अर्थात् दस शाण होते हैं । तथा चार पलका एक कुडव होता है । प्रस्थ से ऊपर की तोठ मागध परिभाषा के सदृश होती है ॥

कल्पस्थान का संक्षिप्तवर्णन ।

कल्पार्थः शोधनसंज्ञापृथग्धेतुः प्रवर्तने । दे-
शादीनां कलादीनां गुणयोगशतानिपद्-
विकल्पहेतुर्नामानिर्ताक्षणमध्याल्पलक्षण-
म् । विशिष्टावस्थिकोमानस्नेहपाकञ्च
दाशैतम् ॥

अर्थ—इस कल्पस्थान में कल्प के वि-
षय, शोधनकी संज्ञा, शोधन के पृथक् २
हेतु, देशादि के गुण, मेनफलादि द्रव्यों के
गुण, विरेचन के छःसौ योग, विकल्प के
हेतु, नाम, ताक्षण, मध्य और अल्प विरेचन
के लक्षण, आवस्थिक विधि, द्रव्योंका मान
तथा स्नेहपाक का वर्णन किया गया है ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विर-
चितायां चरकप्रतिस्संस्कृतायांसंहितायां

कल्पस्थानेदन्तीद्वन्तीकल्पानाम

द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इतिकल्पस्थानं समाप्तम् ॥

॥ श्रीहरिश्चन्दे ॥

॥ श्रीवृन्दावनविहारिणनमः ॥

॥ अथसिद्धिस्थानम् ॥

॥ प्रथमोऽध्यायः

अथातः कल्पनासिद्धिव्याख्यास्यामं
इतिहस्माद्भगवानाश्रेयः ।अर्थ—तदनन्तर भगवान् आश्रेय बोले
कि अब हम कल्पनासिद्धिनामक अध्याय की
व्याख्या करेंगे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

काकल्पनापञ्चमुकर्मसूक्ता क्रमश्चकःकि
श्चकृताकृतेषु ॥ लिङ्गतथैवातिकृतेषुसं
ख्याकाकिगुणाःकेषुचकाचवस्तिः ॥ किं
वर्जनीयं प्रतिकर्मकाले कृते कियान्वाप-
रिहारकालः । प्रणयमानश्चनयातिव-
स्तिःकेनेतिशीघ्रंमुचिराच्चकेन ॥ साध्या
गदाःश्वैःशमनैश्चकेचित् कस्मात्प्रयुक्तं
नैरामं व्रजन्ति ॥ प्रचोदितःशिष्यवरेणस
म्यक् इत्यग्निवेशेनभिषंग्वरिष्ठः ॥ पुनर्व
सुस्तन्त्रविदाहृतस्मै सर्वप्रजानां हिनका
भ्ययेदं ॥अर्थ.... आग्निवेशने नीचे लिखे हुए पारह
प्रश्न आश्रेय भगवान् से किये, यथा—(१)
वमन, विरेचन, स्वेदन, नस्य और वास्ति इन
पांचकर्मोंकी प्रक्रियाक्याहै? (२) इन सब
कर्मोंमें आहार/दिका नियम क्या है? (३)
सम्पक् प्रयुक्त असम्पक् प्रयुक्त अतिप्रयुक्तपंचकर्मों के लक्षण क्या हैं? (४) संख्या
क्या है? (५) गुण, क्या हैं? (६)
वस्ति क्या है? (७) प्रतिकर्म काल में
वर्जनीय, क्या है? (८) वमन विरेचन
के पीछे स्वाभाविक आहार विहारका कितने
दिन तक परित्याग करना चाहिये? (९)
वास्ति किस तरह से प्रवेश नहीं कर सक्ती-
है? (१०) वास्ति किस तरह शीघ्र प्रत्याग-
मन करती है? (११) वि.सतरह, देर में
प्रत्यागमनकरती है? (१२) कौन कौन से
साध्यरोग उनके नष्ट करने वाली औषधियों
से भी शान्त नहीं होते हैं? ॥आग्निवेश के इन प्रश्नों को सुनकर महर्षि
आश्रेय ने संसारके हितकी कामना से नीचे
लिखा हुआ उत्तर दिया ।

स्वेदनकालका निर्णय ।

त्र्यहावरं सप्तदिनपरन्तुस्निग्धोनरःस्वेदयि
तव्यउक्तः ॥ नातःपरंस्नेहनमादिशन्ति
सात्स्योभवेत्सप्तदिनात्परन्तु ॥अर्थ—यह बात सूत्रस्थान के स्नेहाध्याय
में वर्णन करदी गई है कि मृदु कोष्ठवाला
मनुष्य थोडासाही स्नेह सेवन करने से
तीन दिन में स्निग्ध होजाता है, यह स्नेह
मात्रा अधम है । तथा क्रूर कोष्ठवाला मनुष्य
सात दिन तक स्नेह सेवन करने से स्निग्ध
होता है यह स्नेह की उत्तम मात्रा है । सात
दिवस से पीछे रोगी को स्वेदन देना चाहिये
इससे पीछे स्नेहन कर्म करना ठीक नहीं
है क्योंकि सात दिन पीछे स्नेह सात्स्य होजाता है

स्नेहनं स्वेदनं का फल ॥

स्नेहोऽनिलं हन्ति मृदुं करोति देहं मला
नां चिनि हन्ति सङ्गम् ॥ सिग्धस्य मूष्मेष्ण्य
नेपुलीनं स्वेदस्तु दोषं नयति द्रवत्वम् ॥

अर्थ—स्नेह यातको नष्ट करता है, देह
को मृदु करता है, और मलकी विवद्धता
को दूर करता है। स्वेदन सिग्ध व्यक्ति
के सूक्ष्म स्रोतःसमूहों में लीन दोषों को
द्रव कर देता है ॥

ग्राम्बोदकानूपरसैःसमांसैरुत्कृष्टजनीयः
पयसा च वम्यः ॥ रसैस्तथा जाङ्गलजैः सयु
पैः सिग्धः कफावृद्धिकरो विरेच्यः ॥ श्लेष्मो
त्तरश्छर्दयति ह्यदुःखं विरेच्यते मन्दकफ
स्तु सम्यक् ॥ अथः कफेऽल्पे वमनं नियच्छे

द्विरेचनं वृद्धकफे तथाऽर्ध्वम्

अर्थ—जिसको वमन करानी हो उसे
पहिले ग्राम्ब, औदक, और आनूप मांस
और मांसरस तथा दूध का सेवन करा
के कफको उत्क्रोशित करना चाहिये जि-
ससे अपने आप वमन होजाय। इसी
तरह जिस विरेचन देना हो उसे कफको
न बढ़ानेवाले जांगल मांसरस और यूपद्वारा
सिग्ध करना चाहिये। क्योंकि ग्राम्बा-
दिके मांस सेवन से कफ-के बढ जाने के
कारण वमन सहज में होजाती है और
मन्द कफवाले को विरेचन सहज में हो-
जाता है कफके थोडे होने पर वमन कारण
आंधध नाचे की जाती है इसी तरह से कफ
के अधिक होने पर विरेचनकर्ता आंधध
ऊपर की जाती है ॥

सिग्धाय देयं वमनं यथोक्तं वान्तश्च पेयादि
रनुक्रमश्च । सिग्धस्य च सिग्धवतश्च का
र्यं विरेचनं योग्यतमं ततश्च ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को वमन देना होय
उसको प्रथम सिग्ध-करले पीछे अच्छी
तरह वमन होने पर पेयादि क्रम का पालन
करावे। इसी तरह जिसको विरेचन देना
होय उसे प्रथम स्नेहन और पीछे स्वेदन
देकर योग्यतम विरेचन देवे ॥

पेयां विलेपी मकृतं कृतं च यूपरसं त्रिद्विरथैक-
शश्च । क्रमेण सेवेत विशुद्धकायः प्रधान
मध्यावरं शुद्धिशुद्धः ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम, और अधम
तीन प्रकार का शोधन होता है। इन
तीनों प्रकार से शुद्ध शरीर वाला मनुष्य
क्रम से पेया, विलेपी, कृताकृत यूप और
मांसरस का तीन बार, दोवार, या एकवार
करके सेवन करे ॥

पेयादि से अन्तराग्नि की ॥

वृद्धि का वृष्टान्त ॥

यथा पुराग्निस्तृणगोमयाद्यैः सन्धुक्षमाणो
भवति क्रमेण महान्स्थिरः सर्वसहस्तथैव
शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्निः ।

अर्थ—जैसे अणुमात्र अग्नि प्रथम ति-
नुके, फिर उपले और फिर फाट में लग
कर महान् दृढ और सर्वसह होजाती है
उसी तरह शुद्ध मनुष्य की अन्तराग्नि
क्रम से पेयादि द्वारा बढाई हुई महान्
दृढ और सबको पचाने वाली होजाती है
(' सर्वसहः, और' सर्वपचः दोनों पाठ है)

वमन विरेचन के वेग ॥

जघन्यमध्यमवरेतुवेगाः चत्वारइष्टावमने
पडष्टौ । दशवतेद्वित्रिगुणाविरेकेप्रस्यस्त
धाद्वित्रिचतुर्गुणश्च ।

अर्थ—वमन के अधम वेग चार, मध्यम छः और उत्तम वेग आठ होते हैं, इसी तरह विरेचन के अधम वेग दस, मध्यम बीस और उत्तम तीस वेग होते हैं, वात द्रव्य का प्रमाण एक प्रस्थ होने से उत्तम, पौन प्रस्थ होने से मध्यम और आधा प्रस्थ होने से अधम मात्रा होती है । इसी तरह विरेचन द्वारा निकले हुए मलका प्रमाण दो प्रस्थ हो तो अधम, तीन हो तो मध्यम और चार प्रस्थ हो तो उत्तम होता है [शिवदास लिखते हैं कि प्रस्थ साठे तरह पल का होता है]

वमनविरेचनकीअवधि ॥

पित्तान्तमिष्टवमनंतथोर्ध्व

मधःकफान्तंचविरेकमाहुः ॥

अर्थ—जबतक वमन में पित्त न आने लगे तबतक वमन कराना ठीक है और जबतक मल में कफ का दर्शन न हो तब तक विरेचन कराना उचित है ।

वमनविरेचनमेंप्रथमवेगोंकानिपेध ।

द्वित्रीनसविट्कानपनीयवेगान् ॥

पेयंविरेकेवमनेतुपीतम् ॥

अर्थ—विरेचन के वेगोंको उक्त संख्या में औषध के पीतेही जो दो तीन वेग होते हैं वे गिनेनही जाते हैं इसीतरह वमनवेगों में भी पहिले दो तीन वेग नहीं गिनेजाते

हैं जिन में पीढ़ई औषध निकलती है ।

सम्यग्वागितकैलक्षण ।

क्रमात्कफःपित्तमथानिलश्च यस्येति स
म्यग्वागितःसतुस्यात् ॥ दृत्पाश्वमूर्धन्दि
यमार्गशुद्धीतथालघुत्वेऽपिचलक्ष्य

माणे ॥

अर्थ—क्रम से कफ, पित्त और डकार आयेँ तो समझना चाहिये कि वमन ठीक हुई है । तथा वमन के ठीक होनेपर हृदय पसली, मूर्धा, इन्द्रियगण और स्रोतःसमूह शुद्ध होजातेहैं और देहभी हलकी होजातीहै ।

असम्यग्वमनके लक्षण ।

दुश्छार्दितेस्फोटककोठकण्डू ।

हृत्त्वाविभृदिर्गुंगाप्रताच ॥

अर्थ—जो वमन ठीक नहीं हुई हो तो फोडे, पित्ती, खुजली, हृदय की अशुद्धि, इन्द्रियों की अशुद्धि और देहमें भारापन होताहै अतिवमन के लक्षण ।

तृण्योहमूर्च्छानिलकोपनिद्रा ॥

बलादिहानिर्वमनेऽतिचस्यात् ॥

अर्थ—वमन के अत्यन्त होने से तृण्य मोह, मूर्च्छा, वातकोप, निद्रा हानि, और बलहानि ये लक्षण होते हैं ॥

सम्यग्विरिक्त के लक्षण ॥

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसंप्रसादौलघुत्वम्
जोऽग्निरनामयत्त्वम् ॥ प्राप्तिश्चविट्पित्त
कफानिलानाम् । सम्यग्विरिक्तस्यभवे
त्क्रमेण ॥

अर्थ—सम्यग्विरेचन होने पर स्रोतःसमूह की विशुद्धि, इन्द्रियों में प्रफुल्लता, देह

में हलकापन, बलवृद्धि, अग्नि की तीक्ष्णता, अनारोग्यत्व, तथा विष्टा, पित्त, कफ और अधोवायु का अच्छी तरह निःसर्ण होता है

असम्पग्निविरक्तके लक्षण ।

स्यात्सलेष्पापिचानिलसंश्लेषः साद-
स्तथाग्नेर्गुरुताप्रतिशया । तन्द्रातथाछर्दि-
ररोचकश्च वातानुलोम्यनचदुर्वरिक्ते ।

अर्थ—सम्पग्निवरेचन न होने पर कफ पित्त और वात का प्रकोप होता है। अग्नि की मन्दता, देह का भारापन, प्रातःश्याय तन्द्रा, वमन अरुचि, और वात का प्रति-
लोम होता है ।

अतिचिरिक्तके लक्षण ।

कफान्नपित्तक्षयजाऽनिलोत्थाः सुप्त्यक्रम-
र्द्वलप्रवेपनाद्याः ॥ निद्राबलाभावतमः
प्रलापःसोन्मादाहेकादविविरोचितेऽति ॥

अर्थ—अत्यन्त विरेचन होने पर कफ, रक्तपित्त, क्षय और वात से उत्पन्न होने वाले रोग होते हैं । तथा सुप्ति, अंगमर्द, क्लान्ति, कम्पन, निद्राभाव, बलाभाव, तमः प्रवेश, उन्माद और हिचकी ये उपद्रव्य होते हैं।

संसृष्टभक्तनवमेऽह्निसर्पिस्तंभाययेताप्य-
नुवामयेद्वा । दद्याच्चहात्रातिबुभुक्षिताय
तैलाक्तगात्रापततो निरुहम् ॥ प्रत्यागते
मांसरसेन भोज्यः समीक्ष्यवादोपबलं यथा
हम् ॥ नरस्ततो निश्यनुवासनाहोनात्साशि-
तः स्यादनुवासनीयः ॥

अर्थ—सम्पक्क वमन विरेचन के पीछे क्रम से पेयादि का सेवन कराके नवें दिन

भात का भोजन कराके घृत पान करावे अथवा अनुवासन देवे । तदनन्तर तीन दिन पीछे शरीर को अच्छी तरह से तैल से सिक्त कराके कुछ खवाकर निरूहण वरित देवे । निरूहण के प्रत्यागमन करने पर दोप और बलकी परीक्षा करके जांगल मांसरस का भोजन करावे । और अनुवासन के पांच होने पर उसीदिन रात्रि के समय थोड़ा भोजन कराके अनुवासन वरित देवे ॥

शीतेवसन्ते च दिवानुवास्यां रात्रौ शरत् प्री-
ष्मघनागमेपुतानेव दोषान्परिरक्षितायो-
स्नेहस्पपानेपरिकीर्तिताः प्राक् ॥

अर्थ—शीत और वसन्त ऋतु में दिनके समय और शरद, श्रौष्ठ और वर्षा में रात्रि के समय अनुवासन देनी चाहिये । स्नेहपान में जो २ दोष निरूपण कियेगये हैं वेही सब अनुवासन में भी लागने चाहिये ॥

प्रत्यागतचाप्यनुवासनीये दिवा मदेयं च-
यिताय भोज्यम् । सायञ्च भोज्यं परतश्च-
देवाय हेऽनुवास्याऽहनि पञ्चमे वा ॥

अर्थ—अनुवासनीय तैल के प्रत्यागमन करने पर रात्रि में उपवास कराके प्रातः काल भोजन करावे । और अनुवासनीय तैल के दिन में प्रत्यागमन करने पर रात्रि में भोजन करावे, परचात् तीन दिन पीछे वा पांच दिन पीछे अनुवासन देवे ॥

अह्निसर्पिस्तंभाय येताप्यनुवामयेद्वा ।
दद्याच्चहात्रातिबुभुक्षिताय तैलाक्तगात्रापततो निरुहम् ॥ प्रत्यागते
मांसरसेन भोज्यः समीक्ष्यवादोपबलं यथा हम् ॥ नरस्ततो निश्यनुवासनाहोनात्साशि-
तः स्यादनुवासनीयः ॥ एकं तथा त्रीणकफजोषिकारोपि
चात्मकेपञ्चतुसप्तवापि ॥ वातेन चैकाद-
शवापुनर्वावस्तीनयुग्मानकुशलो विदध्यान्

अर्थ—इस तरह दोषों के अनुसार निरूहण से दो दिन पीछे, तीन दिन पीछे अथवा पांच दिन पीछे, अनुवासन वरित देवे। कफज विकार में एक वा तीन वरित, पित्तज विकार में, पांच वा सात, वातज विकार में नौ वा ग्यारह वरित देवे। इस तरह उना वरित देवे जैसे एक, तीन, पांच, सात। परन्तु दो चार, छः आठ आदि न देवे।

नरो विरिक्तस्तु निरूहदानम् । विवर्जयेत् सप्तदिनान्यवश्यम् ॥ शूद्रो विरेकेनानि रूहदानम् । तज्यस्तशून्यं विकृपेच्छरीरम्

अर्थ—विरेचन कराने के पीछे सात दिन तक निरूहण वरित देना ठीक नहीं है क्योंकि विरेचन द्वारा शुद्ध हुए मनुष्य को निरूहण का देना उस के शून्य शरीरका आकर्षण कर लेता है।

वास्ति के गुण ॥

वास्तिर्वयस्यापि तासुखायुर्बलाग्निमेधा स्वरवर्णकृच्च । सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयु नाम् । निरल्पयः सर्वगदापहश्च । विट हलेष्ममूत्रानिलपित्तकर्षी स्थिरत्वकृत् शुक्रस्रुतप्रदश्च ॥

अर्थ—वास्ति वय को स्थापित करती है सुख, आयु, बल, अग्नि, मेधा, स्वर और वर्ण को बढ़ाती है। बालक, वृद्ध और युवा पुरुषों के सम्पूर्ण कार्य करनेवाली है। इसमें कोई उपद्रव नहीं होता है यह संपूर्ण रोगों के नाश करनेवाली है। विष्टा निच, मूत्र, पायु और कफ को निकालती

है दृढ़ता बढ़ाती है, वायु और सन्तान के देनेवाली होती है ॥

निरूहणवास्तके गुण ।

विश्वकृष्यंतदोपचर्यनिरस्याः

सर्वान्विकारानुशमयेन्निरूहः ॥

देहो निरूहेण विशुद्धमार्गं सस्नेहनं वर्णवलप्रदम् ॥
अर्थ—निरूहवास्ति संपूर्ण देहके दोषों को निकालकर संपूर्ण विकारों को शान्त कर देती है। निरूहण द्वारा श्लेष्मः समूह के शुद्ध होने पर स्नेहनं कर्म किये जाने पर वर्ण और बल बढ़ता है।

अनुवासन के गुण ।

नान्वासनात्किञ्चिदिहास्तिकर्मपरं विशेषेण समीरणान्ते । स्नेहेन रौक्ष्यं लघुबां गुरुवादाप्य्याच्च शैत्यं पवनस्य हृत्वा ॥ तैलं ददत्याशु मनः प्रसादधीर्बलवर्णमथां भिषुष्टिम् । मूलेनिपिक्तो हियथाशुमः स्यात् श्रीलच्छदः कोमलपल्लवाग्रः काले महान् पुष्पफलप्रदश्च तथा नरः स्यादनुवा-

सनेन ॥

अर्थ—वायु के दूर करने के लिये अनुवासन से अधिक और कोई उत्तम कर्म नहीं है। क्योंकि तेल की चिकनाई ॥ वायुकी रूक्षता, भ्रंशपन से लघुता और उष्णता से शीतलता दूर हो जाते हैं ॥ तेल शीघ्र ही मन को प्रसन्न करता है और वायु बल, अग्नि पुष्टि को बढ़ाता है। जैसे वृक्षकी जड़ में जल सींचने से उसके प्रते हरे, शोभायुक्त और पत्तों के अग्रभाग

कोमल होजाते हैं और समय पाकर बड़ी होकर बहुत से फल पुत्र देने लगता है इसीतरह मनुष्यों के लिये अनुवासन क्रिया है स्तब्धाश्चयेसंकुचिताश्चयेऽपि येषद्वा येऽपिचरुगणभग्नः ॥ येषांचशाखांसुचरन्तिवाताः शस्तोविशेषेणचतेपुवस्तिः॥ आध्यापनेविग्रयितेपुरीषे शूलेचभक्ता नभिनन्दनेच। एवंप्रकाराश्चभवान्तिकुक्षौ येचामयास्तेपुचचीस्तरिष्टः ।

अर्थ—जो मनुष्यवायुसे स्तब्ध, संकुचित पंगु तथा रोगों से भग्न हैं, जिनके हाथ पावों में वायुचिरती है, उन के लिये वस्ति बहुत हितकारी होती है। जिसको अपरा हो, जिसके विष्टा में गुठले पड गये हों, जिसके शूलहो, जिसकी भाजन में अरुचि हो, तथा जिसकी कुक्षि में अन्यथातज रोग हों, उन सब के लिये वस्ति अत्यन्त हित है याश्चस्त्रियांवातकृतोपसर्गाद्भर्भनशुद्धन्तिनृभिःसमेताः ॥ क्षीणेन्द्रियायेचनराः कृशाश्चवस्तिःप्रशस्तःपरमश्चतेपु। उष्णाभिभूतेपुवदन्तिशीतान् शीताभिभूतेपु तथासुखोष्णान् ॥ तत्प्रत्यनीकौपधसंप्रयुक्तान् सर्वत्रवस्तानिप्रविभज्ययुञ्ज्यात् ॥

अर्थ....जिन स्त्रियों के वातज रोगों के कारण पुरुष के सहवास से गर्भ नहीं रह सकता है और जो पुरुष क्षीणेन्द्रिय और दृश हैं, उन के लिये वस्ति बहुतही हित है। उष्ण प्रवागरोगों में शीत वीर्य वाली औषधों के योग से और शीताभिभूत रोगों में उष्ण औषधों के योग से वस्ति देवै ।

अर्थात् जैसा रोग हो उसके प्रतिकूल औषधों के संयोग से वस्ति देवै ।

वृंहणवस्ति के अयोग्यव्यक्ति ॥
नवृंहणीयान्विदधीतवस्नी न्विशोधनी येपुगेदपुवद्यः ॥ कुष्ठप्रमेहादिपुमदुरेपु नरेपुयेचापिविशोधनीयाः ॥

अर्थ....वेद्य को उचित है कि जो रोग संशोधन के योग्य हैं उन में वृंहण वस्ति न देवै ॥ कुष्ठ और प्रमेहादि रोगों में मूद संसृष्टरोग में तथा अन्य संशोधनीय रोगों में वृंहण वस्ति न देवै ॥

संशोधन वस्ति का निषेध ।
क्षीणक्षतानाम्चविशोधनीया नशोषिणानोभ्रशुर्बलानाम् ॥ नमूर्च्छितानान् विशोधितानाम् येषान्चदोषेपुनिवद्धवायु अर्थ....क्षीणक्षत रोगी, शोषरोगी अत्यन्त दुर्बल, मूर्च्छाप्रस्तरोगी, तथा संशोधित मनुष्य को संशोधन वस्ति न देवै ॥ तत्र त्रिणके दोषों में वायु निवद्धहो, उन्हें भी संशोधन वस्ति न देवै ॥

वायुजन्य रोगों में वस्ति को प्रधानता ।
शाखागताःकोष्ठगताश्चरोगा । मर्मोर्ध्व सर्वात्रयवांगजाश्च । येसन्तितेषान्तुक् शिचदन्यो । वायोःपरंजन्मानिहेतुरस्ति॥

विण्यूत्रापिचादिमलाचयानाम् ।
विशेषसंहारकरःसयस्मात् । तस्यातिवृद्ध स्पशमायनान्य द्रुस्तेनृतेभेपजगरितकिः च्चिचस्माच्चिकित्साद्भिमितिश्रुवन्ति ॥
सर्वोचिकित्सायापिवास्तिमेके ।

अर्थ—जो रोग हाथ पांवों में होते हैं जो रोग कण्ठ में है, जो मर्म स्थान में है, जो ऊर्ध्वगामी है, जो संपूर्ण अंगों में होते हैं वा अवयवों में होते हैं, ऐसे सब रोगों की उत्पत्ति का कारण वायु ही है। वायुही विष्टा, मूत्र और पित्तादि दोषों का संचय और विक्षेप करती है। इस बड़ी हुई वायु के शमन करने के लिये वास्तिके अतिरिक्त और कोई औषध ही नहीं है, इस लिये वास्तिके चिकित्सा कहते हैं किसी किसी के मत में वास्तिके को संपूर्ण चिकित्साही कहते हैं।

सम्यक् मयुक्त वास्तिके लक्षण ।
नाभिप्रदेशकट्टिपार्श्वकुक्षिगत्वाशकृदोप
त्रयंविपोत्थय । संस्नेहकायंसपुरीषदोषः
सम्यक्मुखेनेतिचयःसवास्तिके ॥

अर्थ—नाभि प्रदेश में कमर, पसली और कूख में जाकर मलदोषके समूह को मथित करके तथा शरीर को स्निग्ध करके पुरीष दोष को साथ लेकर लौटती है उसे असम्यक् प्रयुक्त वास्तिके कहते हैं। (यहां पाठान्तर भी है) नाभिप्रदेशकट्टिपार्श्वगत्वा कुक्षि समालोच्य पुनश्चपार्श्वम् । संस्नेह कायं शिथिलांश्चकृत्वा दोषान्पुरीषं प्रथितं विमथ्य ॥ स्वसक्तवेगःसपुरीष दोषःप्रत्यागतो वास्तिरतिप्रशस्तः ।)

सम्यक्प्रयुक्तनिरूहकेलक्षण ।
मसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वं । रुच्यग्रिवृद्ध्या
पायलाघवानारोगोपशान्तिःप्रकृतिस्थता
चवलञ्चतत्स्यामुनिरूढालिङ्गम् ॥

अर्थ—निरूहणवास्तिके के सम्यक् प्रयोग होनेपर मल, मूत्र और अधोवायु का परिश्रय होता है रुचि और अग्निही वृद्धि होती है। आमाशय, ग्रहणी, मलाशय और मूत्राशय में हलकापन होता है। रोगों की शान्ति होती है, दोष प्रकृतिस्थ होजाते हैं और बल भी बढ़ता है ॥

असम्यक्निरूहितकेलक्षण ।
स्याद्गुक्छिरोहृद्गुदकुक्षिलिङ्गेशोफःप्र
तिश्यायविकर्त्तिकाच । हृल्लासिकामा
रुतमूत्रसंगः ॥ श्वासीनसम्यक्चनिरू
हितस्य ॥

अर्थ—निरूहणवास्तिका सम्यक् प्रयोग न होनेपर शिर, हृदय, गुदा, कूख और लिंग में शूल होता है। सूजन, प्रतिश्याय और विकर्त्तिका होती है। तथा हृल्लास, यातविवन्ध, मूत्रविवन्ध, और श्वास भी उत्पन्न होते हैं

अतिनिरूहितकेलक्षण ।
लिंगयदेवाभिचिरेचितस्य
भवेत्तदेवातिनिरूहितस्य ॥

अर्थ—जो लक्षण विरेचन के अतियोग के होते हैं, वहां अत्यन्त निरूहित के होते हैं ॥

सम्यक्अनुवासितकेलक्षण ।
प्रत्येत्यसक्तसशकृच्चतैलंरक्तंदिशुद्धी
न्द्रियसंप्रसादः । स्वप्नानुवृत्तिलघुताव
लञ्चसृष्टाश्वेगाःस्वनुवासितेस्युः ।

अर्थ—सम्यक् अनुवासन होनेपर तेल विना रुकावट के विष्टा को लेकर बाहः

आजाता है । रक्तादिधातु और पांचों बुद्धीन्द्रिय प्रकुल्लित होजाती है, निद्रा आजाती है । देह में हलकापन और बल बढता है और मलमूत्रादिकी प्रवृत्ति अच्छी रीति से होती है ॥

असम्यक् अनुवासितकेलक्षण ।

अधःशरीरोदरबाहुपृष्ठपार्श्वेषुरुक्षस्वरञ्च गात्रम् । ग्रहाश्चाविष्णुसमीरणानाम् असम्यगेतान्यनुवासितस्य ॥

अर्थ—अनुवासनवस्ति के ठीक न होने पर शरीर के नीचे के भाग में, उदर में बाहु में, पीठ में, और पसलियों में दर्द होता है । शरीर रूखा और खरदरा होजाता है । विष्टा, मूत्र और वायु का विवन्ध होता है ॥

अत्यनुवासितकेलक्षण ॥

वृष्टाममोहकमसादमूर्च्छा

विकर्तिकाचाल्यनुवासितस्य ।

अर्थ—अनुवासन वस्ति का अतियोग होने से वृष्टांत, मोह, क्लान्ति, अवसाद, मूर्च्छा और पेट में मरोड़ा होता है ॥

यस्येहयामाननुवर्ततेत्रीन्स्नेहावरःस्पात्सविशुद्धदेहः । आश्वानोऽन्यस्तुपुनर्विधेयः स्नेहानसंस्नेहयतेऽतिष्ठन् ॥

अर्थ—अनुवासन का तेल शरीरमें तीन पहर तक रहने से देह शुद्ध होताहै । तेल के शीघ्र निकल जाने पर फिर अनुवासन देना चाहिये, जो तेल शरीर में नहीं ठहरता है वह स्निग्ध नहीं करसका है ।

वस्तियों की संख्या ॥

त्रिंशत्स्पृताः कर्मसुवस्तयोहिकालस्ततोऽर्द्धेनततश्चयोगः । सान्वासनाद्वादशैव निरूहाः प्राक्स्नेहएकः परतश्चपञ्च ॥ कालेत्रयोन्तःपुरतस्तथैकः स्नेहानिरूहान्तरिताश्चपट्स्पृः योगं निरूहात्रयएवदेयाः स्नेहाश्चपञ्चैवपरादिमध्याः ॥

अर्थ—कर्मवस्ति तीस हैं कालवस्ति पन्द्रह हैं । अनुवासन और निरूहण बारह २ हैं इनवस्तियों के देने का क्रम यह है कि ये वस्तियां स्वेदन, वमन, विरेचन और नरय कर्म के भीतरही इस रीति से दी जाती हैं कि स्नेहन और स्वेदन के पीछे एक स्नेह वस्ति देकर वमन करावै, फिर एक स्नेहन वस्ति देकर विरेचन करावै पीछे एक बार स्नेह वस्ति और एक बार निरूहवस्ति देकर इस क्रम से बारह निरूह वस्ति और बारह स्नेह वस्ति देकर नस्यकर्म करावै । पीछे पांच स्नेहन वस्ति देवै तथा एक स्नेहन वस्ति पहिलेदी गई थी इसतरहसब मिलकर तीसवस्ति हुईं इनको कर्मवस्ति कहतेहैं वस्ति के ऊपर वस्ति न देनी चाहिये, एक २ वस्ति के पीछे पेयादि क्रम का पाठन कराता रहे । काल वस्ति पन्द्रह होती हैं, ये बर्षा ऋतु में वायु की शान्ति के लिये दी जातीहैं। कालवस्तिके प्रयोगकी यह रीति है कि प्रथमही एक स्नेह वस्ति देवै, फिर एक निरूह इसी क्रम से बारह वस्ति देवै, अन्त में तीन स्नेहन वस्ति एक के ऊपर एक देवै । योग वस्ति आठ

होती है, ये यात्री कारण के लिये दी जाती हैं। इस में पहिले और पीछे एक एक अनुवासन वस्ति देवे बीच में तीन निरूहण और तीन अनुवासन देवे ॥

अनिपञ्चराहुश्चतुरोऽथपट्वावाताधिके
भ्रष्टस्त्वनुवासनान्यान् । स्नेहान्प्रदाया
शुभिपगिवदध्यात्स्रोतोविशुद्ध्यर्थमतो
निरूहम् ॥

अर्थ—याताधिक्य रोगों में तीन, पांच, चार या छः अनुवासन वस्ति देकर स्रोतों के शुद्ध करने के लिये निरूहण वस्ति देवे।

शिरोविरेचन की विधि ॥

विशुद्धकायस्यततःक्रमेणास्निग्धंतुतैस्वेदि
तप्तुत्तमांगम् । विरेचयेत्त्रिद्विरथैकशोवाव
लंसर्माक्ष्यत्रिविधमलानां ॥

अर्थ—धमन विरेचनादि से शरीर के शुद्ध होने पर शिरोविरेचन के लिये पूर्वोक्त तेल से मस्तक को स्निग्ध और स्निग्ध करे, इस तरह रोगी का घल और तीनों दोषों को देखकर तीन, दो या एक बार शिरोविरेचन देवे ॥

सम्यक् प्रयुक्त शिरोविरेचन के लक्षण ॥

उरःशिरोलाघवमिन्द्रियाणाम् ।

स्रोतोविशुद्धिश्चभवेद्दिशुद्धे ॥

अर्थ—सम्यक् रीतिसे शिरोविरेचन होने पर वक्षःस्थल, सिर और इन्द्रियों में हल कांपन होता है और सब स्रोत शुद्ध होजाते हैं

असम्यक् शिरोविरेचन के लक्षण ॥

गलोपलेपःशिरसोगुरुत्वं ।

निष्ठीवनंचाप्यथदुर्विरिक्ते ॥

अर्थ—अच्छी तरह शिरोविरेचन होने पर कंठ में कफकी ल्हिसावट, सिर में भारापन और मुख में थूक भरना यह लक्षण होते हैं ॥

शिरोविरेचन का अति योग ॥

शिरोऽक्षिशंखश्रवणाक्षितोदा ।

दत्यर्थशुद्धस्तिमिरेचपश्येत् ॥

अर्थ—शिरोविरेचन का अतियोग होने पर माथा, आंख, कनपटी और कान में मुई छिदने की सी पीढा होती है और रोगी की आंखों के साम्हने अंधेरा सा छाजाता है ॥

वस्तिप्रयोग के अन्य नियम ॥

स्यात्तर्पणंतत्रमृदुद्रवश्चस्निग्धस्यतीक्ष्णन्तु
पुनर्नयोगे । इत्यातुरस्यस्थसुखमयोगे
बलायुषोर्द्विकृदास्यघ्नः ॥ फालस्तुव
स्त्यादिपुयातियावां स्तावान्भवेद्द्विः

परिहारकालः ॥

अर्थ—शिरोविरेचनके अतियोगादि में रोगी को स्निग्ध करके मृदु और द्रव तर्पण देवे। इस में तीक्ष्ण द्रव्योंका संयोग न करे रोगी और स्वस्थ पुरुष को ऐसे प्रयोग होने से बल और आयुकी वृद्धि होती है और रोग का नाश होजाता है। बस्त्यादि कर्मों में जितना समय लगता है उस से दुगुना काल पेयादि कर्मके पालन में लगना चाहिये ॥

पंचकर्म के पीछे वाजित कर्म ।

अत्याशन्नस्यानवचांसियानम् स्वमेदि
वामैथुनवेगरोधान् । शीतोपचारातपशो-

करोपां स्त्यजेदकालाहितभोजनञ्च ॥

अर्थ—पंचकर्मसे पीछे अति भोजन, अत्यन्त बैठना अत्यन्त घोलना, अत्यन्त चलना दिनमें सोना, मैथुन, मलमूत्रादिके उपस्थित वेगों का अवरोध, शीतोपचार, धूप, शोक, रोग अकाल भोजन और अहित भोजन ये सब त्याग देने चाहिये ॥

घट्टेप्रणीतिविषमेचनेत्रे ।

मार्गेतधार्षःकफविद्विविबन्धे ॥

नयातिवस्तिमसुखंनिरेति ।

दोषावृत्तोऽल्पोयंदिवालपर्ययः ॥

अर्थ—वस्तिके, नल का मुख बद्ध वा विषम प्रणीत हो अथवा अर्शका मार्ग कफ घो बिष्टा से बन्द हो, उस में वस्ति न सहज में प्रवेशही कर सकती है और न आही संकती है । वस्ति का मार्ग यदि दोनों से आवृत हो वा वस्ति का द्रव्य अल्प वा निर्धर्य तैलादि से बना हो तौ भी ऊपर कही हुई दशा होती है ॥

मासुत्थयोऽनिलमूत्रवेगे वातेघिवृद्धेऽल्पवलेगुदेवा । अत्युष्णतीक्ष्णश्चमृदाप्रकोष्ठे प्रणीतमात्रःपुनरेतिवस्तिः ॥ मेदःकफाभ्यामनिलोनिरुद्धः शूलांगसृष्टिश्चयधूनकरोति ॥ स्नेहन्त्युष्णञ्जन्नधुषस्तु तस्मै सम्बर्धयत्पेवहितान् विकारान् ॥

अर्थ—घिटा, अधोवायु और मूत्रका वेग उपस्थित हो, वायुकी वृद्धि हो, गुदा अल्प बलपुत्र हो कोष्ठ मृदु हो और वस्तिद्रव्य अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण हो तौ वस्ति प्रवेश करते ही लोट आती है । मेद और

कफसे रुकी हुई वायु शूल 'अंगसृष्टि (सुन्ता] और सूजन उत्पन्न करती है । इसको अबुध वैद्य वात विकार समझ कर अनुवासनादि प्रयोग करता है । तौ इससे रोगों की वृद्धिही होती है ॥

रोगास्तथान्येऽप्यवितर्क्यमाणाः

परस्परेणावगृहीतमार्गाः॥सन्दूषिताधातुभिरेवचान्यैः॥ स्वैर्भेषजैर्नोपशमंभृजन्ति ॥

सर्वश्चरोगप्रशमायकर्म हीनातिमात्रं

विपरीतकालम् । मिथ्योपचारश्चनतं वि

कारं । शान्तिनयेत्पथ्यमपिप्रयुक्तमिति

अर्थ इस तरह एक दोष द्वारा दूसरे

दोष का मार्ग रुक जाने पर अन्य २ रोग

प्रकट होजाते हैं । अन्य धातुओं से दूषित

दोष रुद्ध मार्ग होकर अपनी २ औषधों से

शान्त नहीं होते हैं । रोगी के पथ्य मेधन

करने पर भी यदि रोग की औषध अच्छी

तरह से प्रयुक्त न हुई हो, हीन, वा अधिक

वा मिथ्य प्रयुक्त हुई हो वा विपरीत कालमें

प्रयुक्त हुई हो तौ रोगकी शान्ति नहीं होती है

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

प्रश्नानिमान्द्रादशपञ्चकर्मण्युद्दिश्यसिद्धाविहकल्पनायाम् । प्रनाहितार्थभगवान्

महार्थान् मम्यकृजगादार्पवरोऽत्रिपुत्रः ।

अर्थ—इस कल्पना सिद्धि नामक अध्याय में भगवान् आश्रय ने प्रजा के हित के लिये वमन विरेचनादि पंच कर्म सम्बन्धी

चारह गूढ प्रश्नों का उत्तर दिया है ॥

इतिश्री चरकसंहितायां सिद्धिस्थाने

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथातःपञ्चकर्मायांसिद्धिव्याख्यास्यामः

इतिहस्तादभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम पञ्चकर्माय सिद्धिकी व्याख्या करेंगे ।

येपांयस्मात्पञ्चकर्माण्यश्रिवेशनकारयेत्
येपांश्चकारयेद्यानितस्सर्वसंप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—हे अश्रिवेश ! जिन के विषयमें पंचकर्म करने के योग्य नहीं है और जिन के विषय में पंचकर्म करने के योग्य हैं अब हम उनकी व्याख्या करेंगे ।

पंचकर्मकेअयोग्यव्यक्ति ॥

चण्डःसाहसिकोभीरु कृतघ्नोव्यग्रएवच
सद्वैद्यनृपतिद्वेषात्प्रिष्टःशोकपीडितः ॥

यादृच्छिकोमुष्पुंसचबिहीनःकरुणैश्चयः
वैरीवैद्यविदग्धश्चश्रद्धाहीनःसुशक्तितः ॥

भिपजाभिषेधेयश्चनक्रम्याहिभिपग्विदा
एतानुपाचरन्वैद्योभहूनदोषानवाप्नुयात् ॥

एभ्योऽन्येसमुपक्रम्यान्राःसर्वैरुपक्रमः ॥
अवस्थांविभिवज्यैर्पांश्चकार्यचवक्ष्यते ॥

अर्थ—चण्ड, साहसी, भीरु, कृतघ्न, व्यग्र, सदैवद्रोही, राजद्रोही, विद्विष्ट, शोकपीडित, यदृच्छाचारी, मुष्पुंस, करुणहीन, वैरी, वैद्याभिमानी, श्रद्धाहीन, शंकाकेचित्त, वैद्य की पताई हुई यात का न करनेवाला ये सब पंचकर्मके योग्य नहीं है । ऐसी की चिकित्सा करनेसे वैद्य अत्यन्त पापका भागी होता है । इनको छोड़कर अन्य मनुष्य सम्पूर्ण चि-

कित्साओं के योग्य होते हैं । इनमें अवस्था भेद से जो जो कार्य वर्जनाय हैं उनकी व्याख्या करते हैं ।

वमनकेअयोग्यव्यक्ति ।

अच्छर्दनीयास्तावत्तक्षीणातिस्थूलकृ
शवालचृद्धदुर्बलश्रान्तपिपासितक्षुपितक
र्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्याप्या
मचिन्तामशक्तक्षामगर्भिणीसुकुमारसंवृत
कोष्ठदुश्छर्दनीध्वरक्तपित्तप्रसक्तच्छर्दिन्
ध्ववातास्यापित्तानुवासितहृद्रोगोदावत्
मूत्राघातप्लीहगुल्मोदराप्लीलास्वरोपधा
ततिमिरशिरोःशंखकर्णाक्षिपाश्वशूलार्ताः

अर्थ—क्षतक्षीण, अतिस्थूल, कृश, वा-

लक, वृद्ध, दुर्बल, श्रान्त, त्याग्य, क्षुधा-
र्य, परिश्रम से थका हुआ, वास से थका हुआ, मार्ग से थका हुआ, उपवाससेक्रान्त
मैथुन, अध्ययन, व्यापाम, चिन्ता इन से
थका हुआ, क्षाम, गर्भिणी, सुकुमार, संवृत-
कोष्ठ (जिसको सहज में वमन न होसकी
हो, दुश्छर्दनीय, ऊर्ध्वगामी, रक्तपित्त से
पीडित, वमनरोगी, ऊर्ध्ववातरोगी, आस्था-
पित्त [जिसको आस्थापन योस्त दीगई हो]
अनुवास्तित, हृद्रोगी, उद्वातरोगी, मूत्र-
घातग्रस्त, प्लीहारोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी
अप्लीहारोगी, स्वरभंगरोगी, तिमिररोगी,
शिरोरोगी, कनपटी के रोगवाला, कर्णरोगी
नेत्ररोगी और पसली के दर्दवाला । ये सब
वमन करने के अयोग्य होते हैं ।

सुकुरोगियोंकेअवम्यहोनेकाहेतु ॥

तत्रक्षतस्यचभूयःक्षणनात्रक्वातिमृष्टतिः
स्यात् । क्षीणातिस्थूलकृपवालवृद्धदुर्ब

लानामौपधवलासहत्वाप्राणोपरोधः ॥
 श्रान्तपिपासितक्षुधितानांचतद्वत् । कर्म
 भाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्याया
 मचिन्ताप्रसक्तक्षामाणारौक्ष्याद्वातरकच्छे
 दक्षतक्षयभयंस्यात् । गर्भिण्यागर्भव्या
 पदामगर्भभ्रंशाच्चदारुणरोगप्राप्तिः ।
 सुकुमारस्यहृदयविकर्षणादूर्ध्वधोवारु
 धिरातिप्रवृत्तिः । संवृतकोष्ठदुश्छर्दनयो
 रतिमात्रप्रवाहनादोषाःसमुत्क्रिष्टाःकोष्ठे
 जनयन्त्यन्तर्विषपस्तम्भजाड्यवैचिंत्यम
 रणंवा । ऊर्ध्वरक्तपित्तनमुदानमुत्तिक्ष
 प्यमाणानहरेद्रक्तंचातिप्रवर्तयेत् । प्रसक्त
 छर्दिपस्तद्वर्द्धवातास्थापितानुवासिता
 नामूर्धवातातिप्रवृत्तिः । हृद्रोगिणेहृदयो
 परोधः । उदावर्तिनांघोरतरउदावर्तः
 स्याच्छीघ्रतरहन्ता । सूत्रघातादिभिरा
 र्त्तानांतीव्रतरःशूलमादुर्भावः तिमिराणां
 तिमिरातिवृद्धिः । शिराःशूलादिपुगूला
 तिवृद्धिः । तस्मादेतेनवम्याः ।

अर्थ....क्षतरोगी को वमन कराने से
 उरःश्रत और भी अधिक बढ़जाता है जिस
 से रक्त अधिक निकलने लगता है शीण,
 अतिस्थूल, कृश, यालक, वृद्ध और दुर्बल
 वमन के वेगको सहनही सकते है, इस से
 इनको वमन कराने से प्राणों का अवरोध
 होता है । श्रान्त, पिपासित और क्षुधितको
 भी इनहीं कारणोंसे वमन नहीं कराईजाती
 है । परिश्रमसे व्यथित, भारवहन से थकित,
 मार्ग से थकित, उपवासहत, मैथुन शौल,
 अध्ययनशौल, व्यायामशौल, चिन्ता प्रसत,

और क्षामरोगियों को वमन करानेसे रूक्षता
 के कारण वात और रक्त प्रकुपित होते हैं ।
 कण्ठनाली आदिमें छिद्र होना और उरःश्र-
 त होना इनका भय रहता है । गर्भिणी
 को वमन कराने से गर्भव्यापत् गर्भस्त्राव तथा
 गर्भसंबंधी अन्य अन्य रोगभी होते हैं ।
 सुकुमार को वमन करानेसे उसका हृदय
 विकर्षित होजाता है इससे ऊर्ध्वमार्ग वा
 अधोमार्गसे रुधिर अत्यन्त निकलने लगता
 है । संवृत कोष्ठ और दुश्छर्दनीय मनुष्यको
 वमन करानेसे वमन तो ठीक होती नहींहै
 और वह जोर मारकर वमन करनेकी चेष्टा
 करता है इससे दोष कोष्ठ को उल्लेहित कर
 के विसर्ग, स्तम्भता, जडता, वैचित्ति
 [मन में उद्वेग] और मृत्यु आदि रोग
 उत्पन्न करते हैं । ऊर्ध्वगामी रक्त पित्तशाले
 को वमन करानेसे उदानवायु ऊपरको उठ-
 ती है और उससे प्राणों का नाश और
 रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है ।
 जिसको वमनरोग हो उसको वमन करानेसे
 भी उक्त दशा होती है । ऊर्ध्व वात रोगी,
 अनुवासित और आस्थापितको वमन कराने
 से ऊर्ध्ववात की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है ।
 हृद्रोगी को वमन कराने से हृदय का उध-
 रोध होता है ॥

उदावर्त रोगी को वमन कराने से घोर
 तर उदावर्त होता है जिससे रोगी शी-
 घ्रही मरजाता है । सूत्रघात, प्लीहा, गुल्म,
 उदर, अग्रान्त और स्वर भंग वाले को व-
 मन कराने से अत्यन्त तीव्र शूल उत्पन्न

होता है । तिमिर, रोगीको वमन कराने से तिमिर की वृद्धि होती है ॥ शिरःशूल शंखशूल, और पार्श्वशूलवालेको वमन कराने से शूल की अत्यन्त वृद्धि होती है इससे ऊपर लिखे सब रोगों में वमन कराने का निषेध है

वमनका अप्रतिषेधा ॥

सर्वेष्वपिस्त्रलयेतेष्वपि विपगरविरुद्धाभ्य
वहारामकृतेष्वप्रतिसिद्धं शीघ्रतरकारि
त्वादेपाम् ॥

अर्थ—ऊपर लिखे हुए सम्पूर्ण रोगों के होने पर भी यदि विपजनित, विरुद्ध भोजन जनित, गर जनित या आमदोषजनित उपद्रव का प्रादुर्भाव होता वमन करानेका निषेध नहीं है । कारण ये हैं कि ये रोग आशुकारी होते हैं ॥

वमनीय व्यक्ति ॥

शेषास्तुवम्याःपीनसकुष्ठनवज्वरराज्य-
क्ष्मकासश्वासगलगण्डश्लेष्मपदमेहम
न्दाग्निविरुद्धर्जाणांविशूचिकालसक
विपगरपीतदृष्टिग्धविद्धाधःशोणितपि
त्तप्रसेकहृत्लासाःरोचकाविपाकापच्यप
स्मारोन्मादातिसारशोफपाण्डुरोगमुख
पांकदुष्टस्तन्यादयःश्लेष्मव्याधयो विशे
षेणरोगाध्यायोक्ताश्चेतेषुद्विवमनंप्रधा
नतममित्युक्तंकेदारसेतुभेदेशाल्यादि
शोषदोषविनाशवत् ।

अर्थ—ऊपर कहे हुए रोगियों से अन्य वमनके योग्य होते हैं । पीनस, कोढ, मथीन ज्वर, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, गलगण्ड, गण्डगण्ड, श्लेष्म, मेह, मन्दाग्नि

विरुद्ध भोजन, दुष्पाच्यभोजन, विस्मृ-
का, अटसक, विपपान, गरपान, काटने
का विष, दिग्ध शिराआदि का व्यथ, अ-
धोगत रक्तपित, कफप्रसेक, धर्श, हृ-
त्लास, अरुचि, अविपाक, अपची, अपस्मार,
उन्माद, अतिसार, सूजन, पाण्डुरोग, मुख-
पाक, दुष्टस्तन्यादि धात्रीरोग, और वि-
शेष करके महारोगाध्याय में कहे हुए बीस
प्रकार के कफविकार । ये सब वमन सा-
ध्य हैं । जैसे खेत की मेंढ तोड़ देने से
जल के निकल जाने के कारण खेती सू-
ख जाती है, इसी तरह से वमन द्वारा
दोषों के निकल जाने के कारण सब रोग
नष्ट होजाते हैं ॥

अचिरेच्य रोगी ॥

अचिरेच्यास्तुसुभगक्षतगुदमुक्तनालाधो
भागरक्तपित्तविलंघितदुर्बलेन्द्रियाल्पाग्नि
निरुद्धकामादिव्यग्राजीर्णनवज्वरमदा
त्यथिताध्मानशल्याद्रित्याभिहतात्तिन्नि
ग्धरुक्षदारुणकोष्ठाःक्षतादयश्चगर्भि

प्यन्ताः ॥

अर्थ—नीचे लिखे हुए रोगी विरेचन
के योग्य नहीं होते हैं । यथा—सुकुमार,
क्षतगुद [जिनकी गुदा में घावहो], मु-
क्तनाल [जिनका मलद्वार शिथिल हो-
गया हो], अधोगामी रक्तपित रोगी,
उपवास कर्षित, दुर्बलेन्द्रिय, मन्दाग्नि, नि-
रुहित [जिसे निरुद्धपरिस्त दीर्घ हो],
जो कामादि हेतुओं से व्यग्रमन हो, जो
अजीर्ण रोग से पीडित हों, जिसको न-

वीन उग्र हो, जिसको मदात्यय रोग हो जिसको अक्रा हो, जो शय्य से पीडित हो जिसके चोट लगाने, जो अतिस्निग्ध वा अतिरूक्ष हो, जिसका कौष्ठ दारुण हो तथा वमन प्रकरणमें कृहे हृष्ट क्षतसे गर्भिणी पर्यन्त अर्थात् क्षतरोगी, क्षीणरोगी, अतिस्थूल, अतिरूक्ष, बालक, वृद्ध, दुर्बल, धकित, पिपासित, क्षुधित, श्रमशान्त, भारकान्त, मार्गशान्त उपवास कर्पित, मैथुनरत, अध्ययनरत, व्यायामशील, चिन्ताप्रस्त, क्षाम और गर्भिणी इन सबको विरेचन न देना चाहिये ।

उक्तव्यक्तियोंके अविरेच्य होने का कारण तत्रमुभगस्य मुकुमारोक्तो दोषः स्यात् ॥ क्षतगुदस्य क्षते गुदे वायुः प्राणोपरोध करी परीरुजां जनयेत् । मुक्तनालमतिप्रवृत्त्या हन्यात् । अथोभागरक्तपित्तिनांतद्वदेवा ॥ विलंघितदुर्बलेन्द्रियाऽल्पाग्निनिरूढा औपधेवंगनसहेरन् । कामादि व्यग्रमनसो न प्रवर्तते कृच्छ्रेण वा प्रवर्तमानमधोगदोषान् कुर्यात् । अजीर्णिन आमदोषः स्यात् नक्षत्ररस्याविपकान् दोषान् न निहरेत्वा तमेव च कोपयेत् । मदात्ययितस्य मद्यक्षीणो देहवायुः प्राणोपरोधं कुर्यात् ॥ आध्मातस्वः प्रायमानस्य वा पुरीषकोष्ठे निचि तो वायुर्विसर्पनसहसानाहंती व्रतं मरणं वा जनयेत् ॥ सशल्यादि ताभिहतयोः क्षते वायुराश्रितो जीवितं हि स्यात् ॥ अतिस्निग्धस्यातियोगभयं भवेत् ॥ रूक्षस्य वायुरंगग्रहं कुर्यात् ॥ दारुणकौष्ठस्य विरेचनोद्धता दोषाहृच्छूलपर्वभेदानाहा

इमर्दलर्दमूर्च्छाकृमान् जनयित्वा प्राणा न्हन्युः ॥ क्षतादीनां गर्भिण्यन्तानां छर्दनोक्तो दोषः स्यात् ॥ तस्मादेतेन विरेच्याः अर्थ—मुकुमार मनुष्य को विरेचन देने से हृदय कर्पित होता है । गुदा में घाव वाले को विरेचन देनेसे प्राणोपरोधकारी अत्यन्त तीव्र वेदना होती है मुक्तनाल मनुष्यको अत्यन्त विरेचन देनेसे प्राणोंकी हानि होती है । अधोगामी रक्तपित्त वाले को विरेचन देने से रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है । उपवास कर्पित, दुर्बलेन्द्रिय मन्दाग्रियुक्त और निरूहित औपध के वेग को नहीं सह सकते हैं । जो मनुष्य कामादि वेगों से दुश्चित्त हो रहे हैं उनको विरेचन से दस्त नहीं आते हैं और जो काठिनता से दस्त आते हैं । ती अधोमार्ग में संपूर्ण दोष कुपित होजाते हैं अजीर्ण वाले को विरेचन देने से आमदोष की उत्पात्ति होती है ॥ नवीन उग्र में विरेचन देने से आमदोष नहीं निकलते हैं किन्तु वात कुपित होजाती है मदात्ययरोगी को मद्य से क्षीण देह में विरेचन देने से वायु प्राणों को रोक देता है जिसके अक्रा हो वा जो आध्माय मानहो उसे विरेचन देने से मलाशय में संचित वायु फैलकर शीघ्र ही अत्यन्त तीव्र आनाह वा मृत्यु को उपस्थित करती है शल्यादि ता और आहत व्यक्ति के घावमें वायु रहती है उस दशा में यदि विरेचन दियाजाय तो प्राणनष्ट होजाते हैं । अत्यन्त स्निग्ध मनुष्य को विरेचन देने से उसका

अति योग होता है। रूक्ष व्यक्ति को विरेचन देने से वायु अंग को पकड़ लेती है। कड़े कोठेवाले को विरेचन देने से टोप उदीर्ण होकर हृदय में शूल, पर्वभेद श्लानाह, अंगमर्द, अमन मूर्च्छा और हान्ति उत्पन्न करके प्राणों को नष्ट कर देते हैं। क्षत्ररोगी से लेकर गर्भिणी पर्यन्त को विरेचन देने से अमन प्रकरण में कड़े हुए रोग होते हैं। इससे ये सब विरेचनके अयोग्य हैं।

विरेचन के योग्य व्यक्ति ।

शेषास्तुविरेच्याः । कुष्ठज्वरपेहोर्ध्वरक्तपिचभगन्दरोदराशौबर्ध्मश्रीहृगुल्मार्जुदगलगण्डग्रन्थिविसूचिकालसकम्त्राघातक्रिमिकोष्ठविसर्पपाण्डुरोगशिरपार्श्वशूलोदावर्तनेत्रास्यदाहहृद्रोगव्यङ्गनीलीकानेत्रनासिकास्यश्रवणरोगहलीमकश्वासकासकामलापस्मारोन्मादवातरक्तयोनिरेतोदोपतैमिर्षारोचकाविपाकच्छार्दिश्वयध्वपचीविस्फोटकादयःपित्तव्याधयोविशेषणरोगाध्यायोक्ताश्चाएतेपुहिविरेचनंमपानतममित्युक्तमनुपशमेऽग्रिमृहवत् ।

अर्थ.... ऊपर कहे हुए रोगियों को छोड़कर शेष सब रोगी विरेचन के योग्य होते हैं। कोठ, ज्वर, प्रमेह, ऊर्ध्वरक्तपित्त, भगन्दर, उदररोग, अर्श, अमन, शीहा, गुल्मरोग, अर्जुद, गलगण्ड, ग्रन्थि, विसूचिका, अलसक, मूत्राघात, क्रिमिकोष्ठ, विसर्प, पाण्डुरोग, शिरो भेदना, पार्श्वशूल, उदावर्त, नेत्रदाह, मुग्धदाह, हृद्रोग, व्यंग, नीलीका, नेत्ररोग, नासिका रोग, मुग्धरोग, कर्णरोग

हलीमक, श्वास, खांसी, कामला, मृगीरोग, उन्माद, वातरक्त, योनियोप, शुक्रदोष, तिमिर, अरुचि, अविपाक, अमन, सूजन, उदररोग, विस्फोटकादिरोग, तथा महारोगाध्याय में कही हुई चालीस प्रकार की पित्तज व्याधियां विशेष करके विरेचन से दूर हो जाती हैं। इन सब रोगों में विरेचन ही प्रधान है। जैसे आग्नेके बुझने से घर अपने आप शान्त होजाता है इसी तरह विरेचन द्वारा दोषों के निकलने से शरीर के रोग अपने आप शान्त होजाते हैं ॥

अनास्थाप्यरोग ।

अनास्थाप्यस्तुअजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहोत्क्रिष्टदोषाल्पाग्निमानकान्तातिदुर्बलक्षुत्तृष्णाश्रमार्त्ततिकृशभुक्तभक्तपीतोदकवमितधिरिक्तक्षतकृतनस्तःकर्मकृद्धभीतमत्तमूर्च्छितप्रसक्तछार्दिनिष्टीविकाश्वासकासहिक्कावद्धिद्रोदकोदराधमातालमकविसूचिकामप्रनामातिसारमधुमेहकुष्ठाः ॥

अर्थ—नीचे लिखे हुए रोगी आस्थापन के योग्य नहीं होते हैं। यथा— अजीर्ण रोगी, अतिस्निग्ध, पीतस्नेह; उत्क्रिष्टदोष, मन्दाग्नि, यानकान्त, (सपारीसे थकहुआ) अतिदुर्बल, क्षुभार्त्त, तृपार्त्त, श्रमार्त्त, अत्यन्तकृश, मुक्तभक्त (जिसने भात खायाहो) पीतोदक, वमित, विरिक्त, क्षत, कृतनस्यकर्मा [जिसने नस्यकर्मका सेवन कियाहो] कृद्ध, डराहुआ, मत्तवाला, मूर्च्छित, अमनरोगी, जिसके मुदमें थूक भरताहो, आ-

सरोगी, कासरोगी, हिक्कारोगी, बद्धोदरी, छिद्रोदरी, दकोदरी, अलसकरोगी, विसूचिका रोगी, आमगर्भा [जिसका गर्भ सातमहीने के भीतरहो) अतिसारी, मधुमेही और कुष्ठरोगी, ये सब आस्थापन के योग्य नहीं हैं

अनास्थापनका कारण ।

तत्राजीर्णयतिस्निग्धपीतस्नेहानां दूष्योदरं मूर्च्छाश्चयधुर्वास्यात् । उत्क्रिष्टदोषमन्दाग्न्योररोचकस्तीव्रः । यानक्लान्तस्यक्षोभमापन्नोवस्तिराशुद्रेहंशोपयेत् ॥ अतिदुर्बलक्षुत्तृष्णाश्रमार्तानां पूर्वोक्तो दोषः स्यात् । अतिकृशस्यकार्श्यपुनर्जनयेत् । पीतोदकभुक्तभक्तेभ्योत्बलेइयोद्धमधोवावायुर्वस्तिमुत्क्षिप्यक्षिप्रवस्तौघोरान्बिकारान्जनयेत् ॥ वमितविरिक्तयोस्तुरुक्षशरीरनिरूहः क्षतक्षारइवदहेत् । कृतनस्तः कर्मणोविभ्रंशशंसंरुद्धस्रोतसः कुर्यात् । क्रुद्धभीतयोर्वस्तिरुद्धमुपशुब्धेत् । मत्तमूर्च्छितयोर्भृशंविचलितयांसंशयांचितोपघाताद्व्यापत्स्यात् । प्रसक्तछर्दिनिष्ठीविकाश्वासफासहिक्कार्तानामूर्द्धाक्रिनोवायुरुद्धवस्तिनयेत् । बद्धछिद्रोदकोदराध्मातानां भृशतरमाध्मावस्तिः प्राणानर्हिंस्यात् । अलसकविसूचिका ममजातिसारिणामामकृतोदोषः स्यात् । मधुमेहकुष्ठिनोव्याधेः पुनर्दृष्टिः तस्मादेते

नास्थाप्याः ॥

अर्थ इनमें से अर्जाणरोगी, अति स्निग्ध और पीतस्नेह वाले रोगियों को आस्थापन देनेसे उदररोग मूर्च्छा और सूजन उत्पन्न

होती है उन्विल्लिष्ट दोष और मन्दाग्नि वालेको आस्थापन देनेसे तीव्र अरुचि होती है । सवारिसे धके हुएको आस्थापन देनेसे क्षोभको प्राप्त हुई वस्ति शांतिही उसके देहको सुखा देती है । अति दुर्बल, क्षुधार्त, तृपार्त और श्रमार्त को आस्थापन वस्ति देने से पूर्वोक्त दोष होते हैं । अत्यन्त कृशको वस्ति देनेसे और भी कृशता हो जाती है । जल पीने और भोजन करने के पीछे वस्ति देने से उसकी वायु ऊपर वा नीचे उत्कलंशित होकर और वस्ति को उन्क्षिप्त कर के शांतिही वस्ति में घोर विकारों को उत्पन्न कर देती है । वमित और विरिक्त का शरीर पहिलेही रुख होता है, इस पर भी यदि निरूह दी जाय तो क्षतक्षार की तरह दग्ध कर देता है जिस मनुष्य ने नस्यकर्म किया है उसको आस्थापन देने से स्रोतःसमूह रुककर नस्यकर्मके फलको नष्ट कर देते हैं । क्रुद्ध और भीत को आस्थापन वस्ति देने से वस्ति ऊपरको चली जाती है । मत्त और मूर्च्छित को अत्यन्त विगडी हुई दशा में देने से चित्तोपघात होता है । वमनरोग, श्वास, खांसी और हिचकी वाले को आस्थापन देने से आस्थापन को वायु ऊपरको लेजाती है । बद्धोदर, छिद्रोदर, दकोदर और आघ्नान में वस्ति देने से उदर में बहुत अफरा उत्पन्न होता है और प्राण जात रहते हैं । अलसक, विसूचिका, आमगर्भा और अतिसारमें आ-

स्थापन देने से आमकृत दोष होते हैं । मधुमेह और कुष्ठ में आस्थापन देनेसे रोग की वृद्धि होती है, इस से ऊपर लिखे हुए रोगों में आस्थापन वस्ति न देनी चाहिये ।

आस्थाप्यरोग ।

शोषास्त्रास्थाप्याः सर्वाङ्गैर्काङ्क्षिरोगवा
तवर्चोमूत्रशुक्रसंगवलवर्णमांसरेतःक्षयदा
पाध्मानाङ्गमुत्क्रिमिकोष्ठोदावर्तविसा
रपर्वाभितापष्टीहङ्गुलमृद्द्रोगभगन्दरोन्मा
दज्वरवर्ध्मशिरःकर्णशूलहृदयपाश्वपृष्ठक
टीग्रह्वेपनाक्षेपकगौरिवातिलाघवरजःक्ष
यानार्तवविपमार्गिनिस्फिग्जानुजंघोरुगु
ल्फवाटिणमयद्योनिवाहवाङ्गुलितलांस
दन्तपाश्वीस्थिशूलशोपस्तम्भान्त्रकृमन
नपरिकर्तिकादयःघातव्याधयोविशेषेण
रोगाध्यायोक्ताश्चाएतेष्वास्थापनप्रधा
नतममित्युक्तंवनस्पतिमूलच्छेदवत् ।

अर्थ—उपर कहे हुए रोगों से अन्यरोग आस्थापन के योग्य होते हैं । यथा—सर्वाङ्ग घात, एकाङ्ग घात, कुक्षिरोग, अधोवायु, मूत्र और वीर्य के विबन्ध, वलक्षय, वर्णक्षय, मांसक्षय, र्वावर्ध, आध्मान, अङ्गमुत्क्रिमिकोष्ठ, उदावर्त, अतिसार, हृदपूठन ग्रीहा, गुल्म, हृद्द्रोग, भगन्दर, उन्माद, ज्वर, मन्त्र, शिरःशूल, कर्णशूल, हृदयग्रह, पार्श्व-ग्रह, पृष्ठग्रह, काटिग्रह, कम्पन, आक्षेप, अङ्गनोरव, देह का अत्यन्त हलकापन, रज क्षय, रजस्वला होने का अभाव, विपमार्गि, नितम्बशूल, जानुशूल, जेमाशूल, ऊरुशूल, टकने का दर्द, एनी का दर्द, पंजे का दर्द,

योनिशूल, बाहुशूल, अङ्गुलिशूल, पार्श्वशूल अस्थिशूल, शोष, स्तम्भ, अत्रकृमन, परिकर्तिका, तथा वक्षिप करके महारोगाध्याय में कही हुई अस्ती प्रकार की वात व्याधियां आस्थापन से दूर होजाती हैं । इन रोगों में आस्थापन प्रधान है, जैसे जब काट डालने से वनस्पति एक साथ ही नष्ट होजाती है उसी तरह आस्थापन देने से भी सम्पूर्ण रोग जब से मिटजाते हैं ।

अनुवासन के अयोग्य रोगी ॥

यएवानास्थाप्यास्तएवाननुवास्याः । वि
शेषतस्त्वभुक्तभक्तनवज्वरपाण्डुरोगका
सकामलाममेहार्थःप्रतिश्यापारोचकमंदा
मिदुर्वलप्लीहकफोदरोरुक्कम्भवर्चोभिद
विपगरपीतकफाभिप्यन्दशुरूकोष्ठक्षी
पदगलगण्डापचिक्रिमिकोष्ठिनः ।

अर्थ—जो जो रोग आस्थापन योग्य वर्णन नहीं किये हैं उनहीं में अनुवासन भी न देवे । विशेष करके अमुक्तभक्त, नवज्वर, पाण्डुरोग, खांसी, कामला, प्रमेह, अर्श, प्रतिश्याय, अरुचि, मन्दाग्नि, दुर्वलता, ग्रीहा, कफोदर, उरुस्तम्भ, मूलभेद, पीत विष, पीतगर, कफाभिप्यन्द, भारी कोष्ठ रक्षीपदरोग, गलगण्डरोग, अपची और क्रिमिकोष्ठ । इन सब रोगों में अनुवासन न देनी चाहिये ।

उक्तरोगों में अनुवासनके न देनेका कारण तत्राभुक्तभक्तस्यानावृत्तमार्गत्वाद्दृग्माति वर्ततेस्नेहो ॥ नवज्वरपाण्डुरोगकाम लाममेहिणादोषानुत्केश्चोदरजनमेद

शस्यर्शास्यभिष्यन्धाध्मानपरोचकार्त
स्यान्प्रवृद्धिपुनर्हन्यात् । मन्दाग्निदुर्बल
योर्मन्दतरमग्निर्कुर्यात् ॥ प्रतिश्यायप्ली
हादिमतांभ्रूशंचोत्किल्लिष्टदोषाणांभूयए
वंदोषं वृद्धयेत्तस्मादेतेनानुवासाः ॥

अर्थ—बिना भोजन कराये अनुवासन देने से वास्तिका मार्ग खुला रहनेसे तेल ऊपरको चला जाता है । नवज्वर, पांडुरोग, कामला और प्रमेह में अनुवासन देने से दोष उत्केशित होकर उदररोग उत्पन्न करते हैं । अशरोग में अनुवासन देने से स्नेहन अर्श को अभिष्यन्दी करके आम्धान उत्पन्न करता है । अरुचि में अनुवासन देने से अन्नवृद्धि होकर प्राणों को नष्ट कर देती है (अन्न में अनिच्छा होती है ऐसा पाठभी है) मन्दाग्नि और दुर्बल को अनुवासन देने से अग्नि अव्यन्त मन्द होजाती है । प्रतिश्याय और प्लीहा में अनुवासन देने से सम्पूर्ण दोष और भी बढ जाते हैं । इसलिये इन सम्पूर्ण रोगों में अनुवासन न देना चाहिये ।

अनुवासन के योग्य व्यक्ति ।
यपवास्याप्यास्तएवानुवासाः । विशेष
पतस्तुरुक्षतीक्ष्णाग्निशक्रेवलवातरोगा
र्त्तादयः । एतेपुत्रनुवासनंप्रधानतममित्यु
क्तंवनस्पतिमूलच्छेदनवत्मूलेद्रुमप्रसि
क्तवृक्ष ॥

अर्थ—जिन जिन रोगों में आस्थापन दी जाती है उन्हीं में अनुवासन भी दी जाती है । विशेष करके रूक्ष, तीक्ष्णाग्नि

और केवल वातरोग पीडितको तो अवश्य ही अनुवासन देना चाहिये । इन सब रोगों में अनुवासन ही प्रधान औषध है । जैसे जड के काटने से वनस्पति नष्ट होजाती है वैसेही अनुवासन से सब रोग जडसे मिट जाते हैं और जैसे वृक्षकी जड में जड देने से वह उपरसे नीचे तक हरा होजाता है उसी तरह अनुवासन देने से उसकी सब धातु पुष्ट होजाती हैं ।

शिरोविरेचन के अयोग्यरोगी ।
अशिरोविरेचनाहीःअजीर्णभुक्तभक्तपी
तस्नेहमद्यतोयपातुकामःस्नातशिरःस्नातु
कामःभुक्तृष्णाश्रमातमत्तमूर्च्छितशस्त्रदंढा
हतव्यवायव्यायामपानपान्तवलांतनव
ज्वरशोकाभितप्तविरपतानुवासितगर्भि
णीनवप्रतिश्यायार्ताःअट्टनुदुर्दिनेच ।

अर्थ—नाचि लिखेरोगी शिरोविरेचन के योग्य नहीं होते है । यथा— अजीर्ण रोगी भुक्तभक्त, पतस्नेह, मद्यपान वा जलपान की इच्छारखने वाला, स्नातशिरः (सिरस मेंतनहनेवाला,) स्नातुकाम [स्नानकी इच्छारखनेवाला), क्षुभार्त्त, तृपार्त्त, श्रमार्त्त मूर्च्छित, शस्त्राहत, दंडाहत, मैधुनक्रान्त, व्याधामक्रान्त, मद्यपान से थका हुआ, नव ज्वर पीडित, शोकाभितप्त, विरिक्त, अनुवासित, गर्भिणी, और नवीन-प्रतिश्यायसे पीडित । इन को शिरोविरेचन न देवे । इसके अतिरिक्त युक्तनु और जिस दिन वादट हो रहे हों उस दिन भी शिरोविरचन न देवे ॥

शिरोविरेचन न देने का कारण । तत्राजीर्णभुक्तभक्तयोर्दोषऊर्ध्ववाहानिस्रोतांस्यावृत्त्यकासश्वासछादिप्रतिश्यायान्जनयेत् । पीतस्नेहमद्यतोयपातुकामानांकृतेचपिवतांमुखनासास्त्रावाक्षुपदेहतिमिरशिरोरोगान्जनयेत् । स्नातशिरसःकृतेचस्नानाच्छिरसःप्रतिश्यायां । क्षुधार्तस्यघातप्रकोपं । तृणार्तस्यपुनस्तृणाभिष्टुद्धिमुखशोषञ्च । श्रमार्तमत्तमूर्छितानामास्थापनोवतंदोषं । शस्त्रदण्डहतस्यतीव्रतरारुजंजनयेत् । व्यवायग्लानव्यायामकलान्तानांशिरःस्कन्धनेत्रोरःपीडनं । नवज्वरशोकाभितप्तयोरूपमानेत्रनालीभिरनुसृत्यातिमिरज्वरवृद्धिचक्षुर्पात् । विरिचतस्यवायुरिन्द्रियोपघातमनुवासितस्यकफःशिरोगुरुत्वकण्टकिमिदोषान् । अन्तर्वन्त्यागर्भस्तम्भयेस्सक्राणःकुण्ठिःपक्षहतःपीठसर्पीवाजायेत । नवप्रतिश्यायस्यस्रोतांसिन्व्यापादयेदन्तदुर्दिनेशीतदोषात्पूतिनासिकाशिरोदोषश्चस्यात् । तस्मादेतेनशिरोविरेचनार्हाः ।

अर्थ—इन में अजीर्ण रोगी को और मुक्तभक्त को शिरो विरेचन देने से दोष ऊर्ध्ववाही स्रोतो को रोककर खांसी, श्वास, वमन और प्रतिश्याय उत्पन्न करते हैं । पीत स्नेह, जलपातुकामी और मद्यपातुकामीको शिरोविरेचन देने से मुखस्त्राव, नासिकास्त्राव धाँसों में ल्हिसावट, तिमिर और शिरोरोग उत्पन्न होते हैं । शिरःस्नात वा न्हाये हुए मनुष्य को शिरोविरेचन देने से प्रतिश्याय

होता है । क्षुधार्त को देने से वायुकोप तृणार्त को देने से तृणाकी वृद्धि और मुखशोष, श्रमार्त को देने से तथा मत्त और मूर्च्छित को देने से आस्थापन में कहे हुए दोष होते हैं । शस्त्राहत और दण्डाहत को देने से वेदना तीव्र होती है । व्यवाय और व्यायामसे थके हुआ को देनेसे सिर, कंधा, नेत्र और वक्षःस्थल में पीडा होती है । नव ज्वर वाले को देने से ज्वर की वृद्धि होती है । शोक्पीडित को देने से दोष नेत्रकी नालियों में प्रवेश करके तिमिर रोग को उत्पन्न करते हैं । विरिक्त को देने से वायु कुपित होकर इन्द्रियों को चेष्टाहीन करती है । अनुवासितको देने से कफ बढ़कर सिर में भारापन, खुजली और क्रिमिरोग उत्पन्न करता है । गर्भिणी को देने से गर्भ बढ़नेसे रुकजाता है और काना, कुनख, पक्षाघाती और पांगला होजाता है । नवीन प्रतिश्यायवाले को देने से स्रोत निष्काम होजाते हैं । कुसमय वा दुर्दिन देनेसे शीतपूतिनासिका और शिरोरोग होते हैं । इससे इन रोगियों को शिरोविरेचन न देवे ।

शिरोविरेचन के योग्य रोगी ।

शेषार्हाः । शिरोदन्तमन्यागलहनुग्रहपीनसगलशुण्डिकाशाश्लूकशुक्रतिमिरवर्ध्मरोगव्यंगोपजिह्विकार्धावभेदकप्रीवास्कन्धासास्यनासिकाकर्णाक्षिर्भुर्धकपालरोगादितापतन्त्रकापतानकगलगण्डदन्तशूलहर्षचालाक्षिरागार्बुदस्वरभेदवाग्गृहगहृदकयनादयऊर्ध्वजन्तुगतावातादिविका

राः परिपक्वाश्चेतेषु शिरोविरेचनप्रधानतममित्युक्तं तद्युक्तमांगमनुप्रविश्य मञ्जुपेयीकासपतंदोषं विकारकरमपकर्षति अर्थ—इन से अन्यरोगों में शिरोविरेचन देनाहित है। यथा शिरारोग, दन्तरोग, मन्थास्तम्भ, गलप्रह, हनुप्रह, पीनस, गलशुण्डिका, शाङ्गु, शुक्र, तिमिर, वर्मरोग, ज्वर, उपजिह्वा, अर्द्धाभिदक, मीया रोग, स्कंधरोग, भास्वरोग, नासिकारोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, मूर्धारोग, कपालरोग, मस्तकरोग आदित, अपतंत्रक, अपतानक, गलगंड, दंतशूल, दन्तहर्ष, दंतचञ्च, अक्षिरोग, अर्बुद, स्वरभेद, घ्राणप्रह, गद्गदता, ऊर्ध्वजत्रुगत रोग, और घातादिरोग इन सब रोगों में शिरोविरेचन प्रधान है। इनकारण से शिरोविरेचन शिर में प्रवेश करके मज्जा और पेशी में स्थित विकार करने वाले दोषोंको निकाल देता है।

नस्यकर्म विधि ।

मावृटशरद्वसन्तेष्वितरेषु आत्ययिकेपुरोगेषु नावनंकुर्याद्ग्रहीष्मेपूर्वाह्णेशीतेमध्यान्हवर्षास्वदुर्दिनेचेति ।

अर्थ.... वर्षा, शरद और वसन्त ऋतु में नस्यदेवे। यदि कोई आत्ययिक रोग उत्पन्न होजाय तो प्राण ऋतु में दुपहरसे पाँहिले शीतऋतु में दुपहरके समय, और वर्षा में जिस दिन बादल न हो उसदिन नस्य देवे।

अध्यायका उपसंहार ।

इतिपंचविधकर्मविस्तरणनिदर्शितम् ।
येभ्योयत्रहितं यस्मात्कर्मयेभ्यश्चयद्विदत्
म् । नचैकान्तेनानिर्दिष्टेत्त्राभिनिवेशेत्

युवः ॥ स्वयमप्यत्रयैधेनतत्रयैवुद्धिमता भवेत् । उत्पद्येतहितावस्थादेशकालवल्म्बानि ॥ यस्यांकार्यमकार्यस्यात्कर्मकार्यञ्चवर्जयेत् । छर्दिहृद्रोगगुल्मार्तेवमनंश्चेत्किंचित्सिंते ॥ अयस्यांप्राप्यनिर्दिष्टं कुण्डिनाम्बस्तिकर्मच । तस्मात्सत्यापि निर्दिष्टैकुर्याद्व्यंस्वयन्धिया ॥ विनावितर्काद्यासिद्धिर्द्यदच्छासिद्धिरवसा । अर्थ—इसतरह वमन विरेचनादि पंचकर्म की विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई है। जिस कारण से जिसके लिये जो हितकारी और जो अहितकारी है उसका भी वर्णन किया गया है जो ये संपूर्ण नियम वर्णन किये गये हैं वेच को केवल इन्हींपर भरोसान रखना चाहिये, उसे अपनी बुद्धि भी लगानी चाहिये, यदि किसी नियममें परिवर्तन की आवश्यकता दिखाई दे तो परिवर्तन भी करदेवे देश, काल और बलके विषयमें कभी कभी ऐसी दशा होजाती है कि उसमें करने योग्य कामअकार्य होजाता है और न करने के योग्य काम अच्छा और करने के योग्यहो जाता है। वमनरोग हृद्रोग और गुल्मरोग में वमन नहीं कराई जाती है पर कभी २ ऐसा होता है कि वमन कराना ही पड़ती है। कुष्ठरोग में वृत्ति नहीं दीजाती है परन्तु विशेष अवस्था में इस में भी वृत्ति दीजाती है अतएव यद्यपि सम्पूर्ण नियम वर्णन किये भी गये हैं तो भी अपनी बुद्धि को काम में लाना आवश्यक है। अपनी बुद्धि को बिना

काममें लगे जो कार्य सिद्ध होजाता है। वह यदृच्छा सिद्ध होता है ॥

इतिश्रीभाषाटीकात्रितायांअग्निवेशविर-
चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां
सिद्धिस्थानेपञ्चकर्मोपासिद्धिर्नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

— + × + —

तृतीयोऽध्यायः।

अथातोवस्तिसूत्रीयांसिद्धिव्याख्यास्याम
हार्तहस्माहभगवानात्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम वस्तिसूत्रीयसिद्धकी व्याख्या
करेंगे ॥

कृतक्षणैलवरस्यरम्येस्थितंघनेशायतनस्य
पार्श्वे । महर्षिसर्गद्वैतमग्निवेशः पुनर्वसु
म्प्राञ्जलिरन्वपृच्छत् ॥ वस्तिर्नरेभ्यः
किमपेक्ष्यदत्तः स्यात्सिद्धिमान्किम्पथम
स्यनेत्रम् ॥ कीदृक्प्रमाणांकृतिर्किगुणश्च
केपाश्चर्कियोनिगुणञ्चवस्तिः निरुहक
र्मणिधानमात्राः स्नेहस्यवाकाः शमनेवि
धिः कः ॥ केवस्तयः केपुमताइतीदंश्रुत्वो
चरं प्राहवचोमहर्षिः ॥

अर्थ—हिमालय के कैलाशनामक रमणीक
शिखर पर कुवेर के घरके पासही ऋषियों
के समूहसे परिभेष्टित पुनर्वसु अवकाश
पाकर बैठे हुए थे उस समय आग्निवेशने
प्राथ जोड़कर पूछा कि हे भगवन् ! किस
अवस्था में किस तरह से वस्ति का प्रयोग
करने पर सफलता हो सकती है । वस्ति
नेत्र का प्रमाण क्या है । वस्ति किस द्रव्य

से बनाई जाती है, इसका प्रमाण, आँकड़ियाँ
और गुण क्यों हैं? किस को किस द्रव्य
की बनी हुई वस्ति क्या गुण करती है?
निरुहण कर्म की कल्पना क्या है? अनु-
वासन की मात्रा कितनी है? रोगों के शमन
करने के निमित्त वस्ति देने के समय कौन
सी विधि ग्रहण करनी चाहिये? किस के
लिये कौनसी वस्ति हितकर है? भगवान्
आत्रेय अग्निवेशके इन प्रश्नोंको मुनकर
कहने लगे ।

समीक्ष्यदोषौपधदेशकालसात्म्याग्निं स
स्यौजत्रयोबलानि ॥ वस्तिः प्रयुक्तो नियतं
गुणाय स्यात्सर्वकर्मणि च सिद्धिमन्ति ॥
सुवर्णरूप्यप्रयुताम्ररीतिकां स्यात्स्थिशस्त्र-
द्रुमवेणुदन्तैः नेत्राणि मृद्मणिभिर्नैलैश्च
गुकर्णिकानि प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥

अर्थ—दोष, औपध, देश, काल, सात्म्य,
अग्नि, सत्व, ओज, यय और बल की
विशेष रूप से परीक्षा करके वस्ति प्रयोग
करने से निश्चयही फलदायक होती है
और इस तरह प्रयोग करने से सम्पूर्ण कर्मों
की सिद्धि होती है । वस्ति का नेत्र सोना,
चाँदी, सीसा, ताँबा, पीतल, काँसी, हड्डी,
लोहा, काठ, वांस, दाँत, सींग और गणि
वा नल इनमें से किसी एक द्रव्यसे बनसकता
है । वस्तिके मुखपर एककर्णिका होनी चाहिये ।

वस्ति का प्रमाण ॥

पट्टद्वादशाष्टांशुलसम्मितानि पद्द्विंशति
द्वादशवर्षजानाम् ॥ स्युर्मुद्रककन्धुसतानि च
हिच्छिद्राणि वर्त्यापिहितानि चापि ॥

अर्थ—छः, दस और बारह वर्ष की अवस्था वाले के लिये वस्ति क्रम से छः बारह और आठ अंगुल लम्बी होनी चाहिये और नल के भीतर का छिद्र मूंग, मटर और छोटे झाड़ी बेर के सदृश क्रम से होना चाहिये । वस्ति के छिद्र में कुछ घुसने न पाये इसलिये उस के मुखमें बत्ती लगी रहनी चाहिये ।

वस्तिकी परिधि का प्रमाण ॥

पधावर्षाऽगुष्टकनिष्ठिकाभ्यांमूलाग्रयोःस्यु
परिणाहवन्तिऋजूनिगोपुच्छसमाकृतानि
श्लक्ष्णानिचस्युर्गुलिकामुखानि ॥ स्या-
त्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागेमूलाश्रितेवर्ति
निबन्धनेद्दे । जरद्वरोमाहिपहारिणो
वास्यात्सौकरोवस्तिरजस्यवापि ॥ दृढ
स्तनुर्नष्टशिरोविगन्धःकपाचरक्तःसुष्टुदुः
सुशुद्धः ॥ नृणांययोर्वाक्ष्ययथानुरूपनेत्रे
पुयोज्यस्तुसुवद्वसूत्रः ।

अर्थ—जितनी अवस्था के मनुष्य को वस्ति देना होय, उतनीही अवस्था के मनुष्य के अंगुठे का मुटाई के समान वस्ति की नली के नाँचे की परिधि होनी चाहिये और मुखकी परिधि कनिष्ठका अंगुली की मुटाई के समान होनी चाहिये वस्ति की नली सीधी, गौ की पूँछके समान आकृति वाली, चिकनी और गोलमुखकी होनी चाहिये । उसी नल के चौथे भागमें मुखकी और एक कर्णिका और नाँचे की और दो कर्णिका होनी चाहिये । वृद्ध बैल, भैंसा, हरिण, अथवा बकरे की वस्ति (गुत्रा-

शय) ठाकर एक चौंगा बनवावे । यह बहुत दृढ, शिराहीन, गन्धराहेत, कपाय वर्ण से रंगा हुआ, मृदु और शुद्ध होना चाहिये । रोगी की अवस्था का विचार करके वस्तिपुट छोटा वा बड़ा होना चाहिये और यह पुटक बल के साथ डोर से अच्छी तरह बांध देना चाहिये ।

वस्तेरभावेषुवजोगलोवास्यादंकपादःसु
घनःपटोवा ॥

अर्थ—यदि वृषादिक की वस्ति उपलब्ध न हो तो मेंढकआदि के चमड़े की वस्ति बनावे अथवा चौपाये पशुओं के भीतर का चमड़ा ग्रहण करके बनावे और जो कुछ भी न होसके तो गढ़ि कपड़े सेही काम चलावे ॥

आस्थापनार्हपुरुषविधिःसमीक्ष्यपुण्येऽ
हनिशुक्लपक्षे । मञ्जस्तनसत्रमुहूर्तयोगे
जर्णामेकाग्रमुपक्रमेत ॥

अर्थ—आस्थापन के योग्य रोगी को अन्न पचने के पीछे शुक्लपक्ष में शुभदिन नक्षत्र, मुहूर्त और योग देखकर सावधानी से आस्थापन देवे ।

बलांगुडूर्वात्रिफलांसरास्नाद्वेपञ्चमूले च
पलोन्मितानि ॥ अष्टौपलान्पद्मं तुलां
चमांसाच्छागान्पचेदप्सुचतुर्थेनेपम् ॥

पूतयवानीफलविल्वकुप्टचशाशाहवाघन
पिप्पलीनाम् ॥ कल्कं गुडसांद्रघृतैःसतैले
युतंमुखोष्णंतुपितुप्रमाणं ॥ गुडात्पलं द्वि
प्रस्तान्तुमात्रांस्नेहस्ययुवत्याम्पुसन्धवा
दि ॥ प्राक्षिप्यवस्तौमाधितंखजेनसुवद्वसु-

निरूहपादांशसमेनतेलेनाम्लानिलध्वौ
पथसाधितेन । दत्त्वास्फिजौपाणितलेन
हृन्पात्स्नेहस्यशीघ्रागमरक्षणार्थं ॥ इप
त्पदांगुष्ठयुगञ्चकर्पेदुत्तानेदहस्यतली
प्रमृज्यात्स्नेहेनपाण्यगुलिपिण्डिकाश्चये
चास्पगात्रावयवारुगार्ताः ॥ तांश्चाव
मृज्यान्सुमुखंततश्चनिद्रामुपासीतकृतो-
पधानः ॥

अर्थ—निरूहकी मात्रा में चौथाई तेल
अनुवासन में दिया जाता है, यह तेल कांजी
और लघु औषध द्वारा सिद्ध किया जाता
है । तेल शीवृही बाहर न आजाय इस लिये
हथेलियों से चूतडों को धीरे धीरे कूटता
रहै । दोनों पांशों के दोनों अंगुठों को कुछ
खांचे । तथा चित्तशयन कराके पगतालियों
को धीरे धीरे मलता रहै । एही, लंगली
दोनों पिंडली और पीडित अंगावयवों को
तेल से मसलता रहै, जब उसको कुछ चैन
सा होने लगे तब सिरके नीचे तकिया
लगा दे जिस से मुखपूर्वक निद्रा आजाय ॥

निरूहण द्रव्यका प्रमाण ।

भागाः कपायस्यतुपञ्चपित्तस्नेहस्यपष्टः
प्रकृतौस्थितेच ॥ वातेविबृद्धेतुचतुर्थभा
गो तथा निरूहेपुक्केऽष्टभागः ॥

अर्थ.... पैत्तिकरोग में यदि वायु-प्रकृ-
तिस्थेहोती पांचभाग काथ और छटाभाग
स्नेहका लेंवै । यदि वायु बढी हुई हो तो
कपायसे चौथाई तेल देंवै और कफमें नि-
रूहण देनी होय तो आठवां भाग तेल
डालना चाहिये ।

निरूहमात्राप्रसूताद्दमाद्येवर्षंततोऽर्द्धप्रमृ-
ताभिवृद्धिः । आद्वादशात्स्यात्प्रमृताभि
वृद्धिरष्टाद्वादशाद्दशतःपरं स्युः ॥ आस
प्तैस्तद्विहितं प्रमाणं बाले च वृद्धे च मृदु विशेषः

अर्थ—एकवर्षके बालकेके लिये निरूहकी
मात्रा एक पलहै, उससे आगे प्रतिवर्ष एक
एक पलमात्रा अधिक बढ़ानी चाहिये ।
इसतरह धारहवर्षकी अवस्थातक यही क्रम
रखै । धारहवर्ष की अवस्थासे अठारहवर्ष
की अवस्थातक प्रतिवर्ष दो २ पल बढ़ावै ।
फिर अठारह वर्ष से सत्तर वर्ष की अवस्था
तक यही प्रमाण होना चाहिये । बालक
और वृद्ध के पक्ष में मृदु वास्ति का ध्यान
रखना चाहिये । [किस्ती २ पुस्तक में
ऐसा पाठ भी है कि “अतः परंपोडशवादिर्धे
यम्,, यहाँ से आगे सोलह वर्षकी अवस्था
तक जो प्रमाण होता है वह होना चाहिये
अर्थात् २० पलकी वास्ति सत्तर से ऊपर
की अवस्था में देंवै ।

शयन का नियम ।

नात्युच्छ्रितेनात्यतिनिचिपादेसपादपीठंश्च
यनंमशस्तं ॥ प्रधानमृद्वास्तरणोपपन्नमा
कूटैरसंशुक्रपटोत्तरीयम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को वास्ति दीगई
हो उस के पलंग के पाये न बहुत ऊंचे
और न बहुत नीचे होने चाहिये । पांव रख
ने के लिये उन के नीचेभी तकिये होने
चाहिये । पलंग पर बहुत कोमल विछौनें
विछावै, खाट का सिरहाना पूर्वकी ओर
रखै । ओठने विछाने के कपड़े सफेद होवै

भोजनादि नियम ।

भोज्यं पुनर्व्याधि मपेक्ष्य तत्तत्पकल्पयेद्यु-
पयोरसाद्यैः ॥ सर्वेपुविद्याद्वाधिमेत-
दाद्यं वक्ष्यामि वस्तीनत उत्तरीयान् ॥

अर्थ—वस्ति देने के पीछे व्याधि के अनु-
सार दूध, गूप और मांसरसादिक द्वारा भोजन
बनाकर देवे । सब प्रकारकी वस्तियों में
प्रथम नियम भोजन का यही है । अब
अन्य वस्तियों का वर्णन करते हैं ।

वातनाशकनिरूहण प्रयोग ॥

द्विपञ्चमूलस्परसोऽम्लयुक्तः सखागमां
सस्यसपूर्वपेप्यः ॥ त्रिस्नेहयुक्तः प्रचरो
निरूहः सर्वाणिलव्याधिहरः प्रदिष्टः ॥

अर्थ—वक्रे का मांस और दशमूल इन
को अठगुने जलमें सिद्ध करके चौथाई शेष
रहने पर छानले तीनभाग यह काथ और
एक भाग तेल मिलाकर कुछ कांजी डाल
कर मिलाले । यह निरूहण प्रयोग सब
प्रकार के वातरोगों के दूर करने में बहुत
उत्तम है ॥

स्विराद्यवगस्यवलापटोल प्रायान्तिकैरन्द
यवैर्पुतस्य ॥ प्रस्थोरसश्छागरसार्धयुक्तः
साध्यः परः प्रस्थरसश्चयावत् । प्रियंगु
कृष्णायनकल्कयुक्तः सतैलसर्पिर्मधुसै-
न्धवश्च ॥ स्याद्दीपनोमांसवलप्रदश्च

चक्षुर्वलंचापिददातिवस्तिः ॥

अर्थ—शालिपर्णादिपंचमूल, खरैटी, पर-
चल, प्रायनाणा, अरंडकी जड और जी इन
को अठगुने जल में सिद्ध कर के चौथाई
शेष रहने पर छानले । यह क्याथ चारसेर

वक्रे का मांसरस दो सेर मिलाकर पाक
करै जब दो सेर बच रहै, तब प्रियंगु, पी-
पल और मोथा इनका कल्क तथा तेल घी
शहत और सेंधानमक मिलाकर अच्छी त-
रह से मथडाले । यह निरूहण वस्ति दी-
पन मांसवर्द्धक बलकाकरक और नेत्रों में
बल की बढ़ानेवाली है ॥

एरण्डमूलात्त्रिपलंपलानि दृस्वानिमूला
निचयानिपञ्च ॥ रास्नाश्वगन्धाथवला
शुद्धी पुनर्नवारम्बधेदेवदारु ॥

भागाः पलांशामदनाष्टयुक्ता जलद्विकंस
कथितेऽष्टशेषे । पेप्यंशताहाहृषुपामियंगु
सपिप्पलीकंमधुकम्बचाच ॥ रसाञ्जनं
पत्सकवीजमुस्तं भागाक्षमाश्रंतवणांश
युक्तम् ॥ समाशिकस्तैलयुतः समूत्रो
वस्तिर्नृणां दीपनलेपनीयः ॥

अर्थ—अरंडकी जड तीन पल, लघु पं-
चमूल एक पल, रास्ना, असगंध, खरैटी
गिलोय, पुनर्नया, अमलतास, देवदारु, ये
सब एक एक पल मेनफल आठ पल, इन
सब को दो कंस जल में सिद्ध करके आठवां
भाग रहने पर क्याथ को छान लेये फिर
इस में सौंफ, हाअत्रेर, प्रियंगु, पीपल, गुल्हटी,
वच, रसात, इन्द्र जी और मोथा दो दो
तोले सेंधानमक दो तोले तथा शहत, तेल
और गोनूत्र मिलाकर वस्ति देवे । यह वस्ति
दीपनीय और लेपनीय होती है ।

अरंडतेल की वस्ति के गुण ।

जंगोरूपादत्रिकृपृष्टशूलं कफाष्टतिमारत
निग्रहं च ॥ विष्णुश्चातग्रहणंसशूल-

माध्माततामग्निशर्कराच आनाहपशांश्रि
 हणीमद्रोपा नेरण्डवस्तिःशमयेत्प्रयुक्तः॥
 अर्थ—भरुंड के तेल की वस्ति देने से
 जंघा, ऊरू, पांश, त्रिक और पांठ का दर्द
 मिटजाता है। यह वक्रावृत्त वायु को नष्ट
 कर देती है। मल, मूत्र और अधोवायु का
 शूलयुक्त विवन्ध दूर होजाता है। आप्मान
 अमरी और शर्करा दूर हो जाती है। इसी
 तरह आनाह, अर्श और ग्रहणी दोष दूर
 होजाते हैं।

चतुष्पलैतैलघृतस्यभृष्टशृङ्गाच्छतार्थो
 दधिद्राडिमान्मलः ॥ रसःसपेण्योवलवर्ण
 मांस रेतोघ्नितैरियेसिरोतिशस्तः ॥
 अर्थ—वकरे का मांस पचासपल अठगुने
 जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर रस
 को छान ले। इस मांसरस को दही और
 अनार रसकी छटाई डालकर दो पल तेल
 और दो पल घी में तलकर इस में संधानम-
 क और मेनफल डालकर निरुहण देवे।
 इससे वल, वर्ण और मांसकी वृद्धि होती है।
 धीर्य और अग्नि की वृद्धि होती है। तिमिर
 रोग और शिःपीडा भी दूर होजाती है।
 जलद्विक्रसेष्टपलंपलाशान् पक्त्वारसो
 ऽर्धादकमात्रशेषः ॥ कल्कैर्वचामागधि
 कांपलाभ्यां युक्तःशताह्वादिपलेनचा
 पि ॥ ससैन्धवसौद्रयुतःसतैलो देयोनि
 रूहोवलवर्णकारी आनाहपाद्वर्षामपयोनि
 दोपान्गुल्मानुदावर्तरुजंचहन्त्यात् ॥

अर्थ—आठ पल डोककी छाल दो फंस
 जल में पाक करके आधा शेष रहने पर

छान लेवे पाँछे वच और पीपल एक एक
 पल सौंफ दो पल, संधानमक शहत और
 तेल मिलाकर निरुहण वस्तिदेवे। इस से
 वल वर्ण बढ़ता है। आनाह, पाद्वर्षाल,
 योनिदोष, गुल्म, उदावर्च और वेदना ये
 सब शान्त होजाते हैं।

यष्ट्याह्वयस्याष्टलेनासिद्धं पयःशताह्-
 वाफलापिप्लयीभिः ॥ युक्तससर्पिर्मधुवा
 तरक्त वैस्वर्यवीसर्पहतोनिरूहः ॥

अर्थ—आठपल मुलहटी, अठगुना दूध
 और दूधसे चौगुना जल डालकर पकावे।
 जब दूध शेष रहजाय तब इस में सौंफ,
 मेनफल, पीपल, शहत और घी मिलाकर
 निरुहवस्ति देवे। यह वस्ति वातरक्त, स्व-
 रभंगता और विसर्प को दूर करदेती है।

पित्तरोगनाशकनिरूहवस्ति।

षष्ट्याहलोधाभयचन्दनैश्च शृतंपयो
 ग्येकमलोत्पलैश्च ॥ सशर्करासौद्रयुतैः
 सुशीतः पित्तामयान्हन्ति सजीवनीयः।
 अर्थ—मुलहटी, लोध, हरड, रक्तचन्दन
 कमल और नीलोत्तर इनको डालकर दूध
 पकावे ठंडा होने पर जीवनीय गण का
 कल्क, चीनी और शहत डालकर पानकरे
 तो पित्तरोग दूर होजाते हैं ॥

पित्तरोगनाशकअन्याविधि।

द्विकापिकांश्चन्दनपत्रकादौ यष्ट्याह्व
 रास्नाह्वपशारिवाश्च ॥ सलोध्रमाञ्जिष्टव
 लायवाशाः स्थिराशरादिद्वयपञ्चमूलम् ॥
 निःकाण्यतोयेनरसंतेनशृतंपयोर्द्धादक
 मम्युहीनम् ॥ जीवन्तिभेदादिशतावरीभिः

वीराहिकाकोलिशतावरीभिःसितोप-
लाजीवकपद्मरेणुप्रपुण्डरीकैःकगलोत्पलै
श्च ॥ लोधात्प्रगुप्तामधुकरिविदारामुञ्जा
तकैःकेशरचन्दनैश्चपिष्टृतसौद्रयुतैर्निरुहं
ससैन्धवंशीतलमवदधात् ॥ मत्यागतेषु
न्वरसेनशालीन्क्षीरेणवाघातपरिपिक्त
गात्रः ॥ दाहातिसारमदरासपिचहृतपा
ण्डुरोगान्विपमञ्जरंच॥सगुल्ममूत्रग्रहका
मलादीन्सर्वाभ्यान्पिचकृताग्निहन्ति ॥

अर्थ—रक्तचन्दन, पप्पाख, ऋद्धी, मु-
लहठी, रास्ना, अडुसा, अनन्तमूल, लोष,
मंजीठ, खैरीटी, जवासा, शालिपर्णादि पं-
चमूल, नृणपचमूल इनसब द्रव्योंको दो दोकरप
लेकर अठगुने जलमें काथकरे, चौथाई शेष
रहने पर छान ले, फिर इस काथके साथ
आधा आढक दूध पकावै जब जलते जलते
दूध शेष रहजाय तब नीचे लिखे हुए
जीवन्त्यादि द्रव्योंका फल्क, घी, शहत, और
संभ्रानमक डालकर ठंडा करके निरूहण
वास्ति देवै। जीवन्त्यादिद्रव्य यथा जीवन्ती,
मेदा, ऋद्धि, शतावर, बृहत्सतावर, का-
फोली, क्षीरकाकोठी, सितावर, मिश्री,
जविक, पद्मरेणु, पुण्डरिकाकाठ, कमल,
नीलोफर, लोष, कंचकेवाज, मुलहठी, वि-
दारीकन्द, मूज, केशर, चन्दन इन सब
द्रव्यों को पीसकर उसमें डाल देवै। व-
स्तिके प्रत्यागत होने पर कुछ गरम जलसे
देह धोकर जांगल मांसरस वा दूधके साथ
शाली चावलोंका भोजनकरे। इस वास्तिसे
दाह, अतिमार, प्रदर, रक्तपित्त, हृद्रोग,

पाण्डुरोग, विपमञ्जर, गुल्म, मूत्रग्रह, वि-
वन्ध, तथा कामलादिक सम्पूर्ण प्रकारकी
पित्त व्याधिषं शान्त होजाती है।

द्राक्षादिकाश्मर्यमधुकसेव्यैःसशारिवाच
न्दनशीतपाकयैः। पयःशृतश्रावणिसुद्रप
र्णानुमात्मगुप्तामधुपट्टिककैः ॥ गोधूम
चूर्णैश्चतथाक्षमात्रैःससौद्रसर्पिमधुयष्टितैः
पथ्याविदारीक्षुरसैर्गुडेनवस्तिर्युतंपिचहरं
विदध्यात्॥हृन्नाभिपार्श्वोत्तमदेहदाहेदाहे
ऽन्तरस्थचसकृच्छ्रमूत्रे ॥ क्षीणक्षतरेतसि
चापिनष्टैपैत्तेऽतिसारिचनृणांमशस्तः ॥

अर्थ—द्राक्षादि द्रव्य, खंभारी, महुआ,
उसर,शारिवा, रक्तचंदन, और खैरीटी इनके
फल्क में चौगुना जल और अठगुना दूध
डालकर औटावै जब दूध शेष रहजाय तब
उसमें श्रावणी, सुद्रपर्णी, कंचके बीज,
मुलहठी, का फल्क मिलादेवै। फिर इसमें
दातोले गेंहूँ का चूर्ण, शहत, घी, मुलहठी
का तेल, डरड, विदारीकन्द, ईख का रस
और गुड मिलादेवै। यह वस्ति पित्तनाशक
होती है। इससे हृदय, नाभि, पसली और
मस्तक का दाह, अन्तरस्थ दाह, मूत्रकृच्छ्र
की जलन, क्षीणक्षत रोग, नष्टप्रारोग,
और पित्तज अतिसार दूर होजाते हैं।

कफनाशकवस्ति॥

कोशातकारग्वधेवदारुशाईष्टमूर्वाकुटना
कपाठाः ॥ पकाकुलत्यानष्टहृतीचतोपे
रसस्पतस्वप्रमृतादशस्युः ॥ तांसर्पपैला
मदनैः सकुष्ठैरक्षमार्णैःप्रमृतैश्चयुक्तान्॥
फलाहृतैस्त्व समाक्षिफस्य शारस्य
तैलस्य च सर्पपस्य । दद्यान्निर्हृक

फरोगिणेऽज्ञोमन्दाग्नियेचाप्यशतद्विषेच॥

अर्थ—फोशातकी, अमलतास, देवदारु, मरोडफली, शार्ङ्गगण्ड, कुडा की छाल, आक, पाठा, कुलर्था और यडी कटेरी इनको अठगुने जलमें पकावे जब इसमें से दस प्रसृत रहजाय तब काथ को निकालले फिर इसमें सरसो, इलायची, मेनफल और कूठ इनसब द्रव्यों का दोदोपल फल्क, मेनफल का तेल दोपल, शहतदोपल, जवाखार दोपल और सरसोंकातेल दोपल मिलाकर निरूहण वस्ति देवे। इससे कफजन्यरोग, मन्दाग्नि और अन्नमें अरुचि होना ये सब मिटजाते हैं

पटोलपथ्यामरदारुभिर्वा

सपिप्पलीकैःस्वर्धथैर्जलारुच्यैः॥

अर्थ—परवल, हरड, देवदारु और पीपल इनका व्वाध पान कराने से भी उक्तरोग दूर होजाते हैं।

द्विपञ्चमूलैत्रिफलासविल्वाफलानिगोम्
प्रयुतःकपायः॥ कलिङ्गपाठाफलमुस्तक
ल्कामसैन्धवःक्षारमधुःसतैलः॥ निरूह
मुख्यःकफजाम्बिकारान्सपाण्डुरोगाल

सकामदोषप्रणा॥

अर्थ—दोनों पंचमूल, त्रिफला, बेलगिरी और मेनफल इनका अठगुने जल में काथ करले। फिर इस काथ में गोमूत्र, इन्द्रजौ, पाठा, मेनफल और मोथा का कल्क, संधानमक, जवाखार, शहत और तेल मिलाकर निरूहण देने से कफरोग, पाण्डुरोग, अल्सक और आमशोष दूर होजाते हैं।

वायुनाशक वस्ति ।

रास्नामृतैरण्डविट्कदारुसप्तच्छदोशीरसु
राहनिम्बैः॥श्यामाकभूनिम्बपटोलपाठा
तिक्तासुपर्णीदशमूलमुस्तैः॥त्रायन्तिका
शिशुफलत्रिकैश्चकाथःसपिण्डीतकतोयम्
त्रः॥ यष्ट्याहकृष्णाफलिनीशताहारसा
ञ्जनस्वेतवचाविट्कैः॥ कलिङ्गपाठाभु
दसैन्धवश्चकल्कैःससर्पिमधुनैलमिश्रः॥अ
यंनिरूहःक्रिमिकुट्टेमेहद्रघ्नोदराजीर्णक
फातुरेभ्यः॥ रूक्षापथैरत्यपितपितेभ्यः
एतेपुरोगेष्वपिसत्सुदचः॥ निहत्यवाते
ज्वलनंप्रदीप्यधिजित्यरोगांश्चबलंकरोति
हन्यात्थामारुतमूत्रसङ्गमवस्तेस्तथाटोप
मथापिघोरम् ॥

अर्थ—रास्ना, गिलोय, अरंड की जड़, वायविडंग, देवदारु, सप्तच्छद, खस, देवदारु, नीम की छाल, सोंखिया, चिरायता, परयल, पाठा, कुटकी, मूषकपर्णी, दशमूल, मोथा, जावित्री, सहजना और त्रिफला इन को अठगुने जल में चढादे, चौथाई शोष रहने पर उतार कर छान ले। फिर इस काथ में मेनफल का व्वाध, गोमूत्र, मुलहठी, पीपल प्रियंगु, सोंफ, रसोत, सफेद वच, वायविडंग, इन्द्रजौ, पाठा, मोथा और संधानमक इनका कल्क तथा घी, शहत और तेल मिला देवे यह निरूह वस्ति क्रिमरोग, कुष्ठ, प्रमेह, मूत्र, उदररोग, अजीर्ण और कफको दूर करती है। जो रूक्ष औषधों के सेवन से अपतपित हुआ हो, उसको भी उपयोगी होती है इससे वायु नष्ट होती है, जठ-

राग्नि वढती है, यह रोगों को दूर कर के देह में बल बढ़ाती है, अधोवायु और मूत्र के विबन्ध को दूर करके वस्तिके घोर आटोप को भी दूर करती है ।

पुनर्नर्वरण्डवृषादमभेदरुच्यीरभूतीकचला पलाशाः ॥ विपञ्चमूलञ्चपलांशिकानि क्षुण्णानिर्धौतानिपलानिचाष्टौ ॥ विल्वं यवान्कोलकुलत्पधान्यफलानिचैत्रमृत्तोन्मितानि ॥ पयोजलह्रयाढकपोःशृतंतत्क्षीरावशेषंसितवस्त्रपूतम् ॥ यचाश ताहामरदारुकुष्ठयष्ट्याहृत्सिद्धार्थकपिप्पलीनाम् ॥ फलकैर्यवान्यामदनैश्चयुक्तंनःत्युष्णशीतगुढसैन्धवाक्तम् ॥ सौद्रस्यतेलस्य चसर्पिपश्वतयैवयुक्तंमृतंत्रिभिश्च । दद्यान्निरुद्द्विधिनाविधिनःसंसर्धसंसर्गकृताम यघ्नः ॥

अर्थ—साठ, अरंड की जड़, अइसा, पाखान भेद, सफेद साठ, अजवायन, खरौटी ढाक, दसमूल, ये सब एक एक पल बेल-गिरी आठ पल, तथा जी, बेर, कुलथी, धनियाँ और मेनफल पृथक् २ दो दो पल अच्छी तरह कूटकर धोकर एक भाटक जल और एक भाटक दूध में कर के दूध शैप रहने पर सफेद वस्त्र में छान ले फिर उसी दूध में बच, सोंफ, देवदारु, कूठ, मुलहठी, पीपल, अजवायन और मेनफल का कल्का, गुड, सैधानमक, शहत दो पल, दो पल तेल, और दो पल घी मिलाकर न बहुत गरम, न बहुत, ठंडा कर के निरूहण देवे । यह वस्ति इन्द्रज रोगों को दूर करती है ॥

स्निग्धोष्णएकःपवंसमानौ । दौस्वादु शीतौपयसाचपित्ते ॥ त्रयःसमूत्राःकडुकोष्णतीक्ष्णाःकफेनिरूहानपरंविधेयाः ॥ रसेनवातेप्रतिभोजनस्यात्क्षीरेणपित्ततु कफेचयूपैः ॥ तथानुवासेयुचविल्वतेलं स्याज्जीवनीयंफलसाधितंच ॥

अर्थ—वातज व्याधि में एक समय में एक स्निग्धोष्ण निरूहण वस्ति देवे । पित्तज व्याधि में दूध के साथ श्वादु और शीतल दो वस्ति एक साथ देवे । कफ व्याधि में गोमूत्र के साथ कडु, उष्ण और तीक्ष्ण तीन वस्ति एक समय में देवे ।

वायुरोग में निरूह देने के पीछे मांसरस पित्त में दूध और कफ में यूप के साथ पथ्य देवे । इन सब रोगोंमें अनुवासन देने के निमित्त वायुरोग में विल्वतेल, पित्तरोग में जीवनीय गण से सिद्ध किया हुआ तेल और कफरोग में मेनफलादि से सिद्ध किया हुआ तेल देना चाहिये ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन । इतीदमुक्तंनिखिलयंयथावद्वस्तिमदानस्य विधानमग्यम् ॥ योऽधीत्पविद्वानिहवः स्तिकर्मकरोतिलोकैलभतेससिद्धिम् ॥

अर्थ—इस तरह इस अध्याय में वस्ति देने की युक्तियाँ यथावत् वर्णन की गई हैं, जो विद्वान् इन को सोच समझकर वस्ति कर्म करने में प्रवृत्त होता है वह संसार में सिद्धि पाता है ॥

इतिग्रीचरकसंहितायांसिद्धिस्थानेवस्तिस्वी-

यसिद्धिर्नामृत्तीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातःस्नेहव्यापादिकांसिद्धिव्याख्यास्या

मइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तरभगवान् आत्रेय बाले कि अब हम स्नेह व्यापादिका सिद्धि की व्याख्या करेंगे ।

स्नेहवस्तीन्निशोभमान्वातपित्तकफापहान् । मिथ्याप्रणिहितानाश्चव्यापदःसचि कित्सिताः ॥

अर्थ....अथहम वात, पित्त और कफको दूर करनेवाली स्नेह वस्तियों का वर्णन करते हैं । इन वस्तियों के मिथ्या प्रयोग से जो २ दुर्घटना होती हैं, उनका और उनका चिकित्साओं का वर्णन भी करेंगे ।

वातनाशक अनुवासन विधि ।

दशमूलंबलां रास्नामश्वगन्धांपुनर्गवाम्
गुह्यच्येरेण्डभूतीकभार्गीष्टपकरोहिपम् ॥

शतावरीसहचरंकाफनासांपलांशिकम् ।

यवमापातसीकोलकुलस्थान्प्रसृतोन्मिताम् ॥ चतुद्रोणिऽम्भसःपक्त्वाद्रोणशेषेण

तेनच । पचेत्तैलाढकंक्षीरेजीवनीयैःपलोन्मितैः ॥ अनुवासनमेतद्विसर्वातविकारनुत् ॥

अर्थ....दशमूल, खैरी, रास्ना, असगंध साठ, गिलोय, अरंडकीजड़, अजवायन भाइंगी, अडूसा, रोहिपतृण, सितावर, सहचरी, कौआटोटी, ये सब एक २ पल, जो उरद, अलसा, वेर, कुलथी प्रत्येक दो२पल इन सबका चारद्रोण जलमें पकावे। पकते२ पय एक द्रोण रहजाय तब उसे छानले

फिर इस न्यायमें एकआढकदूध, एक आढक तेल और एक २ पल जीवनीय गणके द्रव्योंका फलक मिलाकर पकावे । इस तेलके अनुवासन वस्ति देने से सब प्रकारकी वात व्याधियां दूर हो जाती हैं ।

वसामयोगः ॥

आनूपानां वसातद्दृज्जीवनीयोपसाधिता

अर्थ—उक्त दस मूलादि द्रव्यों के क्याध में दूध, जीवनीय गणोक्त द्रव्योंका फलक और तेलके बदलेमें एक आढक आनूप जीवों की चर्बी पकाकर अनुवासन देने से भी वातरोग दूर होते हैं ।

अन्यतैलः ॥

घृताहायवविल्वाम्लैःसिद्धतैलंसमीरणे ।

अर्थ—सोंफ, जी और बेलगिरी इनके फलक, कांजी और तेलको मिलाकर पकावे। फिर इस तेलकी अनुवासन वस्ति देवे तो उक्तफल होता है ॥

अनुवासनीयघृत ॥

सैन्धवेनाग्निवर्णेनतप्तं चानिलनुद्घृतम् ॥

अर्थ—सैधेनमक को आगमें देकर छाल गरम करले फिर इस घीमें डालदे । इस सुहाते हुए गरम घीकी अनुवासनवस्ति देवे तो उक्तफल होता है ॥

जीवन्तीमदनंमेदांश्रावणीमधुकंबलाम् ।

शताहर्षपक्षैकृष्णांकाकनासांशतावरीम् ॥ स्वगुप्तांक्षीरकाकोलार्किकटारुयांश

टीवचाम् ॥ पिण्ड्वातेलंघृतंक्षीरेसाधयेत् चतुर्गुणे ॥ वृंहणंवातपित्तघ्नंवल्लभक्रामि

वर्द्धनम् । मूत्ररतोर्जोदोपानहरेत्तदनुवासनम् ॥

अर्थ—जीवन्ती, मेनफळ, मेदा, श्रावणी, मुलहटी, खरैटी, सोंठ, ऋपमक, पांपळ, कौभाटोंटों, सितावर, केंच, के बीजू, क्षीर-फाकोली, फाकडासीगी, कचूर, वच, इन सबको पीसकर मिलाहुआ तेल और घी चार सेर, दूध सोलहसेर इन सबका पाक करे यह अनुवासन वृंहणकर्त्ता, वातपित्तनाशक घल, धीरे और अग्निको बढानेवाला है । इस से मूत्रदोष बीर्यदोष, और रजोदोष दूर होजाते हैं ॥

लाभतश्चन्दनाद्यैश्चपिष्टैःक्षीरचतुर्गुणम् ।
तैलपादंघृतंसिद्धंपित्तघ्नमनुवासनम् ॥

अर्थ उवर चिकरिसा में जो चन्दनादिक तैल के द्रव्य वर्णन कियेगये हैं उन में से जो जो मिलसके उनको पीसकर समान तेल, तेल से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पाक करे यह वरित्तित्तोगों को दूर करती है ।

सन्धवंमदगंकुण्डुशताह्वांनिचुलंबलाम् ।

द्विविरंमधुकंभार्गोदिवदारुसकटफलम् ।

नागरंपुष्करंमेदांचविकांचित्रकंशटीम् ॥

विडङ्गातित्रिपेश्यामाहरेणुनीलिनीस्थिराम् ।

विल्वजामोदौकृष्णांचदन्तीरास्नांच

पेषयेत् ॥ साध्यमेरुण्डतैलंवातैलंवाकफरो

गनुत् । वर्ध्मादावर्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाद्य

मारुतान् ॥ आनाहमश्मरींचैवह्न्याचद

नुवासनम् ।

अर्थ —संधानमक, मेनफळ, कूठ, सोंफ,

हिज्जल, खरैटी, हारुबेर, मुलहटी, भाडेगी

देवदारु, कायफल, सोंठ, पौहकरमूल, मेदा,

चव्य, चीता, कचूर, वायविडंग, अतीस, श्यामानिसोथ, रेणुका, नीलिनी, शालिपर्णी, विल्व, अजमोद, पीपळ, दन्ती, रास्ना इन सबको समानभाग लेकर पीस लैवै । इस कल्क के साथ अरंडका तेल वा सरसों आदि का तेल सिद्ध करके अनुवासन देखै । तौ कफरोग, वर्ष्म, उदावर्त्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्रमेह, आल्यवात, आनाह और अश्मरी, ये सबरोग दूर होजाते हैं

मदनैर्वाम्लसंयुक्तैर्विल्वाद्येनगणेनवा ।

तैलकफहरैर्वापिकफघ्नंफलपेद्भिपक् ।

अर्थ—मेनफळ का कल्क और काजी अथवा विल्वादि पंचमूल का क्वाथ और कल्क अथवा कफनाशक पिप्पल्यादि गण के क्वाथ के साथ तेल पकाकर अनुवासन देने से कफ दूर होता है ।

विडंगैरण्डरजनीपटोलत्रिफलामृताः ।

जातिमवालानिर्गुण्डीदशमूलाखुर्पीणकाः

निम्बपाठासहचरसम्पाककरवीरकम् ।

एपाकाथेनविपचेत्तैलमोभिश्चकण्ठिकैः ॥

अर्थ वायविडंग, अरंडफांजड़, हल्दी, परवल, त्रिफला, गिलोय, चमेली के पत्ते, निर्गुंडी, दशमूल, मूषिकपर्णी, नीम, पाठा, सहचर, अमलतास, करवीरकी छाल इनके क्वाथ में इनही का कल्क डालकर तेल पकाकर अनुवासन देखै तौ कफरोग दूर होजाते हैं ।

फलविल्वहृत्तृकृष्णारास्नाभूनिम्बदारु-

भिः । सप्तपर्णवचोक्षीरदावांकुष्ठकालेन-

कैः ॥ लतायष्टिश्चतुर्गुण्डीचोरु

पाँकरैः । तत्कुष्ठानिक्रपीन्मेहानशीसि
ग्रहणीगदम् ॥ क्लीवतां विपमाग्नित्वमलदो
पत्रयंतथा । प्रयुक्तं प्रणुदत्याशुपानाभ्यंग
नुवासनैः ॥

अर्थ—मेन्फल, बेलगिरी, निसोय, पीपल,
रास्ना, चिरायता, देवदारु, सप्तपर्णी, वच,
खस, दारुहलदी, कूठ, इन्द्रजौ, प्रियंगु,
मुलहटी, सौंफ, चीता, कचूर, चोरक और
पुहकरमूल इन द्रव्योंके कल्क के साथ सि-
द्ध किया हुआ तेज पान, अभ्यंग और
अनुवासनमें देने से फोड़, क्रिमि, प्रमेह,
अर्श, गृहणारोग, क्लीवता, विपमाग्नि और
त्रिदोष को दूर करता है ॥

स्नेह वस्ति के गुण ।

व्याधिष्यायामकर्माध्वक्षीणावलानिरौज-
साम् ॥ क्षीणशुक्रस्य चातीवस्नेहवस्तिर्व
रुद्रमदः । पादजघोरुपृष्ठस्य कउयाश्च स्थि
रतापराम् ॥ जनयेदप्रजानांच प्रजांस्त्रीणां
तथानृणाम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य व्याधि, व्यायाम, कर्म,
मार्ग अमण से क्षीण होगये हैं । वा और
किसी कारणसे क्षीण होगये है, वा जिन
के हृदय का ओजो धातु नष्ट होगया है,
वा जिन का शुक्र क्षीण पडगया है उन के
पक्ष में स्नेह वस्ति बहुतही यत्न बढ़ाने वाली
है । पाँध, आँध, ऊरु, पीठ और कमर को
अत्यन्त दृढ करदेती है । जिन स्त्री पुरुषों
के सन्तान नहीं होती है उन के सन्तान
होने लगती है ।

स्नेहवस्ति में छः आपति ।

वातपित्तकफान्यन्नपुरीषैराष्टतस्यच ॥
अभुक्तेचगणीतस्यस्नेहवस्तेःपडापदः ॥

अर्थ—यह वात, पित्त, कफ, अन्न और
पाँचवें पुरीष से आवृत होजाती है तथा
बिना भोजन किये भी इसका प्रयोग करने
से आपत्ति होती है । इस तरह स्नेह वस्ति
में छः विघ्न है ।

दस्ति में विघ्न के कारण ।

शीतोऽल्पोवाधिकेवातोपित्त्युष्णः कफेमु
दुः ॥ अतिभुक्तेगुरुर्वर्चःसञ्चयेऽल्पवल्
स्तथा दत्तस्तराष्टतःस्नेहोनयात्यभिभ-
वादपि ॥ अभुक्तेनावृतत्वाच्चयात्यूर्द्ध
तस्य लक्षणम् ।

अर्थ—अत्यन्त कुपित वात में शीतल
वा अल्प वस्ति देने से वह प्रत्यागमन नहीं
कर सकती है, इसी तरह पित्तकी अधिकता
में अत्युष्ण वस्ति, कफकी अधिकता में
अत्यन्त मृदु वस्ति प्रत्यागमन नहीं कर
सकती है । बहुत भोजन करलेने पर भारी
वस्ति और विष्टा की अधिकता में अल्प-
वस्ति प्रत्यागमन नहीं कर सकती है तथा
जो अभुक्त अवस्था में वस्ति दीजाती है
उसका कोई रोकनेवाला नहीं होता है
इस से वह ऊपरको चली जाती है ।

वातावृत स्नेहवस्ति के लक्षण ।

अङ्गमर्दज्वराध्यान्शीतस्तम्भोरुपीठनैः
पादश्वरुवेष्टनैर्विद्वान्स्नेहवातावृतं भिषक्
अर्थ—अंगमर्द, ज्वर, आध्यान्, शीत,
स्तम्भता, ऊरुओं में पीडा, पसली में दर्द

और शरीर में अंगड़ाई आती हो तो यह समझना चाहिये कि स्नेहवस्ति वायुदारा आवृत है ।

वातावृत स्नेहवस्ति में उपाय ।

स्निग्धाम्ललवणोष्णोष्णैस्तारास्नापीतद्रु
तिल्वकैः॥सौवीरकसुराकोलकुलत्ययवसा
धितैः॥निरूहनिर्हरेत्सम्यक्समूत्रैःपञ्च
मूलिकैः ॥ ताभ्यामेवचर्तैलाभ्यांसायंशु
क्तेऽनुवासयेत् ॥

अर्थ—वातावृत स्नेह के निकालने के लिये रास्ना, सरल फाष्ट, लोह का कल्क तथा सौवीरक, सुरा, बर, कुलथी और जौ इनके क्वाथ के साथ सिद्ध करके स्नेह, काजी, संधानमक डालकर उष्ण निरूहण वस्ति देवै । अथवा गोमूत्र और पंचमूल के क्वाथ के साथ निरूहण देवे ॥ अथवा उक्त दोनों प्रकारके द्रव्योंके साथ तेल सिद्धकर के भोजन करने के पीछे अनुवासन वस्तिदेवै ।
पित्तावृतवस्तिकेलक्षण ।

दाहरागन्धुपामोहतमकज्वरदूपणैः॥विद्या
त्पित्तावृतस्वादुस्तिक्तैस्तवस्तिभिर्हरेत्॥
अर्थ—स्नेहवस्ति देने के पीछे शरीर में दाह, ललाई, तृषा, मोह, तमक और ज्वर हो तो समझना चाहिये कि स्नेह पित्तावृत है इस में स्वादु और तिक्त निरूहण देकर स्नेह को निकाल देवै ।

कफावृत वस्ति के लक्षण ।

तन्द्राशीतज्वरालस्यप्रसेकारुचिगौरवैः॥
समूर्च्छाम्लानिभिर्विद्यात्श्लेष्मणास्ने
हमावृतम् ।

अर्थ—स्नेहन वस्ति के पीछे तन्द्रा, शीत-ज्वर, आलस्य, प्रसेक, अरुचि, भारापन, मूर्च्छा और ग्लानि हो तो स्नेहको कफावृत समझना चाहिये ॥

कफावृत वस्ति में उपाय ।

कटुतिक्तकपायोष्णःसुरामूत्रोपसाधितैः॥
फलतैलयुतैःसाम्लैर्वस्तिभिस्तंविनिर्हरेत् ।

अर्थ—कफावृत वस्ति में कटु, तिक्त, कपाय और उष्ण द्रव्य, तथा सुरा और गोमूत्र के साथ सिद्धकी हुई निरूहण वस्ति जिस में मेनफल का कल्क, तेल, और काजी मिला हो देकर स्नेह को निकाल देवै ।

अतिभोजनावृत वस्ति के लक्षण ॥

छर्दिमूर्च्छारुचिग्लानिशूलनिद्रांगमर्दनैः॥
आमलिंगैःसदाहैस्तंविद्यादत्यशनावृतम्-
अर्थ—बमन, मूर्च्छा, अरुचि ग्लानि, शूल, निद्रा, अंगमर्द, आम के लक्षण और दाह हो तो समझना चाहिये कि स्नेह अत्यन्त भोजन से आवृत है ।

उक्तरोगमें उपाय ॥

कटूनांलवणानांचक्राथैश्चूर्णैश्चपाचनम्
विरेकोमृदुरत्रामविहिताचक्रियाहिता ।

अर्थ—इस में कटु और लवण द्रव्यों का क्वाथ और चूर्णद्वारा आमदोषका पचाना ठीक है, इसी तरह मृदु विरेचन और आमनाशक अन्य अन्य क्रिया भी हित हैं ।

पुरीषावृत वस्ति के लक्षणोपाय ।

विण्मूत्रानिलसद्भातिशुरुत्वाध्मानहृद्ग्रहैः॥
स्नेहंविद्यावृतंज्ञात्वास्नेहस्वेदैःसर्वात्तिभिः
श्यामाविल्वानिभिसिद्धैश्चनिरूहैःसानुवा-

सनेः। निहरेद्विधिनासम्पगुदावत्तर्हरेणच

अर्थ—स्नेहन वस्ति के ग्रहण करने के पीछे जो मिष्टा, मूत्र और अधोगायु का विवध हो, भारापन, अफरा और हृदय में शूल होता होतौ समझना चाहिये कि स्नेह मिष्टा से भागृत है। उसके निकालने के लिये स्नेह स्नेद और वार्ति प्रयोग करै तथा श्यामा निसोध की जड, और बिस्वा दि पचमूल के क्वाथ के साथ सिद्ध की हुई निरूह और अनुवासन वस्ति देवे। तथा इस में उदावर्तनाशक क्रियाओंका करनाभी हितहै ऊर्ध्वगतवस्ति के लक्षण ॥

अभुक्तेशून्यपायौवाधेगात्स्नेहोऽतिपीडि
तःधावत्सूक्ष्मततःकण्ठादूर्ध्वेभ्यःखेभ्यएत्यापि

अर्थ—विना भोजन किये वा शून्य गुदा में स्नेह वस्ति का अत्यन्त पीडन करने से स्नेह ऊपर की दौडता है तब यह कठ से ऊपर के मार्ग मुख और नासिका द्वारा निकल पडता है ॥

—ऊर्ध्वगतवस्तिमेंउपाय ।

मूत्रश्यामानितृप्तिद्वेयवक्रोलकुलस्थवान्
तत्सिद्धतैलइष्टोऽग्निरूहःसानुवासनः

अर्थ—गोमूत्र, दोनों प्रकार की निसोध इन की जौ, घेर, घु उर्था के क्वाथ के साथ सिद्ध करके निरूह देवे अथवा उक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध करके तेल देवे तौ ऊर्ध्वगतवस्ति ठीक होजाती है ।

कण्ठादगच्छतःस्तम्भकण्ठग्रहविरेचनैः ॥

छर्दिनीभिःक्रियाभिश्चतत्पर्यकार्यनिवर्तनम् ॥

अर्थ—कण्ठ से स्नेह के निकलने पर कठ रुम्कर स्नेह को रोक लेता है, इस का निवर्तन विरेचन और छर्दिनाशक चिकित्सा से होता है ।

उपेक्ष्य वस्ति

यस्यनोपद्रवंकुर्यात्स्नेहवस्तिरानिमृतः ॥
सर्वोऽल्पोद्वृत्तरौक्ष्याद्वोपेक्ष्यःसहिविजानता ॥

अर्थ—रुक्षताके कारण स्नेहनवस्ति विना निकले किसी प्रकार का उपद्रव न करै उसका सत्र वा थोडा स्नेह उपेक्षा करने के योग्य होता है।

मुक्तस्नेहका पश्चात् कर्म ॥

मुक्तस्नेहंसुखोष्णंचलगुपधोपसेवनम् ॥
भुक्तवान्मात्रयायोज्यमनुयास्यज्यहाज्य
हात्धान्यनागरसिद्धहितोयंदद्याद्दि ।
चक्षण । व्युपितायनिशापल्यमुष्णंवाके-
वलंजलम् ॥

अर्थ—भावृत स्नेह के निकल जाने के पीछे सुखोष्ण हलका पथ्य मात्राके अनुसार देवे फिर तीसरे दिन अनुवासन देवे । पीने के लिये धनिया और सोंठ डालकर औंटाया हुआ जल देवे, अथवा रात्रि में भोजन न कराके प्रातःकाल केवल उष्ण जल देवे ।

उष्णोदक के गुण

स्नेहोऽग्नीर्णजरयतिश्लेष्माणंतन्निनत्ति
चा ॥ मारुतस्यानुलोम्यंचकुर्यादुष्णोद-
कंनृणाम् ॥ चमनवाधिरकेचनिरूहेसानु-

वासने ॥ तस्मादुष्णोदकं देयं वातश्लेष्म प्रशान्तये ॥

अर्थ—उष्णजल अजीर्ण स्नेह को पचाता है। कफका भेदन करता है और वायुका अनुलोमन करता है इसी से वमन, विरेचन निरूहण वा अनुवासन में वातकफकी शांति के लिये उष्ण जल देना चाहिये। रूक्षनित्यस्तु दीप्ताग्निव्यायापीमारुताशयी वंक्षणश्रोण्युदावर्त्तवातार्त्तवादिनेदिने ॥

एपां चाधुजरास्नेहोपात्यम्युसिकतास्विव

अर्थ—नित्यप्रति रूक्ष सेवन करनेवाले दीप्ताग्नि वाले, व्यायामशील, वात कोष्ठ-वाले, तथा जिनकी वंक्षण, श्रोणी और उदावर्त्त-वातप्रस्त हों उन्हें दिया हुआ स्नेह शीघ्रही ऐसे जीर्ण होजाता है जैसे बाखरेत में डाला हुआ जल शुष्क होजाता है।

अतोऽन्येपां न्यहात्मायः स्नेहं पचति वाक्-
कः ॥ न त्वामं प्रणयेत् स्नेहं स ह्यभिप्यन्दयेद्गु-
दम् ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए मनुष्यों से भिन्न मनुष्यों की अग्नि तीन दिन में स्नेह को पचा सकती है ॥ वस्ति द्वारा आम स्नेह का प्रयोग कदापि करना उचित नहीं है, क्योंकि इस से गुदा अभिष्यन्दित होजाती है ॥ सावशेषं चक्षुर्वीतवायुः शेषे हित्तिष्ठति ।

अर्थ—वस्ति में जितना स्नेह होता है उस सब का प्रयोग नहीं किया जाता है क्योंकि वचे हुए स्नेह के साथ वायु होती है न चैव गुदकण्ठाभ्यां दद्यात् स्नेहमनन्तरम् ॥ उभयस्मात्समं च्छन्याद्यग्निं न दूषयेत्समं

अर्थ—एक ही समय में गुदा और कंठ दोनों से स्नेह का प्रयोग करना उचित नहीं है, क्योंकि एक साथ जानेसे वायु और अग्नि को दूषित करता है।

स्नेहवस्तिनिरूहं वानैकमेवातिशीलयेत् ॥
उत्केशाग्निवधौ स्नेहाभिरूहात्पवनाद्भय-
म् ॥ तस्मान्निरूहः स्नेहः श्यान्निरूहश्चा-
नुवासितः ॥ स्नेहशोधनयुक्तैश्च वस्तिक-
र्मत्रिदोपनुत् ॥

अर्थ—स्नेह वस्ति और निरूह वस्ति एक साथ देना ठीक नहीं है, क्योंकि स्नेहसे उत्केश और अग्निका नाश होता है और निरूह से वायुका भय होता है। इस लिये जिसको निरूह देना हो उसे प्रथम स्नेहन देवे स्नेहन और शोधन की युक्तिही से वस्ति-कर्म त्रिदोपनाशक होता है।

कर्मव्यायामभाराध्वयानस्त्रीकपितेषु च ॥
दुर्बले वातभग्ने च मात्रावस्तिः सदा मत्तः
ह्रस्वायाः स्नेहमात्रायामात्रावस्तिः समो भवे-
त् ॥ यथेष्टाहारचेष्टस्य सर्वकालं निरत्ययः
बल्यं सुखोपचर्त्थं च सुखं स्पष्टपुरीपकृत् ॥
स्नेहमात्राविधानं हि दृष्टं वातरक्तमुत् ।

अर्थ—परिश्रम, व्यायाम, भारवहन, मार्ग की थकावट, सवारी से थकित और खांस-गन से कर्षित तथा दुर्बल और वातप्रस्त रोगों में नीचे लिखी हुई मात्रावस्ति देनी चाहिये। मात्रावस्ति स्नेह की ह्रस्वमात्रा के समान होती है। मात्रावस्ति ग्रहण करके यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये जिससे किसी प्रकार का उपद्रव न हो। मात्रानु-

सार स्नेह प्रयोग करनेसे वह स्नेह बल को बढ़ाता है, मुख फरता है दस्त मुख पूर्वक होता है । वातरक्त दूर होजाता है और पुष्टाई बढ़तीहै [भोस्नेह आधेदिन में पञ्चजाता है और जो सुकुमार मनुष्यों के पक्ष में प्रयोग किया जाता है, उसही स्नेह की हस्वमात्रा कहते हैं] ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकौ ।

घातादीनांशमायोक्ताःप्रवराःस्नेहवस्त
यः। तेषांचाज्ञप्रयुक्तानांन्यापदःसचिकि-
रितताः । प्राग्भोज्यंरनेहवस्तेर्यद्भुव्यंयेऽ
र्हास्त्र्यहाश्चये । स्नेहवस्तिविधिशोक्तौ
मात्रावस्तिविधिरथः॥

अर्थ—इस स्नेहव्यापद अध्याय में वाता-
दिदोषोंकी शान्ति के लिये उत्तम २ स्नेह
वस्तियों का वर्णन कियागया है, तथा अ-
योग्य रीति से प्रयोग की हुई स्नेहवस्तियों
के रोग, उनकी चिकित्सा और वस्ति के
प्रयोग करने से पहिले जो आहार किया
जाता है, जो स्नेह प्रयोग के योग्य है,
जो तीन दिन के भीतर स्नेहवस्ति के योग्य
है, उनका भी वर्णन कियागया है । तथा
इसमें स्नेहवस्ति की विधि और मात्रावस्ति
की विधि भी वर्णन की गई है ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांआग्निवेशाधिरनिता-

यांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धि-

स्थानेस्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नाम

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथातोनेत्रवस्तिव्यापादिकांसिद्धिव्या-
ख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम नेत्रवस्तिव्यापादिका सिद्धि अ-
ध्यायका वर्णन करेंगे ॥

अथनेत्राणिवस्तींश्चशृणुवज्यानिफर्षतु
नेत्रस्याज्ञप्रणीतस्यव्यापदःसचिकित्सि-
ताः ॥

अर्थ—चिकित्सा में प्रयोग न कियेजाने
के योग्य नेत्र और वस्ति तथा अज्ञान के
हाथ से प्रयुक्त कीहुई वस्तिनलकी विपत्ति
और फिर उन रोगों में जो २ चिकित्सा
कर्तव्य हैं, उन सब का वर्णन विस्तारपूर्वक
कियाजाता है ॥

वर्जित वस्तिनल ।

इस्वदीर्घतनुस्फूलजीर्णशिथिलबन्धनम्।
पार्श्वछिद्रंतथाचक्रमष्टानेत्राणिवर्जयेत् ॥

अर्थ—ह्रस्व, दीर्घ, पतला, मोटा, पुराना
शिथिल बन्धन, पार्श्वछिद्र (जिसके इधर
विधर छेद हो) और टेढा, ये आठ प्रकार
के वस्तिनल वर्जित हैं ॥

ह्रस्वादि वस्तिनलके उपद्रव ।

अप्राप्त्यतिगतिस्तोभकर्षणक्षणनस्रवाः ।

गुदपीडागतिजिह्वातेपांदोपायथाक्रमम् ।

अर्थ—वस्तिनल छोटा होने से उचित
स्थान पर नहीं पहुंचता है । दीर्घ होनेसे
उचित स्थान से ऊंचा चला जाता है ॥
पतला होने से, क्षोभ को प्राप्त होता है ।
स्फूल होने से वस्ति मूलमार्ग की खींचती

है। पुराना होने से भीतर जाकर टूटजाता है। शिथिल बन्धन होने से स्राव होता है। पार्श्व में छिद्र होने से गुदा को पीड़ित करता है और टेढ़ा होने से वस्ति की गति टेढ़ी होती है ॥

यजित वस्ति ॥

विषमछिद्रमांसलस्थूलजालीकवातलाः।

छिन्नः क्लिन्नश्चतानष्टौवस्तिनिकर्मसुव-
र्जयेत् ॥

• अर्थ—विषम, सछिद्र, मांसल (जिसका चमड़ा उड़कर केवल मांस रह गया हो), स्थूल, जालीक [जालयुक्त], वातल [वायुयुक्त], छिन्न [फटी हुई] और क्लिन्न [गीली] ये आठ प्रकार की वस्ति यजित हैं ॥

• विषमादिवस्तिपौके उपद्रव ।

गतिविषम्यविलतत्वत्त्वाव्यदौर्ग्राह्यनिलवाः।।

फेनिलच्युतिघार्यस्त्ववस्तिःस्युर्वस्तिदो-
पतः ॥

• अर्थ....विषम वस्ति होने से वस्ति की गति ऊँची नीची होजाती है। मांसल होने से त्रिसूत्र, सछिद्र होनेसे स्राव, स्थूल होने से पकड़नेके अयोग्य, जालयुक्त होनेसे स्राव, मांसल होनेसे वस्तिके द्रव्यमें झाग, छिन्न होनेसे वस्ति द्रव्य का निकलना, और क्लिन्न होने से वस्ति द्रव्यकी रुकावट, ये उपद्रव होते हैं ॥

• मणुता की अज्ञता के उपद्रव ।

सयातानिद्रुतोक्षिप्रतिर्यगुत्सिप्तकम्पिताः

अतिमन्दगमन्दातिवेगदोषाःमणेततः॥

अर्थ—वस्ति की वायुके साथ प्रेरण होना अति उक्षिप्त, टेढ़ापन के साथ उक्षिप्त, कम्पन, अति मन्दागति, मन्द वेग और अतिवेग । ये सब दोष वस्ति के प्रणेताकी अज्ञानता के हैं ।

अनुच्छ्वासानुबन्धेवाद्चेनिःशेषएववा ॥

प्रविश्यशुभितावायुःशूलतोदकरोभवेत् ।

तत्राभ्यगोमुदस्वेदोवातघ्नान्यशनानिच ॥

अर्थ—वस्ति के प्रयोग करने से पहिले उसे दावकर भीतर की सब वायु निकाळ देनी चाहिये । ऐसा न करने से वस्ति शेष जब वायुका अनुबन्ध हो और उसका भी प्रयोग कर दिया जाय तब वायु उदर में प्रवेश करके कुपित होगी तथा शूल और तोद उत्पन्न करेगी । इस जगह तैल का मर्दन, गुदा में स्वेदन कर्म और वातनाशक अन्नपान सेवन करना चाहिये ।

द्रुतादि प्रणीत वस्ति के कर्म ।

द्रुतमणीतेनिष्कृष्टेमहसोत्सिप्तएयंवा ॥

स्पात्कटीगुदजंघातिवस्तिस्तभोरुभेद

नम् । भोजनंतत्रवातघ्नंस्नेहःस्वेदाःसंघ

स्तयः ॥

अर्थ—वस्ति के शीघ्रतासे प्रयोग करने शीघ्रता से निकलने और सहसा उक्षिप्त होने से कमर, गुदा और जंघा में वेदना होने लगती है, वस्ति में स्तम्भता और ऊरुओं में भेदन होता है । इस में वात-नाशक भोजन, स्नेहन कर्म, स्वेदन कर्म तथा अनुयासन और निरुहण यस्तिपौ के प्रयोग करना उचित है ।

तिर्यग्बन्धनकेलक्षण ।

तिर्यग्बन्धावृतद्वारेवेदेवापिनगच्छति ॥
नेत्रेतद्जुनिष्कृप्यसंशोधयचपुनर्नयेत् ।

अर्थ—टेढ़ेबन्धन से वस्तिका मार्ग रुक जाने पर अथवा और किसी कारण से बद्ध होनेपर, वरित जा नहीं सकती है । इस से उस समय वस्ति के नलको गुदा से अलग कर के उसे सीधा और शुद्ध कर के फिर प्रविष्ट करे ॥

पीडनकेउपद्रव ।

पीड्यमानेऽन्तरामुक्तेगुदेप्रतिहतोऽनिलः ।

वरःशिरोरुजंसादमूर्धोश्चजनयेद्वली ।

वस्तिःस्यात्तत्रविल्वादिफलश्यामादिभू

त्रवान् ॥

अर्थ—वस्ति पीडन पूर्वक वस्ति क्रिया के बिना समाप्त हुयेही जो वरित मुक्त कर दी जाय तौ गुदा में प्रतिहत वायु कुपित होकर हृष्टूल, शिरोवेदना और ऊरुसाद उत्पन्न करती है । इसमें विल्वादिपंचमूल मैनफल, त्रिवृतादिगण और गोमूत्र इन से सिद्ध की हुई निरुहणवस्ति देवे ।

कम्पनकेउपद्रव ।

स्यादाहोदवयुःशोफःकम्पनाभिहेतुगुदे ।

कपायमधुराःशीताःसेफास्तत्रसवस्तयः ।

अर्थ—वस्ति प्रयोग में कम्पन होजाने से गुदा में चोट लगकर दाह, जलन और सूजन उत्पन्न होती है इसमें कपाय मधुर शीतल परिपेक और अनुवासन तथा निरुहण वस्ति का प्रयोग करना ठीक है ॥

अतिमणीतवस्ति के उपद्रव ।

अतिमात्रप्रणीतेननेत्रेणक्षणनादलः ।

स्यात्सातिदाहनिस्तोद्गुद्वर्चःप्रवर्तनम् ॥

तत्रसर्पिःपिचुःक्षीरंविच्छावस्तिश्चक्षस्यते

अर्थ—वस्ति के अत्यन्त बलपूर्वक

प्रविष्ट करने से गुदामार्ग विदीर्ण होजाताहै

है, इससे वेदना, दाह, सुई छिद्रनेक समान

पीडा और गुदा के मलका निकलना ये

लक्षण होते हैं । इसमें घृत, पिचु (घृत-

प्लुत रुई का फोभा), दूध और पिच्छा-

वस्ति हित हैं ।

मन्दप्रणीत वस्ति के लक्षण ।

नवावहितमन्दस्तुवाहस्ताभुनिवर्तते ।

स्नेहास्तत्रपुनःसम्यक्प्रणयःसिद्धिमिच्छता

अर्थ—मन्दप्रणीत वस्ति गमन नहीं

करसक्ती है किन्तु शीघ्रही प्रत्यागमन कर-

ती है । इस जगह पुनः अच्छी रीति से

स्नेहन वस्ति का प्रयोग करना उचित है ।

अतिपीडित वस्ति के लक्षण ।

अतिमपीडितःकोष्ठेतिष्ठत्यायातिवागलम्

तत्रवस्तिविरेकश्चगलपीडादिकर्मच ॥

अर्थ....अत्यन्त पीडित वस्ति कोष्ठ में

रुकजाती है अथवा गले में आजाती है ।

ऐसी जगह पर अनुवासन वस्ति, विरेचन

और गलपीडनादिकर्म करना ठीक है ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकः ॥

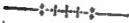
नेत्रवस्तिप्रणेतृणांदोपानेतान्सभेपजान्

वेन्नियस्तेनमतिमान् वस्तिकर्माणिकारयेत्

अर्थ—इस अध्याय में वस्तिनल और

वस्ति के दोष, अज्ञान प्रणेता से उत्पन्न हुए उपद्रव और उनकी चिकित्सा वर्णन की गई है। इन सब बातों को जो बुद्धिमान जानता है उसीसे वस्तिकर्म कराना उचित है।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां सिद्धिस्थानेनेत्रवर्धितव्यापादिकासिद्धिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



षष्ठोऽध्यायः ॥

अथातो वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिव्याख्या स्माम इतिहस्माह भगवान्नात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वमन विरेचन व्यापत्सिद्धि नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

अथशोधनयोः सम्यग्विधिपूर्वदानुलोमयोः असम्पक्वतयोश्चैव दौषान् वक्ष्यामि सौपधान् ॥

अर्थ.... अब हम वमन विरेचनकी सम्यक् विधि तथा असम्पक्व वमन विरेचन के दोष और उनकी चिकित्सा का वर्णन करते हैं।

अत्युष्णवर्षशीतादिश्रीध्मवर्षादिभागमाः ॥ अन्तरेषु प्राहृडाद्याः तेषां साधारणास्त्रयः ॥

अर्थ—शीघ्रऋतु में अत्यन्त गरमी पड़ती है, वर्षाऋतु में वर्षा अधिक होती है। और शीतऋतु में जाड़ा अधिक होता है। इन ऋतुओं के सन्धिकाल में प्राहृट, शरत् और वसन्त ये तीन ऋतु और होती हैं इन में वर्षा, गर्मी और शीत साधारण होता है।

संशोधनकासमय ।
प्राहृट्शुचिनभौक्ष्यौशरदूर्जासहौषुनः ।
तपस्यश्चमधुश्चैव वसन्तः शोधनं प्रति ॥
एतानृत्नृन्विकल्पयैवं कुर्व्यात्संशोधनं नृणाम् ॥

अर्थ.... आपाढ और श्रावण इनदो महाने में प्राहृटऋतु होती है। कार्तिक और अगहन में शरद तथा फाल्गुण और चैत्र में वसन्तऋतु होती है वमन विरेचन देने के येही तीन समय हैं ॥

स्वस्थवृत्तिमभिप्रेत्य व्याधौ व्याधिवशेन तु कर्मणां वमनादीनां अन्तरेष्वन्तरेषु च ॥ स्नेहस्वेदौ प्रयुञ्जीत स्नेहाद्यन्ते मपो जयेत् ॥

अर्थ.... स्वस्थमनुष्यों को ऊपर कही हुई ऋतुओं में वमन विरेचन देना उचित है। परन्तु व्याधिप्रस्त मनुष्य को व्याधिके कारण शीघ्रमादि ऋतुओं में भी संशोधन दिया जासक्ता है। वमनादि पंचकर्म कराने के पहिले स्नेहन स्वेदन करना चाहिये और पीछे वमनादि प्रयोग करे।

अविरेच्यरोगी ॥

विसर्पपिडकाशोफकामलापाण्डुरोगिणः ।
अभिघातविपार्ताश्च नातिस्निग्धान् विरेचयेत् ॥

अर्थ—विसर्प, पिडका, सूजन, कामला पाण्डुरोग, अभिघात और विप इन रोगों से पीडित मनुष्य को अत्यन्तस्निग्ध फरके विरेचन न देवे अर्थात् थोड़ा स्निग्ध करके ही विरेचन देवे।

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविवेचनम्
 स्नेहोत्कृष्टशरीरायरूक्षं दद्याद्विवेचनम् ।
 स्नेहस्वेदोपपत्रेचजीर्णेमात्रावदौषधम् ॥
 एकाग्रमनसापीतंसम्यग्योगायकल्पते ॥
 स्निग्धात्पात्राद्ययातोयमयवेनमणुद्यते ।
 कफादयःप्रणुद्यन्तेस्निग्धाद्देहाद्यौषधैः ।
 आर्द्रकाष्ठं पथावह्निर्विष्यन्दयतिसर्वतः ॥
 तथास्निग्धरूपबैदोपान्स्वेदोविष्यन्दयेत्
 स्थिरान् ॥

अर्थ—अतिस्निग्ध शरीर वाले को स्नेह विवेचन न देना चाहिये । स्नेह से उत्कृष्ट शरीर वालेको रूक्ष विवेचन देवे । पहिले दिन का आहार पचने पर स्नेह और स्वेद से युक्त होकर एकाग्रमन से वमन विवेचन औषधों का पान करने से वमन विवेचन का सम्यक् योग होता है । जैसे चिकने पात्रसे बिना प्रयत्नही पानी निकल जाता है उसी तरह स्निग्ध औषधियों द्वारा स्निग्ध देह से कफादि दोष शीघ्रही निकल जाते हैं ।

जैसे अग्नि गीले काष्ठ को चारों ओर से विष्यन्दित करदेती है अर्थात् उस के जल को खींच लाती है, उसी तरह से स्वेदन फर्म स्निग्ध देह के स्थिर दोषों को विष्यन्दित करदेता है ।

स्नेहस्वेद से संशोधन का दृष्टान्तः ॥
 क्लिष्ट्वासोपयोत्क्रेद्यमलैः संशोध्यतेऽम्भसा ॥ स्नेहस्वेदैस्तयोत्क्रेद्यशोध्यतेशो-
 धनैर्मलः ।

अर्थ—बैले घस्र को जैसे साबुन, सजी

आदि से मसल कर जल से धोकर स्वच्छ करते हैं उसी तरह शरीरस्थ मल को स्नेहन स्वेदन से उत्क्रेषित करके संशोधन औषधियों द्वारा शुद्ध करते हैं ।

अजीर्ण भोजनमें संशोधन निषेधः ॥
 अजीर्णवर्धतेग्लानिर्विवन्धश्चैवजायते ॥
 पीतंसंशोधनंश्चैवविपरीतंभवन्ति ॥

अर्थ—अजीर्ण में वमन विवेचनादि औषध के सेवन करने से ग्लानि बढ़ती है और विवन्ध उत्पन्न होजाता है तथा वमन विवेचन की विपरीत गति होजाती है ।

मात्रावत् औषधके लक्षणः ॥

अल्पमात्रं महावेगं बहुदोषहरं सुखम् ॥
 लघुपाकं सुखास्वादं प्रीणनं व्याधिनाशनम्
 अविकाराविपन्नश्चनातिग्लानिकरञ्चतद्
 गन्धवर्णरसोपेतं विद्यान्मात्रावदौषधम् ॥

अर्थ—जो औषध अल्पमात्रा होने पर भी महावेगवती होती है, बहुत दोषोंको नाश करनेवाली और सुखदायक होती है, जो लघुपाकी, सुखाद, प्रीणनकर्त्ता और व्याधिनाशक होता है, जो अविकारी, अव्यापन्न, ग्लानि न करनेवाली, गन्धवर्ण और रससे युक्त है वह मात्रावत् कहाती है ।

सम्यग्योग करनेवाली औषधः ॥

विधूयमानसान्द्रोपान्कापादीनशुभोदय
 नाएकाग्रमनसापीतंसम्यग्योगायकल्पते ॥
 अर्थ—औषध पीनेके समय कामकोधादि अशुभकर्त्ता मानसिक दोषों को दूर करके जो औषध एकाग्रमनसे सेवन की जाती है उसका सम्यग्योग होता है ।

वमनविरेचन का पूर्वकर्मा ॥

नरःश्वोवमनपाताभुञ्जीतकफवर्द्धनम् ।

सुजरंद्रवभूयिष्ठलघुशीतंविरेचनम् ॥

उत्कृष्टाल्पकफत्वेनक्षिप्रंदोषाःस्रवन्तिहि ।

अर्थ—जिस को प्रातःकाल वमनकारक औषध पान करांती है उसे आज कफका घटाने वाला भोजन कराना चाहिये । जिस को प्रातःकाल विरेचनकर्त्ता औषध पान करांती है उसे आज ऐसा लघु और शीतल आहार देवै जो बहुत शीघ्रही पचजाय । इस प्रकार आहार सेवन करने से कफके घटने के कारण वमन और घटने के कारण विरेचन बहुत शीघ्रही होता है ।

शुद्धि के लक्षण ॥

पीतौषधस्यतुभिपक्वशुद्धिलिंगानिलक्षयेत् ।
ऊर्द्धकफानुगेपित्तेविट्पित्तनुकफेत्वधः ॥

अर्थ—जिसने वमन विरेचन औषधपान करांती हो उस के शुद्धिके लक्षण देखने चाहिये । वमन देने के पीछे जो प्रथम कफ उद्गर्ण हो और पीछे पित्त उद्गर्ण हो तो वमन से शुद्धि समझना चाहिये । विरेचनिक औषध के पीछे यदि विष्टा और पित्त के पीछे कफ आने लगे तो विरेचन द्वारा शुद्धि समझना चाहिये ।

हृतदोषवदेत्काश्यदौर्वल्यंचेत्सलाघवे ।

वामयेत्ततःशेषमौषधनत्वलाघवे ॥

स्तैमित्येऽनिलसङ्गेचनिरुद्गारेऽपिवामयेत् ॥

आलाघवात्तनुत्वाच्चकफस्यापत्परं भवेत् ॥

वामितेवर्द्धतेवह्निशमंदोषाव्रजन्तिहि ॥

वामितंलघयेत्सम्यक्जीर्णलिङ्गा

न्यलक्षयन् ॥ तानिदृष्ट्वातुपेयादिक्रमं कुर्यान्नलंघनम् ॥

अर्थ—यदि रोगी को कृशता, दुर्बलता और देह में हलकापन होजाय तो समझना चाहिये कि वमन ठीक होगई, उस में जो औषध उस के आमाशय में शेष बची हो उसे वमन कराके निकाल देवै । यदि देह में हलकापन न हुआ हो तो औषध को न निकालै । जो देह में स्तिमिता हो, अघोवायु और डकार रुकगई हो तो भी वमन करावै । जब तक देह में हलकापन न होगा और थोडा सा भी कफ रहैगा तब तक व्याधि रहैगी, वमन कराने के पीछे अग्नि बढ़ती है और दोष सब शान्त होजाते हैं । वमन कराने के पीछे भी जो कफके जीर्ण होने के सम्यक् लक्षण न दिखाई दें तो लंघन करावै यदि कफके जीर्ण होने के सम्यक् लक्षण दिखाई दें तो पेयादिक्रमका पालन करावै । लंघन कराना उचित नहीं है ।

पेयाकेयोग्यरोगी ॥

संशोधनाभ्यांशुद्धस्यदृढतदोपस्यदेहिनः ॥

यात्यग्निमन्दतात्स्मात्क्रमेपेयादिमाचरेत् ।

अर्थ—जिसका देह वमन विरेचन से शुद्ध होगया है और जिसके दोष सब दूर होगये हैं उसकी अग्नि मंद पड़जाती है, इसलिये उसे पेयादिक्रमका पालन कराना चाहिये ।

र्षणादिक्रमं कुर्यात्प्रेयाभिष्यन्दयोद्धतान्
अर्थ—जिस मद्यप और वात पित्त रोगी
का कफ पित्त वमन विरेचन द्वारा शुद्ध होगया
है उसे अल्प मात्राके द्वारा तर्पणादिक्रम का
पालन करावे । क्योंकि येया उसको अभि
ष्यन्दित करती है ।

जीर्ण औषधके लक्षण ॥

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्पूजोर्जोपन
स्थिता ॥ लघुत्वमिन्द्रियोद्धारशुद्धिः जी
र्णौषधाकृतिः ।

अर्थ—यासु का अनुलोमन, स्वस्थता,
क्षुधा, तृप्ता, ऊर्जा, मन में प्रफुल्लता, इ-
न्द्रियों का हलकापन और शुद्ध उकार ये
सब जीर्ण औषध के लक्षण हैं ।

जीर्णवशिष्ट औषधके लक्षण।

कृमोदाहोद्गमर्दश्च भ्रममूर्च्छाशिरोरुजा ॥

अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥

अर्थ—बलाति, दाह, भ्रममर्द, भ्रम मूर्च्छा
शिर में वेदना, यातना और बलहानि ये
सब जीर्णवशिष्ट औषध के लक्षण हैं ।

अकालेऽल्पातिमात्रं च पुराणं न च भावितम् ॥

असम्यक् संस्कृतं चैव न्यापयेत्तौषधं द्रुतम् ॥

अर्थ—जो औषध कुसमय पानकी जाय,
भापवा अतिमात्रा वा अल्पमात्रा वा पुराणी,
वा अभावित वा अच्छीतरह संस्कार न की हुई
औषध सेवन कीजाय तो उस से शीघ्र ही
उपद्रव होते हैं ॥

असम्यक् औषधके दृश उपद्रवः

आध्मानं परिकर्तिश्च सावोद्द्वाराश्रयोर्ग्रहः

जीषादानं सविभ्रंशः स्तम्भः सोपद्रवः बलमः

अयोगादतियोगाच्च दशैताद्यापदो मशाः

अर्थ—औषध के अयोग वा अतियोगसे
आध्मान, परिकर्तिका, स्ताय, हृद्ग्रह, भ्रम-
ग्रह, जीषादान, विभ्रंश, स्तम्भ, उपद्रव
और क्लान्ति ये दस रोग उपस्थित होते हैं ॥

प्रेत्यभैषज्यवैद्यानां वैगुण्यादात्तरस्य च ॥
शुद्धेऽक्लिष्टेन दुर्गन्धमहृद्यमतिवाच्यते ॥

अर्थ—परिचारक, औषध, वैद्या और
रोगी इनके विगुणता से शुद्ध दोष भी
उत्क्रिष्ट होकर दुर्गन्ध और अत्यन्त वा
बहुत अप्रियताको उत्पन्न करते हैं ।

योगः सम्यक् प्रवृत्तिः स्यादतियोगोऽतिव
र्चनम् ॥ अयोगः प्रातिलोम्येन चाल्पं वा
प्रवर्तनम् ॥

अर्थ—औषध का योग होने से दोषों की
सम्यक् प्रवृत्ति होती है । अतियोग होनेसे
अत्यन्त प्रवृत्ति होती है । औषधका अयोग
होने से दोषों की प्रतिलोमता के कारण
दोषों की प्रवृत्ति सर्वथा नहीं होती है अथवा
थोड़ी होती है ॥

अजीर्ण में विरेचनपानका अवगुण ॥

श्लेष्मोत्क्रिष्टेन दुर्गन्धमहृद्यमतिवाच्यम् ॥

विरेचनमजीर्णं च पीतमूर्ध्वमवर्तते ॥

अर्थ—अजीर्ण में विरेचन के पान कर-
ने से कफकी उत्क्रिष्टता के कारण थोड़ा वा
बहुत ऊपर के मार्ग से निकलजाता है ।

वमनकर्चा औषध से विरेचन ॥

शुभार्तपृदुकोष्ठाभ्यां स्वल्पोऽस्त्विच्छकफेन

वा । तीक्ष्णपीतस्थितं क्षुब्धं वमनं स्याद्वि-

रेचनम्

अर्थ—जिसको भूखलगरहीहो, जिसका कोठा मृदु हो वा जिसका कफ बहुत उद्गीर्णनहो उसको तीक्ष्ण वमन कारक औषधके पान करानेसे वह औषध स्थिर और सुग्ध होकर दस्त लाने लगती है ।

प्रतिलोम्येनदोषाणांहरणात्तद्वृत्तस्तनमः
अयोगसंज्ञेकृच्छ्रेणयदागच्छतिचाल्पशः॥

अर्थ—इसतरह वमन औषध के विरेचनमें बदल जानेसे प्रतिलोम रीति से दोषों के निकलने पर भी यदि रोगी को किसी प्रकारका कष्ट नहो तौभी वमनका अयोग होताहै क्योंकि इस दशामें दोष थोड़े थोड़े वा कष्टसे निकलते हैं ।

पीतौषधोनशुद्धश्चज्जीर्णतस्मिन्पुनःपि
वेत् । औषधंनतुजीर्णेऽन्यद्भयस्यादति
योगतः ॥

अर्थ—सशोधन औषध के पान करनेसे यदि रोगी शुद्ध नहो तौ उस औषध के पचने पर फिर वही औषध पान करना चाहिये । यदि औषध के बिना पचे ही और औषध पान करादी जायगी तौ अति योग के कारण अन्य भय होगा ।

कोष्ठस्फुगुरुतांज्ञात्कालघृत्वंत्रलभेवच ।
अयोगमृदुवादाद्यादीपधतीक्ष्णमेववा ॥

अर्थ—सशोधन औषध के अयोग में कोष्ठका भारापन, हलकापन और बलका विचार कर फिर मृदु वा तीक्ष्ण औषधका पान करावै ।

वमनंनतुदुश्चर्दंद्देष्कोष्ठंनविरेचनम् ।
पाययेत्तौषधभूयोहन्यात्पीतंपुनार्हति ॥

अर्थ....जिसको वमन कठिनतासे होती है, उसे वमन न करावै । जिसका कोष्ठकडाहो उसे विरेचन न देवै । क्योंकि ऐसे मनुष्यों को वमन विरेचन करानेसे प्राणों की हानि होती है ॥

अस्निग्धास्विन्नदेहस्यरुस्यस्थानवमौषध
म् । दोषानुत्कलेश्यानिर्हर्तुमशक्तजनये
द्दान् ॥ विभ्रंशश्वयथुंहिकांतमसोदर्श
नंशुशम् । पिण्डिकोद्वेष्टनंफण्डूमुर्वोःसादं
विवर्णताम् ॥

अर्थ....अस्निग्ध, अस्वेदित और रुद्ध देह वाले को पुरानी औषध देनेसे दोष उच्छिष्ट तौ होजाते है परन्तु निकल नहीं सकते क्योंकि यह कीर्यहीन होती है ॥ तथा रोग उत्पन्न होजाते हैं । ऐसी औषधियोंसे विभ्रंश, सूजन, हिचकी, अन्धकार दर्शन, पिंडलियोंमें ऐठन, खुजली और ऊरुसाद ये उपद्रव होते हैं ॥

स्निग्धस्विन्नस्वचात्यल्पदीप्ताग्नेर्जाण्णमौ-
षधम् । शीतैर्चास्तब्धमामैर्वादोषानुत्कले-
श्यानाहरेत् ॥ तानेवजनयेद्भोगानयोगः
सर्वएवसः । विधायमतिमांस्तत्रयथोक्तां
कारयेत्क्रियाम् ॥

अर्थ....स्निग्ध और स्विन्नरोगी को यदि मात्रा थोड़ी दीजाय अथवा वह रोगी को दीप्ताग्निके कारण पचजाय, अथवा शीतल उपचार और आम द्वारा औषध स्तब्ध होजाय तो वह दोषों को उच्छिष्ट कर के निकाल नहीं सकती है । ऐसा होनेसे ऊपर लिखेहुए सम्पूर्ण रोग उपस्थित होते हैं । इसी को औषध का अयोगमी कहते हैं ॥

इसतरह औषध का अयोग समझकर बुद्धिमान् वैद्य को उचित है कि नीचे लिखी हुई क्रिया का अवलंबन करे ॥

वमनविरचन के अयोगमैत्रेयाय ॥

तैत्तिलवषणाभ्यक्तैस्त्रिचन्नप्रस्तरसङ्घैः ॥

पाययेत्पुनर्जाणैःसमूत्रैर्वा निरूहयेत् । नि

रूहैश्चरसैर्धान्वैर्भोजयित्त्वानुवासयेत् ॥

फलमागधिकादाहसिद्धतैलेनमात्रया ॥

स्निग्धवातहरैः स्नेहैः पुनस्तीक्ष्णैश्शोध

येत् ॥

अर्थ—ऐसे मनुष्य को नमक मिलेहुये तेल से अल्पकृत कर के प्रस्तरस्वेद और संकरस्वेद द्वारा स्वेदितकरे पहिले औषध वा आहार के पचनेपर गोमूत्र मिठी हुई निरूहण घस्ति देवे । तत्पश्चात् जांगल मांसरस के साथ भोजन कराके अनुवासन देवे । अनुवासन का तेल मात्रावत् मैनफल पीपल और देवदारु इन के कल्क और काष के साथ सिद्ध करना चाहिये । फिर इस रोगी को वातनाशक तैलों से स्निग्ध करके तीक्ष्ण संशोधन देना उचित है ।

अतितीक्ष्णक्षुधार्तस्यमृदुकोष्ठस्यभेषजम् ॥

दृत्वाशुविट्पित्तफफान्धातून्विस्त्रावयेद्

द्रवान् ॥ वर्णस्वरस्यदाहकण्डूशोषंभ्र

मंत्पाम् ॥ कुर्याच्चमधुरैस्तत्रशोषमौषधमु-

च्छिखेत् ॥

अर्थ—क्षुधा से पीडित और मृदु कोष्ठ

पाळे को तीक्ष्ण संशोधन देने से प्रथम विट्

पित्त और कफ निकल जाते हैं । वही औषध

पिर धातुओं को पिघलाकर स्वावित करती

है तथा वटवर्णनाश, स्वरमंग, दाह, पुन

ली, शोष, भ्रम और तृषा इन उपद्रवों को

उत्पन्न करतीहै । ऐसे स्थलपर मधुरद्रव्यों

से मिश्रित वमन देकर विनापृची शोष औ-

षध को वमन द्वारा निकालदेना चाहिये ।

वमनेतुविरेकःस्पाद्विरेकैःवमनंमृदु ॥ परि

पेकावगाहाद्यैःसुशीतैःस्तम्भयेच्चतत् ॥

कपायमधुरैःशीतैरन्नपानौषधैस्तथा । र

क्तपित्तातिसाररुन्दाहज्वरहरैरपि ॥

अर्थ—वमन के अतियोग में विरेचन

और विरेचन के अतियोग में मृदु वमन

देना हित है, तत्पश्चात् शीतल परिपेक

और अवगाहनादि द्वारा उसका स्तम्भन

करे । कसीली, मीठी और शीतल अन्नपान

और औषधी तथा रक्त पित्तातिसारनाशक

और दाहज्वर नाशक औषधादिका व्यग्रहार

कर के स्तम्भन करना चाहिये ॥

अतियोगनाशक प्रयोग ।

अञ्जनचन्दनोक्षीरमजामृच्छर्करोदकम्

लाजचूर्णैःपिच्येन्मन्थमतियोगहरंपरम् ॥

शुक्लाभिर्वावटादीनांसिद्धापेयासमाक्षि

काम् । वर्चःसांग्राहिकैःसिद्धाक्षीरभोज्य

ञ्चदापयेत् ॥ जांगलैर्वारसैर्भोज्यापच्छा

घस्तिश्चशस्यते ॥ मधुरैरनुवात्यथसिद्धे

नक्षीरसर्पिषा ॥

अर्थ—रसोत, रक्तचन्दन, खस, इनको

पीसकर बकरे के रुधिर और खांड के शर-

वत के साथ खीलकेचूर्ण में मन्थ बनाकर

पान करने से अतियोग दूर होजाता है ।

वटादि दूधवाले वृक्षों की टहनियों के अम-

भाग पेया में ढालकर सिद्ध करै फिर ठंडा होनेपर शहत मिलाकर पानकरै तो अति योग्य दूर होजाता है ॥

मूत्र को संग्रह करनेवाली औषधियां ढालकर सिद्ध कियाहुआ दूध पान करनेसे भी अतियोग्य दूर होजाता है तथा जांगलमांस रस के साथ भोजन कराना और पिच्छावस्ति भी दैना हित है तथा जीवनीयादि मधुर गणोक्त द्रव्य ढालकर दूध को पकावै फिर उस में से घी निकालकर उसकी अनुयासन वस्ति देवै ॥

ये ऊपर लिखे सब प्रयोग विरेचन के अति योग्य में हित हैं ॥

वमनातियोगमेंयोग ॥

वमनस्यातियोगेतुशीताम्बुपरिपेचितम् पिचेत्फलरसैर्भन्थसघृतसौद्रशर्करम् ॥

सोद्गारायांभृशंभस्यांमूर्च्छायांभान्यमुस्तयोः समधूकाब्जनंचूर्णलेहयेन्मधुसंयुतम्

अर्थ— वमन के अतियोग में शीतलजल के छींटे रोगी के मारे और फलों के रसों के साथ मन्थ बनाकर उस में घी, शहत और शर्करा ढाल कर पान करै । डकार सहित अत्यन्त वमन में और मूर्च्छा में धनियां मोथा, मुलहठी और रसोत इनका चूर्ण शहत मिलाकर चटावै ।

वमतोऽन्तःप्रविष्टायांजिह्वायांकवलग्रहाः

स्निग्धाम्लवणान्द्रव्यायूपक्षीररसैर्हिताः फलान्यस्नानिखादियुस्तस्यचान्येऽग्रतो

नराः ॥

अर्थ— वमन करते १ जो जिह्वाभीतर

को घुसगई हो तौ नमक और हृदय प्रिय यूप वा दूध वा मांसरसका केवल धारण करावै । ऐसे स्थलपर खट्टे अनार आदि के फल रोगी को खवावै अथवा रोगी के सामने किसी अन्य मनुष्य को खवावै ।

निःसृतजिह्वामें उपाय ॥

निःसृतांतुतिलद्राक्षाकल्कयुक्तामिवेशयेत् ॥

अर्थ— वमन करते करते जो जिह्वा बाहर निकल आई हो तौ जबि पर तिल और दाख का लेप करने से जिह्वा भीतर को चली जायगी ।

वाग्ग्रहमें चिकित्सा ॥

वाग्ग्रहानिलरोगेषुघृतमांसोपसाधितम् ॥

यवागृतनुकांदद्यात्स्नेहस्वेदौचबुद्धिमान् ॥

अर्थ— वमन करते करते घाणी के रुक जाने पर वा वायुके कुपित होने पर घृत और मांसरसके साथ सिद्ध की हुई पतली यवागू और स्नेह स्वेद का प्रयोग करना चाहिये ।

वमितश्चाविरिक्तश्चमन्दाग्निश्चाविलंघितः ॥

अग्निमाणविष्टुद्धयर्थक्रमपेयादिक्रमजेत् ॥

अर्थ— वमन विरेचन द्वारा संशुद्ध, मन्दाग्नि और लंघन करने वाले की अग्नि का बल बढ़ाने के लिये पेयादि क्रमका पाठन करना उचित है ।

बहुदोषस्यरुसस्यहीनाग्नेरल्पमौषधम् ॥

सोदावर्तस्यचोत्कृष्टदोषान्मार्गान्निवृद्धयते भृशमाध्मापयेन्नाभिपृष्टपार्श्वशिरो रुनम् ॥ श्वासंविष्णुत्रवातानांसङ्कुर्वा

चचदारुणम् ॥

अर्थ—बहुत दोषों से युक्त, रुक्ष वा मृदाग्नि वाले को अथवा उदावर्त्त रोगी को अल्पमात्रा में वैरेचनिक औषध का पान कराने से दोष उत्क्रिष्ट होकर मार्गों को रोक देते हैं। इससे नाभि के पास बड़ा अफरा होजाता है, पीठ, पसली और सिर में दर्द होने लगता है। श्वास, विघ्ना, मूत्र और अधोवायु दारुण रीति से रुकजाते हैं ॥

अभ्यङ्गस्वेदवर्ष्यादिसनिरूहानुवासनम् ॥ उदावर्तहरंसर्वकर्माध्मातस्यशस्यते
अर्थ—ऐसा अफरा होने पर तैल मर्दन स्वेद, वर्षा प्रयोग, निरूहण और अनुवासन तथा उदावर्तनाशक सम्पूर्ण प्रयोग इस जगह हित हैं।

पेटा होने का कारण ॥

स्निग्धेनगुरुकोप्टेनसामेवलवदौषधम् ॥
क्षामेणमृदुकोप्टेनश्रान्तेनाल्पवलेनवा ॥
पीतंत्वागुदंसाममाधुदोषंनिरस्यति ॥
तीव्रशूलांसपिच्छास्राकरोतिपरिकर्चि-
काम् ॥

अर्थ—स्निग्ध गुरुष्य को अथवा भारी कोठे वालेको अथवा आमदोष वाले को बलिष्ठ औषध देने से, अथवा क्षीण, मृदु कोष्ठ श्रान्त और अल्पबल वाले को वैसी ही औषध देने से आमसहित दोष उद्गीर्ण होकर गुदाके मार्ग से निकलने लगते हैं। तब पेट में अत्यन्त शूल युक्त, पिच्छा युक्त और रुधिर सहित परिकर्चिका वा मरोडा होने लगता है।

पेटेकी चिकित्सा ॥

लघनंपाचनंसामेरुसोष्णलघुभाजनम् ॥

घृह्णीयोविधिःसर्वःक्षामस्यमधुरस्तथा ॥
अर्थ—इस तरह आमयुक्त दोष में लघन पाचन तथा रुक्ष और उष्ण हलका भोजन हित है। यदि क्षीण पुरुष के ऐसा उपद्रव हो तो उसे घृह्णीय तथा मधुर औषधों का सेवन कराना हित है ॥

आमार्जोणेतुवद्दश्वत्क्षाराम्ललघुशस्यते ॥ पुष्पकासीसमिश्रांवाभारेलवणेनवा । सदादिमरसंसर्पिःपिवेद्वातेऽधिके सति ।

अर्थ—आमार्जोण के कारण जो दिवन्ध हुआ हो तो क्षार और खटाई डालकर हलका भोजन प्रशस्त है। जो घायुकी अधिकता हो तो पुष्पकासीस मिश्रित, अथवा क्षार और नमक युक्त अनार कारस मिला हुआ घृत हित है।

दध्यम्लंभोजनेपानेसंपुक्तंदादिमत्वचा ।
देवदारुतिलानांवाकलकमुष्णाम्बुनापि
वेत् ॥ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षकदम्बैर्वाभृत्वं
पयः ॥

अर्थ—उसी तरह वायुकी अधिकता होने पर खाने पीने की द्रव्यों में अनारके छिलके के साथ खट्टे दही का सेवन करना चाहिये ॥ अथवा देवदारु और तिलके कल्कको गरम जल के साथ पान करे। अथवा पीपल गूलर पाफड और कदंब की छाल दूध में सिद्ध करके पान करावे ॥

कपायमधुरं वस्तिपिच्छावस्तिमथापिवा ॥

यष्टीमधुकसिद्धेवास्नेहवस्तिमदापयेत् ।

अर्थ—कपाय और मधुर द्रव्योंकी वस्ति
अथवा पिच्छावस्तिअथवामुलहट्टीके साथसिद्ध
की हुई स्नेहवस्तिभी वायुकी अधिकतामें हितहै।
अल्पत्वहुदोपस्यदोपानुत्वलेश्यभेषजम्
अल्पाल्पस्त्रावपेत्कण्डूशांफकुष्ठानिगौरचम्
कुर्प्याद्याग्निवधात्क्लेसस्तमित्यारुचिपा
ण्डुताम् ॥परिस्त्रावश्चतंद्रेपंशमयेद्वामयेदपि
अर्थ.... बहुत दोंपों से युक्त मनुष्य को
अल्प विरेचन देने से दोप उद्गर्ण होकर
घोंडे घोडे स्नायित होते हैं । ऐसा होने से
शुजडी, सूजन, फोड, भारापन, अग्निनाश
उच्छ्वास, स्तिमिता, अरुचि और पांडुरोग
उत्पन्न होते हैं और स्त्राव भी होता रहता
है । इस उपद्रव में संशमन औषध देकर
दोपों की शांति करे, जो संशमन से भी
शान्त न हों तब वमन करावे ॥

स्नेहिनेवापुनस्तीक्ष्णं प्राययेत् विरेचनम् ।
शुद्धे चूर्णासवारिप्टान् संस्कृतांश्च मदा-
पयेत् ।

अर्थ.... रोगी को स्निग्ध करके फिर
तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये । फिर शुद्ध
होने पर चूर्ण, आसव, अरिष्ट और संस्कार
किये हुए यूपदि का सेवन करावे ॥
पीतौषधस्य वेगानां निग्रहान्मारुतादयः
क्षुपिता हृदयं गारवाघोरं कुर्वन्ति हृदयम् ॥
सदिकां कासपार्श्वार्तिदं न्यलालासि विभ्रमैः
जिह्वां खादति निःसंज्ञो दन्तान् किटिकटाप-
पन् । न गच्छेद्भिभ्रमंतं वामयेदां शुतं गिषुकु

मधुरैः पित्तमूर्च्छार्तिकदुभिः कफमूर्च्छितम् ।
पाचनीयैस्ततश्चास्यदोपशोषं विपाचयेत्
कामाग्निश्चत्रलेचास्यक्रमेणोत्थापयेत्तत
अर्थ.... वमन विरेचन कर्त्ता औषधि को
पीकर जो वेगों का निग्रह करता है, उस
के वातादेक दोप कुपित होकर हृदय में
पहुंचकर घोर हृदयमह उत्पन्न करते हैं ।
हिचकी, खांसी, पसलीका दर्द, दानता, नेत्र-
रक्तता और विभ्रम ये उपद्रव भी उत्पन्न
होते हैं, रोगी बेहोश होकर जिह्वा को
चया जाता है दांतों को किडकिडाने लगता है
ऐसे समय पर वैद्य को उचित है कि विन
चवडाये शांति वमन करावे । जो रोगी
पित्तकी अधिकता से मूर्च्छित हो तब मधुर
द्रव्यों से और कफ मूर्च्छित को फटुद्रव्यों
के प्रयोग से वमन करावे । फिर जो दोप-
शेष बचेहों उन्हें पाचनद्रव्योंसे पक्व करे ।
तत्पश्चात् रोगी की जठराग्नि और बल के
गटाने का प्रयत्न करे ।

पचनेनातिवमतो हृदयं यस्य पीड्यते ॥ तस्मै
स्निग्धाम्ललवणं दद्यात् पित्तकफेऽन्यथा ।

अर्थ—अत्यन्त वमन करनेके कारण वायु
जिस के हृदयको पीडित करे उसको स्नि-
ग्ध, नमकांन और खट्टी औषधेनी चाहिये।
परन्तु पित्तकफको अधिकता होनेपर स्निग्ध
खट्टी और नमकीन औषध न देनी चाहिये ॥

पीत औषधके वमन निग्रहमें उपद्रव ।
पीतौषधस्य वेगानां निग्रहेण कफेन वा ॥ रु-
द्धोति वा विशुद्धस्य गृह्णात्यहानिमारुतः
स्त्वम्भवं पथु निस्तोदसादो द्वेषाति मूर्च्छितैः
तत्र वा तदहरं सर्वस्त्रेहस्वेदादिकारयेत् ॥

अर्थ—जिसने वमन करानेवाली औषध पानकी हो और वह अपने उस वेग को रोकले, उसका कफ प्रबलहो जाता है और उस प्रबल कफ से वायु रुककर अंगग्रह, स्तम्भ, कम्पन, सुई भिदने कीसी पीडा, अंगसाद, उद्वेजन, यातना और मूर्च्छा रोगों को उत्पन्न करती है । ऐसी जगह पर वातनाशक क्रिया तथा स्नेह और स्वेददेना आवश्यकीय है ।

अतितीक्ष्णमृदौकोष्ठेलघुदोपस्यभेषजम् ।
दोपानहत्वाविनिर्मध्यजीवहरतिशोणि-

तम् ॥
अर्थ—लघुदोप वाले के मृदु कोष्ठ में अतितीक्ष्ण औषध का प्रयोग सम्पूर्ण दोषों को दूर करके तथा मन्थन करके जीव शोणित को निकाल देता है ।

शोणित की परीक्षा

तेनान्नमिश्रितंदद्याद्वापसायधुनेऽपिवा
भुंक्तेतच्चेद्देज्जीवनभुंक्तेपित्तमादिशेत् ।

अर्थ—तीक्ष्णवमन से जो रक्त निकलता है उसकी यह परीक्षा करनेके लिये कि यह शोणित जीवशोणित है वा रक्त पित्तका शोणित है, यह काम करना चाहिये कि उस वमनके रुधिरको अन्न में मिलाकर कौए कुत्ते को खवावैजो कुत्ते कौए उसे खाले तो उसे जीवशोणित समझना चाहिये और जो न खांय तो उसे पित्तरक्त समझना चाहिये ।

दूसरी परीक्षा ।

शुक्लंवाभावितं वस्त्रं साधानं कोष्णवारि
णा ॥ मसालितं विवर्णस्यपित्तं शुद्धं तु
शोणितं ॥

अर्थ—दूसरी परीक्षा यह है कि एक सफेद कपडे को इस रक्त में भिगोकर सुखा लेवे, फिर इसे थोड़े गरम जल से धोवे । यदि रंगत बिगड जाय तो रक्तपित्त का रक्त है, यदि शुद्ध बनी रहै तो जीवशोणित समझना चाहिये ॥

तृष्णामूर्च्छामदार्तस्य कुर्यादा मरणात्कि-
याम् ॥ तस्यपित्तहरांसर्वा मतियोगे च यामता ।

अर्थ—विरेचन के अतियोग में तृष्ण, मूर्च्छा और मत्तता हेनपर मरणपर्यन्त पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये तथा अतियोग में जो जो उपाय कहे हैं वे भी सब करने चाहिये ।

मृगगोमहिपाजानांसद्यस्कजीवतामसृक्
पाययेताशुसन्धानं जीवो जीवेन गच्छति ।

तदेव दर्भमृदितं रक्तं वस्तिप्रदापयेत् ॥

अर्थ—रक्त के अत्यन्त क्षीण होने पर हिरन, गौ, भैस वा बकरे का तत्काल नि-कला हुआ रक्तपान करावे । इस से निकले हुए जीवशोणित का सन्धान होता है और रोगी भी शीघ्रही सजीव होजायगा । तथा इन्ही पशुओं के रुधिर में दाभ रगडकर वस्ति देनी चाहिये ।

श्यामाकाश्मर्यवदरीर्द्वावीरैः मृतं जल-
म् ॥ घृतमण्डाञ्जनयुतं वस्ति शीतं मदापयेत् ॥

अर्थ—अनन्तमूल, खभारी, घेर, दूध, और क्षीरकाकोली इनका काथ करले-उस काथ में घृतमड और रसौत मिलाकर शीतल वस्ति देवे ।

पिच्छावास्तिमुशीतिवाघृतमण्डानुवासन
म । गुदंभ्रष्टंकापायैश्चस्तम्भयित्वाभवेश
येत् ॥ सामगान्धर्वशब्दाश्चसंज्ञानाशेऽ
स्यकारयेत् ॥

अर्थ—अथवा शीतल पिच्छावास्ति देकर
घृतमंडकी अनुवासन देवे ॥ बहुत विरेचन
होने से जो गुदाभ्रंश होगई हो अर्थात् का-
च निकलती हो तो उसे क्षीर वृक्षों के क-
पाय से स्तब्ध कर के भीतर को प्रवेश
करदेवे । जो रोगी बेहोश होगया हो तो
सामवेदकी ऋचाओं का गान और सुन्दर
गायों का शब्द रोगी के सम्मुख करे ॥

यदाविरेचनपीतंविडन्तमत्रतिष्ठते ॥ व-
मनंभेषजान्तंवाकोपानुत्केश्यनाचहेत् ।
तदारुर्वन्तिकण्ठवादीन्द्रोपाःमकुपिता
गदान् ॥ सचिभ्रंशःपुनस्तत्रस्याधयाव्या
धिभंजम् ।

अर्थ—जो विट्टा के निकल चुकतेही
विरेचनिक औषध का फल जाता रहे और
पित्त न निकले, इसीतरह वमन औषध के
निकलतेही वमन क्रियाकाफल जातारहे और
कफ का दर्शन न हो तो उस मनुष्य के
खुजली आदिरोग उत्पन्न होजाते हैं, इसको
वमन विरेचन औषधों का विभ्रंश कहते हैं ।
पीतंस्निग्धेनसस्नेहंतदोपानुमार्दवाद्घृ-
तम् ॥ नवाहपतिदोपास्तुस्वस्थानात्स्व-
म्भयेच्युतान् । वातसद्गुदस्तम्भशूलैः
क्षरतिचालपशः ॥ तीक्ष्णंवास्तिविरेकंवा
सोर्होर्लघितपाचितः ।

अर्थ—जो स्निग्ध मनुष्य स्नेहयुक्त वि-

रेचन पानकरे तो वह विरेचन मृदुता के
कारण दोषों से रुकजाता है और अपने
स्थान से हटेहुए दोषों को भी स्तम्भित कर
देता है, इससे वातविबन्ध, गुदस्तम्भ
और गुदशूल होता है, उसःके मल थोडा
थोडा निकलता है । ऐसी जगहपर तीक्ष्ण
वमन विरेचन वा लघन पाचन हित होताहै ।
रूक्षांविरेचनपीतंरूक्षेणाल्पवलेनवा ॥
मारुतंकोपयित्वाशुकुर्याद्घोरानुपद्रवा-
न् । स्तम्भशूलानिघोरानिसर्वगात्रेषु
मुह्यतः ॥ स्नेहस्वेदादिकस्तत्रकार्योवा
तहरोविधिः ।

अर्थ—रूक्ष वा थलहीन मनुष्य जो रूक्ष वि-
रेचनका पान करे तो वह विरेचन वायु को
कुपितकरकेघोर उपद्रवों को उत्पन्न करताहै
इससे सम्पूर्ण देह में घोर स्तम्भ और शूल
होते हैं । इस में वातनाशक स्नेहन स्वेदन
विधि करनी चाहिये ।

स्निग्धस्यगुरुकोष्ठस्यमृदुत्कलेऽपौर्धकफ
पित्तंवातंचसंरुध्यसतन्द्रागौरवंकलमम् ॥
दौर्बल्यञ्चांगसाद्भ्रुकुर्यादाधुतदुल्लिखे-
त् । लघनंपाचनंचात्रस्निग्धेतीक्ष्णंचशो-
धनम् ॥

अर्थ—जो स्निग्ध और भारी कोठेवाला
मनुष्य मृदु औषध का पान करे तो वह
औषध उसके कफको उत्कृष्ट कर और वात
पित्त को रोककर तन्द्रा, भारापन, क्लान्ति,
दुर्बलता और अंगसाद को उत्पन्न करती
है । इस में उस औषध को शीघ्रही वमन
द्वारा निकलवा देवे, फिर लघन और पाचन

द्वारा स्निग्धता और गुरुता को दूर करके तक्षिण विरेचन देवै ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन
तत्रश्लोकौ ।

इत्येताव्यापदः प्रोक्ताः सर्वाहिंसाचिकित्सिताः ॥ वमनस्य विरेकस्य कृतस्याकुशलैर्नृणाम् ॥ एतान्बिज्ञाय मतिमानवस्था शैवतस्वतः । कुर्यात्संशोधनं सम्यगारोग्यार्थी नृणांसदा ॥

अर्थ—इस अध्याय में अप्रवीण वैद्य द्वारा वमन विरेचन के प्रयोग में जो जो व्याधियाँ हो जाती हैं वे सब चिकित्सा सहित वर्णन की गई हैं । बुद्धिमान वैद्यको उचित है कि इन बातों को और अवस्था को जानकर आरोग्य की अभिलाषासे मनुष्यों को वमन विरेचन देवै ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अभिनेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां सिद्धिस्थाने वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

—:—+—:—

सप्तमोऽध्यायः ॥

अथातो नस्ति व्यापादिकां सिद्धिव्याख्या स्याम इति हस्माह भगवान्नात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् नात्रेय बोले कि अब हम व्यापादिका सिद्धि की व्याख्या करेंगे ॥

घोषैर्घोषैर्दार्थगाम्भीर्यशामादमतपोनिधिम् । पुनर्घुंशिव्यगणः पप्रच्छ विनयान्वितः ॥ काः कतिव्यापदो वरतेः किं समुत्पत्त्या

नलक्षणाः । काश्चिकित्सा इति प्रश्नान् श्रुत्वा तान् प्रवीद गुरुः ॥ ॥

अर्थ—शिव्यगणों ने बुद्धि, धीरता, गंभीरता, उदारता, क्षमा, दम और तपकी निधि पुनर्वसु से अत्यन्त नम्रतापूर्वक प्रश्न किया कि हे भगवन् ! वस्ति के रोग कैसे होते हैं, कितने हैं उन के उत्पन्न होनेके कारण और लक्षण क्या हैं और उनकी चिकित्सा भी क्या है । इन प्रश्नों को सुनकर गुरु उनका समाधान करने लगे ॥

वस्ति के रोग ।

नातियो गौक्लमाध्मार्ता हिवका हृत्मासि रज्जता । प्रवाहिका शिरोऽङ्गार्तिः परिकर्त्तः परित्स्वः ॥ द्वादशव्यापदो वस्तेरसम्यग्योगसम्भवाः । आसामैकैकशोरूपं चिकित्सां च निबोधतां ॥

अर्थ—अयोग, अतियोग, क्लान्ति, आप्मान, हिचको, हृदय में धक् २, उर्द्धता प्रवाहिका, शिरोवदना, अंगशूल, परिकर्त्तिका परित्स्व । ये बारह रोग वस्ति के हैं, ये सब रोग वस्ति के असम्यक् योग से होते हैं अब हम इन में से प्रत्येकके रूप और चिकित्सा का वर्णन करते हैं, श्रवण करो ।

अयोगव्यापलक्षण ।

गुरुकोष्ठेऽनिलमायेरुक्षेयातो ल्वणेऽपि वा । शीतोऽल्पलवणस्नेहद्रवमात्रो घनोऽपि वा ॥ वस्तिः संसोभ्यतं दोषं दुर्बलत्वादानिर्हरन् । करोति गुरुकोष्ठत्ववातमूत्रशङ्खदग्गम् ॥ नाभिवस्तिरुजंदा हेहृष्टेऽव्ययं शुभं । कण्ठगण्डानिवैद्यमरुचयहिमादिवम् ॥

अर्थ—घातप्राय भारी काण्ठवाला वा वा-
पविक्रम रूक्ष पुरुष इनको शीतल, थोड़े
तमककी, थोड़े स्नेह की, इसी तरह केवल
तली वा गाढी वस्ति दीजाय तौ यह व-
स्ति दोषको कुपित करती है परन्तु दुर्बलता
के कारण उसे निकाल नहीं सक्ती है, इससे
काण्ठ में भारापन, अधोवायु, मल और मू-
त्रकी रुकावट, नाभिशूल, वास्तिशूल, दाह,
हृत्प्लेप, गुदामें सूजन, खुजली, गंडमाला,
विषर्णता, अरुचि और मन्दाग्नि ये लक्षण
होते हैं ॥

अयोग्यापचिकित्सा ।

तत्रोष्णायाः प्रमथ्यायाः पानं श्वेदाः पृथग्वि-
धाः । फलवर्त्याः स्थवाकालं शास्त्राशस्तं
विरचनम् ॥ विल्वमूलत्रिट्टहाक्यवकील
कुलत्थवान् । सुरादिमूत्रवान् वस्तिः स
प्राक्पेष्यस्तमानयेत् ॥

अर्थ—इस रोगमें गरम प्रमथ्या पान
कारानी चाहिए, अनेक प्रकारके श्वेदनकर्म,
फलवर्त्स और यदि उचित समय होती
विरचन भी देवे । [दोषल चावलों को
छूटकर अठगुने जलमें पककर चौथाई
शेय रहने पर प्रहण करै, इसे प्रमथ्या
कहते हैं] ॥

बेलकी जड़, निसोध, देवदारु, जी, बेर
और कुलधी इनका कल्क तथा सुरा और
गोमूत्र के साथ निरूहण देवे, परन्तु प-
हिले दीहई वस्तिको प्रथम निकाल लेना
चाहिये ।

अतियोग्यापलक्षण ।

स्तिग्पस्त्रिधौऽतितीक्ष्णोष्णोपुटुकोप्येति

युज्यते । तस्यलिंगचिकित्सां च शोधना

भ्यांसमाभवेत् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्नेह श्वेदन करने के
पीछे पुटुकोष्ठ वाले मनुष्य को तीक्ष्ण
और उष्ण वस्ति देने से वस्ति का अति-
योग होता है । वमन विरेचन के अतियोग
के सदृशाई वस्ति के अतियोग के लक्षण
और चिकित्सा होती है ।

अतियोग्यापचिकित्सा ॥

पृश्निपर्णाः स्थिरांपत्रंकाश्चर्मधुकं वलात् ॥
पिष्ट्वाद्रासांमधुकंचर्क्षीरैतण्डुलधावनम् ।
द्राक्षायाः पञ्चलोष्टस्यप्रमादेमधुकस्यच ।
विनीयसगृतं वस्तिं दद्यादाहातियोगिने ।

अर्थ—दूधमें चावलोंको धोकर उन में
महुआ का कल्क, वा दाख का कल्क, वा
जली हुई मृत्तिका, वा मुलहट्टी का कल्क
ढालकर जो प्रसाद अर्थात् स्वच्छ पदार्थ
निकले उसमें पृष्णिपर्णी, वा शालिपर्णी,
वा पयकाष्ठ वा खभारी वा मुजहदी वा
खरेटी इनमें से एक एक का वा जो सब
मिलसकें तौ सबका कल्क मिलाकर धीके
साथ वस्ति देने से अतियोगका दाह नष्ट
हो जाता है ।

वल्लभ्यापलक्षण ॥

आमदोषे निरूहणमृदुनांदोपरि रितः ॥
रुग्दिमार्गवातस्य हन्त्याग्निमृच्छयत्यपि ।
रुग्मंविदाहं हृच्छंमोहं हृष्टं गौरचम् ॥ कु-
र्यात्स्वेदं विरूक्षं स्तं पानंश्चाप्युपाचरेत् ॥

अर्थ—आमदोष में मृदु निरूहण वस्ति
दने से दोष उद्गर्ण होकर घात के मार्ग

को रोक देते हैं, तथा अग्नि को मन्द कर के मूर्च्छित भी कर देते हैं। इस में क्लान्ति विदाह, हृदयशूल, मोह, अंगडाई और भारापन होता है। इस में रूक्षस्वेदन और पाचन द्वारा चिकित्सा करनी उचित है।

कलमव्यापिचिकित्सा ।

पिप्पलीकत्तुणोशीरदारुमूर्वाशृतंजलग्ना
पिवेत्सौवर्चलोन्मिश्रदीपनं हृद्विशोधनम् ॥
वचानागरशंठयोवाधिमण्डेनचूर्णिताः ।
पेयाः प्रसन्नयावास्थुररिष्टेनासवेनवा ।
दारुत्रिकटुकंपथ्यांपलाशंचित्रकंशठीम् ।
पिष्ट्वाकुण्डश्चमूत्रेणापिधेत्क्षारांश्चदीपना
न् ॥ वस्तिमस्यविदध्याच्चसमूत्रंदाशमूलिक
कम् समूत्रमथवाव्यक्तलवणमधुतौलिकम् ॥

अर्थ—पीपल, रोहिण्यतृण, उसीर, देवदारु, मरोडफली इनके बन्धाध में सचलनमक डाल कर पान करने से अग्निसंदापन और हृदय की विशुद्धि होती है
अथवा वच, सोंठ, कचूर [सज्जीला = सज्जी और छोटी इलायची पाठान्तर] इन के चूर्ण को दधि मंडके साथ, वा प्रसन्नाके साथ वा अरिष्ट के साथ, वा आसवके साथ पान करे ।

अथवा देवदारु, त्रिकुटा, हरड, पलास धाता, कचूर और कूठ इन को गोमूत्र के साथ पीसकर पान करे अथवा सब प्रकार के दीपनकर्त्ता क्षीर पान करे ।

अथवा दशमूल के बन्धाध में गोमूत्र मिलाकर वारित देवे अथवा गोमूत्र में थोड़ा सानमक तथा शहत और तेल डालकर वस्तिदेना चाहिये ।

आध्मानव्यापलक्षण ॥

अल्पवीर्योमहादोषरूक्षेकराशयेकृतः ॥
वस्तिदोषावृत्तोरुद्दमार्गोरुन्ध्यात्समीरण
म् ॥ सविमार्गोऽनिलः कुर्यादाध्मानंमर्म
पीडनम् । विदाहंशुक्रोष्ठस्यमुष्कवंक्षण
वेदनाम् ॥ रुणद्धिहृदयंशुलैरितथेतदच

धावति ॥

अर्थ—कूर कोष्ठवाले बहुत दोषोत्सेयुक्त रूक्ष मनुष्यको अल्पवीर्यवाली धरित देने से दोषों से आश्रितवायु ऊपर के और नीचेके सम्पूर्ण मार्गों को रोक देती है, वह विमार्गी गामी वायु मर्मपीडनकर्त्ता आध्मान उत्पन्न करती है विदाह, कोष्ठ में भारापन, अङ्कोप और वंक्षण में वेदना और हृदय में रोध होता है। और वायु शूल करती हुई पेट में इधर उधर दौडती है ।

आध्मानव्यापिचिकित्सा ॥

फलश्यामादिभिः कुण्डकुण्डलावणसर्पपैः ।
धूममापवचाकिण्वक्षारचूर्णगुडैः कृताम् ।
करांगुष्ठनिर्भावातियवमध्यानिघापयेत् ॥
स्त्रभ्यक्तस्त्रिभगात्रस्यतलाक्तास्तीहेत
गुदे । अथवा लवणागारधूमसिद्धार्थकैः
कृताम् ॥ विल्वादिश्चनिरुहः स्यात्पीळ
सर्पपमूत्रवान् ॥ सरलामरदारुभ्यांसि
द्धं चैवानुवासनम् ।

अर्थ—इस जगह सूत्रस्थान के अपामार्गी तण्डुलीय अध्याय में कहे हुए मेनफलादि और निसोथ आदि, कूठ, पीपल, संधानमक सरसों, धूमसा, माप, वच, सुराबीज और जवाखार इन सबको पीसकर गुड में सान-

कर हाथ के अंगूठे की बराबर बत्ती बनाकर उस में जौका चून भरदे, इस बत्ती को तेल में भिगोकर रोगीकी गुदा में रखदेवै । बत्ती रखनेके पहिले रोगीको अच्छी तरह से अभ्यक्त और स्वेदित करले और गुदा में भी तेल लगादेवै । अथवा सेंधानमक, धूमसा और सफेद सरसों इनकी बत्ती बनाकर पूर्ववत् गुदा में रखै । अथवा विस्वादि पंचमूल के काथ के साथ पीछ और सरसोंका कल्क और गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्ति देवै, अथवा सरलकाष्ठ और देवदारु इन से सिद्ध की हुई अनुवासन वस्ति देवै ।

हिकाव्यापच्चिकित्सा ।

मृदुकोष्ठेऽवलेवस्तिरतितीक्ष्णोऽतिनिर्हर
न ॥ कुर्पाण्डिकादिततस्मैहिकाघ्नघृहं-
णञ्चयत् । बलास्थिरादिकाश्मर्यत्रिफला
गृहसन्धवैः । सुमसन्नारनालाम्लैस्तैलं
पक्त्वानुवासयेत् ॥ कृष्णालवणयोरक्षं
पिवेदुष्णाम्बुनायुतम् ॥ धूमलेहरससी
रस्वेदाश्चात्रंचवातनुत् ॥

अर्थ—मृदु कोष्ठवाले दुर्बल मनुष्य को तीक्ष्णवस्ति देने से वह वस्ति दोषों को नि-
फाल कर हिचकी उत्पन्न करती है इस में हिकानाशक और घृहण औषधद्वैतों हित है । हिचकियों को रोकने के लिये खरैटी, शालिपर्णादि पंचमूल, खंभारी, त्रिफला, गुड और सेंधानमक इन सबका कल्क एक सेर, तेल चारसेर, प्रसन्ना और अम्लकाजी सोलह सेर इन सबको मिलाकर पाक कर

के अनुवासन देवै । अथवा पीपल और सेंधानमक दोनों दो ताले लेकर गरम जल के साथ पीने चाहिये । इस में धूम, लेह, मांसरस, दूध, स्वेदन और वातनाशक अन्न हितकर होते हैं ॥

हृदयचिकित्सा ।

अतितीक्ष्णःसत्रातोवानवासम्यक्प्रपीडि-
तः।घट्टयेद्घृदयंवस्तिस्तत्रकाशकुशोत्कटैः
स्यात्साम्ललवणस्कन्धकरीरवदरीफलैः
शृतैर्वस्तिर्हितःसिद्धंवातघ्नैश्चानुवासनम्
अर्थ—वस्तिके अत्यन्त तीक्ष्ण होनेपर अथवा वायुयुक्त होनेपर अथवा ठीक रीति से पीडित न होनेपर वह हृदय में धकधकाइट उत्पन्न करती है । इस में कांस, कुशा और ईख की जड़ का क्वाथ करके इस में अम्लस्कन्ध और लवणवर्गके द्रव्य करीर और बेर डालकर सिद्ध करके वस्ति देवै । तथा वातनाशक औषधियों से सिद्ध कियेहुए तेलकी अनुवासन वस्ति देवै ।

ऊर्ध्वव्यापच्चिकित्सा ।

वातमूत्रपुरीपाणादक्षवेगान्निगृह्यतः ॥
अतिवापीडितोवस्तिर्मुखेनायाभियोगवा-
न ॥ मूर्च्छाविकारतस्यादौदृष्ट्वाद्यति
म्बुनामुखम् ॥ सिञ्चेत्पाश्र्वोदरंचाधः
मृज्याद्वयप्रयेच्चतम् ॥ केशेन्द्रालम्ब-
चाकाशेषनुपात्रासयेद्भृशम् ॥ गोखरा
श्वगजैःसिंहैराजप्रेत्यैस्तथोरगैः । उल्का
भिरैवमन्यैश्चभीतस्याधःप्रवर्तते ॥

अर्थ—अधोवायु, मूत्र और पुरीष के उपस्थित वेगों को रोककर वस्ति ग्रहण

की जाय अथवा वस्ति अत्यन्त पांडित कौजाय
तो यह मुखके द्वारा बाहर निकल जाती है।
ऐसा होने पर यदि रोगी को मूर्च्छा रोग
होजाय तो प्रथमही मुख पर ठंडे जल के
छींटे मारै। पसली और उदर तथा अधो-
भाग में मार्जन करै और फिर उसे व्यम
करदे। उसके केश पकड़कर ऊंचे करै
और धनुष खींच कर उसे डरावै अथवा
गौ, घोडा, हाथी, सिंह, राजकर्मचारी, सर्प
और उल्का आदि दिखाकर डरावै जिस से
वस्ति नीचे को प्रवृत्त हो जाय।

वस्त्रपाणिग्रहैः कण्ठोरुन्ध्यान्मिषतेतदा
प्राणोदाननिरोधादिप्रसिद्धतरमार्गगः
अपानःपवनोर्वास्तिपमाश्वेवापकर्पति ॥
ततः क्रमुककल्कासंपाययेताम्लसंयुतम् ।
औष्ण्याच्चैष्ण्यात्सरत्वाच्चवस्तिचा-
स्यानुलोमयेत् ॥ पकाशयास्थितेस्विन्नेनि
रुहोदाशमूलिकाः । यक्कोल कुलत्थैश्च
विधेयोमूत्रभायितः ॥ विल्वादिपञ्चमूले
नसिद्धोवस्तिरःस्थिते । शिरःस्थेनाव
नधूमःप्रच्छाद्यंसर्पैःशिरः ॥

अर्थ—वस्त्र और हाथ से कंठ को इस
तरह दायै कि मरने न पावे, इस तरह कंठ
को दावने से प्राण और उदान वायुके रुकने
के कारण अपान वायु का वेग नीचे को
घट जाता है, इस से वस्ति शीघ्रही नीचे
को चली जाती है। तत्पश्चात् दो तोले
सुपारी का कल्क कांजी के साथ पान करावै
इस कल्क की उष्णता, तीक्ष्णता, और खर-
ता के कारण वस्ति शीघ्रही निकल आती

है। जो वस्ति पकाशय में स्थित हो तो
उसे निकालने के लिये दशमूलके काथ के
साथ जौ, बेर, कुलथी का कल्क तथा गो-
मूत्र मिलाकर निरूहण देवै। जो वस्ति
हृदय में स्थित होगई हो तो विल्वादि पंच-
मूल के काथ के साथ निरूहण देवै। जो
वस्ति शिर में स्थित हो तो नस्य और धूम
पान का प्रयोग करै और तिरसे ऊपर सरसों
का लेप करै।

प्रवाहिका व्यापच्चिकित्सा।
स्निग्धस्विन्नेमहादोषवस्तिर्मृद्वल्पभेषजः
उत्कृश्याल्पदरेक्षोपंजनयेच्चप्रवाहिका
म् ॥ सवस्तिपायुशोफेनजंधोरुसदनन
वा । निरुद्धमारुतो जन्तुरभीक्ष्णसंप्रवा
हतः ॥ स्वेदाभ्यङ्गान्निरुद्धांश्रुशोधनीयानु
लोमिकान् । विदध्याल्लघचित्वात्पृच्छति
क्षुर्याद्विरिक्तवत् ।

अर्थ—बहुत दोषों से युक्त मनुष्य को
स्निग्ध और स्विन्न करके मृदु वीर्य और
अल्पवस्तिका प्रयोग किया जाय तो वह
सब दोषों को उद्गर्ण करके अल्पदोष को
निकालती है, इस से प्रवाहिका रोग हो-
जाता है “ प्रवाहिका उसे कहते हैं जो
पुरीपोत्सर्ग की थोड़ी थोड़ी देर में शका
होती है और मल थोडासा निकल जाता
है और पेट में दर्द सा रहता है, इस
वस्ति से गुदा में सूजन तथा जंघा और ऊरु
में अवसाद उत्पन्न करती है। रुकी हुई
वायुके कारण चार चार पुरीपोत्सर्ग की
शका होती है।

इस में स्वेदन, अभ्यंग, तथा शोधनीय और अनुलोमनकर्त्ता निरूहण देना उचित है। इस तरह रोगी को लघन कराके विरेचन दिये हुए रोगी की तरह पेयादिक्रमका पालन करावै।

शिरःशूल के लक्षण ।

दुर्बलेतीव्रदोषेचदुष्कोष्ठेचतनुर्मृदुः । शी-
तोऽल्पश्चावृतोदोषोचस्तिस्तद्विहितोऽ-
निलः ॥ मार्गैर्गार्त्राणि सन्धावनूर्द्धमूर्द्ध-
न्युपाहितम् । ग्रीवांमन्येचयुक्तातिशिरः-
कण्ठंभ्रिक्त्तच ॥ वाधिर्यर्कणनादचपी-
नसंनेत्रविभ्रमम् ॥

अर्थ—ऐसे मनुष्य को जो दुर्बल हो और जिस के दोष तीव्र हों और कोष्ठ मृदु हो उसे ठंडी और अल्पवस्ति देनेसे वह वरित दोषों से धिरजाती है, वरित के इसतरह आवृत होनेपर वायु विहत होकर ऊपर को जाती है, वहां जाकर ग्रीवा और दोनों मध्याओं को जकड़ लेती है। सिर और कंठ में भिदने कीसी पीडा होती है। तथा वहरामन, कर्णनाद (कानों में शनकार), पीनस और नेत्रविभ्रम ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

शिरःशूलचिकित्सा ॥

कुर्यादभ्यञ्जनंतैललवणेनययाजोषि ॥
युञ्ज्यात्प्रथमनैनैरस्यैधूमैरास्यविरेचनैः ।
विरेचनैर्निरूहैश्चवस्तिभिश्चानुलोमिकैः
अर्थ—इसरोगमें त्रिधिपूर्वक तेल और नमक का अभ्यंग करे। तथा प्रथमन, धूम, नक्ष्यंभादि शिराविरेचन का प्रयोग करे तथा विरेचन, निरूहणवस्ति और आनुलोमिक वस्तिका भी प्रयोग करे।

अंगशूललक्षण ॥

सुस्विन्नस्निग्धदेहस्यस्यवास्तिर्विधीयते
अतितीक्ष्णोऽगुरुश्चैवसोऽतिमात्रं प्रवर्त्तये
त् ॥ सुतेपुतस्यदोषेषुनिरूढस्यातिमात्र-
शः । स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्यवायुःसंप्रतिह-
न्यते ॥ विलोममसमुद्भूतोरुजत्यङ्गानि
देहिनः । गात्रवेष्टननिस्तोदभेदस्फुरणजु-
म्भणैः ॥

अर्थ — जिस रोगी को अच्छी तरह से स्निग्ध और स्विन्न करके अतितीक्ष्ण और मारी वस्ति दी जाती है, उसके दोष बद्धत निकलने लगते हैं। इस तरह दोषों के निकलने पर अत्यन्त निरूहित, स्तब्ध उदावृत्त कोष्ठवाले मनुष्य की वायु प्रतिहत हो जाती है। तब वायु की विलोमताके कारण अंगोंमें शूल होने लगता है। देह में अंग-डाई, निस्तोद, भेद, स्फुरण और जंभाई ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

अंगशूलचिकित्सा ॥

तंतैललवणाभ्यक्तंसेचयेदुष्णवारिणा ॥
एरण्डपत्रनिष्कायैःप्रस्तरैश्चोपपादयेत् ॥
यवान्कुलत्थान्कोलानिपञ्चमूलेतथोभ-
ये । जलाटकद्रयेपक्त्वापादशेषेणतेनच
कुर्यात्सविल्वंतैलोष्णलवणेनानुवासन-
म् ॥ निरूहणसमाश्रयस्तद्रोण्यांसमवगाह-
येत् । ततोभुक्तवतस्तस्यकारयेतानुवास-
नम् ॥ यष्टीमधुकतैलेनविल्वतैलेनवाभि-
पक् ।
अर्थ—उत्तरोगी के देहपर तेल और न-
मक का मर्दन करके उसे गरमजल से से-

चन करे तथा अरंड के पत्तों के क्वाथ से
सेचन कर प्रस्तरस्वेद का प्रयोग करे ॥
जौ, कुलधी, येर, दसमूल इनको अठगुने
जल में पक्व करके चौथाई शेष रहने पर
खतार लेंवे, फिर इसमें प्रमाण से विल्वतैल
और सेंधानमक मिलाकर गरम २ से अनुवा-
सन देवे । तथा निरूहण देकर रोगी के
स्वस्थ होनेपर जलसे मरीडुई द्रोणामें स्नान
करावे फिर भोजन कराके भोजनके पचनेपर
अनुवासन देवे । इसमें मुलहटी के तेल का
या विल्वके तेलका अनुवासन दियाजाता है ।

परिकर्तिकाकीचिकित्सा ।

मृदुकोष्ठाल्पदोपस्यरूक्षतीक्ष्णोऽतिमात्र-
वान्वावस्तिदोषान्निरस्याशुजनयेत्परि-
कर्तिकां ॥ त्रिकबंधक्षणवस्तीनातोदनाभे-
रधोरुजम् ॥ विवन्धाल्पाल्पमृत्थानंगुद-
निर्लेखनंभवेत् । स्वादुशीतौषधैस्तत्रपय-
इक्ष्वादिभिःशृतम् ॥ यष्ट्याहतिलक-
ल्काभ्यां वस्तिस्पात्क्षीरभोजिनः ॥

अर्थ—ऐसे रोगीको जिसका कोष्ठ मृदु
हो और दोष भी कमहों उसे रूक्ष, तीक्ष्ण
और अतिमात्रावाली वस्ति देने से दोषों के
निकलने पर परिकर्तिका रोग उत्पन्न होता
है । तथा त्रिक, बंधक्षण और वस्तिमें सुई छि-
दने कीसी पीड़ा होतीहै, नाभिके नीचे श्लेदना
होताहै, विवन्ध और मलका थोड़ा थोड़ा
स्त्राव होताहै । वस्तिके अत्यन्त पीड़न कर-
नेसे गुदा विदीर्ण होजाती है । इस में
ईश आदि स्वादु और शीतल द्रव्योंके साथ
भोटाये हुए दूध में मुलहटी और तिलका

कल्क मिलाकर पान करावे । इस में केवल
दूध का पथ्य हित है ॥

पित्तरक्त में चिकित्सा ।

पित्तरक्तेऽम्लउष्णोवातीक्ष्णोवालवणो-
ऽधवावस्तिरिखतिपायुंतुतीक्ष्णोऽतिवि-
दहत्यापिसविदग्धःस्रवत्यसंपिचंचानेकव-
र्णवत्सायतेवद्दुवेगेनमोहंगच्छतिचासकृत्
आर्द्रशास्मलिवृन्तस्तुक्षुण्णैराजंपयःशृतम् ॥
सर्पिपापोर्जितशीतवस्तिमस्मैप्रदापयेत्
वटादिपल्लवेष्वेपःकल्पोयवतिलेषुच ॥
सुवर्चलापोदकयोःकर्षुदारैश्चस्पते ॥
गुदसेकाःप्रदेहाश्चशीताःस्युर्मधुराश्चये ॥
रक्तपित्तातिसाररुग्नीक्रियाचात्रप्रशस्यते

अर्थ—रक्तपित्तमें खट्टी, गरम, तीक्ष्ण
या नमककी वस्ति देने से गुदा विदीर्ण
होजातीहै ॥ अत्यन्त तीक्ष्ण होने पर विदाह
भी होता है ॥ इस तरह गुदा के विदीर्ण
और विदग्ध होने पर अनेक रंगका पित्त
स्त्रावित होता है, तथा बहुत वेग से स्त्राव
होने पर मूर्च्छा भी हो जाती है ।

इस रोग में सेमर के कर्चें डंठलों को
कूटकर उनके साथ बकरीका दूध सिद्ध
करे फिर इस में घृत मिला कर टंडा होने
पर वस्ति देवे ।

इसी तरह से बट आदि वृहत्तोंके पत्तों का
कल्क अथवा जौ और तिलका कल्क अथवा
सुवर्चला और पोई अथवा रक्त केनेर इन-
के साथ दूध औटाकर घृत मिला कर टंडा
होने पर वस्ति देवे ।

गुदा में शीतल परिषेक, मधुर द्रव्यों का शीतल छेप तथा रक्तपित्तनाशक और अति-सार नाशक चिकित्सा इसमें करना चाहिये ।

अध्यायका उपसंहार ।

भवति चात्र ॥

इत्येताव्यापदः प्रोक्तावस्तेः साकृतिभेष-
जाः ॥ बुद्ध्या कात्स्न्येन नानुवस्तीन्नियुञ्ज-
न्नापराध्यति ॥ तीक्ष्णत्वं सूत्रविल्वादिलव-
णक्षारसर्पपैः ॥ मासकालं विधातव्यं क्षीराद्यै-
र्माद्वैतना ॥ आपादतलमूर्दस्थानदोषानु-
पक्वाशयोस्थितः ॥ वीर्येण वस्तिरादत्तेख-
स्योऽर्कोभूरसानिव ॥ यद्वत्कुमुम्भसंभि-
थाचोयाद्रागंहरत्पटः ॥ तद्द्रव्यीकृता-
त्कायाग्निरूहोनिर्हरेत्मलान् ॥

अर्थ—ऊपर लिखी हुई रीतिके अनुसार वस्तिकी व्यापत् उन के लक्षण और चिकित्सा वर्णन की गई है । इन सम्पूर्ण बातों को विचारकर वस्तिका प्रयोग करने से वैद्य अपराध का भागी नहीं होता है ॥

यदि योग्य समज्ञाजाय तौ गोमूत्र, विल्व, मेनफळ, छयण, क्षार और सरसों सिल्लिकर वस्ति ताँदण करली जाती है ॥ तथा दूध और घृतादिके मिलानेसे वस्ति मृदु होजाती है जैसे आकाश में स्थित सूर्य पृथ्वी के रस को खींचलेता है उसी तरह से मलाशयस्य वस्ति अपने वीर्यसे पाँव के तलुए से लेकर मस्तक के तलुए तकके दोपोंको खींचलेती है जैसे वस्त्र कसूम मिलेहुए जलमें से छलाई को खींच लेता है उसी तरह स्नेहनस्वेदनादिसे

द्रवकी हुई देहमें से निरूहणवस्ति दोपों को खींच लेती है ।

इतिश्रोभापाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचिता यांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां सिद्धि-

स्थानेवस्तिव्यापादिकासिद्धिर्नाम

सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

—+—

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातः प्रामृतयोगिकां सिद्धिव्याख्या-
स्यामइतिहस्माह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ.... तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम प्रामृतयोगिका सिद्धिकी व्याख्या करेंगे ॥

अथेमानसुकुमाराणां निरूहान् स्नेहनान्
मृदून् ॥ कर्मणा विप्लुतानां च वक्ष्यामि
ममृतैः पृथक् ॥

अर्थ.... अब हम सुकुमार और परिश्रम से थकेहुए मनुष्योंके लिये जिस तरह मृदु निरूह और स्नेह का प्रयोग करना चाहिये उनके प्रसृत द्वाय अलग अलग प्रमाणों को कहेंगे ॥

क्षीरात्सौमसूतौ कायौ मधुतैलघृतात्त्रयः ।
खजेनमथितो वस्तिर्वातघ्नो वलवर्णकृत् ॥

अर्थ.... दो प्रसृत दूध और शहत, तेल तथा घी सौनों मिलेहुए तीन प्रसृत, इन सबको मिलाकर रई से मधुकर वस्ति देवे । इससे वात दूर होजाती है तथा बल और वर्ण बढ़ते हैं ॥

एकैकःप्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिपः ॥
विल्वादिमूलकायात्क्षौद्रौलत्यात्क्षौस
वातनुत् ॥

अर्थ—तेल, प्रसन्ना, शहत और घी
एक २ प्रसृत, विल्वादि पंचमूल का क्वाथ
दो प्रसृत और कुल्धी का क्वाथ दो प्रसृत,
ये सब मिलाकर रई से मथकर वस्ति देवे
तो वात दूर होजातीहै ।

पञ्चमूलरसात्पञ्चद्वौतैलात्क्षौद्रसर्पिपोः
एकैकःप्रसृतौवस्तिःस्नेहनीयोऽनिलापहः

अर्थ—पंचमूल का क्वाथ पांच प्रसृत,
तेल दो प्रसृत, शहत और घी एक एक
प्रसृत इनको मिलाकर वस्ति देनेसे स्नेहन
होता है और वादी दूर होजातीहै ।

वीर्यवर्द्धननिरूह ।

सैन्धवार्धाक्षएकैकःक्षौद्रतैलपयोघृतान् ।
प्रसृतोहपुपाख्यौचनिरूहःशुक्रकृत्परम्

अर्थ—सैधानमक एक तोला, शहत,
तेल, दूध और घी एक २ प्रसृत, इसी
तरह हजुपा का क्वाथ एक प्रसृत । इन
को मिलाकर निरूहण वस्ति देनेसे वीर्य
की अत्यन्त वृद्धि होताहै ।

पञ्चतिक्त निरूह वस्ति ॥

पटोलनिम्बभूनिम्बरास्नासप्तच्छदाम्भ
सः ॥ चत्वारःप्रसृताएकोघृतात्सर्पिप
कल्कितः । निरूहःपञ्चतिक्तोऽयंमोहा
भिष्यन्दकुप्टनुत् ॥

अर्थ—परवल, नीमकी छाल, चिरायता,
रास्ना और सप्तच्छद इनका क्वाथ चार प्र-
सृत, घी एक प्रसृत तथा उचित प्रमाण से

सरसों का कल्क । इन सब को मिलाकर व-
स्तिका प्रयोग मोह, अभिष्यन्द और कुट्ट
को दूर कर देताहै ।

क्रिमिनाशक वस्ति ।

विटङ्गत्रिफलाशिथुफलमुस्ताखुपिंजात्
कपायात्प्रसृताःपञ्चतैलादेकोविमथ्यता
न् । विटङ्गपिप्पलीकल्काक्रिडःक्रिमि
नाशनः ॥

अर्थ—वायविडंग, त्रिफला, सहजने के
बीज, मोथा और मुपिकपर्णी इनका क्वाथ
पांच प्रसृत और तेल एक प्रसृत । इनमें
योग्य प्रमाणसे वायविडंग और पीपल का
कल्क डालकर मथ डाले । इस निरूहण
वस्ति से क्रिमि दूर होजातेहैं ।

दृष्यवस्ति ॥

पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीसौद्रसर्पिपः
एकैकःप्रसृतोवस्तिः कृष्णाकल्कोघृपत्व
कृत् ।

अर्थ—क्षीरकाकोली, ईख, शालिपर्णी,
रास्ना, विदारीकन्द, शहत और घी, इन
मेंसे क्वाथके योग्योका क्वाथ और रसके
योग्यो का रस एक एक प्रसृत लेकर पी-
पलका कल्क डालकर वस्ति दीजाय तो
अत्यन्त दृष्यता होताहै ।

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमण्डाम्लकाक्षिका
त् ॥ प्रसृताःसर्पिपैःकल्कैर्विदसङ्गानाह
भेदनः ॥

अर्थ....तेल, गोमूत्र, दधिमंड और अ-
म्लकाजी एक एक प्रसृत और सरसों का

कल्क इनकी वस्ति देनेसे विष्टाका विन्ध और आनाह दूर होजाते हैं ।

श्वदंष्ट्राश्मभेदेरण्डरसात्तैलात्सुरातया ॥
प्रमृताः पञ्चयद्दृष्ट्याकौन्तीमागधिकासि
ता । कल्कोवस्तिःसमानाहेमूत्रकृच्छ्रेपरो
मतः ॥ .

अर्थ—गोखरू, पाखान भेद और अरंडकी जड़ इनका क्याथ तीन प्रसृत, तेल एक प्रसृत, और सुरा एक प्रसृत इनमें मुलहटी, रेणुका, पीपल और मिर्चा इनका कल्क उचित प्रमाण से ढालकर वस्ति देवै । यह वस्ति आनाह और मूत्रकृच्छ्रमें अत्यन्त उत्कृष्टहै एतेसलवणाःकोष्णानिरूहाः प्रमृतानव ॥

अर्थ....ये जो ऊपर नौ प्रकार की वस्ति कही गईहैं, इनमें सेधानमक ढालकर कुछ गरम कर लेनी चाहिये और फिर इनका प्रयोग करना चाहिये ॥

मृदुवस्तौजडीभूवेतीक्ष्णोऽन्यावस्तिरिष्य
ते ॥ तीक्ष्णैर्विकर्षितैःस्वादुप्रत्यास्थापन
मेवचा

अर्थ....मृदुवस्ति जब निकाम होजाय तब तीक्ष्ण वस्ति देनी चाहिये, तथा तीक्ष्ण वस्तिके प्रयोगसे रोगीके विकर्षित होने पर मधुर द्रव्योंके द्वारा आस्थापन करना हित है ॥

वातोपमृष्टस्योष्णैःस्युर्दुदादाहादयोयदि
द्राक्षाभ्युनात्रिवृत्कल्कंदद्यादोपानुलोम
नम् ॥ तद्विपिचशकृदातानहृत्वादाहादि
कानुजयेत् ॥

अर्थ—जो वातरोगी मनुष्य को तीक्ष्ण

वस्ति देने से गुदा में दाह आदि उपद्रव उत्पन्न हों तो दाख के बवाभ के साथ नि-
सोधका कल्क पान करावै । इससे दोषों का अनुलोमन होताहै और पित्त, विष्टा और वायु दूर होकर दाहादि उपद्रव शान्त होजाते हैं ।

शुद्धश्चापिपिबेत्शीतांयवागूंशर्करायुताम् ।

अर्थ—इस तरह रोगी के शुद्ध होने पर उसे शीतल यवागूं में शर्करा मिलाकर पान करावै ।

अथवातिविरिक्तःस्यात्क्षीणव्रिदकःसभ
क्षयेत् । मापयूपेणकुम्भापान्पिबेद्ध्ययवा
सुराम् ॥

अर्थ—अत्यन्त विरेचनसे जिसका वि-
ष्टा क्षीण होगयाहो उसे मापयूपके साथ कुलमाय का भोजन देवै अथवा दही वा सुरा का पान करावै ।

सामंभेदतिसार्येतप्रतिशूलैररोचकी । स
तदाहपुपाकुष्ठनतदारुवचाःपिबेत् ।

अर्थ—वस्ति देने से पीछे शूल, अरु-
चि और आमातिसार हों तो हाऊबेर, कूठ, तगर, देवदारु और वच इनका चूर्ण पान करै ।

शकृदातमसृक्पित्तकफंवायोऽतिसार्येते ।
पर्कस्तत्रस्वर्गीर्यंवास्तिःश्रेष्ठंभिपगिजतम्

अर्थ—वस्ति प्रयोग के पीछे विष्टा, अ-
धोवायु रक्त पित्त और कफ अत्यन्त नि-
कलता हो. तो अतिसारनाशक द्रव्यों से सिद्ध कीहुई वस्तिका प्रयोग अत्यन्त हित करहै ॥

पण्णामेपां द्विसंसर्गात्त्रिसंज्ञेदाभवान्ति ॥
केवलैः सह पट्टविशद्विद्यात्सोपद्रवानापि ।

अर्थ—आम, विष्टा, वायु, रक्त, पित्त और कफ इन दो दो के मिलने से पन्द्रह भेद होते हैं तथा केवल आमदि छः और नौ उपद्रव जो भागे वर्णन किये जायगे इन सब के मिलने से तीसभेद होते हैं ।

नौ उपद्रव ॥

शूलप्रवाहिकाध्मानपरिकर्त्तारुचिज्वरान्
सत्पण्णोदाहमूर्च्छादींश्चैपांविद्यादुपद्रवान् ॥

अर्थ—उपद्रव नौ प्रकारके होते हैं यथा-शूल, प्रवाहिका, अध्मान, परिकर्त्तिका अरुचि, ज्वर, तृष्णा, दाह और मूर्च्छा ॥ तथा भेदवर्णनकार्यव्योपाम्ललवणैर्धृतम् ॥ पाचनशस्यतेवास्तिरामेहिपतिपिध्यते ॥

अर्थ—आमातिसारमें त्रिकुटा, खाटाई और नमक के साथ घसन कराना उचित है ॥ अथवा पाचन देनाभी हित है परन्तु आम में वस्ति देना अहित है ॥

वातघ्नग्राहिवर्गीयैर्वस्तिःशकृतिशस्यते ।
स्वादूम्ललवणःशस्तःस्नेहवस्तिसमीरणे
रक्तेरक्तेनपित्तास्रकपायःस्वादुतिक्तकैः

अर्थ....विष्टा के अतिसार में वातनाशक और संप्राही वर्गकी औषधें देवें । वातातिसार में स्वादु, अम्ल और लवण द्रव्यों की स्नेहनवस्ति देवें । रक्तातिसार में ककर आदि के रक्तकी वस्ति देवें । पित्तरक्त में कपाय, स्वादु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवें ॥ कफातिसार में कपाय, कटु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवें ॥

सार्थमाणेकफेवस्तिःकपायकटुतिक्तकैः ।
शकृतावायुनाचामेतनवर्चस्यथाऽनिले ॥
संसृष्टेऽन्तरपानस्यादुव्योपाम्ललवणैर्धुः

तम् ॥

अर्थ—आमविष्टा से युक्त अतिसारमें वा आमवायुसे संसृष्ट अतिसारमें वस्ति कर्मसे पीछे त्रिकुटाका चूर्ण, काजी और सेधानमक पान करावै ।

पित्तेनामंऽमृजावापितपोरामेनवापुनः ॥
संसृष्टयोर्भवेत्पानंसव्योपस्वादुतिक्तकम्

अर्थ—पित्त और आमके संसर्ग युक्त अतिसार में अथवा रक्त और आम के संसर्ग युक्त अतिसारमें, पित्तरक्त आम के संसर्ग युक्त अतिसारमें त्रिकुटा, स्वादु और तिक्त द्रव्यों का सेवन करना चाहिये ।

तथामेकफसंसृष्टेकेपायव्योपातिक्तकम् ॥
आमेतनुकफेव्योपकपायलवणैर्धृतम् ॥

अर्थ—आमकफातिसारमें कपाय, त्रिकुटा और तिक्तद्रव्यों का सेवन करे । तथा आमंसंसृष्ट-अलकक में त्रिकुटा, कपाय और नमक का सेवन हित है ॥

वातेनविशिपित्तेचापिट्पित्तास्रैस्तथानिले ॥
मधुराम्लकपायःस्यात्संसृष्टेवस्तिरुचमः ॥

अर्थ—वातसंसृष्ट विष्टातिसारमें अथवा वातापित्तातिसार में अथवा वातापित्तयुक्त विष्टातिसारमें वातयुक्त पित्तरक्तातिसारमें मधुर, अम्ल और कपाय द्रव्योंकी वस्ति देना हित है ।

शकृच्छोणितयोःपित्तशकृतोरक्तापित्तयोः।
 वस्तिरन्योन्यसंसर्गकषायस्वादुतिक्तकः ॥

अर्थ—विष्टा और रक्त अथवा विष्टा और
 पित्त अथवा रक्त पित्त इनके अतिसारमें अ-
 थवा तीनों के सान्निपातिक अतिसारमें कषाय
 स्वादु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवै ।
 कफेनधांशपित्तैवाकफेविट्पित्तशोणितैः।
 व्योपतिक्तकषायःस्यात्संसृष्टवस्तिरुत्तमः।
 अर्थ—कफविष्टातिसारमें वा कफपित्ताति-
 सार में तथा कफ, विष्टा, पित्त और रक्तके
 अतिसार में त्रिकुटां, तिक्त और कषाय
 द्रव्यों की वस्ति हित है ।

स्वादुस्तिवर्णोपतिक्ताम्लःसंसृष्टोवायुना
 कफं ॥ मधुरव्योपतिक्तस्तुरकंकफविमू-
 च्छिते ॥

अर्थ—वात कफातिसार में त्रिकुटा और
 तिक्त अम्ल द्रव्यों की वस्ति हित है । तथा
 कफ रक्तातिसारमें मधुर, त्रिकुटा और
 तिक्त द्रव्यों की वस्ति उत्तम है ।

मासुतेकफसंसृष्टव्योपाम्ललवणोभवेत् ॥

वस्तिवर्तितेनरक्तेतुकार्यःस्वादुम्लतिक्तकः

अर्थ—कफसंसृष्ट वातातिसारमें त्रिकुटा
 अम्ल और लवण द्रव्योंकी वस्ति देवै ।
 तथा वातसंसृष्ट रक्तातिसारमें स्वादु, अम्ल
 और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देनी चाहिये ॥

त्रिचतुःपञ्चपड्यागनेवमेवबिकल्पयेत् ॥

युक्तिश्चैपातिसारोक्तासर्वरोगेष्वपिस्मृतः

अर्थ—इसीतरह से आम, विष्टा, वायु
 पित्त, रक्त और कफ इन छः मलों के तीन
 तीन, चार चार, पांच पांच और छःदोषों

के मिलने से धीस प्रकार के उपद्रव होते
 हैं, यथा आमविष्टावात, आमविष्टापित्त, आम
 विष्टारक्त, आमविष्टाकफ, विष्टावातपित्त,
 विष्टावातरक्त, विष्टावातकफ, वातपित्तरक्त,
 वातपित्त कफ और पित्तरक्त कफ । चार ३
 दोष वाले यथा आमविष्टा वातपित्त, आम
 विष्टावातरक्त, आमविष्टावात कफ, विष्टा
 वातपित्तरक्त, विष्टावातपित्तकफ और वात
 पित्तरक्तकफ ॥ पांच पांच दोष वाले यथा
 आमविष्टावातपित्तरक्त, आमविष्टावातपित्त
 कफ और विष्टावातपित्तरक्त कफ ॥ छःवाला
 एक, यथा—आमविष्टावात पित्तरक्तकफ ॥
 अतिसार में कही हुई यही युक्ति सब
 रोगोंमें स्मरण रखनी चाहिये ॥

युगपत्पट्टसंघर्षणांसंसर्गयाचनंभवेत् ॥

निरामाणानपञ्चानांविस्तपाइसिकोमतः

अर्थ— आमविष्टावातपित्तरक्तकफ इन
 छःओंके संसर्ग में स्वादु अम्ललवणकटु
 तिक्त कषाय इन छःओंका एक साथ प्रयोग
 करने से मलका पाक होता है तथा आमर-
 हित अन्य पांच उपद्रवों के संसर्गमें छःओं
 रसोंकी वस्ति हित है ।

उदुम्बरशलादूनिजम्बवाभ्रोदुम्बरत्वचः।

शंखसर्जरसलाक्षाकर्मचपलांशिकम् ॥

पिष्ट्वातैःसार्पिषःप्रस्थंक्षीराद्विशुणितंपचेत्

अतीमारोपुसर्वेषुपेयमेतद्यथावलम् ॥

अर्थ—सूखा हुआ गूलर, जामनकी छालें
 आमकी छाल, मूँडरकी छाल, शंखका चूर्ण,
 रौंछ, छाख और कदन अलग २ एक एक

पल लेकर पीसलेबै इस में एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध मिलाकर पकावै । इस को सब प्रकारके अतिसारोंमें बलके अनुसार पान कराना उचितहै ।

फच्छुराधातकीविल्वसमंगारक्तशालिभिः

मसूरश्वत्थशुंगुश्रयवागूःस्याज्जलेगृतैः ॥

अर्थ—कैचके बीज, धायके फूल, बेलगिरी, लज्जादू, रक्तशाली, मसूर और पांपलके पृक्षकी डंठल इनके क्वाथ के साथ सिद्ध कर के यवागू पीने से अतिसार दूर हो जाता है बालोदुम्बरकद्वंगसमंगामुक्षपल्लवैः ।

मसूरधातकीपुष्पबलाभिश्चतथाभवेत् ॥

अर्थ—नेत्रवाला, गूलर, श्यानाफ, लज्जादू, पाफडके पत्ते, मसूर, धाय के फूल, और खरैटी इनके क्वाथके साथ पूर्ववत् यवागू पान करै स्थिरादीनांबलादीनांइक्ष्वादीनामथापि वा । काथेपुसमसूराणांपवाग्यःश्यात्पृथक्पृथक् ।

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल, अथवा बलादि गणोक्त द्रव्य, अथवा इक्ष्वादि गणके द्रव्योंके क्वाथके साथ मसूरकी यवागू पान करै फच्छुरामूलशाख्यादितण्डुलैरुपसाधिताः दधितप्रारत्नालाम्लक्षीरैप्विष्टुरसेऽपिवा शीताःसशर्कराशौद्राःसर्वातीसारनाशनाः संसर्पिर्मरिचाजार्जामधुरालवणाःशिवाः ॥

अर्थ....कैचकी जडके क्वाथ के साथ शालीतंडुलोंकी यवागू अथवा दही, तफ, कांजी, जवाखार और ईखके साथ सिद्ध की हुई यवागूके ठंडा होने पर उसमें चीनी और शहत मिलाकर पान करनेसे सब प्रकार

के अतिसार दूर होजातेहैं । सब प्रकारकी यवागू में घी, काली मिरच, जीरा, मधुर द्रव्य और नमक ये मसाले भी डाल देने चाहिये

अध्यायकाउपसंहार ।

तत्र श्लोकाः ।

स्निग्धाम्ललवणमधुरपानं वस्तिश्चमाकृतेकोष्णः ॥ शीतंतिक्तकपायंमधुरपित्ते चरक्तेच । तिक्तोष्णकपायकटुश्लेष्मणि

संग्राहिवातनुच्छकृति ॥ पाचनमामेपानंपिच्छासृग्बस्तयोरक्ते । अतिसारात्पत्युक्तंमिश्रद्वन्द्वादियोगेज्वपिच ॥ तत्रो

द्रेकविशेषाद्दोषेषूपक्रमःकार्यः ।

अर्थ....घातमें स्निग्ध, अम्ल, लवण और मधुर औषध सेवन करनी चाहिये और वस्ति कुछ कुछ उष्ण होना चाहिये । पित्त और रक्तमें शीतल, तिक्त, कपाय और मधुर औषधों का सेवन हितहै । कफमें तिक्त उष्ण, कपाय और कटु द्रव्य सेवन करने चाहिये । मलमें संग्राही और वातनाशक औषधों का सेवन हित है । आममें पाचन द्रव्योंका सेवन हितहै । रक्तमें पिच्छा वस्ति और रक्त वस्तिका सेवन उत्तम है । इसी तरहसे द्वन्द्वजादि और साक्षिपातिक अतिसार में भी समझना चाहिये । मिश्रित दोषोंमें जिस दोषकी अधिकता दोखे पढे उसीके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये ॥

अध्यायकासंश्लेषणम् ।

प्रासूतिकःसग्यापत्क्रियानिरूहास्तथा तिसारहिताः ॥ इसकल्पघृतयवाग्वंशो

कागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ—प्रासूतिकःसग्यापत्क्रियानिरूहास्तथा तिसारहिताः ॥ इसकल्पघृतयवाग्वंशो कागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ—प्रासूतिकःसग्यापत्क्रियानिरूहास्तथा तिसारहिताः ॥ इसकल्पघृतयवाग्वंशो कागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ—प्रासूतिकःसग्यापत्क्रियानिरूहास्तथा तिसारहिताः ॥ इसकल्पघृतयवाग्वंशो कागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ—प्रासूतिकःसग्यापत्क्रियानिरूहास्तथा तिसारहिताः ॥ इसकल्पघृतयवाग्वंशो कागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ—प्रासूतिकःसग्यापत्क्रियानिरूहास्तथा तिसारहिताः ॥ इसकल्पघृतयवाग्वंशो कागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ—प्रासूतिकःसग्यापत्क्रियानिरूहास्तथा तिसारहिताः ॥ इसकल्पघृतयवाग्वंशो कागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ—प्रासूतिकःसग्यापत्क्रियानिरूहास्तथा तिसारहिताः ॥ इसकल्पघृतयवाग्वंशो कागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ....इस प्रासृतिकासिद्धि अध्याय में सम्पूर्ण प्रासृतिक योग, जुदे २ उपद्रव, उनकी जुदी २ चिकित्सा, अतिसार को दूर करनेवाली भिन्न २ प्रकारकी निरूहण वास्ति, रसोंकी कल्पना, घृत और यथागु वर्णन कियेगये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशधिरचिता-
यां चरकप्रतिसंस्कृतायां सांहितायांसिद्धि-
स्थानेःसृष्टियोगिकासिद्धिर्नामा-
एगोऽध्यायः ॥ ८ ॥

—x—

नवमोऽध्यायः ।

अथातःत्रिमर्माणांसिद्धिव्याख्यास्याम
इतिहस्माह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम त्रिमर्माय सिद्धि की व्याख्या करेंगे सप्तोत्तरमर्मशतं अस्मिन्शरीरेस्कन्धशाखा श्रितमग्निवेश ! तेषामन्यतमपीडायांस मधिकपीडाभवसिचेतनानिवर्द्धवैशेष्यात्

अर्थ—हे अग्निवेश ! इस शरीरमें स्कन्ध और शाखाओं में आश्रित एकसौसात मर्म हैं । इन मर्मों में से किसी एकमें भी पीडा होनेसे सम्पूर्ण शरीर में अत्यन्त व्याकुलता उत्पन्न होती है क्योंकि मर्मस्थानमें चेतना विशेषरूपसे निवद्ध है ॥

मर्मस्थानों में गुरुता ॥

तत्रशाखाश्रितेभ्योमर्मभ्यःस्कन्धाश्रि-
तानिगरीयांसिशाखानांतदाश्रितत्वात् ॥
स्कन्धाश्रितेभ्योऽपिदृष्टस्तिशिरांसितन्मू-
लत्वाच्छरीरस्या ॥

अर्थ—इनमें से जो मर्म शाखामें (हाथ

पात्रों में) आश्रित हैं उनसे स्कन्ध के मर्म गुरुतर हैं ॥ (स्कन्धशिर और धड) क्योंकि शाखा भी स्कन्ध के आश्रित हैं ॥ स्कन्धाश्रित मर्मोंमें भी अन्य मर्मोंकी अपेक्षा हृदय वास्ति और शिर अत्यन्त गुरुतर हैं, क्योंकि येही शरीरके मूल हैं ॥

तत्रहृदिदशचधमन्यः प्राणोदानमनोबुद्धि-
चेतनामहाभूतानिचनाभ्यामराइवप्रति-
ष्ठितानि ॥

अर्थ—जैसे नाममें अमरानाडी रहती है, उसीतरह हृदयमें दस धमनियां रहती हैं । प्राण, उदान, गन, बुद्धि और चेतना ये भी हृदयदीमें रहती हैं ॥ शरीर के अन्य अंगोंकी अपेक्षा हृदयमें पंचमहाभूत का स्थान भी अधिकतर है ॥

शिरसीन्द्रियाणिइन्द्रियप्राणवाहानिच-
स्रोतांसिधूर्यपिवगभस्तयःसंश्रितानि ॥

अर्थ—जिस तरह सूर्यमें सम्पूर्ण किरण आश्रित हैं उसीतरह मस्तकमें सम्पूर्ण इन्द्रियां और इन्द्रियोंके प्राणवाही स्रोत आश्रित हैं ॥

वस्तिस्तुस्थूलगुदमुष्णतेवनीशुक्रपूत्रवाहि-
नीनांनार्लीनांमध्येपूत्राधारोम्बुवाहानां
सर्वस्रोतसामुद्रधिरिवापगानांप्रतिष्ठिता
भवतिबहुभिश्चतन्मूलैर्मर्मसंज्ञकैःस्रोतो
भिर्गगनभिर्वादिनकरैर्व्याप्तमिदंशरीरम्

अर्थ—स्थूल अंत्र, अंडकोप, सीयन, शुक्रवाहिनी नाडी और पूत्रवाहिनी नाडियों के बीच में वास्ति होती है । जैसे समुद्र सब नदियों के बीच में रहता है इसतरह यह

वस्ति भी सम्पूर्ण जलवाही स्रोतोंकी मूत्रा-
धार है अर्थात् मूत्र यहीं आकर इकट्ठा
होता है ॥ जैसे आकाश सूर्यकी किरण
जालों से व्याप्त है, उसीतरह से यह सम्पूर्ण
शरीर भी तन्मूल मर्मसंज्ञक स्रोतोंके जाल
से व्याप्त है ॥

तेषां त्रयाणामन्यतमस्यापि भेदादाश्वेभ्यो
दःस्पादाश्रयनाशादाश्रितस्यनाशःतदु-
परतात्तुघोरव्याधिमादुर्भावस्तस्मादेतानि
विशेषेण रक्ष्याणि वाह्याभिघाताद्वातादि

दोषेभ्यश्च ॥

अर्थ.... उक्त तीनों मर्मों मेंसे किसी एक
मर्मका भेद होनेसे शीघ्रही शरीर का भेद
होजाताहै, क्योंकि आश्रय का नाश होनेसे
आश्रित का भी नाश होजाता है ॥ इन मर्म-
स्थानोंके उपघातसे अनेक घोर व्याधियाँ
उत्पन्न होजाती हैं, इसलिये इन मर्मस्थानों
की वाह्य अभिघात और आन्तरिक वाता-
दिदोषों से विशेषरक्षा करना चाहिये ॥

हृदयाभिघातके उपद्रव ।

तत्र हृद्यभिहेतुकासश्वासबलक्षयकंठशोष
फलोमाकर्षणजिह्वानिर्गममुखतालुशो
पापस्मारोन्मादप्रलापचिन्तनाशादयःस्युः

अर्थ—इन मर्मों में से हृदय में चोट
लगने पर खांसी, श्वास, बलकी क्षीणता,
कंठशोष, ह्योमाकर्षण, जिह्वाका बाहर निक-
लना, मुखशोष, तालुशोष, अपस्मार, उन्माद,
प्रलाप और संज्ञानाश ये उपद्रव होते हैं ॥

शिरमें चोट के उपद्रव ।

शिरस्यभिहेतुमन्यास्तम्भादितचक्षुर्विभ्र

ममोहवेष्टनचेष्टानाशकासश्वासहनुग्रहमू-
कगद्रदत्वनिर्मीलनगण्डस्पन्दनजृम्भण
लालास्रावस्वरहानिवदनजिह्वत्वादीनि
अर्थ—शिरमें चोट लगनेसे मन्यास्तम्भ,
आर्दित, नेत्रविभ्रम, मोह, अंगडाई, चेष्टानाश,
खांसी, श्वास, हनुग्रह, मूकता, गदगदता,
चक्षुनिमीलन (आंखों में झपकीभाना)गण्ड,
स्पन्दन, जंभाई, लालास्राव, स्वरभंगता और
मुखका टेढा पड जाना, ये उपद्रव होते हैं
वस्ति में चोटके उपद्रव ॥

वस्तौ तु वातमूत्रवर्चोनिग्रहवक्षणेमेहनव-
स्तिशूलकुण्डलोदावर्तगुल्मवर्ध्मानिला
प्लीलोपस्तम्भनाभिकुक्षिगुदश्रोणिग्रहा-
दयः ।

अर्थ—वस्ति में चोट लगनेसे अघोत्राणु
मूत्र और विष्टा का विवन्ध, वक्षणशूल,
किण्णशूल- वस्तिशूल, वात कुंडल, उदावर्त,
गुल्म, वातप्लीला, उपस्तम्भ, नाभिग्रह, कु-
क्षिग्रह, गुदग्रह, और श्रोणिग्रह, ये उपद्रव
होते हैं ॥

वाताद्युपसृष्टानां त्वेषां लिङ्गानि चिकित्सि-
ते सक्रियाविधीन्युक्तानि । किन्त्वेतानि
विशेषतोऽनिलाद्राक्षायनि लोहिपित्तक-
फसमृदीरणे हेतु ॥ प्राणमूलञ्च स च वस्ति
साध्यतमः । तस्मान्न वस्ति समं किञ्चित्क-
र्मर्मपरिपालनम् ॥

अर्थ—चिकित्सितस्थान में वातादि दोषों
से संसृष्ट इन मर्मस्थानों के उपद्रवों के
लक्षण और उनकी चिकित्सा-विधिपूर्वक
वर्णन करदी गई है, किन्तु ये तानों मर्म

वायु से अधिकतर रक्षा के योग्य है क्योंकि वायु ही पित्तकफ के उदीर्ण करने का हेतु है । यह प्राणमूल वायु अन्य उपायों की अपेक्षा वास्तिकर्म से अत्यन्त साध्य होती है । इसलिये मर्मों की रक्षाके लिये वरित कर्म से अधिक और कोई उपाय नहीं है । तत्रपढास्थापनस्कन्धान्विमानेद्वौचानुवासनस्कन्धाविहचविहितानुवस्तीनुवुद्ध्या विचार्यमहामर्मपरिपालनार्थप्रयोजयेद्वा तद्व्याधिचिकित्साञ्च ।

अर्थ— इन में से विमानस्थान में छः आस्थापन स्कन्ध और सिद्धिस्थान में दो अनुवासन स्कन्ध वर्णन किये गये हैं । इनका बुद्धि द्वारा अत्यन्त विचार करके महामर्मों की रक्षा के लिये इनका प्रयोग करना चाहिये । यदि इन मर्मों में वेदना होने लगे तो वातव्याधिके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये ।

वातोपसृष्टहृच्चिकित्सा ।

भूपधहृद्युपसृष्टेवातेहिगुचूर्णलवणानामन्यतमचूर्णसंयुक्तमातुलुङ्गस्यरसेनवान्येनवास्नेनहृद्येनवापाययेतस्थिरादिपञ्चमूलरसःसशर्करःपानार्थविल्वादिपञ्चमूलरससिद्धाचपवाग्दृद्रेगविहितञ्चकर्म अर्थ— वात द्वारा हृदय के उपसृष्ट होने पर हिगुचूर्ण या और किसी प्रकारके नमक के साथ पेया बनाकर विजैरे का रस वा और किसी खट्टे द्रव्य का रस डालकर पान करे । शाटिपर्णादि पंचमूलके क्वाथ में शर्करा डालकर पानकरे अथवा विल्वादि पंच-

मूल के काथ में सिद्धकी हुई यवागू पान करे । तथा हृदयरोग में कही हुई चिकित्सा भी हित है ।

वातोपसृष्टशिरकीचिकित्सा ।

मूर्ध्निनुवातोपसृष्टेऽभ्यङ्गस्वेदनोपनाहनस्नेहपाननस्तःकर्मावपीडधूमादीनि । अर्थ— वातोपसृष्ट शिर में अभ्यंग, स्वेदन, उपनाहन, स्नेहपान, नस्यकर्म, अवपीडन और धूमादिकर्म प्रशस्त हैं ॥

वातोपसृष्टवस्तिर्मेचिकित्सा ।

वस्तौतुकुम्भीस्वेदोवर्तयश्च । श्यामादिभिर्गोमूत्रसिद्धो निरूहः ॥ विल्वादिभिः स्वरससिद्धःशरकाशेक्षुदर्भगोधुरकमूलभृतक्षीरैश्च ॥ त्रपुसैर्वाश्वराश्वामीजयवान्दृद्धीकल्कितो निरूहः ॥ पीतदारुकसिद्धतैलानुवासनम् । तैलवकाञ्चसर्पिर्विरेकार्थम् ॥

अर्थ— वातोपसृष्ट वस्ति में कुम्भीस्वेद और वस्तिप्रयोगप्रशस्त हैं । शिग्रुतादि दसद्रव्यों काक्वाथकरके गोमूत्र में मिलाकर निरूहण देना चाहिये । विल्वादि पंचमूल के क्वाथ के साथ सरकंडे की जड़, कुशाकी जड़, ईख की जड़ और गोखरूकी जड़ इन से सिद्ध किया हुआ दूध मिलाकर वस्ति का प्रयोग उत्तम है ॥ अथवा खीरा ककड़ी के धीज, वन अजवायन इनके काथ में ऋद्धि वृद्धि का कल्क डालकर निरूह देये । सरलकाष्ठ डालकर सिद्ध किये हुए तेल की अनुवासन देये ॥ तथा विरेचन करानेके लिये तिलक डालकर सिद्ध किया हुआ घृत हित है ॥

शतावरीगोक्षुरकटुहृतीकण्टकारिकागुडची
पुनर्नवोशीरमधुकादिशारेवालोधुश्रेयसी
कुशकाशमूलकपायसीरचतुर्गुणवलाटुपर्प
भकरराशयोपकुञ्चिकावत्सकत्रपुपैवारु
वीजशितिमारकमधुकवचाशतपुष्पाशुभे
दमदनफलकल्कसिद्धंतैलमृचरवस्तिनि
रुहशुद्धस्निग्धस्विन्नस्यवास्तिशूलमूत्रवि-
कारहरइति ॥

अर्थ—सितावरी, गोखरू, वडी कटेरी, छोटी
कटेरी, गिलोय, साठ, उशीर, मुलहठी,
निसोधकी जड, अनन्तमूल, लोध, गजपी-
पल, कुशाकी जड, कांसकी जड, इन सब
द्रव्यों का काथ, क्याथ से चौगुना दूध तथा
खीरेटी, अडूसा, ऋपमक, धन भजवायन
कालाजीरा, इन्द्रजौ, खीराके बीज, कफडी
के बीज, सितिमारक, मुलहठी, वच, सोंफ
पापाण भेद और मेनफल इन द्रव्यों का
कहक और तेल मिलाकर पाफ करे। पीछे
रोगी को निरूहित, शुद्ध, स्निग्ध और
स्वेदित करके इस तेलकी उत्तर वास्ति देनी
चाहिये इस से वास्तिशूल और मूत्रविकार
दूर होजाते हैं ॥

मर्मप्रकरण का उपसंहार ।

भवतिचात्र ।

हृदिमूर्ध्निचवस्ताचैतृणांभाणाःप्रतिष्ठिताः
तस्मात्तेपांसदायुक्तःकुर्वातपरिपालनम् ॥

अर्थ—हृदय, मूर्द्धा और वास्ति में
मनुष्यों के प्राण रहते हैं। इस लिये युक्ति
पूर्वक इन मर्मों की रक्षा करनी चाहिये ।

आयातवर्जनंनिरत्यंस्वस्थवृत्तानुवर्त्तनम् ॥

उत्पन्नार्त्तिविधातश्चमर्मणांपरिपालनम् ॥

अर्थ—मर्मोंकी रक्षाके लिये नियम-प्रति-
चोदसे वचना, स्वस्थवृत्ति का अनुसरण
करना और उत्पन्न रोगों का नष्ट करना
यें ही उपाय हैं ।

अत ऊर्द्धविकारायेत्रिमर्मायेचिकित्सते ।
नमोक्तामर्मजास्तेपांकांश्चिद्वक्ष्यामिसोप-
धान् ॥

अर्थ—जो जो मर्म संबंधी रोग त्रिमर्माय
चिकित्साप्याय में वर्णन करने से रहगये
है अब उनका चिकित्सा सहित वर्णन
किया जाता है ॥

अपतन्त्रकके लक्षण ।

कुद्धःस्वैःकोपनैर्वायुःस्थनादूर्ध्वमपद्यते ।
पीडयन्हृदयंगत्वाशिरःशरीराचपीडयन् ॥
नमयेच्चाक्षिपेच्चांगान्युच्छासंनिरुणाञ्चि-
च । उच्छसितिसचकृच्छ्रेणस्तब्धासोऽ-
थनिपीलनः ॥ कपोतइवकूजंश्चनिःस-
ज्ञश्चोऽपतन्त्रकः ॥

अर्थ—अपने उदीर्ण होने के कारणों से
वायु कुपित होकर अपने स्थान से ऊपर
को जाती है और हृदय में पहुँचकर हृदय
को अत्यन्त पीडित करती है, सिर और
कनपटी में अत्यन्त वेदना उपस्थित करती
है। अंगों को झुकादेती है और आक्षेपण
करती है, श्वास को रोक देती है अथवा
श्वास कठिनता से आता है। आँख स्तब्ध
होजाती हैं अथवा आँखे झपकी, चली जाती
हैं। कंठ में क्यूतर की गुटरगूँके सदृश
शब्द होने लगता है। वेदोशी छा जाती
है, इसे ही अपतन्त्रक कहते हैं ।

अपतानक के लक्षण ।

वृष्टिसंस्तम्भ्यसंज्ञाच्चहृत्वाकण्ठेनकृजति
हृदिमुक्तेनरःस्वास्थ्यंयातिमोहंवृतेपुनः ।

वायुनादारुणंमाहुरेकेतदपतानकम् ॥

अर्थ—नेत्रों का स्तब्ध होना, बेहोशी होना, कण्ठ में कृमन होना, हृदय से वायु के दूर होने पर स्वस्थता होना, तथा वायुके फिर आवृत होने पर अस्वास्थ्य होना ये सब लक्षण दारुण अपतानक कहें ।
इवसनःकफवाताभ्यांरुद्धस्तस्यविमोचयेत् । तीक्ष्णैःमधमनैःसंज्ञान्तासुमुक्तासु चिन्दति ।

अर्थ—जिस मनुष्य का श्वास कफ और वात से रुक गया हो उस श्वास को तीक्ष्ण मधमन द्वारा निकालने का यत्न करें । श्वास के खुलने पर चेतनी होजाता है ।
परिचंशिश्रुबीजानिविडङ्गचफणिज्झकम्
एतानिसूक्ष्मचूर्णानिदद्याच्छीर्षत्रिरेचनम्

अर्थ—कालीमिरच, सहजने के बीज, वापविडंग, फणिज्झक, इनको महीन पीसकर शीर्ष त्रिरेचन दें ।

तुम्बुरुण्यभयाहिंणुपाँक्करंलवणत्रयम् ॥
यवक्वाथाम्युनापेयंहृत्पाश्वद्यपतन्त्रके ।

अर्थ—धनियाँ, हरड, हींग, पौहकरमूल, सैधानमक, संचरनमक और विडनमक इनके चूर्ण को जीके काथ के साथ पान करने से हृदयशूल, पार्श्वशूल और अपतंत्रक दूर होजाते हैं ॥

हिंम्वल्लवेतसंभ्रुण्डीससौर्वल्लदाडिमम्
पिबेद्वातं कफध्नञ्चकर्महृद्रोगनुद्धितम् ॥

शोधनावस्तयस्तीक्ष्णाहितास्तस्यचकृ-
त्स्नशः । सौर्वल्लभाभ्याव्योपैःसिद्धन्तु
स्याद्भूतंहितम् ॥

अर्थ—हींग, अमलवेद, सोंठ, संचलन मक और अनारका छिलका इनका चूर्ण पान करने से उक्त रोग दूर होजाते हैं, इन में वातकफनाशक और हृद्रोगनाशक क्रिया भी हित है । इन रोगों में शोधनकर्त्ता तीक्ष्णवस्ति पूर्णरति से उपयोगी होती है । तथा संचलनमक हरड और त्रिकुटा इन के साथ सिद्ध किया हुआ घृत भी हित है ।

तन्दारोगकाहेतु ।

मधुरस्निग्धगुर्वम्लसेवनाच्चिन्तनात्प्र-
मात् ॥ शोकाद्भ्याध्यनुपज्ञाच्चवायुनादी-
रितःकफः ॥ यदासौसमवस्कन्धहृदयं
हृदयाभयान । सभावृणोतिज्ञानादींस्त-
दातन्द्रोपजायते ॥

अर्थ....मधुर, स्निग्ध, भारी और खटे पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, चिन्ता करने से परिश्रम से, शोक से, व्याधि के अनुपग से वायु के कारण कफ उदरिणी होकर जब रोगी के हृदय को आवृत कर लेता है तब हृदय के आश्रयभूत ज्ञान आदि को आवृत करलेता है उस समय तन्द्रानामक रोग उत्पन्न होता है ।

तन्द्रा के लक्षण ॥

हृदयेव्याकुलीभावोवाक्चेष्टेन्द्रियगौरव-
म् । मनोबुद्ध्यप्रसादश्चतन्द्रायांलक्षणं
मतम् ॥

अर्थ...हृदय में व्याकुलता, याणी में भारापन, चेष्टा में भारापन और इन्द्रियों में भारापन, मन और बुद्धिकी अप्रसन्नता ये सब तन्द्रा के लक्षण हैं।

तन्द्रा में चिकित्साक्रम ॥

कफघ्नतत्रकर्तव्यशोधनशमनानिच ॥
व्यायामोरक्तमोक्षश्चभोज्यञ्चकटुतिक्त
कम् ॥

अर्थ—तन्द्रारोग में कफनाशक संशोधन तथा रोगों के दुर्बल होनेपर शमन क्रिया करनी चाहिये यदि यह तन्द्रा अथवा रोगों से उत्पन्न न हुई हो तो व्यायाम, रक्तमोक्षण और कटु तिक्त द्रव्यों के साथ भोजन भी हित है ॥

वस्तिरोगों के भेद ॥

मूत्रैकसादंजठरंफृष्टसोत्सङ्गसंक्षयम् ॥
मूत्रातीतोऽनिलाष्टीलावातवस्त्युष्णमाह
तौ ॥ वातकुण्डलिकाग्रन्थिविद्घातोव
स्तिकुण्डलम्प्रयोदशेतमूत्रस्यदोपास्तां
ल्लिगतःशृणु ॥

अर्थ—मूत्रैकसाद, मूत्रजठर, मूत्रकुण्डल, मूत्रोत्सङ्ग, मूत्रसंक्षय, मूत्रातीत, वाताष्टीला, वात वस्ति, उष्णवायु, वातकुण्डलिका, ग्रन्थि, विदघात और वस्ति कुण्डल। ये तेरह मूत्र के विकार हैं। अब इनके लक्षणों का वर्णन करते हैं ॥

मूत्रैकसाद के लक्षण ॥

पित्तकफद्वयंवापिवस्तौसंहन्यतेयदा ॥
मास्तेनतदामूत्ररक्तपीतघनंमुजेत् ॥ स
दाश्चेतसान्द्रंवासर्षैर्वालक्षणैर्धुतम् ॥

मूत्रैकसादं तं विद्वान्पित्तश्लेष्महरं जयेत् ॥

अर्थ...पित्त वा कफ अथवा दोनों पित्त कफ जब वायुके कारण वस्ति में इकट्ठे होजाते हैं तब लाल, पीला और गाढा पेशाव होने लगता है अथवा दाहयुक्त सफेद और गाढा पेशाव होता है अथवा समस्त लक्षणों से युक्त पेशाव होता है ॥ इसमें मूत्रैकसाद कहते हैं इसमें पित्तकफनाशक क्रिया करनी चाहिये।

मूत्रजठरकीसहेतुचिकित्सा ॥

विभारणात्प्रतिहतं वातोदावर्तिनं यदा ॥
पूरयत्युदरं मूत्रं तदा तदनिमित्तं रू ॥ अ-
पक्तिमूत्रविदुसङ्गैस्तन्मूत्रजठरं वेदत् ॥ मूत्र
वैरेचनी तत्र चिकित्सां संप्रयोजयेत् ॥ हि
गुद्विरुचरं चूर्णी त्रिमर्मीये प्रकीर्तितम् ॥ हन्या
न्मूत्रोदरानाहं ध्मापितं गुदमेद्रयोः ॥

अर्थ—मूत्र के उपस्थित वेगको रोकने से मूत्र प्रतिहत होकर जब वायुके कारण उलटा लौटता है तब उदर को पूरण करके मूत्र वहां स्थित होजाता है और बिना कारण ही वेदना होने लगती है ॥ फिर धीरे २ पाचन शक्ति कम होजाती है और मूत्र तथा विष्टाका वियन्ध होजाता है इसे मूत्रजठर कहते हैं ॥ इसमें मूत्र के विरेचन करने वाली चिकित्सा करनी चाहिये। तथा त्रिमर्मीय चिकित्सित अध्यायमें जो द्विरुचर हिंगुचूर्ण वर्णन किया गया है वहभी हित है इसके प्रयोग से मूत्ररोग, उदर रोग, आनाह, अफरा तथा गुदा और छिग के अन्य रोगभी दूर होजाते हैं ॥

ते हैं। इस से वसति और उपस्थ में बड़ी वेदना होता है।

वातकुंडलिका के लक्षण।

गतिसङ्गादुदावृत्तःसमूत्रस्थानमार्गयोः ॥
मूत्रस्याविगुणोवायुर्भग्नव्याधिद्विकुण्डली।
मूत्रंविहन्तिसंस्तम्भभङ्गगौरयवेष्टनैः ॥
तीव्ररुक्मूत्रविट्सङ्घैर्वातकुण्डलिकेतिसा।
अर्थ...वायु विगुण होकर मूत्राशय और मूत्र के मार्ग को रोक देता है, इससे मूत्र ऊपर को फिर चढ़ने लगता है। यह वायु भग्न और व्याधिद्व होकर चक्कर खाजाती है, इससे मूत्राघात उत्पन्न होता है। इस रोग में स्तम्भता, दृढ़ने की सी वेदना, भारा पन, रेंठन, तीव्रशूल, मूत्रविगन्ध और पुरीष विगन्ध ये लक्षण होते हैं। इसे वातकुंडलिका कहते हैं ॥

मूत्रग्रन्थि के लक्षण।

रक्तवातकफाददुष्टं वसतिद्वारेसुदारुणम् ॥
ग्रन्थिकुर्यात्सकृच्छलेणसृजेन्मूत्रं तदावृत्तम् ॥
अश्मरीसमशूलन्तंमूत्रग्रन्थिमचक्षते।

अर्थ...वायु और कफके घुपित होजाने से विगडा हुआ रुधिर वसति के द्वारपर एक दारुण गांठ उत्पन्न करता है ॥ इस गांठसे रुकजाने के कारण मूत्र बड़ी कठिनतासे होता है। इसमें पथरी के समान घोर वेदना होती है। इस रोगको मूत्रग्रन्थि कहते हैं ॥

विट्प्रियात के लक्षण।

रुक्मूर्ध्वलपोर्वातिनोदावृत्तंशुक्यया ॥
मूत्रस्रोतःप्रपथेतविट्समृष्टतदानरः। वि

द्विद्विद्विधातंविनिर्दिशत ॥

अर्थ—रुक्म और दुर्बल मनुष्यके वात के प्रकोप से उल्टा फिरा हुआ विष्टा मूत्रवाही स्रोत पर आक्रमण करेला है। ऐसा होने से विष्टा भिटा हुआ मूत्र कठिनता से निकलने लगता है और इस में विष्टा कीसी दुर्गन्ध आती है ॥ इसरोग को विट्प्रियात कहते हैं ॥

वसतिकुण्डल के लक्षण।

दुताध्वलङ्गनायासैरभीघातात्मपीडनात् ॥
स्वस्थानाद्वसितरुक्मस्यूलसिन्धुत्वात् ॥
गर्भवत् ॥ शूलस्पन्दनदाहार्तोविट्कुण्डुस्रवत्यापि ॥
पीडितःसंसृजेच्चारासंस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ॥
वसतिकुण्डलमाहुस्तघोरशस्त्रविपोपमम् ॥
पवनमवलमायोदुर्निवार्यमबुद्धिभिः।

अर्थ—जल्दी चलनेसे, भ्रमण करनेसे, छलांग मारनेसे, परिश्रम करनेसे, चौट लगनेसे, प्रपीडनसे वसति अपने स्थानसे उलटी फिरकर गर्भ की तरह स्थूल होकर ठहर जाती है ॥ इस से वसति में शूल, स्पन्दन, दाह और वेदना होती है और मूत्र बूद २ टपककर निकलता है। वसति को हाथ से दवाने पर मूत्र की धारा निकलती है परन्तु निकलते समय संस्तम्भन, उद्वेष्टन और बड़ी घोर वेदना होती है। इस रोगको वसतिकुण्डल कहते हैं, या शस्त्र और विष् के समान दारुण रोग है। इस रोग में प्रायः वात की प्रचलता

है । यह रोग निर्वृद्धि वैद्य से अच्छा नहीं होसका है ॥

तस्मिन्पित्तान्वितेदाहःशूलमूत्रविवर्णता
श्लेष्मणागौरवंशोफःस्निग्धमूत्रवर्णसितम्

अर्थ—इन रोगोंमें यदि वायु पित्तान्वित होती है तौ दाह, शूल और मूत्र की विवर्णता होती है ॥ यदि कफान्वित होती है तो वस्ति में भारापन और सूजन, तथा मूत्र में चिकनाई, गाढापन और सफेदाई होती है ॥

श्लेष्मरुद्धाविलोचस्तिःपित्तोदीर्णानसि-
द्धयति ॥ अविश्रान्ताविलःसाध्योचयः

कुण्डलीकृतः ।

अर्थ....जो वस्ति कफ से रुद्ध हो और कुण्डित पित्त से युक्त हो वह असाध्य होती है । परन्तु कुण्डलीकृत वस्ति कफद्वारा रुद्ध न होनेपर भी असाध्य होती है ।

कुण्डलीभूतवस्ति के लक्षण ।

स्पादस्ताकुण्डलीभूतेतृह्मोहःश्वासप्रच
अर्थ—वस्ति के कुण्डलीभूत होनेपर तृषा, मोह और श्वास ये उपद्रव होते हैं ॥

दोषाधिनयमपेक्ष्यतान्मूत्रकृच्छ्रहर्जयेत्
वस्तिपुत्तरवस्तिचसर्वेषामेवयोजयेत् ॥

अर्थ मूत्रसंवेधी इन संपूर्ण रोगों में जिस दोषकी अधिकता हो उसके अनुसार मूत्रकृच्छ्रको दूर करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये । इन सब प्रकार के रोगों में उत्तर वस्ति देना हित है

उत्तरवस्तिप्रचर्षण ।

पुननेत्रंनुहैसंस्यान्गुस्ममौत्तरवस्तिरुम् ।

जातीपुष्पस्यवृन्तेनसमंगोपुच्छसंस्थितम् ॥
रौप्यंवासर्षपछिद्रादिकर्णद्वारागुल्मम् ।

अर्थ—उत्तरवस्ति का नल सुवर्ण का बनाया जाता है इसका मुख चमेडीके फूल के डंठल के समान सूक्ष्म होता है और यह नल गौकी पूंछ के समान बीचमें मोटा होता है, यदि सुवर्ण कान होसके तो चां-दी के ही से काम चलजाता है । इसके मुख का छिद्र सरसों के समान होता है इसकी लम्बाई बारह अंगुल की होती है, तथा इसमें दो कर्णिका हांती हैं ।

उत्तरवस्तिकीमात्राकाममाण ।
तेनाजवस्तिमुक्तेनस्नेहस्यार्धपलंनयेत् ।

यथावयोविशेषेणस्नेहमात्राधिकल्पयत् ॥

अर्थ—दकर की वस्ति से भी उत्तर वस्ति बनाई जाती है । उत्तरवस्ति द्वारा आधा पल स्नेह दिया जाता है । भयवा अवस्था के अनुसार भी स्नेहकी मात्रा घुन वा अधिक होसकी है ॥

उत्तरवस्ति के देनेकी रीति ॥

स्नानस्यशुक्तभक्तस्परसेनपयसापिवा ॥
मृष्टविष्प्रवेगस्यपीठेनानुसमेष्टौ ॥

क्रुजोगुरोपघिष्टस्यदृष्टेमेदृष्टान्विते ॥
शलाक्यान्विप्यग्नियमनिदनात्रजेत् ॥

नतःशोफःप्रमाणेनपुष्पनेत्रंप्रवेत्तयेत् ॥ गुदत्र
मूत्रमार्गेणप्रणयेदनुसोपनीम् ॥

अर्थ—रोगीको स्नान कराके मांसरस वा दूध के साथ भाग का भोजन कराये ॥ फिर मउमूत्र का त्याग करवा के पुटने के समान ऊंच कोमल शासन पर बांधादिता

देवै परन्तु इसमें रोगीको किसी प्रकार क्लेश न होने पावै। फिर चिकित्सक रोगीके लिंगको दृष्ट और घृताभ्यक्त कर के उसके छिद्र में सलाई डालकर मार्ग को देखै कि मार्ग कहाँ तक ठीक है। यदि सलाई बिना रुके चली जाय तो लिंग के समान उस के भीतर वस्ति का नल प्रवेश करदे ॥ इसके प्रवेश करते समय बड़ीही सावधानी का काम है कहीं ऐसा नहो कि हाथ हिलजाय। प्रवेश करते समय इसका मुख लिंग और गुदाके बीच में जो सीवन होती है, उसकी ओर होना चाहिये।

वस्तिर्गातिका वर्णन ॥

हिंस्याद्यतिगतं वस्तिदूनेस्नेहो न गच्छति ॥
अर्थ—अत्यन्त वेगसे प्रेरित की हुई वस्ति अनिष्ट संपादन करती है और अत्यन्त मन्द वेगसे प्रेरित वस्ति उचित स्थान पर नहीं पहुँच सकती है।

सुखं प्रपीड्य निष्कम्पं निष्कम्पेन्नैत्रमेव च ॥
प्रत्यागते द्वितीयं तु तृतीयं च प्रदापयेत् ॥

अनागच्छन्नुपेक्ष्य स्तुरजनी व्युपितस्य च ॥
अर्थ—जिस तरह निष्कम्पता के साथ वस्ति नल प्रवेश किया गया है उसी तरह से पीडन करके निष्कम्पता के साथ निकाल लेना चाहिये। वस्ति के प्रत्यागत होने पर दूसरी और तीसरी वस्ति देखै। जो वस्ति प्रत्यागत न हुई हो, तो एक रात्रि तक उपेक्षा करनी उचित है ॥

प्रत्यागमनका उपाय ।

पिप्पली खल्वणागरधूमापामार्गसर्पपैः ।

वार्ताकुरसनिर्गुण्डीशम्पाकैः ससहाचरैः
मूत्राम्लपिष्टैः सगुडैर्वर्तिकृत्वा प्रवेशयेत् ।
अर्थ—पीपल, संधानमक, धूमता, आंगा के बीज, सरसों, बेंगनका रस, निर्गुण्डी, अमलतास का गूदा और सहचरी इनको गौमूत्र और कांजीके साथ पिसकर गुड मिलाकर बत्ती बनाकर लिंगमें प्रवेश करने से वस्ति प्रत्यागमन करलेती है ॥

वर्तीका आकारादिवर्णन ।

अग्रतु सर्पपाकारापश्चार्द्धमापसम्भिताम् ॥
नेत्रदीर्घाघृताभ्यक्तांसुकुमारामभंगुराम् ॥
नेत्रवन्मूत्रनाड्यांतुपायां वांगुष्ठसम्भिताम् ॥

अर्थ—वर्ती का मुख आगेकी ओर सरसों के समान और नीचे को आधे उरद के बराबर होना चाहिये। यह भी वस्ति नल के समान बारह अंगुल लम्बा बनाई जाती है। यह कोमल हो, टूटी हुई न हो और इसपर धी भी चुपड देना चाहिये। जो वत्ती मूत्रनाडी में होकर प्रविष्ट की जाती है उसका आकार वस्ति के नलके सदृश होता है और जो गुदामार्ग द्वारा प्रविष्ट की जाती है वह हाथके अंगुठके समान होती है।

उत्तरवस्तिमें पथ्यादिवर्णन ॥

स्नेहप्रत्यागते वाभ्यां सानुवासनिको विधिः
परिहारश्च सव्यापत्ससम्पक्वत्तस्य लक्षणः
अर्थ—स्नेहके प्रत्यागत होने पर वही पथ्यादि सेवन करने चाहिये जो अनुवासन में वर्णन किये गये हैं, उत्तर वस्तिमें किसी प्रकार का उपद्रव खडा होजाय तो वही काम करना चाहिये जो अनुवासन संबंधी

उपद्रवोंमें वर्णन कियागया है । सम्यक् प्रदत्त उत्तर वस्ति के लक्षण सम्यक् प्रदत्त अनुवासन वस्ति के सदृश होतेहैं ॥

स्त्रीको उत्तरवस्ति ॥

स्त्रीणां चात्तवकाले तु प्रतिकर्षवदाचरेत् ॥

गर्भाशनासुखं स्नेहं तदादत्ते ह्यपावृता ॥

गर्भयोनिस्तदाशीघ्रं जिते गृह्णाति मारुते ॥

अर्थ.... जो स्त्री को उत्तरवस्ति देनी हो तो ऋतुकाल में देनी चाहिये क्योंकि उस समय योनिगर्भ ग्रहणके योग्य होताहै और उसका मुख खुला रहता है इस लिये स्नेहको मुखपूर्वक ग्रहण कर सकती है । उस समय उत्तर वस्ति के देने से वायुके दूर होजाने के कारण गर्भ भी शीघ्र रहजाताहै ।

वस्तिजेपुविकारेपुयोनिविभ्रंशजेषु च ॥

योनिशूलेषु तीघ्रेषु योनिव्यापत्स्वसृग्दरे ।

अमस्रवति मूत्रे च विन्दुं विन्दुं स्रवत्यापि ॥

विदग्धादुत्तरवस्ति यथास्वीपथसंस्कृतम्

अर्थ—सब प्रकारके वस्ति विकार, योनि विभ्रंशजन्य विकार, तीव्रयोनिशूल, योनिव्यापत्, रक्त प्रदर, मूत्ररोध, और मूत्रके विद्वु विद्वु टपकना । इन सब रोगों में स्त्रियोंको भिन्न २ औषधियों से संस्कार की हुई उत्तर वस्ति देनी चाहिये ॥

स्त्रियों की वस्ति का प्रमाण ॥

पुष्पनेत्रप्रमाणन्तु प्रमदानां दशांगुलम् ॥

मूत्रस्रोतः परीणाहं मुद्गस्रोतोऽनुवाहि च ॥

गर्भमार्गं तु नारीणां विधयं चतुरंगुलम् ।

द्वयंगुलं मूत्रमार्गं तु बालायास्त्वेकमंगुलम् ॥

अर्थ—स्त्रियोंकी उत्तरवस्ति का नल दस

अंगुलका होता है । इसकी स्थूलता मूत्र के स्रोतकी स्थूलता के समान बनवावे ॥

इसकी गति मूत्र के स्रोत के अनुरूपहोती है ॥ नलका छिद्र भगकी वरावर होना चाहिये ॥ स्त्रियोंके गर्भमार्गमें चार अंगुल वस्ति, मूत्रमार्ग में दो अंगुल और घालिका के एक अंगुल लम्बी वस्ति होनी चाहिये ॥

उस्तानायाः शयानायाः सम्यक् सङ्कोच्य सक्थिनी । अधास्याः प्रणयेन्नेत्रमनुबंध गतं मुखम् । द्विस्त्रिश्चतुरितस्त्रेहानहोरात्रेण योजयेत् ॥ वस्तिवस्तौ प्रणीते च वस्तिश्चान्तरा भवेत् ॥ त्रिरात्रं फर्मकुर्वीत स्नेहमात्रां विवर्द्धयेत् । अनेनैव विधानेन फर्मकुर्वीत पुनस्त्यहात् ॥

अर्थ.... स्त्रियों को उत्तरवस्ति देनेके समय चित्त शयन करा देवे, दोनों पांव इफट्टे कर दे फिर योनिमें पाँठ के घाँसे की ओर मुखकरके वस्तिनलको प्रविष्ट करै । एक दिन रातमें दो तीन वा चार बार स्नेह का प्रयोग करे । इसतरह वस्ति के प्रत्यागमन करने पर फिर वस्ति का प्रयोग करे । इस तरह तीन दिन करता रहे परन्तु वस्तिकी मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ा देनी चाहिये फिर तीन दिन ठहर कर इसी तरह से फिर वस्ति देनी चाहिये ॥

शैलकके सहेतु लक्षण ॥

अतः शिरोविकारणां काश्चिद्भेदः भवस्यते ॥ रक्तपित्तानिलादुष्टाः शैलदेशे विमूर्च्छिताः । तत्रिरुग्दाहराणां हिंसां फकुर्वन्तिदारुणम् ॥ सशिरोविषवद्देगी निरुद्ध्या

शुगलंतथा । शंखकोऽग्निनिभःक्षिप्रं वि
नाशयतिमानवम् ॥ जीवेत्यहंचंद्रैपज्यं
प्रत्याख्यायास्यकारयेत् । शिरोविरेक
सेकादिसर्वेषां सर्पनुचयत् ॥

अर्थ—अथ हम सिरके विकारों के कुछ
भेद वर्णन करते हैं । कनपटीमें रक्त पित्त
और वायु दूषित होकर उसजगह तीव्र वेदना
दाह, राग और शोक उत्पन्न करते हैं ।
यह शंखकनाम रोग विप के समान वेगवान्
होताहै और कंठको रोककर अग्निवत्
शीघ्रही मनुष्य को मार डालता है । यदि
रोगी तीन दिवस तक जीता रहै तब यह
कहकर कि रोगी असाध्यहै, चिकित्सा
करे । इस रोगमें शिरोविरेचन, परिपेक
और सब प्रकारकी विसर्पनाशक क्रिया करे ।

अर्द्धावभेदकके सहेतु लक्षण

रुक्षात्यध्यशनात्पूर्ववातावश्यायमैथुनैः।
वेगसन्धारणायासव्यायामैःकुपितोऽनि
लः । केवलःसकफोवाद्दृग्हीस्वाशिरस
स्ततः ॥ मन्याभ्रशंखकर्णाक्षिललाटेर्षे
चवेदनाम् । शस्त्राशनिनिभांकुर्याची
प्रांसोऽर्द्धावभेदकः ॥ नगनंवाथवाश्रो
त्रमतिवृद्धोविनाशयेत्

अर्थ—रुक्षभोजन, अतिभोजन, अध्यशन,
पुरुषेया पवन, ओस, मैथुन, मलमूत्रादि
वेग धारण, परिश्रम और न्यायाम, इनसे
वायुः कुपित होकर श्वयं वा कफके साथ
मिलकर आधे मस्तकमें स्थित होजाती है,
धार मन्या, भ्रकुटी, कनपटी कान और
नेत्र तथा आधे मस्तक तें शस्त्र वा वज्रके

समान तीव्र वेदना उत्पन्न करती है । यह
अर्द्धावभेदक रोग जब बहुत बढ़ जाताहै
तब नेत्र और कानोंको भी दानि पड़ताहै ।

अर्द्धावभेदककी चिकित्सा ॥

चतुःस्नेहोत्तमांमात्रांशिरःकायविरेचनम्
नाडीस्वेदोपनाहादिकुर्यादन्तेऽग्निकर्मच
जीर्णश्च घृतदेयंवास्तिकर्मानुयासनम् ॥ प्र
तिश्यायेशिरोरोगेषांश्चोद्दिष्टचिकित्सितम्
अर्थ....इस अर्द्धावभेदक रोगमें चार
प्रकार के स्नेह की उत्तम मात्राका पान
कराना चाहिये । नाडी स्वेद, उपनाह, अ-
ग्निकर्म, पुराना घृत और अनुवासन वास्ति
कर्म इस रोग में प्रशस्तहैं, तथा प्रतिश्याय
और शिरोरोगमें जो २ चिकित्साएं कही
गई हैं वेभी इस रोगमें करनी चाहिये ॥

सूर्यावर्चके सहेतुलक्षण ॥

सन्धारणाद्यजीर्णाद्यैर्मास्तिष्करक्तमारुतो
दुष्टादुपयतस्तच्चदुष्टताभ्यांविमूर्च्छितम्
सूर्योदयांशुसन्तापाद्दुःखंविष्यन्दतेश
नैः ॥ ततोदिनेशिरःशूलंदिनवृद्ध्याचव
र्द्धते । दिनक्षयेचतदस्त्यानामस्तिष्केसं
प्रशाम्यति ॥ सूर्यावर्तःसतप्रस्यात्सर्पि
रौत्तरभक्तिकम्

अर्थ—मल मूत्रादि वेगोंके सन्धारण और
अजीर्णादि कारणोंसे रक्त और वायु दूषित
होकर मस्तकको दूषित करदेतेहैं । इसतरह
रक्त वातसे दूषित मस्तकमें सूर्यकी किरणों
के तापसे ज्यों २ दिन चढ़ताहै मस्तक में
वेदना बढ़ती चलीजाती है, तथा दुपहर
पाँछे ज्यों २ दिन घटता है वेदना भी

घटती चलीजाती है ॥ इस रोग को सूर्यावर्त्त कहते हैं, इसमें भोजन के पीछे घृतपान करना हित है ॥

सूर्यावर्त्तमें उपाय ॥

शिरःकायविरेकौ च मूर्ध्ना च स्नेहधारणम् ।

जांगलैरुपनाहश्च घृतक्षीरैश्च सेचनम् ॥

घाहीतत्तिरिलावादिशृतक्षीरोत्थितं घृतम् ।

नावनं जीवनीयाष्टगुणक्षीरोपसाधितम् ॥

अर्थ—इस रोग में शिरो विरेचन, काय विरेचन, मस्तकमें तैल धारण, जांगल मांसका उपनाह, तथा घृत और दुग्ध से सेचन करना हित है । मोर, तातर, लवा

आदि जांगल पक्षियोंके मांस डालकर औ-

टाये हुए दूध का घी, जीवनीय गणोक्त द्र-

व्योंका कल्क और अष्टगुणा दूध मिलाकर

पाक करै । इस घृतकीनस्य लेने से यह रोग

जाता रहता है ।

अनन्तवात के लक्षण ॥

उपवासातिशोकातिरुक्षशीताल्पभोजनेः ।

दुष्टादोषास्त्रयीमन्यापश्चाद्घाटेतुवेदनाम् ।

तीव्रांकुर्वन्ति सा चाक्षिभ्रूशंखेव्यवतिष्ठिते ।

स्यन्दनं गण्डपाश्वर्येनैर्रोगं हनुग्रहम् ॥

सोऽनन्तवातस्तंहन्यात् शिरोर्कावर्त्तनाशनैः ।

अर्थ—उपवास करना, अत्यन्त शोक

करना, अत्यन्त रुखा और शीतल भोजन

करना वा अत्यल्प भोजन करना । इन

बातोंसे तीनों दोष कुपित होकर मन्या के

पिछले भाग में अत्यन्त तीव्र वेदना उत्पन्न

करते हैं, और यह वेदना आंख भ्रुकुटी और कनपटी में स्थित होकर गण्डस्थल

के इधर उधर स्पन्दन, नेत्ररोग और हनु-

ग्रह को उत्पन्न करता है । इस रोग को

अनन्तवात कहते हैं इसमें उदावर्त्तना-

शिनी क्रिया हित है ।

शिरःकम्प के लक्षण ।

वातोरुशादिभिः क्रुद्धः शिरःकम्पमुदीरयेत् ।

स्नेहस्वेदातिवातघ्नं शस्तं नस्यश्च तर्पणं ।

अर्थ—रुक्षादि सेवनसे क्रुद्ध हुई वात

शिरःकम्पको उत्पन्न करता है इसमें वात-

नाशक स्नेह, स्वेद तथा नस्य और तर्पण

हित है ॥

शिरोरोग में नस्यको प्रधानता

नस्यकर्मचकुर्वीत शिरोरोगे पुसूक्ष्मवित् ॥

द्वारं हि शिरसो नासातेन तद्व्याप्य हन्ति तान् ।

अर्थ—सब प्रकार के शिरोरोगोंमें नस्य-

कर्म करना हित है क्योंकि नासिका सिर

का द्वार है, इस द्वारसे प्रेरित औषध मस्त-

क में पहुँचकर उसके सब रोगोंको नष्ट

करदेती है ॥

नस्यकर्मके भेद ।

नावनञ्चापपीडश्च ध्यापनं धूमएव च ॥

प्रतिमर्षश्चाधिज्ञेयं नस्यः कर्मतुपञ्चधा ॥

अर्थ—नावन, अवपीड, ध्यापन, धूम

और प्रतिमर्ष । ये पाँच नस्यके भेद हैं ।

नावनादि के लक्षण

स्नेहनः शोधनश्चैव द्विविधं नावनं स्मृतम् ।
शोधनः स्तम्भनश्च स्यादवपीडो द्विधामतम् ।
चूर्णस्याद्ध्यापनं नायदेहस्रोतो विशोध-
नम् ॥ विज्ञेयस्त्रिविधो धूमः प्रागुक्तः शमना

दिकः । प्रतिमर्षो भवेत्स्नेहो निर्दोष उभय

याथकृत् ॥

अर्थ—नावन के स्नेह और शोधन दो-भेद हैं । शोधन और स्तम्भन ये दो भेद अवपीडके हैं घ्मापन नस्य उसे कहते हैं कि इसका चूर्ण दो मुख के नलमें भर कर फूक मार कर नाक में पहुंचाया जाता है इस से देह के सम्पूर्ण स्रोत शुद्ध हो जाते हैं । घूमके शमनादिक तीन भेदों का वर्णन पहिलेहो चुका है। प्रतिमर्ष में स्नेहका प्रयोग होता है, यह संशोधन और संशमन दोनों काम करता है और निर्दोष भी है ॥

नस्य के कर्म ।

एवं तद्रेचनं कर्म तर्पणं शमनं त्रिधा ।

अर्थ—इसी तरह रेचन, तर्पण और शमन ये नस्य के तीन कर्म हैं ।

रेचन साध्यरोग ।

स्तम्भसुप्तिगुरुत्वायाः श्लेष्मिकायो शिरोग
दाः ॥ शिरसो रेचनं तेषु नस्तः कर्ममशस्यते ॥

अर्थ—मस्तक की स्तम्भता, सुप्ति, भार-पन तथा अन्य कफजन्य रोगोंमें रेचन कर्म हित है ॥

तर्पणसाध्यरोग ।

ये च वातात्मकारोगाः शिरःकम्पादि ताद
यः ॥ शिरसस्तर्पणं तेषु नस्तः कर्ममशस्यते
अर्थ—जो शिरःकम्प और अर्दित से आदि लेकर वातात्मक रोगोंह उनमें तर्पण नस्य प्रधान है ।

शमनसाध्यरोग ॥

रक्तपित्तादिदोषेषु शमनं नस्यामिष्यते ॥

अर्थ....रक्तपित्तादि दोषों में शमननस्य हितकारी होती है ॥

ध्मापनं धूमपानञ्च यथायोग्येषु शस्यते ॥
दोषादिकं समीक्ष्यैव भिषक् सम्यक् चकारयेत् ॥

अर्थ—दोषादिक की परीक्षा करके यथायोग्य घ्मापन और धूमपान का प्रयोग करना चाहिये ॥

विरेचनद्रव्य ।

फलादिभेषजमोक्तं शिरसो यद्विरेचनम् ॥

तच्चूर्णकल्पयेत्तत्र पचेत्स्नेहविरेचनम् ॥

अर्थ—पहिले जो शिरोविरेचन के लिये फलादि द्रव्य वर्णन-कियोगये हैं उन्हीं द्रव्यों के साथ स्नेह को सिद्ध करके शिरोविरेचन देना चाहिये

तर्पणद्रव्य ॥

यदुक्तं मधुरस्कन्धे भेषजं तेन तर्पणम् ॥

साधयित्वा भिषक्यस्नेहं नस्तः कुर्याद्विधानवित् ॥

अर्थ—मधुरस्कन्ध में जिन द्रव्यों का वर्णन किया गया है उन द्रव्यों के साथ स्नेह सिद्ध करके तर्पण देवे ॥

तर्पणकीरिति ॥

माकसूर्ये मध्यसूर्ये वा प्राक्कृता वश्यकरस्य च
उत्तानस्य शयानस्य शयने वा स्वास्तुते मुख
प्रलम्बशिरसः किञ्चित्किञ्चित्पादोन्नत
स्य च ॥ दधान्नासापुटे स्नेहं तर्पणं बुद्धिमा
नुभषक् ।

अर्थ—प्रातःकाल वा मध्याह्न के समय

मलमूत्रादि आवश्यकीय कर्मोंके पीछे रोगी को सुखदाई शय्यापर आराम से सीधा शयन कराके सिर कुछ नीचा करा देवै और पांशों को सुकडवा देवै ॥ इस तरह शयन कराके नासिका के छिद्र में स्नेहिक तर्पण भर देवै ।

अनवाकृशिरसोनस्यंनशिरःप्रातिपद्यते ।
अत्यवाकृशिरसोनस्यंमस्तुल्लङ्घ्यतिष्ठते ॥

अर्थ....विना नीचा सिर किये नस्य देने से यह सिर में नही पहुंचती है और अत्यन्त नीचा सिर करके देने से भेजेमें पहुंचजाती है अतएवशयानस्यशुद्धार्थस्वेदयेच्छिरः संस्वेदनासासुन्नाम्यवामेनाह्युष्टपर्वणा हस्तेनदक्षिणेनाथकुर्पाडुभयतः समम् ॥

प्रणाल्यापिचुनावपिनस्तःस्नेहंयथाविधि कृतेचस्वेदयेद्भ्यःआकर्षेच्चपुनः पुनः। तं स्नेहंश्लेष्मणासाकृतथास्नेहोनतिष्ठाति।

अर्थ—इस लिये रोगी को शयन करके मस्तक की शुद्धि के लिये प्रथम सिर को स्वेदित करै पीछे बांये अंगूठे के पोरु से नासिकाके पुटोंको उठाकर दोनोंको समान भावमें करके नलके से वा रुईके फोए से विधिपूर्वक नस्यकर्म करै । इस तरह नस्य कर्म करके फिर स्वेदन देवै । ऐसा करनेसे स्नेह कफके साथ बाहर निकल आवेगा मस्तक के भीतर न रह सकेगा ॥

स्वेदनोत्कलोशितः श्लेष्मानस्तः कर्मण्युपस्थिते । भूयःस्नेहस्यशैथ्येनगिरसि स्त्यापयतेतवः । श्रोत्रमन्यागलाघेषुविकासायसकल्पयेत् ॥

अथ—मस्तक का कफस्वेदन से उच्छिद्र होजाता है परन्तु नस्यकर्म के स्नेह की शीतलता से फिर जमजाताहै । इससे कान मन्या और कंठ आदि में विकार उत्पन्न होजाते हैं ॥

ततोऽनस्तःकृतेधूमंपिवेतृकफविनाशनम् ।
हितान्महुद्निवातोष्णसेवीस्यान्निहते-

न्द्रियः ॥

अर्थ—तब नस्यकर्म करने के पीछे कफनाशक धूमपान करै, पथ्य अन्न का सेवन, निर्वात स्थान में वास और उष्णसेवन करै तथा जितेन्द्रियतासे रहै ।

प्रध्मापन विधि ।

विधिरेपोऽवर्षादस्यकार्यःप्रध्मापनस्यतु।
तत्पदंयुत्पानाब्द्याधमेच्चूर्णंशुभ्रैरननु ॥

अर्थ—यह ऊपर लिखा हुई विधि अवर्षापीडनकी कही गई है । छःअंगुलकी नली में नस्य का चूर्ण भरकर ढ़क मारने से जो चूर्ण मस्तक में पहुंचाया जाता है वह प्रध्मापन नस्य है ।

शिरोविरेचन के पदचारक्रम ।

विरिक्तशिरसंतूष्णपायपित्वाभ्युभोजय-
त् । लघुभिन्वविरुद्धंपनिवातस्यमनन्द्रि-

तम् ॥

अर्थ....शिरोविरेचन के पीछे रोगी को गरम जल पान कराके तीनों दोंशों में भविरुद्ध उष्णभोजन कराके निवात स्थान में बैठवै परन्तु नींद न लेने देवै ।

विरिक्तशुद्धादोपस्यकोपनंनस्यमेवेने । स दोषोविचरंस्तप्रकरोतिस्वान्वादान्बहन् ॥

दिकः । प्रतिमर्षो भवेत्स्नेहो निर्दोष उभ

यायकृत् ॥

अर्थ—नाशन के स्नेह और शोधन दो भेद हैं । शोधन और स्तम्भन ये दो भेद अवपीडके हैं घ्मापन नस्य उसे कहते हैं कि इसका चूर्ण दो मुख के नलमें भर कर फूक मार कर नाक में पहुंचाया जाता है इस से देह के सम्पूर्ण स्रोत शुद्ध हो जाते हैं । घूमके शमनादिक तीन भेदों का वर्णन पहिलेही चुका है। प्रतिमर्ष में स्नेहका प्रयोग होता है, यह संशोधन और संशमन दोनों काम करता है और निर्दोष भी है ॥

नस्य के कर्म ।

एवं तद्रेचनं कर्म तर्पणं शमनी त्रया ।

अर्थ—इसी तरह रेचन, तर्पण और शमन ये नस्य के तीन कर्म हैं ।

रेचन साध्यरोग ।

स्तम्भसुप्तिगुहत्वायाः श्लैष्मिकायेशिरोग
दाः ॥ शिरसो रेचनं तेषु नस्तः कर्मप्रश-
स्यते ॥

अर्थ—मस्तक की स्तम्भता, सुप्ति, भारापन तथा अन्य कफजन्य रोगोंमें रेचन कर्म हित है ॥

तर्पण साध्यरोग ।

ये च वातात्मकारोगाः शिरःकम्पादि ताद-
यः ॥ शिरसस्तर्पणं तेषु नस्तः कर्मप्रशस्यते
अर्थ—जो शिरःकम्प और अर्दित से आदि लेकर वातात्मक रोग है उनमें तर्पण नस्य प्रथम है ।

शमन साध्यरोग ॥

रक्तपित्तादि दोषेषु शमनं नस्यामिष्यते ॥

अर्थ.... रक्तपित्तादि दोषों में शमन नस्य हितकारी होती है ॥

घ्मापनं घूमपानञ्च यथायोग्येषु शस्यते ॥
दोषादिकं समीक्ष्यैव भिषक्सम्पृक्चकारयेत्

अर्थ—दोषादिक की परीक्षा करके यथायोग्य घ्मापन और घूमपान का प्रयोग करना चाहिये ॥

विरेचनद्रव्य ।

फलादिभेपजं मोक्षं शिरसो यद्विरेचनम् ॥

तच्चूर्णकल्पयेत्तत्र पचेत्स्नेहविरेचनम् ॥

अर्थ—पहिले जो शिरोविरेचन के लिये फलादि द्रव्य वर्णन किया गया है उन्हीं द्रव्यों के साथ स्नेह को सिद्ध करके शिरोविरेचन देना चाहिये

तर्पणद्रव्य ॥

यदुक्तं मधुरस्कन्धभेपजं तेन तर्पणम् ॥

साधयित्वा भिषक् स्नेहं नस्तः कुर्याद्विधा-
नवित् ॥

अर्थ—मधुरस्कन्ध में जिन द्रव्यों का वर्णन किया गया है उन द्रव्यों के साथ स्नेह सिद्ध करके तर्पण देवे ॥

तर्पणकी रीति ॥

भाकसूर्ये मध्यसूर्ये वा प्राक्कृतावश्यकत्यच-
उत्तानस्पशयानस्पशयने वा स्वास्तृते सुस्तम्भ
मलम्बशिरसः किञ्चित्किञ्चित्पादोन्नत-
स्य च ॥ दद्यान्नासापुटे स्नेहं तर्पणं बुद्धिमा-
नाभिपक् ।

अर्थ—प्रातःकाल वा मध्याह्न के समय

मलमूत्रादि आवश्यकीय कर्मोंके पीछे रोगी को सुखदाई शय्यापर आराम से सीधा शयन कराके सिर कुछ नीचा करा देवै और पांशों को सुकडवा देवै ॥ इस तरह शयन कराके नासिका के छिद्र में स्नेहिक तर्पण भर देवै ।

अनवाक्शिरसोनस्यंनशिरःप्रतिपद्यते ।
अत्यवाक्शिरसोनस्यंमस्तुल्लङ्घेचमिच्छते॥

अर्थ.....विना नीचा सिर किये नस्य देने से यह सिर में नहीं पहुंचती है और अत्यन्त नीचा सिर करके देने से भेजेमें पहुंचजाती है अतएवशयानस्यशुद्धार्थस्वेदयेच्छिरः संस्वेधनासामुन्नाम्यवामेनाङ्गुष्ठपर्वणा हस्तेनदक्षिणेनाथकुर्पादुभयतः समम् ॥

प्रणाल्यापिचुनावापिनस्तःस्नेहंयथाविधि कृतेचस्वेदयेद्भूयआकर्षेच्चपुनः पुनः। तं स्नेहंश्लेष्मणासाकृतयास्नेहोनतिष्ठति।

अर्थ—इस लिये रोगी को शयन कराके मस्तक की शुद्धि के लिये प्रथम सिर को स्वेदित करै पीछे बाये अंगूठे के पोरुए से नासिकाके पुटोंको उठाकर दोनोंको समान भावमें करके नलके से वा रुईके फोए से त्रिधिपूर्वक नस्यकर्म करै । इस तरह नस्य कर्म करके फिर स्वेदन देवै । ऐसा करनेसे स्नेह कफके साथ बाहर निकल आवेगा मस्तक के भीतर न रह सकेगा ॥

स्वेदनोत्क्लेशितः श्लेष्मानस्तः कर्मण्यु पस्थिते । भूयःस्नेहस्यशैत्येनशिरसि स्त्यायतेततः । श्रोत्रमन्यागलाद्येषुविका रायसकल्प्यते॥

अथ—मस्तक का कफस्वेदन से उच्छिष्ट होजाता है परन्तु नस्यकर्म के स्नेह की शीतलता से फिर जमजाता है । इससे कान मन्या और कंठ आदि में विकार उत्पन्न होजाते हैं ॥

ततो नस्तःकृतेधूमं पिवेत्कफविनाशनम् ।
हितान्नभुङ्निवातोष्णसेवास्याग्निहतेन्द्रियः ॥

अर्थ—तब नस्यकर्म करने के पीछे कफनाशक धूमपान करै, पथ्य अन्न का सेवन, निर्वात स्थान में वास और उष्णसेवन करै तथा जितेन्द्रियतासे रहै ।

प्रध्मापन विधि ।

विधिरेपोऽवपीडस्यकार्यःप्रध्मापनस्यतु तत्पदंगुल्यानाब्ज्याधमेच्चूर्णमुत्खेनतु ॥

अर्थ—यह ऊपर लिखी हुई विधि अवपीडनकी कही गई है । छःअंगुलकी नली में नस्य का चूर्ण भरकर ढूक मारने से जो चूर्ण मस्तक में पहुंचाया जाता है वह प्रध्मापन नस्य है ।

शिरोविरेचन के पञ्चात्कर्म ।

विरिक्तशिरसंतूष्णपायायित्वाम्बुभोजयेत् । लघुत्रिष्वविरुद्धश्चनिवातस्थमतन्द्रितम् ॥

अर्थ.....शिरोविरेचन के पीछे रोगी को गरम जल पान कराके तीनों दोशों से अतिरुद्ध लघुभोजन कराके निवात स्थान में बैठावे परन्तु नाँद न छेने देवै ।

विरिक्तशुद्धौदोपस्यकोपनंयस्यसेवते । स दोषोविचरंस्तत्रकरोतिस्वान्गदान्बहून् ॥

वर्ण, हृष्य, तथा शरीर में कोमलता और चिकनाई ये सब शीघ्र ही बढ़ते हैं ।

वस्तियोंकेगुण ॥

अनुवासनानिरूहश्चोत्तरवस्तिश्चसत्रिविधः ॥ शाखावातातार्तानांसकुञ्चितस्तन्व्य भग्नरुग्णानाम् । चिट्सङ्गाध्मानारुचिपरिकर्तृरुगादिपुचशस्तः ॥

अर्थ—अनुवासन, निरूहण और उत्तर में तीन प्रकार की वस्तियां होती हैं । वस्ति प्रयोग शाखागत वात, गात्रसंकोच, स्तम्भता, भग्नता, वेदना, मलविकण्ड, आत्मान अरुचि और परिकर्तिका आदि रोगों में हितकारी है ।

उष्णतार्तानांशीतान्शीतार्तानां तथा सुखोष्णान्ध । तथोग्रैपथयुक्तान्वस्तीन्सर्वे अधिनियुञ्जयत् ॥

अर्थ—उष्णतासे पीड़ित मनुष्योंको शीतल वस्ति और शीत से पीड़ितों को सुखोष्ण वस्ति हितकर है । उपयुक्त औषधियों से संस्कार की हुई वस्ति सर्वत्र देनी चाहिये ॥

वृंहणवस्तिके अयोग्यरोगी ।

वस्तीन्वृंहणीयानदद्याद्वाधिपुविशोषनीमेषु । मेदस्विनोविशोध्योयचनराः कुष्ठमेहार्ताः ॥

अर्थ—शोधन के योग्य व्याधियों में वृंहणवस्ति नहीं दी जाती है । जो मेदस्वी वगन विरेचन के योग्य तथा कुष्ठरोगी और प्रमेही हैं उनको आस्थापन नहीं दी जाती है ।

संशोधनवस्तिके अयोग्यव्यक्ति । । नर्पानक्षतदुर्बलभ्रूँच्छितकृशशुष्कदेहाना

म् । युञ्ज्याद्विशोधनीयान्दोषनिवद्धायुषोयैच ॥

अर्थ—क्षीणरोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, मूर्च्छाग्रस्त, कृश, शुष्क देहवालों को और जिन के दोष आयु से निवद्ध है उन को संशोधन वस्ति नहीं देनी चाहिये ॥

वाजीकरणेऽसृक्पित्तयोश्चमधुघृतपयैषु ताः । सर्वेशस्ताःसतैलमूत्रारनाललवणश्वकफवाते ॥ युञ्ज्याद्द्रव्याणिवस्ति प्वम्लंमूत्रंपयःसुराक्वाथम् । अविरोधाद्वातूनारसयोनित्वाच्चजलमुष्णम् ॥

अर्थ—वाजीकरण के योग्य रोगों में और रक्त पित्त में शहत, घी और दूध की वस्ति देनी चाहिये । और कफवात में तैल, कांजी और सेंधेनमक की वस्ति देनी चाहिये । वस्ति में कांजी, गोमूत्र, दूध, मदिरा और क्वाथ ये सब मिलाने चाहिये परन्तु इन द्रव्यों में से वे द्रव्य देनी चाहिये जो रोगी की धातु से आविष्ट हों ॥ तथा जल सम्पूर्ण द्रव्योंकी योनि अर्थात् उत्पत्ति का कारण है इस से गरम करके जल देना चाहिये ॥

सुरदारुशताहैलाकुष्ठमधुकापिप्पलीमधुस्नेहाः । ऊर्दानुलोमभागानिसर्पपाशफेरालवणम् ॥ आदापोवस्तीनामतः प्रयोज्यानिषेपुयानिस्त्युः ॥

अर्थ—देवदारु, सोंफ, इलायची, कूठ, मुलहठी, पीपल, स्नेह, धमनकारक द्रव्य, विरेचनिक द्रव्य, सरसों, शर्करा और सेंधानमक इन सब द्रव्यों को घोटकर वस्ति

में डालना चाहिये परन्तु इस बातपर ध्यान रहे कि जिससमय जौनसी डालनीहो वही डालनी चाहिये ॥

युक्तानिसद्वकपायैस्तदुत्तरतःप्रवक्ष्यन्ते ।
चिरजातकठिनबलिपुण्याधिपुतीक्ष्णान्नि
पर्ययेचमृदून । समतिवापकपाथान् युञ्ज
त्यनुवासननिरुहान् ।

अर्थ—श्व कपायोपयोगी वस्तिद्रव्यों का वर्णन करते हैं । जोरोग बहुत पुराने कठिन और बलान् हैं उनमें तीक्ष्ण द्रव्यों से युक्त और तीक्ष्ण कपायों से युक्त अनुवासन वा निरुहण दें । और जो रोग इनसे विपरीत है अर्थात् नये साधारण और दुर्बल हैं उनमें मृदु द्रव्योंकी अनुवासन और निरुहण देनी चाहिये ॥

अर्द्धश्लोकैरतःसिद्धान्नानान्याधिपुवर्ग
शः ॥ वस्तीन्वीर्यसमैर्भागैर्यथार्हानिह
तान्शृणु ॥

अर्थ....भिन्न भिन्न व्याधियोंमें लाभकारी सम्पूर्ण वस्तियां यथावीर्य और यथाभाग आधे आधे श्लोकोंमें नीचे लिखी जाती हैं, उन्हें ध्यानसे श्रवण करो ॥

वातनाशकप्रयोग ॥

वित्वाग्निमन्यदयोनाकाःकाशमर्यःपाट
लिस्तथा ॥ शालपर्णापृश्निपर्णावृहत्यौ
वर्षमानकः । यवाःकुलत्पाःकोलास्थि
स्थिराचेतित्रयेऽनिलो ॥ शस्यन्तेसचतुः
स्नेहाःपिशितस्परसान्विताः ॥

अर्थ—(१) विल्व, भरती, श्योनाक, खमारी और पाटला, (२) शालपर्णी,

पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी और भरंडकी जड़ (६) जौ, कुलथी, बेरकी गुठली और शालिपर्णी । इन तीन वर्गों के भिन्न ९ कपायों में चारों प्रकार के स्नेह और मांसरस डालकर वस्ति देनसे वातरोग शान्त हो जाति है ।

पित्तनाशक प्रयोग ।

नलबञ्जुलवानीरशतपत्राणिशेवळम् ॥

मज्जिप्राशारिवानन्तापयस्यामधुषट्टिका
चन्दनपद्मकोशीरन्तुद्भ्रषपैचिकेप्रयः ॥

ससर्कराक्षौद्रघृताःसक्षीरावस्तयोहिताः

अर्थ....[१] नरसल की जड़, जलवेत, वेत, पद्मकमल, और शैवाल, [२] मजीठ, सारिवा, अनन्तपल, क्षीरकाकोली, और गुलहटी, (३) रक्तचन्दन, पभाज, खस, और पुन्नाग । इन तीन भिन्न भिन्न वर्गों के कपाय चीनी, घी, शहत, और दूध के साथ मिलाकर वस्तिद्वारा प्रयोग करने से पित्तजरोगों को दूरकरते हैं ॥

कफनाशकप्रयोग ।

अर्कस्तथैवचालार्कपकाष्टीलापुनर्नवा ॥

हरिद्रात्रिफलासुस्तंपातदारुकुट्टशठम् ।

पिप्पलयःचित्रकश्चेतित्रयस्तेऽप्यमरोग

णाम् ॥ सक्षारक्षौद्रगोमूत्रानान्तिस्नेहा

न्विताहिताः ॥

अर्थ—[१] सफेद आक, लाल आक, वक वृक्ष और सांठ, [२] हल्दी, त्रिफला, मोथा, दारुहल्दी, और केवटी मोथा,

[३] पीपल और चीते की जड़ । इन तीन भिन्न २ वर्गों का कपाय जवाखार, शहत, गोमूत्र और धोंडे से स्नेह के

वर्ण, हर्ष, तथा शरीर में कोमलता और चिकनाई ये सब शीघ्र ही बढ़ते हैं ।

वस्तियोंकेगुण ॥

अनुवासननिरूहश्चोत्तरवस्तिश्चसत्रिविधः ॥ शाखावातार्तानांसकुञ्चितस्तन्वभग्नरुणानाम् । विट्सङ्गाध्मानारुचिपरिकर्तरुगादिपुत्रशस्तः ॥

अर्थ—अनुवासन, निरूहण और उत्तर ये तीन प्रकार की वस्तियाँ होती हैं । वस्ति प्रयोग शाखागत वात, गात्रसंकोच, स्तम्भता, भग्नता, वेदना, मलविबन्ध, आम्भान अरुचि और परिकर्तिका आदि रोगों में हितकारी है ।

उष्णार्तानांशीतानशीतार्तानांतथासुखोष्णांश्च । तयोग्यौपधयुक्तान्वस्तीन्सर्वत्रघिनियुज्यत् ॥

अर्थ—उष्णतासे पीड़ित मनुष्योंकोशीतल वस्ति और शीत से पीड़ितों को सुखोष्ण वस्ति हितकर है । उपयुक्त औपधियों से संस्कार की हुई वस्ति सर्वत्र देनी चाहिये ॥

घृहणवस्तिके अयोग्यरोगी ।

वस्तीन्घृहणीयान्दद्याद्घाधिपुविशोधनीषेपु । मेदस्विनोविशोष्यायेचनराःकुष्ठेयदार्ताः ॥

अर्थ—शोधन के योग्य व्याधियों में घृहणवस्ति नहीं दी जाती है । जो मेदस्वी यमन विरेचन के योग्य तथा कुष्ठरोगी और प्रमेही हैं उनको आस्थापन नहीं दी जाती है ।

संशोधनवस्तिकेअयोग्यव्यक्ति ।

नशीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कदेहाना

म् । युञ्ज्याद्विशोधनीयान्दोपनिबद्धायुषोयेच ॥

अर्थ—क्षीणरोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, मूर्च्छाप्रस्त, कृश, शुष्क देहवालों को और जिन के दोष आयु से निबद्ध है उन को संशोधन वस्ति नहीं देनी चाहिये ॥

वाजीकरणेऽसृक्पित्तयोश्चमधुघृतपयोयुताः । सर्वेशस्ताःसतैलमूत्रारनाललवणश्चकफवाते ॥ युञ्ज्याद्द्व्यधिणवस्ति

ष्वम्लमूत्रंपयःसुराकाथम् । अविरोधाद्वातूनारसयोऽनित्वाच्चजलमुष्णम् ॥

अर्थ—वाजीकरण के योग्य रोगों में और रक्त पित्त में शहत, घी और दूध की वस्ति देनी चाहिये । और कफवात में तैल, काजी और सेधेनमक की वस्ति देनी चाहिये । वस्ति में काजी, गोमूत्र, दूध, मदिरा और काथ ये सब मिलाने चाहिये परन्तु इन द्रव्यों में से वे द्रव्य देनी चाहिये जो रोगी की धातु से अभिरुद्ध हों ॥ तथा जल सम्पूर्ण द्रव्योंकी योनि अर्थात् उत्पात्ति का कारण है इस से गरम करके जल देना चाहिये ॥

सुरदारुशताह्लकुकुष्ठमधुकपिप्पलीमधुस्नेहाः । ऊर्दानुलोमभागानिसर्षपाःशर्करालवणम् ॥ आदापोवस्तीनामतः प्रयोज्यानिपेपुयानिस्युः ॥

अर्थ—देवदारु, सोंफ, इलायची, कूठ, मुलहठी, पीपल, स्नेह, यमनकारक द्रव्य, विरेचनिक द्रव्य, सरसों, शर्करा और तैल धानमक इन सब द्रव्यों को घोटकर वस्ति

में डालना चाहिये परन्तु इस बातपर ध्यान रहे कि जिससमय जौनसी डालनीहो वही डालनी चाहिये ॥

युक्तानिसहकपायैस्तदुत्तरतःप्रवक्ष्यन्ते ।
चिरजातकठिनबलिपुण्याधिपुतीक्ष्णान्वि
पर्ययेचमृदून । समतिवापकपायान्मुञ्ज
त्यनुवासननिरूहान् ।

अर्थ—अथ कपायोपयोगी वस्तिद्रव्यों का वर्णन करते हैं । आरोग्य बहुत पुराने कठिन और बलगान् हैं उनमें तीक्ष्ण द्रव्यों से युक्त और तीक्ष्ण कपायों से युक्त अनुवासन वां निरूहण दें। और जो रोग इनसे विपरीत है अर्थात् नये साधारण और दुर्बल हैं उनमें मृदु द्रव्योंकी अनुवासन और निरूहण देनी चाहिये ॥

अर्द्धद्वलोकैरतःसिद्धाभ्रानान्याधिपुवर्ग
शः ॥ वस्तीन्वीर्यसमैर्भागैर्यथाहानिह
तान्मृशु ॥

अर्थ....भिन्न भिन्न व्याधियोंमें लाभकारी सम्पूर्ण वस्तियों यथावीर्य और यथाभाग भाधे भाधे श्लोकोमें नीचे लिखी जाती हैं, उन्हें ध्यानसे श्रवण करो ॥

वातनाशकप्रयोग ॥

वित्वाग्निमन्थशोनाकाःकाशमर्षःपाट
लिस्तया ॥ शालपर्णापृश्निपर्णाट्टहृत्पौ
वर्षमानकः । यवाःकुलत्याःकोलास्थि
स्तिराचेतित्रपेऽनिलो ॥ शस्यन्तेसचयुः
स्नेहाःपिशितस्परसान्विताः ॥

अर्थ—(१) विल्व, अरुनी, श्योनाक, तिनारी और पाटला, (२) शालपर्णी,

पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी और भरंडकी जड़ (६) जौ, कुलथी, बेरकी गुठली और शालिपर्णी । इन तीन वर्गों के भिन्न ९ कपायों में चारों प्रकार के स्नेह और मांसरस डालकर वस्ति देनेसे वातरोग शान्त हो जाते हैं।

पित्तनाशक प्रयोग ।

नलबन्जुलवानैरश्वत्पत्राणिशैबलम् ॥

मञ्जिष्ठाशारिवानन्तापयस्यामधुयष्टिका

चन्दनंपषकोशरिन्तुङ्गश्चपैक्तिकत्रयः ॥

सशकरासौद्रघृताःसक्षीरावस्तयोहिताः

अर्थ....[१] नरसल की जड़, जलपेत,

वेत, पद्मकमल, और शैवाल, [२] मजीठ,

सारिवा, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, और

गुलहटी, (३) रक्तचन्दन, पभाख, खस,

और पुन्नाग । इन तीन भिन्न भिन्न वर्गों

के कपाय चीनी, घी, शहत, और दूध के

साथ मिलाकर वस्तिद्वारा प्रयोग करने से

पित्तजरोगों को दूरकरते हैं ॥

कफनाशकप्रयोग ।

अर्कस्तथैवचालार्कएकाष्टीलापुनर्नवा ॥

हरिद्रात्रिकलामुस्तंपीतदारुकुट्टसप्तम् ।

विप्लव्यःचित्रकधेतित्रयस्तेश्लेष्मरोगि

णाम् ॥ ससारसौद्रगोमूत्रानातिस्नेहा

न्विताहिताः ॥

अर्थ—[१] सफेद आक, लाल आक,

वक वृक्ष और सांठ, [२] हल्दी, त्रिकला,

मोथा, दाकहल्दी, और केवटी मोथा,

[३] पीपल और चीते की जड़ । इन

तीन भिन्न ३ वर्गों का कपाय जवा-
खार, शहत, गोमूत्र और धोडे से स्नेह के

साथ मिलाकर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से कफरोग दूर होजाते है ॥

पक्वाशयशोधनप्रयोग ।

फलजीमूतकेश्वाकूधामार्गवकवत्सकाः ॥
श्यामाचत्रिफलाचैवस्थिरादन्तीद्रवन्त्य
पिप्रकीर्याचोदकीर्याचनीलिनीक्षीरिणीं
तथा ॥ सप्तलाशंखिनीलोघ्रफलकाम्पि
ल्लकस्यच । चत्वारोमूत्रसिद्धास्तेपक्वा
शयविशोधनाः ॥

अर्थ— (१] मेनफल, जीमूत, कटुतुम्बी, तोरई और इन्द्रजौ, [२] श्यामानिसोध, त्रिफला, दन्ती और द्रवन्ती, [३] दोनों प्रकार के कजा, नीलिनी और क्षीरिणी, (४] सातला, शंखिनी, लोघ, मेनफल और कवीला । इन चार भिन्न २ वर्ग के प्रयोग को गोमूत्र में सिद्ध करके वस्ति द्वारा प्रयोग करने से पक्वाशय शुद्ध होजाता है ।

शुक्रवर्द्धन प्रयोग ।

काकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीशितावरी
विदारामधुयष्टधाह्राशृंगाटककेशरुके ॥
आत्मगुप्ताफलमापाःसगोधूमायवास्तथा
जलजानूपजंमसिभिरयेतेशुक्रवर्धनाः ॥

अर्थ— [१] काकोली, क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी और शितावर (२) विदारीकन्द, मुलहठी, सिन्धुआ और कसेरू, [३] फेच के बीज, उरद, गेहूँ और जौ, (४) जांगल और आनूप मांस । ये चार प्रयोग

शुक्र को बढ़ाने वाले है ।

सांघ्राहिक प्रयोग ।

जीवन्तीचाग्निमन्थश्चघातकीपुष्पबल्स
कौ । मग्रहःखादिरःकुष्ठंशमीपिण्डीतकोय
वाः ॥ भ्रियंगूरक्तमूलीचतल्णीस्वर्णमूषि
का । वटायाः किंशुकलोघ्रमितिसांघ्राहि
कामताः ॥

अर्थ— (१) जीवन्ती, अरनी, धायके फूल और इन्द्रजौ, (२) अमलतास, खैर कूठ, शमी, मेनफल और जौ, [३] प्रियंगु, लज्जालु, ग्वारपाठा और स्वर्णयूषी (४) वटादि क्षीर वृक्ष, किंशुक और लोघ । ये चारों प्रयोग समाही है ॥

परिस्त्राव में प्रयोग ।

परिस्त्रावेमृतक्षीरसंघृष्टक्षीरपुनर्नचम् । आ
सुपर्णिकयावापितण्डुलीयकयुक्तया ॥

अर्थ—सफेद साठ और लालसाठ डाल कर औटाया हुआ दूध अथवा मूषिकपर्णी और चोलाई डालकर औटायें हुए दूध की वस्ति देने से परिस्त्राव दूर होजाता है ।

दाहनाशक प्रयोग ।

कोलंकतकफाण्डेक्षुदर्भकालेक्षुशालिभिः ।

दाहघ्नःसघृतक्षीरोद्वितीयश्चोत्पलादिभिः ॥

अर्थ—येरकी गुठली, निर्मलीफल, कांडेक्षु, दाम, ईखकी जड़, और शालि की जड़ और घी इन को दूधके साथ औटाकर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से दाह दूर होजाता है । इसी तरह उत्पलादि गणोक्त द्रव्य और दूध के सिद्ध साथ किये हुए घृत की वस्ति दाहनाशक है ॥

कशुदारादकीनीपाविदुलैःक्षीरसाधितैः ॥

वस्तिःप्रदेयाभिपजाशीतःसमधुशर्करः ॥

अर्थ....सफेद कचनार, अडहरकी जड़, कदम्ब और वेत इन सम्पूर्ण द्रव्यों के साथ सिद्ध की हुई दूध की वस्ति को ठंडा करके शहत और चीनी डालकर प्रयोग करने से दाह दूर हो जाता है ।

परिकर्तिका में वस्ति ।

परिकर्तितथावृन्तैःश्रीपर्णाकोविदारजैः ॥

मुष्टिःशालमल्लिचून्तानांक्षीरसिद्धोघृता
न्वितः ।

अर्थ....खमारी और लाल कचनारके डंठलों को दूध और घी के साथ सिद्ध करके अथवा सेमर के डंठल एक पल और दूध इनके साथ घी को सिद्ध करके वस्ति देने से परिकर्तिका दूर होजाती है ॥

प्रवाहिकानाशक प्रयोग ॥

हितःप्रवाहणेत्तद्वृन्तैःशालमल्लिकस्यच ॥

अर्थ....प्रवाहिका में सेमर के डंठल और दूध के साथ सिद्ध घृतकी वस्ति भी हितकर है ॥

अतियोगनाशक प्रयोग ।

अश्वारोहिकाःकाकनासारजकशेरुकैः ॥

सिद्धाःक्षीरेऽतियोगेस्युःसौद्राक्षनघृतैर्यु-
ताः ॥ न्वप्रोधाद्यैश्चतुर्भिश्चतेनैवविधि-
नापरः ।

अर्थ—असगंध, कौआटोंटी और राजकसेरू इन के साथ सिद्ध दूधकी वस्ति में शहत, शर्करा और घी मिलाकर प्रयोग करने से अतियोग दूर होता है ।

इसी तरह से बड़, गुल्फ, पीपल और पाकड़

इनके साथ सिद्ध दूधकी वस्ति भी अतियो-
गनाशक है ।

वृहतीक्षीरकाकोलीपृष्णिपर्णीशतावरी ॥

काश्मर्यवदरीदूर्वातयोशीरप्रियङ्गवः ।

जीवनीयैःशृताक्षीरौद्वौघृताञ्जनसंयुतौ ॥

वस्तीप्रदेयोभिपजाशीतामधुशर्करौ ।

अर्थ—[१] बड़ी कटेरी, क्षीरकाकोली, पृष्णिपर्णी, सितावर, [२] खमारी, वेरकी, गुठली, दूब, लसीर और प्रियंगु । इन दो वर्गों के साथ पृथक् २ दूध सिद्धकर के उस में घी, अंजन, शहत और चीनी मिलाकर वस्ति देने से अतियोग दूर हो-
जाता है ।

जीवशोणित में वस्ति ।

शशैणदसमाभारमहिषाव्यजशोणितैः ॥

सद्यस्कृष्टदितैर्वस्तिर्जावादानेमशस्यते ।

अर्थ—खरगोश, हरिण, मुर्गा, बिहड़ी, भेंस, भेड़ और बकड़ा इनका ताजा रुधिर लेकर वस्ति द्वारा प्रयोग करनेसे अतियोग से हुई जीवशोणित की क्षीणता दूर होजाती है ।
गौव्यजामहिषीक्षीरजीवनिययुतैस्तथा ॥
तेनैवविधिनावस्तिर्देयःसक्षौद्रशर्करः ।

अर्थ—गौ, भेड़, बकरी और भेंस इनका दूध जीवनीय गणका कडक, घी, शहरा और चीनी मिलाकर वस्ति देने से अतियोग दूर होजाता है ॥

मधुकमपृकद्राक्षादूर्वाकाश्मर्यचन्दनैः ॥

शर्कराचन्दनद्राक्षामधुधारीफलोत्पलैः ।

अर्थ—रक्त के क्षीण होनेपर गहुआ, मुन्डहरी, दास, दूब, खमारी और चन्दनकी

वस्ति । अथवा चीनी, रक्तचन्दन, दाह
मुलहटी, आंवला और नीलकमलकी वस्ति
हितकारी होती है ॥

रक्तपित्तप्रयोग ॥

रक्तपित्तप्रमेहेतुकपायःसोमवल्कजइति ॥

अर्थ—रक्तपित्त और प्रमेह में सफेद
खैर के क्वाथ की वस्ति हित होती है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णना ॥

त्रिकास्त्रयोऽनिलादीनांचतुष्काश्चापरे
त्रयः ॥ पक्वाशयविधुद्धर्यद्वेष्यासांग्राहि
कास्तथा ॥ परिस्त्रावेतथाद्वाहेपरिफर्तेप्र
वाहणे ॥ सात्तियोगौमत्तौद्वाद्वाजीवादा
नेतथात्रयः ॥ रक्तपित्तेद्वयमहएकत्रिशच
पञ्चच । सुलभारवैपथकेशावस्तयोगु-
णवत्तमाः ॥

अर्थ—इस वस्तिसिद्धि अध्यायमें वात-
रोग में तीन, पित्तरोगमें तीन, कफरोग में
तीन, पक्वाशय के शोधन में चार, शुक्र-
वर्द्धक तीन, संग्राहक तीन, परिस्त्राव में
तीन, दाह में दो, परिकर्तिका में एक, प-
क्वाहिकामें एक, अतियोग में पांच, जीवितर-
क्त के क्षय में तीन, रक्तपित्त में एक और
प्रमेह में एक इस तरह वस्ति के उत्तम
प्रयोग वर्णन किये गये हैं ॥

अध्यायकाउपसंहार ॥

गुल्मातिसारोदावर्तस्तस्थसंकुचितादिपु
सर्वाङ्गैकाङ्गुरेगुण्वेवाविधेपुच ॥ यथा
स्वर्मापधैःसिद्धानवस्तीन्द्याद्विचक्षणपूर्वो
क्तानविधानेनकृर्ष्याद्योगान्पृथग्भिवधानिति ॥

अर्थ—गुल्मरोग, अतीसार, उदावर्त,
स्तब्धता, संकोच, सर्वांगघात, एकांगघात
तथा इसी प्रकार के अन्यरोगों में भी उसी
उसी रोग को नाश करनेवाली औषधियों
के साथ सिद्ध की हुई वस्ति देना चाहिये
ये वस्तियां विद्वान् वेद द्वारा पूर्वोक्त रीतिसे
पृथक् २ कल्पना करके दीजसक्ती हैं ।
इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचित्ता-
यांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायासिद्धिः ॥

स्थानिवस्तिसिद्धिर्नामदशमोऽ

ध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातःफलमात्रासिद्धिर्न्यास्यास्यामः ॥
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि
अब हम फलमात्रा सिद्धि की व्याख्या करेंगे
भगवन्तस्मदात्सरस्वधीश्रुतिविज्ञानसम्पृद्ध
मञ्जिजम् । फलवस्तिवरत्यनिश्चयेसत्रि
वादायुनयोऽप्युपागमन् ॥ भृगुकौशिक
काप्यशौनकाःसपुलस्त्यासितगौतमाद-
यः ॥ कतमत्यवरंफलाद्रिपुस्मृतमास्था
पनयोजनास्त्विति ।

अर्थ—एक समय भृगु, कौशिक, काप्य,
शौनक, पुलस्त्य, असित और गौतम आदि
मुनियों में इसबात पर विवाद हुआ कि
आस्थापन में कौन फल श्रेष्ठ है । इस
क्षणे को निवटाने के लिये ये सब मिलकर
उदारसत्व, उदारधी, श्रुति विज्ञानसम्पन्न
भगवान् अत्रिनन्दन के पास उपस्थित हुए

फल विषय में भिन्न २ मत ॥
 कफपित्तहरंपरफलेष्वभजीमूतकमाहशौ-
 नकः। मृदुवीर्यतयाभिनेत्तितदितिचोवा
 चनृपोऽथवामकः। कटुतुम्बीफलमुत्तमंमत्
 यमनेदोपसमीरणञ्चतत् ॥ तदधृष्यमशैत्य
 तीक्ष्णताकटुरौक्षैरितिगौतमोब्रवीत् ॥
 कफपित्तनिवर्हणंपरंसतुधामार्गवमेष्वभ-
 न्यतांतदमन्यतवातलपुनर्वदिशोऽग्लानिकरं
 वलापहमूकुटजंमशाशंसचोत्तमंनवलघ्नंकफ
 पित्तहारिचअतिविज्जलमूर्द्धभागिकफवन
 शोभिचकाप्यआहतकृतवेधनामाश्ववातलं
 कफपित्तमवलंहरेदिति॥ तदसाधिवतिभद्र
 शौनकः। कटुचारोहिबलघ्नमित्प्याप ॥
 अर्थ—शौनक कहतेथे कि कफपित्तनाशकहोने
 से जीमूतकाफल उत्तम है । राजावामक
 का यह मतथा कि जीमूत मृदुवीर्य और मलको
 भेदनकर्ता है, और कटुतुम्बी का फल यमन
 कराने में उत्तम है क्योंकि यह दोषों को
 शीघ्रही उद्गीर्ण करता है । परन्तु गौतम
 की यह रायथी कि कटुतुम्बी उष्ण, तीक्ष्ण
 कटु और रुक्ष होती है इससे अशुष्य
 होती है और धामार्गव कफपित्त को नाश
 करनेवाली है इससे इस काम में धामार्गव
 श्रेष्ठ है । इसपर वद्विश्र बोले उठे कि
 धामार्गव यातकर्ता, ग्लानिकारक और बल-
 नाशक है, इससे तो इन्द्रजौ अच्छे हैं
 क्योंकि वे घल को दूर नहीं करते हैं और
 कफपित्तनाशक भी हैं । यह सुनकर काप्य
 बोले कि इन्द्रजौ अत्यन्त पिच्छिल, ऊर्ध्व-
 गामी और वातप्रकोपक है, किन्तु कृतवेधन

आशुकार, अवातल और प्रबल कफपित्त
 को दूर करनेवाली है ॥ भद्रशौनक बोले
 कि कृतवेधन अच्छी नहीं होती है, क्योंकि
 यह कडवी है और बलघ्नभी है ॥
 इतितद्वचनानिहेतुभिःसुविचित्राणिनिश
 म्यतुष्टिमान् ॥ प्रशंसंसफलेपुनिश्चयपर
 मञ्चात्रिसुतोऽग्रवीदिदम् ॥

अर्थ—इन ऋषियों के सहैतुक भिन्न भिन्न
 वचनों को सुनकर अत्रिनन्दन फलों के
 विषय में अपना मत प्रकाश करने लगा
 फलदोषगुणानुसरस्वतीप्रतिसर्वैरपिस-
 म्यगीरिता ॥ ननुकिञ्चिददोषनिर्गुणं
 षभूयस्त्वमवोविचिन्त्यते ॥

अर्थ—आप सत्र लोगों ने इन फलों के
 गुण दोषों का वर्णन बहुत अच्छी रीति से
 किया है । परन्तु इनमें से कोई द्रव्य
 निर्दोष और निर्गुण नहीं है ॥ किन्तु
 प्रत्येक द्रव्य में स्थान की विशेषता से गुणों
 की अधिकता होती है ।

विषयविशेष से फलों को उत्कृष्टत्व ।
 इहकुप्टाहितागरागरीहितमिक्ष्वाकुतुमेहि
 नेमतम् ॥ कुटजस्यफलं हृदामयेमवरंकोट
 फलञ्चपाण्डुपु । उदरेकृतवेधनंहितंमदनं
 सर्वगदाविरोधितु ॥

अर्थ—जीमूत का फल कोठमें हितकारी
 है, कटुतुम्बी प्रमेह में उत्तम है, इन्द्रजौ
 हृदोग में, कोटफल पांडुरोग में और कृत-
 वेधन उदररोग में हितकारी है, तथा मेनफल
 सब प्रकार के रोगों में अविरोधी है ।

मदनफलकी उत्कृष्टता ।

मधुरंसकपार्यतिक्रंतदरुसंसकट्पणावि-
ज्जलम् ॥ कफपित्तहृदाशुकारिचाप्यन
पायंपवनानुलोमिच ॥ फलनामविशेषत
स्त्वत्तोलभतेऽन्वेपुफलेपुसत्स्वपि ।

अर्थ—मैनफल मधुर, कुछ कसीला,
तिक्त, खरापन से रहित, फट्ट, उष्ण और
पिच्छिल होता है, यह कफपित्तनाशक,
आशुकारी, उपद्रव रहित और घातानुलोमी
है, इस हेतु से बमनकारक अन्य फलों
के विद्यमान होनेपर भी मैनफल श्रेष्ठ होता है
शुरुणाचवचस्युदाहृतमुनिसंघैरिति पूजि-
तेततः । मणिपत्यमुदासमन्वितः स-

हितःशिष्यगणोऽनुपृष्टवान् ॥

अर्थ....गुरु के इस वचन को सुनकर
सब मुनियों ने पूजन किया और चरणों में
नमस्कार करके फिर पूछा ।

सर्वकर्मगुणकृद्गुरुणोक्तोवस्तिरुद्धमतम
धैवेदिना ॥ नाभ्यधोगुदगतश्चशरीरा
स्सर्वतःकथमपोहतिदोषान् ॥

अर्थ....हेगुरु ! आपने पहिले कहा है
कि वस्ति सम्पूर्ण कर्मोंके करनेवाली और
सम्पूर्ण गुण करनेवाली है । परन्तु वस्ति
नाभिके नीचे गुदा में स्थिर होकर किस
तरह दोषोंका अपकर्षण करती है ।

तद्गुरुब्रवीदिदंशरीरंतन्त्रयतेऽनिलःसद्ग
विधातात् ॥ केवलएवदोषसहितःसहि
घायुःप्रकोपमुपयाति ॥ तत्पवनंसपिच
कफविट्कंथुदिकरोऽनुलोमयतिवस्तिः।
सर्वशरीरगश्चगदसंघात्प्रकाशनात्प्रशान्त
मुपयाति ॥

अर्थ—उक्त प्रश्नको सुनकर गुरु बोले
कि वायु शरीर के सम्पूर्ण द्रव्योंको इकट्ठे
रखती है ॥ और वायुही शरीरको धारण
करती है, अकेली वायु कुपित होजाती है
तथा अन्य दोषके साथ भी कुपित होती है
वस्ति पकाशय में जाकर पित्त कफ और
विष्टके साथ उस वायुको अनुलोमित क-
रती है । इस तरह शुद्ध हुई वायु सम्पूर्ण
शरीरमें गमन करके रोगों के समुद्र को
दूर करती हुई शान्त होजाती है । इसका
यह तात्पर्य है कि वायुका शरीर के सब
द्रव्योंसे संबंध है, इससे वायुके शुद्ध होने
पर शेष द्रव्य भी शुद्ध होजाते हैं । किन्तु
पकाशय वायुका प्रधान स्थान है और वस्ति
पकाशयकी वायुको मलके साथ शुद्ध करती
है । इस तरह वायुके शुद्ध होनेपर यह
सम्पूर्ण देह में विचरती हुई शरीर को शुद्ध
करके रोगों को शान्त कर देती है ॥

अथाभिगम्यार्थमखण्डितधिया ।

गजोष्ट्रगोऽश्वान्यजवस्तिकर्म ॥

अपृच्छदेनंसचवस्तिमब्रवीत् ।

विधिञ्चतस्याइपुनःप्रचोदितः ॥

अर्थ—तत्पश्चात् शिष्योंने उक्त सब वर्णन
जानकर पूछा कि हे महाराज ! हाथी, ऊँट
गौ, घोडा, भेड़ और घकरी को वस्ति
किस तरह दीजाती है । यह सुनकर आत्रेय
उक्त पशुओं को वस्ति देनेकी विधि वर्णन
करने लगे ॥

अजात्रिकेसौम्यगजोष्ट्रगोवाश्वयोर्व-
स्तिमुशन्तिमाहिपम् ॥ अजात्रिकादन्त

सुवस्तिमुत्तरं वदन्ति वस्तिविपरीतरूपम् ॥

अर्थ—वकरी, भेड, हाथी, ऊंट, गौ और घोड़े के लिये भेसे की वस्तिपुट से वस्ति बनवानी चाहिये । वकरी, भेड आदि की वस्ति को सुवस्ति और उत्तरवस्ति को उत्तरसुवस्ति कहते हैं ॥

सुवस्तिकाममाण ।

सुवस्तिमष्टादशपोडशांगुलंतयैवनेत्रञ्चद
शांगुलंक्रमात् । गजोऽङ्गोऽश्वात्पञ्चवस्ति
संधौचतुर्थभागेचसकर्णिकंवेदेत् ॥

अर्थ—हाथी और ऊंट के लिये सुवस्ति के मूठ का प्रमाण अठारह अंगुल गौ और घोड़े के लिये सोलह अंगुल तथा भेड और वकरी के लिये दश अंगुलका होता है । इसकी कार्णिका मनुष्यकी वस्तिसे चौगुनी होती है ॥

सुवस्तिकीमात्राकाममाण ।

प्रस्थस्त्वजाव्योर्हि निरूहमात्रागवादिपु
द्वित्रिगुणोपधावलम् ॥ निरूहउष्टस्य तथा
द्वद्वयंगजस्यद्विस्त्वनुवासनेऽष्टमः ॥

अर्थ—वकरी और भेडकी निरूहण मात्रा एक प्रस्थ होती है । गौ और घोड़े की निरूहमात्रा वज्र के अनुसार दो तीन प्रस्थकी होती है, ऊंटकी निरूहमात्रा दो आदक तथा हाथीकी मात्रा वज्रके अनुसार बढ़ा दी जाती है । इन सब जीवों को जो अनुवासन वस्ति देनी हो ती निरूह से आठवां भाग काम में लाया जाता है ।

निरूहकासाधारणप्रयोग ।

कलिंगकुष्ठमधुकंसपिप्पलिवचाश्रुताहाम
दंनरसाञ्जनम् । हितानिसवैपुगुटःससै-
न्धवोद्विपञ्चमूलंसविकल्पनात्वयम् ॥

अर्थ—इन्द्रजौ, कूठ, मुलहठी, पीपल, वच, सोंफ और मेनफल इनके क्वाथ में रसौत, गुड और सेंधानमक मिलाकर सब प्रकार के मनुष्यों को साधारण रीति से निरूहण दी जाती है । तथा दशमूल के क्वाथ की भी निरूहणवस्ति दी जाती है ।

हाथीकोनिरूहणप्रयोग ।

गजेऽधिकोऽश्वत्थवराश्यकर्णजाः ॥

सखादिराःप्रग्रहसालतालजाः ॥

अर्थ—विशेष कर के हाथी को पीपल वज्र, सालकी निरूहण देवै, अधवा खैर, अमलतास साल और तालकी निरूहण वस्ति देनी चाहिये ॥

ऊंटका निरूहण प्रयोग ।

तथाचउष्टेधवशिमुपाटली ।

मधुकसाराःसनिकुम्भचित्रकाः ॥

अर्थ—ऊंटके लिये धौ, सहजना, पाटला महभा का सार, दन्ती और चीते का निरूह प्रयोग करे ।

गौ के लिये प्रयोग ॥

पलाशभूतीकसुराहरोहिणी ॥

कपायउक्तस्त्वधिकागर्वाहितः ॥

अर्थ—गौके लिये पलास, अजवायन, देवदारु और कुटकी इनके कपायकी निरूहण देवै घोड़े के लिये प्रयोग ॥

पलाशदन्तीसुरदारुकचूण ।

द्रवन्त्यउक्तासुरगस्यचाधिकाः ॥

अर्थ....घाँडे के लिये पलास, दन्ती, देवदारु, गन्धतृण और दन्तीकी निरूहण देवै ॥

खरोष्ट्र प्रयोग ॥

खरोष्ट्रयोःपीठकरीरखादिराः

शम्पाकविल्वादिगणस्य चच्छदाः
अर्थ....गंधे और उंट के लिये पीछे,
करील, खैर, अथवा अमलतास और विल्वा-
दि गण के पत्तों का प्रयोग करें ॥

भेड वकरीकेलियेप्रयोग ।

अजाविकानात्रिफलापरूपकं ।

फपित्थककन्दुसविल्वकोलजम् ॥

अर्थ....भेड वकरीयों के लिये त्रिफला
और फालसा अथवा कैथ. वेर. विल्व और
मडा वेर इनकी निरूहण देवे ।

आथग्निवेशःसततोन्तरान्तराहितंचपम
च्छगुरुस्तदाहच ॥ सदातुराःश्रोत्रियरा
जसेवकास्तैथथवेश्याःसहपण्यजीविभिः॥

अर्थ—सदनन्तर आग्निवेश ने फिर पूछा
कि हे महाराज । श्रोत्रिय, राजसेवक, वेश्या
और पण्यजीवी सदा रोगी क्यों रहते है.
यह सुनकर गुरु बोले ॥

श्रोत्रियादिके रोगी रहने का कारण॥
द्विजोर्हीशप्वाध्ययनव्रतान्हकीक्रयादि
भिर्देहहितंचेष्टैःनृपोपसेवीनृपचित्तर
क्षणपरानुरोभाद्दुश्चिन्तनाद्भयात् ॥
नृचित्तवर्तिन्युपचारत्स्वप्राजाविभूपा
निरतापरांगनाःसदासनादर्थ्यनुवद्धवि

क्रयक्रयादिलोभाद्पिपण्यजीविनः॥

अर्थ—ब्राह्मण सदा शिष्यों का पढ़ाने
तथा व्रत और आन्धिक क्रिया में
तत्पर रहते है, इससे शरीरकी मलाई
की चेष्टा नहीं करते हैं । राजसेवक राजा
के अनुकूल काम करने में तत्पर रहते हैं
और पराधीनता, वदुश्चिन्ता और भय उन-
के जी में सदा बना रहता है इससे स्वस्थता-

का यत्न नहीं कर सकते हैं । वेश्या पर-
पुरुषों के चित्तको छुमाने में और पराई
सेवाकरने में तत्पर रहती है और रात-दिन
आमूषणादि से अपने देह को आभूषित करने
में लीन रहती है इसीसे यह भी सदैव
रोगिणी रहती है । दुःकानदार एक स्थान
पर बहुत बंठे रहते हैं, द्रव्योपाजन तथा
क्रयविक्रय (खरीद फरोस्त) में लगे रहते
हैं, एवं लोभ के कारण, स्वास्थ्यपालन में
असमर्थ होते हैं ।

अन्य सदारोगियों का वर्णन ।

सदैवतेखागतवेगनिग्रहसमाचरन्तेचनका
लभोजनम् । अकालनिर्हारविहारसेवि-
नोभवन्तियेन्येऽपिसदातुराश्चन्तः॥

अर्थ—ये लोग मलमूत्रके उपस्थित वेगों
को रोक लिया करते हैं, ठीक समय पर
भोजन नहीं करते हैं, कुसमय मलत्याग
करते हैं और कुसमय डोलते फिरते हैं ।
इससे सदारोगी बने रहते हैं ॥ तथा और
भी मनुष्य जो इसी तरह करते हैं वे भी
सदैव रोगी बने रहते हैं ॥

समीरणवेगविधारणोद्धतंविनद्धसर्वाङ्ग
रुजाकरंभिषक्ः।समीक्ष्यन्तेपांफलवर्ति
मादितःसुकल्पितांस्नेहवर्तीप्रयोजेयत् ॥

अर्थ....उपस्थित वेगों के रोकने से ऐसे
मनुष्यों के वायु कुपित होजाती है, मल
मूत्र का निवन्ध होजाता है और सम्पूर्ण
अंग में घेदना होने लगती है । इसमें प्रथम
ही अच्छी तरह तयार की हुई स्नेह युक्त
पाखवर्ती, का प्रयोग करना चाहिये ।

निरूहणकापश्चात्कर्म ।

निरूहितंधन्वरसेनभोजितं ।

निकुम्भतेलेनततोऽनुवासयेत् ॥

अर्थ—निरूहण के पीछे जांगल मांस-रस के साथ भोजन कराके दन्तीके साथ सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन देवै ॥

बलाश्वगन्धामहशिल्वचित्रकान्द्विपञ्चमूत्रकृतमालकोत्पलेः।यवान्कुलत्थांश्चपंचजलादकेरसःसपेप्यस्तुकलिङ्गकादिभिः॥सतैलसर्पिर्गुडसैन्धवोहितःसदानरारणांयलवर्द्धनःपरः ।

अर्थ—तरैटी, असगंध, वेळ, चीता, दस-मूत्र, अमलतास, नीलोकर, जौ, कुलथी, इनको एक भाटक जलमें पकाकर चौथाई दोप रहने पर छानले, इस क्याथ में इन्द्रय-वादि दस द्रव्यों का फल्क तेल, घी, गुड़ और सेंधानमक मिलाकर पकावै । इसका अनुवासन श्रोत्रिवादि रोगियों के बलका बढ़ानेवाला है ॥

पुनर्नवरण्डनिकुम्भचित्रकान् सदेवदाशत्रिटतानिदिग्धिकाम् ॥

महान्तिमूलानिचपञ्चतद्वयान्विषास्यपुत्रेद्विधिमस्तुसंपुते । सतैलसर्पिलवणैश्चपञ्चभिर्विषुर्द्विर्द्विर्नयस्तिमथप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—सोठ, अरंड, दन्ती, चीता, देव-दश, निमोथ, कटेरी, वृहत्सचमूल इन को दही के गोठ मिले हुए गोमूत्र में पकावै । फिर इस क्याथ में तेल, घी और पांचों नमक मिलाकर बर्तन देवै ।

तर्पणशस्त्रमंपुत्रेनसाधितम् फलेनविलेपनप्रताडयाथवा ॥

अर्थ— उक्तरीति से मुंठहटी, अथवा वेळफल अथवा सोंफ के साथ सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन देवै ॥

वालकऔरवृद्धकोनिरूहण ।

सर्जीवनीयस्तुरसोनुवासनेनिरूहणेचालवणेशिशोर्हितः।नचान्यदाश्वक्वलाभि-वर्द्धनंनिरूहवस्तेःशिशुवृद्धयोःपरम् ॥

अर्थ....वालकों के लिये जीवनीय गण के क्याथ के साथ सिद्ध तेलकी अनुवासन देनी चाहिये । वालकों को जो निरूहण दर्जाती है उस में नमक डाला नहीं जाता है बालक और वृद्धों के लिये निरूहण के अतिरिक्त शरीर के बलको शीघ्र बढ़ाने-वाली और कोई औषध नहीं है ॥

अध्यायकारांक्षितवर्णन ।

तत्रश्लोकः ।

फलकर्मवस्तिरवरतत्वनिरचयोवाज्याटी नाम् । सततातुरांश्चदृष्टाःफलमात्रायां

• हितंचपाम् ॥

अर्थ—इस फलमात्रा सिद्धि नामक अध्याय में वमनकारक औषधोंसे मेनकाठ को उत्कृष्टता, हाथी, घोड़े आदि जीवोंकी बरतियों का वर्णन, राजमेषक, बैरवा आदि परोपजीवी मनुष्यों के सदा रोगी रहने का कारण और उनकी चिकित्सा विधि-पूर्वक वर्णन की गई है ।

इतिश्रीभाषाटीकाश्रितार्याभिनवेशविरचिता-

यां चरकप्रतिमंस्कृतःयां संहितायांसिद्धि-स्थानकृतमात्रासिद्धिर्नामिका

दशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

अधातुत्तरसिद्धिव्याख्यास्यामइतिहस्मा
ह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले
कि अब हम उत्तर वस्ति सिद्धि की व्या-
ख्या करेंगे ।

संशोधनकेपीछेपेयादिविधि।

अथखल्वातुरबंधःसंशुद्धवपनादिभिः ॥

दुर्बलकृशमलपाग्निमुक्तसन्धानबन्धनम् ।

निर्हृतानिखविण्पूत्रकफपित्तकृशाशयम् ॥

शून्यदेहंपतीकारासाहिष्णुं परिपालयेत् ।

अर्थ—जो रोगी धमन विरेचनादि सं-

शोधन द्रव्योंके प्रयोगसे शुद्ध होकर दुर्बल
कृश, मन्दाग्नि, तथा मुक्तसाधिवन्धन

[हाथ पांव आदि की सन्धियोंका दुर्बलता

के कारण ढीला होना] होगयाहो, तथा वायु

विष्टा, मूत्र, कफ और पित्तके निकलने से

उसका आशय कृश पडगयाहो। एवं देहके

शून्य होजाने के कारण औषध को न सह

सकता हो उसको औषध न देकर केवल

परिपालन विधिका अवलम्बन करना चाहिये

यथैवतरुणपूर्णतैलापात्रंतथैवच ॥ गोपा

काइवदण्डीगाःसर्वस्मादपचारतः ।

अर्थ—जैसे तेल से भरेहुए नवीन घडेकी

रक्षा पानपूर्वक कीजाती है और जिसतरह

म्वाळिये लडकी सहायता से गीबों की सव

प्रकारके अपचार से रक्षा करतेहैं, उसीतरह

बैध को उचित है कि रोगी की रक्षा करे ।

अग्निसंदीपनक्रम ।

अग्निसन्धुषणार्थन्पूर्वपेयादिभिर्भिषक्
रसोत्तरेणैवचरेत्क्रमेणक्रमकोविदः ।

अर्थ—जठराग्नि के घटाने के निमित्त
प्रथम पेयादि का पाठन करावे, पीछे मांस
रसका व्यवहार करना चाहिये ।

स्निग्धाम्लस्वादुहृद्यानिततोऽम्ललवणैर
सै ॥ स्वादुतिक्तौततोभूयःकपायकडुको
ततः ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रथम स्निग्ध, अम्लस्वादु
और हृद्य रस का सेवन कराके फिर खट्टे
और नमकीन रस देवे, उस से पीछे स्वादु
और तिक्तरस, फिर उससे पीछे कर्सीले
और कडवे रसों का सेवन करावे ।

अन्योन्यप्रत्यनीकानारसानांस्निग्धरुस
योः ॥ व्यत्यासादुपयोगेनमक्रातिगमये
द्विभिषकु ।

अर्थ—इसतरह विपरीत क्रम से रोगी
को रसों का सेवन करावे अर्थात् किसी
दिन स्निग्ध रस देदेवे और किसी दिन रु-
स देवे। इस तरह क्रमसे उपचार करने पर
रोगी अपनी पूर्व प्रकृति पर आजायगा ।

प्रकृतिगतफलक्षण ॥

सर्वसमोनेरसंगोरतियुक्तःस्थिरेन्द्रियः
बलवान्सन्धसम्पन्नोविश्लेषःप्रकृतिगतः

अर्थ—जब रोगी सब प्रकार के आहार
विहार करने में समर्थ होजाय, मलमूत्र का
विवन्ध जातारहै, विषयों में चित्त स्थिर
होने लगे, सब इन्द्रियां दृढ होकर अपने-
विषय में प्रवृत्त हो, शरीर में बल बढजाय
और मन सन्तुष्ट होजाय तब समझना
चाहिये कि मनुष्य अपनी पूर्वप्रकृति पर
आगया है ॥

अप्रकृतिगतको वर्जितकर्म । :

एतांप्रकृतिममाप्तः सर्वद्वर्ज्यानिवर्जयेत् ॥

यहादोषकराण्यष्टाविमानित्तुविशेषतः ॥

उच्चैर्भाष्यं रथक्षोभमतिचक्रामणसात्ने ।

अर्जाणांहितभोज्येचदिवास्वप्नेसमैथुनम्

अर्थ—जयतक रोगी अपनी प्रकृति पर

न भावै तयतक सब प्रकारके वर्जित द्रव्यों

को सेवन करना ठीक नहीं है । विशेष कर

के अत्यन्त उपद्रवकर्त्ता नीचे लिखे हुए आठ

कर्मों का परित्याग कर देवै । यथा उच्च

भाषण [चिल्लाकर घोलना] रथक्षोभ

(सवारी पर चढकर ऊँचे नीचे मार्गों पर

चलना), अतिचक्रमण [बहुत भ्रमण

करना] अत्यासन (एक स्थानपर बहुत

बैठना) अर्जाणभोजन (पूर्वाह्न के बिना

पचे वा दुष्पाच्यभोजन), अहित भोजन

[अपप्य द्रव्य] दिवास्वप्न [दिनमेंसोना]

और मैथुन [स्त्री सहवास] ।

वर्जोपचारसेवनके अवगुण ॥

तज्जादेहोऽर्थसर्वाधोमध्यपीडा मदोपजाः

इलेप्मजाः क्षयजाश्चैव व्याधयः स्युर्यथाक

मम् ॥

अर्थ—क्योंकि उच्चभाषण से देह के

ऊपर के भाग में रोग उत्पन्न होजाते हैं

रथक्षोभ से सर्वांगयातना, अतिचक्रमण से

नीचे के देहमें व्याधियां होती हैं, अत्यासन

से मध्य देह में रोग होते हैं, अर्जाण भोजन

से आमदोषज व्याधियां होती हैं, अहित

भोजन से घातज व्याधियां, दिवास्वप्न से

कफजन्याधिगां और मैथुन से क्षयज व्या-

धिगां उत्पन्न होती है ।

तेषां विस्तरतोलिंगमेकैकस्यसंभेदतः ॥

यथाचतुसंभवस्यापिसिद्धान्वर्त्तीश्च यः

पनान् ।

अर्थ.... अब हम इन प्रत्येक व्याधियों के

जुदे २ भेद, लक्षण और चिकित्सा विस्तार

पूर्वक वर्णन करेंगे, तथा कुछ अनुभवकी

हुई यापनवस्तियों का वर्णन भी करेंगे ।

उच्चभाषणके उपद्रव ।

तत्रोच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यां शिरस्तापः

कर्णशेखनिस्तोदस्रोतोरोधमुखतालुक

ण्ठशोपतैमिर्यं पिपासाज्वरतमकहनुम-

न्याग्रहनिष्ठीवनोरः पार्श्वशूलस्वरभेदादि-

क्वाश्वासादयः स्युः ॥

अर्थ—उच्चभाषण या अतिभाषण से

शिर में ताप, कान और कनपटी में सुई

छिदने कीसी पीडा, स्रोतःसमूहका अवरोध

मुखशोष, तालुशोष, कण्ठशोष, अन्धकार

दर्शन, पिपासा, ज्वर, तमकश्वास, हनुमह,

मन्याग्रह, निष्ठीवन, बक्षःशूल, पार्श्वशूल,

स्वरभंग, हिचकी और श्वासादिकरोग उ-

त्पन्न होजाते हैं ॥

रथक्षोभके उपद्रव ॥

रथक्षोभात्तमन्धिपर्वशैथिल्यहनुनासाकर्ण

शिरःशूलतोदचण्डिहिसोभाटपान्त्रकृजना

ध्मापनहृदयेन्द्रियोपरोधस्फिकृपार्श्वबंध

णवृषणकटीपृष्ठवेदनासन्धिस्कन्धग्रीवाक्षौ

र्वल्याङ्गाभितापपादशोफमस्वापहर्षणा

दयः ॥

अर्थ—रथक्षोभ से सन्धि और जोड़ों में

शैथिल्य, ठोड़ी नाक कान और शिर में

शूल और सुई छिदने की सी वेदना, मन्दा-

प्रि, आटप, आंती का कूजना, अफरा, हृदयोपरोध, इन्द्रियगणोपरोध, नितम्ब, पसली वंक्षण अंडकोप कमर और पीठ में वेदना, सन्धि कन्धे और ग्रीवा में दुर्बलता अंगाभिताप, पांशों पर सूजन, प्रस्वाप [शरीर का सुन्न होजाना] और रोमहर्षण ये उपद्रव हेतै हैं ।

अतिचक्रमण के उपद्रव ।

अतिचक्रमणात्पादजंघोरुजानुवक्षणश्रोणीपृष्ठशूलसकृधिसादनित्स्तोदपिण्डकोट्टनांगमर्दासाभितापशिराधमनीहर्षका

सद्यमाः।

अर्थ—अतिचक्रमण से पांश, जांघ, ऊरू जानु, वंक्षण, श्रोणी, पांठ में शूल होताहै, ससृधियों में अवसन्नता और निस्तोद, पिण्ड लियों में ऐंटन, अंगमर्द, कंधों में ताप, शिरा और धमनियों में हर्षण, खांसी और श्वास आदि उपद्रव भी होने हैं ॥

अत्यासन के उपद्रव ।

अत्यासनाद्रथक्षांभजाःस्फिरूपाद्वैवंक्षगवृषणकटीपृष्ठवेदनादयः।

अर्थ....अत्यासन से वे सब उपद्रव होते हैं जो रथक्षोभ से होतेहैं तथा नितम्ब पार्श्व, वंक्षण, अंडकोप, कमर और पीठ में भी वेदना होती है ॥

अजीर्ण भोजन के उपद्रव ।

अजीर्णाध्यशनाभ्यांमुखशोषाध्मानशूलनिस्तोदपिपासागात्रसादच्छयतीसारमूर्च्छाज्वरप्रवाहणामत्रिपादयः ॥

अर्थ....अजीर्ण भोजन और अपचयन से मुखशोष, अध्मान, शूल, निस्तोद, मूर्च्छा

ज्वर, प्रवाहण और आमविय ये उपद्रव होते हैं ॥

अहित भोजन के उपद्रव ॥

विपमाहिताशनाभ्यामनन्नाभिलाषद्वैवल्यवैवर्ण्यकण्डूपाामागात्रावसादयथाटोपप्रकोपजाश्चग्रहण्यशौं विकारादयः ॥

अर्थ—विपम भोजन और अहित भोजन से अन्न में अराचि, देह में दुर्बलता, विवर्णता, खुजली, पामा, अंगावसाद और जैसा दोष प्रकुपित हो उसी के अनुसार ग्रहणी और अर्श रोग उत्पन्न होजाते हैं ।

दिवास्वप्न के उपद्रव ॥

दिवास्वप्नाद्रोचकाविपाकाग्निनाशस्तैमित्यपाण्डुत्वर्कंडूपाामादाहच्छद्यंगमर्दहृत्स्तम्भजाडयतन्द्रानिद्रामसंगग्रन्धिजन्मद्वैल्यरक्तमूत्राक्षितातालुलेपांशुपिपासाच ॥

अर्थ—दिन में सोने से अराचि, अविपाक, मन्दाग्नि, स्तिमिता, पांडुत्व, खुजली, पामा, दाह, वमन, अंगमर्द, हृत्स्तम्भ, जडतां, तन्द्रा, निद्रानाश, गांठ, होना, दुर्बलता, मूत्र और नेत्रों का लाल पडजाना, तालु में कफकी सी सिहसायट और पिपासा, ये उपद्रव होते है ।

मैथुन के उपद्रव ॥

व्यवायादाशुबलसादोरुसादयस्तिशोशुदमेद्वंक्षणोरुजानुजंघापादशूलहृदयस्पन्दननेत्रपीडाहृशैथिल्यशुक्रमार्गशोणितागमनकासश्वा मशोणितप्टीवितस्वरापसादकटीदैनैल्पैकांगमवींगरोगमुष्कश्वपशुवातवर्चोमूत्रासंगशुक्रावसर्गजाडयवेषशुवाधिर्पिपादाः।। उत्पाद्यतइवगुद

स्ताड्यतइवमेद्रमवसीदतीवमनोवेपतेहृद-
यंपीड्यन्तेसन्धयस्तमःभविश्यतइवचेत्येव
मेभिरष्टभिचारैरेतेप्रादुर्भवन्त्युपद्रवाः॥

अर्थ—स्त्रीगमन से बलहान, ऊरुसाद,
वस्ति, प्रदेश, सिर, गुदा, भेद, वक्षण, ऊरु, जानु,
जंघा, और दोनों पांयों में वेदना, हृदय का
धडकना, नेत्रों में दर्द, अंग में शिथिलता, वीर्य
के मार्ग से रुधिरका निकालना, खांसी,
श्वास, फफुके साथ रुधिर आना, स्वरभंग,
कमरमें दुर्बलता, एकांगरोग, सर्वांगरोग,
अंडकोप सूजन, अधोवायु विद्या और
मूत्रका में विवन्ध, बिना इच्छा ही वीर्यपात
होना, जडता, कम्पन, बहिरापन, और वि
पाद आदि उपद्रव होतेहैं । गुदामें फटने
कीसी पीडा होतीहै, भेदमें चोट लगने
कीसी पीडा होतीहै, मन अवसन्न होजाता
है, हृदय में कम्पन होता है सम्भियों में
पीडा होती है, और आँखों के साम्हने अ-
धेरांसा छाजाता है ॥

इन आठ प्रकार के वर्जित कर्मोंके सेवन
करने से ऊपर लिखेहुए उपद्रव होते हैं ।

उच्चभाषणजन्यरोगो मे उपाय ॥
तेषांसिद्धिरुच्चैर्भाष्यातिभाष्यजानाम-
भ्यंगस्नेदोपनाहधूमनस्थोपरिभक्तस्नेहपा
नरसन्तीरादिभिर्वातहरःसर्वोविधिर्मानश्च
अर्थ—उच्चभाषण और अतिभाषण
जन्यरोगों में अभ्यंग, स्वेद, उपनाह, धूम,
नस्थ, भोजन के पीछे घृतपान, दुग्धादिसे-
वन, सब प्रकारकी वातनाशकविधि और
गौतधारण करने चाहिये ॥

रथक्षोभजन्यरोगोंमेंउपद्रव ॥

रथक्षोभातिचक्रमणत्यासनजानांस्नेह
स्वेदादिवातहरं कर्म्मसर्वनिदानवर्जम् ।

अर्थ—रथक्षोभ से उत्पन्न हुए रोगों में
तथा अनिचक्रमण और अत्यासन से हुए
रोगों में स्नेहन और स्वेदन से आदिलेकर
वातनाशक कर्म करने चाहिये तथा जिन
जिन कारणों से ये रोग उत्पन्न हुएहैं उन्हें
भी छोड़ देना चाहिये ।

अजीर्णाध्यशनजरोगोंमेंउपाय॥
अजीर्णाध्यशनजानानिरयशेषनश्चर्दनं
रूक्षस्वेदधूमपानलंघनीयपाचनीयदीप
नीयोपधात्रधारणश्च ॥

अर्थ—दुग्धाद्य भोजन करने से तथा
अध्यशन से जो रोग होते हैं उनमें निः-
शेष वमन, रूक्षस्वेदन, धूमपान तथा लंघ-
नीय, पाचनीय और दीपनीय औषधोंका
प्रयोग करना चाहिये ।

विषमभोजनादिजन्यरोगोंमेंउपाय ।
विषमाप्यहताशनजानांयथाश्वंदोपक्रियाः

अर्थ—विषम भोजन और अहितभोजन
करने से जो उपद्रव होते हैं उन में जैसा
दोष हो उसीको नाश करनेवाली चिकित्सा
करनी चाहिये ।

दिवास्वप्नजरोगोंमेंउपाय ॥
दिवास्वप्नजानांधूमपानलंघनवमनविरे-
चनज्यायामरूक्षाशनानिदृदीपनीगौपवः
प्रयोगः । भर्कपर्णान्भर्दनपरिपेवनानि
इच्छन्नेप्महरःसर्वोविधिः ॥

अर्थ—जो रोग दिन में सोने से उत्पन्न
हुए हैं उन में धूमपान, लंघन, वमन,

शिरोविरेचन, व्यायाम, रूक्षभोजन और अनिष्ट दीपनीय औषधों का प्रयोग हित है इस में छेदन, उन्मर्दन और परिपेचनादि क्रियाओं का करना भी आवश्यक है ॥

मैथुनजन्यरोगोंमें उपाय ।

मैथुनजानांजीवनीयसिद्धयोःक्षीरसर्पि-
पोरुपयोगः।तथावातहराःस्वेदाभ्यंगोप
नाहा दृष्याश्चाहाराःस्नेहास्नेहविधयो
यापनवस्तयोऽनुवासनश्च ॥ मूत्रचैकृत
वस्तिशूलेपुचोत्तरवस्तिः। विदारीगन्धा
दिगणजीवनीयगणक्षीरससिद्धैतैलस्या
घापनाश्चवस्तयःसर्वकालं देयास्तानुपदे
क्ष्यामः ॥

अर्थ—मैथुन से उत्पन्न हुए रोगों में जीवनीय गणोक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए दूध और घीका प्रयोगकरों तथा घातको दूर करने वाले स्वेद, अभ्यंग, उपनाह, पुष्टिकारक आहार स्नेहनकर्म, स्नेहविधि, यापनवस्ति और अनुवासन वस्तिका प्रयोगभी हितहै, मैथुन के कारण जो मूत्र में विकारहो वा वस्ति में शूल होती उत्तर वस्ति का प्रयोग करना उचित है । विदारीगन्धादि गण, जीवनीय गण और दूध के साथ सिद्ध किया हुआ तैल और यापनवस्ति सदाही हित है ॥

अत्र यहाँ से यापन वस्तियोंका वर्णन करेंगे यापनवस्तिकी विधि ॥

मुस्तोक्षीरबलारग्वधरास्नापामाञ्जिप्राफटुरो
हिणीप्रापमाणापुनर्नवाविभीतकगुदूची
स्थिरादिपञ्चमूलानिपालकानिखण्डशः
सिस्तान्यष्टौचमदनफलाभिप्रसाल्यजला

दकेपरिक्वाभ्यपादशेषेरसःक्षीरद्विप्रस्थसं
युक्तःपुनःशृतःक्षीरावशेषेरसःक्षीरद्विप्रस्थ
संयुक्तःपुनःपुनःशृतःक्षीरशेषःपादजांगल
रसस्तुल्यमधुघृतःशतकुसुममधुककुटज
फलरसाञ्जनप्रियंगुकल्कीकृतःससैन्धवः
सुखोष्णवस्तिःशुक्रमांसवलयजननःक्षतक्षी
णकासगुल्मशूलविपमञ्जरयधर्मकुण्डलो
दावर्तकुक्षिशूलमूत्रकृच्छ्रासृग्रजोविसर्पप्र
वाहिकाशिरोरुजाजानूरुर्जघावस्तिग्रहा
श्मथुन्मादार्शःप्रमेहाध्मानरक्तपित्तश्लेष्म
व्याधिहरःसथोवलजननोरसापनश्च ।

अर्थ.... मोथा, उसीर, खरैटी, अमलतास, रासना, मजीठ, कुटकी, त्रायमाण, साठ, बहेडा, गिलोय, और शालिपर्ण्यादि पंच-मूल इन सब द्रव्यों को एक २ पल लेंवै तथा भाठ मेंनफल इन सब के टुकड़े २ कर के पानी से धोकर एक आढ़क जल में पकावै । जब चौथाई शेष रहजाय तब उसे छानकर फिर उस में दो प्रस्थ दूध डालकर फिर ओटावै, जब दूध शेष रहजाय तब उतारले और इस से चौथाई जांगल मांस-रस और बराबर का दूध और घी डालै और इसी में सोंफ, मुलहठी, इन्द्रजी, रसोत और प्रियंगु इन के कल्क में संधानमक मिलाकर डालदे फिर गुनगुना करके वस्ति देंवै । यह वस्ति शुक, मांस और बलको बढ़ातीहै । तथा क्षतक्षीण, खाँसी, गुल्म, शूल, विपमञ्जर, वर्ध्म, कुण्डल, उदावर्त, कुक्षिशूल, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमदर, विसर्प, प्र-वाहिक, शिरोरोग, जानुग्रह, ऊरुग्रह, जघाग्र-

ह, वस्तिग्रह, अस्मरी, उन्माद, अर्शरोग, प्रमेह, आध्मान, रक्तपित्त, तथा कफजन्य व्याधियों इस वस्ति से दूर होजाती हैं। यह वस्ति सद्यः बलाकारक और रसायन है।

दूसरीयापनवस्ति।

एरण्डमूलपलाशात्पदपलंशालपर्णीपृ-
श्निपर्णीवृहतीकण्टकारिकागोक्षुरकरा-
स्नाभगन्धागुद्चीवर्षाभूः आरग्वचदेवदा-
र्वित्तिपलिकानिखण्डशः क्लृप्तानिफला-
निचाष्टौमक्षाल्यजलाढकेशरिपादेपचेत्।
पादशेषकपायंपूतंशतकुसुमाकुप्रमुस्तापि-
प्लीहपुपाविल्ववचावत्सकफलरसाञ्ज-
नमियंगुयवानीसंक्षेपकलिकंतमधुघृततैलै-
न्धवयुक्तंमुखोष्णानिरुहगेकंद्रीनीन्वाद्-
घात्। सर्वेषामशस्तोविशेषतोऽलितमु-
कुमारक्षतक्षणिस्थविरार्शसामपत्यका-
मानाश्च।

अर्थ—अरंडकी जड़, और टाक छः २

पल। शालिपर्णी, प्रष्णिपर्णी, घड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, रास्ना, असगंध, गिलोय, सांठ अमलतास, और देवदारु इन में से प्रत्येक एक २ पल छेफर टुकड़े टुकड़े करके फिर इन्हें जल से धोकर एक आढक जल में चौधई आढक जल मिलाकर पकावै, जब चौधई शेष रहजाय तब इनको छान लेवै फिर इस काथ में नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क तथा शहत, घी, तेल और सेंधाननरू मिलाकर एक, दो, वा तीन निरुहण वस्ति देवै। कल्कके द्रव्य, यथाः— सोंफ, सूठ, मोथा, पीपल, हाऊबेर, पिल्व, वच, इन्द्रजौ, मेनफळ,

रसौत, प्रियंगु और अजवायन हैं। यह वस्ति मुखोष्ण दीजाती है। यह वस्ति प्रायः सबके लिये हित है परन्तु विशेष करके ललित, सुकुमार, क्षतक्षीण, स्थविर और अर्शरोगियोंको हित है तथा जो संतान की इच्छा करते हैं उनके लिये भी हित है ॥

तिसरीविधि।

सहचरबलामूर्वामूलशारिवासिद्धेनपयसा-
तथावृहतीकण्टकारीशतावरीछिन्नक-
हाशृतेनपयसामधुकमदनपिप्पलीकल्कक-
तेन पूर्ववद्वस्तिः ॥

अर्थ—सहचरी, खैरीटी, मरोडफळी और अनन्तमूल इनके साथ दूध सिद्ध करके अथवा घड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, सितागर और गिलोय इनके साथ दूध भौटाकर उसमें मुलहटी, मेनफळ और पीपल का कल्क मिलाकर पहिलेकी तरह वस्ति देवै।

चौथीविधि।

तथाबलातिबलाविदारीशालपर्णीपृष्णि-
पर्णीवृहतीकण्टकारिकादभमूलयवका-
श्मर्येविल्वफलसिद्धेनपयसामधुकमदन-
कल्कीकृतेनमधुघृतसौष्वलमयुत्तोनफास-
ज्वरगुल्मप्लीहादित्स्त्रीमद्यक्लिष्टानांसद्यो-
बलजननोरसायनश्च ॥

अर्थ—इसी रीतिसे खैरीटी, अतिबला, विदारीकन्द, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी, दामकी जड़, जौ, खंभाये, बेलफळ और मेनफळ इनके साथ में सिद्ध कियेहुए दूध में महुआ और मुलहटी का कल्क तथा शहत, घी और संघर नमक डालकर वस्तिदेवै ॥ यह वस्ति खांसी, ज्वर, गुल्म

और घृहीतसे पीदित, अर्दितरोगी, स्त्री कर्षित और मद्यकर्षित रोगियों को तत्काल बलकी देनेवाली और रसायन है ।

पांचवींविधि ॥

तथावलातिबला रास्नारग्वधमदनविल्व गुहचीपुनर्नवैरण्डाश्वगन्धासहचरपलाशदेवदारुद्विपञ्चमूलानिपलिकानियवको लकुलस्थद्विमसृतंशुष्कमूलकानाञ्जलद्रोणासिद्धिनिरूह्यमाणेशेषकपायंपूतंमधुकमदनशतपुष्पाकुष्ठपिप्पलीवचापत्तकफलरसाञ्जनम्रियंगुयवानीकल्कीकृतं गुह्यृततैलक्षौद्रसीरमांसरसाञ्जलाञ्जिकसैन्धवयुक्तसुखोष्णंवास्तिद्यात् । शुक्रमूत्रवर्चःसंगेऽनिलजेगुल्महृद्रोगाभ्यामान् वर्ध्मपाश्चपृष्ठकटीग्रहसंज्ञानाशबलक्षेयपुच ॥

अर्थ—इसीतरह बला, अतिबला, रास्ना अमलतास, मेनफल, बेलफल, गिठोय, सांठ अरंडकांजड़, असर्गंध, सहचर, ढाक, देवदारु और दशमूल इन को एक एक पल लेंवे तथा जी, बेर और कुठथा तथा सूखी मूली दोदो प्रत्येक लेकर एक द्रोण जलमें पाककर । जितना निरूहके लिये काथ आवश्यक होता है उतना शेष रहने पर छान ले । फिर इस काथ में मुल्हठी, मेनफल, सोंफ, कूठ, पीपल, वध, इन्द्रजी, रसौत, म्रियंगु और अजवायन का कल्क मिलावे तथा गुड, घी, तेल, शहत, दूध मांसरस, अम्लकांजी और संधानमक मिलाकर सुखोष्ण वास्ति देवे । यह वास्ति शुक्र, मूत्र और विष्टा के विवन्ध में, तथा यातन गुल्मरोग, हृद्रोग, आग्मान, वर्ध्म,

पार्श्वग्रह, पृष्ठग्रह, कटीग्रह, संज्ञानाश और बलक्षय में बहुत उत्तम है ॥

छठी विधि

हृत्पार्श्वकुडवदिगुणार्द्धशुण्णयवःक्षीरोदकसिद्धःक्षीरशेषोमधुघृततैललवणयुक्तः सर्वांगविस्तवातरक्तसक्तविण्मूत्रस्त्रीखेदि वहितोवातहरोरुद्धिमेधाग्निबलजननश्चा

अर्थ—हाऊबेर आधाकुडव, नाधे कुटेहए जो एक कुडव, इनको समानभाग मिले हए दूध और जल में औटावे, जब दूध शेष रहजाय तब इस में शहत, घी, तेल, और नमक मिलाकर वास्ति देवे तो सर्वांगगत वातरक्त, विष्टा का विवन्ध, मूत्रका विवन्ध तथा अत्यन्त स्त्री प्रसंग से उत्पन्न हुई क्षीणता को दूर करता है, यह वास्ति वात नाशक, शुद्धिबर्द्धक, मेधावर्द्धक, अग्निवर्द्धक और बलवर्द्धक होतै है ।

सातवीं विधि

ह्रस्वमूलपञ्चकपायक्षीरोदकसिद्धःपिप्पलीमधुकमदनफलकाःसगुहघृततैललवणः क्षीणविपमज्वरकर्षितस्त्वस्तिः ॥

अर्थ—लघु पंचमूलको समानभाग दूध और जलमें सिद्ध करके दूधके शेष रहने पर इसमें पीपल, मुल्हठी, मेनफलका कल्क तथा गुड, घी, तेल और नमक मिलाकर यह वास्ति विपमज्वरके कारण हुआ हए रोगी को देवे ॥

आठवीं विधि ।

बलातिबलापामार्गात्मगुप्ताष्टपलाद्धशुण्णयवाञ्जलिकपायःपूर्ववद्वास्तिःस्यविरदुर्बलक्षीणस्त्रीनिपेविणांपथ्यउत्तमः ।

अर्थ—बला, अतिबला, अंगी, केंचके

बीज ये सब आठपल तथाआधे कुटे हुए जौ एक अंजलि इन को समानभाग दूध और जल में क्वथित करके इस क्वाथ में पूर्वोक्त पीपल आदिका कल्क डालकर तथा गुड, घी, तेल और नमक मिलाकर वृद्ध दुर्बल, क्षीण और स्त्रीसेवियों को वस्ति देवै । यह वस्ति बहुत उत्तम है ।

नवीं विधि ।

बलामधुकीविदारीदर्भमूलपृद्धीकायवैःकपा समाजिनपपसापक्वामधुकल्कितंसमधुघृतसैन्धवज्वरार्तेभ्योवस्तिदद्यात् ॥

अर्थ—खरैटी, मुलहठी विदारीकन्द, दामकी जड़, किसमिस और जौ इनको बकरीके दूध में पकाकर मुलहठी का कल्क तथा घी, शहत और सेंधानमक डालकर ज्वरपीडित रोगियों को वस्ति देवै ।

दसवीं विधि ।

शालपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकमूलकाश्मर्य परूपकखर्जूरफलमधुकपुष्पैरजाक्षीरजल मस्थाभ्यांतिद्धःकपायःपिप्पलीमधुको स्पलकल्कितःसघृतसैन्धवोक्षीणोन्द्रियविपमज्वरकर्पितस्त्वस्तिः ॥

अर्थ.... शालपर्णी, पृष्णिपर्णी, गोखरु की जड़, खंभारी, फाउसा, खजूर, मेनफळ, और महुआ इन को एक प्रस्थ बकरी के दूध और जल में क्वथितकरके, इस क्वाथमें पीपल, मुलहठी और नीलकमळ का कल्क तथा घी और सेंधानमक मिलाकर दुर्बलेन्द्रिय और विपम ज्वर से कर्पित रोगी को वस्ति देवै ॥

ग्यारहवीं विधि ।

स्थिरादिपञ्चमूलीपञ्चपलनशालिपाटि

कयवगोघूममापकपायपञ्चमसृतेनछाग पयःशृतं । पादशेषकुक्कुटाण्डरसमधुघृतं शर्करासैन्धवसौवर्चलयुक्तोवस्तिवृष्यत मोवलजननश्च ॥

अर्थ.... शालिपर्ण्यादि पंचमूल के पांचों द्रव्य पांचपल, शालिचांचल, साठी चांचल, जौ, गेंदू और उर्द ये सब पांच प्रसृत इन को बकरी के दूध में सिद्ध करै चौथाई शेप रहने पर उस को छानकर उसमें मुर्गे के अंड का रस, शहत, घी, चीनी, सेंधानमक, संचरनमक, मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति अत्यन्तवृष्य और बलकारक होती है ।

बारहवीं विधि ।

कल्पशैपांशिरिगोनर्दहंसाण्डरसेस्यात् । अर्थ.... उक्त क्वाथ में भुर्गे के अण्डे के रसकी जगह मोर, सारस या हंस के अंडों का रस डालकर वस्ति दीजाय तौ भी वही गुण करती है ॥

तेरहवीं विधि ।

सातिचिरिःसमयूरःराजहंसपंचमूलीपयः सिद्धं । शतकुसुममधुकरास्नाकुटजफल पिप्पलीकल्कः ॥ घृततैलगुडसैन्धवयुक्तो वस्तिवर्चलवर्णशुक्रजननोरसायनश्च ॥

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूलको समान भाग दूध और जल में क्वथित करके उन का क्वाथ छेलेवै इस क्वाथ में सांतिर, मोर वा राजहंस का मांसरस तथा सोंफ, मुलहठी, रास्ना, इन्द्रजौ और पीपल इनका कल्क तथा घी, तेल, गुड और सेंधानमक मिलाकर वस्ति देनेसे बल, वर्ण और वीर्य की वृद्धि होती है ॥ यह वस्ति रसायनहै ।

चौदहवीं विधि ।

द्विपञ्चमूलीकुक्कुटरसासिञ्जपयःपादशेषं
पिप्पलीमधुकरास्नामदनमधुककल्कशर्करा
रामधुघृतयुक्तस्त्रीप्वतिकामानांवलजन

नोवस्तिः ॥

अर्थ—दसमूल और मुर्गे के मांसरसको एकत्र करके दूध में औटावै जब चौथाई शेष रहजाय तब पीपल, मुलहठी, रास्ना, मेनफल और मुलहठी का कल्क तथा चीनी शहत और घी मिलाकर उनको वस्ति देवे जो स्त्रियों में अत्यन्त आसक्ति रखते हैं । यह वस्ति बलकारक भी है ।

पन्द्रहवीं विधि ॥

मयूरमपित्तपक्षयादास्यान्त्रंस्थिरादिभिः
पलिकैःसहजलेपयसिपक्त्वाक्षीरशेषमद
नायिदारीशतकुसुमामधुककल्कीकृतंम
धुघृतसैन्धवयुक्तंवस्तिदद्यात् । स्त्रीप्वति
प्रसक्तक्षीणेन्द्रियेभ्योहितोवलवर्णकरः ॥

अर्थ—एक मोर के पित्त, पंख, पांव, मुख और आंठों को दूर करके केवल मांस और हड्डियों को लेंगे ॥ फिर इस मांसको पांच पल जल और दूध में सिद्ध करके दूध शेष रहने पर छानले, फिर इसमें मेनफल, विदारीकन्द, सोंफ और मुलहठी का कल्क तथा शहत, घी और संधानमक मिलाकर वस्ति देवे, यह वस्ति स्त्रियों में अत्यन्त प्रसक्त और क्षीणेन्द्रिय वालों के लिये हितकारी और बल तथा वर्ण को बढ़ानेवाली है ॥

सोलहवीं विधि ।

फलपंचपविफिरप्रुदप्रसहाम्बुचरेपुस्या

दक्षीरोहितादिपुमत्स्येषु ।

अर्थ—मोर के मांस के बदले बिबिकर, प्रतुद, प्रसह और जलचारी जीवों का मांस प्रयोग करें, परन्तु रोहू मछली के प्रयोग के साथ दूध का प्रयोग न करना चाहिये

सत्रहवीं विधि ।

गोधानकुलेमार्जारमूपकशलुकमांसानां
शपलान्भागान्सपञ्चमूलान्पर्यासपक्त्वा
तल्पयःपिप्पलीफलकल्कसैन्धवसौवर्चलज्ज
कैरामधुघृततैलयुक्तंवास्तिर्वयोरसायनः
क्षीणक्षतस्यसन्धानकरोमथितोरस्करथ
गजहयभग्नघातबलासकफप्रवृत्त्युदावर्त्तवा
तसक्तमूत्रवर्चःशुक्राणांहिततमदञ्चः

अर्थ—गोह, नौठा, बिल्ली, चूहा और सेह इन सबका मांस पांचपल, पंचमूल पांचपल, इन को दूध और जल समान भागमें औटावे, दूध शेष रहनेपर छानकर इनमें पीपल और मेनफल का कल्क संधानमक, संचरनमक, चीनी, शहत, घी मिलाकर वस्ति देवे, यह वस्ति बलकारक और रसायन होती है । क्षत और क्षीणरोगी को संधान करने वाली है । जिसका हृदय फट गया हो, जिसका शरीर रथ, हाथी वा घोड़े से टूट गया हो, जिसको वातबलास और उदावर्त्त रोग हो, तथा वातके कारण जिसका मूत्र, विष्टा और वीर्य रुकगया हो, ऐसे रोगियों को यह वस्ति बहुत हित है ।

अठारहवीं विधि ।

कूर्मादीनांअन्यतमपिशितसिद्धपयोगोष्ट
पनागहयनकईसकुक्कुटान्दरसमधुघृतश
कैरासैन्धवेषुरकात्मगुप्तफलकल्कसंश्लो

वस्तिः वृद्धानामपि बलजननः ॥

अर्थ—कछुए, आदि दस प्रकार, के जलजन्तुओं में से किसी एकके मांसको दूध में सिद्ध करके उस दूधमें गौ बैल हाथी, घोडा का मांसरस, हंस और मोर के अंडों का रस, शहत, घी, चीनी, संधानमक, तालमखाना, केंचके बीज और मेन फल इनका कल्क मिलाकर वस्ति देने से वृद्ध मनुष्यभी बलवान् होजाते हैं ।

उत्तीसर्वा विधि ।

गोवृषवस्तवराहवृषणकर्कटचटकसिद्धं क्षीरमुच्चटकेक्षुरकात्मगुप्तामधुघृतयुतं काश्चेत्त्वृषणितं वस्तिः ॥

अर्थ—बैल, बिजार, बकरा और गुराकर इनके अंडकोप, तथा किरकोटा और चिडा इन का मांसरस इन को डालकर औटाये हुए दूध में उच्चटक, तालमखाना और केंचके बीज का कल्क तथा शहत घी और थोडा सा नमक मिलाकर वस्ति देवै ।

वीसर्वा विधि।

कर्कटकरसच्चटकाण्डरसयुक्तः समधुघृतशर्करो वस्तिः इत्येते वस्तयः परमवृष्याः ॥

अर्थ—कर्कटरस, चिरोटे के अंडे का रस शहत घी और चीनी मिलाकर वस्ति देवै, ये वस्ति अत्यन्त वृष्य होती है।

इक्षीसर्वा विधि।

उच्चटकेक्षुरकात्मगुप्ताः शृतक्षीरमतिभोजनानुपानाः स्त्रीशतगामिनंकुर्युः ॥

अर्थ—उच्चटा, तालमखाना और केंचके बीज इन के साथ सिद्ध किया हुआ दूध भोजन करनेके साथ वा भोजनसे पीछे

पान करे तौ है । द्विपौसे भोगकी शक्ति होवै ।
आईसर्वा विधि ।

दशमूलमधुरहंसकुक्कुटकाथात्पञ्चप्रसृतं तैलघृतवसामज्जचतुष्प्रसृतयुक्तं शतं पुष्पांशुस्तहपुपाकल्कीकृतं सलवणो वस्तिः पादगुल्फोरुजानुजंघात्रिकवंक्षणवस्तिवृषणांशुनिहरः ।

अर्थ—दशमूल, तथा मोर, हंस और मुर्गा इनके मांसका काथ करके पांच प्रसृत लवै और इस काथमें तेल, घी, चर्बी और और मज्जा चार प्रस्थ तथा सोंफ, मोधा, हाऊवर इनका कल्क और थोडा सा नमक मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति पांव, टकना, ऊरू, जानु, जंघा, त्रिक, वंक्षण वस्ति और अंडकोपके वायुसंबंधी रोगोंको दूर करती है ।
तेईसर्वा विधि ।

मृगविष्करानूपविलेशयानामेतेनैवकल्पेन वस्तयो देयाः ।

अर्थ—मृग, विष्कर, आनूप और विलेशयों के मांस की वस्ति भी इसीतरह से दीजाती है ॥

चौथीसर्वा विधि ।

मधुघृतद्विमसृतं तुल्योष्णोदकं शतपुष्पांशुपलंसं न्वादासयुक्तो वस्तिर्दीपनो वृंहणो बलवर्णकरो निरुपद्रवो वृष्यतमारसायनः क्रिमिकृष्टोदायत्तगुल्फाशोत्रध्नप्लीहमेहहरः

अर्थ—शहत और घी दो प्रसृत, गरम जल दो प्रसृत, सोंफ आधापल, संधानमक आधा तोला इनको मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति दीपन, वृंहणकर्ता, बलवर्णवर्द्धक, निरुपद्रव, अत्यन्त वृष्य और रसायन है ।

एपवृष्योवर्ष्योवृंहणआयुष्योवलीपलित
सुत् । क्षतक्षीणनष्टशुक्राविषमञ्ज्वरार्चा

नाञ्जपापन्नयोनीनाञ्चकथ्यतमः ॥

अर्थ—खरैटी, गोखरू, रास्ता, असगंध
सितावर और सहचर इनमें से प्रत्येक सौ २
पल लेकर सौ द्रोण जल में पकावे जब
पकोत २ एक द्रोण रहजाय तब उसे वस्त्र
में छानलेवे । फिर विदारीकन्द और आंजले
का रस एक २ प्रस्थ, बकरा, भेंसा, सुअर,
बैल, मुर्गा, मोर, हंस, कारण्डव और सारस
इनका मांसरस एक २ प्रस्थ, घृत और
तेल एक २ प्रस्थ और दूध भाठ प्रस्थ
इन सबको इकट्ठा करे फिर चन्दन, गु-
लहटी, मधूलिका, वंशलोचन, कमलनाल,
मृगाल, नीलोत्तर, परवल, मेनफल, केंचके
बीज, अन्नपाकी, तालका गूदा, खजूर,
किसमिस, भूआंशला, कटेरी, जीवफ, ऋष
भक, मुदमपणी, मापपणी, सितावर, मेदा,
पीपल, नेत्रवाला, दाउचीनी और तेजपात
इनका कल्क । इन सबको मिलाकर पूर्ववत्
वेदध्वनि के साथ सिद्ध करे और फिर
इसका प्रयोग करे । इस वस्ति के सेवनसे
मनुष्य में सौ स्त्रियों से गमन करनेकी शक्ति
होजाती है इसमें आहार विहारकी किसी
प्रकारकी रोक टोक नहीं है । यह वस्ति
पुष्टिकारक, वर्णकारक, वृंहण, आयुवर्द्धक और
बली पलित नाशक है । यह वस्ति क्षतक्षीण
रोगी, नष्टशुक्ररोगी विषमञ्ज्वरपीडित तथा
योनिरोग से पीडित स्त्रियों के लिये हित है ।

सहचरादिस्नेह ।

सहचरपलशतमुदकद्रोणचतुष्टयेपेक्त्वा

द्रोणशेषेसेमुपूताविदारीशुरसप्रस्था-
भ्यामष्टगुणक्षीरघृततलप्रस्थवलामधुकम
धूकचन्दनमधूलिकाशारिवामेदामहामे
दाकाकोलीक्षीरकाकोलीपयस्यागुरुशा
र्गंष्टान्याघ्ननखशटीसहचरसहस्रवर्ष्याव
रांगलोघ्राणामक्षसमैद्विगुणशर्करैःकल्कैः
साधयित्वाग्रहयोपादिविधिना । तत्
सिद्धंवास्तिदद्यादेपसर्वरोगहरोरसायनो
ललितानांश्रेष्ठोऽन्तःपुरचारिणीनांक्षत
क्षयवातपित्तघेदनाश्वासकासहरस्त्रिभा
गनासिकोवलीपलितनुद्वर्णरूपवलमांस
शुक्रवर्द्धनः ॥

अर्थ सौपल सहचर को चारद्रोणजल
में पकावे, चौथाई शेष रहने पर उतार
कर छानले । फिर विदारीकन्दका रस एक
प्रस्थ, ईख का रस एक प्रस्थ, दूध भाठप्रस्थ
घृत एक प्रस्थ तेल एक प्रस्थ ग्रहण करे ।
तथा खरैटी, गुलहटी, महुआ, चन्दन, मधूलिका,
शारिवा, मेदा, महामेदा काकोली, क्षीरकोली,
भूमिकूष्मांड, अगर, शार्ङ्ग, घघनखी,
कचूर, सहचरी, दूध, दालचीनी और लोघ
प्रत्येक एक एक तोला तथा इन सब से
दूनी चीनी मिलाकर वेदध्वनि के साथ
पूर्ववत् पाक करे । सिद्ध होने पर वस्ति
द्वारा इसका प्रयोग करे । यह वस्ति सम्पूर्ण
रोगोंके नाश करनेवाली, रसायन, सुकुमार
तथा अन्तःपुर में रहनेवालोंके लिये हित
है इससे क्षतरोग, क्षयरोग, वातज घेदना,
पित्तज घेदना, श्वास और खांसी दूर हो
जाती है । इस स्नेह में तिहाई शहत मिं

लाकर सेवन करनेसे बली पलित दूर होजा-
ता है । इससे वर्ण, रूप, बल, मांस और
वीर्य बढ़ता है ।

इत्येते रसायनाः स्नेहवस्तयः । सति विभ
वेशतपाका वासहस्रपाका वाकार्यावीर्यव-
लाधानार्थमिति ॥

अर्थ—इस तरह सब रसायन प्रयोग
और स्नेह वस्तियोंका वर्णन किया गया
है । विभव होने पर वीर्य और बल बढ़ाने
के निमित्त इन स्नेहों का शतपाक और स-
हस्रपाक करके वस्तिद्वारा प्रयोग करना चाहिये-

भवान्ति चात्र ।

इत्येते वस्तयः स्नेहाश्चोक्ता प्राणिषु सद्भि
ताः । सुस्थानामातुराणाञ्च वृद्धानाञ्च
वरोधिनः ॥ अतिव्यवायशीलानां शुक्र
मांसबलप्रदाः । सर्वरोगप्रशमनाः सर्देव
तृपुयोगिकाः ॥ नारीणामप्रजातानां नरा
णाञ्चाप्यपत्यताम् । उभयार्थकः । दृष्टा
स्नेहवस्तिनिरूहयोः ॥

अर्थ—प्राणियों के हित के लिये इन
स्नेहवस्तियों का वर्णन किया गया है, ये
वस्तियाँ रोगरहित, रोगप्रस्त और वृद्ध
सब ही को अनुकूल हैं । जो अत्यन्त स्त्री-
सेवी हैं उनके शुक्र, मांस और बलको ब-
ढाती हैं, सम्पूर्ण रोगों को नाश करनेवाली
हैं ये सब ऋतुओं में दी जा सकती हैं । इन
का सेवन बन्ध्या स्त्री और निःसन्तान पुरु-
षोंके सन्तान उत्पन्न करता है ये वस्तियाँ
अनुपान और निरूहण दोनों का काम देती हैं
वस्तिसेवनमें वर्जितकर्म ।

व्यायामो मधुन मधमधूनि शिशिराम्बुच ।

सम्भोजनं रथक्षोभे वस्तिप्वेतेषु गार्हितम् ।

अर्थ—इन वस्तियों में व्यायाम, मैथुन,
मद्यपान शहत सेवन, शीतल जल, अत्यन्त
भोजन और रथक्षोभ वर्जित हैं ।

वस्तियोंकी संख्या ।

शिश्विगोनर्दहसाण्डैर्दक्षवद्वस्तयस्त्रयः ।
विंशतिर्विष्किरैस्त्रिंशत्प्रतुदैः प्रसहैस्तया
त्रिंशदेकास्तथा सप्तविंशतिश्चाम्बुचारिभिः
नवमत्स्यादिभिश्चैव शिखिकल्पेन वस्तयः ॥
दशकर्कटकाद्यैश्चूर्मकल्पेन वस्तयः ॥ मृगैः
सप्तदशैकोनविंशतिर्विष्किरैर्नव । आनु
पैर्दक्षशिश्विबद्भुशयैश्चतुर्दश ॥ एकोन
त्रिंशदित्येते सहस्रैः समासतः । प्रोक्ता
विस्तरशोभिन्नाद्भेदशेषोऽशोचरे ॥ एते
माक्षिकसंयुक्तः कुर्वन्त्यातिवृषं नरम् ।

अर्थ—गौर, सारस और हंस के अंश
की तीन वस्ति, मुर्गेकी एक, विष्किर पक्षी
बीस प्रकार के होते हैं इस से उनका बीस
वस्ति, प्रतुद तीस प्रकार के होते हैं इससे
उनकी तीस वस्ति, प्रसहोंकी इकतीस वस्ति
जलचारियों की सत्तारिस, मछलियों की नौ
कर्कटकादि की दस, हिरनों की सत्रह, वि-
ष्किरो की उन्नीस, आनूप की नौ, भुशयों
की चौदह तथा उन्तीस प्रकार के स्नेह ।
इस तरह सब प्रकार की वस्तियाँ मिलकर
दो सौ सोलह हैं पर- इनकी संख्या कुछ
अधिक होती है ।

इन वस्तियों में यदि शहत और मिलादिये
जाय तो अत्यन्त पुष्टिकारक हो जाती हैं ।
नातियोगं न चायोगं स्तम्भितास्ते च कुर्वते
अर्थ—इन वस्तियोंके प्रयोग से भयंकर